ग्रन्थांक २६१

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश

खण्ड १

मूल संकलन कर्ता

स्व० चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

संरक्षक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सम्पादक मण्डल

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

डॉ० रमानाथ सहाय

डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल

सहकारी

शिवदत्त चतुर्वेदी

ब्रजेन्द्र कुमार त्रिपाठी/चन्द्रप्रभा सारस्वत/

कृष्ण गोपाल कपूर/बृजेश भारद्वाज/



१९८५

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

ग्रन्थांक २६१

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश

खण्ड १

मूल संकलन कर्ता

स्व० चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

संरक्षक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सम्पादक मण्डल

डॉ० विद्यानिवास मिश्र
डॉ० रमानाथ सहाय
डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल

सहकारी

शिवदत्त चतुर्वेदी
ब्रजेन्द्र कुमार त्रिपाठी/चन्द्रप्रभा सारस्वत/
कृष्ण गोपाल कपूर/बृजेश भारद्वाज/



१९८५

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

प्रथम संस्करण १९८५

मूल्य : एक सौ पाँच रुपये

उ० प्र० हिन्दी संस्थान कोश समिति

शिवमंगल सिंह 'सुमन' / जयदेव सिंह / भक्त दर्शन
गिरिजा कुमार माथुर / रमाशंकर तिवारी / हरि माधव शरण
रमेशचन्द्र सक्सेना / विद्याविन्दु सिंह / मंजुलता तिवारी
सरयू प्रसाद अग्रवाल / भगवती प्रसाद सिंह / केशवदत्त रुवाली
जगन्नाथ पाठक / भोलाशंकर व्यास / विद्यानिवास मिश्र

के तत्त्वावधान में
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के लिए हरि माधव शरण
द्वारा प्रकाशित

प्रेमचन्द जैन द्वारा
प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस, 1/11, साहित्य कुंज, महात्मा गांधी मार्ग,
आगरा-2 में मुद्रित

अनुक्रम

आमुख

मेरे पूज्य पिता साहित्य वाचस्पति पं० चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा विद्वान और साहित्यिक अभिरूचि के व्यक्ति थे। जीवन यापन के लिए उन्होंने सरकारी नौकरी कर ली। वे इलाहाबाद में सिविल सर्जन के हेड क्लर्क हो गये। किन्तु उनकी साहित्यिक अभिरुचि और हिन्दी की सेवा की भावना को सरकारी नौकरी नहीं दबा सकी। उन्होंने 'रूलर्स आफ इण्डिया' पुस्तक माला की तरह भारत में अंग्रेजी राज का इतिहास भारतीय दृष्टि से गवर्नर जनरलों की जीवनियों के द्वारा लिखने का संकल्प किया। पहिली पुस्तक लार्ड क्लाइव पर लिखी। दूसरी वारेन हेस्टिंग्ज पर लिखी। सरकार को रिपोर्ट की गयी कि यह दूसरी पुस्तक ब्रिटिश-विरोधी है। इस अपराध में वे बिना किसी पूर्व सूचना के तत्काल सेवा से अलग कर दिये गये। यद्यपि उन्हें तत्काल एक रेल कम्पनी में नौकरी मिल रही थी तथापि उन्होंने नौकरी न करने का संकल्प कर लिया। इलाहाबाद के स्व० लाला राम नारायन लाल उनके स्कूली सहपाठी थे। उन्होंने उनसे चार आना पृष्ठ पर पुस्तकें लिखने का प्रस्ताव किया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इन दिनों रायल्टी की प्रथा नहीं थी। बाल सुलभ पुस्तक माला की बीस पचीस पुस्तकें लिखने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी में कोई अच्छा शब्दकोश नहीं है। पहले तो अमरकोश की तरह हिन्दी में नाम-मालाओं के नाम से छोटे-छोटे कोश पद्य में लिखे जाते थे। अंग्रेजों के आने पर और उनके द्वारा स्कूलों के खोलने पर अंग्रेजी कोशों की भाँति हिन्दी कोशों की भी आवश्यकता अनुभव होने लगी। 'गौरी कोश' और 'श्रीधर कोश' के समान कुछ आरम्भिक प्रयास किये गये थे, किन्तु पिताजी के समय में हिन्दी ने इतनी उन्नति कर ली थी कि इन पुराने कोशों से काम नहीं चलता था। उन्होंने इस कमी का अनुभव किया और हिन्दी का पहला आधुनिक कोश 'शब्दार्थ-परिजात' नाम से तैयार किया। वह खूब चला। जहाँ तक मुझे मालूम है उसके प्राय: बीस संस्करण हुए थे। उसकी सफलता ने उन्हें हिन्दी के प्राय आधे दर्जन छोटे बड़े और मझोले कोश लिखने को प्रेरित किया। उनकी कल्पना और क्रान्तदृष्टि (विजन) बहुत प्रखर थी। हिन्दी में कोई चरित्र-कोश (बायोग्राफिकल कोश) न था। उन्होने वैदिक और संस्कृत वाङ्मय (तथा कुछ हिन्दी काव्यों) में आये हुए नामो का एक कोश तैयार किया। वह सन् १९१९ में छपा जो हिन्दी में ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में भी अपने ढंग का पहला कोश था। उसमें कुछ मुसलमान और अंग्रेज नाम भी दिये गये थे किन्तु वे अपर्याप्त थे। वह प्राय: तीस वर्षों से अनुपलब्ध था। मैंने उसका संपादन कर उसे हाल में नेशनल पब्लिशिंग हाउस से पुन: प्रकाशित करा दिया है, अपर्याप्तता के आधार पर ये नाम उसमें से निकाल दिये है। मेरी समझ में इस भाग को अधिक विस्तृत कर उसे स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित होना चाहिए। बाद में उन्होंने संस्कृत का भी एक बड़ा उपयोगी कोश लिखा, जो आप्टे के कोश के बाद सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है।

ब्रजभाषा साहित्य के पठन-पाठन की ओर इधर कम ध्यान दिया जाने लगा है किन्तु ब्रज साहित्य हिन्दी का अभिन्न अंग ही नहीं उसका बड़ा महत्वपूर्ण अंग है। जीवन के अन्तिम काल में वे दस बारह वर्ष अपनी जन्मभूमि इटावे में रहे। वहाँ बहुधा विद्यार्थी तथा अन्य जिज्ञासु भी उनसे पुराने ब्रज काव्य के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने आते थे। ब्रजभाषा साहित्य के बहुत कम शब्द हिन्दी के आधुनिक कोशों में मिलते हैं और उनके सही अर्थ जानने का कोई साधन नहीं था। अतएव इटावे में उन्होंने ब्रजभाषा साहित्यिक कोश (बोलचाल की ब्रजभाषा का नहीं) तैयार करने का संकल्प किया। उन्होंने ब्रजभाषा काव्य के ३५-४० मानक ग्रन्थ लिये और उनमें आये शब्दों को अलग-अलग कार्डों में लिखवाया। वे काफी वृद्ध हो गये थे और उनकी आँखें भी बहुत कमजोर हो गयी थीं। शब्द-चयन के काम के लिए उन्होंने ब्रजभाषा जानने वाले कुछ साहित्य-प्रेमी युवकों से यह काम कराया। प्रत्येक कुछ महीनों से लेकर दो तीन वर्ष तक यह काम करते रहे। उनमें स्व० पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, डॉ० नारायण प्रसाद बाजपेयी, पं० गोपाल प्रसाद व्यास आदि के नाम मुझे याद हैं। कार्ड तैयार हो जाने पर उन्होंने स्वयं उन्हें फुल स्केप कागज पर क्रमबद्ध लिखा और उनके अर्थ लिखे। स्व० रघुवर दयाल मिश्र ने इस काम में उनकी सहायता की थी। इस प्रकार कई वर्षों में यह ब्रजभाषा साहित्य कोश तैयार हुआ। इसमें ६५५६ फुलस्केप पृष्ठ थे जिनमें कुछ को छोड़कर सभी पूज्य पिताजी के हाथ के लिखे हुए थे।

कोश तैयार हो गया। उन्होंने उस समय उसकी भूमिका नहीं लिखी। छपने पर लिखने को कहा था। वह जहाँ तक मुझे याद है १९४४-४५ ई० के लगभग तैयार हो गया था। अब प्रकाशक की खोज आरम्भ हुई। मेरे मित्र और इण्डियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) ने उसे छापना स्वीकार किया किन्तु इतनी बड़ी पुस्तक छापने की वे तैयारी ही करते रहे कि वे बीमार पड़ गये और १९५३ में दुर्भाग्य से उनका स्वर्गवास हो गया। पूज्य पिताजी का भी स्वर्गवास १९५४ में हो गया और यह विशाल पाण्डुलिपि एक इलाहाबादी लोहे के बक्स में बन्द मेरे पास एक महत्वपूर्ण धरोहर के रूप में रखी रही। मैंने इस पितृ-ऋण मे उद्धार पाने के कितने प्रयत्न किए, उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, मैं इस ऋण से मुक्त होना चाहता था। उत्तर प्रदेश सरकार और उसके शिक्षा विभाग की नीतियों के कारण उत्तर प्रदेश में सामान्य पुस्तको का प्रकाशन (सरकारी या गैर सरकारी पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर) समाप्तप्राय है। अब अनेक कारणों से दिल्ली हिन्दी पुस्तक प्रकाशन का केन्द्र हो गयी है और यह उद्योग अधिकांश नये व्यापारियों के हाथ में है। यह ठीक ही है कि उनकी दृष्टि व्यावसायिक है और वे हिन्दी साहित्य की आवश्यकताओं को उस दृष्टि से नहीं देखते जिस दृष्टि से हिन्दी की श्रीवृद्धि करने वाले देखते हैं। इतनी बड़ी पुस्तक के प्रकाशित करने में, जो ब्रजभाषा के सम्बन्ध में हो, पूंजी लगाना वे अच्छा व्यापार नहीं समझते। एक प्रकाशक ने तो मुझसे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम लोग ब्रजभाषा की पुस्तकों का प्रकाशन नहीं करते। मैंने इसे प्रकाशित करने के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुदान प्राप्त करने की भी बात चलायी किन्तु वहाँ भी लाल फीताशाही और प्रकाशन-संस्थाओं की भूल-भुलैयों में भ्रमित होने का मुझमें न तो साहस है, न सामर्थ्य। अतएव प्रायः चालीस वर्ष इस कोश की पाण्डुलिपि लोहे के सन्दूक में कैद रही और मेरे लिए सतत चिन्ता का विषय बन गयी।

इस कोश के सौभाग्य से मेरे आत्मीय और सुहृद् डॉ० विद्यानिवास मिश्र आगरा विश्वविद्यालय

के कन्हैयालाल मुन्शी हिन्दी और भाषाविज्ञान विद्यापीठ के निदेशक हो गये। मैंने उनसे अपना दुख कहा, वे सुधी, विद्वान और साहित्य-मर्मज्ञ ही नहीं, ऐसे ग्रन्थों के महत्व को भी समझते हैं। मैंने उन्हें पाण्डु-लिपि दे दी। वे अनुभवी, अत्यन्त व्यवहारकुशल और गम्भीर विद्वान हैं। पूज्य पिताजी ने प्राय: चालीस वर्ष पूर्व उसकी रचना की थी। उनकी वय बढ़ गयी थी और साधनों की एक सीमा थी, वे प्रत्येक शब्द के विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण भी देना चाहते थे, किन्तु मैंने ही उन्हें सलाह दी कि ग्रन्थ वैसे ही विशालकाय हो गया है, और काफी समय बीत गया है। शब्दों के विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण देने से वह और भी बढ़ जायगा। उतने ही बड़े ग्रन्थ का छपना कठिन है, और बड़ा होने पर छपाना और भी कठिन होगा। यह सलाह देने का एक कारण यह भी था कि वे बहुत वृद्ध और कमजोर हो गये थे। मैं नहीं चाहता था कि वे अधिक परिश्रम करें। अतएव उदाहरण देने का विचार छोड़ दिया गया।

किन्तु मैं चाहता था कि ब्रजभाषा साहित्य कोश यथासम्भव पूर्ण और उपयोगी हो। इस काम के लिए डॉ० विद्यानिवास मिश्र से अधिक योग्य और उपयुक्त विद्वान मेरी दृष्टि में और कोई नहीं है। उन्होंने पूज्य पिताजी के कोश को जिस योग्यता से परिवर्द्धित और सम्पादित करने के साथ-साथ सँवारा है, उससे मेरे पूज्य पिता जी की आत्मा को अत्यन्त संतोष होगा।

इसके परिवर्द्धन और सम्पादन में डॉ० मिश्र ने प्रशंसनीय परिश्रम किया है। उन्हें इसके प्रकाशन में भी अनेक कठिनाइयाँ हुई। उन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू० जी० सी०) से इसके लिए अनुदान का प्रयत्न किया किन्तु सफल नहीं हुए। आगरा विश्वविद्यालय इसके प्रकाशन का भारी बोझ उठा नहीं सकता था। किन्तु डॉ० मिश्र निराश होने वाले व्यक्ति नहीं हैं। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के भी महत्वपूर्ण सदस्य है और उसकी कोश योजनाओं में प्रधान सम्पादक भी हैं। सुसंयोग से इस समय संस्थान के कर्मचारी उपाध्यक्ष हिन्दी के प्रसिद्ध वाग्मी, कवि और सहृदय विद्वान डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' है। वे ऐसे ग्रन्थों का महत्त्व समझते हैं। अतएव वे डॉ० विद्यानिवास मिश्र के इस प्रस्ताव से तुरन्त सहमत हो गए कि इसका प्रकाशन उ० प्र० हिन्दी संस्थान करे। मुझे इस बात से विशेष प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हिन्दी की दो प्रमुख संस्थाओं का सहयोग मिला।

मेरे लिए यह उचित नहीं है कि इस कोश के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। मुझे विश्वास है कि यह हिन्दी वाङ्मय की श्रीवृद्धि करेगा और इससे ब्रजभाषा के पाठकों, विद्यार्थियों और शोधार्थियो को सहायता मिलेगी।

मैं इस अवसर पर डॉ० विद्यानिवास मिश्र के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने इसका अत्यन्त योग्यता से सम्पादन कर पूज्य पिताजी के कोश में चार चाँद लगा दिये और मुझे एक महान चिन्ता तथा पितृऋण से मुक्त कर दिया। मैं डॉ० शिव मंगल सिंह 'सुमन' को भी उनके सहज और हार्दिक सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। इस महान कार्य के लिए मेरे जैसा अकिंचन उन्हें सिवाय अपनी शुभ कामनाओं और आर्शीवाद के क्या दे सकता है? भगवान से प्रार्थना है कि वे पूर्णकाम हों और उनका यश उत्तरोत्तर बढ़े।

पूज्य पिताजी ने कितने ग्रन्थ लिखें, अनुवाद किये या संकलित किये, उनकी ठीक संख्या प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं जान सका। साहित्य महोपाध्याय पं० रामबहोरी शुक्ल ने बड़ा प्रयत्न करके उनके प्रकाशित एवं प्राप्य ग्रन्थों की सूची बनायी थी, जो सवा सौ के लगभग है किन्तु यह निर्विवाद है कि यह कोश उनकी अन्तिम कृति है और जिस वय में और जिस स्वास्थ्य में उन्होंने यह कार्य किया, वह उनकी प्रगाढ़ साहित्य साधना का चरम परिणाम था। अत: मैं इसके प्रकाशन के लिए बहुत चिन्तित और उत्सुक था। किन्तु मैं इसे प्रकाशित करने में असमर्थ था। डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने इसे प्रकाशित ही नहीं कराया प्रत्युत इसे इतना सँवारा कि इसकी उपयोगिता और महत्व बहुत बढ़ गया। इस सबके लिए मैं औपचारिक शब्दों द्वारा धन्यवाद देकर उनके अहैतुक सहयोग के मूल्य को छोटा नहीं करूँगा। किन्तु मुझे विश्वास है कि अपनी अन्तिम कृति को इस अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रकाशित देखकर पूज्य पिताजी की आत्मा को बहुत संतोष और सुख मिलेगा। वे विद्वान ही नहीं, बड़े धार्मिक और नैष्ठिक महात्मा थे। उन्होंने अठारह बार-गंगा तट पर सवा लक्ष गायत्री के और दस बार द्वादशाक्षर मंत्र के अनुष्ठान किये थे। ऐसे तपस्वी की आत्मा संतुष्ट होकर डा० मिश्र को अवश्य आर्शीवाद देगी।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

प्रकाशकीय

उ० प्र० हिंदी संस्थान द्वारा साहित्यिक ब्रजभाषा कोश का प्रकाशन एक घटना है। यह उस वृहत् योजना का अंग है जिसके अन्तर्गत हिंदी को एक राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया में उसकी जनपदीय भाषाओं के परम्परागत भाषा शब्द-वैभव से सम्पन्न करने की भावना अन्तर्निहित है। यह अत्यन्त श्रमसाध्य, सतत अन्वेषणशील एवं साधनापरक साहसिक कार्य है, जिसके लिए आकल्पना (डिज़ाइन), प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) समय-समय पर परीक्षण तथा भाषा के मर्म से परिचित विद्वानों के जीवंत सहयोग की अपेक्षा होती है। इसका कुछ अनुमान इसी आधार पर लगाया जा सकता है कि डेकन कालिज, पूना में संस्कृत के कोश का कार्य लगभग चालीस वर्षों से चल रहा है और अभी तक उसके केवल दो खण्ड प्रकाशित हो पाए हैं। भारत सरकार द्वारा इसके लिए आठ लाख वार्षिक अनुदान प्राप्त होने के साथ-साथ प्रति पाँच वर्ष के बाद परीक्षण की व्यवस्था है। संस्कृत की उत्तराधिकारिणी के रूप में उसको जनपदीय भाषाओं के साथ-साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं की समृद्धि से सम्पन्न होने की भी सम्भावना भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। परन्तु यह तो पारस्परिक सौहार्द की प्रयोगपरक भावी सम्पदा पर आश्रित है।

संप्रति १९ वीं शती के भाषा-व्यवस्था-शोध के सर्वेक्षण और शब्द-सागर के संपादन के विकास क्रम में प्रथम भाषा में ब्रजभाषा, अवधी, कुमाऊँनी और भोजपुरी कोशों के तैयार करने की योजना बनायी गई है। तत्पश्चात् गढ़वाली, बुंदेली, कौरवी और मालवी कोशों की तैयारी की योजना भी विचाराधीन है। वर्तमान रूप में संस्थान के गठन के कुछ काल पश्चात् ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के काल में इसकी रूपरेखा तैयार की गई थी और इसे दो चरणों में पूरा करने का संकल्प लिया गया था। इसके अतिरिक्त यह संस्तुति भी की गई थी कि हिन्दी की प्रयोगपरक नव-गतिशीलता की दृष्टि से मानक हिन्दी के व्यवहार में जो नए प्रयोग जुड़ रहे हैं उनका प्रारम्भ में प्रतिवर्ष यादृच्छिक प्रतिचयन या बेतरतीब नमूनों (Random Sampling) के आधार पर प्रयोग संकलित कर प्रतिवर्ष प्रयोग-वार्षिकी के नाम से प्रकाशित कराए जाएँ। ब्रजभाषा और अवधी के सम्बन्ध में यह भी निर्णय लिया गया था कि चूँकि इन दोनों के साहित्यिक रूप मध्य युग से ही परिपुष्ट हो गए थे, अतएव इनके कोश (१) साहित्यिक तथा (२) जनपदीय दो रूपों में प्रकाशित किए जाएँ। विभिन्न जनपदीय कोशों के निर्माण के मूल में भावात्मक समन्वय की यह भावना भी अंतर्निहित थी कि जनपदीय कोशों के तैयार हो जाने पर एक समाहित कोश का निर्माण किया जाय, जिससे यह तथ्य सहजभाव से प्रतिबिम्बित हो सके कि कौन से शब्द कुछ ध्वन्यात्मक रूपान्तरों के साथ पूरे क्षेत्र में व्यवहृत हैं। ऐसे शब्दों को मानक-हिन्दी शब्द-कोश का अंग माना जायगा। जो शब्द एक या दो बोलियों से सम्बन्धित क्षेत्रों से संबद्ध होंगे वे क्षेत्रीय प्रयोग या उप-मानक के रूप में अंकित किए जायेंगे। यह कार्य हिन्दीभाषी क्षेत्र के लिए ही उपयोगी नहीं, अन्य प्रांतीय भाषाओं के साथ पारस्परिक सद्भावना और सहयोग के नये क्षितिज उद्घाटित करने में भी सहायक हो सकता है। आगे चलकर आर्य भाषाओं और द्राविड़ भाषाओं के भाषागत प्रयोगों के पारस्परिक सौहार्द का भी पथ इसी साधनापरक निष्ठा से प्रशस्त करने की सम्भावना के हो सकती हैं। अस्तु प्रकारांतर से यह महत्वाकांक्षी योजना भाषागत प्रयोगों के आधार पर इस महान राष्ट्र के भावात्मक समन्वय का युगांतरकारी कार्य सिद्ध करने का

अनुष्ठान सार्थक कर सकती है। इन शब्द-कोशों की प्रामाणिकता प्रतिष्ठित करने के लिए यह निश्चित किया गया है कि उदाहरण के रूप में सार्थक प्रयोग ही प्रस्तुत किए जाएँ।

प्रस्तुत साहित्यिक ब्रजभाषा कोश का प्रथम खण्ड उपर्युक्त तपःपूत अनुष्ठान का प्रथम प्रतिफल है। सौभाग्य से इस संकल्प को साकार करने में हमें अनायास ही ऋषितुल्य स्व० चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद शर्मा की अप्रतिहत साधना का संबल सुलभ हो गया, ऐकान्तिक निष्ठा के समुज्ज्वल प्रतीक के रूप में उनके रजिस्टर में संगृहीत बीस हजार शब्द हमें अर्थसहित प्राप्त हो गए। लगभग ३०-४० वर्षों से यह अमूल्य निधि उपेक्षित पड़ी थी जो उनके तपस्वी और यशस्वी पुत्र श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने हमें निस्संकोच सौंप दी। यह बहुमूल्य साथ प्राप्त करते ही उसके संदर्भ जुटाने का कार्य (कौन सा शब्द किस ग्रंथ में किस अर्थ में प्रयुक्त है), तथा शेष ब्रजभाषा के ग्रन्थों सामग्री से उन्हें सम्बद्ध करने, अन्य उपलब्ध शब्दों के शब्द और अर्थ का तारतम्य बिठाने तथा आधुनिक कोश विज्ञान के अनुसार शब्द-क्रम में परिवर्तन करने का साहस किसी दैवी प्रेरणा से हमारे मानस में जाग्रत् हो गया। हमारे सौभाग्य से पूज्य श्रीनारायण जी चतुर्वेदी ने इसका संरक्षक होना स्वीकार कर लिया, श्री विद्यानिवास मिश्र ने इसके प्रकाशन का भार अपने ऊपर ले लिया। इस योजना को सुचारित और सुनियोजित रूप में सिद्ध करने के लिए हमने उन्हीं के निर्देशन में आगरा के मुद्रणालय में इसके मुद्रण हेतु सौंप दिया। ठीक एक वर्ष की अवधि में ४०० पृष्ठों के इसके प्रथम खण्ड को तत्परता पूर्वक सम्पादित करके प्रकाशित करने के लिए उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त कर सकना कठिन है। 'प्रयोग वार्षिकी' के प्रकाशन की मौलिक योजना भी उन्हीं की स्नेह-सद्भावना का प्रतिफल है। प्रत्येक शब्द के स्थापन, बनावट और उदाहरण के सम्बन्ध में पूर्ण सतर्कता के साथ संपादन करने के अतिरिक्त महीनों इसके प्रूफ तक उन्होंने बिना किसी शिकवा-शिकायत के देखे और नये वर्ष के सर्वोत्तम उपहार के रूप में साहित्यिक ब्रजभाषा कोश के प्रथम खण्ड को मंगलाचरण के रूप में साकार कर दिया। हमारे निवेदन पर हमारे प्रेरणास्रोत आदरणीय श्रीनारायण जी चतुर्वेदी ने इसका आमुख लिखकर हमें कृतकृत्य तो किया ही, संस्थान की कोश-योजना के प्रकाशन का मंगलमय समारम्भ भी कर दिया। यह आगरा के प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस में छपा। मैं प्रेस का कृतज्ञ हूँ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

उपाध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

अनुकथन

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश हिन्दी संस्थान की कोश-योजना का दूसरा महत्वपूर्ण प्रकाशन है. हिन्दी की शब्द-समृद्धि को समग्र रूप से आँकने के लिए संस्थान ने कोश योजना १९८० में शुरू की। यह दीर्घकालीन योजना है, पहले चरण में जिन साहित्यिक रूपों का आधुनिक हिन्दी ने उत्तराधिकार ग्रहण किया है उनके (साहित्यिक ब्रज और अवधी) शब्दकोश ब्रजभाषा और अवधी की साहित्यिक रचना में आये हुए प्रयोगों के आधार पर तैयार किये जायेंगे। उसके साथ ही हिन्दी की विशाल भूभाग की जनपदीय भाषाओं (ब्रज, भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, गढ़वाली, कुमाऊँनी, कौरवी) के बोले जाने वाले रूप की शब्दावली का क्षेत्र-सर्वेक्षण करके जनपदीय कोश तैयार कराये जायेंगे और ये सब कोश अलग-अलग छपाये जायेंगे और अंत में ये सभी कोश समाकलित किये जायेंगे और एक बृहत हिन्दी कोश तैयार किया जायेगा, उसमें ऐतिहासिक विकास और बोलीय परिवर्त्यों के ऊपर विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस प्रकार संस्थान की योजना हिन्दी के सम्पूर्ण शब्दार्थ-संसार को प्रकाशित करना है। हमारी कोश-योजना की मुख्य विशेषता यह है कि कोश से कोश बनाने की प्रक्रिया से अलग जाकर प्रयोग से कोश बनाने के सिद्धान्त पर आधृत है। इसीलिए शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग भी यथास्थान दिया जा रहा है।

पहले चरण में संस्थान में साहित्यिक ब्रज और साहित्यक अवधी के कोशों की योजना क्रमश: डॉ० विद्यानिवास मिश्र, डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल के निर्देशन में शुरू की और चार जनपदीय बोलियों के कोश की योजना भी (भोजपुरी. ब्रज, अवधी, कुमाऊँनी)। इसके अलावा प्रतिवर्ष प्रकाशित समकालीन साहित्य एवं वाङ्मय में नमूने चयन करके हिन्दी के नये प्रयोगों का कोश तैयार करने की भी योजना आरम्भ की गई और उसके अन्तर्गत 'प्रयोग वार्षिकी' १९७८ प्रकाशित भी हो चुकी है।

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश बड़े परिश्रम का फल है। कोश-रचना का कार्य बहुत एकाग्र ध्यान की अपेक्षा रखता है और इसमें बहुत कुछ काम बहुत यान्त्रिक होता है जिसमें जरा भी असावधानी हो, नये सिरे से शुरू करना पड़ता है। साहित्यिक ब्रजभाषा कोश तीन खण्डों में छपेगा, प्रथम खण्ड में लगभग उपप्रविष्टियों सहित प्रविष्टियों की संख्या १५००० होगी। प्रथम खण्ड में विद्वान सम्पादकों ने कोश की विस्तृत भूमिका लिखी है, जिसमें ब्रजभाषा के व्याकरण, कोश-रचना की प्रक्रिया, साहित्यिक ब्रजभाषा की विकास-यात्रा का समुचित ढंग से विवेचन किया गया है। संस्थान सम्पादकों और उनके सहकारियों के प्रति कृतज्ञ है कि उन्होंने मनोयोगपूर्वक यह काम सम्पन्न करके हमें दिया। प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस के संस्थापक श्री प्रेमचन्द्र जैन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने कोश-मुद्रण का कठिन काम समय से पूरा किया है।

इस कार्य में श्रद्धेय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी और आदरणीय शिवमंगल सिंह 'सुमन' का प्रोत्साहन और मार्ग निर्देश समय-समय पर न मिला होता तो यह कार्य नहीं पूरा होता। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रारम्भ से अन्त तक इस समस्त संभार को सार्थक और समुपलब्ध कराने का श्रेय डॉ० विद्यानिवास मिश्र की अप्रतिहत आस्था और अध्यवसाय को ही दिया जा सकता है, जिसके प्रति हमारी मूक कृतज्ञता शब्दातीत है।

हरिमाधवशर्मा

निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

आभार

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश का दुस्तर कार्य यह कैसे पूरा हो गया है यह अचरज की बात है, निश्चिय ही स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा के तप, पूज्य भैया साहब श्रीनारायण चतुर्वेदी के आर्शीवाद और निरन्तर उद्‌बोधन, आदरणीय सुमन जी के हार्दिक सहयोग और मार्गदर्शन, हिन्दी संस्थान के पूर्व निदेशकों (स्व० श्री विश्वनाथ शर्मा, श्री हरिश्चन्द्र, श्री रमेशचन्द्र दुबे, श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय) तथा वर्तमान निदेशक श्री हरि माधव शरण के सौहार्द तथा सक्रिय सहयोग, हिन्दी संस्थान की पूर्व प्रधान सम्पादिका सम्प्रति उप निदेशक श्रीमती डॉ० विद्याविन्दुसिंह की सक्रिय अभिरुचि और सहायता, अपने सहयोगी बन्धुओं के निष्ठापूर्ण परिश्रम तथा अपने सहकारियों के अनवरत उद्योग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। एक अद्‌भुत विडम्बना है कि मैंने जब जीवन के कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया तो स्व० राहुल जी की प्रेरणा से हिन्दी के पारिभाषिक कोश कार्य में लगा था और अब जब मैं जीविका से अवकाश लेने के लगभग कगार पर खड़ा हूँ फिर कोश-कार्य में फँस गया, ऐसे कोश-कार्य में जिसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त व्यक्ति था। न तो मैं ब्रजभाषा भाषी हूँ और न कोशशास्त्र का पंडित और न हिन्दी साहित्य विशेष रूप से ब्रजभाषा साहित्य का मर्मज्ञ। जैसे तैसे कुश-काश का अवलम्बन करते हुए इस कोश के महानद का पहला खण्ड पार हुआ है। मैं इसका श्रेय उपरिलिखित गुरुजनों और सहयोगियों को देता हूँ और इसमें जो भी कमियाँ रह गई होंगी (और वे कमियाँ होंगी ही होंगी), उनके लिए अपने को उत्तरदायी मानते हुए क्षमा माँगता हूँ।

मैं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान और उसके प्रमुख अधिकारियों, उपाध्यक्ष आदरणीय श्री शिव मंगल सिंह 'सुमन' के प्रति, वर्तमान निदेशक श्री हरि माधव शरण तथा वित्त अधिकारी श्री रमेशचन्द्र सक्सैना, उपनिदेशक श्रीमती डॉ० विद्याविन्दु सिंह, सहायक निदेशक श्री चन्द्रवल्लभ शर्मा, प्रधान सम्पादिका, डॉ० मंजुलता तिवारी के प्रति तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की कोश समिति और उसके सदस्यों के प्रति प्रशासनिक सहयोग के लिए पुनः कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ। मैं आगरा विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० श्यामनारायण मेहरोत्रा, वर्तमान कुलपति डॉ० अगम प्रसाद माथुर के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस कार्य में सदैव प्रोत्साहन दिया और कार्यालयीय सहयोग दिया। क. मुं. हिन्दी विद्यापीठ के कार्यालय ने भी संचालन में मौन सहायता की है, इसके लिए मैं अपने कार्यालय के सहायकों का ऋणी हूँ। मैं श्री डॉ० मक्खन लाल पाराशर का आभारी हूँ, उन्होंने थोड़े ही दिन सही बहुमूल्य सहयोग दिया। स्वर्गीय पं० अमृतलाल चतुर्वेदी ने भी प्रारम्भ में कई अच्छे परामर्श दिए, मुझे दुःख है वे इस समय हमारे बीच में नहीं है मैं कृतज्ञता पूर्वक उनका स्मरण करता हूँ। मेरे वर्तमान सहयोगी सर्वश्री डॉ० रमानाथ सहाय, डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने मेरा काफी भार सँभाला है, मैं धन्यवाद देकर उस भार को हलका नहीं करना चाहता हूँ। ब्रजक्षेत्र के कुछ और मनीषी विद्वानों से भी मुझे समय-समय पर प्रेरणा मिली उनके नाम हैं, आदरणीय पं बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री प्रभुदयाल मीत्तल और डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन, मैं इनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। कोश-रचना की प्रक्रिया में मुझे आदरणीय गुरुवर डॉ० बाबूराम सक्सैना, आदरणीय स्व० उदयनारायण तिवारी, बन्धुवर डॉ० बालगोविन्द मिश्र

और डॉ० अमर बहादुर सिंह से उपयोगी परामर्श मिला है तथा कोश की आकल्पना करने में सहायता मिली है, मैं इनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

सबसे अधिक परिश्रम मेरे सहकारियों ने किया, जिनमें सर्वश्री शिवदत्त चतुर्वेदी, श्री ब्रजेन्द्र कुमार त्रिपाठी, श्री कृष्णगोपाल कपूर इस समय कार्य संलग्न नहीं है, इनकी निष्ठापूर्ण सहायता के लिए कृतज्ञ हूँ। विशेष रूप से अपनी दो छात्रा शोध-सहायिकाओं चन्द्रप्रभा सारस्वत और बृजेश भारद्वाज को अमित आशीष देना चाहता हूँ जिन्होंने निरन्तर मुझसे डाँट-फटकार ही पायी है तब भी श्रद्धा-भाव से इन्होंने कार्य तत्परतापूर्वक किया है। इस कार्य में अतिरिक्त सहायता मुझे विद्यापीठ के जिन शोध छात्रों और सहायकों से मिली है उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ उनके नाम हैं—सुवच्चन पाण्डेय, वीना माथुर, ललित किशोर शुक्ल, सुनीता जोशी, हरिवंश सिंह सोलंकी। प्रारम्भिक प्रूफ देखने में श्री अनिरुद्ध सारस्वत ने सहायता की, मैं उनका आभारी हूँ। मैं प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस के प्रेमचन्द्र जैन को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी यह कार्य सुचारू रूप में सम्पन्न कर दिया है। स्व० तपोनिष्ठ पं० द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी को मैं विनम्र श्रद्धांजलि देकर और भैया साहब श्रीनारायण चतुर्वेदी को प्रणाम निवेदित करके अपने को धन्य मानता हूँ।

अंत में मैं उ० प्र० के मुख्यमन्त्री सम्मान्य पंडित नारायनदत्त तिवारी जी प्रति कृतज्ञता समर्पित करना चाहता हूँ कि उन्होंने इस साहित्यिक ब्रजभाषा के खण्ड एक का लोकार्पण करके ब्रजभाषा को सम्मान दिया है।

विद्यानिवास मिश्र

भूमिका

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश के इतिहास के बारे में आदरणीय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने बहुत कुछ सम्पादकीय में लिख दिया है और इसके प्रकाशन की प्रक्रिया के सन्दर्भ में भी हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष आदरणीय सुमनजी और हिन्दी संस्थान के निदेशक हरि माधव शरणजी ने अपने वक्तव्यों में बहुत कुछ बतला दिया है। इस भूमिका में हम मुख्य रूप से तीन बातों पर कुछ अधिक ब्यौरे में बात करना चाहते हैं। सबसे पहले कोश की प्रक्रिया का परिचय दिया जायेगा, कोश-विज्ञान के जिन सिद्धान्तों का उपयोग हुआ है, उनका संक्षिप्त परिचय दिया जायेगा। भूमिका के दूसरे खण्ड में साहित्यिक ब्रज भाषा के व्याकरण का एक संक्षिप्त ढाँचा प्रस्तुत किया जायेगा, जिसकी जानकारी इसलिए आवश्यक प्रतीत हुई कि कोश में विभक्ति-रूप नहीं दिये जाते, विभक्ति संवलित पद-रूपों की पहचान आधुनिक हिन्दी के अभ्यस्त व्यक्ति के लिए कुछ कठिन पड़ सकती है।

तीसरे खण्ड में साहित्यिक ब्रजभाषा के स्वरूप में विकास का एक संक्षिप्त परिचय दिया जायेगा जिससे साहित्यिक ब्रजभाषा के अर्थ संसार की एक तस्वीर कोश में प्रयोक्ता के मन में बनी रहे और वह यह समझ सके कि यद्यपि यह साहित्यिक ब्रजभाषा का कोश है, यह हिन्दी का ही अंग है इसके बिना न हिन्दी की कोई अवधारणा हो सकती है, न हिन्दी की समग्रता से अलग किसी क्षेत्रीय इकाई के रूप में साहित्यिक ब्रजभाषा की कल्पना की अवधारणा की जा सकती है।

इस भूमिका के परिशिष्ट के रूप में जिन ग्रन्थों से उदाहरण लिख गये हैं उनके प्रतीक चिह्नों की तालिका दे दी गई है।

कोश-रचना की प्रक्रिया

मुख्य प्रविष्टि :

सामग्री संकलन से प्राप्त शब्दों को पहले इस प्रकार रखा गया कि मुख्य शब्द के रूप-रचना से उत्पन्न विभिन्न विभक्ति-रूप, तथा शब्द-रचना के कारण उत्पन्न विविध प्रत्यय-जनित तथा सामासिक शब्द मुख्य शब्द के साथ आ जाएँ। तदनन्तर मुख्य प्रविष्टियों का निर्धारण किया गया। संज्ञा-शब्दों को मूल/ऋजु रूप में मुख्य प्रविष्टि माना गया है। क्रिया-शब्दों में मूल धातु को, हाइफन बाद में लगा कर, मुख्य प्रविष्टि माना गया है, (जैसे, "उफन—") शब्द विवरण के अन्त में उपलब्ध वर्तमान कालिक कृदन्त (संकेत व०कृ०) तथा भूत कालिक कृदन्त (संकेत भू० कृ०) रूप दे दिये गये हैं (जैसे, "उफनत व० कृ०। उफन्यौ भू० कृ०")। विशेषणों में पुंलिग-एकवचन को मुख्य प्रविष्टि का आधार माना गया है किन्तु विवरण में शब्द प्रकार के द्योतन के अनन्तर स्त्रीलिंग रूप [स्त्री०.......] दे दिया गया है, जैसे, "[स्त्री० उदंगली]" (ऐसा संकेत संज्ञा शब्दों के साथ भी दिया गया है, जैसे "[स्त्री० उपाध्यायी—उपाध्यायानी)। सर्वनाम, संख्यावाची शब्द, क्रियाविशेषण तथा अन्य अव्यय, जो स्वतन्त्र शब्द के रूप में भाषा में आते हैं, स्वतन्त्र मुख्य-प्रविष्टि के रूप में दिये गये हैं। मुहावरों को उनके प्रमुख निर्धारक शब्द के अन्तर्गत रखा गया है।

मुख्य प्रविष्टि का यदि कोई ध्वन्यात्मक परिवर्त ऐसा है जो अकारादिक्रम में नहीं आसपास आ रहा है तो उसे नहीं मुख्य प्रविष्टि के ठीक बाद (चिह्न) के पश्चात् दे दिया गया है, जैसे "आकाश— आकास"। किन्तु यदि ध्वन्यात्मक परिवर्त ऐसा है जो अकारादिक्रम में पर्याप्त दूर जा पड़ता है, तो उसे पृथक् मुख्य प्रविष्टि के रूप में रखा गया है, किन्तु पूर्ण अर्थ न देकर देखिए (संकेत दे०) अमुक शब्द देकर दिया गया है, जैसे "इतिरा—अक० दे० इतरा—"।

मुख्य प्रविष्टि के शब्द-रचना-जनित विस्तार रूप (प्रत्यय-जनित अथवा समास-जनित शब्द) उसी मुख्य प्रविष्टि के अन्तर्गत उप-प्रविष्टि के रूप में दिये गये हैं। ऐसी स्थिति में द्वितीय अंश (प्रत्यय अथवा समास का उत्तर पद) को –(डैश) के बाद अगली पंक्ति में हाशिया बढ़ा कर दिया है (उदाहरण के लिए शब्द कोश का कोई भी पृष्ठ देख लें)। किन्तु यदि ऐसा शब्द बहु-प्रचलन के कारण मुख्य शब्द से अर्थ में किंचित् विचलित अथवा विशेषीकृत हो गया है तो उसे स्वतन्त्र मुख्य प्रविष्टि के रूप में दिया गया है, जैसे "आर्य" से पृथक् "आर्यावर्त्त"।

भाषा स्रोत और व्युत्पत्ति :

कलेवर-विस्तार के भय से यह निश्चित किया गया कि संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों तथा हिन्दी पूर्व आर्यभाषाओं में प्रचलित देशज शब्दों के सम्बन्ध में कोई भाषा-स्रोत न दिया जाये तो और नव्युतपत्ति अथवा मूल शब्द (< 'मूल शब्द'। दिया जाए। किन्तु साहित्यिक ब्रज में प्रांयः प्रचलित फारसी-अरवी-तुर्की तद्भव शब्दों के संमुख भाषा स्रोत का उल्लेख (   ) कोष्ठक में दिया गया है, जैसे "इज्जत (अ०)"। इसके अतिरिक्त यद्यपि व्युत्पत्ति तो नहीं दी गई है, तथापि यौगिक शब्दों में दोनों समास-पदों को, अथवा प्रत्यय जनित शब्दों में मूल और प्रत्यय को (यदि ये उप-प्रविष्टि न होकर मुख्य प्रविष्टि हैं) '+' के माध्यम से विग्रह दिखाया गया है, जैसे

"अजातरिपु (अजात+रिपु)" "अभियोग [अभि+योग]"।

व्याकरणिक सूचनाएँ :

व्याकरणिक संवर्गों (शब्द-प्रकारों) तथा कोटियों की सूचना प्रत्येक शब्द के साथ दी गई है। संज्ञा-शब्दों में चूँकि पुंलिग अथवा स्त्रीलिंग का निर्देश देना ही था, अतएव सं० पुं० या सं० स्त्री० के स्थान पर, विस्तार-परिहार के कारण, केवल "पुं०" "स्त्री०" का निर्देश किया गया है। अतएव जहाँ केवल "पुं०" या "स्त्री०" का निर्देश है वहाँ यह मान लिया जाये कि शब्द संज्ञा है। इसी प्रकार क्रिया शब्दों के समुख अकर्मक अथवा सकर्मक का द्योतन "अक०" अथवा "सक०" से कर दिया गया है और क्रिया सूचक "क्रिया" या "क्रि" का प्रयोग नहीं किया गया है। अन्य शब्द प्रकारों के संकेत इस प्रकार हैं— "वि०" विशेषण के लिए "सं" संख्यावादी के लिए, "क्रि० वि०" क्रिया विशेषण के लिए और "अव्य०" अव्यय के लिए।

अर्थ निरूपण :

इस शब्द कोश का मुख्य उद्देश्य प्रयोक्ता को बोधन में अधिक से अधिक सहायता पहुँचाना है अतएव अर्थ प्रायः व्याख्यात्मक किये गये हैं। साहित्यिक ब्रज में रचित ग्रन्थ नाना प्रकार के वर्ण्य विषय की दृष्टि से थे—साहित्यिक, साहित्यशास्त्रीय, धार्मिक-पौराणिक, विशिष्ट साम्प्रदायिक, दार्शनिक-शास्त्रीय, राजकीय जीवन विषयक, सामान्य जन-जीवन विषयक आदि। स्वभावतः इन में ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है

जो आधुनिक पाठक के लिए अपरिचित या अपर्याप्त परिचित हैं। अतएव एवं अर्थ निरूपण में व्याख्यात्मक प्रणाली के अतिरिक्त कहीं-कहीं विश्वकोशीय प्रणाली अपनाई गई है। व्यक्ति-नाम और स्थान-नाम की प्रविष्टियाँ भी इसी को ध्यान में रख कर दी गई हैं।

अर्थ-निरूपण में उद्धरणों का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है, साहित्यिक कोश में ये और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि अर्थ की विविध अर्थच्छाया सन्दर्भ से ही प्रकट होती हैं, अतएव उद्धरण पर्याप्त मात्रा में दिये गये हैं। कलेवर विस्तार को बचाने के लिए वे महीन-टाइप में छापे गये हैं। उद्धरणों के पश्चात् पूर्ण सन्दर्भ दिया गया है — खण्ड अथवा स्कंध जहाँ ऐसा है : रचयिता/रचना नाम : पद संख्या और पृष्ठ संख्या।

अनेकार्थता सभी भाषाओं में होती है। संस्कृत जैसी समृद्ध और लम्बे इतिहास वाली भाषा में यह और भी व्यापकतया मिलती है। साहित्यिक व्रज ने संस्कृत की अनेकार्थकता के साथ नये अर्थ भी विस्तृत किये अतएव अनेकार्थता प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत शब्द-कोश में विभिन्न अर्थों को को १, २, ३, ४ आदि संख्या देकर पृथक् प्रदर्शित किया गया है।

भाषा-संमिश्रण तथा विभिन्न ध्वनि-प्रक्रिया-जनित शब्द युग्मों के कारण 'समरूपता' उत्पन्न होती है। साहित्यिक व्रज में भी बाह्य और आन्तरिक समरूपता पर्याप्त मिलती है। इन समरूपी शब्दों को पृथक्-पृथक् मुख्य प्रविष्टि के रूप में, शब्दों के आगे उपरिस्थ १, २, लगाकर कोश में दिया गया है, जैसे "असूल^{१}, असूल^{२}" (दोनों बाह्य समरूपताएँ), "उत्तर^{१}, उत्तर^{२}" (दोनों आन्तरिक समरूपताएँ) "असमान^{१}, असमान^{२}" (एक आन्तरिक और एक बाह्य)।

अकारादिक्रम :

अकारादिक्रम वही अपनाया गया है जो नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी शब्द सागर में स्वीकार किया गया है। अर्थात्, (i) अनुस्वार (पूर्ण उपरिबिन्दु "ं") सहित स्वर को अनुस्वार-रहित स्वर के पूर्व रखा गया है, (ii) पंचमाक्षरयुक्त व्यंजन संयोग की स्थिति में, लेखन-पद्धति द्वारा रूढ़ पूर्ण उपरिबिन्दु को, अनुस्वार मानकर अपने यथोचित स्थान पर रखा गया है, (iii) सानुनासिक स्वर (अर्ध चन्द्रबिन्दु) और अनुस्वार में क्रम के लिए अभेद रखा गया है अर्थात् सभी को अनुस्वार मानते हुए यथोचित स्थान पर रखा गया है, जैसे, अण्ड, अण्डज, अँड़दार I; (iv) 'ऋ' को संस्कृत स्वर क्रम के अनुसार अ-आ-इ-ई-उ-ऊ के बाद तथा ए-ऐ-ओ-औ के पहले रखा गया है; (v) क्ष, त्र, ज्ञ, को लोक प्रचलित वर्णमाला क्रम के अनुसार अन्त में न रखकर, संयुक्त व्यंजन, क्रमशः क्‌ष, त्‌र, ज्‌ञ् मानकर यथोचित स्थान पर रखा गया है, (vi) ड़, ढ़ को ड तथा ढ् के बाद रखा गया है यदि कोई ऐसा युग्म हो, अन्यथा अभेद मानकर यथाक्रम रखा गया है, (vii) विदेशी शब्द तद्भव रूप में ही आये हैं, यदि कहीं ज फ के नीचे बिन्दु मान कर संपादित कर दिया गया है. तो वहाँ बिन्दु रहित देवनागरी वर्ण के समान यथोचित क्रम में रखा गया है।

ध्वन्यात्मक परिवर्त :

साहित्यिक व्रज में एक ही शब्द एकाधिक ध्वन्यात्मक परिवर्त के साथ प्रायः मिलता है। इस का भाषाई कारण तो यह है कि भाषाई विकास-ध्वनि-प्रक्रिया से संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश शब्द भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न नियमों से होकर गुजरे हैं (जैसे, अक्षत = आखत-अच्छत-अच्छित-अछित-; अमृत-अमिरत-अम्रित-अंम्रित; आश्चर्य = अचरज-अचरिज-आचरज-अचिरज-अचर्ज आदि)। इसके अतिरिक्त स्वयं भाषा

में (यहाँ तक कि मानक हिन्दी मैं) ध्वनि-द्वैतता उपस्थित है, जैसे ब—व, ड़—र, श—स, ल—र आदि) लेखन-पद्धति में रचयिताओं (और संपादकों) द्वारा विभिन्न पद्धतियाँ अपनाई गई है, जैसे—औ—आँ—ओ—ओं। ष—ख का द्वैत भी लेखन पद्धति ज—य है जैसे-अदोस—अदोख, अवरेष—अवरेख आदि। इसके अतिरिक्त छन्दोबद्ध होने के कारण छन्दानुरोध से स्वर का ह्रस्व-दीर्घ बडी मात्रा में मिलता है; जैसे—आसमान—असमान, आधीर—अधीर, अंगूठा—अंगुठा, अतिथि—अतीथ, अगनि—अगनी—अगिन—अगिनि—अगिनी आदि। शब्द-कोश में यह प्रयास किया गया है कि विविध रूप मुख्य प्रविष्टि के बाद—द्वार, या स्वतन्त्र मुख्य प्रविष्टि के रूप में दे दिये जाए, फिर भी सभी को समेटना सम्भव तथा समुचित भी न था। पाठक यदि जिस शब्द को ढूंढ़ रहा है वहाँ न मिले तो ध्वनिद्वैतता, लिपिद्वैतता, ह्रस्व-दीर्घ व्यत्यय का पूर्वानुमान कर उन अनुमानित शब्द की मुख्य प्रविष्टि में ढूँढ़ना चाहिए।

व्याकरणिक ढाँचा

प्रस्तुत व्याकरणिक विवेचन शब्दकोशपरक होने के कारण सामान्य व्याकरण से भिन्न है। सामान्य व्याकरण में प्रयोक्ता की अभिव्यक्ति शुद्धता को ध्यान में रखते हुए आदर्शमुखी विवेचन होता है, जबकि शब्दकोशीय व्याकरण में बोधनग्राहिता को दृष्टि में रखते हुए रूपरचना एवं वाक्यीय रचना के मूल साँचो का वर्णन होता है। इस के अतिरिक्त प्रस्तुत विवेचन तुलना-परक भी है। हम यह मान कर चलते हैं कि शब्दकोश देखने वाले को मानक हिन्दी आती है; अतएव, मानक हिन्दी को तुलना का आधार मान कर विवेचन-क्षेत्र निर्णीत किया गया है। जहाँ समानता प्रत्यक्ष है, वहाँ सामान्य कथन मात्र है, जहाँ मानक हिंदी से ऐसी भिन्नता है कि अटकल से भी व्याकरणिक अर्थ नहीं निकल सकता है वहाँ विस्तार से विवेचन किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत बोधनपरक एवं तुलनामूलक व्याकरणिक विवेचन में चार प्रमुख पक्षों का वर्णन किया गया है—संज्ञा-विशेषण रूपरचना, सर्वनाम रूपरचना, क्रिया रूपरचना और अव्यय विधान। वर्णन कोश की भूमिका एक अंग मात्र होने के कारण अतिसंक्षिप्त है और उदाहरण अत्यन्त सीमित मात्रा में दिये गये हैं।

संज्ञा-विशेषण रूप-रचना

साहित्यिक ब्रज में मानक हिन्दी की भाँति संज्ञा के दो रूप होते हैं—ऋजु और तिर्यक्। ऋजु के साथ कोई परसर्ग नहीं लगता है, तिर्यक् के साथ विविध परसर्ग लगते हैं। किन्तु ब्रज में एक वैशिष्ट्य हैं जिसके कारण केवल मानक हिन्दी जानने वालों को बोधन में कठिनाई होती है—वह है तिर्यक् में संश्लिष्ट विभक्ति-प्रत्ययों की उपस्थिति। संश्लिष्ट संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के परंपरागत रूप हैं जो मानक हिन्दी में कुछ सर्वनाम रूपों को छोड़कर लुप्त हो चुके हैं (सर्वनाम रूप 'इसको 'इसे' 'इनको' 'इन्हें' में 'इसे' 'इन्हें' में '-ए' 'एँ' संश्लिष्ट-प्रत्यय हैं)। संश्लिष्ट रूप के तिर्यक् होते हुए भी परसर्ग की आवश्यकता नहीं होती है। अतएव संज्ञा की रूप-रचना इस प्रकार होती है—

ऋजु रूप एकवचन
ऋजु रूप बहुवचन
तिर्यक् रूप विश्लिष्ट एक वचन
तिर्यक् रूप विश्लिष्ट बहु वचन
तिर्यक रूप संश्लिष्ट

ऋजु एकवचन—साहित्यिक ब्रज में संज्ञाएँ सभी स्वरांत होती हैं। मानक हिन्दी की भाँति कोई विभक्ति प्रत्यक्ष नहीं लगती है। किन्तु मानक हिन्दी की कुछ आकरांत संज्ञाएँ उकरान्त रूप में मिलती है, जैसे, 'पापु' (न कि, 'पाप')। इसी प्रकार मानक हिन्दी की कुछ अकारान्त पुलिंग संज्ञाएँ ब्रज में औकारान्त अथवा ओकारान्त दिखाई पड़ते हैं, जैसे, 'कोनौ' (न कि, 'कोना')। यदि इस -उ, -औ, -ओ को प्रतिपादिक का ही अंश मान लिया जाए तो मानक हिन्दी की भाँति ऋजु रूप एक वचन अविकारी बना रहता है, अन्यथा ये अपवाद नियम हैं।

ऋजु बहुवचन—यहाँ मानक हिन्दी की भाँति चार प्रकार से बहुवचन बनते हैं :—

प्रकार	प्रत्यय	उदाहरण
पुँलिग -औ, -ओ संज्ञाएँ	-ए	गहने (<गहनौ)
पुँलिग अन्य	कोई प्रत्यय नही	घन (<घन)
स्त्रीलिंग -आ-ई	-आँ, -इयाँ	चिड़ियाँ (<चिड़िया)
स्त्रीलिंग अन्य	-एँ	आँखें (<आँख)

तिर्यक् विश्लिष्ट एकवचन—पुंलिग -औ, -ओ अंत वाली संज्ञाओं को छोड़कर अन्यत्र कोई प्रत्यय नहीं लगता है। इनमें '-ए' लगता है, तब परसर्ग आता है (जैसे, जने <जनो)।

तिर्यक् विश्लिष्ट बहुवचन—साधारणतया इनमें '-न' (कभी कभी '-नि' '-नु') प्रत्यय लगाया जाता है। पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर कभी दीर्घ और पूर्ववर्ती दीर्घस्वर कभी ह्रस्व हो जाता है। -ई या -इ अन्त वाले शब्दों में प्रत्यय लगाने के पूर्व प्रायः -य जोड़ा जाता है। उदाहरण हैं—तुरकान, छबीलिन, सखियान, आँखनि, आँखनु आदि।

तिर्यक् संश्लिष्ट—ये परंपरागत प्रत्यय हैं जो प्राकृत-अपभ्रंश के ध्वनि-प्रक्रियात्मक नियमों से विकृत होकर हिन्दी में आए हैं। कर्म-संप्रदान-अधिकरण में प्रायः '-हिं' '-हि' '-एँ' '-ऐ' '-ए' मिलते है, करण-अपादान में प्रायः '-एँ' '-ए' मिलते हैं, '-इ' केवल अधिकरण में मिलता है। उदाहरण हैं—पूतहिं, मनहि, सपनैं, घरै, द्वारे, जगति। जहाँ एक से अधिक कारकों में प्रत्यय आता है, वहाँ अर्थ का अभिनान वस्तुतः वाक्यीय संदर्भ से होता है।

तिर्यक् विश्लिष्ट में लगने वाले परसर्ग—मानक हिन्दी के परसर्गों से पर्याप्त मिलते हुए प्रमुख परसर्ग निम्नलिखित हैं :—

कर्म-संप्रदान	को, कों, कौ, कौं, कूँ, कुँ
करण (कर्ई)	ने, नै, नें
करण-अपादान	सों, सौं, तें, ते
अधिकरण	में, मैं, पै, पर
संबंध	को, कौं, कों, के, की

इनके अतिरिक्त अधिकरण में 'में' के अतिरिक्त 'माहिं, माहि, माँही, मधि, मध्य' आदि भी मिलते हैं।

इन परसर्गों के अतिरिक्त परसर्गवत् अनेक शब्द मिलते हैं, जैसे, प्रति, लगि, लौ, हेत, संग सहित, सम आदि।

परसर्ग-हीन, प्रत्यय-हीन रूप—मानक हिन्दी में केवल कर्त्ता या कर्म के एक वचन में ऐसे संज्ञारूप मिलते हैं जिनमें न तो कारकीय द्योतक परसर्ग मिलते हैं और न कारकीय द्योतक प्रत्यय। किन्तु साहित्यिक ब्रज में ऐसे परसर्गरहित निर्विभक्तिक रूप अन्य कारकों में भी मिलते हैं। इन सब में वाक्यीय संदर्भ ही कारकीय बोध कराता है । जैसे 'निकसत मुख स्वासे' 'बैठे विशुद्ध गृह' 'आँखिन अड़त' 'हाथनि बनायो है' आदि।

विशेषण रूप-रचना—विशेषणों की रूप-रचना मानक हिन्दी की भाँति है। '-औ' 'ओ' अन्य विशेषण में '-ए' प्रत्यय लगते हैं, अन्यत्र कोई विकार नहीं होता है।

सर्वनाम रूप-रचना

मानक हिन्दी की भाँति सभी सर्वनाम प्रकार—जैसे, पुरुषवाचक (उत्तम और मध्यम पुरुष), निश्चय (दूरवर्ती और निकटवर्ती) वाचक, संबंधवाचक एवं नित्यसंबंधी, प्रश्न (प्राणि और अप्राणि) वाचक, अनिश्चय (प्राणि और अप्राणि) वाचक, निज/आदर वाचक—ब्रज में मिलते हैं।

सर्वनाम की रूप-रचना में भी संज्ञा के समान दो पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं—विश्लिष्ट पद्धति और संश्लिष्ट पद्धति। ये ऋजु, तिर्यक, और संबंधकारकीय रूपों के साथ मिलती है। इस प्रकार विविध ये रूप निम्नलिखित सारणी में दिये जा रहे हैं :—

सर्वनाम प्रकार	ऋजु	तिर्यक् विश्लिष्ट	तिर्यक् संश्लिष्ट	संबंध कारकीय
उत्तम पु० ए० व०	हौं, मैं, हों	मो०	मो-	मेरो, मोरो, मो, मम
उत्तम पु० ब० व०	हम	हम०	हम-	हमारो (हमरो)
म० पु० ए० व०	तू, तूँ, तैं, ते	तो०	तो-	तेरो, तो, तुव, तव
म० पु० ब० व०	तुम, (तुम्ह)	तुम०	तुम्-	तुम्हारो, तुम्हरो तिहारो
निश्चय निकटवर्ती (ए० व०)	यह	या०	या-, य-	———
(ब० व०)	ये, ए	इन०	इन्-, इन्ह्-	———
दूरवर्ती ए० व०	वह, वो,	वा०	वा-	———
	सो, सु	ता०	ता-, ति-, ते-	———
दूरवर्ती ब० व०	वे, ते	तिन०	तिन्-, तिन्ह-	———
संबंधी ए० व०	जो, जु	जा०	जा-, जि-, जे-	———
संबंधी ब० व०	जे	जिन०	जिन्-, जिन्ह-	———
प्रश्न प्राणि,	को, कौन	का०	का-, कि-, के-	———
प्रश्न अप्राणि	का, कहा	काहे	———	———
अनिश्चय प्राणि	कोऊ, कोई	काहू	———	———
अनिश्चय अप्राणि	कछु	कछु	———	———
निज/आदर	आप, आपु	अपनो	———	आपनो

संश्लिष्ट रूपों के उदाहरण

मोहि, मोहिं, मोहै, तोहि, तोहिं, याहि,यहि, ताहि, तिहि, तिहिं, तेहि, वाहि, जाहि, जिहि, जेहिं, जिहिं, काहि, किहि, केहिं, हमैं, हमें, तुम्हें, इन्हें, उन्हें, तिन्हें, तिनै, जिन्हैं, तिनि, कौनें, कोए आदि। संश्लिष्ट रूपों में कभी-कभी अवधी के रूप भी आ गए हैं जैसे, उहि, इहि, कवन, जौन आदि। आदरवाचक में 'रावरे' का भी प्रयोग पर्याप्त मिलता हैं। इनके अतिरिक्त 'और' 'सब' 'एक' आदि शब्द सर्वनाम की रूपावली में मिलते हैं। इन सभी सर्वनामों के आगे बलातमक '-ही' '-हू' का संयोजन प्रायः मिलता है।

क्रिया रूप-रचना

काल-रचना की दृष्टि से क्रियापदों को, मानक हिन्दी की भाँति, तिङन्ती और कृदन्ती कालों में विभक्त किया जा सकता है। तिङन्ती लिंगनिरपेक्ष और कृदन्ती लिंग-सापेक्ष होते हैं। प्रथम के अन्तर्गत (i) वर्तमान निश्चयार्थ, (ii) भविष्यत्काल, (iii) वर्तमान आज्ञार्थ आते हैं। द्वितीय के अन्तर्गत (iv) वर्तमान कालिक कृदन्त, (v) भूत संभावनार्थ और (vi) भूत निश्चयार्थ आते हैं। इन की रूपावलियों में प्रयुक्त प्रत्यय नीचे क्रमानुसार दिये जा रहे हैं।

(i) **वर्तमान निश्चयार्थ/संभावनार्थ**—मानक हिन्दी के समान ये रूप वर्तमानकाल, ऐतिहासिक वर्तमान, निकट भविष्यत्, संभावना द्योतक शब्दों के साथ वर्तमान आदि में प्रयुक्त होते हैं।

	एक वचन	बहुवचन
उ० पु०	-औं, (-ओं), {-ऊँ}	-ऐं, -ए {-हि}
म० पु०	-ऐ, {-हु}	-औ, (-ओ)
अ० पु०	-ऐ, {-इ}, (-हि), { य}	-ऐं, (एँ), {हि}

इन रूपावलियों में ( ) कोष्ठक के भीतर दिये प्रत्यय मिलते तो हैं, किन्तु कम प्रचलन में। { } कोष्ठक के भीतर प्रत्यय आकारांत धातुओं के साथ लगते हैं, जैसे, पाऊँ, खाय, जहि, जाहिं, चहहु आदि। अन्य उदाहरण हैं—करौ, कहूँ, मानैं, कहै, दरसावै, सोहैं, करै, जाइ, छाइ, विराजई आदि।

(ii) **भविष्यत्काल**—भविष्यत्काल की दो प्रकार की रूपावलियाँ हैं। प्रथम में वर्तमान निश्चयार्थ के पश्चात् लिंगसापेक्ष 'ग-' जात प्रत्यय (गौ- गे, गी—क्रमशः पुं० ए० व०, पुं० ब० व०, स्त्री० ए० व०, स्त्री० ब० व०) लगकर रूप बनते हैं, जैसे, जुड़ैगो, जुड़ैंगे आदि। दूसरे में संश्लिष्ट 'ह' जात प्रत्यय लगते हैं, और ये तिङन्ती होने के कारण लिंग-निरपेक्ष होते हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	-इहौं	-इहैं
म० पु०	-इहै	-इहौ
अ० पु०	-इहै	-इहैं

भविष्यत्काल के दो रूप भविष्यद्वाची हैं।

(iii) **वर्तमान आज्ञार्थ**—ये रूप केवल मध्यम पुरुष में होते हैं। प्रत्यय इस प्रकार हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
व्यंजनांत :	-φ(शून्य), -इ, -इयो	-अहु, औ, -ओ
स्वरांत :	-हिं	-हु, -उ
आदरार्थ :	—	-इए, -हु, -औ

भविष्यत् आज्ञार्थ में क्रियार्थक संज्ञा -इबो (कहिबो) का प्रयोग होता है। उदाहरण हैं—दे, कर, कह, जानि, करि, कहियो, कहहु, सौ, देहि, जाहिं, खाउ, सुनिए, दीजिए, दीजै कीजै आदि ।

(iv) **वर्तमानकालिक कृदन्त**—वर्तमानकालिक कृदन्त में '-अत' प्रत्यय दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है, किन्तु इसके अतिरिक्त -अतु, -तु पुंलिंग में और -अति, -ति स्त्रीलिंग में कभी-कभी मिलते हैं, जैसे, फहराति, खेलति, कहियतु आदि ।

(v) **भूत संभावनार्थ**—इसके रूप इस प्रकार हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
पुं०	-अतो, -अतौ	-अते
स्त्री०	-अती	-अतीं

उदाहरण है—घटतो, चाहतें, खाती, निहारतीं आदि ।

(vi) **भूत निश्चयार्थ**—भूत निश्चयार्थ के रूप इस प्रकार हैं ।

	एकवचन	बहुवचन
पुं	-यो, -ओ, (-औं), (-यौ)	-ए, -एँ, -ये, यँ
स्त्री०	-ई	-ईं

करना, लेना, देना में धातुरूप का अवधी-प्रभावित आधार कीन्ह्, लीन्ह्, दीन्ह्, भी मिलते हैं, जैसे, लीन्हौ, लीन्हीं, आदि । अन्य सामान्य उदाहरण हैं—रचो, लाग्यो, उठे, बुलाई, मिली, उड़ीं आदि ।

सहायक क्रिया 'होना'

मानक हिन्दी की भाँति सहायक क्रिया 'होना' की विशिष्ट रूपावलियाँ मिलती हैं । ये निम्न-लिखित हैं—

वर्तमान निश्चयार्थ :

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हौ, (हो) (हूँ)	हैं
म० पु०	है	हौ
अ० पु०	है, (अहै), (आहि)	हैं

वर्तमान संभावनार्थ :—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हौं, होउँ, होहुँ	होहिं
म० पु०	होय	होहु
अ० पु०	होय, होई, होइ	होहिं

भविष्यत् काल :—

उपरिलिखित में '-गा' '-गे' 'गी' '-गी' लगाकर भविष्य के रूप बनते हैं । इसके अतिरिक्त संश्लिष्ट रूप मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

उ० पु०	ह्वैहौ	ह्वैहैं
म० पु०	ह्वैहै	ह्वैहौ
अ० पु०	ह्वैहै, होइहै	ह्वैहैं

वर्तमान आज्ञार्थ :—

इस के प्रचलित एकवचन और बहुवचन मध्यमपुरुष रूप क्रमशः 'हो' और 'होहु' हैं।

भूतसंभावनार्थ :—

	एकवचन	बहुवचन
पुं०	होतो, होतौ	होते
स्त्री०	होती	होतीं

भूत निश्चयार्थ :—

इस में दो प्रकार की रूपावलियाँ मिलती हैं।

ह-जात :—

	एकवचन	बहुवचन
पुं०	हो, हुतो, (हौ), हुतौ	हे, हुते
स्त्री०	ही, हुती	हीं, हुतीं

भ-जात :—

पुं०	भयो, भयौ, (भौ)	भये
स्त्री०	भई	भई

क्रियार्थक संज्ञा—साहित्यिक ब्रज में दो प्रकार के क्रियार्थक संज्ञा-रूप मिलते हैं—'न-'जात, और 'ब-' जात।

ऋजु	-अनो, -अनौ	-इबो, (-इबौ)
तिर्यक्	-अन्	-इबे

दीर्घ स्वरांत के बाद प्रत्यय के स्वर का लोप हो जाता है। आकारांत के कुछ उदाहरण हैं—खैवे, जैबो, खायबे आदि।

पूर्वकालिक कृदन्त—व्यंजनांत धातुओं में '-इ' लगाकर पूर्वकालिक रूप बनाये जाते हैं, जैसे पेखि, निहारि, लखि आदि। आकारांत तथा ओकारांत धातुओं के पश्चात् '-य' '-इ' प्रत्यय लगते हैं, जैसे, धाइ, ललचाय, खाय। अकारांत तथा एकारांत धातुओं में धातु के स्वर का लोप कर व्यंजनांत बनाने के पश्चात् '-ऐ' लगता है, जैसे, लै, छ्वै आदि। सहायक क्रिया 'होना' का रूप 'ह्वै' मिलता है।

साहित्यिक ब्रज में उपयुक्त रूपों में 'के' 'कै' 'कें' 'कैं' रूप पूर्वकालिक कृदन्त के बाद जोड़े जाते हैं, जैसे, आइ कै, झटकि कर आदि।

कर्म वाच्य—कर्म वाच्य बनाने की दो विधियाँ हैं। एक में धातु में ही '-इय' लगाकर कर्म-वाच्यी आधार बना लेते हैं, तब कालद्योतक प्रत्यय लगते हैं, आनियत, सहिये, कहियत आदि। दूसरे में मानक हिन्दी की भाँति संयुक्त क्रिया 'जाना' का प्रयोग होता है।

संयुक्त क्रिया—मानक हिन्दी की भाँति संयुक्त क्रिया का प्रयोग ब्रज में होता है। मानक हिन्दी में प्रयुक्त सभी संयुक्त क्रियाएँ ऋजु और तिर्यक् रूपों के साथ लगती हैं। समानता बहुत बड़ी मात्रा में है, अतएव विवरण नहीं दिया जा रहा है।

अव्यय

साहित्यिक ब्रज में क्रियाविशेषण, समुच्चय-बोधक, बलात्मक निपात, नकारात्मक आदि मानक हिन्दी से बहुत अधिक मिलते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्ण शब्द होने के कारण ये शब्दकोश में अपने-अपने स्थान पर दिये गये हैं। फिर भी संक्षेप में बहु-प्रचलित शब्दों को दिया जा रहा है।

कालवाचक क्रियाविशेषण—अब, आगे, आगै, आजु; फिर, फेर; पीछे, पाछें; तब, तौ, तउ। छिन, छिनु, छिनकु, नित, पुनि, सदा आदि।

स्थानवाचक क्रियाविशेषण—अनत, बाहिर, ढिग, पाछै, तहँ, इयाँ, इत, जित, तित, सामुहे (संमुख), आदि।

रीति-वाचक और अन्य क्रियाविशेषण—ऐसें, जैसें, तैसे, जिमि, ज्यों, किमि, मनों, मानौं, मनु, बिन; क्यों, क्यौं, कतक; केतो, कछुक, नैंक आदि।

समुच्चय-बोधक—औ, अरु, फेरि, पुनि, कै, की, कै....कै; पै; तौ, तो पै, जो पै; कि, जो आदि।

बलात्मक—संज्ञा, सर्वनाम शब्दों के बाद 'हू' 'हु' 'उ' जोड़कर समावेशी बलात्मक तथा 'ही' 'हि' 'ई' 'ई' 'इ' जोड़कर वहिर्वेशी बलात्मक रूप वनाये जाते हैं।

नकारात्मक—न, नहीं, नाहिं (अवधी रूप जनि) आदि।

संख्या—पूर्ण वाचक, क्रमवाचक आदि शब्दकोश में पूर्ण शब्द के रूप में यथास्थान दिये गये हैं।

ब्रजभाषा की साहित्य-यात्रा

बोलचाल की भाषा और साहित्यिक ब्रजभाषा में अन्तर करने की आवश्यकता दो कारणों से पड़ती है, बोलचाल की ब्रजभाषा ब्रज के भौगोलिक क्षेत्र के बाहर उपयोग में नहीं लायी जाती जबकि साहित्यिक ब्रजभाषा का उपयोग ब्रजक्षेत्र के बाहर के कवियों ने भी उसी कुशलता के साथ किया है जिस कुशलता के साथ ब्रज क्षेत्र के कवियों ने। दूसरा अन्तर यह है कि बोलचाल की ब्रज और साहित्यिक ब्रज के बीच में एक मानक ब्रज है जिसमें ब्रजभाषा के उपबोलियों के सभी रूप स्वीकार्य नहीं हैं, दूसरे शब्दों में ब्रजक्षेत्र के विभिन्न रूप-विकल्पों में से कुछ ही विकल्प मानक रूप में स्वीकृत हैं और इस मानक रूप को ब्रज के किसी क्षेत्र-विशेष से पूर्ण रूप से जोड़ना सम्भव नहीं है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है, ब्रज प्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र की भाषा मानक ब्रज का आधार बनती है। जिस तरह मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली बोली (जिसे कौरवी नाम दिया गया है) मानक हिन्दी से भिन्न है, किन्तु उसका व्याकरणिक ढाँचा मानक हिन्दी का आधार है, उसी तरह मध्यवर्ती ब्रज का ढाँचा मानक ब्रज का आधार है। मानक ब्रज और साहित्यिक ब्रज के बीच भी उसी प्रकार का अन्तर है जैसा मानक हिन्दी और परिनिष्ठित हिन्दी में है। यह भेद केवल शब्द-चयन के स्तर पर ही रेखांकित नहीं होता है, यह भेद वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास और उक्ति-भंगिमा के स्तरों पर भी रेखांकित होता है। यह तो भाषाविज्ञान का माना हुआ सिद्धान्त है कि साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा में अन्तर प्रयोजनवश आता है और चूंकि साहित्यिक भाषा अपने सन्देश से कम महत्त्व नहीं रखती और उसमें बार-बार दुहराये जाने की, नया अर्थ उद्भावित

करने की क्षमता अपेक्षित होती है, उसमें मानक भाषा की यान्त्रिकता अपने आप टूट जाती है, उसमें एक-दिशीयता के स्थान पर बहुदिशीयता आ जाती है और शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास सब इस प्रयोजन को चरितार्थ करने के लिए कुछ न कुछ बदल जाते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि व्याकरण बदल जाता है या शब्द-कोश बदल जाता है, केवल व्याकरण और शब्द के कार्य बदल जाते हैं क्योंकि दोनों अतिरिक्त सोद्देश्यता से विद्युत्चालित कर दिये जाते हैं।

साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग ब्रज के अतिरिक्त बोली-क्षेत्रों में होने के कारण उन-उन क्षेत्रों की बोलियों के रंग भी जुड़े हैं। आज की साहित्यिक हिन्दी में भी इस प्रकार का प्रभाव दिखाई पड़ता है, बल्कि ठीक कहें तो इस प्रकार के प्रभाव के कारण ही साहित्यिक हिन्दी इतनी प्राणवान् ओर गतिशील है। वह एक किसी एक मुहावरे एक चाल में बँधी हुई भाषा नहीं है, उसमें क्षेत्रीय रंगतों को अपनाने की और उन्हें अपने रंग में ढालने की क्षमता है। ब्रजभाषा में भी भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, पंजाबी, पहाड़ी, राजस्थानी प्रभावों की झाँई पड़ी और उससे ब्रजभाषा में दीप्ति और अर्थवत्ता आयी। कुछ शब्दकोश भी बढ़ा, मुहावरे तो निश्चित रूप से नये-नये उसमें सन्निविष्ट हुए। बुन्देलखण्ड के कवियों में पद्माकर, ठाकुर बोधा और बख्शी हंसराज का प्रभाव काफी गहरा हैं। अवधी क्षेत्र के कवियों में भिखारीदास, द्विजदेव, बेनी प्रवीन, तुलसीदास जैसे कवियों का प्रभाव उल्लेखनीय है। भोजपुरी क्षेत्र के कवियों में इतने बड़े नाम तो नहीं लिये जा सकते लेकिन रंगपाल, छुटकन जैसे कवियों के द्वारा रचे गये फागों में भोजपुरी से भावित ब्रजभाषा की छटा एक अलग ही मिलती है। ग्वाल कवि, गुरु गोविन्दसिंह जैसे पंजाब क्षेत्र के कवियों ने पंजाबी प्रभाव दिया है। दादू, सुन्दरदास और रज्जब जैसे सन्तकवियों की भाषा में (जो प्रमुख रूप से ब्रजभाषा ही है) राजस्थानी का पुट गहरा है।

साहित्यिक ब्रजभाषा के सबसे प्राचीनतम उपयोग का प्रमाण महाराष्ट्र में मिलता है। महानुभाव सम्प्रदाय (तेरहवीं शताब्दी के अन्त) के सन्त कवियों ने एक प्रकार की ब्रजभाषा का उपयोग किया कालान्तर में साहित्यिक ब्रजभाषा का विस्तार पूरे भारत में हुआ और अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दी में दूर दक्षिण में तंजौर और केरल में ब्रजभाषा की कविता लिखी गई। सौराष्ट्र (कच्छ) में ब्रजभाषा काव्य की पाठशाला चलायी गयी, जो स्वाधीनता की प्राप्ति के कुछ दिनों बाद तक चलती रही। उधर पूरब में यद्यपि साहित्यिक ब्रज में तो नहीं साहित्यिक ब्रज से लगी हुई स्थानीय भाषाओं में पद रचे जाते रहे। बंगाल और असम में इन भाषा को 'ब्रजबुलि, नाम दिया गया। इस 'ब्रजबुलि' का प्रचार कीर्तन पदों में और दूर मणिपुर तक हुआ। साहित्यिक ब्रजभाषा की कविता ही गढ़वाल, कांगड़ा, गुलेर, बूंदी, मेवाड़, किशनगढ़, चित्रकारी कलमों का आधार बनी और कुछ क्षेत्रों में तो चित्रकारों ने कविताएँ लिखीं। गढ़वाल के मोलाराम का नाम उल्लेखनीय है। गुरुगोविन्दसिंह के दरबार में ब्रजभाषा के कवियों का एक बहुत बड़ा जमघट था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा का अक्षुण्ण देशव्यापी वर्चस्व रहा। इस प्रकार लगभग पाँच शताब्दी तक बहुत बड़े व्यापक क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करने वाली साहित्यिक भाषा रही। इस देश के साहित्य के इतिहास में ब्रजभाषा ने जो अवदान दिया है, उसे यदि हम काट दें तो देश की रसवत्ता और संस्कारिता का बहुत बड़ा हिस्सा हमसे अलग हो जायेगा। आधुनिक हिन्दी ने साहित्यिक भाषा के रूप में जो ब्रजभाषा का स्थान लिया है, वह स्थान भी ब्रजभाषा की व्यापकता के ही कारण सम्भव हुआ। एक प्रकार से साहित्यिक ब्रजभाषा आधुनिक हिन्दी की धरती है। शुरू-शुरू में खड़ी बोली की कविता इतिवृत्तात्मकता की ओर अग्रसर हुई तो ब्रजभाषा की धरती ने ही आधुनिक खड़ी-बोली की कविता को अधिक लचकीली बनाने की शक्ति दी, उसके उक्ति-विधान, सादृश्य-विधान और मुहावरों ने

प्रेरणा दी। बहुत सूक्ष्मता से प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की काव्यभाषा का अध्ययन करें तो हमें ब्रज-भाषा के प्रभाव से आई हुई लोच नजर आयेगी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ठीक ही कहा है कि गीतिकाव्य की रचना के लिए ब्रजभाषा का व्यवहार सर्वव्यापी था, जो निर्गुण पंथी सन्त कवि उपदेश की भाषा के लिए खड़ी बोली पर आधारित सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग करते थे, वे ही गेय पदों की रचना करते समय ब्रज भाषा का प्रयोग ही प्रायः करते हैं। इसी तरह प्रबन्धकाव्य लिखते समय भले ही अधिकतर लोगों ने पूर्वी क्षेत्र में अवधी पश्चिमी क्षेत्र में डिंगल का प्रयोग किया, किन्तु गेय पदों या मुक्तकों की रचना करते समय पूर्व या पश्चिम हरेक प्रदेश के कवि ब्रजभाषा का आश्रय लेते हैं। एक प्रकार से ब्रजभाषा ही मुक्तक काव्य भाषा के रूप में उत्तर भारत के बहुत बड़े हिस्से में एकमात्र मान्य भाषा थी। उसकी विषयवस्तु श्री-कृष्ण-प्रेम तक ही नहीं सीमित थी, उसमें सगुण-निर्गुण भक्ति की विभिन्न धाराओं की अभिव्यक्ति सहज रूप में हुई और इसी कारण ब्रजभाषा जनसाधारण के कंठ में बस गयी। एक अंग्रेजी अधिकारी मेजर टॉमस डुएरब्रूटन (१८१४) ने 'सलेक्शन फ्रॉम दि पॉपुलर पोयट्री ऑव दि हिंदुज' नामक पुस्तक में निरक्षर सिपाहियों से लोकप्रिय पदों का संग्रह किया और उनका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। इस संग्रह में संकलित मुक्तकों में अधिकतर दोहे, कवित्त और सवैये हैं, जो ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों द्वारा रचित हैं। सभी सरल हों ऐसी बात नहीं, केशवदास के भी छंद इस संकलन में है। इससे यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि मौखिक परम्परा से ब्रजभाषा के छंद दूर-दूर तक फैले और लोगों ने उन्हें रस और चाव से कंठस्थ किया, उनके अर्थ पर विचार किया और उन्हें अपने दैनन्दिन जीवन का एक अंग बनाया। इस माने में साहित्यिक ब्रजभाषा का भाग्य आज की साहित्यिक हिंदी की अपेक्षा अधिक स्पृहणीय है। इसके पहले कि हम साहित्यिक ब्रजभाषा की यात्रा का परिचय दें यह आवश्यक होगा कि साहित्यिक ब्रजभाषा के सन्दर्भ-संसार का संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करें।

रचना-बाहुल्य के आधार पर प्रायः यह मान लिया जाता है कि ब्रजभाषा काव्य का विषय रूप-वर्णन, शोभा-वर्णन, शृंगारी चेष्टा-वर्णन, शृंगारी हाव-भाव-वर्णन, प्रकृति के शृंगारोद्दीपक रूप का वर्णन विविध प्रकार की कामिनियों की विलासचर्या का वर्णन, ललित कला-विनोदों का वर्णन और नागर-नागरियों के पहिराव, सजाव, सिंगार का वर्णन तक ही सीमित है, इसमें साधारण मनुष्य के दुःख दर्द या उनके जीवन-संघर्ष का चित्र नहीं है, न कुछ एक अपवादों को छोड़कर जीवन में उत्साह-वृद्धि जगाने के लिए विशेष चाव है। इसमें जो अलौकिक, आध्यात्मिक भाव है भी वह भी या तो अलक्षित और सुकुमार भावों की परिधि के भीतर ही समाये हुए हैं या मनुष्य के दैन्य या उदास भाव के अतिरेक से ग्रस्त है। ब्रजभाषा काव्य का संसार इस प्रकार बड़ा ही संकुचित संसार है, पर जब हम ब्यौरे में जाते हैं और भक्ति-कालीन काव्य की जमीन का सर्वेक्षण करते हैं और उत्तर मध्यकाल की नीति-प्रधान रचनाओं में या आक्षेप प्रधान रचनाओं का पर्यवेक्षण करते हैं तो यह संसार बहुत विस्तृत दिखायी पड़ता है। इसमें जिन्हें दरबारी कवि कहकर छोटा मानते हैं, उनकी कविता में गाँव के बड़े अनूठे चित्र है और लोक-व्यवहार के तो तरह-तरह के आयाम मिलते हैं। ये आयाम शृंगारी ही नहीं है अद्भुत, हास्य, शांत रसों के सैकड़ों उदा हरण उस उत्तर मध्यकाल में भी मिलते हैं, जिसे शृंगार काल कहा जाता है। यही नहीं, पद्माकर जैसे कवि की रचना में सूक्ष्म रूप में अंग्रेजों के आने के खतरे की चिन्ता भी मिलती है। भूषण की बात छोड़ भी दे तो भी अनेक अनाम कवियों के भीतर धरती का लगाव जो जन-जन के आराध्य आलंबनों से जुड़े हुए हैं, बहुत सरस ढंग से अंकित मिलता है। देव का एक प्रसिद्ध छंद है जिसमें बारात के आकर विदा होने में और उसके बाद की उदासी का चित्र मिलता है।

काम पर्‌यौ दुलही अरु दुलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे ।
माया के बाजने बाजि गये परभात ही भात खवा उठि बूटे ।
आतिसबाजी गई छिन में छुटि देकि अजौं उठिके अँखि फूटे ।
'देव' दिखैयनु दाग बने रहे, बाग बने ते बरोठहिं लूटे ।

इसमें हँसी-खुशी वाली जिन्दगी के बाद आने वाले सूनेपन का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा गया है । तुलसीदास की कवितावली में तो भुखभरी, महामारी, अत्याचार-शोषण, इन सबके बड़े सशक्त और संक्षिप्त चित्र मिलते हैं । सूरसागर में कहीं-कहीं साद्दश्य-विधान के रूप में, कहीं सीधे रैयत के ऊपर पटवारी, अमीन, शिकदार, राजा के द्वारा एक के बाद एक पीढ़ी दर पीढ़ी किये जाने वाले अत्याचारों के चित्र हैं । संत कवियों की पदावली में भाँति भाँति के व्यवसायों के दैनन्दिन प्रयोग की शब्दावली मिलती है । रहीम, ग्वाल, देव की कविता में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के रीतिरिवाज और पहिरावों के चित्र मिलते हैं। किसानी और गोपालन से सम्बद्ध शब्द-समृद्धि के बारे में तो कुछ कहने की जरूरत ही नहीं है। सूर,बिहारी रसखान, रहीम, वृन्द, गिरिधर, बख्शी हंसराज का काव्य-संसार कृषिजीवी और गोपालन-जीवी वर्ग के दैनन्दिन जीवन के सूक्ष्म चित्रों से भरा हुआ है । इसमें तरह-तरह की फसलों उनके उगाने की प्रक्रियाओं भाँति भाँति की गायों की चेष्टाओं और गोदोहन से लेकर मक्खन बनाने की प्रक्रिया के चित्र ऐसे उरेहे गये हैं जैसे लगता है, एक ही लघुचित्र में इस प्रकार की जिन्दगी का समूचा सलोनापन बारीकी के साथ अंकित कर दिया गया हो । सूर ने निम्नलिखित पद में गायों के विविध रंगों का चित्र इस प्रकार खींचा है जिसमें रंगों की गहराई क्रमशः घनी होती जाती है और सफेद से काली तक की सभी वर्णछटाएँ आ गई हैं—

धौरी, घूमरि, राती, रौंछी, बोल बुलाइ चिन्हौरी ।
पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती ।।

यह बात अनदेखी करने योग्य नहीं है कि ब्रजभाषा के कवियों ने सामान्य गृहस्थ जीवन को ही केन्द्र में रखा है, चाहे वे कवि संत हो, दरबारी हो, राजा हो या फकीर हो । रहीम के निम्नलिखित शब्द-चित्रों में श्रमजीवी की सहधर्मिता अंकित हैं—

लइके सुघर खुरपिया पिय के साथ ।
छइबे एक छतरिया बरसत पाथ ।।

एक बहुत ही अप्रसिद्ध कवि के कलिवर्णन में शासन की दुर्व्यवस्था का यथार्थ चित्र इस प्रकार दिया गया है—

कानूंगोय चौधरी गुमाश्ता मुसद्दी कोऊ माल मार खाय कोरो कागज ही दिखायो है ।
फौजदार नायब मुसाहब अकोर लैके झूठौ करै सांचो पुनि साँचे को झुठायौ है।
आठौ याम धावै जाके उलटोले लगावै दोष भड़ुवा और मसखरे को नीके अपनायौ हैं ।
कीजिए सहाय जू कृपाल श्री गोविन्दलाल कठिन कराल कलिकाल चढ़ि आयौ है।

सूमों के चित्र बड़े अतिरंजित होते हुए भी बड़े चुभते हुए है। एक चित्र हैं जिसमें दीवानजी का दिया हुआ झगा ऐसा तार-तार है न उसे धोबी लेता है और न वह पहना जाता है । कवि झगा के साथ ही सुई तागा भी माँगने लिए विवश हो जाता है—

आदि ही धोबी न धोवे को लेत कि पानी ते बूड़े में पाउँ न पाऊँ ।
जोर रहे खुलि ठौर ही ठौर औ तापर खोपै चली हैं अगाऊँ ।

'लौकी' कहैं हम जाच्यो दीवान जू और मैं जाय के काहि सताऊँ।
जो पै मया करि दीन्हों झगा तो सूची तगा दोउ साथ ही पाऊँ।

अमीर खुसरो से शुरू करके भारतेन्दु तक मुकरी, पहेली जैसी शब्द-क्रीड़ाओं में भी प्रसंग ठेठ गाँव के जीवन के मिलते हैं, कहीं-कहीं उनमें ग्राम्यता है पर उक्ति की सहजता में वह ग्राम्यता तिरोहित हो जाती है। उदाहरण के लिए 'सखि साजन' वाली मुकरियों में अत्यन्त सामान्य जीवन के सन्दर्भ ही गृहस्थ जीवन के रस-व्यंजक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं—

जब माँगू तब जल भरि लावै। मेरे मन की विपति बुझावै।
मन का भारी तन का छोटा। ए सखि साजन ना सखि लोटा।
बाट चलत मोरा अँचरा गहे। मेरी सुने न अपनी कहे।
ना कुछ मो सों झगड़ा-झंटा। ए सखि साजन ना सखि काँटा।
हाट चलत में पड़ा जो पाया। खोटा खरा न मैं परखाया।
ना जानूं वह हैगा कैसा। ये सखि साजन, ना सखि पैसा।

भारतेन्दु को इन दो मुकरियों में भी व्यंग रूप में सामान्य व्यक्ति की प्रतिक्रिया, सामान्य-जीवन के विम्ब पर आधारित प्रस्तुत मिलती है—

सीटी देकर पास बुलावै
रुपया ले तो निकट विठावै।
लै भागै मोहि खेलहि खेल
क्यों सखि साजन ना सखि रेल॥
भीतर भीतर सब रस चूसै
हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज।

इन विविध उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है कि ब्रजभाषा काव्य के बारे में आम धारणा सही नहीं है कि ब्रजभाषा काव्य एकांगी या सीमित भावभूमि का काव्य है। चाहे सगुण भक्त कवि हों, चाहे निर्गुण भक्त कवि; चाहे, आचार्य कवि हों, चाहे स्वच्छन्द कवि, चाहे सूक्तिकार हों सभी लोक-व्यवहार के प्रति बहुत सजग हैं और लौकिक जीवन की समझ इन सबकी बहुत गहरी नुकीली है। भक्ति की धारा को अलौकिक मानना ही गलत है, उसी प्रकार रीतिकालीन कविता को दरबारी कविता या एक रुँधे हुए जीवन की कविता मानना भी गलत है। दोनों कविताओं की भूमि लोक है और इसी कारण दोनों में अभिव्यक्ति और वर्ण्य-विषय दोनों ही स्तरों पर सामान्य जीवन को मुख्य आधार माना गया है। इस लिए विम्ब अधिकतर कुछ एक अपवादों को छोड़कर सामान्य जीवन के ही ब्रजभाषा साहित्य में मिलते हैं और इसीलिए ब्रजभाषा काव्य में तरह-तरह के ठेठ मुहावरे मिलते हैं जो उस काव्य के सौन्दर्य को विशेष दीप्ति प्रदान करते हैं उदाहरण के लिए रसखान की यह पंक्ति 'वारहि गोरस बेचन जाहु री माइ लें मूड़ चढ़ै जिन मौड़ी', जहाँ मूड़ चढ़ने का मुहावरा ठेठ व्रज के गाँव के लिया हुआ मुहावरा है। भिखारी-दास की इस पंक्ति में आया मुहावरा 'वा अमरइया ने राम राम कही है' अवधी क्षेत्र के ठेठ प्रयोग के द्वारा एक आत्मीय आमंत्रण का स्वर जगाया गया है या बोधा की इस पंक्ति में 'कवि बोधा न चाउ सरी कबहूँ नितही हरवा सौ हिरैबौ करै' जंगल में खो जाने वाले पशुओं की तरह एक असहाय स्थिति का

बोध कराया गया है। ब्रजभाषा काव्य की यात्रा जितनी एकांगी मानी जाती है उतनी एकांगी है नहीं। उसमें एक बिन्दु पर स्वर अवश्य मिलता है, वह बिन्दु है तरह-तरह के भेदों और अलगावों को बिसरांकर एक सामान्य भाव-भूमि तैयार करना। इसी कारण ब्रजभाषा कविता हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई तक व्याप्त हुई। केवल छन्द और सवैया लिखने वाले मुसलमान कवियों की संख्या डेढ़ सौ से ऊपर है उन्नीसवीं शताब्दी के एक मुसलमान अध्यापक हफीजुल्ला ने विषय वार चयन के एक हजार कवित्त-सवैयों का संकलन तैयार करके छपाया। उत्तर भारत के संगीत में चाहे ध्रुपद धमार में, चाहे ख्याल में चाहे ठुमरी या दादरे में सर्वत्र हिन्दू, मुसलमान सभी प्रकार के गायकों के द्वारा ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता रहा और आज भी जिसे हिन्दुस्तानी संगीत कहा जाता है, उसके ऊपर ब्रजभाषा ही छायी हुई है, इसका कारण केवल संगीत का वर्ण्य-विषय प्यार ही नहीं है इसका कारण एक समान भाव-भूमि की तलाश है। मध्ययुग और उत्तर मध्ययुग के चित्रकारों ने भी ब्रजभाषा काव्य से प्रेरणा ली है जैसा कि पहले कहा जा चुका है कुछ ने ब्रजभाषा की कविता भी की। देश की सांस्कृतिक एकता के लिए ब्रजभाषा एक जर्बदस्त कड़ी चार शताब्दियों से अधिक समय तक बनी रही और आधुनिक हिन्दी की व्यापक सर्वदेशीय भूमिका इसी साहित्यिक ब्रजभाषा के कारण सम्भव हुई है।

ब्रजभाषा साहित्य का कोई अलग इतिहास नहीं लिखा गया है, इसका कारण यह है कि हिन्दी और ब्रजभाषा दो व्यतिरेकी सत्ताएँ नहीं हैं, यदि दो हैं भी तो एक दूसरे की पूरक हैं। परन्तु जिस प्रकार की अल्प परिश्रम से विद्या प्राप्त करने की प्रवृत्ति जोर पड़ती जा रही है, जिस तरह का संकीर्ण उपयोगितावाद लोगों के मन में घर करता जा रहा है, उसमें एक प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है कि हिन्दी साहित्य को यदि पढ़ना पढ़ाना है तो उसे श्रीधर पाठक या मैथिलीशरण गुप्त से शुरू करना चाहिए। यह कितना बड़ा आत्मघात है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि साहित्य या संस्कृति में इस प्रकार की विच्छिन्नता तभी आती है, जब कोई जाति अपने भाव-स्वभाव को भूल कर पूर्ण रूप से दास हो जाती है किसी विजेता संस्कृति और उसके साहित्य की। हिन्दुस्तान में ऐसी स्थिति कभी नहीं आयी, आज आ सकती है यदि इस प्रकार विच्छेद करने का प्रयत्न हो।

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश तैयार करने के पीछे उद्देश्य यह नहीं है कि साहित्यिक ब्रजभाषा को साहित्यिक हिन्दी से अलग करके देखा जाय, बल्कि उद्देश्य यह है कि इस साहित्यिक ब्रजभाषा पढ़ने-पढ़ाने में जो कठिनाई हो रही है, विशेष रूप से उन प्रान्तों में जहाँ क्षेत्रीय भाषाएँ प्रथम भाषा के रूप में स्वीकृत है, उसके मार्ग-दर्शन के लिए एक ऐसा कोश होना चाहिए जो ब्रजभाषा साहित्य के अध्ययन-अध्यापन, ठीक रूप से कहें हिन्दी साहित्य के समूचे अध्ययन-अध्यापन को एक आवश्यक अवलम्ब दे सके। साहित्यिक ब्रजभाषा के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि ब्रजभाषा साहित्य का सर्वेक्षण इस रूप में कराया जाय कि इस साहित्य की प्रकृति सार्वदेशिक सार्वभौम एकात्मता लाने वाली रही है।

जब हम ब्रजभाषा साहित्य कहते हैं तो उसमें गद्य का समावेश नहीं करते, इसका कारण यह नहीं है कि ब्रजभाषा में गद्य और साहित्यिक गद्य है ही नहीं। वैष्णवों के वार्ता-साहित्य में, भक्ति-ग्रन्थों के टीका-साहित्य में तथा रीतकालीन ग्रन्थों के टीका-साहित्य में साहित्यिक ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग हुआ है, परन्तु गद्य का प्रसार दो ही स्थितियों में होता है या तो वह शास्त्र हो या पद्यगन्धी हो, क्योंकि इन्हीं दोनों दिशाओं में उसमें पुनरावर्तमानता होती है। छापाखाने के आगमन के बाद गद्य का महत्व अपने आप बढ़ा, क्योंकि तब कंठगत करने की अपरिहार्यता नहीं रही। लल्लूलाल जी ने अपने प्रेमसागर में ब्रजभाषा से भावित ऐसे गद्य की रचना की और वह गद्य ही आधुनिक गद्य की भूमि बना किन्तु ब्रजभाषा

का स्थान उन्नीसवीं शताब्दी अन्त से जो हिन्दी को मिला, उसमें गद्य की नयी भूमिका का महत्त्व तो था ही, सबसे बड़ा कारण था अंग्रेजों के द्वारा उत्तर भारत में कचहरी की भाषा के रूप में उर्दू को मान्यता देना, उर्दू को मान्यता देने के साथ-साथ फारसी लिपि को भी मान्यता देना। देश की एकता और जन-भावना को देखते हुए कचहरी में देवनागरी लिपि की मान्यता के लिए स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय द्वारा आन्दोलन चलाया गया और तब पूरी इबारत भले ही फारसी अरबी बहुल भाषा में हो, परन्तु देवनागरी के प्रयोग के लिए पहली माँग की गई। इस प्राशासनिक और न्यायालयी भाषा के प्रयोग के दबाव में खड़ी बोली हिन्दी का पनपना स्वभाविक था। एक दूसरा कारण यह भी था कि शिक्षा से माध्यम के रूप में भी शिव-प्रसाद गुप्त ने जो एक मध्यमार्ग को अपनाते हुए फारसी की ओर लचती हुई हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं, भूदेव मुखर्जी और लक्ष्मणसिंह ने उससे अलग जाकर सहज हिन्दी में शिक्षा की पुस्तकें तैयार कीं। इस शिक्षा-माध्यम के दबाव में भी खड़ीबोली का साहित्यिक और परिनिष्ठित रूप विकसित हुआ। अन्तिम कारण यह था कि उद्योगीकरण और नये किस्म के राष्ट्रीयता की जागरण में व्यावसायिक संगठनों की विशेष भूमिका हुई तथा उस भूमिका के निर्वाह के लिए बाजारी हिन्दी का विकास हुआ। बाजारी हिन्दी शुरू-शुरू में एक मिलीजुली भाषा थी। बाद में यह मानक रूप ग्रहण करके आधुनिक हिन्दी बनी परन्तु यह बाजारी हिन्दी ब्रजभाषा नहीं थी, यह व्यापारिक अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क की भाषा थी। शासन की भाषा के रूप में छोटी रियासतों में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता था, वह मानक ब्रजभाषा नहीं थी, बुन्देलखण्ड में बुन्देली थी तो अवध में अवधी, ब्रज के क्षेत्र में ब्रज थी। अन्तिम कारण साहित्यिक ब्रजभाषा के न टिकने का यह था, इसका काव्य-रूप जो एकमात्र प्रामाणिक भाषा रूप था बहुत रूढ़िग्रस्त हो गया, इसमें एक प्रकार की जकड़न आ गयी और प्रयोगशीलता कम हो गयी। द्विजदेव जैसे एकाध अप-वादों को अगर छोड़ दें तो जानदार भाषा लिखने वाले कवि कम होते गये जैसे कोई बगीचा में बहार आये और उतर जाये, ऐसी स्थिति हो गयी।

ब्रजभाषा साहित्य के इतिहास को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है, इसका उदयकाल जिसके ऊपर नागर अपभ्रंश काव्य की छाप है। इसी कारण उसमें दिखने वाले हिन्दी के मध्य देश में पैदा हुए अमीर खुसरो के लेकर महाराष्ट्र में पैदा हुए महानुभाव और ज्ञानेश्वर के साथी नामदेव हैं दूसरी ओर पंजाब से लेकर बिहार तक के सन्त कवि हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा का व्यवहार करते हैं, परन्तु गेय प्रयोजन के लिए प्रायः ब्रजभाषा का ही व्यवहार करते हैं और प्रयोग करते हैं। इनकी सूची बड़ी लम्बी है और पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के अधिकांश सन्तकवि साहित्यिक ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते हैं, मुख्य नाम ये हैं—कबीर, रैदास, धर्मदास, और गुरुनानक, दादूदयाल और सत्रहवीं शताब्दी के सुन्दरदास, मलूकदास और अक्षरअनन्य है।

सूफी काव्यों का बीज रूप भी जिस काव्य में मिलता है, वह मुल्लादाउद का चन्दायन नहीं है, वह साधन का 'मैनासत' है जिसकी भाषा ग्वालियरी है और वह कुछ और नहीं ब्रजभाषा ही है। कुछ विद्वान ब्रजभाषा का पुराना नाम ग्वालियरी ही देते हैं। 'मैनासत' का रचना काल पन्द्रहवीं शताब्दी है। यह उल्लेखनीय है कि इस कोटि के कवियों की भाषा बहुत परिमार्जित नहीं है, न उसमें वक्र-भंगिमाओं के लिए कोई विशेष स्थान है। उदाहरण के लिए नामदेव ने इस छन्द में बहुत सीधे साधे ढंग से लीला का कीर्तन किया है—

अम्बरीष कौं दियौ अभय पद, राज विभीषन अधिक कर्‌यो।
नवनिधि ठाकुर दई सुदामहि, ध्रुव जो अटल अजहूँ न टर्‌यो।
भगत हेत मार्‌यौ हरिनाकुस, नृसिंह रूप ह्वै देह धर्‌यो।
नामा कहै भगति बस केसव, अजहूँ बलि के द्वार खरो।

इस प्रकार कबीर के इस पद में सूर की भाषा का एक प्रागूरूप मिलता है, जो उक्ति की नाटकीयता का बड़ा सरस उदाहरण प्रस्तुत करता है—

हों बलि कब देखौंगी तोहि ।
अहनिसि आंतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापी मोहि ।
नैन हमारे तुम्हको चाहैं, रती न मानैं हारि ।
बिरह अगिनि तन अधिक जरावै ऐसो लेहु विचारि ।
सुनहु हमारी दादि गोसाईं, अब जनि करहु अधीर ।
तुम धीरज मैं आतुर, स्वामी काँचे भाँड़े नीर ।
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहिं बाँधे धीर ।
देह छमा तुम मिलहु कृपा करि आरतिवन्त कबीर ॥

रैदास और धर्मदास में भाषा कुछ अधिक संवरी हुई मिलती है, उदाहरण के लिए रैदास का पद लें—

अब कैसे छूटै नाम रट लागी ।
प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी । जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा । जैसे चितवत चंद चकोरा ।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती । जाकी जोति बरै दिन राती ।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा । जैसे सोनहि मिलत सोहागा ।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा । ऐसी भक्ति करी रैदासा ॥

या धर्मदास का यह पद जिसमें हलकी सी भोजपुरी छटा है और शब्द-योजना में अनुरणात्मक प्रभाव की गूँज है—

झर लागै महलिया गगन गहराय ।
खन गरजै खन बिजली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि न जाय ।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय ।
खुली केवरिया, मिटी अँधयारिया धनि सतगुरु जिन दिया लखाय ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुर चरन में रहत समाय ।

नानक और दादू में ब्रजभाषा का प्राय: तो मिश्रित रूप मिलता है, किन्तु कहीं-कहीं ब्रजभाषा में पूरा का पूरा पद रचा मिलता है जैसे नानक के इस पद में—

जो नर दुख नहिं माने ।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै ।
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाकें, लोभ मोह अभिमाना ।
हरष सोक तै रहे नियारो, नाहिं मान अपमाना ।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगतें रहे निरासा ।
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा ।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन्ह यह जुगति पिछानी ।
नानक लीन भयो गोबिन्द सौ ज्यों पानी सँग पानी ।

और दादू के इस पद में—

अजहूँ न निकसैं प्राण कठोर ।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ॥
चारि पहर चार्‌यौ जुग बीते, रैनि गँवाइ भोर ।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चितचोर ॥
कबहूँ नैन निरषि नहिं देषे, मारग चितवत तोर ।
दादू अैसैं आतुर विरहिणि, जैसे चंद चकोर ॥

या सुन्दरदास और मलूकदास में जिनका कार्यकाल सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक चला जाता है ब्रजभाषा का और अधिक निखरा हुआ रूप मिलता है । सुन्दरदास के एक उदाहरण में—

तू ठगि कै धन और को ल्यावत, तेरेउ तौ घर औरइ फोरैं ।
आगि लगै सबही जरि जाइ सु तूं दमरी दमरी करि जोरैं ।
हाकिम कौ डर नाहिन सूझत, सुन्दर एकहिं बार निचोरैं ।
तू परचै नहिं आपुन पाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि लै बोरैं ॥

मलूकदास के पद में—

अबकी लागी खेप हमारी
लेखा दिया साह अपने को, सहजै चीठी फारी ।
सौदा करत बहुत जुग बीते, दिन दिन टूटी आई ।
अबकी बार बेबाक भये हम जम की तलब छोड़ाई ।
चार पदारथ नफा भया मोहि, बनिजैं कबहुं न जइहौं ।
अब डहकाय बलाय हमारी, घर ही बैठे खइहौं ।
वस्तु अमोलक गुप्तै पाई, ताती वायु न लाओं ।
हरि हीरा मेरा ज्ञान जौहरी, ताही सों परखाओं ।
देव पितर औ राजा रानी, काहू से दीन न भाखौं ।
कह मलूक मेरे रामैं पूंजी, जीव बरावर राखौं ॥

इन दोनों उदाहरणों में मुहावरेदारी और एक उक्ति को दूसरी में पिरोने की कुशलता और रूपक का निर्वाह तीनों गुण मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि साहित्यिक ब्रजभाषा के विकास का रंग इनमें गहरा है और इन्हें रचनाकाल और भाषा-विकास की दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य के दूसरे चरण में रखना उचित होगा । धरनीदास के निम्नलिखित दोहे की बंदिश और बिहारी के दोहे की बंदिश में बहुत कम अन्तर दिखेगा ।

धरनी धरकत है हिया करकत आहि करेज ।
ढरकत लोचन भरि भरी पीया नाहिन सेज ।

उसी प्रकार सन्त कवि यारी साहिब के इस पद और पद्माकर की ध्वनि-चित्रमयी भाषा में अन्तर नहीं के बराबर है—

झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा
नूर जहूर सदा भरपूरा ॥

रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै
भवन गुँजार गगन चढ़ि गाजै ॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती
भयो प्रकास निरन्तर जोती ॥
निरमल निरमल निरमल नामा
कह यारी तहँ लियो बिस्रामा ॥

यह मान लेना कि प्रारम्भ के कवि भाषा के प्रति उदासीन थे और उनका ध्यान भाषा के सँवार पर नहीं था सही नहीं है, कम से कम बहुत दूर तक नहीं ही सही है। उपदेश की भाषा या फटकार की भाषा में एक जानबूझकर बाजार-भाषा का रूप मिलता है, अनेक क्षेत्रीय-भाषाओं के तत्त्व मिलते-हैं, किन्तु जहाँ रागात्मक संवेदना तीव्र है, वहाँ भाषा परिनिष्ठित है और वह परिनिष्ठित भाषा ब्रज है। ऐसा लगता है जैसे उस युग में भाषा के प्रयोग की कुछ रूढ़ियाँ उसी तरह से स्वीकृत हो चुकी थीं, जिस तरह संस्कृत के नाटकों में संस्कृत और विभिन्न प्राकृतों के सन्दर्भ में कुछ रूढ़ियाँ बन गई थीं। इसीलिए एक ही कभी भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करता है। अमीर खुसरो से ही यह बात दृष्टिगोचर होने लगती है। गेय पदों में चूँकि रागात्मकता का सन्निवेश अपरिहार्य है, इसलिए उनकी भाषा में तो ब्रजभाषा प्रायः निरपवाद रूप में हैं। जिन दोहों, सोरठों, झूलने, सवैयों और कवित्तों में कोरी उपदेशपरकता नहीं है, सुन्दर तरीके से कहने का भाव है या किसी लालित्य की अभिव्यंजना है या कोई गहरी संवेदना व्यक्त करने का भाव है, उनमें प्रायः ब्रजभाषा का ही प्रयोग मिलेगा। इसके विपरीत युद्ध-वर्णन में डिंगल या राजस्थानी का प्रयोग मिलेगा। कहीं-कहीं इस डिंगल में प्राचीन अपभ्रंश के भी अवशेष हैं। जहाँ कहीं एक खास किस्म का शहरीपन है, वहाँ खड़ी बोली का प्रयोग है और जहाँ सधुक्कड़ी ठाठ है वहाँ मिश्रित भाषा का प्रयोग है। इसी प्रकार प्रबन्ध-योजना में अवधी का प्रयोग अधिकतर मिलता है, उसका कारण है कि अवधी ने जिस अपभ्रंश का उत्तराधिकार लिया है, उस अपभ्रंश में प्रबन्ध-काव्य बहुत लिखे गये थे। स्वयंभू जैसे कवियों ने अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे थे। चण्डीदास, विद्यापति तथा गोविन्दस्वामी को छोड़ दें तो गेय पद-रचना पर ब्रजभाषा का अक्षुण्ण अधिकार है। तुलसीदास जी ने स्वयं भिन्न प्रयोजनों से भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग किया। अवधी में उन्होंने रामचरितमानस लिखा, ब्रजभाषा में विनय-पत्रिका, गीतावली, दोहावली, कृष्ण-गीतावली लिखी, ठेठ अवधी में उन्होंने पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल लिखा और यही नहीं साहित्यिक ब्रजभाषा के भी अनेक रूप उन्होने प्रस्तुत किये। स्तुतियों के लिए तत्सम-बहुल भाषा का उपयोग करने में उन्हें यह आकर्षण हुआ कि ये स्तुतियाँ एक विशेष प्रकार की गरिमा का प्रभाव उत्पन्न कर सकेंगी। किन्तु आत्मनिवेदन की भाषा को उन्होंने तद्भव-बहुल रखा जिससे उनका आत्मनिवेदन सामान्य जन के आत्मनिवेदन के समीप हो। ब्रजभाषा साहित्य के द्वितीय चरण की यह प्रमुख विशेषता है कि उसमें विभिन्न प्रकार के सम्प्रेषणों, विभिन्न प्रकार की शैली प्रयुक्तियों का आविष्कार और विकास किया गया है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा को साहित्य की भाषा बनाने में इस काल के रससिद्ध कवियों की बड़ी जबर्दस्त भूमिका है, सबसे अधिक श्रेय इस विषय में सूर को दिया जाना चाहिए। सूर ब्रजभाषा के पहले कवि हैं जिन्होंने इसकी सर्जनात्मक सम्भावनाओं की सबसे अधिक सार्थक खोज की और जिन्होंने ब्रजभाषा को गति और लोच दे कर इसकी यान्त्रिकता तोड़ी। सूर के बाद ब्रजभाषा में परिष्कार या साज-संवार या निखार के प्रयत्न तो अवश्य हुए और ब्रजभाषा की काव्य-धारा एक लम्बे अरसे तक गतिशील और विकासशील काव्यधारा बनी रही, पर सूर की ब्रजभाषा में जो प्राणवत्ता मिलती है वह उस मात्रा में अन्यत्र नहीं मिलती। इसके दो मुख्य कारण हैं, एक तो यह

कि सूर ने लीला के मोहक और दृश्य वितान को श्रव्य से भी अधिक गेय रूप में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया, इस कारण उसमें नाटकीय आरोह-अवरोह अपने आप आया। दूसरा कारण यह है कि सूर के लिए भाषा साधन थी साध्य नहीं और साधन का अभ्यास उन्होंने इतनी लम्बी अवधि तक किया कि वह साधन सहज हो गया और वह भाषा भी सहज हो गई।

द्वितीय चरण के ब्रजभाषा साहित्य के काल पाँच बिन्दु अत्यन्त संलक्ष्य रूप से दिखाई पड़ते हैं। तद्भव ओर तत्सम शब्दों का एक ऐसा सहज सन्तुलन मिलता है जिसमें तत्सम शब्द भी ब्रजभाषा की प्रकृति में ढले दिखते हैं, अधिकतर तो वे अर्द्धतत्सम रूप में। 'प्रतीत' के लिए 'परतीति' जबकि इसके साथ-साथ तद्भव रूप 'पतियावो' भी मिलता है, जैसे तत्सम प्रातिपदिकों से नई नाम धातुएँ बनाकर 'अभिलाष' से 'अभिलाखत' या 'अनुराग' से 'अनुरागत'। 'इस अवधि में समानान्तर तत्सम और तद्भव शब्दों के अर्थक्षेत्र भी कुछ न कुछ स्पष्टतः व्यतिरेकी हो गये हैं। जब नख-शिख की बात करेंगे तब 'नह' का प्रयोग नहीं करेंगे और जब दसों नह का प्रयोग करेंगे, तब 'नख' वहाँ प्रयुक्त नहीं होगा।

२. मूलक्रिया और साधित क्रिया-रूपों की इस काल में प्रचुरता यह इंगित करती है कि इस काल के साहित्य में व्यापारों की विविधता को सूक्ष्मता से निरखने की कोशिश की गयी है। आधुनिक हिन्दी में तो शुद्ध-क्रिया-रूप या क्रिया-साधित रूप कम हो गये हैं। इसमें 'विचारत' की जगह पर विचार करना ही अधिक ग्राह्य रूप है। इस काल की ब्रजभाषा में समस्त क्रियापद, मिश्र क्रियापद (संज्ञा + होकर) जैसे तो मिलते हैं, 'कर' के साथ क्रिया पद नहीं मिलते या बहुत विरल है।

३. इसी काल में हिन्दी का मुहावरा विकसित हुआ है जैसे—

जदपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात होत मेरे अलक लडैतहिं माखन रोटी भावै।

'तऊ मोहि कहि आवै' में कहने की लाचारी और कहने की आवश्यकता दोनों एक ही उक्ति में व्यक्त करने का उपाय ढूंढ़ लिया गया है अथवा निम्नलिखित प्रयोग में 'नैन नचाय कही मुसकाय लला फिर अइयो खेलन होरी', में एक साथ हास-परिहास, चुनौती और उल्लास तीनों की अभिव्यक्ति 'फिरि आइयो खेलन होरी' के द्वारा की गई है।

४. सार्थक शब्द-चयन में कुशलता अपने उत्कर्ष में पहुँच गयो है, जैसे तुलसीदास की इस पंक्ति में—'कहे राम रस न रहत' में अनुभव के अनुपात में कहने के फीकेपन की अभिव्यक्ति जितने 'कहे रस न रहत से हो सकती है उतने अन्य किसी उक्ति-खण्ड से नहीं या सूर के प्रसिद्ध पद में राधा के सन्देश को जहाँ इस रूप में कहा गया है 'तुम्हारी भावती कहीं' वहाँ 'भावती' का चयन प्रिया की अपेक्षा, प्यारी की अपेक्षा अधिक सार्थक है क्योंकि भावती में दो-दो अभिव्यंजनायें एक साथ हैं—भाव के अनुकूल और 'भावतिय' राधा में दोनों सामर्थ्य है, वे श्रीकृष्ण के भाव में ही डूबी हुई हैं और स्त्री रूप न होकर श्रीकृष्ण के भाव का ही विग्रह है।

५. अन्तिम बिन्दु यह है कि इस काल की भाषा में ब्यौरा प्रस्तुत करते समय बहुत संयम से काम लिया गया है अर्थात् सावधानी से भाव-बोधक ब्यौरे ही चुनकर रखे गये हैं और कुछ शब्द या अभिधान केन्द्रभूत होकर के स्थापित हो गये हैं, उनसे आशुलिपि की भाषा का काम लिया जाता है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं पुराने कविसमयों और नये कविसमयों की उद्भावना कल्पना के साथ की गई है जैसे सूर की इस पंक्ति में—

'चलि चकई वह चरन सरोवर जहाँ रैन नहिं होइ'

एक प्राचीन कविसमय के अभिप्राय की नई उद्भावना की गई है कि प्रभु के चरणों के नखों में सूर्य की ज्योति का प्रकाश है वहाँ रात की कोई संभावना नहीं, वहाँ समस्त द्वन्द्वों की विश्रान्ति है।

भक्ति के द्वारा जहाँ एक ओर सामान्य व्यक्ति की भाषा को असामान्य महत्त्व दिया गया और सामान्य भाषा का संगीतात्मक उपयोग न केवल भगवद्-भक्ति का साधन हुआ, वह भगवद्-भक्ति की सिद्धि भी बना, इस कारण प्रत्येक भक्त गायक और पद-रचनाकार होने लगा, दूसरी ओर जो भक्त कवि कुशल नहीं थे, वे भाषा के प्रति सजग नहीं रहे, वे सम्प्रेषण के प्रति उदासीन रहे, उनके मन में यह भ्रम रहा कि भाव मुख्य है, भाषा नहीं। वे यह समझ नहीं सकते थे कि भाव और भाषा का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके अचेत कवि-कर्म की बहुलता का प्रभाव भाषा पर पड़ा, उसमें कुछ जड़ता आने लगी।

भक्ति-आन्दोलन तो चलता रहा और उसका व्यापक प्रभाव भी जनजीवन पर बना रहा, पर कवि-कर्म के प्रति सजग कवियों ने भाषा और भाव के ऐक्य पर ध्यान देना शुरू किया। रीतिकाल भक्तिहीन नहीं है, उस काल में भी सांसारिक प्रपंच में रहते हुए विश्व और विश्वात्मा को उद्वेलित करने वाले प्रेम-व्यापार की चिन्ता थी। वे दरबारों में आश्रय पाते थे, पर दरबारदारी से सभी कवि बँधे नहीं थे, जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है कि उनका संसार नायक-नायिका तक सीमित नहीं था और न नायक नायिकाएँ ही उच्च वर्ग या सम्पन्न वर्ग तक सीमित थीं, वे साधारण जीवन में अभिव्याप्त रागसंवेदना की पहचान कराना चाहते थे। उन्हें श्रीराधाकृष्ण की प्रेमानुगा-भक्ति का एक चौखटा मिल गया, जिससे उन्हें अपनी बात कहने में थोड़ी आसानी रही। भिखारीदास की पंक्ति

आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई
न तौ राधिका कन्हाई के सुमिरन कौ बहानौ है

का अर्थ यह नहीं है कि सचमुच में उनके लिए 'राधिका कन्हाई' का स्मरण बहाना था, उसका अर्थ केवल यही है कि वे विनम्रतापूर्वक अपने को लौकिक रखना चाहते थे, परन्तु अलौकिक श्रीकृष्ण की लौकिक लीला से वे किसी भी प्रकार अप्रभावित नहीं थे। यदि इन कवियों के समानान्तर दरबारी उर्दू कवियों के साथ तुलना की जाय तो यह बात और अच्छी तरह समझ में आती है कि उर्दू कविता में उक्ति-चमत्कार के स्तर पर कविकर्म की वैसी ही सजगता है, परन्तु उसके अनुभव का संसार सीमित है, इस कारण उनकी भाषा में एक जड़ाऊपन तो है, विभिन्न प्रकार के जीवन क्षेत्रों से आने वाली ताजगी नहीं है उनमें ग्राम्य-जीवन के चित्र नहीं के बराबर है। रीतिकाल में अभिव्यक्ति को निस्संदेह महत्त्व मिला, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उनका काव्य-अनुभव उनके भक्त न होने के कारण अपरिहार्य रूप से हेय या भक्त कवियों की अपेक्षा कम उपादेय अनुभव है। अतिरेक प्रत्येक युग में होता है और वह उस युग की प्रवृत्ति नहीं है। उसके आधार पर उस युग की कविता का मूल्यांकन करना समीचीन नहीं है।

रीतिकाल पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है, वह व्यक्तित्वों के आधार पर किया जाता रहा है अथवा उन्नीसवीं शताब्दी की विक्टोरियन, खोखली नैतिकता के मानदण्डों से किया जाता रहा है, यह सही है कि सूर या तुलसी की ऊँचाई का कवि या उनके व्यापक काव्य-संसार जैसा संसार इस युग के कवियों में

नहीं प्राप्त है और यह कहने में आधुनिक कवियों के कहने में हेठी नहीं होगी कि आधुनिक युग में कवियों में नहीं प्राप्य है, पर साधारण जन के कंठ में तुलसी सूर कबीर की ही तरह रहीम, रसखान, पद्माकर, ठाकुर, देव, बिहारी ही नहीं बहुत अपेक्षाकृत कम विख्यात कवि भी चढ़े, उसका कारण उनकी कविता की सहृदता और सम्प्रेषणीयता ही थी। इन कवियों से ब्रजभाषा समृद्ध हुई है, उसने एक ऐसे जीवन में प्रवेश किया है जो सबका हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि इस युग के जो कवि राजदरबारों में हैं, वे भी केवल कसीदा या बधाई लिखकर सन्तोष नहीं पाते थे, वे अपना काव्य राजा को समर्पित कर दें पर उस काव्य में राजा या राजदरबार का जीवन बहुत कम रहता था। वे प्रकृति के मुक्त वितान के कवि थे, सँकरी और अँधेरी गली के कवि नहीं थे। इसलिए इस युग के उत्कृष्ट काव्य में सेनापति जैसे कवि के स्वच्छ प्रकृति-चित्रण मिलते हैं और विभिन्न व्यवसायों, विशेष करके कृषि व्यवसाय के मनोरम चित्र कहीं बिम्ब के रूप में, कही वर्ण्य विषय के रूप में, कहीं सादृश्य के रूप में मिलते हैं। संस्कृत की मुक्तक काव्य-परम्परा और संस्कृत की काव्यशिक्षा-परम्परा का दाय इस काल में प्रसृत दिखता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसके पूर्ववर्ती काल में उसकी छाप न हो, अपभ्रंश काव्य में वीरगाथाओं, वैष्णव पदावली साहित्य इन सबमें उसकी छाप है, अतः इसको रीतिकाल का अभिलक्षण बताना उचित नहीं। रीतिकाल के कवियों में देश की चेतना न हो, ऐसी बात भी नही है, भूषण, लाल, सूदन, पद्माकर जैसे प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त भी अनेक कवि हुए जिनके काव्य में स्वदेश का अनुराग व्यक्त होता है और वह परम्परा भारतेन्दु, श्रीधर पाठक और सत्यनारायण कविरत्न तक अक्षुण्ण चली आई है।

ब्रजभाषा के माध्यम से पूरे देश की कविता में एक ऐसी भावभूमि वाली, जिसमें सभी शरीक हो सकते थे और एक ऐसी भाषा पायी जिसकी गूंज मन को और का और बना सकती थी।

इस युग में भाषा में एक ओर घनानन्द जैसे कवियों में लाक्षणिक-प्रयोगों का विकास हुआ जिसमें 'लगियै रहै आँखिन के उर आरति' जैसे प्रयोग अमूर्त को मूर्त रूप देने के लिए उद्भूत हुए, दूसरी ओर सीधे मुहावरे की अर्थगर्भिता उन्मीलित की गयी जैसे—

अब रहियै न रहियै समयो बहती नदी पाँय पखार लै री (ठाकुर)

प्रसाद गुण और लयधर्मी प्रवाहशीलता का उत्कर्ष भी इस युग में पहुँचा जैसे—

चाँदनी के भारन दिखात उनयौ सो चंद
गंध ही के भारन मद-मंद बहत पौन
(द्विजदेव)

अथवा

आगे नन्दरानी के तनिक पय पीवे काज
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाड़ौ है
(पद्माकर)

इस युग की ब्रजभाषा कविता में पुनरुक्ति का उपयोग भी बड़े सटीक ढंग से हुआ और उससे अर्थ में भावैक्य लाने में सफलता मिली जैसे—

बोल हारे कोकिल बुलाय हारे केकीगन
सिखै हारी सखियाँ सब जुगति नई नई

इसमें हारने की क्रिया का प्रयोग तीन बार हुआ है, इस पुनरुक्ति से एक असम्भव स्थिति का द्योतन सामर्थ्यपूर्वक हुआ है। सादृश्य विधान की भी नई ऊँचाइयाँ देखने को मिलती है कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा की उड़ान के रूप में, कहीं-कहीं कसे हुए रूपक के रूप में, कहीं-कहीं अत्यन्त सीधी पर नुकीली उपमा के रूप में जैसे —

राधिका के आनन की समता न पावै विधु
टूकि-टूकि तोरै पुनि टूक-टूक जोरै है

(उत्प्रेक्षा)

बरुनी बघंबर औ गूदरी पलक दोऊ
कोए राते बसन भगौंहें भेस रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिन हूँ जागी भौंहें
धूम सिर छायौ बिरहानल बिलखियाँ।
अँसुआ फटिक-माल लाल डोरी सेली पैन्हि
भई हैं अकेली तजि सेली संग,सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिनि, ये
जोगिन है बैठीं बा वियोगिनि की अँखियाँ।

(साङ्ग रूपक)

सुरभी सी सुकवि की सुमति खुलन लागीं
चिरिया सी चिन्ता जागी जनक के हियरे।

(उपमा)

उलाहनों की भाषा में बाँकपन सूर से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है किन्तु इस युग की कविता में वह बाँकपन कुछ और विकसित मिलता है जैसे —

भोरहि न्यौति गई ती तुम्हें वह गोकुल गाँव की ग्वारिन गोरी।
आधिक राति लौं बेनी प्रवीन तुम्हें ढिग राखि करी बरजोरी।
देखि हँसी हमें आवत लालन भाल में दीन्ही महावर घोरी।
एते बड़े ब्रजमंडल में न मिली कहूँ माँगेहु रंचक रोरी॥

सूक्ष्म मनोभावों के अंकन के लिए मूर्त अभिव्यंजना का आश्रय बड़ी कुशलता से लिया गया है, जैसे इस छंद में—

मान्यौ न मानवती भई भोर सुसोचहि सोय गए मनभावन।
तैस सों सास कही दुलही भई बेर कुमार को जाहु जगावन॥
मान को सोच जगैवे की लाज लगी पग नूपुर पाटी बजावन।
या छवि हेरि हिराय रहे हरि कौन को रूसिबो काको मनावन।.

इस अनाम कवि के छन्द में मान के निर्वाह की चिन्ता और जगाने की लज्जा के अर्न्तद्वन्द्व का समाधान नूपुरों से पाटी बजाकर, उन पैरों के मन जाने का सूक्ष्म संकेत है, जिन्हें नायक मनाता रहा, नायिका नहीं मनी। इस युग की भाषिक उपलब्धियों का लेखा-जोखा देना यहाँ अभिप्रेत नहीं हैं यहाँ केवल इतना संकेत कर देना था कि ब्रजभाषा की काव्य-यात्रा रीति युग में नये उत्कर्ष के शिखरों पर

पहुँचती रही और उसके कारण भाषा में निखार आता रहा, शब्दों के चयन के ऊपर बल देने से, उक्ति भंगिमाओं के औचित्य से, लयात्मक प्रवाह से या संक्षिप्तता से। असमर्थ कवियों के द्वारा या समर्थ कवियों के द्वारा भी शब्दक्रीडा करते हुए अटपटे प्रयोग भी आये हैं और अनमेल खिचड़ी भी शब्दों की पकायी गई है, जिसके कारण सम्बद्ध स्थलों में दुरूहता आ गयी है।

साहित्यिक भाषा का शब्दकोश भाषा की शक्ति और दुर्बलता दोनों से सरोकार रखता है। उसका मुख्य उद्देश्य साहित्य के अध्यापक और अध्येता को जहाँ कहीं कठिनाई हो उसका समाधान करना होता है। हिन्दी-शब्द-सागर में ब्रजभाषा के भी बहुत से शब्द सम्मिलित है, पर केवल उसका अवलम्बन करने से बहुत से शब्दों के अर्थ का समाधान नहीं मिलता और सूक्ष्म अर्थभेदों की पहचान भी नहीं मिलती, इस दृष्टि से प्रस्तुत कोश अधिक सर्वांगीण हो, इसका हमने उद्योग किया है। समय की सीमा को देखते हुए हमने समस्त साहित्य को आधार न बनाकर जैसाकि पहले कह चुके हैं चुने हुए प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों को आधार बनाया है। बहुत सी शंकाएँ हमारे मन में भी अभी बनी हुई है उनका अलग समाधान परिशिष्ट में करने का विचार है। परिशिष्ट में ही संक्षेप में ब्रजभाषा के मुख्य ग्रंथों की तिथि-क्रम से तालिका भी देने का विचार है, अंत में मुहावरों, कहावतों की अनुक्रमणी भी। इस संक्षिप्त विवरण में साहित्यिक ब्रजभाषा कोश की ज़मीन का कुछ अन्दाज लग सकेगा। यह कोश तीन खंडों में प्रकाशित होगा। पहला खण्ड स्वरों से और 'क' से आरम्भ होने वाले कोशिमों तक सीमित है।

रमानाथ सहाय
विद्यानिवास मिश्र

कोश प्रतीक तालिका

अंग्रेजी	—	अं०
अपभ्रंश	—	अप०
अरबी	—	अ०
अव्यय	—	अव्य०
उदाहरण	—	उ०
उपसर्ग	—	उप०
क्रिया अकर्मक	—	अक०
क्रियार्थक संज्ञा	—	क्रि० सं०
क्रिया विशेषण	—	क्रि० वि०
क्रिया सकर्मक	—	सक०
देखिये	—	दे०
देशज	—	देश०
पालि	—	पा०
प्रत्यय संकेत	—	—
फारसी	—	फा०
भूतकालिक कृदन्त	—	भू० कृ०
मुहावरा	—	मु०
यौगिक रूप	—	यौ०
लाक्षणिक	—	ला०
लोकोक्ति	—	लो०
वर्तमानकालिक कृदन्त	—	व० कृ०
विकल्प	—	~
विशेषण	—	वि०
व्युत्पन्न	—	><
संज्ञा पुल्लिग	—	पुं०
संज्ञा स्त्रीलिंग	—	स्त्री०
संस्कृत	—	सं०
सर्वनाम	—	सर्व०

ग्रन्थ सूची संकेत

उ०	उद्धव शतक, जगन्नाथ दास रत्नाकर	इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संवत् १६५४
क०	कवित्त रत्नाकर, सम्पा० पं० उमाशंकर शुक्ल	हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग, प्र० सं०—१६३६ ई०
कवि०	कवितावली, सम्पा० डॉ० माताप्रसाद गुप्त	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अष्टम् सं०—संवत्—२०१०
कुं०	कुंभनदास, सम्पा० गो० श्री व्रजभूषण शर्मा	विद्या विभाग, काँकरौली प्र० सं० संवत्—२०१०
कृ०	कृपाराम ग्रन्थावली, सम्पा० पं० सुधाकर पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्र० सं०—सँवत्—२००६
के० I,II,III	केशव ग्रन्थावली (तीन खण्डों में), सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र० सं०—१६५४ ई०
गं०	गंग कवित्त, सम्पा० बटे कृष्ण	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०—संवत्—२०१७
गो०	गोविन्दस्वामी, सम्पा० गो० व्रजभूषण शर्मा	विद्या विभाग कांकरौली, राजस्थान, प्र० सं०—संवत्—२००८
घ०	घनानन्द ग्रन्थावली	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
घ० क०	घनानन्द कवित्त, सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणी वितान, वाराणसी, संवत्—२०१६
च०	चतुर्भुजदास, सम्पा० गो० श्री व्रजभूषण शर्मा	विद्या विभाग, काँकरौली, प्र० सं०—संवत्—२०१४
छी०	छीतस्वामी, सम्पा० गो० श्री व्रजभूषण शर्मा	विद्या विभाग, काँकरौली प्र० सं० संवत्-२०१२
ठा०	ठाकुर, सम्पा० चंद्रशेखर मिश्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं० संवत्-२०३०
दे०	देव ग्रन्थावली, सम्पा० डॉ० पुष्पारानी जायसवाल	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद प्र० सं०—१६७४ ई०

नं०	नंददास ग्रन्थावली, सम्पा० बाबू ब्रजरत्नदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वि सं०—संवत्—२०१४
ना०	नागरीदास ग्रन्थावली, सम्पा० डॉ किशोरीलाल गुप्ता	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०२२
प०	पद्माकर ग्रन्थावली, सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०१६
बि०	बिहारी रत्नाकर, सम्पा० जगन्नाथदास रत्नाकर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी च० सं०—संवत्—२०२१
बो०	बोधा ग्रन्थावली, सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०३१
भि० I,II,	भिखारीदास ग्रन्थावली (२ खण्डों में), सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०१४
भू०	भूषण ग्रन्थावली, सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणी वितान प्रकाशन, द्वि० सं०—संवत्—२०१७
भ्र०	भ्रमरगीत, चाचा वृन्दावनदास कृत, सम्पा० डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव	राजेश प्रकाशन, दिल्ली प्र० सं०—१९७२ ई०
म०	मतिराम ग्रन्थावली, सम्पा० श्री कृष्णविहारी मिश्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०२१
र०	रसलीन ग्रन्थावली, सम्पा० पं० सुधाकर पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०२६
शृं०	शृंगार लतिका सौरभ	—
सा०	सूरसारावली, सम्पा० प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा प्र० सं०—संवत्—२०१४
सूरति०	सूरति मिश्र और उनका काव्य	—
सूर०	सूरसागर, सम्पा० नन्ददुलारे बाजपेयी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र० सं०—संवत्—२०३५
हरि०	हरिचरणदास ग्रन्थावली, सम्पा० आनन्द प्रकाश दीक्षित	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्र० सं०—१९७४ ई०

साहित्यिक ब्रजभाषा शब्द-कोश

अ[1] ह्रस्व स्वर ध्वनि । देवनागरी वर्णमाला का प्रथम वर्ण । वर्णमाला के व्यंजन लेखन में 'अ' ध्वनि सन्निहित रहती है, यथा—क (क्+अ) ।

अ[2] उपसर्ग—निषेधार्थक यथा—अदीन
अभावात्मक —अरूप
कुत्सितार्थक —अकाज
'परे' अर्थ द्योतक —अमोल, अतोल

अंक—अँक—पुं० १. गोद । शरीर । वक्षस्थल ।
उ०—मखतूल के झूल झुलावत 'केसव' भानु मनौ सनि अंक लियें । के० पृ० ३
२. निशान । चिह्न । लक्षण । संख्या-चिह्न ।
उ०—वासौं मृग अंक कहै तोसौं मृगनैनी सबै वह सुधाधर तुही सुधाधर मानियै ।
के० पृ० १६४
३. अंग (ओर, तरफ)
उ०—सब सुख सिद्धि सिवा सोहै सिव-वाम-अंक जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहियै ।
के० पृ० १६३

—वारि—वार—वारी स्त्री० आलिंगन ।
उ०—राम भक्त निज जान विभीषन, भेंटे हरि अँकवार । सा० २७९/२३

—माल पुं० आलिंगन (भुजाओं में भर कर) ।
उ०—सूर स्याम सुनि बचन कपट तिय, भरि लीन्ही अँकमाल । सूर० १०/२६५०/१८०

—मालिका स्त्री० उ०—लोचन बिलोल यौं बिरोचन उए हैं कौल ऊठिलात बोलि अंकमालिका लगावही ।
भू० ५८०/२४५

अंकम पुं० अंक में दे० 'अंक' भी ।
उ०—उमँगि उमँगि प्रभु भुजा पसारत हरषि जसोमति अंकम भरनी ।
सूर० १०/४४/२२५

अँकाव सक० जाँच करवाना । दे० 'आँक–'
उ०—यह प्रेम बजार के अंतर सो परनैल दलाल अँकवाने है । ठा० १२८/३४

अंकित वि० चिह्नित । लिखित । चित्रित ।
उ०—तापर सुन्दर अंचल झाँप्यौं, अंकित दंसत सी ।
सूर० १०/११६६/५४

अंकुर अँकुर पुं० १. अँकुआ ।
२. प्रथम उभार ।
उ०—लहि उरोज के अंकुरनि सीतनि कियहु ससंक ।
प० १३८/४९

अँकुरा पुं० दे० 'अंकुर' ।
उ०—चाहैं चलाए की नीकी लगैं हम जानी जमे रस के अँकुरा हैं । प० ३६/३१४

अंकुरित वि० अंकुर-युक्त । अँखुआया हुआ । प्रस्फुटित ।
उ०—अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-बेली प्रफुलित कलिनि कहर के ।
सूर० १०/३०/२२

अंकुल पुं० दे० 'अंकुस' ।
उ०—अंकुल-कुलिस-बज्र ध्वज परगट, तरुनी मन भरमाए । सूर० १०/६३१/३८८

अंकुस पुं० १. रोक । दबाव । नियंत्रण ।
२. हाथी को हाँकने का टेढ़ा काँटा ।
उ०—कहा करौं, यह चरयौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरैं । सूर० वि०/२०६/५७
३. अंकुश का चिह्न (अधिक लक्ष्मी मिलने का सामुद्रिक लक्षण)
उ०—पग अंकुस कर में कमल करि जु दियो करतार । प० १५७/११३

अँकोर[1] सक० गोद में लेना । आलिंगन करना ।
उ०—कुंभनदास लाल-छबि ऊपर रीझि, अँकोरि देत तन मन वारी । कुं० ८७/४०

अँकोर[2] पुं० १. अंक । आलिंगन ।
उ०—बोलि लेति भीतर घर अपनैं, मुख चूमति भरि लेति अँकोर । सूर० १०/३६८/३१८
२. भेंट । समर्पण ।
उ०—भोरि की आवनी प्रान अँकोर किये तितही चलि आए जही के । घ० क० ३६६/२३७
३. घूस । रिश्वत ।
उ०—गए छँड़ाय तोरि सब बन्धन दै गए हँसनि अँकोर । अज्ञात

अँकौरी स्त्री० १. गोद । आलिंगन ।
'अंकोर' भी दे० ।
उ०—गुंजमाल उर पीत पिछौरी । गहत सोइ जु समात अँकोरी । सूर० १०/३६७१/४८६

अंक्या पुं० १. मृदंग, पखावज ।

अँखिया स्त्री० आँख । 'आँखि' भी देखिये ।
उ०—फूल घनी बिष बेली इतैं उत का निधि ए अँखियाँ अब चाखैं । शृं० ८३/२२१

अंग पुं० १. शरीर का अवयव ।
उ०—गति के भार महाउरै अंग अंस के भार ।
के० II पृ० २५६
२. अंक । गोद ।
उ०—सूरज अंग मनो सनि राजे । के० II पृ० ३७५
३. विभाग । भेद । प्रकार ।
उ०—अंग छ-सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है । के० II पृ० २४६
छः षडंग—वेदांग—१. शिक्षा, २. कल्प, ३. व्याकरण, ४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६. छंद ।
सात राज्यांग—१. राजा, २. मंत्री, ३. पुरोहित, ४. खजाना, ५. देश, ६. दुर्ग, ७. सेना ।
आठ—योगांग—१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि ।
४. पक्ष ।
उ०—हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर कौरव के अंग पर पारथ ज्यों देखिए ।
भू० ४०८/२०७

—द्वार पुं० शरीर के नौ द्वार या छिद्र—मुख, कान, नेत्र, नासिका के छिद्र, गुदा, उपस्थ ।
उ०—अंग द्वार, भूखंड रस बाघिनि कुच, निधि जानि । के० II पृ० १६२

—वस्त्र पुं० वल्लभ—सम्प्रदाय में ठाकुर जी के विग्रह को स्नान कराने के पश्चात पोंछे जाने के लिए प्रयुक्त वस्त्र ।
उ०—एक जु अंग-वस्त्र लै आई, पोंछति है अंग अति आनंद भरि । छी० ७३/३३

मु० अंग—अंगा करिबो—अंगीकार करना । अपनाना ।
उ०—जथा सक्ति सब करत भक्ति मन बच करि अंगा । के० III पृ० ६४७

अंग² पुं० अंग देश (बिहार के भागलपुर क्षेत्र का प्राचीन महाभारत से बुद्ध काल तक—नाम)

अंगद पुं० १. बालि का पुत्र एवम् राम की सेना का प्रमुख वानर, २. बाँह में पहने जाना वाला आभूषण । बाजूबंद ।
उ०—अंगद कौं राखै बाहु दूरि करे दूषन कौं ।
क० १/५७/१८

अंगन पुं० आँगन ।
उ०—बोलनि हँसनि, सुकपोलनि लसनि दंत, लागे हैं अंगन डग डोलन डगमगी । दे० I/२५/७

अँगना पुं० आँगन
उ०—बदन उघारि दुलहिया छनकु बैठि कढ़ि अँगना ।

—ई स्त्री० आँगन । चौक ।
उ०—कबहुँ सदन, कबहूँ अँगनाई, कबहूँ पौरि खरे ।
सूर० १०/१६७६/४८

अंगना² स्त्री० १. सुन्दर अंगों वाली स्त्री । कामिनी ।
उ०—पापिन को अंग संग अंगना अनंग रस ।
के० I पृ० १२३
२. अप्सरा ।
उ०—भूषन भनत रनरंग नवअंगनान मंगन समान बरदान बितरत है । भू० ५१६/२३२

अँगरा—अँगिरा—अक० अँगड़ाई लेना ।
उ०—राति की जागी प्रभात उठी अँगरात जम्हात लजात लगी हिये । प० ४२३/१७१

अँगरात व० कृ० । अंगरायो, अंगरान्यो भू० कृ० । अंगराइबो—अंगरैबो क्रि० सं० ।

अगराग पुं० १. शरीरांगों को रंजित करने का सुगंधित द्रव्यों का लेप । चन्दन ।
उ०—परम परब पाइ, न्हाइ जमुना के नीर पूरि कै प्रवाह अंगराग के अगर तैं ।
शृं० ११६/३३५
विशेषत : ५ अंगों को रंजित करने की परम्परा थी—१. माँग में सिन्दूर भरना, २. भाल पर खौर, ३. गाल या चिबुक पर तिल बनाना, ४. उरस्थल पर केसर मलना, ५. हाथों में मेंहदी लगाना ।

अँगवारी—अँगवारि स्त्री० सुन्दर अंगों वाली अर्थात् स्त्री ।
उ०—ऐसी अँगवारिन के घाले घर जात हैं ।
गं० ५६/१६

अंगा पुं० दे० अंग ।

अंगाकरि—अँगाकरि स्त्री० अंगारों पर सेंकी हुई खरी रोटी अथवा बाटी ।

उ०—अबहीं अँगाकरि तुरत बनाई। जे भजी भजि ग्वालनि सँग खाई। सूर १०/१२१३/५४६

अंगार—अँगार—अँगारो पुं० लकड़ी। कोयला आदि का दहकता हुआ अग्निखण्ड।

उ०—ते सोवत बारूद पर पटि में बाँधि अँगार। प० ११५/४६

मु०—अंगारो करिबौ—भस्म करना। जला डालना।

उ०—काठी कै मनोरथ, बिरह हिय भाठी कियो, पट कियौ लपट अँगारो कियो अंगु है। अज्ञात

अँगिया स्त्री० कंचुकी। चोली।

उ०—ओप उरोजनि की उपजै दिन काहि मढ़ै अँगिया न मढ़ैगी। के० I पृ० १०

अंगिरस पुं० दस प्रजापतियों में गिने जाने वाले एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि।

उ०—अंगिरस साप, अजगर रूपी विद्याधर आइ डस्यो नंद अधरात भय भूरि कर्यो। दे० I/६४/१६

अंगिरा पुं० दे० अंगिरस।

अंगी स्त्री० दे० 'आँगी'।

अंगीकार पुं० स्वीकार। मंजूर। कबूल।

उ०—धर्म्मादिक द्वारे प्रतिहार। पुष्टि भक्ति को अंगीकार। नं० १०/२८२

अंगीकृत वि० अंगीकार किया हुआ। गृहीत।

उ०—जौ न अंगीकृत करैं वै होइ हौं रिन दास। सूर० १०/३४३१/३७४

अँगीठी स्त्री० विशेष प्रकार का अग्नि-पात्र।

उ०—कागर के रूप काहू आगि की अँगीठी है। के० I पृ० ५६

अंगुर—अंगुरि—अंगुरी स्त्री० १. उँगली। २. उँगलीभर नाप।

उ०—अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं, पुनि पुनि और मँगायौ। सूर० १०/३४२/३०१

अँगूठा—अँगुठा पुं० हाथ या पैर की पहली और सबसे मोटी उँगली।

उ०—आपु गयौ तहाँ जहँ हैं प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगूठा चचोरैं। सूर० १०/६२/२३०

अँगूठी स्त्री० उँगली में पहनने का छल्ला। मुंदरी। मुद्रिका।

उ०—तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्ही, जिहिं जिय उपज्यौ धीर। सूर० ६/८६/१७६

अँगेट स्त्री० अंग-दीप्ति। अंगो की शोभा।

उ०—एड़ी तें सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी। घ० ३८८/२३२

अँगेठि स्त्री० अँगीठी।

उ०—गोरी अँगेठि अडीठि सी डीठि, गु पैठि रह्यौ मनु पीठ पनारी। गं० ७४/२४

अँगोछ— सक० गीले कपड़े से शरीर पोंछना।

उ०—अंग अंगोछि भूपन बसन पहिरावत नंदनंद। प० ५४/६०

उ०—कहा अँगोछति मुगुध तिय पुनि पुनि चंदन जानि। म० ८२/३१३

अँगोछा—अँगौछा पुं० शरीर पोंछने का वस्त्र। गमछा (तौलिया)।

उ०—विमल अँगोछे पोंछि भूपन सुधारि सिर, आँगुरिन फोरि तिन तोरि तोरि डारती। भि० I/२२७/३३

अँगोट—अगोट— सक० रोकना। घेरना।

उ०—दै चखचोट अँगोट मग तजीजु तिय बन माहिं। प० ४२१/१७१

उ०—तेह तरेरे दृगन ही राखत क्यों न अँगोट। प० ७१/६४

अँच—अँचव— सक० आचमन करना। पीना।

उ०—अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढ़ै। सूर० १०/१७४/२५६

अँचवत व० कृ०। **अँचयो—अँचयौ** भू० कृ०। **अँचैबो** क्रि० सं०।

मु०—अँचै जा—निगल जाना। नष्ट कर देना।

उ०—बालपने में तहव्वर खान कों सेन समेत अँचै गयौ भाई। भू० ५१८/२३१

अँचबन पुं० आचमन। दे० 'अँच'—'अँचव' भी।

उ०—भोजन कियो सबन सुख मानी, सब मिलि अँचबन कीनो। कुं० १०/७

अँचर—अँचरा (अंचल) पुं० साड़ी का छोर। पल्ला।

उ०—निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अँचर लेत बलाइ। सूर० ६/८३/१७६

उ०—कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै। सूर० १०/७६/२३३

अंचल पुं० साड़ी का छोर। पल्ला। दे० 'अँचर' भी।

उ०—लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर अंचल कर माल। सूर० वि० १८६/५२

मु०—अंचल ले—दे—घूंघट काढ़ना, घूंघट की आड़ करना।

उ०—रुद्र कौं देखि कै मोहिनी लाज करि, लियौ अंचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ। सूर० ८/१०/१४६

उ०—पीताम्बर वह सिर तैं ओढ़त, अंचल दै मुसकात। सूर० १०/३३८/३००

अंज सक० दे० 'आँज'–।

उ०—अंजत ही इक नैन बिसार्‌यौ। कटि कंचुकि लँहगा उर धार्‌यौ। सूर० १०/११८०/५२६

अंजन पुं० काजल।

उ०—अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन। बि० ४६/२५

अंजलि—अँजलि स्त्री० हथेलियों को मिलाने से बना हुआ संपुट।

उ०—जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के बिभव तैं अधिक बाढ़ौ। सूर० वि०/५/२

अंजित वि० अँजी हुई। दे० 'आँज—' भी।

उ०—अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं। घ० २७२/१८५

अँजुरी~अंजुरि स्त्री० दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट। दे० 'अंजुली' भी।

उ०—जोबन रूप दिवस दसही कौ, जल अँजुरी की जानी। सूर० १०/२५६२/१६७

अंजुलीं—अंजली—अंजुल स्त्री० हथेलियों को मिलाने से बना हुआ संपुट।

उ०—कबहुँ परस्पर छिरकत मंजुल अंजुल भरि भरि। नं० १०२/२६

उ०—जै जै करि पुहुप अंजुली छोड़त सुखधाम। गो० ६३/२६

अँजोर— सक० अंजुलि में भरना। अंजुलि निकालना। छीनना। पौ फटने का समय।

उ०—बुधि बिवेक बल बचन चातुरी, पहिलेहि लई अँजोरि। सूर० १०/२३५७/१२२

उ०—मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि। सूर० १०/३२७/२६७

अंझा पुं० नागा। लोप।

उ०—अंझा सी दिन की भई संझा सी झलकी आय। भू० ३२७/१८६

अँटक— अक० बीच में रुक जाना। उलझना। फँस जाना।

उ०—सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ, अन्तर प्रीति जाति नहिं तोरी। सूर० १०/३०५/२६२

अंड—अंडा पुं० १. ब्रह्मांड। विश्व।

उ०—पुनि सबकौं रचि अंड, आपु में आपु समाए। सूर० २/३६/१०४

२. फोता। ३. वीर्य। ४. कामदेव। ५. अण्डा।

उ०—अति प्रचंड यह अंड महाभट जाहि सबै जग जानत। सूर०

—ज पुं० अंडे से उत्पन्न।

—भव पुं० अंडे से उत्पन्न।

उ०—मकर, उलूपी अंडभव, बैसारन, झष, मीन। नं० १४४/८१

अंडज पुं० अंडे से उत्पन्न होने वाले प्राणी—पक्षी, साँप, मछली आदि। दे० 'अंड' भी।

उ०—जैरज, अंडज, स्वेदज औ उद्‌देभिज्झ्ज चहुँ जुग देव बनाई। दे० I/३/३८

अँडदार वि० अड़ने वाला। दे० 'अड़'

उ०—ज्यों मतंग अँडदार को लिये जात गँडदार। म० १६२/२४४

अंतःपुर पुं० १. राजप्रासाद। २. जनानखाना। हरम।

उ०—तिहि छिन द्विजवर चल्यौ अंतःपुर आयौ। नं० ७६/१८१

अंत पुं० १. अंतिम अंश। छोर। सीमा।

उ०—आदि मध्य अरु अंत, गगन, दस-दिस, बहिरंतर। क० १/१/१

२. समाप्ति। इति। अवसान। मृत्यु।

उ०—छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत संग नहिं जाइ। सूर० १/३१७/८७

क्रि०वि० ३. अन्यत्र। दूसरी जगह। दे० 'अनत' भी।

उ०—गोप सखन सँग खेलत डोलौं, तिन तजि अंत न जैहौं। सूर०

अंतक पुं० १. अंत करने वाला।

उ०—महा बलवंत, हनुमंत बीर अंतक ज्यौं। क० ४/३५/८२

२. यमराज। काल।

उ०—सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है। घ० क० ६३/६४

—लोक पुं० यमलोक।

उ०—चेत रे चेत अजौं चित-अंतर, अंतक-लोक अकेलो ही जैहै। के० I पृ० १२६

अंतरंग[1] पुं० (अंतः+अंग) शरीर के भीतरी अंग जैसे हृदय, मन, मस्तिष्क आदि।

अंतरंग[2] वि० आत्मीय। घनिष्ठ। अन्दरूनी (गुप्त) बातों से संबंध रखने वाला।

अंतरंगिनी वि० अतिप्रिय। घनिष्ठ।

उ०—'दास कुंभन' स्वामिनी कौ सुजसु अंतरंगिनी सहचरी मुदित गावै। कुं० १६०/६४

स्त्री० अंतरंग की सखी।

अंतर पुं० १. हृदय। अंतःकरण। मन।

उ०—चिंता मानि, चितै अंतर-गति, नाग-लोक कौं धाए। सूर० वि०/२६/६

२. भीतर। बीच। मध्य।

उ०—प्रेम उमंडि रहे रस मंडित अंतर की मड़ई मिलि दोऊ। भि० I २२३/१३७

३. फ़र्क़। भेद।

उ०—तौ लीलावती स्याम में तो में नेक न उर अंतर आवै। भि० I ४५/२२२

४. दूरी।

उ०—अंतर में बासी पै प्रबासी को सो अंतर हैं। घ० ८६/६०

—गत वि० मन के भीतर।

उ०—जानराय, जानत सबै, अंतरगत की बात। घ० २६/५४

—गति पुं० हृदय की गति। मन की दशा या वृत्ति।

उ०—चिंता मानि चितै अंतर-गति, नाग लोक कौं धाए। सूर० वि० २६/६

—दाह पुं० हृदय की जलन, हृदय का संताप।

उ०—अंतरदाह जु मिट्यौ व्यास कौ इक चित ह्वै भागवत किऐं। सूर० वि० ८६/२४

—द्वार पुं० अन्तःपुर का प्रवेशद्वार। भीतरी दरवाजा।

उ०—अंतरद्वार आइ भए ठाढ़े, सुनत तिया की बातैं। सूर० १०/२६६६/१८६

—भाव पुं० आंतरिक अभिप्राय। भिन्न भाव। छिपाव।

उ०—कछु पुनि अंतरभाव तें कही नायिका जाहि। भि० I/१००/१६

अंतरजामी~अंतरजामी वि० हृदय के भीतर तक जाने वाला। हृदय की बात जानने वाला।

उ०—तुम सौं कहा छिपी करुणामय, सबके अंतर-जामी। सूर० वि०/१४८/४१

पुं० परमात्मा। ईश्वर।

अंतरधान~अँतरधान वि० अदृश्य। लुप्त।

उ०—यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ। सूर० ८/१६/१४८

अंतरलापिका स्त्री० अंतर्लापिका; वह पहेली जिसका उत्तर उसी के अक्षरों में मिलता हो।

उ०—अंतह अंतरलापिका यह जानैं सब कोइ। के० I ४३/२२३

अंतरवर्तिनी वि० भीतर रहने वाली। अंतरंगिणी। घनिष्ठ।

उ०—तियपिय की हितकारिनि अंतरवर्तिनि सोइ। भि० I २२६/३३

अंतरहित वि० तिरोहित। अदृश्य। गायब।

उ०—आदि अंत रहित भए हैं अंतरहित, गिरीसु अब गोपी, आधि अधिक अधीन ह्वै। दे० I/६०/१८

अंतराइ पुं० विघ्न। बाधा। अन्तराय।

उ०—तिन की अंतराइ हम करें। ते सब अहनिसि हमसौं डरैं। सूर० ११/३/५८०

अंतरिच्छ~अंतरिक्ष पुं० १. आकाश और पृथ्वी के बीच का स्थान।

उ०—किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छकाटी। सूर० ६/६६/१८२

उ०—अंबर, पुहकर, नभ, बियत, अंतरिक्ष, घन-बास। नं० १७७/८४

२. अधर। ओठ।

अंतरित वि० भीतर आया या किया हुआ। छिपा हुआ। बीच में आया हुआ। अदृश्य। पृथक् किया हुआ।

उ०—गुप्त, तिरोहित, अंतरित, गूढ़, दुरुह, निलीय। नं० ६६/७३

अँतरीख पुं० दे० 'अंतरिच्छ'।

उ०—रूप को कूल टिकान कछू बिनु, लंक मनो अँतरीख धरी है। गं० १३०/४०

अँतरु पुं० दे० 'अंतर'।

उ०—सुंदर बदन बिलोकनि पिय के अँतरु भयो तब। नं० २७/१२

अँतरौटा पुं० अन्तःपट। अन्तःवस्त्र। महीन साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र जिससे शरीर दिखाई न दे। साया। अस्तर।

उ०—चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मदमाते। सूर० वि०/४४/१३

अंत्यज पुं० चांडाल। निम्न जाति में उत्पन्न।

उ०—ब्रह्मादि अंत्यजनि अंत अनंत लोग। के० II पृ० २७४

अंदेसो~अंदेस पुं० १. सोच। चिंता। फ़िक्र।

उ०—सिय-अंदेस जानि सूरज-प्रभु, लियौ करज की कोर। सूर० ६/२३/१६०

२. भय। डर। आशंका।

उ०—कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई, अँदेसो आहि। घ० क० १५२/१२५

३. संशय। ४. अनुमान।

अंदोर पुं० आन्दोलन। हलचल। कोलाहल। शोर।

उ०—घेरि चहुंओर, करि सोर अंदोर बन। सूर० १०/५६६/३७८

अंध~अंधा~अंधौ पुं० १. नेत्र-विहीन। जिसे दिखाई न दे।

उ०—बहरौ सुनै मूक पुनि बोलै, अंधे को सब कछु दरसाई। सूर० वि० १/१

२. एक प्रकार का काव्य-दोष जो कवियों की बँधी हुई रीति के विरुद्ध कथन में होता है।

उ०—अंध बधिर अरु पंगु लजि, नग्न मृतक मति मुद्ध । अंध विरोधी पंथ को, बधिरति सबद विरुद्ध । के० I पृ० १०१

३. उल्लू । ४. चमगादड़ ।

—कूप पुं० अंधा कुआँ । सूखा कुआँ जिसमें पानी न हो ।

उ०—अंध कूप तैं काढ़ि बहुरि तेहिं दरसन दै निस्तारा । सूर० १०/४१६६/५४७

—गति स्त्री० अंधे व्यक्ति की सी दशा । किंकर्तव्य-विमूढ़ता की स्थिति ।

उ०—क्रोध दुसासन गहे लाज-पट, सर्व अंध गति मेरी । सूर० वि० १६५/४५

—जाल पुं० अंधकार का विस्तार । विस्तृत अंधकार ।

उ०—गरजत धुनि प्रलय काल, गौकुल भयौ अंध-जाल । चकित भये ग्वाल-बाल घहरत नभ हलचल । सूर० १०/८५७/४४५

—मति वि० नासमझ, मूर्ख ।

उ०—रे दसकंध अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि । सूर० ६/७६/१७६

—सुत पुं० अंधे धृतराष्ट्र के पुत्र अर्थात् कौरव ।

उ०—अंबर गहत द्रौपती राखी, पलटि अंधसुत लाजैं । सूर० वि०/३६/११

अंधक[1] वि० १. नेत्रहीन । २. अज्ञानी । अविवेकी । ३. अन्धकारमय ।

अंधक[2] पुं० एक दैत्य जो कश्यप एवं दिति का पुत्र जिसके सहस्त्र सिर थे ।

उ०—सूरदास के प्रभु तुव मग जोवै, अंधकरिपु ता रिपु-सुख-दैनी । सूर० १०/२७६८/२०८

—रिपु पुं० अंधक दैत्य को मारने वाले अर्थात् शिव । अंधक स्वर्ग से पारिजात लाते समय शिव द्वारा मारा गया इसीलिए शिव अंधक-रिपु कहे जाते हैं ।

अंधकार—अँधकार पुं० अंधेरा । दे० 'अँधियार' भी ।

उ०—तारा गन सब गगन छपाने, अरुन उदित अँधकार गयौ । सूर० १०/५२०/३५३

अंधकाल—अंधकाला पुं० दे० 'अंधकार' ।

उ०—मिट्यौ अंधकाल, उठौ जननी-सुखदाई । सूर० १०/६१६/३८४

अंध-धुंध पुं० घोर अंधकार । दे० 'अंधाधुंध' भी ।

उ०—कोउ लै रहत ओट बृच्छनि की, अंध-धुंध दिसि बिदिसि भुलाने । सूर० १०/८६०/४४५

अँधरा पुं० १. अंधा व्यक्ति जिसे दिखाई न दे ।

उ०—बोलि उठ्यो अँधरा अधरातक सौति के हेत कै खेत धनी है । दे० I/१४/२६५

२. उल्लू । दे० 'अंध' भी, 'आँधरो' भी ।

अंधा-धुंध पुं० घोर अंधकार । बहुत अँधेरा ।

उ०—अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जहँ रह्यौ सो तहीं छपायौ । सूर० १०/७७/२३३

अँधाधुँधि—अंधाधुँधी स्त्री० दे० 'अन्धाधुन्ध' ।

१. घोर अंधकार ।

उ०—द्विजदेव की सौं अँध्यारी की अँधाधुँधि मैं लेत कोऊ कान्हसुख-संपति के साज कौं । शृं० १२१/३४१

२. अंधेर । विचार हीन स्थिति ।

३. बहुतायत, अधिकता ।

अँधार पुं० दे० 'अंधेरा' भी । अंधकार ।

उ०—जे संसार-अँधार-अगर मैं मगन भए बर । नं० ३/२०

उ०—करि लै उजारो, क्यों अँधारे में दुख देव, तेरो घर-बार, क्यों तू चेरो घर घर को । दे० I/१४/४०

अँधियार—अँध्यार पुं० दे० 'अंधियारौ' ।

उ०—द्विजदेव जू सूझि परैगी तुम्हैं, भटक्यौं मन बार अँध्यारन में । शृं० २५०/७१८

उ०—पसरि पर्‌यो अँधियार सकल संसार घुमाँड़ घुरि । अज्ञात

अँधियारौ—अँध्यारौ पुं० अँधेरा । अंधकार । दे० 'अंधेरो' भी ।

उ—कह्यौ सँदेस सूर के प्रभु कौं, यह निरगुन अँधियारौ । सूर० १०/३६०४/४७३

उ०—'सूरदास' प्रभु के दरसन बिनु, दीपक भौन अँध्यारौ । सूर० १०/३१६४/३२७

अँधियारी—अँध्यारी—अँधेरी वि० अंधकारमय । अंधेरी ।

उ०—निसि अँधियारी तऊ प्यारी परबीन चढ़ि माल के मनोरथ के रथ पैं चली गई । प० १६१/१२०

उ०—निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेह । सूर० १०/५/२१२

अँधेरा पुं० दे० 'अँधियारौ' ।

उ०—तन मृगमद की बास तें, समुझि अँधेरे माँह । प० ३०५/७०

अँधेरौ पुं० अंधेरा । अंधकार । दे० 'अँधियारौ' ।

उ०—भाजी हौं डराइ करि भवन अँधेरी लागे
निपट छवान कान्ह आनि गह्यौ कर को।
शृं० ८२/२१७

अंब[१] पुं० १. आम का पेड़। २. आम का फल।
उ०—अंब सुफल छाँड़ि, कहा सेमर कौं धाऊँ।
सूर० वि०/१६६/४५

—फल पुं० आम का फल।
उ०—नासा कीर मुकुर कपोल बिंब अधरनि,
दार्‌यो-बार्‌यो दसननि ठोढ़ी अंबफल मैं।
भि० I/६०/१०३

अंब[२] स्त्री० माता। जननी।
उ०—आज लागि जानति हुती मैं तुम्है अंब! कहा
वापुरी बियोगिनि तैं कीन्हीं एती छल है।
शृं० २३६/६८६

अंबक पुं० १. आँख।
उ०—लोचन, अंबक, चक्षु, दृग, ईछन रूप अधीन।
नं० ५५/७१
२. शिवनेत्र।
३. पिता। ४. ताँबा।

अंबर पुं० १. आसमान। आकाश।
उ०—चंचल समेत भुव अंबर मैं खेलत हैं।
क० १/३३/११
२. वस्त्र।
उ०—साजि नव-अंबर मनोज-मद-माँती वाल, साँझ
ही समैं तैं अभिसार की तयारी की।
शृं० १२६/३५५
३. आवरण।
उ०—वाहैं छिपाए कबै लौं इनै कुच दोऊ दिगंबर
अंबर चाहैं। प० ३६/३१४

—वानी स्त्री० १. आकाशवाणी। २. मेघ-गर्जन।
उ०—अंबरवानी भई सजल बादर दल छाए।
सूर० १०/४१८८/५४१

—मनि पुं० आकाश की मणि अर्थात् सूर्य।
उ०—अंबरमनि, दिनमनि, रवी, सूर, पुन्न त्रय
अंग। नं० १४/१०२

अँबराई स्त्री० अमराई। आम का बगीचा।
दे० 'अंब' भी।
उ०—अंति जल भींजि चीखर टपकत और सबै
टपकत अँबराई। सूर० १०/१६६०/५०

अंबरीष पुं० अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा जो परम वैष्णव थे तथा दुर्वासा के शाप से जिनकी रक्षा विष्णु भगवान ने की थी।
उ०—दुर्वासा कौ साप निवारयो, अंबरीष-पति
राखी। सूर० वि०/१०/३

अंबा स्त्री० १. माता।
२. गौरी। देवी। दुर्गा।
उ०—गौरी है अंबा-सुता, गौरी हरदी होइ।
नं० २/६१

अंबिका स्त्री० उमा। दुर्गा।
उ०—केते बीर मारिके बिडारे किरवानन तें केते
गिद्ध खाये केते अंबिका अर्चाकिग।
भू० ४७६/२२३

अंबु[१] पुं० पानी। जल।
उ०—सारंग मुख परत अंबु ढरि मनु सिब पूजति
तपति बिनास। सूर०

—निधि पुं० सागर। समुद्र।
उ०—मगन हौ भव-अंबुनिधि मैं कृपासिंधु मुरारि।
सूर० वि०/६६/२६

—रुह पुं० जल से उत्पन्न। कमल।
उ०—जयति वृंदाविपिन-भूमि डोलनि, अखिल-
लोक वंदिनि अंबुरुह चरने। कुं० १/१

अंबु[२] पुं० दे० 'अंब'।
उ०—जंबु वृक्ष कहौ क्यों लंपट फलबर अंबु फरै।
सूर०

अँबुआ पुं० दे० 'अंब'।
उ०—मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली, मधुकर परिमल
भूले। सूर० १०/२८५४/२३२

अंबुज पुं० [अंबु+ज] १. जल से उत्पन्न २. कमल।
उ०—सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर धारी।
सूर १०/२०२/२६७
२. चन्द्रमा।
उ०—जोन्ह बीच अंबुज मुखी भई कंबु को छीर।
म० ४६७/४०७

अंबुजी—अंबूजी स्त्री० कमलिनी।
उ०—अनुदिन काम-विलास-विलासिन वै अलि तू
अंबूजी। सूर १०/२८२६/२१७

अंबुद पुं० [अंबु+द] जल देने वाला, बादल।
उ०—अंबर पीत लसै चपला छबि अंबुद मेचक
अंग उरेखे। म० २७६/२६४

अंबुधि—अंबोधि पुं० समुद्र। सागर।
उ०—भव-अंबोधि, नाम-निज-नौका, सूरहिं लेहु
चढ़ाइ। सूर वि०/१५५/४३

अंबू-खंडन पुं० स्वाति-बूंद के अतिरिक्त सब जलों का तिरस्कार करने वाला अर्थात् चातक-पपीहा।
दे० 'अंबु' भी।
उ०—अंबू खंडन सब्द सुनत ही, चित चक्रत उठि
धावत। सूर १०/३६२३/३६८

अंभ पुं० १. जल।
उ०—मित्र अमित्रन की अँखियान प्रवाहु सौ, आनंद सोक के अम्भ को।
दे० I।/४६/५६
२. तेज। दीप्ति। पानी।
उ०—गोसलखानहु में लख्यौ सिव सरजा को अंभ।
भू० २५१/१७६

—निधि—पुं० सागर। समुद्र।
उ०—सिंधु, सरित पति, सलिलपति, अंभोनिधि, कूपार। नं० १४६/८१

अंभोज पुं० अंबु (या अंभ) से उत्पन्न—१. कमल। पद्य।
उ०—कंठ कठुला नीलमनि, अंभोज-माल सँवारि।
सूर १०/१६६/२५८
२. सारस पक्षी। ३. चन्द्रमा।
४. शंख। ५. कपूर।

अंमर पुं० 'अम्बर'। आकाश।
उ०—जिनके न ऊपर प्रवाह होत कंमर तें अंमर की अँमरतरंगिनि के जल के।
गं० ३५७/११०

अंमृत—अंम्रित—अम्रित पुं० दे० 'अमृत'।
उ०—हरि कह्यौ साग-पत्र मोहि अति प्रिय, अम्रित ता सम नाहीं।
सूर १/२४१/६५

अँवा पुं० कुम्हार का आँवा, जिसमें मिट्टी के बर्तन पकाये जाते हैं।
उ०—ब्रज करि अँवा जोग ईंधन करि, सुरति आगि सुलगाए।
सूर १०/३७८१/४४७

अंस[1]— पुं० १. भाग। खंड। अंश। अंग। अवयव।
उ०—विष्नु-अंस सौं दत्तऽवतरे। रुद्र अंस दुर्वासा धरे। ब्रह्म अंस चन्द्रमा भयो।
सूर ४/३/११४
२. अंस। कंधा।
उ०—भूरि भाग्य गोकुल की बनिता हरि संग रमी अंस भुज डारी। ध्र० १०७/९२

—गामी—वि० १. कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाला।
२. आलिंगन करने वाला।
उ०—जुवति-अंसगामी मिले छीतस्वामी।
छी० ५६/२६

—बली—वि० पुष्ट कंधों वाले। शक्तिशाली।
उ०—आवत हैं नृप कंस सभा, बिबि अंसबली जदुबंस सिरोमनि। दे० I १३०/२५

३. कला।
उ०—तापर उरग ग्रसित तव सोभित पूरन अंस ससी। सूर १०/५४०/११६६
४. किरण। दे० 'अंसु' भी।
उ०—सित कमल बंस सी सीतकर अंस सी।
भि० I ६/२३४
३. अधिकार।
उ०—अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस। सूर १०/३५८७/३६०

अंस[2] पुं० ओस।
उ०—नील-नीरज दल मनौ अलि-अंस-कनि कृत लोल। सूर १०/३५०/३०३

अंस[3] पुं० अश्रु। आँसू।

अंसी वि० अंशवाला। अंशधारी।
उ०—द्वारपाल इतै कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदंत धरे 'सूर' ब्रह्म अंसी।
सूर १०/३०७४/३००

अंसु—अंशु पुं० प्रकाश। प्रभा।
उ०—सरद निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि। सूर १०/३५१/३०३

—मान—पुं० १. अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा जो सगर के पौत्र और असमंजस के पुत्र थे।
उ०—अंसुमान राजा ढिग आइ। साठि सहस की कथा सुनाइ। सूर ९/९/१५६
२. सूर्य।

—माल—स्त्री० किरणमाला। किरण-समूह।
उ०—जागियै गोपाललाल, प्रगट भई अंसुमाल मिट्यो अंधकाल, उठी जननी सुखदाई।
सूर १०/६१९

—माली—पुं० सूर्य।
उ०—अर्क, अंसुमाली, तपन, आतप, आदित जानि।
नं० ३६/९८

अंसुआ—अँसुवा—पुं० दे० 'आँसु'।
उ०—भूख औ प्यास चली मन तें अँसुआ चले नैनन तें सजि धारन।
भि० I १६६/१३२

अउर अव्य० दे० 'और'।
वि० अधिक। ज्यादा।

अऊत वि० १. अपूत। अपूता। पुत्रहीन।
उ०—गये हुये माँगन कौं पूत। यह फल दीनो सती अऊत। अर्ध० पृ० ९

अऊल— अक० भीतर से गरम होना । उमसना । जलना । क्रोध करना । चुभना । उत्ताप से भर जाना ।
उ०—छत आजु को देखि कहौंगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है । रघु०

अएर— सक० स्वीकार करना । अंगीकार करना । ग्रहण करना ।
उ०—दियौ सो सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अएरि । बि० ८१/३६

अक[1] पुं० [अ=नहीं+क=सुख] सुख का अभाव । दुःख ।
उ०—बरबस करत बिरोध हठि, होन चहत अकहीन। न० पृ० ४७

अक[2]— अक० ऊबना । उकताना । घबराना ।

अकउआ पुं० आक । अर्क । मंदार ।

अकच[1] पुं० केतु ग्रह ।

अकच[2] वि० बिना बालों का । गंजा । दे० 'कच' ।

अकजक वि० दे० 'अकझक' ।

अकझक वि० चकित । भौचक्का । किंकर्त्तव्यविमूढ़ ।

अकड़ स्त्री० ऐंठ । घमण्ड । तनाव । शेखी । हठ । मरोड़ । बल ।
अक० १. ऐंठना । घमंड करना ।
२. सूखकर सिकुड़ना और कड़ा होना । तनना ।
—ऐत—वि० अकड़बाज ।
—ऐल—वि० अकड़बाज ।
—बाज—वि० ऐंठनेवाला । घमंडी । बड़बोला । शेखी मारने वाला ।

अकत वि० अक्षत । सम्पूर्ण । पूरा । समूचा । सारा । सब ।

अकत्थ वि० न कहने योग्य, अकथनीय ।
उ०—सांबाहूली फूल की महिमा महा अकत्थ । म० ५८/४५३

अकत्थी वि० अवर्णनीय ।
उ०—हत्थिन सों हत्थी मत्था मत्थी रारि अकत्थी करन लगे । प० २०२/२६

अकथ वि० कहने की सामर्थ्य से बाहर । जो कहा न जा सके ।
उ०—अकथ अपार भवपंथ के विलोकों । भू० १/१२८

अकथन पुं० कथन न करना । न कहना ।
वि० जिसका कथन न किया जा सके । अवर्णनीय । अकथनीय ।
उ०—मन बच करि कर्म रहित बेदहु की बानी कहिए जो निबहिबे अकथन कहुँ सोही । सूर स्याम मुख सुचन्द्र, लीनि जुबति मोही । सूर०

अकथ्य वि० न कहने योग्य । अकथनीय । अवर्णनीय ।

अकधक पुं० आशंका । भय । असमंजस । सोच-विचार ।
उ०—ह्वै कै लोभी-लोभ बस, छबि मुकताहल लैन । कूदत रूप समुद्र में, अकधक करत न नैन । रत० दो० ४५२

अकन— सक० १. कान लगाकर सुनना । आहट लेना ।
उ०—नगर सारे अकनत स्रवन अति रुचि उपजावत । सूर १०/३०२१/५
अकनत—व०कृ०
अकनौ, अकनी—भू०कृ०

अकना पुं० कन (दाने) रहित जौ-बाजरे की बाल ।

अकबक[1] पुं० १. असम्बद्ध प्रलाप । निरर्थक बात या शब्द ।
उ०—जैसे कछु अकबक बकत है आज हरि, तैसइ जानि नावँ मुख काहू को निकसि जाय । के०
२. घबड़ाहट । चिन्ता ।
उ०—इंद्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक संभु जू के सकपक, केशोदास को कहै । के० ३५/१४५
३. होश-हवास । सुधि । चतुराई ।
वि० भौचक्का । चकित । निस्तब्ध ।
क्रि०वि० संभ्रमित होकर । घबराये हुए । घबराकर ।
उ०—कोप मघवा को लोग अकबक जोहैं री । ठा० ६/६३

अकबका— अक० चकित होना । भौचक्का रह जाना । घबराना ।
उ०—सकलकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े । सूर १०/३४७६/५
अकबकात—व०कृ०
अकबकानो—भू०कृ०
अकबकाइबो—क्रि०सं०

अकबक्क—अकबक— चौंकना । भौंचक रह जाना ।
उ०—चक्कित चित चहूँ ओर दिक्क दिग्गज अकबक्कत । प० १०/२७८
वि० १. श्रेष्ठ ।

अकबर पुं० १. मुगल सम्राट अकबर जिसने भारत में १५५५ ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकब्बर पुं० दे० 'अकबर' ।

उ०—साहि अकब्बर संग की भामिनि नेह निमित्त
जु गेह नहाई। गं० १३५/४२

अकर[1] पुं० १. आकर। खान। २. समूहराशि।
उ०—हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भू० पृ० १०

अकर[2] स्त्री० अकड़। ऐंठ। घमण्ड।

अकर[3] वि० १. हस्तरहित। बिना हाथ का।
उ०—अकर कहावत धनुष धरे देखियत परम
कृपाल पै कृपाल कर पति है।
के० I पृ० १५१
२. दुष्कर। न करने योग्य। कठिन। विकट।
उ०—भारथ अकर करतूतिन निहारि लही, यातें
घनस्याम लाल तोते बाज आए री।
भि० II १३/१६०
३. क्रियारहित। निष्क्रिय। ४. बिना कर या महसूल का। जिसका महसूल न लगता हो।

अकर[4]— अक० दे० 'अकड़—'।
उ०—मिथ्याबाद आपजस सुनि सुनि मूछहिं पकरि
अकरती। सूर० १०/२०३/१६

अकरख— सक० खींचना। आकर्षित करना। तानना। चढ़ाना।

अकरन[1] क्रि०वि० अकारण। बेसबब।

अकरन[2] वि० १. न करने योग्य। अकरणीय। जिसका करना अनुचित हो।
उ०—करुनानिधि तेरी गति लखि न परै। धर्म-
अधर्म अधर्म धर्म करि अकरन करन करै।
सूर १/१०४
२. करण अर्थात् इन्द्रियों से रहित। परमात्मा।
३. बिना हाथों वाला।

अकरम पुं० अकर्म। न करने योग्य काम। बुरा कर्म। कुकर्म।
उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग,
अनरीति। जाको नाम लेत अध उपजैं सोई
करत अनीति। सूर० वि० १२९/३६

अकरमी पुं० बुरा काम करने वाला व्यक्ति। दुष्कर्मी। पापी।
उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि लेहु मुकुताय।
कबीर०, पृ० ५५०

अकरषन पुं०—अकरखन।
—मंत्र—पुं० वशीकरण मंत्र।

उ०—कियो अकरषन मंत्र सो बंसीधुनि बृजराज।
उठि उठि दौरी बाल सब तजे लाज गृहकाज॥
भि० I ५३६/७९

अकरास[1] स्त्री० १. अँगड़ाई।
२. आलस्य। सुस्ती।

अकरी[1] स्त्री० हल में लगाया जाने वाला पोले बाँस का टुकड़ा या चोंगा जिसके ऊपर मिट्टी, काठ या बाँस की बुनी कीप (जिसे चाड़ी कहते हैं) लगाकर गेहूँ, जौ, चना, मटर आदि बोई जाती है।

अकरी[2] वि० न करने वाला। अकर्ता।

अकरौ[1] वि० १. [स्त्री०—अकरी] महँगा। अधिक दाम का। कीमती।
उ०—लै आए हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।
सूर० १०/३१०४
२. खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य।

अकरौ[2] पुं० १. आँवला। २. रबी की फसल में गेहूँ, जौ आदि के पौधे के साथ उगने वाली वनस्पति जिसकी फलियों में राई से मिलते जुलते दाने निकलते हैं।

अकरुन वि० अकरुण। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। हृदयहीन।

अकर्ख पुं० १. आकर्षण।
उ०—देवै कोप अकर्ख रोहिणी आपुन अंश जो
लीनो हो। सूर०
२. आकर्षण, तंत्रशास्त्र का एक प्रयोग विशेष।

अकर्ता वि० कर्म न करने वाला। कर्म से निर्लिप्त।

अकलंक[1] वि० निष्कलंक। दोषरहित। निर्दोष। बेदाग।
उ०—भनहूँ राजति रजनि पूरन कला अति
अकलंक। सूर

अकलंक[2] पुं० दोष। लांछन। ऐब। दाग।
उ०—ठाने अठान जेठानिन हूँ सब लोगन हूँ
अकलंक लगाए। अज्ञात

अकलंकित वि० निष्कलंक। निर्दोष। बेदाग। शुद्ध। साफ।
उ०—अलक तिलक राजत अकलंकित, मृग-मद-
अंक बनी। सूर० १०/२१६४/५

अकल[1] वि० १. जिसके अवयव न हों। अवयव रहित।
२. अखंड। सर्वांगपूर्ण।
३. जिसका अनुमान न लगाया जा सके। परमात्मा का एक विशेषण।

उ०—मैं अविगत अज अकल हौं यह मम न पायो।
सूर

अकल² वि० विकल। व्याकुल। बेचैन।

अकल³ स्त्री० दे० 'अकिल'।

अकलै दे० 'अकिली' 'अकली'। अकेला।

उ०—कान्ह हे बहुतायत मैं अकलैन की वेदन जानो कहा तुम। घ० क० १३४/११४

अकलै वि० जड़बुद्धि। अत्यधिक मूर्ख।

उ०—लंगर, ढीठ, गुमानी, ढूंढक, महा मसखरा, रूखा। मचला, अकलै-मूल, पातर, खाउँ-खाउँ करै भूखा। सूर० १/१८६

अकल्पित वि० कल्पना से परे। अकल्पनीय।

उ०—बीर कुल बाल है न सहिहौं त्रिकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की अकल्पित कुचाली को।
रस०, पृ० ३२३

अकल्मष वि० निष्पाप। पाप रहित। निर्दोष। निर्विकार।

अकल्यान¹ पुं० अमंगल। अहित।
वि० कल्याण रहित। अशुभ।

अकवारि स्त्री० दे० 'अँकवारी'।

उ०—देव कहा कहिये उतते अकवारिनु ल्याइहै, बुद्धि बिनासे। दे० I ११०/६५

अकस¹ पुं० १. बैर। विरोध। शत्रुता।
२. स्पर्द्धा। होड़।
३. ईर्ष्या। डाह।

उ०—मोर मुकुट की चंद्रकनि यौं राजत नंद-नंद। मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद। बि० ४१६/१७१

अक० १. बैर रखना। शत्रुता रखना।
२. ईर्ष्या करना।
३. स्पर्धा करना। होड़ करना।

उ०—साहनि सों अकसिबो, हाथिन को बकसिबो, राव भावसिंह जू सहज सुभाव है।
म० ३७३/३६१

अकस² पुं० आकाश। नभ।

अकस³ पुं० अक्स। परछाईं।

अकसमात क्रि०वि० अकस्मात्। एकाएक। अचानक। सहसा।

उ०—जे द्रुम नभ सों बात। ते तरु अकसमात भुइँ परैं। नं० ११/२२३

अकसि स्त्री० दे० 'अक्स'।

अकसीर स्त्री० १. वह रस या भस्म जो धातु को सोना या चाँदी बना दे। रसायन। कीमिया।
२. प्रत्येक रोग में काम करने वाली औषधि।
वि० अचूक। अत्यंत लाभकारी।

अकह वि० १. जो कही न जा सके। अकथनीय। अवर्णनीय।

उ०—सहज रूप गुन आगर नागर वैभव अकह अपार। —रहीम

२. न कहने योग्य। मुँह पर न लाने योग्य अनुचित। बुरी।

उ०—सील सुधा बसुधा लहिकैं, अकहै कहिकैं यह जीभ बिगारिये। दे०

—कहानी—स्त्री० जिसे न कहा जा सके ऐसी लीला या चरित्र। अवर्णनीय कथा। अलौकिक लीला।

उ०—लाज मरौं दैया, यह अकह कहानी रानीं, जसुमति मैया तेरे कुँवर कन्हैया की।
दे० I २७/७

अकही वि० बिना कहे हुए। मौन। चुप। स्तम्भित।

उ०—पूरण महिमा को कहि सकही, कहत-कहत सब रहे अकही। प्रि०

अकहुवा—अकहुआ—वि० जो कहा न जा सके। अवर्णनीय। अकथनीय।

उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई। ताकर कही रमैनी भाई। कबी०

अकाट्य वि० [अ+काट+य] जो काटा न जा सके। जिसका खंडन न हो सके। मजबूत। दृढ़। अटल।

अकाथ क्रि०वि० अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। निरर्थक। वृथा।

उ०—रह्यो न परै प्रेम आतुर अति, जानी रजनी जात अकाथ। सूर० १०/३२०३/५

वि० अकथ्य। न कहने योग्य। अकथनीय। अनिर्वचनीय।

उतु—जे जन चरन न सेवत तिनके जन्म अकाथ।
कु०

उ०—कमलनयन-बिनु रह्यौउ न परिहै, मिलि, अकाथ जीवन कत गारति।
कुं० २७४/९५

अकाम पुं० १. काम (वासना, इच्छा) का अभाव।
२. दुष्कर्म। बुरा काम।
वि० १. कामना रहित। वासना या इच्छा रहित। निस्पृह।
क्रि०वि० बिना काम के। निष्प्रयोजन। व्यर्थ।

—आ—स्त्री० वह स्त्री जिसमें काम-चेष्टा न हो।
—ई—पुं०— काम-चेष्टा रहित पुरुष।

अकाय—अकाइ वि० १. बिना काया के। शरीर-रहित। देह-रहित।
उ०—माँगत वामन रूप धरि, परवत भयौ अकाय।
सत्त धर्म सब छोड़िकैं, धर्‌यौ पीठ पै पाय।
नं०, पृ० १८१
२. अशरीर। शरीर न धारण करने वाला। जन्म न लेने वाला।
३. रूपरहित। निराकार।

अकार[1] पुं० १. कार्य का अभाव। जैन मत के अनुसार 'कर्मनाश' का भेद-विशेष।
वि० १. क्रिया रहित। चेष्टा रहित।

अकार[2] पुं० 'अ' वर्ण।

अकार[3] पुं० १. आकार। स्वरूप। आकृति।
उ०—'सूरदास' सुख कहँ लौं कहिए, आवै अतिथि अकार। सूर० १०/३८७४/८

अकारज पुं० १. बुरा काम। खोटा काम। न करने योग्य काम।
२. कार्य की हानि। हानि।
क्रि०वि० १. व्यर्थ।

अकारथ वि० निष्फल। निष्प्रयोजन। वृथा। बेकाम। दे० 'अकाथ'।
उ०—पाँच बान मोहिं संकर दीने तेऊ गये अकारथ। सूर० १/२८७
उ०—ज्यों ऊसर की भूमि कौ बीज अकारथ जाय। नव०
क्रि०वि० व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन। फजूल।
उ०—आछौ गात अकारथ गार्‌यौ। सूर० १/१०१/१

अकारन—अकारण वि० [अ+कारन] बिना कारण का हेतु रहित। स्वयंभू।
क्रि०वि० व्यर्थ। बिना कारण के। अनायास।
उ०—सहकारी, सहकृत पिय न, करै अकारन मान। नं० १११/७७

अकार्थ क्रि०वि० दे० 'अकारथ'।
उ०—साधु-संग, भक्ति बिना, तन अकार्थ जाई। सूर० १/३३०/३०

अकाल पुं० १. ऐसा समय जो किसी विशिष्ट कार्य के लिये उपयुक्त न हो। अनवसर। नियत समय के आगे-पीछे का काल। असमय।
उ०—तूँ रहि, हौं ही सखि! लखौं, चढ़ि न अटा बलि बाल। सबहिनु बिनु ही ससि उदय, दीजतु अरघु अकाल। बि० २६८/११३
२. ऐसा समय जिसमें अन्न बहुत कम या कठिनता से मिलता हो। दुर्भिक्ष। किसी भी वस्तु की बहुत कमी या अभाव।
—कुसुम—पुं० अपनी ऋतु से आगे-पीछे खिलने वाले फूल। अनऋतु में खिला फूल। (ऐसा फूल अशुभसूचक माना जाता है)।
—पुरुष—पुं० परमात्मा।
—मृत्यु—स्त्री० असामयिक मृत्यु। छोटी आयु में अथवा दुर्घटना में मरण।

अकालिक वि० असामयिक। बेमौके का।

अकाली[1] वि० [अकाल+ई] असमय का। दे० 'अकाल' भी।
उ०—फुटे फटक के फूल फूट फल फले अकाली
अज्ञात कवि

अकाली[2] पुं० सिक्खों का एक सम्प्रदाय विशेष। उस सम्प्रदाय का अनुयायी।

अकावनौ पुं० आक। मदार। अकवन। अकौन। अकौवा।

अकास पुं० १. आकाश। आसमान।
२. शून्य।
उ०—आस ही अकास माही, अवधि गुनै बढ़ाय। घ० क० १६/४८
—कृत—पुं० विद्युत। बिजली।
—गुण—पुं० आकाश का गुण अर्थात शब्द।
—दीप—दियो—पुं० आकाशदीप जो बाँस के ऊपर आकाश में लटकाया जाता है।
—पुष्प—पुं० असंभव बात। अनहोनी बात।
—वानी—स्त्री० देववाणी।
उ०—भई अकासवानी तिहिं बार, तू देवरसी श्लोक बिचार। सूर०
—वृत्ति—स्त्री० अनिश्चित जीविका। ऐसी आय अथवा आमदनी जो बँधी न हो। असंभावित लाभ। आकस्मिक प्राप्ति। बिना माँगे प्राप्ति।
उ०—अहो रंतिदेव नृप संत दुसकंत बस अति ही प्रसंस सी अकासवृत्ति लई है। ना०

—बेल—स्त्री० अमरबेल । आकाशबौर । बिना जड़ और पत्तों वाली एक पीली लता विशेष जो पेड़ों पर फैलती है ।

अकासी— वि० १. दे० 'अकास' भी । असम्भावित । अनिश्चित । जो अकस्मात् मिले ।

स्त्री० १. चील नामक पक्षी ।

२. ताड़ी ।

—वृत्ति—स्त्री० आकस्मिक प्राप्ति ।

अकासु पुं० दे० 'अकास' ।

उ०—सुर विमान छाये अकासु री । नं०

अकाह वि० दे० 'अकह' ।

उ०—कबहूँ यों बियोग-बिथाकों सहै, जोऊ जो गिनहूँ कों अकाह सी है । ठा०

अकिंचन वि० १. गरीब । निर्धन । कंगाल । दीन । दुखी ।

पुं० १. दरिद्र व्यक्ति । गरीब ।

—ता—स्त्री० दरिद्रता । निर्धनता । हीनता ।

अकि अ० या कि । किंवा । अथवा ।

उ०—आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरों । घ०क० १६५/१४८

अकिल स्त्री० अक्ल । बुद्धि । समझ । विचार-शक्ति ।

उ०—इंद्र ढीठ बलि खात हमारी, देखौ अकिल गँवाई । सूर० १०/९५३/४६८

—दाढ़—स्त्री० सयाने होने पर निकलने वाली दाढ़ ।

—वर—वि० निपुण । चतुर । बुद्धिमान । कुशल । विवेकी ।

—मन्द—वि० चतुर । बुद्धिमान, । समझदार । विचारशील ।

अकिलौ—अकिले वि० [स्त्री० अकिली] अकेला ।

उ०—जिहि मनमोहन पिय-हित माई । अकिली बन घन बसि न डराई । नं० २१३/१३५

अकुँठ वि० १. जो कुंठित न हो । तीक्ष्ण । पैना ।

२. उत्तम । श्रेष्ठ ।

उ०—पूरन परम ग्राम, बैकुंठ अकुंठ धाम लीने बिसराय प्रभु संपति अखंडि कै ।

दे० I ११८/२३

अकुच अक० आकुंचित होना । संकोच करना । डरना । भयभीत होना ।

उ०—अब ऐसो जिन काम करौ कहुँ, जो अति ही जिय अकुचत हौ ।

सूर० १०/२७३२/१९६

अकुठ वि० दे० 'अकुंठ' ।

अकुठा— अक० शिथिल होना । सुस्त होना ।

अकुता— अक० परेशान होना । खीझना । दे० 'उकता' भी ।

अकुतात व०कृ०

अकुतान्यौ भू०कृ०

अकुल वि० जिसके कुल का पता न हो । नीच कुल का ।

उ०—अकुल कुलीन होत, पाँवर प्रबीन होत दिन होत चक्कवै चलत छत्रछाया के । दे०

अकुला— अक० व्याकुल होना । बेचैन होना ।

उ०—यह सुनि दूत गयौ लंका में, सुनत नगर अकुलानौ । सूर १०/१२१/१९०

अकुलात, अकुलाति— व०कृ० । अकुलायो, अकुलानो—अकुलान्यो—अकुलान — भू० कृ० अकुलाइबो—अकुलैबो—क्रि०सं०

—ई—स्त्री० व्याकुलता । बेचैनी ।

उ०—बिष काजर लीलिबे मैं तो अली ! इन नैननि हीं अकुलाई परी । शृ० १६६/४८३

—नि—स्त्री० व्याकुलता । बेचैनी ।

उ०—कानन बेधति पैठि कै प्रानन, दीसै नहीं अकुलानि यहै नित ।

घ० क० १३०/११२

अकुलानी वि० अकुलाई हुई । घबराई हुई । व्याकुल ।

उ०—कहति है दुख अकुलानी रानी ।
तब लग तू ही झारि सयानी ॥

नं० ४३६/१२१

अकुलिनी स्त्री० अज्ञात कुल की स्त्री । कुलटा । चरित्रहीन । व्यभिचारिणी । जो कुलवती न हो ।

अकुलीन वि० नीच कुल का । कुजाति । सङ्कर । जारज । कमीना । नीच । दे० 'अकुल' ।

उ०—पुरुष औ नारि को भेद भेदा नहीं, कुलिन अकुलीन अवतर्‌यौ काकै ।

सूर० १०/३१०१/३०८

अकूत—अकूता— वि० जिसका कूत (अंदाज) न हो सके । अपरिमित । बेअन्दाज । अपार ।

उ०—धन्य भूमि ब्रजवासी धनि-धनि, आनँद करत अकूत । सूर० १०/३६/२२२

उ०—पूतनि कौ दूतनि कौ सम्पति अकूतनि कौ बर मजबूतनि कौ मति भरी छलकौ ।

रघु०

अकूपार[१] पुं० १. समुद्र ।

२. बड़ा कछुआ ।

३. पत्थर या चट्टान ।

अकूपार² वि० १. शुभ परिणाम वाला ।
२. असीम । अपरिमित ।

अकूर पुं० भगवान् कृष्ण के चाचा का नाम ।
उ०—साँझ ही आये अकूर तहाँ, हरि हेरे अदूर सम्हारत गाइनि । दे० I १/१०४,२१
वि० १. जो क्रूर न हो । सदय । दयालु । सौम्य ।
२. बुद्धिमान् । कुशल । निपुण । चतुर ।

अकूरु पुं० दे० 'अकूर' ।
उ०—गोकुल वासी विलासिन को, बिसराम दै, धाम अकूरु सिधाए । दे० I १२३/२४

अकूहल वि० अकूत । बहुत अधिक । असंख्य ।
उ०—खेलत, हँसत, करत कौतूहल । जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल ।
सूर० १०/६०५,४५५

अकृत वि० १. बिना किया हुआ । असम्पादित ।
२. जिसे किसी ने न बनाया हो । प्राकृतिक । स्वयंभू । नित्य ।
३. निकाम । बुरा । निकम्मा । मन्द । कर्महीन । वेकाम ।
उ०—हौं असौच, अकृत, अपराधी संमुख होत लजाऊँ । सूर० १/१२८/३५

अकृतज्ञी वि० कृतघ्न । उपकार न मानने वाला ।
उ०—अकृतज्ञी हौं नाहिं तुमरे चित प्रेम बढ़ावन । नं० ६२/२५

अकृत्रिम वि० जो बनावटी न हो । अपने आप बना हो । प्राकृतिक । प्रकृतसिद्ध । स्वाभाविक । नैसर्गिक । बनावट-रहित । सच्चा ।

अकृपा स्त्री० [अ+कृपा] कृपा का अभाव । क्रोध । नाराजी ।
उ०—बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसे । बिमुख भये अकृपा न निमिष हूँ, फिर चितयौं तौ तैसे । सूर० १/८/३

अकृपिन वि० अकृपण । जो कंजूस न हो । दाता । दानशील । उदार ।

अकेल—अकेला—वि० १. एकाकी । बिना साथी के । अद्वितीय ।
उ०—मारग जात अकेल गान रसना जु उचारौ । ना०
२. प्रधान । मुख्य ।

अकेली वि०स्त्री० दे० 'अकेला' ।
उ०—अहो बंधु, काहूँ अवलोकी इहिं मग वधू अकेली । सूर० ६/६४/१७०

अव्य० केवल । मात्र ।
उ०—दुख ठौर सबै विधि और रचै सुख ठौर अकेली सरोजमुखी । बो० १०३/१८

अकेले क्रि०वि० १. एकाकी । बिना साथी के ।
उ०—प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि हरषि अपनैं रँग खेलत । सूर० १०/६३/२३०
२. मात्र । सिर्फ । केवल ।

अकोर पुं० १. आलिंगन । अँकवार ।
उ०—पान करत कहुँ तृप्ति न मानत, पलकनि देत अकोर । सूर० १०/१७६१/३
२. रिश्वत । घूस ।
३. भेंट । नजर । उपहार ।
सक० आलिंगन करना ।
उ०—रीझ बिलोएइ डारति है हिय, मोहति टोहति थारी अकोरै । घ०, पृ० ५७

अकोरी स्त्री० दे० 'अँकवारि' ।

अक्क पुं० (अर्क) १. सूर्य ।
उ०—गति धीर धीर वह चली सेन, रजरंजित अंबर अक्क ऐन । सुजा०, पृ० १८
२. मदार । आक ।

अक्करी वि० अकड़वाली ।
उ०—लियैं अक्करी ऐंड ज्यों हिक्करी में । भि० II ४७/२८१

अक्कल स्त्री० (अक्ल) दे० 'अकिल' ।

अक्का¹ पुं० [तु० आका] १. स्वामी । प्रभु । मालिक ।
उ०—वानी बेद न लहै पार, सो श्रीठाकुर अक्का जी के द्वार । छी० १८१/७७

अक्का² स्त्री० माता । माँ ।

अक्कास पुं० आकाश ।
उ०—मौजी मान सिंहावत रीझत जगतसिंह वकसे तुरंग तुंग वै उठत अक्कासे । प० २०/३०८

अक्खड़ वि० १. अड़ने वाला । किसी का कहना न मानने वाला । उद्धत । उद्दंड । धृष्ट । ढीठ । उच्छृंखल ।
२. असभ्य । गँवार । उजड्ड ।
३. खरा । बेलाग कहने वाला ।
४. निर्भय । निःशंक । निडर ।

अक्खर—अखर पुं० १. अक्षर । वर्ण ।
उ०—अक्खर आवै जाय अखर कौ ताहिं ठिकाना । पल० ११०
२. जिसका क्षय न हो । अविनाशी । परमात्मा ।

उ०—राग रच्यो अक्खर बन लीला यह तिनको तिन भोग। नाग०

अक्खी वि० आँखों वाला।

अक्खु वि० १. अक्षुण्ण। बिना टूटा। समूचा। अछूता २. अनाड़ी।

अक्रम[1] वि० क्रमरहित। बेसिलसिले। बेतरतीब।

अक्रम[2] पुं० क्रम का अभाव। व्यतिक्रम। बेतरतीबी।

अक्रमातिसय-उक्ति स्त्री० अतिशयोक्ति अलंकार का भेद। जहाँ कार्य और कारण का एक साथ होना दिखलाया जाय।

उ०—जहाँ हेतु अरु ब्याज मिलि, होत एक ही साथ, अक्रमातिसय-उक्ति सो, कहि भूषन कवि नाथ। भू० १०३/१४७

अक्रित वि० दे० 'अकृत'।

उ०—हौं असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाऊँ। सूर० १/१२८/३५

अक्रूर पुं० श्रीकृष्ण के चाचा जो श्वफल्क और गाधिनी के पुत्र थे।

दे० 'अकूर'।

उ०—इहिं अंतर अक्रूर बुलायौ, अति आतुर महराज। सूर० १०/२६२७/२६७

अक्ष पुं० १. आँख। नेत्र।

उ०—बदन सुधाधर अधर बिंब मेरी आली स्वच्छ तन रूप घन अक्षरी प्रबल बान।

भि० I ८/२७१

—क्रिया २. दाना। गुरिया। पाँसा। जुआ।

अक्ष-कुमार—अक्षय कुमार पुं० रावण के एक पुत्र का नाम जिसे हनुमान ने मारा था।

अक्षत[1] वि० १. क्षत या घाव से रहित। २. बिना टूटा हुआ। पूरा। अखंडित। समूचा।

अक्षत[2] पुं० १. बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओं को चढ़ाया जाता है। २. धान का लावा। ३. जौ। ४. कोई भी धान्य।

—योनि—स्त्री० वह कन्या जिसका पुरुष के साथ संसर्ग न हुआ हो।

अक्षम वि० १. क्षमा-रहित। असहिष्णु। २. असमर्थ। अशक्त। लाचार।

अक्षमाला स्त्री० १. रुद्राक्ष की माला।

२. वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती।

अक्षय वि० क्षय न होने वाला। अविनाशी। अनश्वर। अमर। चिरंजीवी। नाश न होने वाला। न घटने वाला।

—कुमार पुं० रावण का एक पुत्र जिसका वध हनुमान जी ने किया था।

—निधि स्त्री० पूर्ण भण्डार। वह भण्डार जो कभी न घटे। ऐसा खजाना जो कभी खाली न हो। अक्षयकोश। भण्डार।

—तृतीया—स्त्री० वैशाख शुक्ला तीज।

—नवमी—स्त्री० कार्तिक शुक्ला नवमी।

—पात्र—वि० कभी न घटने या खाली होने वाला पात्र। ऐसा पात्र भगवान सूर्य से द्रौपदी को प्राप्त था।

—वट—पुं० प्रयाग और गया में बरगद का पूज्य वृक्ष जो प्रलय में भी नष्ट नहीं होता।

अक्षर वि० अच्युत। स्थिर। अविनाशी। नित्य।

पुं० हरूफ़। अकारादि वर्ण।

दे० 'अक्खर' भी।

उ०—रसमय सरसुति कै पग लागौं। अस अक्षर द्यो इहि बर मांगौं। न० ३५/१०४

—चट्टा वि० अक्षरों को चाट जाने वाला। बिना सोचे रटने-पढ़ने वाला। पठित मूर्ख।

उ०—तब रूपचंद नंदा ने अपने मन में बिचारी जो यह बात परमानंद सोनी कहा जानै? यह तो अक्षर चट्टा है। दो० I पृ० १६०

अक्ष रेखा स्त्री० धुरी की रेखा। वह सीधी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केन्द्र से होती हुई दोनों पृष्ठों पर लम्ब के रूप में पड़े।

अक्षरौटी स्त्री० १. वर्तनी। वर्णमाला। २. स्वर का मेल। ३. सितार पर बोल बजाने की क्रिया।

अक्षवाट पुं० जुआ खेलने का स्थान। अखाड़ा।

अक्षि स्त्री० आँख। नेत्र।

अक्षीव वि० १. जो मतवाला न हो। शान्त। धीर।

पुं० १. सहिजन का पेड़। २. समुद्री नमक।

अक्षुण्ण वि० समस्त। अविकृत।

बिना टूटा हुआ। समूचा।

अक्षै वि० दे० 'अक्षय'।

अक्षोनि स्त्री० अक्षौहिणी सेना जिसमें २,१८७० रथ, २,१८७० हाथी, ६५,६१० घोड़े और १,०९६५० पैदल होते हैं।

उ०—जुरे नृपति अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी। सूर०

अखंग वि० न खँगने वाला। न चुकने वाला। अविनाशी। ब्रह्म के लिये प्रयुक्त विशेषण।

अखंड वि० १. जिसके खंड या टुकड़े न हों। पूर्ण। समूचा।

उ०—हरि को रूप कह्यो नहिं जाइ। अलख अखंड सदा इक भाइ। सूर० १२/४,५८३

२. जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। अविच्छिन्न। निस्तर। लगातार।

उ०—सलिल अखंड धारधर टूटत, किये इंद्र मन सादर। सूर० १०/८५८/४४५

३. निर्विघ्न।

—धार पुं० न टूटने वाली धार। झड़ी। लगातार वृष्टि।

—पद—पुं० परम पद।

उ०—तापन को खंड जमदंडहू को दँड, भेदि मारतंड-मंडल अखंड पद लै चुक्यो। प० ८६/३२७

अखंडनीय वि० जिसके खंड या टुकड़े न हो सकें। पुष्ट। अकाट्य। युक्तियुक्त।

अखंडल[1] वि० १. अखंड। अटूट। अविच्छिन्न।

उ०—मनु नखत मंडल में अखंडल पूर्ण चंद्र सुहाय। रघु०

२. सम्पूर्ण। समूचा। पूरा।

उ०—तवा सो तपत धरा मंडल अखंडल औ मारतंड मंडल हवा सो होत भोर तें। बे०

अखंडल[2] पुं० इंद्र। सुरपति।

उ०—जाय बृजमंडल के बीच मैं अखंडल छा मरजी तिहारी मानि रह्यो बहु भाँति हैं। दी०, पृ० ६०

अखंडानंद पुं० १. पूर्ण आनन्द। २. पूर्ण आनन्द स्वरूप ईश्वर। परमात्मा।

उ०—जदपि अखंडानंद नंद नंदन ईश्वर हरि। नं० १०३/३७

अखंडित वि० १. जिसके खंड न हुए हों। बिना टूटा। अविभाज्य। अभग्न।

२. सम्पूर्ण। समूचा। पूरा। परिपूर्ण।

३. लगातार। अनवरत।

उ०—धार अखंडित बरषत झर-झर। कहत मेघ धोवहु ब्रज गिरिवर। सूर० १०/६३६/४६४

४. निर्विघ्न। बाधा-रहित।

अखड़ैत पुं० [अखाड़ा+ऐत प्र०] अखाड़े में उतरने वाला पहलवान। मल्ल।

वि० अखाड़ा में कुश्ती लड़ने वाला या जोर करने वाला अखाड़िया।

अखड़ैती स्त्री० अखाड़े के चमत्कार। अखाड़े में दिखाये जाने वाले जौहर और हुनर। पहलवानी।

अखती स्त्री० अक्षय तृतीया। वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाने वाला त्यौहार।

उ०—अखती की तीज तजवीज कै सहेली जुरी वर के निकट ठाढ़ी भावते को घेर के। ठा० १०२/२७

उ०—फेरि न वैसी भई अखती कबहूँ वहि बाग में फेरि घिरे ना। बो० ७३/१३

अखत्यार पुं० इख्तियार।, वश।, अधिकार।

उ०—जाइबोऊ ज्याइबोऊ छार में मिलाइ बोऊ वाको अखत्यार और काहू को न चारो है। भि० I ४७७/६६

अखन कुमारि स्त्री० अक्षत कुमारी। जिसका कौमार्य भंग न हुआ हो।

उ०—सुंदर सबही सौं मिली कन्या अखन कुमारि। सु०, II पृ० ७५५

अखयवट पुं० अक्षयवट। दे० 'अखैबट'।

अखर[1]— अक० १. खल जाना। कष्ट कर होना।

उ०—चह चह चिरी धुनि कह कह केकिन की घट्ट घट्ट घनसोर सुनतै अखरिहै। भि० I/२२६

पुं० २. अखरने का भाव या स्थिति। बुरा लगने या दुःखदायी होने का भाव।

अखर[2] पुं० अक्षर।

अखरा[1] पुं० १. अक्षर। वर्ण।

उ०—जीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कै कै, कहा कहै क्रूर मीत राखै कहा कहि द्योस दस भि० II पृ० १९६

२. वचन। बोल।

उ०—मान्यौ न जात कछू नखरा, रस के अखरा हिय तैं बिसराए। ठा० १८/१६

अखरा[2] पुं० बिना कुटे हुए जौ का भूसी मिला आटा। भूसी समेत जौ का आटा।

अखरा[3] वि० जो खरा (सच्चा) न हो। झूठा, कृतिम, बनावटी।

उ०—वार बिलासिनी ती के जपे अखरा अखरा नखरा अखरा के। प०

अखरावट स्त्री० १. अखरौटी। अक्षरावलि। वर्णमाला। २. लिखने का ढंग। लिखावट।

३. अक्षर या वर्ण अनुक्रम के आधार पर रचित पद्य-समूह—जैसे, जायसीकृत 'अखरावट'।

अखरोट पुं० एक फल विशेष जिसकी गणना मेवा में होती है। एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है। इसका फल अंडाकार बहेड़े के समान होता है। सूखने पर इसके भीतर टेढ़ा-मेढ़ा गूदा व मीठी गरी निकलती है।

अखरौटी स्त्री० १. दे० 'अखरावट'।

२. सितार या वीणा पर निकाले गये अक्षरों के बोल।

उ०—अँसुवा बहै ढाड़ भरि आवै।
जब अखरौटी बीन बजावै।
बो० पृ० ३६

अखर्ब वि० १. [अ=नहीं+खर्व=छोटा] जो छोटा न हो। बड़ा। लम्बा।

२. नष्ट न किया जाने योग्य।

अखाँग सक० १. लगाना।

उ०—लीन्हो सो नवाइ डीठि पगनि अखाँगी री।
अज्ञात

२. मारना।

उ०—कहै पदमाकर अखाँग्यो तुम लंकपति।
प० ४८/२४८

३. अंगीकार करना। स्वीकार करना।

उ०—हमहूँ कलंकपति छैबोई अखांग्यो है।
प० ४८/२४८

अखाड़ची पुं० पहलवान। कसरती। अखाड़े का घुटा-मँजा पहलवान।

अखाड़ा पुं० दे० 'अखारा'।

अखाद वि० अखाद्य। न खाने योग्य। अभक्ष्य।

उ०—खाद अखाद न छाँड़ै अब लौं, सब मैं साधु कहावैं। सूर० १/१८६/५१

अखारा पुं० १. कुश्ती लड़ने और कसरत करने का चौकोर गोड़ा हुआ स्थान।

२. साधु मण्डली अथवा गायक मण्डली।

उ०—तहाँ देखि अप्सरा अखारा, नृपति कछू नहिं बचन उचारा। सूर० ६/४४८/४

३. साधुओं के रहने का स्थान।

४. दरबार। सभा। रंगभूमि।

उ०—रंग के अखारे, रंग मौन में हमारे, पगु धारे आपु अंगन समारे लखि लेखिए।
दे० I/३२८/१०५

अखारो—अखारौ पुं० दे० 'अखारा' भी।

उ०—बैठक है मन-भूप को न्यारों कि प्यारो अखारो मनोज बली को।
भि० I/५५/१०२

अखिन्न वि० १. खिन्नतारहित। खेद विहीन।

२. क्लेशरहित। दुखरहित।

३. प्रसन्न। विमल।

उ०—तेहिं प्रौढ़ोक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न। भि० II/पृ० ४६

अखिल[1] वि० १. सम्पूर्ण। समग्र। पूरा।

उ०—तुम सर्वज्ञ, सबै विधि पूरन, अखिल-भुवन-निज हाथ। सूर० वि० १०३/२८

२. अखंड। सर्वांगपूर्ण।

उ०—तुम तौ अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि। सूर० वि० १११/३०

अखिल[2] वि० जो खिली न हो।

उ०—ऊखिली सुवास गृह अखिल खिलन लागी पलिका के आस-पास कलिका गुलाब की।
दे० I/४/२६३

—ईश (अखिलेश) पुं० ईश्वर।

—कोश पुं० समस्त भुवन। चौदह भुवन। चौदह लोक। यथा-भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल।

अखीन वि० १. अक्षीण। जो क्षीण न हो। जो दुर्बल न हो। २. न छीजने वाला। न घटने वाला। चिरस्थायी। नित्य।

अखुट अक० १. तुटि न होना। न टूटना। समाप्त न होना।

२. लड़खड़ाना।

उ०—अखुटत परत सु विहवल भयौ, डरत डरत सूती गृह गयौ। न० पृ० २३१

अखुटित वि० अतुटित। न टूटने वाला। समाप्त न होने वाला। लगातार। निरन्तर।

उ०—अखुटित रटत सभीत, ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै। सूर० १/४८/१४

अखूट वि० १. न टूटने वाला। अटूट। २. न घटने वाला। समाप्त न होने वाला। अपरिमित। अखण्ड। अक्षय।
उ०—लूटत रूप अखूट दाम को, स्याम बस्य यों भोर। सूर० १०/२२६६/१०४

अखेट पुं० आखेट। शिकार। मृगया। अहेर।
उ०—जब अखेट पर इच्छा होइ, तब रथ साजि चलैं पुनि सोइ। सूर० ४/४०६/१२१

अखेटक पुं० १. आखेटक। शिकार।
उ०—दिन भए बहुरि अखेटक जाइ।
सूर० ४/४०६/१२२
२. शिकारी।
उ०—बैननि मैंन के वान चले, मृगनैननिहू को खिलारु अखेटक। दे० I/६६/६३

अखेद वि० खेदरहित। अखिन्न। प्रसन्न। आनन्दित।
पुं० दुःख का अभाव। प्रसन्नता।

अखेलत वि० १. जो खेलता हुआ न हो। अचंचल। भारी।
२. आलस्यभरा।
उ०—खेलत हीं खेलत अखेलत हीं आँखिन सों खिनखिन खीन ह्वै खरे ही खिन खोइगे। दे०

अखै वि० अक्षय। जिसका नाश न हो। अविनाशी।
—तीज स्त्री० अक्षय तृतीया।
—दल पुं० अक्षय दल। असंख्य सेना। अगणित सैनिक।
उ०—ऊँट गयंदनु की को बूझैं, पैदल को जु अखैदल सूझै। सू०
—बट→ पुं० प्रलयांत में भी नष्ट न होने वाला वट-वृक्ष। अक्षयवट।
उ०—सु अखैवट बीज लौं फैलि पर्‍यौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले। घ० १३३/११४

अखोट वि० खोट रहित। दोष रहित। निष्कपट। स्पष्ट।
उ०—चढ़ी अटारी नाम वह कियौ प्रनाम अखोट।
म० पृ० २१६

अखोर¹ वि० निकम्मा। तुच्छ। बुरा। सड़ा-गला। अखाद्य।

अखोर² वि० [अ=नहीं+खोट>खोर] १. अच्छा। भला। सज्जन। २. सुन्दर। रूपवान।

अखोर³ पुं० कूड़ा-करकट। निकम्मी चीज। घास-पात।
उ०—खाय अखोर भूख नित टारी।
आठ गाँठ की लगी पिछारी॥ ल०

अखोल वि० [अ+खोल] न खुलने वाला। कसा हुआ। दृढ़।
उ०—रसना जुगल रसनिधि बोल।
कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंध अखोल। सूर० १०/२१३२/७७

अखोह¹ स्त्री० ऊँची-नीची भूमि। असम भूमि।

अखोह² वि० क्षोभ-रहित।

अखखर—अक्खर पुं० अक्षर। वर्ण।
उ०—एकै अख्खर पीव का सोई सत करि जाणि।
दादू I, पृ० ३२

अखिख स्त्री० अक्षि। आँख।
उ०—अख्खि पिख्यि नहिं सकइ, सेस नख्खिन लग्गिय तल। क० ४/१६/७६

अखितयार पुं० दे० 'इख्तियार'।

अखत्यार पुं० दे० 'इख्तियार'।

अख्यान पुं० १. वर्णन। वृत्तान्त। २. कथा। कहानी।

अग¹ वि० न गमन करने वाला। न चलने वाला। स्थावर, अचल।
पुं० १. वृक्ष। पेड़। २. पर्वत। पहाड़।

अग² वि० अज्ञ। मूर्ख।

अग³ पुँ० अंग। शरीर।
उ०—भग्गत अरि परि पग्ग मग्ग लग्गत अग अग्गन। प० ७१०/२२६

अगजग पुं० [अग+जग] चराचर। जड़-चेतन।
उ०—रचत विरंचि, हरि पालत, हरत हर तेरे ही प्रसाद जग अगजग पालिके।
कवि० १७३/८४

अगड़¹ पुं० १. अर्गल। हाथी के पैरों की जंजीर। २. बन्धन।
उ०—सखियन के कर कुसुम छरनि तें अगड़ बने चहुँ धाय। मदन महावत को बल नाहीं, अंकुस देत बुराय। नं०

अगड़² पुं० ३. अकड़। ऐंठ। घमण्ड। दर्प।
उ०—सोभमान जग पर किये सरजा सिवा खुमान। साहिन सों बिनु उर अगड़ बिनु गुमान को दान। भू०

अगढ़ वि० मजबूत। सुदृढ़।

अगणित वि० अनगिनत।
उ०—ध्येय सदा पद-अंबुज सार। अगणित गुण महिमा जु अपार। नं० १०/२८२

अगत स्त्री० दुर्गति। दुर्दशा। दे० 'अगति' भी।
उ०—अफजल की अगत सायस्त खाँ की अपत बहलोल की विपत डरे उमराउ हैं।
भू० १५६/१५८

अगति[1] स्त्री० १. बुरी गति । दुर्गति । दुर्दशा ।
२. मृत्यु के पीछे की बुरी दशा । मोक्ष की अप्राप्ति । नरक ।
उ०—सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौं जाहीं । सूर० २/२३/१०१
उ—कहौ तो मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ । सूर० ६/८४/१७६
३. स्थिर या अचल पदार्थ ।
उ०—सत्य, झूठ, मंडल बरनि, अगति, सदागति, दानि । अष्टविंस बिधि मैं कहे, बर्न्य अनेक बखानि । के० I ३/११८
४. गति का अभाव । स्थिरता ।

अगति[2] वि० जिसकी गति न हो । निरुपाय ।
दे० 'अगतिक' ।

अगतिक वि० अगति वाले । निराश्रय । अनाथ । अशरण । बेठिकाने । असहाय । बिना अवलम्ब ।
उ०—अगतिक की गति दीनदयालु ।
अज्ञात ।

अगती वि० बुरी गति वाला । जो गति या मोक्ष का अधिकारी नहीं । पापी । दे० 'अगति' ।
पुं० पापी मनुष्य । कुमार्गी या दुराचारी व्यक्ति ।
उ०—जय जय, जय जय, माधव बेनी । जग हित प्रकट करी करुनामय-अगतिनि कौं गति दैनी । सूर० ६/११/१५७

अगद वि० १. गद या रोग रहित । नीरोग । स्वस्थ ।
२. व्याधि रहित । निर्दोष । निष्कंटक ।
उ०—रीझि दियौ गुरू जाहि अगद बृंदावन पद कौं । ब्रज० पृ० २५२
पुं० रोग को दूर करने वाली औषधि । दवा ।

—राज पुं० १. औषधियों का राजा । चन्द्रमा ।
२. उत्तम औषधि । ३. अमृत ।
उ०—एकादश अध्याय यह अगदराज की धार । पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार । नं० पृ० २५६

अगन[1] पुं० अगण । अशुभ गण । छन्द शास्त्र में तीन-तीन वर्णों के जो आठ गण माने गये हैं, उनमें से चार अर्थात् जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ गण माने जाते हैं जिन्हें कविता के आदि में रखना अशुभ समझा जाता है ।
उ०—म न य भ गन सुभ चारि है, र, स, ज, त अगनौ चारि । भि० I/पृ० १७०

अगन[2] पुं० दे० 'आँगन' ।

अगन[3] स्त्री० दे० 'अगनि' ।

अगन[4] वि० अगण्य । अगणित । असंख्य ।
उ०—बहुरि दियौ दाइज अगन गनि न जाए । सूर० १०/४२०६/५५१
उ०—ससि अखंड मंडल जु गगन मैं । राजत भयौ नक्षत्र अगन मैं । नं० पृ० २६२

अगनि—अगिन स्त्री० आग । अग्नि ।
उ०—अगनि तें अनगन दीपक बरैं । बहुरि आनि सब तिन मैं ररैं । नं० ७/१२६

—अवासो पुं० अग्नि-आवास, अग्नि के समान दाहक स्थल ।
उ०—ब्रज सो सुबासो भयो अगनि अवासो है । प० १६४/३८७

अगनित वि० अगणित । असंख्य । अपार । अनन्त । जिसकी गणना न हो सके ।
उ०—जे पद-पदुम-रमत वृन्दावन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे । सूर० वि०/६४/२५

अगनियाँ वि० अगणित । जिन्हें गिना न जा सके ।
उ०—बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि, ब्यंजन बिविध अगनियाँ । सूर० १०/२३८/२७६

अगनी स्त्री० दे० 'अगनि' ।
उ०—स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं, ज्यौं घृत नायें अगनी । सूर० १०/४१२५/५२२

अगम[1] वि० १. अगम्य । जहाँ कोई न जा सके । दुर्गम । गहन ।
उ०—जीव जल थल जिते, बेष धरि-धरि तितै, अटत दुरगम अगम अचल भारे । सूर० वि० १२०/३३
२. न मिलने योग्य । दुर्लभ ।
उ०—भक्त जमुने सुगम, अगम औरैं । सूर० वि० २२२/६०
३. अपार । अत्यंत । बहुत । असंख्य ।
उ०—आगम अगम तंत्र सोधि, सब जंत्र मंत्र, निगम निवारिबे कौं केवल अयान है । के० II ६/३७८
४. न जानने योग्य । बुद्धि के परे । दुर्बोध ।
उ०—सब विधि अगम बिचारहिं तातैं, सूर सगुन लीला पद गावै । सूर० वि० २/१
५. विशाल । बहुत बड़ा ।
उ०—कैसैं बचे अगम तरु कै तर मुख चूमति, यह कहि पछितावति । सूर० १०/३६०/३१३
६. सुदृढ़ । जिसे वश में न किया जा सके ।
उ०—लंका बसत दैत्य अरु दानव, उनके अगम सरीर । सूर० ६/८६/१७६
७. न चलने वाला । स्थावर ।

अगम[2] पुं० १. आगमन । अवाई । आना ।
उ०—दादुर मोर कोकिला बोलैं, पावस अगम जनावै । सूर० १०/३३१२/३५०
२. आगम । शास्त्र ।

अगमग वि० [स्त्री० अगमगी] १. मग्न । डूबा हुआ । विभोर ।
उ०—माँची दधि-काँदी वृषभान जू कैं सुता होत, भये नारदादि श्रंग आनंद अगमगे । नाग०
२. आतुर । जल्दबाज ।
उ०—सुनत धुनि वैनु मधुराग गौरी रुचिर चढ़िय निज भवन तिय खन छिति अगमगी । नाग०

अगमति वि० [अगम+अति] १. बहुत विशाल । अत्यन्त अगम ।
उ०—मोहन-मुर्छन-बसीकरन पढ़ि, अगमति देह बढ़ाऊँ । सूर० १०/४६/२२६

अगमन क्रि०वि० १. आगे । पहले । प्रथम ।
उ०—पग पग मग अगमन परत चरन अरुन दुति भूलि । बि० ४६०/२०२
२. आगे से । पहले से ।
उ०—पिय आगम ते अगमनहिं करि बैठी तिय मान । प०
पुं० दे० 'आगमन' ।

अगमने—अगमनैं क्रि०वि० दे० 'अगमन' ।
उ०—मिले जाइ अकुलाइ अगमने, कह्यो भयो जो घूँघट घेरे । सूर० १०/२३३८/११८

अगमनो—अगमनौं क्रि०वि० दे० 'अगमन' ।
उ०—राखौं मन समुझाइ घरी घरी में तरफरैं । तऊ अगमनौं जाय मिलन काज कौतुक करैं । भ्र०

अगमानी स्त्री० दे० 'अगवानी' भी ।
१. आगे बढ़कर लेने की क्रिया । आगे जाकर स्वागत करने की क्रिया । बरात का आगे बढ़कर स्वागत करने के अर्थ में प्रायः प्रयुक्त होता है ।
२. आगे चलने वाला । अगुआ । प्रधान । नायक । नेता । मुखिया । सरदार ।

अगमैया वि० अगम्य । ज्ञान से परे । बुद्धि के बाहर । दुर्बोध । मनन से परे ।
उ०—ब्रज में कोऊ उपज्यौ यह भैया । संग सखा सब कहत परस्पर, इन के गुन अगमैया । सूर० १०/४२८/३२५

अगम्य वि० १. पहुँच और शक्ति के परे । विकट ।
२. ज्ञान से परे । बुद्धि से परे । दुर्बोध । दे० 'अगम' भी ।
उ०—केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा । नं० ८७/३६

अगम्या-गौन पुं० १. जिस स्त्री के साथ सम्भोग करना निषिद्ध हो उसके साथ करना । सहवास के अयोग्य स्त्री के साथ सहवास करना ।
उ०—अरि-नगरीन प्रति होत है अगम्या-गौन, भावै विभिचारी, जहाँ चोरी पर-पीर की । के० I ५/१३६
२. अगम्य स्थानों में जाना ।

अगर[1] पुं० १. सुगन्धित लकड़ी वाला एक वृक्ष विशेष । उसकी लकड़ी धूप और अगरवत्ती बनाने के काम में आती है । इसके पेड़ पूर्वी भारत और भूटान में अधिक पाये जाते हैं । चोवा नामका पदार्थ इसी का इत्र है ।
उ०—चंदन अगर सुगंध और घृत, विधि करि चिता बनायौ । सूर० ६/५०/१६७

—वत्ती स्त्री० धूप बत्ती । अगर की बत्ती जिसे सुगन्ध के लिए जलाते हैं ।

अगर[2] पुं० २. आगार । गृह । घर । दे० 'अगार' ।
उ०—जे संसार-अंधार-अगर मैं मगन भये वट । नं० ३/२०

अगर[3] क्रि०वि० यदि । जो ।

अगर[4] अक० आगे-आगे जाना । बढ़ना ।

अगरवाल—अग्रवाल पुं० वैश्य जाति विशेष । अगरोहा वाला । आगरे वाला । ऐसा माना जाता है कि यह जाति पहले दिल्ली से पश्चिम, अगरोहा स्थान में रहती थी । स्थान के साथ 'वाल' प्रत्यय लगाकर अन्य जातियों के भी नाम रखे गये हैं । यथा 'जायस' के रहने वाले 'जायसवाल' 'प्रयाग' के रहने वाले 'प्रयागवाल' आदि ।

अगरासन पुं० [अग्र+अशन] देवता के निमित्त पहले निकाला गया भोज्य-पदार्थ, रोटी, पूड़ी, पकवान ।

अगरी[1] स्त्री० १. अगीर्य । अवाच्य । बुरी बात । अनुचित बात । धृष्टतायुक्त बात । ढिठाई ।

अगरी[२] वि० १. रे आगरी, आगार-भंडार वाली । २. श्रेष्ठ । निपुण ।

अगरी[३] स्त्री० अर्गला । लकड़ी या लोहे का छोटा डंडा जो किवाड़ के पल्ले में कोंडा लगाकर पड़ा रहता है । इसके इधर-उधर खींचने से किवाड़ खुलते और बन्द होते हैं । किल्ली । बचोड़ा ।

अगरु पुं० दे० 'अगर' । एक सुगंधित लकड़ी का वृक्ष ।
उ०—कहुँ ललित अगरु गुलाब पाटल-पटल बेला थोक हैं । भू० २२/१३२

अगरो—अगरौ[१] वि० १. अगला । प्रथम ।
२. बढ़ा-चढ़ा । श्रेष्ठ । उत्तम ।
उ०—हम तुम सब बैस एक, काहैं को अगरौ । सूर० १०/३३६/२६६
३. अधिक । ज्यादा ।
उ०—जोजन बीस एक अरु अगरौ, डेरा इहिं अनुमान । सूर० १०/८३०/४३७
४. चतुर । दक्ष । निपुण ।
उ०—सूर स्याम तेरौ अति, गुननि माँहि अगरौ । सूर० १०/३३६/२६६

अगरौ[२] पुं० १. आकर । खान ।
२. समूह । राशि ।

अगल-बगल क्रि०वि० इधर-उधर । आस-पास ।
उ०—अगल बगल सब फौज लरिकाई की । ठा० १३/६५

अगव— अक० १. किसी काम के लिये तत्पर होना । आगे बढ़ना । २. सँभलना ।
सक० सहना ।

अगवाँई पुं० १. आगे-आगे चलने वाला, अगुआ ।
२. मुखिया । सरदार ।
उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाईं । सफदरजंग भए अगवाँई । सुजा०, पृ० १४६

अगवाई[१] स्त्री० अगवानी । किसी को सत्कारपूर्वक लाने के लिए आगे जाने की क्रिया ।
उ०—अगवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी । बु०, पृ० १८०

अगवाई[२] पुं० अग्रगामी । आगे चलने वाला । अगुआ ।

अगवान पुं० १. आगे से जाकर लेना । अगवानी । अभ्यर्थना ।
२. विवाह में बारात की अभ्यर्थना के लिये कन्या-पक्ष वालों का जाना ।
३. अगवानी करने वाले लोग ।

अगवानी स्त्री० १. किसी अतिथि का आगे बढ़कर स्वागत करना । अभ्यर्थना । २. आगे अगमानी चलने की क्रिया ।
उ०—पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे । सूर० वि० १४३/३६
३. बारात का स्वागत करने के लिये कन्या पक्ष वालों का आगे जाना ।
४. पेशवाई । अगुआई । पथ प्रदर्शन ।
उ०—क्यौं करि पावहिं बिरहिनि पारहिं, बिनु केवट अगवानी । सूर० १०/३२७१/३४२
पुं० १. अगुआ । पेशवा ।
२. आगे पहुँचने वाला व्यक्ति । दूत । संदेशवाहक ।
उ०—आये माई बरसा के अगवानी । दादुर, मोर, पपैया बोलैं कुंजन बगपात उड़ानी । कुं०

अगवार[१] क्रि०वि० १. अगाड़ी । आगे ।
उ०—जिहिं जिहिं मारग तिहिं गली, मोकों रोकत आप अगवार । अज्ञात
पुं० १. घर के आगे का भाग । द्वार के सामने की भूमि ।
उ०—बेऊ आये द्वारे हौं हुँ हुती अगवारें और द्वारें अगवारें कोऊ तौ न तिहिं काल में । प०, पृ० २००
२. खलियान के अन्न का वह भाग जो पहिले हल वालों को दे दिया जाता है ।

अगवारो क्रि०वि० आगे । सम्मुख । सामने ।
उ०—गेखि प्रभामनि लालन की, ललना ललचाय चली अगवारी । गु०
उ०—या ढौटा तें हम हारीं । गोरस लै घर जाहु आपने बाट गहत अगवारी । विट्ठ०

अगवासो पुं० घर का अगला भाग ।
उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवासो, ह्याँ ह्वै कढ़े चाहौं मोहि काम घनो घर को । ठा० १८१/४६

अगसर क्रि०वि० अग्रसर । आगे । पहले ।

अगसार—अगसारी क्रि०वि० दे० 'अगसर' ।

अगस्त[१]**—अगस्त्य** पुं० १. एक ऋषि जो मित्र-वरुण के पुत्र थे । इन्हें कुम्भज, मैत्रावरुण आदि नामों से पुकारते हैं । विन्ध्य पर्वत की गतिविधि रोकना, समुद्र का आचमन कर जाना आदि इनके सम्बन्ध में कथाएँ प्रचलित हैं ।

२. तारा विशेष ।

३. एक वृक्ष दे अगस्तिया ।

उ०—फूल करी पाकर नम । फरी अगस्त करी अमृत सम । सूर० १०/१२१३/५४५

अगस्तिया स्त्री० वृक्ष विशेष । अगस्त का वृक्ष, इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों के आकार की होती है । इसके सब अंग काम आते हैं फूल अर्ध चन्द्राकार गुलाबी सफेद रंग के होते हैं । जिसके फूल अगणित लटके चन्द्र से दीखते हैं । दे० 'अगस्त' भी ।

उ०—मनौ अकास-अगस्तिया एकं कली लखाइ । बि० ६२/४३

अगस्त्य पुं० दे० 'अगस्त' ।

उ०—राजा इंद्रद्युम्न कियौ ध्यान । आए अगस्त्य नहीं तिन जान ।। सूर० ८/२/१४२

अगह वि० न पकड़ने योग्य । जो पकड़ा न जा सके ।

उ०—अति कृपालु आतुर अबलनि कौं । व्यापक अगह गहायौ । सूर० १०/३५१२/३७४

२. चंचल ।

उ०—माधौ, नैंकु हटको गाइ । भ्रमत निसि-बासर, अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ । सूर० वि० ५६/१६

३. जो वर्णन और चिंतन से परे हो ।

उ०—जुक्ति जतन करि जोग अगह गहि, अपथ पंथ लौ लायौ । सूर० १०/३७४४/४३६

अगहन पुं० अग्रहायण । कार्तिक के बाद का मास । मार्गशीर्ष । वर्ष का नवाँ महीना । यह महीना धार्मिक दृष्टि से पवित्र माना जाता है, अपने यहाँ वैदिक काल में इसी मास से वर्ष का आरम्भ माना जाता था । आज भी फसली सन् का आरम्भ इसी माह से होता है ।

उ०—अगहन गहन समान गहियत मोर सरीर ससि । नं० ७५/१४८

अगहर क्रि०वि० १. अग्रसर । आगे । २. पहले । प्रथम ।

उ०—राजत दौवा रायमनि, बाइँ तरफ अडोल । उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल । ला०

अगहुँड़ वि० अगुआ । आगे चलने वाला ।

क्रि०वि० आगे । आगे की ओर ।

उ०—बिलोके दूरि तें दोउ बीर ।···मन अगहुँड़ तन पुलकि सिथिल भयो नलिन-नयन भरे नीर । तु०, पृ० ३४६

अगा क्रि०वि० अग्र । पहले । प्रथम । पूर्व । पहले ही । अभी से ।

उ०—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यौं खात दगा ? कहत मँदोदरि सुनु पिय रावन, मेरी बात अगा । सूर० ९/११४/१८८

अगाऊँ क्रि०वि० दे० 'अगाऊ' ।

उ०—न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ । भि०I, पृ० १३४

अगाऊ वि० १. अग्रिम । पेशगी ।

उ०—प्रथम सिद्धि हमकौ हरि पठई, आयौ जोग अगाऊ । सूर० १०/३६७०/४२३

२. अगला । आगे का ।

उ०—धरि बाराह रूप सो मार्‌यौ लै छिति दंत-अगाऊ । सूर० १०/२२६/२७२

क्रि०वि० आगे । पहले । प्रथम ।

उ०—थरसि गयौ नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ । सूर० १०/४८१/३४०

अगाड़ी क्रि०वि० १. आगे । २. भविष्य में ।

३. सामने । समक्ष । ४. पूर्व । पहले ।

पुं० १. आगे या सामने का भाग ।

२. घोड़े के गर्दन में बँधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर-उधर दो खूँटों से बँधी रहती हैं ।

३. सेना का पहला धावा ।

अगाध—अगाधु वि० १. अथाह । बहुत गहरा ।

उ०—अति अगाधु, अति औथरौ, नदी, कूप, सरु, बाइ । सो ताकौ सागरु, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ । बि० ४११/१६६

२. अपार । असीम । अत्यंत । बहुत ।

उ०—महिमा अति अगाध, करुनामय भक्त-हेत हितकारी । सूर० वि० १०६/३०

३. समझ में न आने योग्य । दुर्बोध ।

उ०—मन-बच-कर्म अगाध, अगोचर, केहि बिधि बुधि सँचरै । सूर० वि० १०५/२८

अगाधा वि० दे० 'अगाध' ।

उ०—ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा । विहरति पिय सँग रूप अगाधा । नं० १४२/१४१

जो समझ में न आये । अद्‌भुत । विचित्र ।

उ०—मोकौं संग बोलि तू लेती, करनी करी अगाधा । सूर० १०/२००७/५३

अगाधु वि० दे० 'अगाध' ।

उ०—उज्ज्वल महल सेज निर्मल विमल जोन्ह सीतल सुगन्ध मन्द पवन अगाधु री । दे०

अगाधो—अगाधौ वि० दे० 'अगाध' ।

उ०—'सूरदास' राधा बिलपति है, हरि को रूप अगाधी। सूर० १०/३२३२/३३५

अगान वि० अज्ञान। नासमझ।
पुं०— ज्ञान का अभाव। अज्ञान। ज्ञान न होने की अवस्था।

अगार पुं० आगार। गृह। घर। मकान। निवास स्थान।
उ०—दुख आवत कछु अटक न मानत, सुनौ देखि अगार। सूर० १०/३३८६/३६५
क्रि०वि० १. आगे। पहले।
उ०—प्रीतम को अस प्रानन को हठ देखनो है अब होत सकारो। कैधों चलैंगी अगार सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारो। अज्ञात कवि
२. सामने। सम्मुख।

अगारा पुं० दे० 'अगार'।

अगारी क्रि०वि० १. अगाड़ी। आगे। २. सामने। सम्मुख।
उ०—देखी दीठि उठाय कुँवर पुनि भीर अगारी। बु०, पृ० ७०
दे० 'अगाड़ी' भी

अगारु क्रि०वि० पहले। पूर्व। प्रथम।
दे० 'अगार'।
उ०—जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबे कौं तौ लौं ग्राह-ग्रीवा पै अगारु चक्र चलिगो। गं० १/१

अगारौ क्रि०वि० दे० 'अगार'।

अगास[१] पुं० १. आकाश। अन्तरिक्ष।
उ०—का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौं। सूर०
२. स्वर्ग।

अगास[२] पुं० घर के आगे-सामने बैठने का चबूतरा।

अगासी पुं० दे० 'अगास' भी।
१. रथ। २. अटारी। अट्टालिका।
उ०—दौड़ैं बन्दर बने मुछंदर कूदैं-चढ़ैं अगासी। भा० I पृ० ३३३

अगाह वि० अगाध। अगम्य। अथाह।
उ०—निगम कौ अगाह, सहस आनन नहिं जानै। सूर० १०/३०१८/२८६

अगिआ— अक० १. आग लगना। सुलगना। प्रज्वलित होना।
उ०—और कवन अबलन व्रत धार्यौ जोग समाधि लगाई। इहि उर आनि रूप देखे कि आगि उठै अगिआई। सूर०
२. क्रोधित होना।

अगिनंत वि० अगणित। असंख्य। बेशुमार।
उ०—जलचरा थलचरा नभचरा जंत जी। च्यारि हू पांनि के जीव अगिनंत जी। सुं० I पृ० २६०

अगिन[१] स्त्री० दे० 'अगनि'।
१. अग्नि। आग। पंचतत्त्वों में तीसरा। एक वैदिक देवता।
उ०—चंदन चंद समीर अगिन सम, तनहि देत दव लाई। सूर० १०/३१६८/३२८
२. एक छोटी चिड़िया।
३. एक प्रकार की घास।

—बंस—अग्नि—वंश १. तेजस्वी परिवार। तेजवान कुल। क्षत्रियों की एक कुल-परम्परा। सूर्यवंश। चन्द्रवंश।
१. क्रोधी-परिवार। क्रोधी वंश वाले।

—बान पुं० अग्नि-वाण। दाहक वाण। जलाने वाला तीर। अग्नि बरसाने वाला वाण।
उ०—तब रघुबीर धीर अपनैं कर, अगिनि-बान गहि तान्यौ। सूर० ९/१२१/१६०

—सरूप—वि० १. (अग्नि स्वरूप) अग्नि के समान तेजस्वी स्वरूप वाला। तेजस्वी। तेजपुंज।
२. महाक्रोधी।

—होतरी—होत्री पुं० १. यथाविधि सायं प्रातः वेद-मन्त्रों से अग्नि में घृतादि की आहुति देने वाला ब्राह्मण। २. ब्राह्मणों की एक शाखा विशेष।

—होत्र अग्निहोत्र। वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया।
उ०—गर गहि अरग गए लै नंद। अग्निहोत्र करि मंदहि मंद। नं० पृ० २४४

अगिन[२] वि० जो न गिना जा सके। अगणित। असंख्य।

अगिनि स्त्री० दे० 'अगिन'।
उ०—जातैं काल-अगिनि तैं बाँची, सदा रहौ सुख-सागर। सूर० वि०/६१/२४

—कन पुं० अग्नि-स्फुलिंग। चिनगारी।
उ०—अलि ए उडुगन अगिनिकन अंक धूम अवधारी। प० ३३८/७५

—कोन पुं० अग्नि-कोण। पूर्व-दक्षिण कोण।
उ०—पूस दिनन में ह्वै रहै अगिनिकोन में भानु। भि०, I, पृ० ८८

—बान पुं० दे० 'अगिनबान'

—वास पुं० [अग्नि+वास] १. बाज की जाति का एक पक्षी।
उ०—इनको तौ हांसो वाके अंग में अगनिबासो, लीलहीं जु सारो सुख सिंधु बिसराए री। भि०, II, पृ० १६०
२. अग्नि का निवास।

अगिनित वि० दे० 'अगनित'।
उ०—कटक अगिनित जुर्यो, लंक खरभर पर्यौ सूर को तेज धर-धूरि-ढाँप्यौ। सूर० ६/१०६/१८६

अगिनी स्त्री० दे० 'अगिनि'।

अगिया[1] स्त्री० १. अग्नि। आग। दे० 'अगिन'।
उ०—अगिया लागी सुंदरबन जरि गयौ। अज्ञात
२. एक प्रकार की घास।
अक०/सक० १. गरम होना। सुलगना। प्रज्वलित होना।
२. गरम करना। जलाना।
३. अग्नि में डालकर शुद्ध करना।
दे० 'अगिआ' भी।

अगिया[2] पुं० १. एक पहाड़ी पौधा। २. एक प्रकार का कीड़ा। ३. एक रोग जिसमें पैरों में छाले पड़ जाते हैं। ४. पशुओं का एक रोग। ५. अगिया नामक एक बैताल जिसकी कथायें विक्रमादित्य से संबंधित हैं।

अगिया[3] क्रि०वि० आगे। सामने।
अक० १. आगे बढ़ना। आगे चलना।
२. अगुआ बनना। प्रधान बनना।

अगियार पुं० दे० 'अगियारी'।

अगियारी स्त्री० १. अग्नि-अगिया से सम्बन्धित वस्तु तथा क्रिया।
२. आग में सुगन्धित पदार्थों के डालने की विधि।
३. वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिए डाली जाय। धूप देने की वस्तु।
४. वह अग्नि-खंड या जलता हुआ कंडा जिस पर पूजा आदि में घृत, धूप आदि सुगंधित द्रव्य डाले जाएँ।
५. धूपदानी।

अगिलाई स्त्री० [अग्नि+लाय] अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। अग्नि-दाह।
उ०—जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं मु नई अगिलाई। घ० क० ४०/६३

अगिलौ वि० अगला। आगामी। भावी।
उ०—सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत, काहैं अगिलौ जनम बिगारत। सूर० १०/३३३८/३५६

अगिल्याई स्त्री० दे० 'अगिलाई' भी।
उ०—चारि दियौ अगिल्याइ दिखावत, सो तुम सींचिये बात करी जू। दे० I/६०४ १४६

अगिवानी स्त्री० दे० 'अगवान', 'अगवानी'। अग्रगामी। सूचना देने वाला।
उ०—आए माई बरिखा के अगिवानी। कुं० ३४६/११४

अगिहाना पुं० १. अग्नि स्थान। अलाव। आग रखने का स्थान। वह स्थान जहाँ नित्य आग जलाई जाती है। जाड़ों में गड्ढा खोदकर अथवा यों ही कूड़ा-करकट, लकड़ी आदि जलाकर जहाँ तापते हैं इसको ही अलाव या अगिहाना कहते हैं।

अगीठा पुं० आगे का भाग।

अगीठि क्रि०वि० आगे। सामने। सम्मुख।
उ०—काटि किधौं कदली दल गोफ कों दीन्हौं जमाय निहारि अगीठि है। भि० I पृ० ६८

अगीठी—अँगीठी—स्त्री० कोयलों से अग्नि जलाने का चूल्हा। बरोसी।
उ०—तूल पेट पीठिन अगीठिन में दीठि लागी, तरुनीबिहीन तन काँप सरसाये देत। नन्द०

अगीत वि० आगे का भाग।
—पछीत—क्रि०वि० आगे पीछे की ओर। चारों ओर।
उ०—आय अगीत पछीत गई निसि टेरत मोहि सनेह के कूकन। ठा० १२७/३४
उ०—चौहट की मिलिबौ ह्वौ रह्यौ, मिलिबो रह्यौ औचक साँझ सवेरौ। और इती बिनती तुम सौं हरि आइ अगीत-पछीत न घेरौ। ठा०, पृ० ७

अगीयार क्रि०वि० आगे। पहले।
वि० अधिक। ज्यादा।
उ०—रसोई तो ग्यारो मनुष्यन की करी हती परन्तु सबकूँ महाप्रसाद पूरौ कैसे भयौ और अगीयार मनुष्य खावे ऐसौ बधी पर्यौ है। दो सौ०
स्त्री० अग्नि। आग।

अगुआ वि० १. आगे चलने वाला। नेता। मुखिया। प्रधान नायक। पथ प्रदर्शक।

२. विवाह की बात-चीत चलाने वाला बिचौलिया ।

अक० अगुआ बनना ।

सक० अगुआ बनाना ।

—ई—स्त्री० १. प्रधानता । सरदारी । २. पथ प्रदर्शन ।

अगुआनी स्त्री० दे० 'अगवानी' ।

अगुन वि० १. सत्व, रज, तम प्रकृति गुणों से रहित । गुणरहित । निर्गुण । अगुण ।

२. अनाड़ी । मूर्ख ।

सं० अवगुण । बुरा गुण । दोष ।

अगुनी वि० १. गुणरहित । निर्गुणी ।

२. मूर्ख ।

३. जिसे गुना या विचारा न जा सके । जिसका वर्णन न किया जा सके ।

उ०—ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहैं । तु०, पृ० २००

अगुवा पुं० दे० 'अगुआ' ।

अगुवाई स्त्री० दे० 'अगवानी' ।

उ०—लेन चले मुनि की अगुवाई । रघु०

उ०—कियो निषाद नाथ अगुवाई । रामा०

दे० 'अगुआ'—भी ।

अगुवानी स्त्री० दे० 'अगवानी' ।

अगुसर अक० अग्रसर होना । आगे बढ़ना ।

अगुसार अक० आगे बढ़ना । दे० 'अगुसर' भी ।

उ०—आवत चल्यौ स्याम कै सन्मुख, निदरि आपु अगुसारी । सूर० १०/१३८७/५८५

अगुस्त—अँगुस्त पुं० [अंगुष्ठ] अँगूठा । हाथ या पैर की सबसे मोटी और पहली उँगली ।

अगूठ— सक० आगुंठित करना । घेरना । घेरा डालना ।

अगूठा पुं० आगुंठन । चारों ओर का घेरा ।

अगूढ़— वि० १. जो गूढ़ न हो । छिपा न हो । प्रत्यक्ष । प्रकट ।

२. सरल । आसान ।

उ०—ऊँचे चढ़ि टेरि टेरि, हारी हम हेरि हेरि, मूढ़ भये ढूढ़न अगूढ़ गूढ़ ग्रहचर । दे० १/५७०/१४४

पुं० अलंकार में गुणीभूत व्यंग्य के आठों भेदों में से एक ।

अगूना पुं० अग्रवर्ती । अगुआ ।

क्रि०वि० आगे ।

अगेला क्रि० वि० आगे । आगे की ओर ।

पुं० १. आभूषण विशेष जो कलाई में आगे पहना जाता है और जो चूड़ी आदि आभूषणों के पीछे हाथ में पहना जाता है । इस आभूषण को पछेला कहते हैं । अगेला-पछेला हाथ के आभूषण हैं ।

२. हलका अन्न जो ओसाते समय भूसे के साथ आगे उड़ जाता है ।

अगेह वि० जिसका घर न हो । घरविहीन ।

अगोई[1] पुं० अगुआ । सरदार । नायक ।

उ०—उदै करन रन भयी अगोई । छत्र०, पृ० २१७

अगोई[2] वि० अगोपित । प्रत्यक्ष । जाहिर । प्रकाशित । प्रकट । जो छिपी न हो ।

उ०—संतन की गति अगत अगोई । घट०, पृ० ७२

अगोचर वि० इन्द्रियों से जो जाना न जा सके । इंद्रियातीत । अज्ञेय । अप्रत्यक्ष । अप्रकट । अव्यक्त ।

उ०—मन बानी कौं अगम अगोचर, जो जानै सो पावै । सूर० १/२/१

पुं० १. ब्रह्म । २. वह वस्तु जो इन्द्रियों का विषय न हो ।

अगोछ— सक० दे० 'अँगोछ—'

उ०—सब अंग अगोछि उरोजनि पोंछि कै अंबर चारु हरे पहिरे । दे० I १/१०/२६६

अगोट स्त्री० १. आगे-आगे रोक रखने या घेरने की क्रिया । रोक । रुकावट । आड़ । ओट ।

उ०—वह गुत कील कपाट सुन्न क्षण दै दृग द्वार अगोट । सूर०

२. आश्रय । आधार ।

उ०—रहिहैं चंचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट । वि० ३६५/१६२

सक० १. रोकना । छेंकना । २. बंद कर रखना । रोक रखना । पहरे में रखना । कैद रखना ।

उ०—जौ गुनही, तौ रखियै आँखिनु माँझ अगोटि । वि० २५०/१०४

३. छिपाना । ढाँकना ।

उ०—कीजै किन ब्यौत अगोटन को है चोर यही मनमोहन को । भि० I पृ० २४२

४. अंगीकार करना । स्वीकार करना । पसंद करना । चुनना ।

उ०—लगत कला शतकोटि एक एक के गुन गनत । मन में लेहि अगोटि जो सुंदर नीको लगै । गुमान

अगोती वि० १. जो अपने गोत्र या कुल-परम्परा का न हो। जिसके गोत्र में कोई न हो। निर्वंशी।
२. जो गमनशील न हो। ध्रुव। स्थिर। अचल।
उ०—दीनों दया करि प्रीति अगोती।
शृ० ७१/१८०

अगोनी क्रि०वि० आगे ही। पहले ही।
उ०—देव दिखावति कंचन सों तन औरन को मन लावे अगोनी। दे० I १/२६६/९२

अगोपि वि० अगोप्य। जो छिपा न हो। प्रकट। जाहिर।
उ०—गोपि कहूँ तो अगोपि कहा यह गोपि अगोपि .... सुं० II पृ० ६४७

अगोर— सक० १. राह देखना। बाट जोहना। इतजार करना। प्रतीक्षा करना।
उ०—गोर मुंहु मन गड़ि रह्यो रहै अगोरे गेह।
भि० १६३/२५
२. रखवाली करना। चौकीदारी करना। पहरा देना।
३. रोक रखना। बंद करना। छिपाकर रखना।
उ०—जड़ में कोटि जतन करि राखत, घूघट ओट अगोरि। तउ उड़ि मिले वधिक के खग ज्यों पलक पींजरा तोरि। सूर० १०/२३५७
४. खींचना। आकर्षित करना।
उ०—कनकलता सी आगे ठाढ़ी तन और दृष्टि अगोरति। नाग०

अगोरा पुं० अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी।

अगोहीं वि० आगे की। अग्रभाग की।
क्रि०वि० आगे। पहले।

अगोहूँ क्रि०वि० आगे को। बीतने को। समाप्ति की ओर।
उ०—कैसे हूँ करि करि दिन गयो निसि कटत न क्यों हूँ। दोऊ रस विरस मगन भये निसि भई अगोहूँ। सूर० १०/१९६३/८

अगौंछ— सक० अँगोछे या तौलिये से अंग पोंछना। स्नान के भीगे स्थान पर गमछे से देह पोंछना। दे० 'अँगोछ'।

अगौंही वि० दे० 'अगोहीं'।
उ०—मन्द होति चन्द्रिका चिराकैं लखि फीकी लगैं मुख पट टारकैं अगोही जब बढ़हीं। नाग०

अगौंहैं क्रि०वि० आगे को। आगे की ओर।
उ०—(क) ज्यों ज्यों दृगनि कटाच्छ के मन के लागत घाव। त्यों त्यों रन छक सू ज्यों धरत अगौहैं पाँव।
(ख) भीतर भौन तें प्रान प्रिया सो कितो चहै पैंग पड़ै न अगौहैं। बे०

अगौछा पुं० वदन पोंछने का एक छोटा सा वस्त्र। गमछा। तौलिया। दे० 'अँगोछा'।

अगौना वि० १. श्रेष्ठ। उत्तम।
२. अधिक।
उ०—छूटीं मुख मंजुल जु मयूखैं शोभा बढ़ी अगौना। यु०

अगौनी वि० अग्रणी। श्रेष्ठ। उत्तम।
उ०—इन्दिरा अगौनी इन्दु इन्दीवर वौनी महा सुन्दरि सलौनी गज-गौनी गुजरात की। दे०

अगौनैं क्रि०वि० आगे को। आगे की ओर।
उ०—गृह कौने जातन रह्यौ परत अगौनैं पाँव।
नाग०

अग्ग वि० आगे। पहले। पूर्व।
उ०—नौवत, निसान बहुमान अग्ग, गज ऊपर बैठयो घर उमग्ग। सू०
पुं० १. आगे का भाग। सिरा। नोक।
उ०—रँग धरति कनैर पाँखुरी के, छुवति जि पुष्प ति अग्ग आँगुरी के। भि० I ३/२६७

अग्गनूँ क्रि०वि० आगे। पूर्व। पहले।
उ०—हिक्क पग्ग धरि अग्गनूँ कर मुक्क सम्हाला।
सू०

अग्गय क्रि०वि० आगे। पूर्व। प्रथम। पहले।
उ०—कटि तालु अग्गय तोप कौं। करि कोप कौं अरि लोप कौं। सू०

अग्य वि० अज्ञ। मूर्ख। अजान। अज्ञानी।
उ०—बाल सरोरुह बाल सिसु मूक कहावै बाल। बाल अग्य सोई जगत भजै न बाल गुपाल।
नन्द०

अग्या स्त्री० आज्ञा। आदेश।
उ०—अग्या इहै मोहिं प्रभु दीन्ही।
सू० १०/२९२२/२०

—कारी—पुं० आज्ञा मानने वाला।

—कारिनि—स्त्री० आज्ञा मानने वाली।
उ०—हूँ तौ बिहारी अग्याकारिनि साँची बात मों सौं कहा कहौ महराज। नं० १३२/३१८

अग्यात वि० अज्ञात। न जाना हुआ। अप्रकट। अप्रत्याशित।

अग्यान वि० ज्ञानरहित। जड़। मूर्ख।
उ०—मैं अग्यान अकुलाइ अधिक लै जरत माँझ घृत नायी। सू० १५४/६

पुं० ज्ञान का अभाव ।

अग्यारी स्त्री० १. धूपदान । धूप देना ।
२. वह स्थान जहाँ सदा अग्नि बनाए रखी जा सके । दे० 'अगियारी' भी ।

अग्र पुं० १. आगे का भाग ।
उ०—बहुरि करि कोप हल अग्र पर बक्र धरि कटक को सकल चाहत डुबायो । सूर०
२. सिरा । नोक ।
उ०—जैसे जब के अग्र ओस कन प्रान रहत ऐसे अवधिहि के तट । सूर०
३. अगला ।
उ०—दसन-अग्र पृथ्वी कौं धार्‌यौ । सूर० ७/२

—**उदग्र** वि० १. आगे बढ़ा हुआ । अग्रसर । श्रेष्ठ ।
उ०—तहँ नृपति गंगा गिरि दिलावर जंग जंग बिचारि कै आयौ सु अग्र-उदग्र बरछी बिदित कर उलझारि कै । प०
२. अगुआ । मुखिया । प्रधान ।

—**ज**—पुं० जिसका जन्म पहले हुआ हो । बड़ा भाई । ज्येष्ठ भ्राता ।
उ०—अग्रज परतिग्या करी, तुव उरु तोड़न हेत । भा० I १४४
वि० श्रेष्ठ । उत्तम ।
उ०—बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्रजाई । देखो बसंत ऋतु सुन्दर मोददाई । के०

—**नी**—वि० अग्रणी । आगे चलने वाला । मुखिया । प्रधान । श्रेष्ठ । अग्रवर्ती । अगुआ । अग्रगामी ।

—**सर**—वि० आगे ।
उ०—देव देव नरदेव सब, करत अग्रसर गौनु । दे० I ६१/२६२

—**सोच** वि० आगे का सोच । आगे आने वाला दुख । भविष्य-क्लेश ।
उ०—आगे वृच्छ फरै जौ बिपफल वृच्छहि किन बिनसाई हो । ताहि मारि तोहि और बिवाहौं, अग्रसोच क्यों मरई हो । सूर० १०/६२२/२१०

—**सोची**—पुं० आगे से विचार करने वाला । दूरदर्शी ।

—**वर**—क्रि०वि० आगे । पहले ।
उ०—उमड़ि अग्रवर पैयर दीन्हयउ । जिन हठि प्रथम जुद्ध व्रत लीन्हयउ । हि० ६५७

अग्रसी क्रि०वि० आगे स्थित ।
उ०—नृप अवास के अग्रसी बाग असोक नवीन । बो०, १३७

अग्रासन पुं० अग्राशन दे० 'अगरासन' । भोजन का वह अंश जो देवता के निमित्त पहले निकाल दिया जाता है जो मुख्यतः गाय को खिलाया जाता है ।

अग्नि स्त्री० १. आग ।
उ०—अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि । नं० १०/४२
२. पंचमहाभूतों में से तेज तत्व ।
३. प्रकाश । ४. उष्णता । गरमी ।
५. जठराग्नि । ६. पित्त ।

—**क**—पुं० (१) वीर बहूटी नामक कीड़ा । (२) एक प्रकार का चमकदार पौधा ।

—**कण**—पुं० चिनगारी । स्फुलिंग ।

—**कर्म**—पुं० हवन । शवदाह ।

—**कांड**—पुं० व्यापक रूप में आग लग जाने की क्रिया ।

—**काष्ठ**—पुं० अगर का पेड़ ।

—**कीट**—पुं० समंदर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में पाया जाता है ।

—**कुंड**—पुं० अग्निहोत्र के लिए निर्मित कुंड ।

—**कुल**—पुं० क्षत्रियों का एक कुल या वंशविशेष ।

—**केतु**—पुं० १. शिव का एक नाम । २. रावण की सेना का एक राक्षस । ३. धूम । धुआँ ।

—**कोण**—पुं० पूर्व एवं दक्षिण दिशाओं का कोना ।

—**क्रिया**—स्त्री० १. शवदाह । २. अग्निहोत्र । दे० 'अग्निकर्म' ।

—**चूड़**—पुं० अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी । कुक्कुट । मुर्गा ।

—**जिह्व**—पु० १. देवता । २. बाराह रूपधारी विष्णु ।
उ०—वृंदारक, सु बिमानगति, अग्निजिह्व अमृतेश । नं० ३१/६६

—**दाह**—पुं० १. जलाने का कार्य । २. भस्म करने का कार्य । ३. शवदाह ।

—**दीपक**—वि० जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला । पाचन शक्ति बढ़ाने वाला ।

—**परीक्षा**—स्त्री० १. जलती हुई आग में डालकर परीक्षा या जाँच; जैसे राम द्वारा सीता की पवित्रता की अग्नि परीक्षा ।
२. भयदायक एवं अति कठिन परीक्षा ।

—**पर्वत**—पुं० ज्वालामुखी पर्वत ।

—**पुराण**—पुं० १८ पुराणों में से एक ।

—**प्रवेश**—पुं० १. शरीरत्याग की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना।

२. किसी स्त्री का पति के शव के साथ चिता में प्रवेश।

—वान—पुं० बाण जिससे अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। भस्म करने वाला बाण।

—वीज—पुं० सोना। स्वर्ण।

—मणि—स्त्री० सूर्यकान्त मणि। सूर्यमुखी शीशा।

अघ पुं० १. पाप। पातक। अधर्म। गुनाह।

उ०—तैसें अघ दुख काटि वलि करमफंद डिढ़ नाथ। के० २०/२२०

२. दुःख। विपत्ति।

उ०—जै पद-पदुम-परस-बल-पावन-सुरसरि-दरस कहत अघ भारे। सूर० वि० ६४/२५

३. अघासुर नामक एक असुर जिसका श्रीकृष्ण ने वध किया था।

उ०—अघ, बक, वृषभ, बकी, धैनुक हति, भव-जल-निधि तैं उबारे। सूर० वि० २७/६

—मर्षण॰मरषण—पुं० पाप-नाशक मन्त्र जो सन्ध्योपासन में कहा जाता है।

उ०—बाढ़ै पुन्य ओघ अघमरषण आखरनि, मति राम करत जगत जय नाम को। म० २५०/३४१

—रासी—पुं० अघराशि। पातक समुदाय। अधर्म-समूह।

वि० बहुत बड़ा पापी। बड़ा पापी। घोर अधर्मी।

—वंस—पुं० पाप का वंश। पाप से उत्पन्न। पाप से जन्मा हुआ। दुष्कर्मों से पैदा हुआ।

—सैनी—वि० अघ-श्रेणी। पापियों का समूह।

उ०—मिलि कै त्रिवैनी अघसैनी तारियत है। गं० ३८/१३

—हर—पुं० पापों को हरने वाला। पाप-विनाशक। पापों का निवारण करने वाला। पातक मिटाने वाला।

उ०—सत्यासत्य दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकंद। भा० २५०

—हरन—पुं० दे० 'अघहर'।

उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप अघहरन। नं० ३२६

अघट[1] वि० [अ=नहीं+घट्=होना] १. जो कार्य रूप में परिणित न हो सके। न होने योग्य। असंभव। अनहोनी।

उ०—अघट घटना सुघट, सुघट विघटन बिकट, भूमि, पताल, जल, गगन गंता। तु०, पृ० ४६७

२. कठिन। ३. जो ठीक न उतरे। अनुपयुक्त। बेमेल।

अघट[2] वि० १. जो न घटे। जो कम न हो। अक्षय।

२. अपार। बहुत।

३. स्थिर। एकरस।

उ०—जहाँ-तहाँ मुनिवर निज मर्यादा, मापी अघट अपार। सा० ३२७/२७

४. पूरा। पूर्ण।

अघटना पुं० १. (आ+घटना) अनिवार्य घटना। घटित होने वाली बात।

२. जो घटित न हो। जो सम्भव न हो। गैर मुमकिन। जो हो न सके। न होने योग्य।

उ०—मेरे मन की अघटना कै तुम जानन हारू। वलि राधे नँदनन्दना चरन दिखाए चारू। श्री०

अघटाई स्त्री० १. कमी न होना। स्वरूप में न्यूनता न आना। जैसे का तैसा ही रहना।

उ०—दिन की घटाई रजनी की अघटाई, सीतताई हूँ कौं सेनापति नरनि कहत हौं। क० ३/४६/६६

२. विचार न होना। अविवेक। विवेक-हीनता।

वि० असम्भव। अनहोनी।

अघटित[1] वि० १. जो घटित न हुआ हो।

२. जो घटित न हो सके। असम्भव। कठिन।

उ०—तब लीनी कर कमल, जोग माया सी मुरली। अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली नं० ४६/५

३. अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त।

उ०—रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट ह्वै, अघटित भोजन करतौ। सूर० वि० २०३/५६

अघटित[2] वि० जो कम न हो। जो न घटे। बहुत अधिक।

अघटित[3] वि० [आ+घटित] अवश्य होने वाला। अमिट। अनिवार्य।

अघट्ट वि० १. जो घटे न, कम न हो, स्वरूप में न्यूनता न हो, समान रहे।

२. अक्षय।

अघवा— सक० १. भर पेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २. संतुष्ट करना। मन भरना।

उ०—कीनी घमसान समसान फर मंडल मैं घाइन, अचाई अघवाए वीर बा समै। सु०, पृ० २३

अघा[1] पुं० १. अघासुर। एक असुर। कंस का अनुचर जो भगवान कृष्ण द्वारा मारा गया।
उ०—अनजानत सब परै अघा-मुख-भीतर माहीं। सूर० १०/४३१/३२७
उ०—बीते बर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघा मार्यौ नंद लाला। ब्र० वि० १३३

अघा[2] अक० २. खूब खाना। तृप्त होना। सन्तुष्ट होना। छकना। दे० 'अघवा' भी।
उ०—आजु तौ भिया हौ उर आनंद बढ़ाइ लीजो, आइ लीजो दरस अघाइ लीजो अँखियानि। दे० I १२४/६८

अघात— व०कृ०। अघानो— भू० कृ०। अघाबो— क्रि०सं०

अघात[1] पुं० आघात। चोट। प्रहार।
उ०—दुहुँ कर माह गह्यौ, नँदनंदन, छिटकि बुंद-दधि परत अघात। सूर० १०/१५६/२५५

अघात[2] वि० १. न अघाने वाला। समाप्त न होने वाला। २. पेट भर। बहुत। खूब। ज्यादा। ३. पूर्ण। तृप्त।

अघारि[1] वि० [अघ+अरि] १. पापों का नाश करने वाले।

अघारि[2] पुं० अघ नामक असुर को मारने वाले अर्थात् श्रीकृष्ण।

अघासुर पुं० पूतना का भाई। एक राक्षस जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था।
उ०—उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ गुवाल। बि० ७११/२६४

अघी वि० पापी। पातकी। कुकर्मी। दुराचारी।
उ०—कूर, कुजाती, कपूत अघी, सबकी सुधरै जो करै नर-पूजो। कवि० ५/४२

अघोड़ी पुं० दे० 'अघोरी'।

अघोर[1] वि० [अ+घोर] भयंकरता से रहित। सौम्य। प्रियदर्शन। सुहावना। शान्त।

अघोर[2] १. भयंकर। भयानक।
उ०—दर्बहार पर सोक न हरहीं। सो गुरु नर्क अघोरहिं परहीं। अज्ञात
२. घोर। कठिन। कठोर।
पुं० १. सम्प्रदाय विशेष, जिसे कहीं भी ग्लानि न हो। जो सर्वत्र अभेद का अनुभव करे।
२. इस पंथ का अनुयायी।
३. शिव का एक रूप। महादेव।

—नाथ पुं० श्री महादेवजी। भगवान शङ्कर। भूतनाथ।

—पंथ पुं० [अघोर+पंथ] अघोरियों का पंथ या सम्प्रदाय।

—मार्ग पुं० अघोरियों के साधना का मार्ग।

अघोरी पुं० १. अघोर पंथ का अनुयायी जो नर-मांस व मद्य तो खाते ही हैं; यहाँ तक कि उन्हें मल-मूत्र आदि पदार्थों से भी घृणा नहीं होती।
२. घृणास्पद वस्तुओं का व्यवहार करने वाला। सर्वभक्षी।
वि० जो घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करे।
उ०—धन्यौ धर्म आपहिं तुम हित चंडाल अघोरी। रत्ना० I, पृ० ६२

अघौघ पुं० पाप-समूह। पाप-राशि।
उ०—पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं। तु०, पृ० ४१६

अघ्रान पुं० १. सूँघने की क्रिया। २. गंध। महक।
सक० सूँघना।

अचंचल वि० १. जो चंचल न हो। स्थिर। ठहरा हुआ। २. धीर। गंभीर।

—ता—स्त्री० १. स्थिरता। ठहराव। २. धीरता। गंभीरता।

अचंभ पुं० आश्चर्य। विस्मय।
उ०—कब मधुबन चले कब मार्यौ रिपु, बचन अचंभ जनाए। सूर० १०/३६५७/४०१

अचंभव पुं० अचंभा। आश्चर्य। विस्मय।
उ०—एक अचंभव होत बड़ो तिन ओठ-गहे अरि जात न जारे। भू० १६५/१६०

अचंभा पुं० आश्चर्य। विस्मय।

अचंभित वि० आश्चर्ययुक्त। विस्मित। चकित।

अचंभु पुं० आश्चर्य। विस्मय। दे० 'अचंभ'।
उ०—एक कमल ब्रज ऊपर राजत, निरखत नैन अचंभु। सूर० १०/२४६६/१४३

अचंभौ—अचंभो पु० आश्चर्य। विस्मय। दे० 'अचंभ'।
उ०—नसै धर्म मन बचन काय करि, सिंधु अचंभौ करई। सूर० ९/७८/१७५

अचक[1] वि० भरपूर। पूर्ण। ज्यादा।

अचक[2] क्रि०वि० १. अचानक। एकाएक। हठात्। २. बिना भ्रांत हुए। बिना हिले-डुले। चुपचाप।

अचक[3] पुं० घबराहट। भौचक्कापन। विस्मय।

उ०—तोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हें छाई है अचक सी। सू०

अचक[४] सक० चुपके से खाना। निगल लेना।

उ०—केते बीर मारिके बिडारे किरवानन तें केते गिद्ध खाए केते अंबिका अचकि गे।

भू० ४७६/२२३

अचक-पचक क्रि०वि० धीरे-धीरे। शनैः शनैः। आहिस्ते-आहिस्ते।

उ०—अचक-पचक पग धरहु, न ह्याँ कोऊ जगि पावै। अज्ञात

अचकाँ—अचका क्रि०वि० १. एकाएक। अचानक। सहसा।

उ०—बैरी बियोग की हूकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक। घ० क० ८५/६०

अचकाइ क्रि०वि० दे० 'अचकाँ'।

ए०—मिलि दस पाँच अली कृष्नहिं, गहि-लावति अचकाइ। सूर० १०/२८६०/२३३

अचख वि० (अ+चख) अचक्षु। चक्षुहीन। नेत्रहीन। दृष्टि-रहित।

अचगरी स्त्री० १. नटखटपन। चञ्चलता। शरारत। छेड़-छाड़। हँसी-मजाक। रसबाद।

उ०—सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार बाम्हनहिं खिझायी। सूर०१०/२४८/२७८

उ०—माखन-दधि मेरी सब खायी, बहुत अचगरी कीन्ही। सूर० १०/२६७/२६०

अचगरो—अचगरौ वि० १. नटखट। शरारती। छेड़-खानी करने वाला। शोख। चंचल।

उ०—ऐसौ नहिं अचगरौ मेरौ कहा बनावति बात। सूर० १०/२६०/२८६

उ०—जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ। सूर० १०/३४६/३०१

अचढ़ वि० जो ऊँचे स्थान पर न जा सके।

अचपल[१] वि० जो चपल न हो। अचंचल। धीर। गम्भीर।

अचपल[२] वि० [आ+चपल] अचपल। अत्यन्त चंचल। शोख।

—ता—स्त्री० अचंचलता। स्थिरता। धीरता। गंभीरता।

अचपली स्त्री० १. अठखेली। क्रीड़ा। किलोल।

वि० २. दे० 'अचपल'। चंचल। शोख।

उ०—जाकी छोटी नँनद बड़ी अचपली।

पो०, पृ० ६२१

अचपलो—अचपलौ वि० [अ+चपल] १. जो चञ्चल न हो। शान्त। चञ्चलता रहित।

उ०—कहति, सुनति, लज्जा नहीं, करति और ही और·····कि लरिका अचपलों। नं० ५/१७०

अचबन पुं० आचमन।

उ०—जमुनोदक पान करत अचबन करि।

कुं० १७६/७०

अचभौना—अँचभौना वि० आश्चर्यजनक। अद्भुत। अचम्भा कराने वाली। विचित्र।

उ०—कहा कहत तू नन्द-ढुटौना। सखी सुनहु री बातैं जैसी, करत अतिहिं अँचभौना।

सूर०/१०/१४७०/६०७

अचमन पुं० दे० 'आचमन'।

उ०—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनियाँ। सूर० १०/२३८/२७६

अचमुना पुं० दे० 'आचमन'।

अचर वि० न चलने वाला। जड़। स्थावर।

उ०—जलज नयन, चर अचर, अयन, जल।

क० ५/७०/११६

पुं० न चलने वाला पदार्थ। जड़ पदार्थ। स्थावर। द्रव्य।

अचरचे—अचरचै वि० १. अर्चित। अपूजित। बिना पूजा के।

उ०—और तौ अचरचे पाइँ धरौं सो तौ कहौ कौन कें पेंड़ भरि। पो०, पृ० ३६०

क्रि०वि० १. बिना बातचीत के। चुपचाप।

२. बिना पहचाने। बिना भेद जाने।

अचरज पुं० १. आश्चर्य। अचम्भा। विस्मय। ताज्जुब।

उ०—अचरज कहा पार्थ जौ बेधैं, तीनि लोक इक बान। सूर० १/२६६/७२

वि० आश्चर्यजनक। अनोखा।

पाँच बरष को मेरौ कन्हैया, अचरज तेरी बात।

सूर० १०/२५७/२८०

—कथा स्त्री० आश्चर्यजनक कहानी। विस्मय पैदा करने वाली कथा। अद्भुत आख्यान।

अचरन पुं० आचरण। व्यवहार।

अचरा—अँचरा स्त्री० १. अञ्चल। वस्त्र का छोर। चद्दर। ओढ़नी। पिछौरि या दुपट्टे का किनारा।

२. स्तन।

—पसरिबो अंचल फैलाना। दीनता धारण करना।

—बिसरबौ डुपट्टे का ओढ़ना भूल जाना। बेसुध होना। आनन्द-विभोर हो जाना।

अचरिज पुं० दे० 'अचरज'।
आश्चर्य। विस्मय। अचम्भा।
उ०—मिश्र कहत अचरिज मो हिए। नं० पृ०३०८

अचर्ज पुं० दे० 'अचरज'।
उ०—बेनु के बंस भई बाँसुरी, जो अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है। भा० II/पृ० ८२१

अचल वि० १. जो न चले। स्थिर। निश्चल।
उ०—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यौं, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी। सूर० वि० ३४/१०
२. सदा रहने वाला। चिरस्थायी।
उ०—करिहौं नाम अचल पसुपति कौ, पूजा-विधि कौतुक दिखरावन। सूर० ६/१३१/१६३
३. न डिगने वाला। ध्रुव। दृढ़। अटल।
उ०—अचल आसन, पलक तारी, गुफा घूँघट भौन। सूर० १०/२५७४/१६४
४. जो नष्ट न हो। मजबूत। पुख्ता। अटूट। अजेय।
उ०—गरम भाजि गढ़वै भई, तिय-कुच अचल मवास। वि० ३४४/१४३
पुं० पहाड़। पर्वत।
उ०—अचल अनलंवत, सिंधु सो सरितजुत, संभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है। के० I ७/१३३

—जा—स्त्री० [अचल=पर्वत+जा=पुत्री] पार्वती।

—जा—पति—पुं० [अचलजा=पार्वती+पति] पार्वती के पति शिव।

—जा—पति—अंग—भूपन—पु० [अचलजापति=शिव+अंग=शरीर+भूषण=अलंकार] शिव के शरीर का भूषण। सर्प। शेषनाग।

अचला वि० जो न चले। स्थिर।
स्त्री० १. पृथ्वी। धरती। भूमि।
उ०—निज दल जागै जोति, परदल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है। के० I २६/११५
२. पतिव्रता स्त्री।
उ०—'द्विजदेवजु' चंद्रिका की छवि जाकी प्रसादि रहीं सिगरी अचला। शृ० १७८/५१२

अचलु पुं०/वि० दे० 'अचल'।
उ०—विधि के समान है विमानीकृत राजहंस विविध विबुधजुत मेरु सो अचलु है। के० III ११०/६३१

अचवन—अचवनि स्त्री० दे० 'अचमन'। आचमन। कुल्ला। आचमन करने की क्रिया।
उ०—कीजै कहा समय बिनु सुंदरि, भोजन पीछैं अचवन घी कौ। सूर० १०/२७३८/१६७

अचांक क्रि०वि० दे० 'अचानक'।

अचाँचक क्रि०वि० बिना पूर्व सूचना के। अचानक। एकाएक। सहसा।

अचाँनचक क्रि०वि० दे० 'अचाँचक'।
उ०—परिहै बज्रागि ताके ऊपर अचाँनचक धूरि उड़ि जाइ कहूँ ठौहर न पाइहै। सुं०, II पृ० ५००

अचाक क्रि०वि० दे० 'अचाका'।

अचाकचक वि० अरक्षित।
उ०—चाकचकचम् के अचाकचक चहूँ ओर चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की। भू० ५०८/२२६

अचाका क्रि०वि० अचानक। अकस्मात्।
उ०—कहै पदमाकर नहीं तौ ये झकोरे लगें और लौं अचाका बिन घोरे घुरि जायगी। प० ६६८/२२०

अचान क्रि०वि० अचानक। अकस्मात्। एकाएक। असम्भावित।
उ०—उचकि अचान चहूँ ओर चौंकि चले देव मग न गहत पग पग डगलाइये। दे० I १०/३५

अचानक क्रि०वि० अकस्मात। एकाएक। असम्भावित। दैवयोग से। एक बारगी। हठात्।
उ०—प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई। म० ३६०/२८८

अचानको क्रि०वि० अचानक। यकायक।
उ०—दौरि करनाटक में तोरि गढ़कोट लीन्हे मोदी सो पकरि लोदी सेर खाँ अचान को। भू० ४६८/२२०

अचार[1] पुं० मिर्च, मसाला नमक राई आदि के साथ तेल या सिरका में डालकर खट्टा बनाया शाक, फल आदि। यथा—आम या नीबू का अचार।

अचार[2] पुं० आचार। आचरण।
उ०—दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार। स्वास्थ्य सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार। तु० १५०

—विचार पुं० आचार-विचार।

अचार[3] पुं० चिरौंजी का पेड़ और उसका फल। पियाल द्रुम।

अचारज पुं० (आचार्य) गुरु। उपदेष्टा। उपदेश करने वाला। अच्छे मार्ग पर लाने वाला।

उ०—ईश्वर पुरी प्रकाश भट्ट रघुनाथ अचारज
त्रिपुर गंग श्री जीव प्रबोधानंद सु आरज।
भा० II २३०

अचारी[1] स्त्री० [आचार+ई] छिले हुए कच्चे आम की फाँक जो नमक और मसालों के साथ धूप में सिझाकर तैयार की जाती है। यह मीठी भी बनाई जाती है।

अचारी[2] वि० (आचार+ई) १. आचार करने वाला। आचार-विचार से रहने वाला। वह व्यक्ति जो अपना नित्य कर्म विधि एवं शुद्धतापूर्वक करता है। २. यज्ञ के समय कर्मोपदेशक। वेदज्ञ।

उ०—पांडव जज्ञ सुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी। धर०, पृ० ५

अचारु वि० (अ+चारु) जो चारु न हो। असुंदर। अशोभन।

अचाह स्त्री० (अ+चाह) १. अनिच्छा। अरुचि।

उ०—चाह-आलबाल औ' अचाह के कल्पतरु।
घ० क० ३५६/२२०

वि० २. जिसकी कुछ अभिलाषा न हो। बिना चाह का इच्छा रहित। निष्काम।

अचाहा वि० [अ+चाह] १. न चाहा हुआ। अवांछित। अनिच्छित।

२. अप्रिय। अरुचिकर।

उ०—ठाकुर जौ वे अचाही भए हम तौ उनको भलै चाहितु है। ठा० ६७/१८

पुं० न चाहने या प्रीति न करने वाला व्यक्ति। निर्मोही।

उ०—रावलि कहाँ हौ किन, कहत हौ काते अरी रोष तज, रोष कै कियो मैं का अचाहे को।
प०

अचाहि स्त्री० (अ+चाह+ई) अनिच्छा। अप्रीति। अरुचि।

उ०—कवि ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहियै जु सही नइयाँ। ठा० २९/६

अचाही[1] वि० (अ+चाह+ई) किसी पदार्थ की चाह न रखने वाला। निःस्पृह। निष्काम।

अचाही[2] पुं० न चाही गई या अवांछित वस्तु।

अचिंत वि० (अ+चिंत) चिन्ता रहित। निश्चिन्त।
क्रि०वि० अकस्मात्। एकाएक।

अचिंतित वि० (अ+चिंतित) १. जिसका चिन्तन न किया गया हो। जिसका विचार न हुआ हो। बिना सोचा-विचारा।

उ० १—तत्त्व की चिंता सौ सत्व अचिंतित, तत्व अतत्वनि की गति पीने। दे० I ४/२१३

२. असंभावित। आकस्मिक।

३. निश्चित। बेफिक्र। ४. अपेक्षित।

अचिंत्य[1] वि० (अ+चिन्त्य) १. जिसका चिन्तन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। कल्पनातीत।

२. बिना सोचा-विचारा।

३. चिंता-रहित। निश्चित।

उ० २—आसन समूचो ऊँचो औचक ही ऐंचि लियो देव ह्वै अचिंत्य चेति चिंता च्वै गई।
दे० I/२५/४२

अचिंत्य[2] पुं० (अ+चिन्त्य) १. एक अलंकार जिसमें अविलक्षण या साधारण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कही जाती है।

२. वह जो चिंतन से परे हो। ईश्वर।

अचितवन वि० [अ=नहीं+चितवन] चितवन रहित। निर्निमेष। अपलक।

अचिर वि० (अ+चिर) १. जो चिर काल का न हो। थोड़े समय का। अस्थायी।

उ०—का यह सूर अचिर करनी, तनु तजि अकास पिय-भवन समैहौं। सूर० १०/२२८६/५

२. हाल का। ताजा।

क्रि०वि० १. शीघ्र। जल्दी।

२. थोड़े ही समय पूर्व। कुछ काल पहले।

अचिरज पुं० दे० 'अचरज'।

उ०—अचिरज आइ सुनौरी भूपन देखि न सकत हमारौ। सूर० १०/१५४१/६२४

—निधि पुं० आश्चर्य के भंडार।

उ०—अचिरजनिधि, हौं तिहारी सब विधि प्यारे।
घ० १७०/१३६

अचीता वि० दे० 'अचीतो'।

अचीतो वि० १. जिसका पहले से चिन्तन न किया हो। अचिंतित। असंभावित। आकस्मिक।

२. अचिंत्य। जिसका अंदाजा न हो। बहुत। अधिक।

३. निश्चित। बेफिक्र।

अचुक वि० दे० 'अचूक'। जिसका वार खाली न जाय। अति कुशल।

उ०—लयौ घेरि मन मृग चहुँ दिसि हैं, अचुक अहेरी नहिं अजान।
सूर० १०/३३२६/३५४

अचूक वि० [अ+चूक] १. जो न चूके। जो आवश्यक फल दिखलाये। २. अमोघ । ठीक। पक्का। जिससे भूल न हो। सच्चा। निश्चिंत।
उ०—सेनापति कवि कवित्त बिलसत अति, मेरे जान बान हैं अचूक पाप-धारी के।
क० १/६/३

क्रि०वि० १. कौशल से। पटुता से।
उ०—नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी कों औचका अचूक मुख चूमत चितै चितै।
प०, ७६/६५

२. निश्चय। अवश्य।

अचेत वि० १. चेतना रहित। बेसुध। संज्ञा-शून्य।
उ०—थकित भए कछु मंत्र न फुरई कीने मोह अचेत। सूर० वि० २६/६
२. विकल। व्याकुल। विह्वल।
उ०—चैत-चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।
वि० ५१६/२१४
३. असावधान। अनजान। बेखबर।
उ०— इन बातनि पति नाहिंन पैयत जानि न होहु अचेत। सूर० १०/१४६८/६०६
४. नासमझ। मूर्ख।
उ०—ऐसी प्रभू छाँड़ि क्यों भटकै, अजहूँ चेति अचेत। सूर० १/२६६/८१
५. जड़।
उ०—अस्म अचेत प्रगट पानी मैं, बनचर लै-लै डारत। सूर० ६/१२३/१६१

पुं० १. निर्जीव पदार्थ। जड़।
२. माया। अज्ञान।

अचेतन वि० १. जिसमें चेतना का अभाव हो। चेतना-रहित।
२. ज्ञान-शून्य। जड़।

पुं० अचैतन्य पदार्थ। जड़ द्रव्य।
उ०—चेतन कौ चित हरति अचेतन, भूखी डोलति मांस की। सूर० १०/१२४६/५५४

अचैन पुं० [अ+चैन] १. चैन का अभाव। क्लेश। व्याकुलता। विकलता। बेचैनी।
उ०—खिचैं मान अपराध हूँ चलि गै बढ़ै अचैन।
वि० ६४६/२६७

वि० २. व्याकुल। बेचैन। विकल।
उ०—चौंके चिकै चितवैं चहूँ ओर चलाचल त्रंचल चित्त अचैनी। दे०

अचैमन पुं० दे० 'आचमन'।

अचोखी—अचोखियै वि० [अ+चोखी—चोखिय+ई] जो चोखी न हो, अच्छी या उत्तम न हो।
उ०—रावरी बानि अचोखियै जानिकै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ। घ० क० ४६६/२५७

अचोज वि० [अ+चोज] १. चमत्कारहीन। २. व्यंग्य-रहित।

अचोना पुं० आचमन करने का पात्र। पीने का बरतन। कटोरा। दे० 'अचौन' भी।

अचौन—अचोन पुं० १. आचमन।
उ०—चातिक उमाहै घनआनंद अचौन कौं।
घ० क० २००/५१
२. आचमन करने का पात्र। कटोरा।
उ०—देखि देखि गातन अघात न अनूप रस, भरि-भरि रूप लेत लोचन अचौने से।
दे० I ५७७/१४५

अच्छ[1] वि० १. अच्छा। पवित्र। निर्मल। स्वच्छ। उत्तम।
उ०—मानहु बिधि तन-अच्छ छबि स्वच्छ राखिबैं काज। बि० ४१३/१६४
उ०—मेटियै मरिबौ बखान निवृत्ति जे मति अच्छ।
के० III ३६/७६८

अच्छ[2] पुं० १. अक्षि। आँख। नेत्र।
उ०—कहै पदमाकर न तच्छन प्रतच्छ होत अच्छन के आगे हूँ अधिच्छ गाइयतु है। प०
२. रुद्राक्ष।
उ०—मौंनी औ उपवीत अच्छ कंठा कल धारे।
रत्ना० I, पृ० १०१
३. अक्षकुमार नामक रावण का पुत्र।
४. अक्ष। धुरी।

अच्छकुमार पुं० रावण-पुत्र, अक्षयकुमार।

अच्छत[1] पुं० १. अक्षत। बिना टूटे चावल जो देवताओं पर चढ़ाये जाते हैं।
उ०—अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े, बारिनि बंदन-वार बँधाई। सूर० १०.१६/२१६

अच्छत[2] वि० (अ+छत) १. अखंडित। समूचा। २. क्षतरहित। घावरहित।

अच्छत[3] अछत क्रि०वि० रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में।
उ०—जुद्ध कौं करत छाजत नहीं है तुम्हैं, मुनि महाराज अच्छत हमारे।
सूर० १०/४१६४/५४४

अच्छम—वि० (अ+क्षम) अक्षम। अशक्त। क्षमता-रहित। लाचार।

उ०—सबहि समरथहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि। तु० ६२

अच्छय वि० (अ+क्षय) १. जिसका कभी क्षय न हो। २. अविनाशी।

उ०—पै रच्छक रन दच्छ देखि अच्छय बलशाली। रत० I/१६४

—**तृतीया** दे० 'अक्षय तृतीया'।

उ०—अच्छय तृतीया, अच्छय सुख निधि पिय कौं प्यारी चढ़ावै चंदन। नं० १४१/३२०

अच्छर पुं० १. अक्षर। वर्ण। हरूफ। २. लेख।

उ०—रस-विहीन जे अच्छर सुनहीं। ते अच्छर फिरि निज सिर धुनहीं। नं० ३५/१०४

(अ+क्षर) २. जो न घटे। जो कम न हो। जो सदा एक रस रहे। परमेश्वर। ब्रह्म।

अच्छरा स्त्री० अप्सरा।

उ०—तोरि कैं छरा सौं अच्छरा सी यों निचोरि कहैं तुमने कहे ते कंत मुकता में पानी है। भू०

अच्छरी स्त्री० अप्सरा।

उ०—आछे अच्छरीन के कटाच्छन तें लच्छ गुने पच्छ बिन लच्छ अंतरिच्छ घनघट्टा से। प० ११/३०६

अच्छा वि० १. बढ़िया। भला। उत्तम।

उ०—रुकै क्यों महामोह लै भूमि अच्छा। महादेव मानौ रची रामरच्छा। के० III ८/६६७

२. स्वस्थ। नीरोग।

—**ई**—स्त्री० अच्छापन। सुघरता। सुघराई।

अच्छि स्त्री० आँख। नेत्र।

उ०—जब तें मिलि बरुनीनि सों अच्छिन की छबि अच्छ। म०, पृ० ३७६

अच्छित पुं० दे० 'अच्छत'।

उ०—हरद दूब अच्छित रोरी सों कंचनथार भराई। गो० १३/७

अच्छु पुं० आँख। नेत्र। दे० 'अच्छि'।

उ०—युद्ध बिध के सरक फरकत अच्छु चारों ओर। सू० सा० ३४

अच्छेद वि० [अ+छेद] जिसको छेदा अथवा काटा न जा सके। अविभाज्य। विभाग न करने योग्य।

अच्छोत वि० १. अक्षत। पूरा। २. अधिक। बहुत।

अच्छौहिनी स्त्री० एक बड़ी सेना जिसमें २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल सैनिक होते हैं।

अच्युत वि० (अ+च्युत) १. च्युत न होने वाला। स्थिर। नित्य। अमर। अविनाशी।

उ०—अच्युत अनंत कहि प्रात सात पुरीन कौं। क० १/४६/१६

पुं० २. विष्णु का नाम।

अछ[1] वि० अच्छा। उज्ज्वल। साफ। निर्मल।

अछ[2] अक० होना। रहना। विद्यमान रहना।

अछक वि० (अ+छक) जो छका न हो। अतृप्त। भूखा।

उ०—रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की निपट जू नाँगी डर काहू के डरै नहीं। भू० ५३८/२३७

अक० अतृप्त रहना। न अघाना।

अछके वि० जो छके नहीं है। अमत्त। अतृप्त। दे० 'अछक'।

उ०—अछकेन्ह देति छकाइ है। भि० I/८८/१५

अछत[1] पुं० अक्षत देवताओं को चढ़ाने के लिए बिना टूटे चावल।

उ०—अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ, इहै मोहिं लाही नैननि दिखरावी। सूर० १०/६५/२३६

अछत[2] क्रि०वि० १. रहते हुए। उपस्थिति में।

उ०—माता अछत छीर बिनु सुत मरै, अजा-कंट-कुच सेइ। सूर० वि० २००/५५

२. सिवा। अतिरिक्त।

अछत[3] क्रि०वि० न रहते हुए। अनुपस्थित।

उ०—गनती गनिवे तैं रहे, छत हूँ अछत समान। वि० २७५/११६

अछतापछता—अक० पछताना। पश्चाताप करना। किये हुए बुरे कर्मों के लिये दुःखी होना।

अछन पुं० (अ+छन) क्षण मात्र नहीं। बहुत दिन। दीर्घकाल। चिरकाल।

उ०—दैन कहहि फिर देत न जो है। अजस अछन को भाजन सो है। प०

क्रि०वि० धीरे-धीरे। ठहर-ठहर कर।

अछप वि० [अ=नहीं+छप] न छिपने योग्य। प्रकट। प्रत्यक्ष।

अछय वि० (अ+छय) जिसका क्षय न हो। न चुकने वाला। दे० 'अक्षय'।

उ०—कुरपत सभा द्रुपद तनया को अम्बर अछय कियौ। सूर० वि० १२१/३३

—**कुमार**—पुं० अक्षकुमार।

—**बृच्छ** पुं० दे० 'अक्षयवटवट'।

अछर[1] वि॰ दे॰ 'अक्षर'।
उ॰—अछर अच्युत अविकार है, निराकार है जोइ। सूर॰ १०/११७५/५२३

अछर[2] स्त्री॰ अप्सरा।
पुं॰ जलजंतु। जलचर।

अछरा—अछरी—स्त्री॰ अप्सरा। दे॰ 'अच्छरा'।

अछरौटी स्त्री॰ वर्णमाला।
उ॰—रसिक पपीहा साछी आछी अछरौटी के। घ॰, पृ॰ २०५

अछवा— सक॰ सँवारना।

अछवाई स्त्री॰ अच्छाई। स्वच्छता। उज्ज्वलता। सफाई। सुन्दरता। रमणीयता।
उ॰—रति-साँचे ढरी अछवाई-भरी पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै। घ॰ क॰ २२६/१६३

अछवानी स्त्री॰ प्रसूता स्त्रियों को दिया जाने वाला एक प्रकार का अवलेह।
उ॰—कैसहुँ वहू अछवानी न पीवत केतो खरी ढिग सास निहोरे। र॰ ६३/३३६

अछादित वि॰ आच्छादित। ढँका हुआ।
उ॰—एक घरी जाके बरपे तैं, गगन अछादित होइ। सूर॰ १०/८८३/४५०

अछि वि॰ सुन्दर। अच्छा। निर्मल।

अछित पुं॰ [अछत] दे॰ 'अक्षत'।
उ॰—थार मनि मानिक भर्‌यो मन्त्र निखर्‌यो तिलक करि दुज बधू अछित लाए। नाग॰ (द्वा॰)
क्रि॰वि॰ दे॰ 'अछत'। रहते हुए। होते हुए।

अछिद्र वि॰ १. छिद्र-रहित। विना छेद के।
२. निर्दोष। बेऐब।

अछिन पुं॰ [अ+छिन]। दे॰ 'अछन'।

अछियाँ वि॰ [आछी का बहु॰] अच्छी। सुन्दर। बढ़िया।

अछीको वि॰ शुद्ध। पवित्र। जिसे किसी ने स्पर्श न किया हो।

अछूती वि॰ १. जो किसी से छुई न हो। बिना छुई। पवित्र। शुद्ध। जो काम में न लगाई गयी हो। नई।
२. कोरी।
उ॰—आगें अछूती गई सु गई घन-आनंद आज भई मनमानी। घ॰ क॰ ४०३/२३८

—परुली स्त्री॰ दान किये पदार्थ में से अपने पूज्य बहिन भानजे आदि के लिए निकाल कर जो वस्तु अलग रख दी जाती है, उसे 'अछूती-परुली' कहते हैं।

अछूतो—अछूतौ वि॰ [स्त्री॰ अछूती] दे॰ 'अछूती'।
उ॰—दधि माखन द्वै माट अछूते तोंहि सौंपति हौं सहियौ। सूर॰ १०/३१३/२६४
२. नवीन। ताज़ा। ३. पवित्र।
पुं॰ १. अस्पृष्ट वस्त्र। पदार्थ आदि।
उ॰—भली बिधि सौं आछो अछूतो लाई। नं॰ १४४/३१२
२. वह भोजन जो मृत व्यक्ति की तृप्ति की कामना से अपने किसी मान्य बहन, भानजे आदि को एक वर्ष तक खिलाया जाता है।

अछूप वि॰ (अ+छुप) अगोचर।
उ॰—'चतुभुज' प्रभु गिरिधरन जुग वपु लीला सदा अछूप। च॰ ५४/२८

अछेद वि॰ दे॰ 'अच्छेद'।
उ॰—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान। सूर॰ ३/१३/१०६

अछेव वि॰ (अ+छेव) दोष-रहित। निर्दोष।
उ॰— बसन सपेद स्वच्छ पैन्है आभूषण सब हीरन को मोतिन को रसमि अछेव को। रघु॰

अछेह[1] वि॰ १. छेद या दोष-रहित।
२. अखण्ड। निरन्तर। लगातार।
उ॰—बरबस मेह अछेह अति अवनि रही जलपूरि। पथिक तऊ तुव गेह तें, उठति अभूरनि धूरि। प॰
३. बहुत अधिक। अत्यंत।
उ॰—दरसि छौरि पिय पग परसि आदर कियौ अछेह। प॰ ६८/६३
४. अनिष्टकर।
उ॰—देह मैं अछेह विष विषम बगारै हैं। उ॰ ८४

—पन—पुं॰ निर्दोषता। भलाई। अच्छाई।
उ॰—पूती छलि जो आय तू मो संग लायो नेह। तुव अछेहपन आनि कै कियौ हिए में गेह॥ अज्ञात

अछेह[2] पुं॰ दोष। कुटेव।
उ॰—होत सुगसुगी टोल में, क्यों कर मिटै अछेह। क॰ १३४/३४

अछेही वि॰ दे॰ 'अछेह'।

अछेहु वि॰ दे॰ 'अछेह'।

अछै—अछैं वि॰ दे॰ 'अक्षय'।
दे॰ 'अछय' भी।

उ०—अछै वृच्छ वह बचत निरंतर, कह ब्रज गोकुल गाइ। सूर० १०/८५४/४४४

—वट—पुं० अक्षयवट, वह वृक्ष जो प्रलय काल में भी नष्ट नहीं होता।

—वर—पुं० अक्षयवट।

अछोटो वि० जो छोटा न हो। बड़ा। ज्येष्ठ। विशाल।

अछोभ वि० १. क्षोभ-रहित। चंचलता-रहित।
२. स्थिर। गंभीर। शांत।
३. निडर। निर्भीक।
४. मोह-रहित। माया-रहित।
५. जिसे बुरा कर्म करते हुए क्षोभ न हो, नीच।

अछोर वि० (अ+छोर) जिसका छोर या किनारा न हो। बिना छोर का। अपार। अकूल।

अछोह वि० १. क्षोभ-रहित। स्थिर। शांत।
२. मोह-शून्य।
३. करुणा-रहित। निर्दय।
पुं० १. क्षोभ-हीनता।
२. शांति। स्थिरता।
३. मोह का अभाव। दया-हीनता। निर्दयता।

अछौहनी वि० दे० 'अक्षौहिणी'। दे० 'अच्छोहिनी' भी।
उ०—तीन-बीस अछौहनी लै दल, जरासंघ तहाँ आयौ। सा० ५६७/४८

अजंभो—अजंभौ वि० दे० 'अचंभौ'।
उ०—एक अजंभौ भयौ घनआनंद हैं निरही पल पाट उघारे। घ० क०, ४२५/२४५

अज[१] वि० जिसका जन्म न हो। जन्म-बंधन-मुक्त। स्वयंभू।
उ०—अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै मरै न सोइ। सूर० २/३६/१०४

अज[२] पुं० १. ब्रह्मा।
उ०—सखि इह कृष्ण-चरन-रज अज शंकर शिर धारैं। नं० ८३/३६
२. विष्णु। ३. शिव।
४. कामदेव। ५. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।
६. बकरा।
उ०—जज्ञ आरंभ मिलि रिषिनि बहुरौ कियौ, सीस अज राखिकै दच्छ ज्याए। सूर० ४/६/११७
७. माया। शक्ति।
—आ स्त्री०

अज[३] क्रि०वि० अब। अभी तक।

अजक स्त्री० रोग। पीड़ा। व्यथा।

अजगर पुं० साँप-विशेष। विषहीन विशालकाय स[ाँप] जो उदर पूर्ति के लिए जंगली जानवरों [को] श्वाँस के सहारे खींचकर निगल जाता [है]। विशाल शरीर होने के कारण आलसी [भी] होता है।
उ०—आयो ब्रज ऊपर, पठायो कंस भूप [...] अजगर रूप रह्यो मारग में लूकि के। दे० I/३=

अजगरी स्त्री० अजगर के समान निरुद्यम-वृत्ति। बि[ना] परिश्रम की जीविका।
उ०—बहुत अजगरी इहिं करि राखी, [...] मारिहैं याहि। सूर० १०/३०३७/[...]
वि० १. अजगर की सी।
२. बिना परिश्रम वाली।
—वृत्ति स्त्री० बिना श्रम की जीविका।

अज-गलथन पुं० बकरी के गले के स्तन, यह बकरी [के] गले में स्तन की भाँति लटके रहते हैं, जिनका उपयोग नहीं होता है।

अजगव पुं० शिव का धनुष। पिनाक।

अजगुत पुं० १. अचंभे की बात। आश्चर्यजनक बात। अप्राकृतिक घटना।
उ०—कुंडिनपुर इक होत अजगुत, स्यार घेरी [...] सूर० १०,४१७३/[...]
२. अयुक्त बात। अनुचित बात। बेजो[ड़] बात या प्रसंग।
उ०—गोपाल सबनि प्यारौ, ताकौं तैं [...] प्रहारौ, जाकौ है मोहूँ कौ गारौ, अ[...] कियतौ। सूर० १०/३७३/[...]
वि० आश्चर्यजनक। अद्भुत।

अजगैब पुं० अदृश्य स्थान। अलक्षित स्थान।
क्रि०वि० अचानक। यकायक।
उ०—गंगा जू तिहारो गुनगान करैं अजगैब [...] होति बरषा सु आनँद की अति है। प० १४/[...]

अजगैबी क्रि०वि० अचानक। सहसा।
उ०—कहै पदमाकर त्यों तारन बिचारन की [...] गुनाह अजगैबी गैर आब की। प० ७८/[...]

अजड़ वि० [अ+जड़] १. जो जड़ न हो। चेतन।
२. पुख्ता। मजबूत। दृढ़। कठोर।
पुं० चेतन पदार्थ।

अजदर पुं० अजदहा। बड़ा मोटा भारी साँप।

अजदहा पुं० [फा०] बड़ा मोटा और भारी साँप। अजगर।

अजदाह पुं० अजदहा। अजगर।
उ०—संत की प्रीति अजदाह की चाहिए, जले बिन फिरे अजदाह आवै। पल०, पृ० २६

अजन¹ वि० १. जन्म-रहित। अजन्मा। स्वयंभू।
उ०—सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ हो। सूर० १०/४/२११

अजन² वि० २. निर्जन। सुनसान।
उ०—मो उर अजन अनिर मैं निज जोतिहि जमाय जागौगे। घ०, पृ० १६२

अजनी स्त्री० दे० 'अजन'। माया। प्रकृति।

अजन्म वि० दे० 'अजन्मा'।
उ०—आत्म अजन्म सदा अविनासी। ताकौं देह-मोह बड़ फांसी। सूर० ५/४/१२७
पुं० जन्म का अभाव। जन्म न होना।

अजन्मा वि० जन्म-रहित। जिसका जन्म न हुआ हो। अनादि। नित्य। अविनाशी।

अजप पुं० अज पालने वाला। भेड़ पालने वाला। गड़ेरिया। दे० 'अजपा' भी।

अजपा वि० १. जिसका सस्वर जाप न किया जाय। जिसका उच्चारण न किया जाय।
पुं० २. उच्चारण न किया जाने वाला तांत्रिकों का मंत्र। श्वास-प्रश्वास के साथ स्वभावत: जिसका जप हो ऐसा मंत्र।

—जाप पुं० वह जाप जो मन ही मन सदा जपा जाय। चौबीस घंटे में २१६०० श्वास नासिका रन्ध्रों से बाहर आती-जाती है। यह 'ह' से बाहर आती है और 'स' से भीतर जाती है इस प्रकार शरीर के भीतर बैठा हुआ प्राणी (जीव) प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में 'हंस:' मन्त्र को जपा करता है। यदि प्रत्येक श्वास में जपे गये इस मन्त्र को जो जीव शरीर के भीतर स्थित सात चक्रों में देवताओं को अर्पण कर देता है उसका पुण्य सार्थक माना जाता है, इसी का नाम अजपा जाप है।

अजब वि० अनूठा। विचित्र। विलक्षण। अद्भुत। अनोखा।
उ०—अजब गजब मन की लगन अनमिल कूं लगि जाय। बो० २६

अजब्ब वि० दे० 'अजब'।
उ०—गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोप तेरो है। प० ७/३०५

अजमा सक० १. आजमाना। परीक्षा लेना। जाँच करना।
२. अनुभव करना।
अजमायो—भू०कृ०। अजमावत—व०कृ०। अजमाइबो—क्रि०सं०।

इसु स्त्री० १. आजमाइश। परीक्षा। जाँच।
२. अनुभव।

अजमीढ़—अजमीढ़ौ पु० १. राजा-विशेष। पुरुवंशीय। सुहोत्र के पुत्र का नाम।
२. राजपूताने में किसनगढ़ रियासत के अन्तर्गत एक ग्राम विशेष।

अजमीती स्त्री० अजवाइन की तरह की वस्तु विशेष। जो आकार में इससे कुछ बड़ी होती है और मसालों और दवाओं में काम आती है।

अजय पुं० १. जय का अभाव। पराजय। हार।
२. छप्पय छंद के ७२ भेदों में से पहला जिसमें ७० गुरु और १२ लघु मिलाकर ८२ वर्ण और २४२ मात्रायें होती हैं।
उ०—सत्तर गुरु गनि अजय के बारह लघु उच्चारि। के० II ३०/४५२
वि० जिसे जीता न जा सके। अजेय।

अजया¹ वि० १. जिसको जीता न जा सके।
दे० 'अजय'।

अजया² स्त्री० १. बकरी। २. भाँग। विजया।

अजर¹ पुं० १. परब्रह्म।
उ०—अजर अमर विन जारै मारै जरै मरै, ऊंचो सब ही ते, होत नीचो तरतर को। दे० I १४/४०
२. देवता। स्वर्ग के निवासी।
उ०—अजर अमर जस कहि कहाँ कैसें प्रेत-चरित्र। के० I ५४/५५
३. एक पौधा।

—अमर वि० जो कभी जीर्ण न हो, पुराना न हो। नष्ट न हो।
पुं० देवता।

अजर² वि० १. जरा-रहित। जो बूढ़ा न हो।
२ क्षयरहित। नाशरहित।

अजर³ पुं० दे० 'अजिर'।

अजरा वि० जरा-रहित। जो वृद्ध न हो।

उ०—जे अगर सुन्दरी सरूप के समर सूर अजरी, न भरी सर न भरी अजरा।
दे० I/३४६/१०७

अजराइल—अजरायल वि० कभी नष्ट न होने वाला, अपरिवर्तित रहने वाला।

उ०—दिना चारि मैं सब मिटि जैहै। स्याम रंग अजराइल रैहै। सूर० १०/१६१२/३५

अजरामर वि० दे० 'अजर-अमर'।

उ०—होइ अजरामर, महोषधि संतोष सेवै, पावै सुख मोष, जो त्रिदोष तैं बच्यो रहै।
दे० I/१८/३६

अजरी[1] वि० १. कभी बूढ़ी न होने वाली (स्त्री)
स्त्री० १. देवी। २. युवती।

अजरी[2] वि० १. चंचल। २. जबरदस्त।

अजल वि० १. जल-रहित।
पुं० २. वह स्थान जहाँ जल न हो। रेगिस्तान।
—चर वि० जल में न रहने वाला। स्थल-चर।

उ०—अरु तहँ बहुत जुगनि को कह्यौ। सर्प अजलचर क्यौं जल रह्यौ। नं०, पृ० २७६

अजस पुं० अयश। अपयश। अपकीर्ति। निन्दा। बदनामी।

उ०—पाँव अवार सुधारि रमापति अजस करत जस पायौ। सूर० वि० १८८/५२

अजहुँ—अजहूँ क्रि०वि० [अज+हूँ प्रत्य०] आज भी। अब भी।

उ०—किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी। सूर० १०/१७५/२५६

अजसी वि० बदनाम। अपयशी।

अजा[1] वि० १. जन्मरहित। जिसका जन्म न हुआ हो। २. सांख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं की गई और अनादि है।

उ०—'सूर' अजा के भोग ये, सुनि लेहु न मोसौं।
सूर० १०/३०३८/२६०

३. दुर्गा। शक्ति।
—नायक— वि० मायापति। प्रकृति-नियन्ता। ईश्वर।

अजा[2] स्त्री० बकरी।

उ०—कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ।
सूर० वि०/१६६/४५

—खुर— पुं० बकरी के खुर। बकरी के पाँव का अगला भाग। बकरी के पाँव का चिह्न जो कहीं-कहीं धरती पर बन जाता है।

उ०—होत अजाखुर बारिधि बाढ़े। कवि० ५/८

—नायक— पुं० बकरियों का स्वामी। चरवाहा। बकरी चराने वाला।
—भष— पुं० बकरी का भोजन। पत्ता।

उ०—अजाभष की ह्य न हमकौं अधिक मनि मुखपाई। सूर०

—रूढ़— बकरे पर सवार, भेड़ पर सवार।

उ०—असुर अजरूढ़ होइ गदा मारे फटिक स्याम अंग लागि सो गिरैं ऐसे। सूर०

अजाई वि० (अ+जाई) जो पैदा न हुई हो।

अजाच वि० अयाची। न माँगने वाला। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। सम्पन्न।

उ०—जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए।
रत्ना० I पृ० २५८

—ई दे० 'अजाच'।

अजाचक वि० अयाचक। याचना न करने वाला। न माँगने वाला। धनी। समृद्ध। सम्पन्न। सम्पत्तिशाली। दे० 'अजाच' भी।

उ०—जो माँगत सोइ देइ, कर अजाचक भाट कौं।
नं० २७/२८६

अजाची वि० न माँगने वाला। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। धन-धान्य से पूर्ण। सम्पन्न। दे० 'अजाच' भी।

उ०—गुरु-सुत आनि दिए जमपुरे तैं विप्र सुदामा कियौ अजाची। सूर० वि० १८/६

अजात वि० १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २. अजन्मा।
—शत्रु वि० जिसका कोई शत्रु न हो। बिना बैरी का। शत्रु-रहित।
पुं० १. राजा युधिष्ठिर।
२. शिव।
३. मगध के राजा बिंबसार का पुत्र जो गौतम बुद्ध का समकालीन था।

अजाति—अजाती वि० [अ+जाति] १. जाति से निकाला हुआ। जाति-च्युत।
२. दूसरी जाति का, विजातीय।

उ०—सूरदास प्रभु महाभक्ति तैं, जाति अजातिहिं साजैं। सूर० वि० ३६/११

अजाद वि० आज़ाद। स्वतन्त्र। स्वाधीन।

उ०—जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये। सूर० वि०/१७१/४६

अजान[1]**—अजानु** वि० १. जो न जाने। अनजान। अबोध। अनभिज्ञ। नासमझ।

उ०—सिव-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं। सूर० वि० ११/४

२. अपरिचित। अज्ञात।

पुं० अज्ञानता। अनभिज्ञता।

क्रि०वि० अज्ञानतावश।

—ता—स्त्री० अज्ञानता। नासमझी। मूर्खता।

उ०—मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है। घ० क० ४८४/२६४

—पन पुं० [अजान+पन] अनजानपन। अज्ञानता। नासमझी। अबोधता। नादानी।

उ०—थापति सी चातुरी सरापति सी लंक अरु आफत सी पारत अरी अजानपन में। प० २३/८३

अजान[2] स्त्री० नमाज़ की सूचना देने के लिये मसजिद से मुल्ला द्वारा की गई पुकार।

अजानत वि० अज्ञात। जिसके विषय में न जानते हों। अपरिचित।

उ०—अन्न सों लाज, अगिन्न सों जोर अजानत नीर में न धँसिये। गं० ४१३/१२७

अजानन[1] क्रि०वि० न जानते हुए। बिना जाने हुए। दे० 'जान'।

अजानन[2] वि० १. अजा जैसा मुख। २ बकरे जैसा मुंह वाला। ३. बकरे जैसी दाढ़ी वाला।

अजानी वि०स्त्री० अज्ञानी।

उ०—रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है। कवि० २०/११

अजानु[1] वि० दे० 'अजान'।

अजानु[2] वि० आजानु। जानु-पर्यन्त या जाँघ तक लम्बा।

—बाहु वि० जिसकी भुजाएं घुटनों तक लम्बी हों।

उ०—त्रिविध ताप हरन अजानबाहु पर तिनमें लटकि रही रस विलास। च० २१२/११५

अजाने क्रि०वि० भूल में। अज्ञान में। अज्ञानवश। न जानते हुए। बिना जाने।

अजामिल पुं० एक ब्राह्मण जो वेश्या-संग के कारण पतित हो गया था, किन्तु मृत्यु के समय पुत्र व्याज से 'नारायण' का नाम लेने से सद्गति को प्राप्त हुआ।

उ०—अविगत की गति कहि न परत है, व्याध अजामिल तारत। सूर० वि०/१२/४

अजामील पुं० दे० 'अजामिल'।

उ०—अजामील द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै। सूर० वि० ८२/२३

अजायब वि० अजीब। विचित्र। अद्भुत।

उ०—अविगत रूप अजायब बानी। ता छबि का कहि जाई। भी०, पृ० ३७

पुं० अद्भुत पदार्थ।

अजायबो वि० दे० 'अजायब'।

उ०—अंग मुखमूल रंग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकूल तूलपूरित अजायबो। घ० पृ० २०६

अजार पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। बीमारी।

उ०—कबकी अजब अजार में, परी बाम तन छाम। प०

२. दुःख। कष्ट।

उ०—अति दुर्बल तन विरह सतायो। कछुक अजार और तिहि पायो। बो०, पृ० १६८

अजित वि० १. जो जीता न जाय। अपराजित।

उ०—इन्द्री अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन दिन उलटी चाल। सूर० वि० १२७/३५

उ०—अजित पुरुष हरि रावरो सो तुमहि मनावैं। भ्र० १०६/६३

पुं० १. विष्णु। २. शिव। ३. बुद्ध।

अजितेन्द्रि वि० दे० 'अजितेन्द्रिय'।

उ०—असुर अजितेंद्रि जिंहि देखि मोहित भए, रूप सो मोंहि दीजै दिखाई। सूर० ८/१०/१४५

अजितेन्द्रिय वि० जिसने इन्द्रियों को न जीता हो। इन्द्रियों के वशीभूत। विषयी। इन्द्रिय लोलुप।

उ०—कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसैं। अजितेन्द्रिय दुख भरत हैं वैसैं। नं०, पृ० २६१

अजिन पुं० १. चर्म। चमड़ा। खाल।

२. मृगचर्म। मृगछाला।

अजिर पुं० १. आँगन। खुली जगह। सहन। चौक।

उ०—अजिर लिपाय चौक सुभ साजा। बो०, पृ० २२२

२. वायु। हवा। ३. मेंढक। दादुर।

४. शरीर।

अजी अव्य० सम्बोधन-सूचक शब्द। अरे। जी।

अजीज वि० [अ० अज़ीज़] प्यारा। सुहृद्। प्रिय।

पुं० १. सम्बन्धी । २. आत्मीय । मित्र ।

अजीत वि० जो जीता न जा सके । अजेय ।

उ०—जग मैं अगम अजीत, इनहीं ते माया जिथैं ।
दे० I ६३/२०६

उ०—जीति उठि जायगी अजीत पांडुपूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी ।
रत्ना० I पृ० १४२

अजीति स्त्री० हार । पराजय ।

उ०—दिसि दिसि जीति पै अजीति दुज दीननि
सों, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ।
के० I ५/१३६

अजीम वि० (अज़ीम) १. बड़ा । महान् ।

उ०—ठठा मार्‌यो खानखाना दच्छिन अजीम कोका,
ईसफखाँ मारि मारे कसमीर ठौर के ।
गं० ८/१३६

२. विशाल ।

अजीरन पुं० १. अन्न का अच्छी तरह से न पचना । अपच । बदहजमी ।

उ०—कही अजीरन रोग कों अजवायन अरु लौन ।
बो०, पृ० १६५

२. अधिकता । बहुतायत ।

वि० १. अजीर्ण । जो पुराना न हो । नया । २. न पचा ।

अजीवन पुं० जीवन का अभाव । मृत्यु ।

वि० १. जीविकाहीन । २. मृत । निष्प्राण ।

क्रि०वि० ३. आजीवन । जीवन पर्यन्त । जीवन भर ।

अजुक्त पुं० अयुक्त अर्थांतरन्यास अलंकार । प्रस्तुत कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत के कारण का कथन ही अयुक्त अर्थांतरन्यास अलंकार है ।

उ०—'केसवदास' विचारिजै चौथो जुक्त अजुक्त ।
के० I ६७/१७३

अजुक्ताजुक्त पुं० अयुक्तायुक्त । अर्थांतरन्यास अलंकार । जहाँ अशुभवर्णन में अर्थांतर से शुभवार्ता प्रकट हो वहाँ अयुक्तायुक्त अर्थांतरन्यास अलंकार होता है ।

उ०—जुक्त अजुक्त बखानिजै और अजुक्ताजुक्त ।
के० I ६७/१७३

अजुगत—अजुगुत पुं० १. अयुक्तियुक्त । असाधारण बात । आश्चर्यजनक बात ।
२. अनुचित या असंगत बात ।

वि० १. युक्ति से परे । अयुक्त । आश्चर्यजनक ।
२. अनुचित ।

उ०—पापी जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात
बिचारी ।
सूर० ९/७९/१७६

अजुगति स्त्री० दे० 'अजगुत' ।

अजू अव्य० यदि ।

उ०—की हौं मैं निहारी तूँ हमारी प्रान प्यारी अजू
होती जौ पियारी तौऽब रोती कही काहे
कौं ।
प० ६४/९२

अजूबी स्त्री० अनोखी । अनूठी ।

अजूबा वि०/पुं० दे० 'अजूबो' ।

उ०—कवि बोधा तमासो अजूवा लख्यो कुलकानि
गली सब भूलि गई ।
बो० ६६/११

अजूबो—अजूबौ वि० अद्‌भुत । अनूठा । विचित्र । अनोखा ।

उ०—प्रेमरूप दरपन अहो रचै अजूबो खेल ।
अज्ञात ।

पुं० आश्चर्य । आश्चर्यजनक बात या पदार्थ ।

अजूरा वि० [अ+जुट] न जुटा हुआ । पृथक् । अलग ।

अजेइ वि० दे० 'अजेय' । जो पराजित न किया जा सके । जिसे हराया न जा सके ।

उ०—कियौ सबै जगु कामबस जीते जिते अजेइ ।
वि० ४६५/२०४

अजेय वि० जो पराजित न किया जा सके ।

उ०—द्विस्वभाव अश्लेप में ब्राह्मण जाति अजेय ।
के० II १६/३७९

अजै वि० दे० 'अजेय' ।

उ०—हौं हार्‌यौं करि जतन बिविध बिधि अति सै
प्रवल अजै ।
तु०, पृ० ५०४

—गढ़०—पुं० नगर-विशेष । ऐसा किला जिसे जीता न जा सके । अजेय दुर्ग ।

अजैत वि० जो जीता न गया हो । अविजित ।

अजोख वि० [अ=नहीं+जोख] जो जोखा न जा सके । जिसका अनुभव न किया जा सके । जो नापा या तोला न जा सके । अत्यधिक ।

उ०—लीन्हीं जिन मोल भाय चोखै । दीन्हीं तुमको
बिथा अजोखें ।
भि० I पृ० २१५

अजोग—अजोगू वि० १. अयोग्य । जो योग्य न हो ।

उ०—जोगति जोग मिलाइऐ हम या जोग-अजोग ।
सूर० १०/३५२२/३७६

२. अयुक्त । अनुचित । नामुनासिब ।

उ०—मुनि यह बात अजोग जोग की छैहै समुद
नदो वै ।
भि० I पृ० २१०

क्रि॰वि॰ असमय । बेमौके । अनवसर ।

अजोग्य वि॰ १. अयोग्य । जो योग्य न हो । मूर्ख । २. बेमेल । अनुचित ।

अजोतर वि॰ अजोता, जो अभी जोता न गया हो । स्वच्छन्द ।

उ॰—आनँदघन पिय नई घमंड सों दरबरयो डोलत अजौं अजोतर । घ॰, पृ॰ ३६०

अजोध्या स्त्री॰ अयोध्या, वह स्थान जहाँ दशरथ-पुत्र भगवान् राम का जन्म हुआ था ।

उ॰—दसरथ-नृपति अजोध्या-राव । ताकैं गृह कियौ आविर्भाव । सूर॰ १०/१५/१५८

अजोन्य वि॰ अयोनिज । जो योनि से उत्पन्न न हो । स्वतःसंभूत । अपने आप उत्पन्न ।

उ॰—अजोन्यं अनायास पाए अनादू । नमो देव दादू नमो देव दादू । सुं॰ I पृ॰ २५६

अजोर[१] सक॰ दे॰ 'अँजोर' । १. प्रकाश करना । उजाला करना । अंधकार मिटाना । दीपक जलाना ।

अजोर[२] अंजलिगत कर लेना । अपने अधिकार में कर लेना । छीन लेना । अपहरण कर लेना ।

उ॰—ठाढी भई बिथकि मारग में मांझ हाट मटकी सो फोरि । सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि चित चितामणि लियो अँजोरि । सूर॰

अजोरी[१] स्त्री॰ अंजलि । दोनों हाथों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट ।

उ॰—सूरस्याम भये निडर तबहि तैं, गोरस लेत अजोरी । सूर॰

अजोरी[२] स्त्री॰ १. उजाला । प्रकाश । २. चाँदनी रात । उजाली रात ।

अजौं क्रि॰वि॰ अब तक । आज तक । आज भी । अब भी ।

उ॰—बालक अजौं अजान न जानै, केतिक दह्यौ लुठायौ । सूर॰ १०/३५६/३०४

उ॰—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर । मन है जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर ॥ बि॰ ६८१/२८०

अज्ञ वि॰ १. अज्ञानी । ज्ञानरहित । २. जड़ । मूर्ख । ३. नासमझ । नादान ।

उ॰—तैसेई आयु तैसेई लरिका अज्ञ सबनि मत थोरी । सूर॰ १०/२५३/२७६

पुं॰ मूर्ख मनुष्य । जड़ व्यक्ति । नादान आदमी ।

उ॰—जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अज्ञ की नाई । वि॰ ११२/२

—ता—स्त्री॰ १. मूर्खता । नासमझी । नादानी । २. जड़ता । अचेतनता ।

—ताई—स्त्री॰ अज्ञता । मूर्खता ।

अज्ञता स्त्री॰ दे॰ 'अज्ञ' ।

अज्ञताई स्त्री॰ दे॰ 'अज्ञ' ।

अज्ञा स्त्री॰ आज्ञा । आदेश ।

उ॰—कर जोरे गिरिवरधर ठाढ़े, अज्ञा हमकौं दीजै । सूर॰ १०/२९१६/२६३

—कारी वि॰ आज्ञाकारी । आज्ञा मानने वाला । आज्ञापालक ।

उ॰—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी जिनकै बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी । सूर॰ १/१६३

अज्ञात वि॰ १. अनजान । अविदित । बिना जाना हुआ । २ जिसे ज्ञात न हो ।

उ॰—जो अज्ञात सु जौबना बरतन कबि निरधारि । म॰ १८/२०४

क्रि॰वि॰ बिना जाने । अनजाने में ।

—जौवना स्त्री॰ अज्ञात-यौवना । मुग्धा नायिका का एक विशेषण ।

उ॰—इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञात-जौवना कहिए । नं॰, पृ॰ १४६

—वास पुं॰ १. गुप्त वास । ऐसे स्थान में रहना जहाँ किसी को पता न लग सके । २. एकान्तवास ।

अज्ञान पुं॰ ज्ञान का अभाव । अविद्या । जड़ता । मूर्खता । मोह । अविवेक ।

वि॰ ज्ञान-शून्य । मूर्ख । जड़ । अनजान ।

उ॰—जो परलोक हु गरल समान । क्यों है देत बंधु अज्ञान । नं॰ ३०३/१३६

—ता—स्त्री॰ १. अविवेक । जड़ता । मूर्खता । २. अचेतनता ।

अज्ञानी वि॰ ज्ञानरहित । अबोध ।

पुं॰ ज्ञानहीन मनुष्य । मूर्ख व्यक्ति ।

उ॰—ज्ञानी संगति उपजै ज्ञान । अज्ञानी संग होइ अज्ञान । सूर॰ ३/१३/१०६

अज्ञेय वि॰ जो समझ में न आये । ज्ञानातीत । जिसको जाना न जा सके ।

अज्यों—अज्यौं क्रि॰वि॰ दे॰ 'अजौं' ।

उ॰—उर सोई लाली अज्यों उर सोइ लागि । म॰ १३१/३७६

अज्वाल वि॰ ज्वालारहित । लपटविहीन । जिसमें ज्वाला न हो ।

उ०—ज्वाल उपजावन अज्वाल दरसावन सुभाल यह पावक न जावक दिढ़ाए हौ।
भि० I, पृ० १२८

अझर वि० १. जो न झरे। जो न गिरे। जो न बरसे।
२. अझड़। मजबूत।

अझूनो पुं० १. आग। अग्नि।
२. गोबर के बनाये उपलों या कंडों को चूल्हे में लगाकर जलाने की क्रिया। अलाव या अगिहान लगाना।
३. दालबाटी के लिए उपलों का ढेर करके उसे जलाने की क्रिया।
उ०—बिलखत हाड़ी धौस चारिक चिन्हारो करि, वारि दियौ हिय में उदेग को अझूनो है।
घ०, पृ० १३८

अझोरी स्त्री० १. कपड़े की लम्बी थैली। झोली।
२. पेट के भीतर की वह थैली जिसमें भोजन रहता है।

अटंबर—अटँबर पुं० अट+अंबार अर्थात् ढेर। राशि।
उ०—लागि गए अंबर लौं अखिल अटंबर पै, द्रुपद-सुता की अर्जों न खूट्यौ है।
रत्ना० II, पृ० १११

अट¹— अक० १. घूमना। परिभ्रमण करना। पर्यटन करना। २. पूरा पड़ना। समाना।
उ०—जीव जलथल जिते, वेषधरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे। सूर० १/१२०/३
—जा—सं०क्रि० पूरा पड़ना। ढँक जाना। छा जाना। भर जाना। समा जाना।
अटि गयौ, अटि गई, अटि गए—भू०कृ०

अट² अक० १. अड़ना। २. बाधा देना।
उ०—नेक अटें पट फूटति आँखि सु देखति हैं कब को ब्रज सूनो। के० I, २३/३

अटक स्त्री० १. उलझन। रोक। रुकावट। अड़चन। बाधा।
उ०—घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहिं निबाहि। सूर० १/३१०/८५
२. संकोच। हिचक।
३. अकाज। हर्ज।
४. बड़ी आवश्यकता।
उ०—ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी। सूर०
अक० १. रुकना। उलझना। फंस जाना।
उ०—जिन महे अटकत बिबुध बिमाना।
पं० ६६/४०
२. ध्यान-मग्न होना।
उ०—अटक रहे कित कामरत नागर नंदकिसोर।
प० ६२५/२१०
३. प्रेम में फँसना। प्रीति करना।
उ०—फिरत जु अटकत कटनि बिनु, रसिक सुरस न खियाल। वि०
४. झगड़ना।
उ०—जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुःख पायौ। सूर० १/३२

अटकत— व० कृ०, अटक्यौ, अटकी, अटके—भू० कृ०।

अटकिबौ— क्रि०सं०।

अटकपारी वि० १. नटखट। शरारती। ऊधमी।
२. ऊटपटाँग।

अटकर स्त्री० दे० 'अटकल'।
उ०—अपनी अपनी सब कहै अटकर परै न कोई।
सुं०, पृ० ७६०
सक० अनुमान लगाना। अटकल लगाना।
उ०—बार बार राधा पछितानी। निकसे स्याम सदन ते मेरे, इनि अटकरि पहिचानी। सूर०

अटकल स्त्री० अंदाज़। अनुमान। कल्पना।
उ०—सिल त्रिन कंटक अटकल कसरत हमरे मन मैं। नं० ६/१४
—पच्चू—पुं० कपोल-कल्पना। अनुमान।
वि० अंदाज़ी। ख़याली।

अटका¹ पुं० १. जगन्नाथ जी को चढ़ाया हुआ भात जो सुखाकर, प्रसाद की भाँति वितरित किया जाता है। २. जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया हुआ धन।

अटका² सक० दे० 'अटक'।
१. रोकना। ठहरना।
उ०—एक बार माखन के काजैं, राखे में अटकाइ।
सूर० १०/३७६०/३२२
२. फँसाना। उलझाना।
उ०—जुवती गई घरनि सब अपनैं, गृह-कारज जननी अटकाई। सूर० १०/३८३/३११
३. टाँगना। लटकाना।

अटकाव पुं० १ रोक। अड़चन। बाधा। उलझाव। प्रतिबन्ध। रुकावट।
२. स्त्रियों का मासिक धर्म।
उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो। दो सौ०, पृ० २६८

अटखट वि० टूटा-फूटा। अंट-शंट। अंड-बंड। बेमेल। असंगत।

उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। तु०, पृ० ५५३

अटखेल पुं० १. उलझाने वाला खेल। मन बहलाने वाला खेल। खिलवाड़। कौतुक।

२. ढिठाई। चंचलता।

अटन—अटनि—स्त्री० १. घूमना। परिभ्रमण। यात्रा।

१. आवारा की तरह घूमना।

उ०—कुलटा तजै न कुल-अटनि कुलजा तजै न कानि। भि० I, ३४६०/५

कुल—स्त्री० घर-घर घूमना।

अटनी स्त्री० अटन (घूमने) की क्रिया। कलाबाजी।

उ०—जैसे बरत बाँस चढ़ि नटनी। बारंबार करै तहाँ अटनी। सुं० I, पृ० ६८

अटपट वि० १. ऊटपटाँग। उलटा-सीधा। बेठिकाने।

उ०—अटपट आसन बैठि कै, गो-धन कर लीन्हो। सूर० १०/४६०/३२०

२. अनोखा। अद्भुत। विचित्र।

उ०—दान अटपट माँगत ढोटा दोउकर जोरि खरी। कुं० २१,११

३. टेढ़ा। विकट। कठिन। मुश्किल।

४. गूढ़। जटिल।

५. गिरता-पड़ता। लड़खड़ाता।

उ०—वाही की चित चटपटी, धरत अटपटे पाइ। वि० ३३/२०

अटपटा— अक० १. लड़खड़ाना। अटकना। घबड़ाना।

उ०—अटपटात, कर देति सुंदरी उठत तबै सुजतन तन-मन-धरि। सूर० १०/१२०/२४५

उ०—स्याम करत माता सौं झगरी, अटपटात कल-बल करि बोल। सूर० १०/६४/२३८

२. संकोच करना। हिचकिचाना।

उ०—नैंन अरसात अरु बैनहू अटपटात, जाति ऐड़ाति गात गोरि बहियानि झेलि। सूर० १०/२०१०/५४

अटपटात—व०कृ०। अटपटायौ, अटपटाई, अटपटाए—भू०कृ०, अटपटाइबो, अटपटान—क्रि०सं०।

अटपटि वि० दे० 'अटपटी'।

उ०—अटपटि बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी को है। भ्रमर० ३५,१

अटपटी स्त्री० अनरीति। बेसिरपैर की बात या क्रिया।

उ०—दान निवेरि लेहु ब्रज सुंदरि छोंड़ो हो अटपटी कित गहत अलकावलि। गो० ३६/१७

वि० १. विचित्र। अनोखी। अद्भुत।

उ०—कोधौं जीव जारै अटपटी गति दाह की। घ० क० १८,५

२. बेढंगी। उल्टी-सीधी। ऊल-जलूल। ऊटपटांग।

उ०—'सूर' प्रेम की बात अटपटी, मन तरंग उपजावति। सूर० १०/२१२३/७५

अटपटो—अटपटौ वि० १. ऊटपटाँग। उल्टा-सीधा। अंड-बंड।

२. अनूठा। अनोखा। अद्भुत।

३. गूढ़। गहरा।

उ०—निपट अटपटी चटपटी, ब्रज को प्रेम बियोग। नं० २३,१४४

४. लड़खड़ाता। गिरता-पड़ता।

अटबरा अक० जल्दी करना।

उ०—अजहूँ रैंन तीन जाम है। काहे कों अटबरात स्याम जू। गो० ५००/१६०

अटबी स्त्री० अटवी। जंगल।

अटब्बर[1] पुं० ढोंग। आडम्बर। घमंड।

उ०—अब तो गुनिया दुनिया कों भजै, सिर बाँधत पोट अटब्बर की। गं० ४३५,१३३

अटब्बर[2] पुं० परिवार। कुल। कुटुम्ब।

उ०—बब्बर के बंस के अटब्बर के इच्छुक हैं तच्छक अलक्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर। सू०

अटब्बी स्त्री० दे० अटवी।

अटम्बार पुं० ढेर। अपरिमित राशि। समूह। दे० 'अटंबर' भी।

अटरिया स्त्री० अटारी। घर का सबसे ऊँचाई पर का छोटा कमरा।

अटल वि० १. न टलने वाला। स्थिर। दृढ़।

उ०—उदधि-संसार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ। सूर० वि० ११६/३३

२. नित्य। चिरस्थायी।

उ०—दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ राम-दरबारी। सूर० वि० १७६,४८

३. ध्रुव। पक्का।

४. अवश्यंभावी।

अटवी स्त्री० जंगल। वन।

उ०—कत अटवी महँ अटत गड़त तृन कूट न न्यारे। नं० १०/१४

अटहर स्त्री० १. अटाला। ढेर।

२. फेंटा । पगड़ी ।

उ०—आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्ही बकसीस औ हजार सीस वरि की लगाई अटहर है ।
प० ३७/२६७

अटा[1] स्त्री० १. घर के ऊपर की कोठरी या छत । अटारी ।

उ०—छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु भुज प्रीतम गल डारि । चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु छटा सी नारि ।
बि०

उ० २—ऊँचे-ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु, कौसिक की कीनी गंगा खेलत तरल तर ।
के० I/१३२

अटा[2] पुं० २. अटाला । ढेर ।

उ०—एरी बलबीर के अहीरन की भीरन में समिटि समीरन अबीर को अटा भयो ।
प० ४०२/१६७

अटा[3] सक० किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना । अँटा देना । रखना । दे० 'अट' भी ।

अटाउ पुं० १. बिगाड़ । बुराई । २. शरारत ।

अटाटूट वि० १. बिलकुल । नितांत । २. अत्यधिक । अपरिमित । ३. बहुत सघन । ४. बहुत मज़बूत । अत्यन्त दृढ़ ।

अटारी स्त्री० १. मकान के ऊपर की कोठरी या छत । २. महल ।

उ०—कुटिल कटारी है अटारी है उतङ्ग अति जमुना तरङ्ग है तिहारो सतसंग है ।
उ०, पृ० ७६

उ०—दुहूँ अटारिनि में सखी लखी अपूरब बात ।
म० २१७/३८६

अटाला पुं० १. ढेर । राशि । २. सामान । असबाब ।

अटूट वि० १. न टूटने वाला । जिसका खंड न हो सके । अखंड ।

२. दृढ़ । मजबूत ।

उ०—फटिक अटूटनि, महारजत कूटनि, मुकुट मनि जूटनि, समेटि रतनाकरनि ।
दे० I १४१/७०

३. जिसका पतन न हो । अजेय ।

४. अपरिमित । अपार ।

५. लगातार । अनवरत ।

उ०—छूटे जटाजूट सौं अटूट गंगधार धौल मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है ।
रत्ना० II, पृ० २१०

अटेक स्त्री० टेक का अभाव । हठ न होना ।
वि० जो हटी न हो ।

अटेर— सक० अटेरन से सूत की आंटी बनाना ।

अटेरन पुं० सूत की आँटी बनाने की लकड़ी का एक विशेष औजार या यन्त्र ।

अटोक वि० बेरोक-टोक । रुकावट-रहित ।

उ०—अरु अटोक ड्योढ़ी करी, पैठत बखत तमाम ।
म०

अट्ट पुं० १. महल । प्रासाद ।

उ०—किधौं हैं मनी नील के उच्च अट्टे ।
प० २४/२७६

२. अटारी । कोठा ।

अट्टहास पुं० जोर की हँसी । ठहाका ।

अट्टालिका स्त्री० महल । पक्की इमारत । अटारी ।

अट्ठा[1] पुं० दे० 'अटा' ।

उ०—हाट बाट, कोट ओट अट्टनि, अगार पौरि ।
कवि० १४/१८

अट्ठा[2] पुं० १. ताश का पत्ता जिसमें आठ बिंदियाँ होती हैं ।
२. आठ दिन का समय । अठवारा ।

अट्ठाईस सं० एक संख्या । बीस और आठ का योग ।

अट्ठानवे—अठानवे सं० एक संख्या, नब्बे और आठ (९८) ।

अट्ठारह—अट्ठारैं सं० अठारह । दस और आठ । १८ की संख्या ।

उ०—जपन अट्टारहौं भेद उनइस नहीं, बीसहू बिसै तैं सुखहि पैहै ।
सूर० १०/१७३६/६७२

अठ्ठावन सं० एक संख्या, पचास और आठ । (५८)

अठ्ठासी—अठासी सं० एक संख्या, अस्सी और आठ । (८८) ।

अठंग पुं० अष्टांग ।

उ०—उठत उरोजन उठाए उर ऐंठ भुज ओठन अमेठें अंग आठहू अठंग सी ।
अज्ञात

अठ वि० दे० 'आठ' ।

अठएं वि० आठवाँ ।

अठकोन पुं० अष्टकोण ।

अठखेली स्त्री० १. चपलता । चंचलता । चुलबुलापन ।
२. मस्तानी चाल ।

अठपाव पुं० उत्पात, उपद्रव, ऊधम ।

उ०—भूषन क्यों अफजल्ल बचे अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो ।
भू०, पृ० २५३

अठयौ वि० आठवाँ ।
उ०—अठ्यौ गर्भ सु तेरौं हुंता । नं०, पृ० २२१

अठला– अक० दे० 'अठिला—' ।

अठा¹ अक० १. बिगड़ना । शरारत करना ।
उ०—औरंग अठाना साह सूर की न मानै ।
भू० ४६५/२१६

सक० सताना । पीड़ित करना ।
उ०—आज सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठाए । रघु०

अठा² सक० मचाना । जमाना । ठानना । छेड़ना ।
उ०—जानि जुद्ध अमनैक अठायो । तहवर खाँ इहि देस पठायो ।। ला०

अठाई स्त्री० १. अथाई । चौपाल । बैठक ।
वि० २. उपद्रवी । नटखट ।
उ०—हैं हरि आठहु गाँव अठाई । के०

अठाउ पुं० शरारत । नटखटपन ।
उ०—आपु ही अठाउ कै ये लेत नाउँ मेरो, वे तौ बापुरे मिलाप के सँलाप करि हीने हैं ।
के० I, १६/२६

अठान पुं० [अ=नहीं+ठान] १. न ठानने योग्य कार्य । अकरणीय कार्य । अनुचित कर्म ।
२. हठ । ज़िद ।
उ०—ऐसी अठाननि ठानत हो कितधीर धरौ न परौ जिन ढूके । घ० क० १५७/१७६
३. नटखटपना ।
४. वैर । शत्रुता । द्वेष ।

अठानी वि० [अठान+ई प्रत्य०] अयोग्य या अनुचित ठानने वाला । अनुचित कार्य करने वाला ।
उ०—द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानी के ।
रत्ना० II, पृ० १४५

अठारमी वि० अठारहवीं ।

अठारह सं० दे० 'अट्ठारह' ।
उ०—बहुरि पुरान अठारह किये । पै तउ सांति न आई हिये । सूर० १/२३०/६३
पुं० पुराणों की संख्या का सूचक शब्द ।

अठारै दे० 'अठारह', अष्टादश ।

अठावन दे० अट्ठावन ।

अठासी दे० अट्ठासी ।
उ०—रिषि अठासी सहस हुते स्रोता ।
सूर० १०/४२२३/५५६

अठाहर पुं० दे० 'अटहर' ।

अठिला अक० १. ऐंठ दिखाना । इतराना । ठसक दिखाना ।
२. नखरा करना ।
उ०—दृगनि जोरि अठिलाइ अरु भौंहन को बिलसाइ । रस० ७२१/१३७
३. छेड़छाड़ करना ।
उ०—लोचन बिलोल यों बिरोचन उए हैं कौल अठिलात बोलि अंकमालिका लगावहीं ।
भू० ५८०/२४५
४. मदोन्मत्त होना । मस्त होना ।
उ०—सूरदास प्रभु मेरौ नान्हौ, तुम तरुनी डोलति अठिलानी । सूर० १०/१४६०/६११
अठिलात—व० कृ० । अठिलान्यो, अठिलानो—भू० कृ० । अठिलाइबो—अठिलाइबौ ।

अठोठ पुं० आडम्बर । पाखण्ड । ठाठ ।
उ०—लाज के अठोठ कै कै, बैठती न ओट दै दै, घूँघट कै काहे कहौ कपट पट तानती ।
दे० I, १४/४४

अठोतर वि० अष्ठोत्तर ।
अठोतर सौ एक सौ आठ

अठोतरी स्त्री० १. एक सौ आठ दानों की माला ।
२. ग्रहों की दशा । जिसमें सब ग्रहों की दशा का योग १०८ वर्ष होता है ।

अठौर पुं० १. बुरी जगह । कुठौर ।
२. गुप्ताङ्ग । गुह्य स्थान ।

अडंग¹ पुं० १. अड़ंगा । अटकाव । अड़चन ।
२. टाँग अड़ाकर युद्ध करना ।
उ०—धक्कों की धड़ाधड़ अडंग की अड़ाअड़ में रहे कड़ाकड़ सुदंतों की कड़ाकड़ी ।
प० १६/१०७

अडंग² वि० १. न डिगने वाला । अडिग ।
उ०—पुनि बीन साजि माधव अडंग ।
बो०, पृ० ४५

अड़ंगा पुं० [अड़+अंग] १. अटकाव । रुकावट । अड़चन ।
उ०—क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने जल जे कुबुद्धि तनै उद्धत अड़ंगा को ।
रत्ना० II, पृ० १६५
२. कुश्ती का एक दाँव ।
—ई वि० रोक लगाने वाला । अड़चन डालने वाला ।

अडंबर¹ पुं० आडंबर । तड़क-भड़क । टीमटाम । दिखाना । पाखंड ।
उ०—मुंडन की माल दीबो भाल पर ज्वाल कीबो छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो ।
प०, पृ० २०१

अडग वि० अटल । अडिग । न डिगने वाला ।

उ०—साहि के सपूत सिवराज बीर तेरे डर अडग
अपार महा दिग्गज सो डोलिया ।
भू० ४६१/२१६

अड़ पुं० हठ । टेक । ज़िद ।

अक० १. रुकना । अटकना । ठहरना ।

उ०—इति उर माखन चोर गड़े । अब कैसें निकसत
सुनि ऊधौ, तिरछे ह्वै जु अड़े ।
सूर० १०/३७३०/४३६

२. हठ करना । ज़िद करना ।

३. सामना करना । भिड़ जाना ।

४. दृढ़ रहना । अटल रहना ।

अड़त, अड़ति—व० कृ० । अड़ौ, अड़े, अड़ी
—भू० कृ० । अड़िबो, अड़न—क्रि० सं० ।

—आक वि० अड़ने वाला । अड़ियल ।

उ०—साहब सूम, अड़ाक तुरंग, किसान कठोर
दिमान चिकारो । गं० २६/१४६

—आइत —आयती वि० अड़ने वाला। ओट करने वाला । जो आड़ करे ।

उ०—ओड़ी न परत री निगोड़िन की ओड़ी डीठि,
लागे उठि आगे होति, आड़े ह्वै अड़ाइती ।
दे० I, ६८/५६

—आका पुं० अड़ करने वाला । ज़िद करने वाला ।

—आन स्त्री० १. रोक । रुकावट ।

२. रुकने का स्थान । पड़ाव ।

—आनो पुं० डाट । थूनी । टेक ।

—आर वि० १. अड़ने वाला । स्थिर रहने वाला ।

२. टेढ़ा । तिरछा ।

—आहले वि० अड़ने वाले । हठीले । अड़ीले ।

—इयल वि० १. चलते-चलते रुक जाने वाला। अड़ने वाला ।

२. हठी । ज़िद्दी ।

—ईला—ईलौ वि० १. अड़ियल । हठी ।

२. स्वाभिमानी ।

— ऐल वि० अड़ने वाला । हठी ।

—दार वि० १. अड़ियल । रुकने वाला । हठी । ज़िद्दी । अड़ने वाला ।

२. ऐड़दार । मस्त । मतवाला ।

उ०—लखि दावेदार कौ रिसानौ देखि दुलराय
जैसें गड़दार अड़दार गजराज कौं ।
भू० ३३/१३३

अड़गोड़ा पुं० [अड़=रोक+गोड़=पाँव] गोड़ों (पैरों) में अड़ जाने वाला, रुकावट डालने वाला डंडा । नुकसान करने वाले भगोड़े जानवरों के गले में बाँधने का डंडा जो उसके पैरों में लग-लग कर भागने में रुकावट डालता है ।

अड़चन स्त्री० बाधा । रुकावट । कठिनाई ।

अड़तालीस सं० एक संख्या । चालीस और आठ (४८)।

अड़तीस सं० एक संख्या । तीस और आठ (३८) ।

अड़बंग वि० दे० 'अड़बंगा' ।

अड़बंगा वि० १. टेढ़ा-मेढ़ा । ऊँचा-नीचा । अटपटा। अड़बंग ।

उ०—वेद कौं न मानैं न पुरान भेद जानै कछु ठानै
ठान आपने लबेद अड़बंगा की ।
रत्ना० II, पृ० १६६

२. विकट । कठिन । दुर्गम ।

३. अद्‌भुत । अनोखा ।

अड़बड़ वि० १. अटपट । बेढंगा ।

२. कठिन । विकट ।

अड़भंगी वि० १. टेढ़ी-मेढ़ी । अड़बड़ ।

२. विकट । कठिन । दुर्गम ।

३. अद्‌भुत । अनोखा ।

अडर वि० [अ=नहीं+डर=भय] निडर । निर्भय । बेखौफ ।

अड़ा– सक० १. अटकाना । रोकना । ठहराना । टेक लगाना ।

२. ढरकाना । गिराना ।

उ०—जूठौ खैये मीठैं कारन, आबुहि खान अड़ावत।
सूर० १०/२३४१/११६

३. उलझाना । ४. फैलाना ।

अड़ात, अड़ावत, अड़ावति—व०कृ० ।

अड़ान्यौ, अड़ानौ, अड़ानी, अड़ाने–भू०कृ०

अड़ाइबौ, अड़ावन, अड़ान—क्रि०सं० ।

—अड़ स्त्री० अड़े रहने का भाव । अड़ाहट ।

उ०—धक्कों की धड़ाधड़ अड़ंग की अड़ाअड़ में ह्वै
रहे कड़ाकड़ सुंदंतों की कड़ाकड़ी ।
प० १६/३०७

अडांडि वि० दंडित न किया जाने वाला । अदण्डित ।

उ०—ब्रह्मादि, सिवादि, सनकादि, नारदादि, सेवैं,
मातर संपत निधि सिद्धियों अडांडि कै ।
दे० I, ११८/२१

अडानो पुं० एक राग विशेष जो कान्हड़ा का एक भेद है।

उ०—अधर मधुर धरें बेनु गावत अडानो राग।
छी० १२१/५३

अड़ार¹—अडार पुं० १. नदी के किनारे का ऊँचा भाग जो कट-कट कर नदी में गिरता रहता है।

२. समूह। राशि। ढेर।

३. लकड़ी या ईंधन की दुकान।

४. गाय-भैंसों के रहने का घेरा।

५. बैलगाड़ियों में लगाया रोक।

अड़ार²—अडार सक० डालना। देना। फेंकना।

उ०—सहि न सकति अति विरह त्रास तन, आग सलाकनि जारी। ज्यौं जल थाकैं मीन कहा कर, त्यौं हरि मेलि अडारी।
सूर० १०/३८५१/४६१

अडिग—अडिग्ग वि० जा न डिगे। निश्चल। स्थिर।

उ०—पब्बय छिपि पब्वै अडिग्ग, थिर थंभनि थप्पिय।
गं० १३/१४१

अडींठ वि० १. अदृष्ट। जो दिखाई न पड़े। लुप्त।

२. छिपा हुआ। अंतर्हित।

अड़ूसा पुं० १. एक काष्ठ औषधि।

अड़ेंच स्त्री० १. जिद। हठ।

२. ईर्ष्या। द्वेष। शत्रुता।

अड़ैल—अरैल पुं० प्रयाग के निकट गंगा पार एक ग्राम, जिसे अब अरैल के नाम प्रसिद्धि मिली हुई है।

अडोल वि० [अ+डोल] १. न हिलने वाला। स्थिर। निश्चल। अटल।

उ०—प्रेम बृच्छ पर चारि सदा फर, निरभय अमित अडोल।
सूर० १०/३६१०/३६५

२. न डिगने वाला। विचलित न होने वाला।

उ०—तहँ परत गोलन पर जु गोले अरि अडोले डगि उठे।
प० ६०/१३

३. स्तब्ध।

उ०—त्यौं पदमाकर खोलि रही दृग बोलै न बोल अडोल दसा है।
प०, ३२६/१५१

४. स्थिर। ध्रुव।

उ०—मुख-बोल कहत अडोल है गज-बाजि देत अमोल है।
प०, ८/६

—नि— स्त्री० स्थिरता। निश्चलता।

अड़ौस-पड़ौस पुं० आस-पास। नजदीक। निकट।

अड्ड पुं० १. आड़। रोक।

उ०—काल पहूँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।
भि० I, २४/२३३

२. आश्रय-स्थल।

अड्डौ पुं० १. ठहरने का स्थान।

२. मिलने या इकट्ठा होने की जगह।

३. केन्द्र। प्रधान स्थान।

४. कबूतर आदि के बैठने की छतरी।

अढ़अढ़ वि० नष्ट।

उ०—कोट-गढ़ी-गढ़ कीन्हें अढ़अढ़ डिढ काहू में न गति है।
भू० ४६०/२२५

अढ़तिया पुं० (आढ़त+इया) वह व्यक्ति जो ग्राहकों को या व्यापारियों को माल खरीद कर भेजता और उनका माल मंगाकर बेचता है तथा इसके बदले कुछ अपनी दस्तूरी लेता है। आढ़त करने वाला दलाल। एजेंट।

अढ़व— सक० स्वीकार करना। अंगीकृत करना। काम में लगाना।

उ०—कैसे बरजों करन को समर नीति की बात। अति साहस के काम को अढ़वत हियो सकात।
सत्य०

अढ़ाई वि० दो और आधा। ढाई।

उ०—रैनि अढ़ाई पहर गत, पौढ़त है परजंक।
दे० I, ७/२६०

अढ़िया स्त्री० काठ का छोटा बर्तन जिसमें रोटी आदि रखी जाती है। छोटी कठौती।

अढ़ैया स्त्री० ढाई सेर की तौल।

अणिमा स्त्री० (अणु+इम) आठ सिद्धियों में से पहली सिद्धि। वह सिद्धि जिसकी शक्ति द्वारा अणुवत (छोटे से छोटा) रूप धारण किया जा सकता है।

उ०—अणिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति प्रकाम।
नं० २२/६८

अणु पुं० १. छोटा टुकड़ा। कण।

२. रजःकण।

३. अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा।

४. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश काल।

५. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,०००वाँ भाग।

वि० अत्यन्त सूक्ष्म। क्षुद्र। जो दिखाई न दे।

अतंक पुं० दे० 'आतंक'।

उ०—जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को सजत तब लंक लौं अतंकन के पतरैं पतारे से । भू० ५३७/२३७

अतंका पुं० १. आतंक । दबदबा ।
२. भय । डर । त्रास ।
उ०—सोहैं अन्न ओड़े जे न छोड़े सीम संगर की लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में । प० ६६०/२२४

—ई वि० आतङ्कित करने वाला । भय देने वाला । भयदायी । भयावना ।

अतंद्रमा वि० [अ+तन्द्रा] तंद्रारहित । सजग ।
उ०—देत छबि को है कोकनद में, नदी में कहो नखत बिराजै कौन निसि में अतंद्रमा । प० ८०/३२५

अतंद्रिका वि० १. आलस्य-रहित । चञ्चल ।
उ०—बिखरि जात पखुरी गरूर जनि करि अतंद्रिका ।
२. व्याकुल । विकल । बेचैन ।

अततायी—अतताई वि० दे० 'आततायी' ।

अतत्व पुं० [अ+तत्त्व] असार वस्तु । तत्व का अभाव ।
उ०—तत्त्व की चिंता सौ सत्व अचिंतित, तत्व अतत्वनि की गति पीने । दे० I/४/२१३
वि० तत्वरहित । साररहित ।

अतद्गुन पुं० १. एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुणों को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह निकट हो ।
उ०—तहाँ अतद्गुन कहते हैं कविजन बुद्धिनिकेत । म० ३३७/३५५
२. किसी के गुणों के समान न होने वाला व्यक्ति ।
उ०—भयौ अतद्गुन सूर सरस बढ़ बली वीर विख्यात । सूर०

अतन वि० [अ+तन] १. शरीररहित । बिना शरीर का ।
उ०—अतन कथन के कथन यों केलिकथन परबीन । बो०, २६/२४
पुं० २. कामदेव । मनोभव ।
उ० २—अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर । घ० क०, २६/५४

—ताप पुं० कामदेव का ताप । कामाग्नि । कामवासना की उत्तेजना ।
उ०—अतनताप तन ही सहै मन ही मन अकुलाइ । प० १७३/११६

अतनु वि० १. बिना शरीर का ।
पुं० २. अनंग । कामदेव ।
उ०—मदन जु मन्मथ, मनोभव, अतनु, पंचसर, मार । नं० १०१/७६

अतर पुं० इत्र । फूलों की सुगन्ध का सार । पुष्प-सार ।
उ०—कल करील की कुंज तें उठत अतर की वोइ । प० १२२/१०५
उ०—करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि । रे गंधी मति अंध तू अतर दिखावत काहि । वि०

—अपीच उत्तम इत्र । सुन्दर इत्र ।
उ०—फहर गई धौं कबै रंग के फुराहन में कैधौं तराबोर भई अतर-अपीच में । प० ६०/३१६

—दान पुं० [इत्रदान] इत्र रखने का पात्र ।

अतरक—अतरकि वि० अतर्क्य । तर्क-रहित । जिसके लिए तर्क न किया जा सके । जिस पर तर्क वितर्क न हो सके ।
उ०—नेह की विषमता सुजान अतरक है । घ० क० ४७६/२६१

अतरसों क्रि०वि० १. परसों के बाद का दिन । वर्तमान दिन से आने वाला तीसरा दिन ।
उ०—खेलत में होरी रावरे के कर परसों जो भीजी है अतर सों सो आइहै अतरसों । रघु०
२. गत परसों से पहले का दिन ।

अंतराय पुं० विघ्न । बाधा ।

अतरोटा पुं० दे० 'अतरौटा' ।
उ०—अध अतरोटा पीत बिराजित भूखन विविध सुहात । गो० ११५/५६

अतरौटा पुं० १. अंतरपट । महीन साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र ।
उ०—उलटोई अतरौटा पहिरे हौ उतलाई में । भि० पृ० २७३
२. रूमाल जिसे ब्रजवासिनें अंगिया में खुरस लेती हैं ।

अतल[1] पुं० १. पृथ्वी के नीचे का लोक । सात पातालों में दूसरा ।
२. तल-रहित । वर्तुल । वेपेंदी का ।

अतल[2] वि० अतुल । अत्यधिक ।

अतलस पुं० १. एक रेशमी वस्त्र जो बहुत मुलायम होता है ।
उ०—उबटि न्हवाये दोऊ भैया बागो अतलस लाल बनावति । गो० ८०/४०

२. तीसी का फूल—यह नीले रंग का बड़ा सुहावना होता है।

उ०—पीरे पचतोरिया लसत अतलस लाल, लाल रदछद मुख चंद ज्यों सरद को।
दे० I, ७२७/१६६

अतसी स्त्री० अलसी। तीसी।

अतसे वि० अतिशय। अधिक।

अताई[1] वि० १. धूर्त। चालाक। मक्कार।
२. बहुरूपिया।
३. गवैया।

अताई[2] दे० 'आतताई'।

अतान स्त्री० बेल। लता।

उ०—व्रतती, विशती, बल्लरी, विशनी, लता अतान। नं० ११०/७७

उ०—कुंजमई न विथा गई कुसुमित देखि अतान। अज्ञात।

अतापी वि० ताप-रहित। दुःख-रहित। शांत।

अतार पुं० दे० 'अत्तार'।

अतालिक—अतालीक पुं० गुरु। शिक्षक। अध्यापक।

अति वि० १. बहुत। अधिक। ज्यादा।

उ०—अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं। घ० ८२/८६

उ०—सूर स्याम मेरो अति बालक, मारत ताहि रिगाइ। सूर० १०/५१०/३५१

२. आवश्यक। ज़रूरी।

उ०—यह कहियौ ब्रज जाइ नंद सौं, कंस राज अति काज मँगायौ। सूर० १०/५२३/३५३

क्रि०वि० बहुत। अधिक। ज़्यादा।

स्त्री० १. अधिकता। बहुतायत। ज़्यादती।
२. अनुचित। आधिक्य।

उ०—गंगाजू तिहारो गुनगान करें अजगैब आनि श्रेति बरषा सु आनन्द की अति है। प०, १४/२५८

—अंत वि० अत्यंत।

उ०—लाभ होत अतिअंत किसोरी कृष्नचरन को। ब्र० नि०, पृ० ११

—उक्ति स्त्री० अत्युक्ति। एक अलंकार जिसमें गुणों का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है।

—काय वि० महाकाय। बड़े शरीर वाला। बहुत लम्बा चौड़ा।

—काल पुं० १. विलंब। बहुत देर।
२. कुसमय।
३. काल के भी काल। शिव।

उ०—काल अतिकाल कलिकाल व्यालाद खग त्रिपुर-मर्दन भीम-कर्म भारी। वि० ७/१२

—क्रम पुं० नियम-विरुद्धता। मर्यादा का उल्लंघन। विरुद्ध आचरण।

—गति स्त्री० १. शीघ्र गति। २. श्रेष्ठ गति ३. मुक्ति।

उ०—अतिगति जतिभेदसहित ताननि ननननननननन अनिअनि गति लीने। छी० ५/३

—चार पुं० १. ग्रहों की शीघ्र गति। एक राशि का भोगकाल समाप्त किये बिना किसी ग्रह के दूसरी राशि पर चले जाने की क्रिया।
२. विधान का व्यतिक्रम।

—चारी वि० अतिचार करने वाला। अतिक्रमण करने वाला। अत्याचारी।

—दान पुं० १. अत्यधिक दान।
२. अति उदारता।

—दाह पुं० बहुत अधिक जलन या दुःख।

—पात पुं० १. अतिक्रम। अव्यवस्था। गड़बड़ी। २. बाधा। विघ्न। हानि।
३. अन्याय। ४. उपेक्षा। ५. विरोध।
६. लगातार होना या गिरना।
७. विध्वंस। नाश।

—पातक पुं० नौ प्रकार के पापों में से सबसे बड़ा पाप।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी, पुत्र-वधू के साथ गमन तथा स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

—बल वि० अत्यंत बलशाली। प्रबल। प्रचंड।

उ०—महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की। भू० १८२/१६३

पुं० एक राक्षस।

—बानक पुं० सुन्दर वेष।

—बालक[1] पुं० छोटी वय का बालक।

—बालक[2] वि० बालकों जैसा।

—रथि—रथो पुं० रथ पर चढ़कर लड़ने वाला योद्धा। वह जो अकेले रथियों से लड़ सके।

उ०—अमरन कर जु न जीते जाहीं। भीषमादि अतिरथि जिनि माहीं। नं०

—रस पुं० अत्यन्त आनन्द।

उ०—अतिरस मत्त भरे मिलि गावत रीझि रिझावत ताननि प्यारी। छी० ६३/४१

—वृष्टि स्त्री० ६ ईतियों में से एक। अधिक वर्षा।

उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होत नहिं, यह जानत सब कोई। सूर० १०/४१६१/५४३

—वेला स्त्री० विलम्ब। देर।

अतिक वि० बहुत अधिक। अत्यंत।

उ०—अति आतुर आरोधि अतिक दुख तोहि कहा डर तिन यम कालहि। सा०, ६३

अतिको—अतिकौ वि० दे० 'अतिक'।

उ०—आजु लौं लाज निबाहि कहौ, न सम्हारो परे अतिको उतपातो। दे० I ४६०/१३०

अतिथ पुँ० दे० 'अतिथि'।

अतिथि पुं० १ अतिथि। अभ्यागत। आगन्तुक। पाहुना। मेहमान।

उ०—अतिथि रिषीस्वर सापन आए, सोच भयौ जिय भारी। सूर० वि० २८२/७५

२. एक स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरने वाला संन्यासी।

३. अग्नि।

४. श्रीराम जी के पौत्र एवं कुश के पुत्र का नाम।

—देव पुं० देव-स्वरूप अतिथि।

—यज्ञ पुं० अतिथि का सत्कार जो पाँच महायज्ञों में पाँचवाँ है।

—सेवा स्त्री० अतिथि-सत्कार।

अतिथ्य (आतिथ्य) पुं० आगन्तुक पुरुष का सत्कार। अतिथि सेवा।

उ०—करि अतिथ्य, पुनि विनय उचारी। अज्ञात।

अतिसय (अतिशय) वि० अत्यधिक। बहुत।

उ०—चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन विषय लोभा।

सूर० वि० ६६/१६

—उक्ति दे० 'अतिसयोक्ति'।

—उक्ति स्त्री० १. किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना।

२. एक अलंकार जिसमें वर्णनीय विषय का असीमित वर्णन किया जाय।

अतिसार—अतीसार पुं० अधिक दस्त होने का एक रोग।

उ०—अतीसार पर रस करैं आनन्द भैरो तोर।

बो०, ५२/१६५

वि० अधिक सारगर्भित। सार-रूप।

अतिसी स्त्री० तीसी। अलसी।

उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन, मानो रिस भरि कै लरति जुग झखियाँ।

सूर० १०/१३८५/५८४

अतिसै वि० दे० 'अतिसय'।

उ०—बायु बेग अतिसै नहिं करै।

सूर० ३/१३/११०

अती स्त्री० दे० 'अति'।

अतीत[1] वि० १. गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुज़रा हुआ। भूत।

२. निर्लेप। विरक्त। आसक्तिरहित। पृथक्। अलग।

उ०—तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन। तु० ४८/१३

क्रि०वि० परे। बाहर।

उ०—गुन अतीत, अबिगत, न जनावै। जस अपार, स्तुति पार न पावै। सूर० १०/३/२१०

—काल पुं० बीता हुआ समय। प्राचीन काल।

अक० बीतना। गत होना। गुजरना।

उ०—तेरे बिना दिन कैसें अतीतिहैं। अज्ञात।

सक० बिताना। व्यतीत करना। छोड़ना। त्यागना।

अतीत[2] पुं० दे० 'अतिथि'।

अतीत[3] १. संगीत में वह स्थान जो सम से दो मात्राओं के उपरांत आता है। यह स्थान कभी-कभी सम का काम देता है।

उ०—सुर स्तुति तान बँधान अमित अति, सप्त अतीत अनागत-आवत।

सूर० १०, ६४८/३६२

२. तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीथ पुं० दे० 'अतिथि'।

अतीव वि० अधिक। अत्यन्त। अतिशय।

अतीस पुं० एक पहाड़ी पौधा जिसकी जड़ दवा के काम में आती है।

अतुरई क्रि०वि० आतुरता से। व्याकुलता से।
उ०—करी मुखारी अतुरई, नागरिरस छाके।
सूर० १०/१६६५/४५

स्त्री० दे० 'अतुराई'।

अतुरता स्त्री० दे० 'आतुरता'।
उ०—अति अतुरता जानि पीय की संग दूती के चली सुहाई। अज्ञात।

अतुरा— अक० १. आतुर होना। बेचैन होना। घबराना।
उ०—राम पै भरत चले अतुराइ।
सूर० ६/५१/१६७
उ०—किहि कारन वै राग कौं उठि दौरैं अतुराय।
बो०, ३२/७०

२. हड़बड़ाना। जल्दी करना।

अतुरात—व०कृ०।

अतुरायौ, अतुराए अतुराई—भू०कृ०।

—आई स्त्री० १. शीघ्रता। जल्दबाजी। तत्परता।
उ०—कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई। सूर० १०/७५७/४१७

२. आतुरता। व्याकुलता। बेचैनी।
उ०—नैननि की अतुराई बैनन की चतुराई, गात की गुराई न दुरति दुति चाल की।
के० I, २६/४३

३. चंचलता। चपलता। हड़बड़ी।

—ई स्त्री० आतुरता। बेचैनी।

अतुल वि० १. जो तोला न जा सके। जिसकी तौल या अंदाज न हो सके।

२. अमित। असीम। अपरिमित। बहुत अधिक।
उ०—कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं? सूर० ६/६१/१८१

३. जिसकी तुलना या समता न की जा सके। अनुपम। अद्वितीय।

अतुलित वि० १. बिना तौला हुआ। जिसे तौला न जा सके।
उ०—सबै वस्तु जग मैं तुलित, अतुलित एकै प्रेम।
नं० २६/२७७

२. अपार। अपरिमित। बहुत अधिक।

३. असंख्य। अगणित।

४. अनुपम। अद्वितीय।

अतुल्ल वि० दे० 'अतुल'।
उ०—सोभहिं सुभट सपूत खाइ तन घाइ अतुल्ले।
प० २१०/३०

अतूथ वि० [अति = अधिक + उत्थ = उठा हुआ] अपूर्व। अनोखा। विचित्र।

अतूल[1] वि० १. दे० 'अतुल'।
उ०—नेह उपजावन अतूल तिल फूल कैधौं, पानिय सरोवरी की उरमि उतंग है।
भि० I, पृ० १०१

२. अतुल्य। अतुलनीय। अनुपम। बेजोड़।
उ०—हँसत बाल के बदन में यों छवि कछू अतूल।
म० २०३/३३३

अतूल[2] पुं० १. तिल का पौधा।

२. तिलक। तिलपुष्पी।
उ०—जिन्हैं कहत तुम सीतकर मलयज जलज अतूल। भि० I २६८/३६

अतृपत वि० १. अतृप्त।
उ०—अतृपत सुत ज छुभित तब भयौ। भाजन भाँजि भवन दुरि गयौ। नं० ६/२१७

२. बुभुक्षित।

अतेव वि० दे० 'अतीव'।
उ०—या विथा फिरै निकुंज कुंज पुंज भामरो। कामधेनु पाय रो रहै अतेव चामरो।
भि० I, पृ० २३६

अतेह (अ+तेहा) वि० तेहा से परे। क्रोध-रहित। ईर्ष्या-रहित।

अतोर वि० जो तोड़ा न जा सके। जो न टूटे। अटूट। दृढ़।
उ०—जनु माया के बंधन अतोर। गुमान।

अतोल—अतौल वि० १. जो तौला न गया हो। जो कूता न गया हो। बे-अंदाज।

२. बहुत अधिक। अपरिमित।

३. अनुपम। बेजोड़। अतुलनीय।
उ०—अचरज एक मन आवत अतोल है।
क० १/१५/५

—ना वि० दे० 'अतुल'। जो तौला न जा सके।
उ०—सब तनु अनुराग उमग्यौ रस अतोलनां।
कुं० ७४/३६

—ई वि० अतुल, जिसकी बराबरी न हो सके। जिसकी तौल न की जा सके। बहुत अधिक।
उ०—चलैं गोल-गोली अतोली सनंकैं, मनौ भौंर-भौरें उड़ातीं भनंकैं। प० ६४/१०

अत्त[1] (अति) स्त्री० १. अधिकता। ज़्यादती।
२. अत्याचार।

अत्त[2] वि० दे० 'अति'।
(आत्म) ३. अहं। घमण्ड।

अत्तार पुं० १. इत्र तथा सुगन्धित तेल आदि बेचने वाला। गंधीगर।
२. यूनानी दवाएँ बेचने वाला।

अत्ति स्त्री० दे० 'अति' और 'अत्त'।

अत्तिवारे वि० अत्यंत हिम्मत का काम करने वाले जैसे नट आदि जो रस्सी पर खेल दिखाते हैं।
उ०—लसैं यों किलाएं मनौ अत्तिवारे। प० ३०/२८०

अत्थ पुं० १. अर्थ।
२. प्रयोजन। हेतु।
उ०—एकैं रिपुन के जुत्थ-जुत्थ करे उलथि बिन अत्थ के। प० १३८/२०

अत्यन्त वि० १. बहुत। अतिशय। ज़्यादा।
उ०—भूस, अतिसय अलबेलि अलि, अधिक, अत्यंत, नितंत। नं० २०३/८७

अत्यर्थं वि० उचित परिमाण से अधिक। अत्यधिक।
उ०—अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन कौ नाम। नं० २८/४४

अत्याग पुं० ग्रहण। स्वीकार।
उ०—स्रवन-सुखद भव-भय हरन त्यागिन को अत्याग। भा०

अत्याचार पुं० १. आचार का अतिक्रमण। अन्याय। ज़्यादती। जुल्म।
२. दुराचार। पाप।
३. ढोंग। पाखण्ड। आडंबर।
—ई वि० १. अत्याचार करने वाला। अन्यायी।
२. दुराचारी। पापी।
पुं० अन्याय करने वाला व्यक्ति।

अत्युक्ति स्त्री० १. किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना।
२. एक अलंकार जिसमें उदारता, वीरता आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है।

अत्र[1] क्रि०वि० यहाँ। इस स्थान पर।
उ०—सुर बासुर छल बोल बारि गढ़, अत्र अवधि मिति खूटी। सूर० १०/३२२१/३३२

अत्र[2] पुं० दे० 'अतर'।

अत्र[3] पुं० अस्त्र। हथियार।
उ०—अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवैं। भू० ५०६/२२६

अत्रि पुं० १ ब्रह्मा के पुत्र जो सप्तर्षियों में गिने जाते हैं। कर्दम प्रजापति की कन्या अनसूया इन्हें व्याही थी। इनके तीन पुत्र थे जिनके नाम हैं—दुर्वासा, दत्तात्रेय और चन्द्रमा। मनु संहिता के अनुसार दस प्रजापति पुत्रों में एक अत्रि भी थे।
२. एक तारा जो सप्तर्षि-मंडल में है।
—प्रिया स्त्री० अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया।

अथ[1] अव्य० १. ग्रन्थारम्भ में प्रयुक्त होने वाला शब्द। इसका विलोम 'इति' है जो ग्रन्थ के अन्त में प्रयुक्त होता है।
२. पश्चात्। तदनन्तर।
३. अब।

अथ[2] अक० १. अस्त होना। डूबना।
उ०—चहुँ-फल-भवन, गह्यौ, सारँग-रिपु-बाजि धरा अथयौ। सूर० १०/१६७१/६५७
२. कम होना।
३. समाप्त हो जाना।
उ०—अथए नछत्र ससि, अथई न तेरी रिस। गं० २४६/७५
—ऊ पुं० जैनियों का भोजन, जो सूर्यास्त के पूर्व किया जाता है।

अथक वि० १. न थकने वाला। अश्रांत। परिश्रमी।
उ०—रति पथ बिच है अथक तन, गुन ऐगुन पति जानि। कृ० १००/२६
२. बहुत। अधिक।
उ०—कानन करनफूल सोहत जरी दुकूल, नथ में अथक लटकन लटकायो है। दे० I, ३०१/९९

अथग वि० अगाध। गंभीर। अथाह।
उ०—अखंड सरोवर अथग जल हंसा सरवर न्हाहिं। दादू, पृ० ६७

अथग्गा वि० दे० 'अथग'।

अथल पुं० भूमि जो लगान लेकर दूसरे को जोतने बोने को दी जाय।

अथव अक० १. दे० अथ[२]

उ०—अथए नक्षत्र ससि, अथई न तेरी रिस ।
गं० २४६/७५

२. तिरोहित होना । गायब होना । चला जाना । नष्ट होना ।

उ०—चहुँ-फल-भवन, गह्यौ, सारंग-रिपु-बाजि धरा अथयौ । सूर० १०/१६७१/६५७

अथवा अव्य० एक वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है, जहाँ कई शब्दों या पदों में से केवल एक को ग्रहण करना हो । या । वा । किंवा ।

उ०—जंघनि कौं कदली सम जानै, अथवा कनक-खंभ सम मानै । सूर० ३/१३/१११

अथाई स्त्री० १. बैठक । चौबारा ।

२. पंचायती बैठक । चौपाल ।

३. गोष्ठी । मंडली । सभा । दरबार ।

उ०—यह अब सिव बिरंचि नहिं जानत मानत अमर अथाई । च० १६/६

अथान—अथानो पुं० अचार ।

उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो । पुनि द्वै विधि क्षीर सो माँगि लियो । के०

उ०—निबुआ, सूरन, आम, अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी । सूर० १०/२४१/२७७

अथाह वि० १. जिसकी थाह न मिले । अगाध । गहरा ।

उ०—मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि ।
सूर० वि०/६७/१६

२. अपरिमित । अपार । बहुत अधिक ।

३. गम्भीर । गूढ़ । समझ में न आने योग्य ।

पुं० १. गहराई ।

२. गड्ढा । जलाशय ।

—ई वि० १. गम्भीर ।

उ०—श्रीगोपाल-चरन-सेवारत गोप-सखा सब अमित अथाही । छी० ३७/१४

अथाहु वि० दे० 'अथाह' ।

उ०—तुम जानकी, जनकपुर जाहु । कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिन्धु अथाहु । सूर० ९/३४/१६३

उ०—चहूँ गिरि राहें परी समुद अथाहें अब, कहै कवि गंग चक्रबाल ओर चहूँ जू ।
गं० ३०८/९४

अथिर वि० १. जो स्थिर न हो । अस्थिर । चल । चञ्चल ।

२. जो टिकाऊ न हो । नाशवान् । क्षण-भंगुर ।

उ०—अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन ।
घ० ५७/७२

—ताई चंचलता । अस्थिरता ।

अथैयां स्त्री० दे० 'अथाई' ।

उ०—स्याम के अंग के अंग मिले, पहिले गए टेरत, गोप अथैयां । दे० I/४८/११

उ०—अथैयां बैठे हैं ब्रजराज । गो० ५३८/२०२

अथोत वि० बहुत ज्यादा ।

उ०—हास विलास अथोत के, भए भान से भाइ ।
कृ० ३६५/७६

अथोर वि० [अ+थोर] कम नहीं । अधिक । ज्यादा ।

उ०—भरत नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
भा०

—ई वि० दे० 'अथोर' ।

अदंक पुं० आतङ्क । भय । डर । त्रास ।

उ०—नैनन ओट होत पल एकौ मैं मन मरति अदंक । अज्ञात ।

अदंग वि० १. बेदाग़ । निष्कलंक । २. निरपराध ।

३. शुद्ध । पवित्र ।

अदंड वि० १. जो दण्ड योग्य न हो । जिस पर कर या टैक्स न लगे । कर से बरी ।

२. निर्भय । उद्दण्ड । स्वेच्छाचारी ।

उ०—दंड सातौ दीप नव खंडन अदंड पर नगर नगर पर छावनी समाज की ।
भू० ४६३/२१६

अदंब वि० अदम्भ । पवित्र । शुद्ध ।

उ०—त्यों पदमाकर मंत्र मनोहर जै जगदंब अदंब अए री । प० ८२/३२५

अदंभ वि० १. दम्भ-रहित । पाखंडहीन । सच्चा ।

उ०—भीति नगहीरन गहीरन की कांति सौं रतन खंभ पांतिनु अदंभ छवि छाई सी ।
दे० I, १७५/७६

२. निष्कपट । निश्छल ।

३. प्राकृतिक । स्वाभाविक । स्वच्छ । शुद्ध ।

अदग वि० १. बेदाग़ । निष्कलंक ।

उ०—अगम सुगम होत अदग दगत हैं ।
गं० ३६६/११३

२. निरपराध । निर्दोष ।

३. अछूता । अस्पृष्ट । साफ़ ।

अदन[१] पुं० खाना । भक्षण ।

उ०—बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।
घ०

अदन[२] पुं० ईसाई मतानुसार स्वर्ग का वह उद्यान जहाँ ईश्वर ने आदम को रखा था ।
उ०—ऐहैं बेली रेली हेली उचित अदन में ।
छी० ८८/३६

अदना वि० छोटा । तुच्छ । सामान्य । मामूली ।
उ०—चैन न होतु भवन अदने में छिनु-छिनु तेरे भायें कलप जात । च० २३०/१२२

अदब वि० सम्मान । आदर ।
उ०—खरैं अदब, इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु ।
बि० ३६०/१४६

अदब्ब[१] पुं० १. दे० 'अदब' ।

अदब्ब[२] वि० न दबने वाला ।
उ०—अदब्ब गब्बियान के सरब्ब गब्ब कों हरे ।
प० ६६/२८३

अदब्बिय वि० दे० 'अदब्ब'[२] ।
उ०—भनि गंग अदब्बिय दब्बि दिय, दब्बियकर दब्बिय गयो । गं० २६६/६०

अदभुत वि० दे० 'अद्भुत' ।
उ०—अदभुत जस बिस्तार करन कौ हम जन कौ वहु हेत । सूर० १/२१५/५६

अदमुआ—अधमुआ वि० १. अर्द्धमृत । अधमरा । मरने के निकट । मरने ही वाला ।
२. अनाथ । असहाय ।

अदय—अदया वि० १. निर्दयी । दयाहीन । कठोर ।
उ०—अब अदया देखति जादौपति, पाती लिखि जु पठाई । सूर० १०/३७६४/४४३

अदरख पुं० १. अदरख । एक पौधे की जड़ की गाँठें जो स्वाद में चरपरी सी होती हैं इन्हें सुखाकर सोंठ बनाते हैं ।
उ०—हींग हरद म्रिच छौंके तेले । अदरख और आँवरे मेले । सूर० १०/३६६/३१७

अदल[१] पुं० न्याय । इंसाफ ।
उ०—भूषन भनत पातसाही पातसाहन में, तेरे सिवराज राज अदल जहान में ।
भू० ४७८/२२३

—खाना पुं० न्यायालय ।
उ०—मेरे ही अकेले गुन औगुन बिचारे बिना, बदलि न जैहै ह्वै बड़े अदल खाने में ।
भि० I ५१६/७६

अदल[२] वि० १. बिना दल या पत्ते का । पत्रविहीन ।
२ सेना-रहित ।
३. जो किसी दल में न हो । तटस्थ ।
४. जो पत्र-दल खाना भी छोड़ चुका हो अर्थात् पार्वती ।

—पहचान त्रि० न छिपने वाला । जो गोप्य न रह सके । अगोप्य ।

—बदल पुं० उलट-पलट । हेर-फेर । परिवर्तन ।
उ०—अदल बदल भूपन प्रिया यातें परत लखाइ ।
भि० I ३०४/४५

अदली[१] वि० [अदल+ई प्रत्य०] न्यायी । इंसाफवर ।
उ०—कंप कदली में बारि बुंद बदली है, सिवराज अदली के राज में यों राजनीति है । भू०

अदली[२] वि० दे० 'अदल' ।

अदवान—अदवाइन स्त्री० १. खाट या पलंग के पैताने की रस्सी या डोरी ।

अदहन पुं० १. दाल, चावल, खिचड़ी आदि सिजाने के लिए चूल्हे पर चढ़ाकर गरम किया हुआ पानी । पकाया हुआ गरम पानी ।
२. गरम किया गया पानी । उबला हुआ गरम पानी ।

अदा[१]**—अदाँ** वि० चुकता । बेबाक ।
उ०—इनके नमक तें ईसुरी हम कों करै रन में अदाँ । प० १२२/१८

अदा[२] स्त्री० १. हाव-भाव । नखरा । मोहित करने की चेष्टा ।
२. ढंग । अंदाज़ ।

—ई वि० १. चतुर । कांइयाँ । चालबाज । धूर्त ।
उ०—सो तजि कहत और की औरै, तुम अलि बड़े अदाई । सूर० १०/३६००/४७२
२. मानी । घमण्डी ।

अदाग वि० १. [अ+दाग] बेदाग । साफ । निर्मल । स्वच्छ ।
२. निर्दोष । निष्कलंक ।
३. पवित्र । शुद्ध ।

अदात वि० १. जो दानी न हो । जिसने कुछ दिया न हो । २. कृपण । कंजूस ।

अदाता पुं० १ कृपण व्यक्ति । कंजूस ।
वि० २. जो न दें । कृपण ।

अदान[१] पुं० दान न देने वाला । कंजूस । कृपण ।
उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो । पूरब जन्म अदान जानिकै ताते कछू मँगायो । सूर०

—पन पुं० अदानता । दानहीनता ।

अदान[२] वि० [अ+फा दानह] अजान । नादान । नासमझ ।

अदानिया—अदानियाँ पुं० १. दान न देने वाला । अदाता । न देने वाला ।

उ०—जालिम दमाद हैं अदानिया ससुर के ।
ठा० ५/२

अदानी वि० १. जो दान न दे । अदाता । २. कंजूस ।

अदाब वि० [अ+दाब] १. बिना दाब का । उच्छृंखल । स्वच्छन्द ।

अदायगी स्त्री० १. चुकता करना । बेबाक करना ।

अदाया (अ+दया) वि० दयाहीनता । कठोरता । निष्ठुरता ।

अदालत—अदालति स्त्री० न्यायालय ।

उ०—संपति में ऐंठि बैंठि चौंतरे अदालति के,
बिपति में पैन्हि बैठे पांय झुन झुनियां ।
अज्ञात ।

अदावँ पुं० दाँव न ले पाना । कठिनाई । असमंजस

अदावत स्त्री० दुश्मनी । शत्रुता । बैर ।

अदाह[1] पुं० अदा, हाव-भाव । नाज-नखरा । भंगिमा ।

उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह
तैं आनि धरी क्यों । अज्ञात

अदाह[2] वि० दाह-रहित । जलन-रहित । जिसमें ताप या जलन न हो ।

अदिढ़ (अ+दृढ़) वि० १. अस्थिर ।

उ०—कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये । प्रौढ़ा
धीराधीरा कहिये । नं० १२६/१३०

अदिति[1] स्त्री० १. प्रकृति । २. पृथ्वी ३. दक्ष प्रजापति की कन्या एवं कश्यप ऋषि की पत्नी जिससे सूर्य आदि तैंतीस देवता उत्पन्न हुए । ये देव-माता कहलाती हैं ।

४. द्युलोक ।

उ०—लोकपति सोक कोक, मूंदे कपि-कोकनद दंड
द्वै रहे हैं रघु अदित उवन के । क०

५. माता । ६. वाणी । ७. पुनर्वसु नक्षत्र ।

८. गाय । ९. अंतरिक्ष ।

—सुत पुं० १. दक्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न ३३ देवता ।

उ०—बलि बल देखि, अदिति-सुत-कारन, त्रिपद
ब्याज तिहुँपुर फिरि आई । सूर० वि० ६/२

अदिति[2] पुं० १. ईश्वर का एक विशेषण ।

२. प्रजापति ।

३. देवताओं का विश्वदेव नामक गण ।

४. काल ।

अदिन पुं० १. बुरा दिन । दुर्दिन । संकटकाल ।

उ०—१ अदिन परे ते नीर नदिन रहै नहीं ।
बो०, २२/१५१

२. दुर्भाग्य ।

अदिव्य वि० १. सामान्य । साधारण । लौकिक । सांसारिक ।

२. स्थूल ।

३. बुरा ।

अदिष्ट वि० अदृष्ट । अलख ।

पुं० भाग्य । तकदीर । होनहार । भविष्य ।

उ०—अली अदिष्ट नष्ट बड़ कोई । पाई निधि जिहि
कर तैं खोई । नं० १७१/१३३

२. [अ+दिष्ट=भाग्य] अभाग्य ।

उ०—कन्या एक जु पाछैं भई । सु पुनि अदिष्ट लई
उड़ि गई । नं०

अदिष्टी वि० [अ=नहीं+दिष्टि=भाग्य]

१. अभागा । बदकिस्मत ।

२. मूर्ख । अदूरदर्शी । अविचारी ।

३. दुष्ट ।

अदिस्स वि० १. अदृश्य । लुप्त । ओझल ।

उ०—भूपति प्रताप रिपु रन अदिस्स । प० ६/२७८

अदीठ वि० १. दृष्टि-रहित । नेत्रहीन । अन्धा । प्रज्ञाचक्षु ।

२. बिना देखा हुआ । गुप्त ।

अदीठि स्त्री० बुरी दृष्टि । कुदृष्टि । बुरी निगाह ।

उ०—दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै ।
घ० ४८८/२६४

वि० दृष्टि-रहित ।

अदीन[1] वि० १. दीनता-रहित । अविनीत । उग्र । प्रचंड निडर ।

२. उदार ।

—ता स्त्री० उदारता ।

उ०—देव देवी देवता न तोसी पति देवता अनिंद्य,
इन्दु इन्दिरा ते उदित अदीनता ।
दे० I ३१६/१०२

अदीन[2] वि० धर्म-रहित । धर्म-विहीन । अधर्मी । बिना मजहब का ।

अदीनी वि० १. दे० 'अदीन' ।

अदी-बदी स्त्री० १. भाग्य । किस्मत ।

२. चुगली । पीठ पीछे बुराई ।

वि० स्थिर । निर्धारित ।

अदीयमान वि० जो दिया न जा रहा हो ।

उ०—अदीयमान दुख्ख, सुख्ख दीयमान जानियै।
के० II ३/२३८

अदीह वि० [अ+दीह] अदीर्घ। जो दीर्घ न हो। लघु। सूक्ष्म। अल्प। ह्रस्व।
उ०—राधिका रूप विधान के पानिन आनि सबै छिति की छवि छाई। दीह अदीहन सूछम थूल गहै दृग गोरी की दौरि गोराई। के०

अदुंद वि० १. बाधा-रहित। निर्द्वन्द्व।
२. शान्त। निश्चिन्त।
३. अद्वितीय। अनुपम।
उ०—जोवन बनक पै कनक-वसुधाधर, सुधाधर बदन, मधुराधर अदुंद री।
दे० I ४२०/११९

अदुतिय वि० अद्वितीय। बेजोड़। अप्रतिम। अनूठा। अनोखा।

अदूख वि० १. दुख-रहित।
२. दोष-रहित।
उ०—देव सिद्ध गंधरव, मोहित सुगंध रव पसु पंच्छी रूप प्रेम आनंद अदूख हैं। दे० I ३०/८

अदूज्यो वि० १. जो दूसरा न हो। २. अद्वितीय।
उ०—जा मिलि मेटि महा तमु होइ, महातमु आतम देव अदूज्यो। दे० I ६८/२००

अदूर क्रि०वि० १. निकट। पास।
उ०—सांझ ही आये अक्रूर तहां, हरि हेरे अदूर सम्हारत गाइनि। दे० I १०४/२१
वि० पास का। समीपी।

अदूखा वि० १ दुख-रहित। सुखी।
२. दोष-रहित। निर्दोष। निष्कलङ्क।

अदूषन वि० दोषों से रहित। निर्दोष। निष्पाप। शुद्ध।
उ०—अरु जु अपति पति सुहृद सुश्रूषन। तियन की धरम कह्यौ जु अदूषन। नं० २९/२७६

अदृष्ट पुं० १. भाग्य। तकदीर। प्रारब्ध।
उ०—काको नाम बताऊँ तोकौं। दुखदायक अदृष्ट मम मोकौं। सूर० १/२९०/७९
वि० २. बिना देखा। लोप हुआ। लुप्त। अलख। ग़ायब। ओझल।
उ०—अमल अनंग अति अक्षर असंग अरु अस्तुत अदृष्ट देखिबें कों पसरत है।
के० III-२५/७५४

अदेख वि० [अ+देख] १. जो देखा न जाय। छिपा। अदृश्य।
२. जो देखा न गया हो। अदृष्ट।
उ०—ऊधौ, तुम देखि हूँ अदेख रहिबौ करौ।
उ० ५३

अदेखी[1] वि० १ बिना देखी हुई। अप्रत्यक्ष। गुप्त।

अदेखी[2] वि० [अ=नहीं+देखी] १. जो न देख सके।
२. द्वेषी। ईर्ष्यालु।
उ०—ए दई ऐसो कछू कर ब्यौंत जु देखें अदेखिन के दृग दागै। प० ८३/६७

अदेय वि० न देने योग्य। जिसे न दे सकें।
उ०—अति दुरलभ जग में तिनहिं है अदेय कछु नाहिं। प० २०६/५८

अदेव पुं० १ जो देवता न हो।
२. असुर। राक्षस। दैत्य।
उ०—द्वार-द्वार दौरे, द्वारिकापति को द्वार तजे, सेवत अदेव देव, देव ते गयो फिरै।
दे० I २०/३६
३. जैनियों के अनुसार तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य देवता।
—ई स्त्री० राक्षसी। आसुरी।

अदेस[1] पुं० आदेश। आज्ञा। हुक्म। शिक्षा।
उ०—घोष-तरुनि आतुर उठि धाई, तजि पति-पुत्र-अदेस। सूर० १०/११८३/५३७

अदेस[2]—**अदेसौ** पुं० दे० 'अंदेस'।

अदेह वि० बिना देह का। देह-रहित। शरीर-रहित।
पुं० कामदेव। अनङ्ग। अतनु। विदेह।
उ०—द्वार लगि जाती फेरि ईठि ठहराती बोलै, औरनि रिसाती माती आसव अदेह की।
भि० I/२३३/१४०

अदोख वि० १. दे० 'अदोष'।
उ०—औषधि अदोख रस रोख की रुलाई देव, प्रेम परुख।ई पी कों प्यावति पियूख सी।
दे० I ४६६/१२७
२. निरपराध। पापरहित।

अदोल वि० अचपल। अचञ्चल।

अदोष वि० निर्दोष। दोष-रहित। निष्कलक। बे-ऐब।
उ०—कैसें घनआनंद अदोपनि लगैये खोरि।
घ० ४५३/२५३

अदोषिल—**अदोखिल** वि० १. निर्दोष। दोष-रहित।
२. बे-ऐब। स्वस्थ। नीरोग।
३. स्वच्छ। निर्मल।
४. निष्पाप।
उ०—मुतै ऐंचि प्यौ आपु, त्यौं करी अदोखिल आई। बि० ३४८/१४५

अदोस वि० दे० 'अदोख'
उ०—चंपकली सी नासिका, राजति अमल अदोस।
सूर० १०/२६१३/१७२

अदृस्य वि० जो दिखाई न दे। जिसका ज्ञान इन्द्रियों को न हो। अगोचर। लुप्त।
उ०—जब रथ भयौ अदृस्य अगोचर, लोचन अति अकुलात। सूर० १०/३००१/२८३

अद्रक स्त्री० दे० 'अदरख'।
उ०—अद्रक लोन मिरीच तेल मधि तेज सिझारे।
गं० ४३७/१३४

अद्रिष्ट पुं० दे० 'अदृष्ट'।

अदृष्टि वि० अदृश्य। लुप्त। जो दिखाई न दे।
उ०—दृष्टि में परै ना यों अदृष्टि कटि तेरी प्यारी।
बो० ३७/१०३

अदूसन वि० दोष-रहित। बढ़िया।
उ०—आरिन में अरुआ अटारिन में आकज औ आँगन अदूसन में बाघ बिलसत हैं।
भू० ४६४/२२६

अद्ध वि० अर्द्ध। आधा।
उ०—जक्यो जीव जंगलिय चैन लद्धे न अद्ध छन।
गं० ३००/९१

अद्धा पुं० १. आधी वस्तु।
२. पूरी बोतल की आधी नाप वाली बोतल।

अद्धी स्त्री० १. दमड़ी का आधा सिक्का। पुराने पैसे का सोलहवाँ भाग।
२. बहुत बारीक और चिकना कपड़ा। तनजेब।

अद्भुत वि० विलक्षण। विचित्र। अनूठा। अपूर्व।
पुं० काव्य का एक रस जिसमें आश्चर्य-भाव प्रकट किया जाता है।

अद्य क्रि०वि० १. आज।
२. अभी। अब।
—अवधि क्रि०वि० १. आज तक। आज पर्यन्त।
२. अब तक।

अद्रि पुं० १. पहाड़। पर्वत। शैल। अचल। भूमि का बहुत ऊँचा भाग। पथरीला और ऊँचा स्थान।
उ०—सैल, सिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि सोइ। नं० १६४/८३
२. वृक्ष।
३ सूर्य।
४. परिणाम-विशेष।
५. सात की संख्या।

अद्वै वि० अद्वय। द्वैत-रहित। अद्वितीय। एक ही।
उ०—तुम निरगुन अद्वै निरंकार। सुर अरु असुर रहे पचिहार। सूर० १०/४३०१/५७४

अद्वैत वि० १. एकाकी। अकेला।
२. अनुपम। बेजोड़।
पुं० जगद्गुरु शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित द्वैत-निरसन सिद्धान्त।
—ता स्त्री० १. द्वैत का अभाव। एकत्व। एकता।
२. एकाकीपन।

अध[1] अव्य० [सं० अधः] नीचे। तले।
पुं० १. नीचे की दिशा।
२. तल। पाताल।
उ०—जाति चली धारा ह्वै अध कौं, नाभी-ह्रद अवगाह। सूर० १०/६३७/३८६
—उद्ध क्रि०वि० नीचे। ऊपर।
—ऊरध वि० नीचे ऊपर का भाग।
उ०—न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात जाको अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
उ० १/१
—पर पुं० [अध+पर (प्रत्य०)] अर्ध भाग में। बीच ही में।
उ०—हम सब गवं गँवारि जानि जड़ अध पर छौड़ि दई। सूर०
—फर पुं० [अर्ध+फलक] अंतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का स्थान। अधर।
उ०—अध अधफर ऊपर आकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। के० (शब्द०)
—मुख वि० अधोमुख। मुंह के बल। औंधा। नीचे मुख किये हुए।
उ०—मनो भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई। सूर १०/६४१/३९०

अध[2] वि० [सं० अर्ध] आधा।
उ०—भादों की अध-राति अँध्यारी।
सूर० १०/११/२१४
—अखरा पुं० आधे अक्षर। टूटे फूटे शब्द। अल्प वचन।

उ०—हौं जानत जो नाह तुग बोलत अधअखरान ।
प० ४०६/१६६

—कचरा वि० १. अपरिपक्व । अधूरा । अपूर्ण ।
२. अकुशल । अप्रवीण ।
३. आधा कूटा या पीसा हुआ । दरदरा । अधपिसा ।

—कहा—कहौ वि० आधा कहा हुआ । अर्द्धोच्चरित । अस्पष्ट रूप से कहा हुआ ।
उ०—गहकि, गाँसु औरै गहे, रहे अधकहे बैन ।
बि०, ६५/३३

—खा सक० आधा खाना ।
उ०—भूखे गए प्रात अधखातहिं तातैं आजु बहुत पछितानी । सूर० १०/१३६८,५८८

—खिलो वि० [अध+खिलना] आधा खिला हुआ । अर्धविकसित ।

—खुलो—खुलौ वि० [अध+खुला] आधा खुला हुआ ।
उ०—चलै अधखुले द्वार लौं खुली अधखुली डीठि ।
प० २०८/१२५

—घट वि० [अध+घट] जो ठीक या पूरा न घटित हो । जिससे ठीक अर्थ न निकले । अटपटा ।

—घरी वि० [अध+घरी] १. आधी घड़ी । बारह मिनट ।
२. कुछ समय ।

—चंद पुं० [अध+चंद] १. अर्धचन्द्र ।
२. गर्दन में हाथ लगाकर निकालने की क्रिया । गलहस्त । गरदनिया ।

—जरो वि० आधा जला हुआ ।
उ०—अधजरे क्वैला से पलास आसपास दहकत, चित बहकत देव दुति दौरई ।
दे० I १६६/७४

—जेंवत वि० [अध+जेवत] जिसने भर पेट न खाया हो । अधखाया ।
उ०—सूर स्याम बलराम प्रातहीं अधजेंवत उठि धाए । सूर० १०/४५४/३३५

—नैन पुं० कनखी । कटाक्ष ।

—पक—पक्यो वि० अर्धपक्व । आधा पका हुआ ।

—पैया पुं० [अध+पाव] १. अधपई । आधा पाव तौलने का बाट या मान । दो छटाँक ।
२. पैर का अगला भाग । आधे पैरों पर ।
उ०—लिए रहत हौ कनक-दोहनी, बैठत हौ अधपैया । सूर० १०/७३४/४१२

—बटाई स्त्री० उपज का आधा हिस्सा या भाग ।

—बर पुं० [अध+बर (प्रत्य०)] या [अध+बाट] १. आधा मार्ग । आधा रास्ता ।
२. बीच । मध्य । अधर ।
उ०—उत कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान । तुलसी अधबर के भए ज्यौं बघूर के पान । सत०, पृ० ३१

—बीच पुं० १. [अध+बीच] मध्य । बीच ।

—बीचक पुं० लगभग मध्य । आधे भाग के लगभग ।

—बैसा वि० [अर्ध+वयस्] अधेड़ । ढलती उम्र का ।

—मरो वि० [अध+मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ । अर्धमृत । मृतप्राय ।

—मुँदी—मूँदी वि० आधी बंद । अर्ध-निमीलित ।
उ०—अधमूँदी अँखियानि सों गूँदी गुँदति माल ।
म० १६५/३८४

—रात—राति—राती स्त्री० [अध+रात] अर्द्धरात्रि । आधीरात ।
उ०—अधरात उठत करि हाय हाय ।
भि० I, पृ० २२२

—रातक स्त्री० आधीरात ।
उ०—प्रेम की पहेली गूढ़ जानत जनावतहीं आजु अधरातक लौं मेरे सँग जागी है ।
के० I २२/७३

अधकी वि० अधिक । ज़्यादा । बहुत ।

अधम वि० १. नीच । निकृष्ट । बुरा । खोटा ।
उ०—सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी । सूर० १/२१/६
२. पापी । दुष्ट ।
उ०—अध कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ । सूर० १/६५/१६

—ई स्त्री० अधमता । नीचता । खोटापन ।
उ०—सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवैं । सूर० १/१६७/५४

—उधारन वि० १. पापियों का उद्धार करने वाला ।

—ता स्त्री० नीचता । खोटापन । ओछापन ।

—ताई स्त्री० दे० 'अधमता' ।
उ०—पुन्यताई धारत उधारत अधमताई नाक ठकुराई की ठसक ठहराई है । प० ३५/२६६

अधमा वि० स्त्री० अधम स्त्री ।

—**नायिका** स्त्री० वह स्त्री जो प्रिय या नायक के अनुकूल होने पर भी उसके प्रति दुर्व्यहार करे ।

—**दूती** स्त्री० ऐसी सन्देश पहुँचाने वाली दूती जो दूती का कार्य न करके स्वयं प्रेम-निवेदन करती है ।

अधमाइ—अधमाई—अधमाय स्त्री० [अधम+आई (प्रत्य०)] अधमता । नीचता । खोटापन ।

उ०—हुती जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी ।
सूर० वि० १३०/३६

उ०—हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाइ कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै ।
कवि० ६१/५४

अधमाधम वि० [अधम+अधम] नीच से नीच । महा-नीच ।

उ०—काम सीम तामसी अधोगत उधारे, अधमाधम
उधारे, अधरम के धरन ये । दे० I ६१/३३८

अधर[1] पुं० १. नीचे का ओठ ।

२. ओठ ।

उ०—जाके है अधर सुधा सेनापति बसुधा मैं ।
क० ६१/२०

—**अधर** पुं० दे० 'अधराधर' ।

—**अमृत** पुं० दे० 'अधरामृत' ।

—**आसव** पुं० दे० 'अधरासव' ।

—**छत** पुं० ओठ का व्रण ।

उ०—सु है अपन्हुति अधरछत करत न पिय हिय
बाइ । भि० II पृ० १९

—**रज** पुं० [अधर+रज] ओठों की ललाई । ओठों की सुर्खी ।

—**दल** पुं० ओष्ठपुट । ओष्ठरूपी पत्र ।

उ०—ठौर ठौर या भौंर के डसे अधरदल-दाग ।
म० ३९/२०९

—**दसन** पुं० ओठ काटना । ओठ चबाना ।

—**पान** पुं० [अधर+पान] सात प्रकार की बाह्य रतियों में से एक रति । ओठों का चुम्बन ।

—**बिंब** पुं० कुँदरू के पके फल जैसे लाल ओठ ।

—**मधु** पुं० अधरों का रस । अधरामृत ।

—**रस** पुं० ओठों का रस । रति-क्रिया में ओष्ठ-पान का आनंद ।

उ०—अधर-रस अँचवत परसपर, संग सब ब्रजनारि ।
सूर० १०/१०६२/४६६

उ०—चूमति कपोल पान करत अधररस ।
म० ४७/२११

अधर[2] पुं० १. बिना आधार का स्थान । अंतरिक्ष । आकाश । शून्य स्थान ।

२. पाताल ।

अधर[3] वि० १. जो धरा या पकड़ा न जा सके । चंचल ।

२. नीच । बुरा । तुच्छ ।

अधरम पुं० १. पाप । दुष्कर्म ।

उ०—लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही ।
सूर० १/१८५/५०

२. अन्याय ।

३. असद्व्यवहार ।

अधरमी वि० अधर्मी । कुकर्मी । दुरात्मा । दुराचारी । अन्यायी ।

अधरा[1] पुं० दे० 'अधर' ।

उ०—या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा
न धरौंगी । रसखान ।

—**रस** पुं० दे० 'अधररस' ।

अधरा[2] पुं० आधार ।

उ०—नाम छ्वै पावन जन्म भए किन पाँतिन के
अधरा अधरा को । भि० I २६०/१५३

अधराधर पुं० [अधर+अधर] १. दोनों ओठ ।

२. नीचे का ओठ ।

उ०—रागमई अधराधर की, समता कहो, कैसें
प्रबाल सौं कीजतु । शृं० ११४/३२०

अधरामृत पुं० [अधर+अमृत] १. अधर-सुधा । ओठों का रस ।

उ०—सप्तरंध्र सुर वेनु बजावत अधरामृत रस
आप पिएँ । च० १६३/१०७

२. वैष्णव सम्प्रदाय में आचार्य जी अथवा गुसाइं जी द्वारा आरोगी हुई वस्तु ।

अधरारस पुं० दे० 'अधररस' ।

उ०—ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली
अधरारस लीजे । म० ३२३/३५३

अधरासव पुं० अधरों का आसव । ओठों की शराब । ओठों का मादक रस ।

उ०—अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि
कपोल-सवाद-पगे । घ० २८३/१६०

अधर्म पुं० दे० 'अधरम' ।

उ०—धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन
करै । सूर० १ १०४/२८

अधर्मी वि० दे० 'अधरमी' ।

उ०—प्रभु जू, हौं तो महा अधर्मी ।
सूर० वि० १८६/५०

अधाधुंध क्रि०वि० १. अंधाधुंध । बिना देखे । बिना सोचे-विचारे । बे-अंदाज ।
२. अधिकता से ।
वि० बिना सोच विचार का । विचार रहित । बे-धड़क ।
उ०—सूरदास अब नाहिं चलैगी, अधाधुंध सरकार ।
सूर०

अधाबटाई स्त्री० दे० 'अधबटाई' ।

अधार पुं० [सं० आधार] १. अवलम्ब । आश्रय । सहारा ।
उ०—दीन-दयाल, अधार सबनि के परम सुजान, अखिल अधिकारी । सूर० वि० २१२/५८
२. पात्र । भाजन ।
उ०—हरि परीच्छितहि गर्भ मँझार । राखि लियौ निज कृपा अधार । सूर० वि० २८६/७७

अधारा पुं० दे० 'अधार' ।
उ०—तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रानअधारा ।
सूर० १०/२४१७/१३३

अधारि स्त्री० १. दे० 'अधार' ।
२. दे० 'अधारी' ।
उ०—जोग जुगुति हमकौं लिखि पठयौ, मुद्रा भस्म अधारि । सूर० १०/४००४/४६३

अधारी[1] स्त्री० १. आधार । आश्रय । सहारा । अवलम्ब ।
२ काठ के डंडे में लगा हुआ पीढ़ा जिसे साधुजन सहारे के लिये रखते हैं ।
उ०—बटुआ, झोरी, दंड, अधारी, इतननि को आराधै । सूर० १०/३८९५/४७१
३. यात्रा का सामान रखने का झोला या थैला जिसे कंधे पर लटकाकर चलते हैं ।
वि० ४. सहारा देने वाली । प्रिय । भली ।

अधारो—अधारौ पुं० आधार । आश्रय । सहारा । अवलंब ।
उ०—बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट-अधारौ । सूर० वि० २०६/५८

अधावट वि० आधा औटा हुआ । जो औटाने में गाढ़ा होकर नाप में आधा रह गया हो ।
उ०—कछु बलदाऊ कौं दीजै । अरु दूध अधावट पीजै । सूर० १०,१८३/२६२

अधि उप० एक संस्कृत उपसर्ग जो शब्दों के पहले इन अर्थों में लगाया जाता है—
ऊपर, ऊँचा—अधिराज, अधिकरण ।
प्रधान—अधिदेव ।
अधिक—अधिमास ।
सम्वन्ध—अधिभूत ।
—देव पुं० दे० अधिदेव ।
—नायक पुं० दे० अधिनायक ।
—पति पुं० दे० अधिपति ।
—भौतिक पुं० दे० अधिभौतिक ।
—मति पुं० दे० अधिमति ।
—मास पुं० दे० अधिमास ।

अधिक[1] वि० १. ज्यादा । विशेष । बहुत । अतिशय । अत्यंत ।
उ०—अधिक अपनपौ जानि तनक सौभगमद छायो ।
नं० ६४/३५
२. शेष ।
क्रि०वि० तेज ।
उ०—पवन के गवन तैं अधिक धायौ ।
सूर० १/५/२
पुं० अलंकार-विशेष ।
—आई स्त्री० दे० 'अधिकाई' ।
उ०—हितनी के लाह की, उछाह की, विनोद मोद सोभा की अवधि नहिं, अब अधिकई है ।
तु०, पृ० ३२०
—ता स्त्री० ज़्यादती । वृद्धि । बढ़ती ।
—मास पुं० अधिक महीना । पुरुषोत्तम मास । संक्रान्ति-रहित मास । मलमास । लौंद का महीना । शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें संक्रान्ति न पड़े ।

अधिका अक० अधिक होना । ज्यादा होना । बढ़ना ।
उ०—चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है ।
घ० १४२/११९
उ०—चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी । सूर० १०/७८/२३४
सक० बढ़ाना । वृद्धि करना ।
अधिकात, अधिकाति—व०कृ० ।
अधिकायौ, अधिकाए, अधिकानो, अधिकाने, अधिकानी—भू०कृ० ।

अधिकाइ वि० अधिक हुई ।
उ०—प्रस्तुत कछु बिन हीन कै कछु बिन छबि अधिकाइ । प० ६७/४४

अधिकाई स्त्री० १. अधिकता। बहुतायत। विपुलता। विशेषता।
उ०—स्रवननि की जु यहै अधिकाई। सूर०
२. बड़ाई। महिमा। महत्त्व।
उ०—राधिका की अधिकाई कहा कहाँ लीनो आजु, आपनो पियारो पीउ आपु ही मनाइ कै। के० I १०/६०
३. विचित्र बात।
उ०—देखे तें सीरी ह्वै जाति भटू अनदेखें जरै तु यहै अधिकाई। के० I ६/७०
४. कुशलता। चतुरता।
उ०—झूठहिं करत दुहाई प्रातहि, देखहिगें तुम्हरी अधिकाई। सूर० १०/६६८/३६७
५. ज्यादती। उपद्रव। अत्याचार।
उ०—कौन सहै तिहारी दिन दिन की अधिकाई। गो० ३१/१५
वि० अधिक। विशेष।
उ०—यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई। सूर०

अधिकार पुं० १. कार्यभार। २. प्रभुत्व। आधिपत्य।
उ०—पाट बिरध ममता है मेरै, माया कौ अधिकार। सूर० वि० १४१/३८
२. स्वत्व। हक। अख्तियार।
उ०—अति अधिकार जनावत यातैं, जातैं अधिक तुम्हारैं गैयाँ। सूर० १०/२४५/२७८
३. दावा। कब्जा। प्राप्ति।
४ क्षमता। सामर्थ्य। शक्ति।
५. योग्यता। जानकारी। ज्ञान।
—इनि स्त्री० अधिकारिणी।
उ०—हरि आगैं कुबिजा अधिकारिनि, को जीवै इहिं दाप। सूर० १०/३४८६/३६६
—ई पुं० १. प्रभु। स्वामी। मालिक।
उ०—दीन-दयाल, अधार सबनि के परम सुजान, अखिल अधिकारी। सूर० वि० २१२/५८
२. योग्यता रखने वाला। उपयुक्त पात्र।
उ०—ऊधो कोऊ नाहिन अधिकारी। ले न जाहु यह जोग आपनो कत तुम होत दुखारी। सूर०
३. स्वत्वाधिकारी। हक़दार।
४. मंदिर में अधिकार-प्राप्त प्रमुख व्यक्ति। प्रबन्धक।
स्त्री० १. अधिकता। बाहुल्य। आधिक्य।
२. जबर्दस्ती।
उ०—त्यों पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी। प० ५६/३१६
३. अधिकार की ठसक या ऐंठ। गर्व।
वि० १. अधिक।
उ०—लोचन ललित, कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी। सूर० १०/६१/२३८
२. लिप्त। वशीभूत।
उ०—बिदुर हमारो प्रान पियारो, तू विषया अधिकारी। सूर० १/२४४/६६
—ए क्रि०वि० अधिक। ज्यादा।
उ०—ता दिन तैं नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे। सूर० १०/३५७६/३८८

अधिकी वि० दे० 'अधिक'।
उ०—हम तुम जाति-पाँति के एकै, कहा भयौ अधिकी ह्वै गैयाँ? सूर० १०/७३५/४१२

अधिको वि० दे० 'अधिक'।
उ०—जेंवत रुचि अधिकी अधिकैया। सूर० १०/१२१३/५४६

अधिच्छ पुं० अध्यक्ष। स्वामी। मालिक। प्रधान।
वि० [सं० अदृश्य] अदृश्य।
उ०—अच्छन के आगेहू अधिच्छ गाइयतु है। प० ४५/२६६

अधित्यका स्त्री० पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि। ऊँचा पथरीला मैदान।
उ०—हरी भरी घासन सों अधित्यका छबि छाई। प्रे० I, पृ० १३

अधिदेव पुं० इष्टदेव। कुलदेव।
उ०—देव अदेवनि को अधिदेव, सु आतमदेव, त्रिदेव गुसाईं। दे० I १/४७/१६८
वि० देवता-सम्बन्धी।

अधिनायक पुं० १. सरदार। मुखिया। प्रधान।
२. मालिक। स्वामी।

अधिपति पुं० १. सरदार। मुखिया।
२. मालिक। प्रभु। स्वामी।
३. राजा।
४. नेता। अगुआ।
उ०—हमरे तौ गोपतिसुत अधिपति, बनति न औरनि तैं। सूर० १०/३८४२/४५६

अधिभौतिक वि० आधिभौतिक। सांसारिक। ऐहिक।
उ०—अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे, बेगि बोलि बाले बरजिए करतूति कठोरे। तु० पृ० ४५७

अधिमति वि० बुद्धि-विषयक। बुद्धि-सम्बन्धी।

अधिमास पुं० दे० 'अधिक मास।'

अधिया स्त्री० १. आधा हिस्सा ।
२. एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मालिक को और आधा उसके संबंध में परिश्रम करने वाले को मिलता है ।
पुं० आधा हिस्सेदार ।
सक० आधा करना । दो बराबर हिस्सों में बाँटना ।
—आर पुं० [अधिया+आर] १. किसी जायदाद में आधा हिस्सा ।
२. आधे का मालिक । वह जमींदार या असामी जो किसी गाँव के हिस्से या जोत में आधे का हिस्सेदार हो ।
—ई स्त्री० [अधियार+ई (प्रत्य०)] किसी जायदाद में आधी हिस्सेदारी ।

अधियारी—अंधियारी वि० अंधेरी । अंधकारमय ।

अधिरथ पुं० १. सारथी । गाड़ीवान ।
२ कर्ण को पालने वाले सूत का नाम ।
३. वड़ा रथ । उत्तम रथ ।
वि० रथ पर चढ़ा हुआ ।

अधिरम्या वि० रमणीक । सुन्दर । मनोहर ।

अधिराज पुं० राजा । महाराज । बादशाह । सम्राट ।

अधिरात—अधिराति स्त्री० अर्द्ध रात्रि । आधी रात ।
उ०—कौन है तूं कित जाति चली बलि बीती निसा अधराति प्रमानै । प० २३४/१३१

अधिरैनि स्त्री० आधी रात ।
उ०—रवि दिखाइ अधिरैनि को सां अब झूठो होइ । र० ११४६.२१०

अधिवास[१] पुं० १. निवास स्थान । रहने की जगह ।
२. ज़्यादा समय तक रहना ।
३. दूसरे के घर जाकर रहना ।

अधिवास[२] १. सुगन्ध । खुशबू ।
२. उबटन ।

अधिवास[३] पुं० वस्त्र विशेष । चादर । दुपट्टा ।

अधिवासन पुं० १. सुगंधित करने की क्रिया ।
२. देवता की मूर्ति को प्राण-प्रतिष्ठा से पहले सुगंधित जल चंदन आदि से लिप्त कर रात भर किसी स्थान में वस्त्र से ढककर और जल में डुबोकर रख छोड़ने की रीति ।
उ०—सीतल नीर सुगंध सुवासित कोरे अधिवासन लावे । गो० ५६६/२१३

अधिष्ठाता पुं० [स्त्री० अधिष्ठात्री] १. अध्यक्ष । प्रधान नियंता ।
२. किसी कार्य की देखभाल करने वाला ।
३. प्रकृति को जड़ से चेतनावस्था प्राप्त कराने वाला पुरुष । ईश्वर ।

अधिष्ठात्र वि० स्थिर रहने वाला । प्रतिष्ठित ।
उ०—अधिष्ठात्र तुम हो भगवान । जान्यौ जात न तुम्हरौ स्थान । सूर० १०/४३०१/५७४

अधिष्ठान पुं० १. निवास स्थान । रहने का स्थान ।
२. नगर । शहर । जनपद । बस्ती ।
३. क्रिया-स्थल ।
४. पड़ाव । मुकाम ।
५. आधार । सहारा ।
६. शासन । राजसत्ता ।

अधीन वि० १. आश्रित । वशीभूत ।
२. परतंत्र । आज्ञाकारी । लाचार । विवश ।
उ०—अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै । घ० १६/५१
पुं० दास । सेवक ।
अक० अधीन होना । वश में होना ।
उ०—यह सुनि कंस खड्ग लै धायो तब देवै आधीनी हो । सूर०
—ता स्त्री० १. परतंत्रता । परवशता । वशीभूतता । मातहती ।
२. लाचारी । बेवसी । दीनता ।
उ०—'सूरदास' प्रभु की अधीनता देखत, मेरे नैन सिरात । सूर० १०/२६१६/१७३

अधीनी—अधीन्ही वि० दे० 'अधीन' ।
उ०—तबहीं तैं तन-सुधि बिसराई, निसि-दिन रहति गुपाल अधीनी । सूर० १०/१२४५/४

अधीनौ—अधीन्यौ वि० 'दे० अधीन ।
उ०—लये लकुटिया द्वारे ठाढ़े, मन अति रहत अधीन्यौ । सूर ८/१५/१४७

अधीर वि० १. धैर्यरहित । अधैर्यवान । उद्विग्न । व्यग्र । बेचैन । व्याकुल । विह्वल ।
उ०—डोलत महि अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान । सूर० ६/२६/१६१
२. चंचल । अस्थिर । बेसब्र । उतावला । तेज । आतुर ।
उ०—नैन सारंग सैन मों तनकरी जानि अधीर । मा०

—ताई स्त्री० अधैर्य। उद्विग्नता। व्याकुलता। बेचैनी। विह्वलता।
उ०—आदर दै राखे होति प्रकट अधीरताई।
क० १/३४/११

अधीरज पुं० दे० अधैर्य।
उ०—पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट-मति-दूत। सूर० वि० १४१/३६

अधीरा वि० धैर्य-रहित। जो धीर न धरे।
उ०—सूर रूप-जोबन-धन सुनिकै, देखत भयौ अधीरा।
सूर० १०/१५७६/६३२

स्त्री० वह नायिका जो नायक में नारी विलास-सूचक चिन्ह देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे।
उ०—करै अनादर कन्त को प्रगट जनावै कोप।
मध्य अधीरा नायिका ताहि कहत करि चोप॥
प० ६०/६१

२. चंचला। विद्युत। चपला।

अधीरिनी स्त्री० चंचला। जिसमें धैर्य न हो ऐसी स्त्री।

अधीस पुं० [अधीश] १. राजा।
२. प्रधान अधिकारी। अध्यक्ष। मण्डलेश्वर
३. स्वामी। मालिक।
उ०—परम अधीस बस भूमिथल देखिये।
भि० II, पृ० १६६

अधूरन वि० दे० 'अधूरो'।
उ०—'सूर' स्याम स्यामा दोउ देखी, इत उत कोउ न अधूरन। सूर० १०/२१८२/८८

अधूरी स्त्री० दे० 'अधूरौ'।
उ०—यह पूरी, हम निपट अधूरी, हम असंत, यह संत। सूर० १०/१७८७/८

अधूरो—अधूरौ वि० [अध+पूरा या ऊरा (प्रत्य०)]
१. अर्द्ध। अपूर्ण। अधूरा। आधा।
२. असमाप्त।
३. खण्डित।
४. अधकचरा।
५. अकेला।

अधेड़[१] वि० [अध+ऐड़ (प्रत्य०)] आधी उम्र का। उतरती अवस्था का। ढलती जवानी का। बुढ़ापे और जवानी के बीच का।

अधेड़[२] पुं० एक प्रकार का कपड़ा जो मलमल जैसा होता है।

अधेला पुं० [आधा+एला (प्रत्य०)] आधा पैसा। एक छोटा ताँबे का सिक्का जो सन् १९५६ तक चलता था। जो पैसे का आधा होता है।

अधेली स्त्री० आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

अधैर्य पुं० धैर्य का अभाव। घबराहट। व्याकुलता उद्विग्नता। अस्थिरता। चंचलता। उतावलापन।
वि० धैर्य-रहित। व्याकुल। उद्विग्न। आतुर। उतावला।

अधोक्षज पुं० १. विष्णु का एक नाम।
२. कृष्ण का एक नाम।

अधोगति स्त्री० १. अवनति। पतन। गिराव। उतार।
उ०—मूलन ही की जहाँ अधोगति 'केसव' गाइय।
के० II, ४८/२३४
२. दुर्गति। दुर्दशा।

अधोछज पुं० दे० 'अधोक्षज'।
उ०—इंद्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोछज-जोति।
नं०, २७/१५७

अधोटी स्त्री० दे० 'अधौटी'।

अधोमुख वि० १. नीचे मुख किये हुए।
२. औंधा। उलटा।
उ०—गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिस्राम। सूर० वि० ५७/१६

अधोरध क्रि०वि० [अध+ऊरध] ऊपर-नीचे।

अधौटी स्त्री० एक प्रकार का वाद्य।
उ०—बाजत ताल, मृदंग, अधौटी, बीना, मुरली, तान तरंग। कुं० ७२/३५

अधौड़ी पुं० १. मोटा चमड़ा।
२. आमाशय।
उ०—भरी अधौड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाइ।
दादू०, पृ० २६

अधौरी स्त्री० दे० 'अधौटी'।
उ०—बाजत ताल, मृदंग, अधौरी कूजत बैनु-रसाल। नं० १९३/३४२

अध्यच्छ पुं० (अध्यक्ष) १. स्वामी। मालिक।
२. अफ़सर। नायक। सरदार। प्रधान। मुखिया। शीर्ष स्थान पर आसीन।
३. सफ़ेद मदार। श्वेतार्क।
४. क्षीरिका। खिरनी।

अध्यवसाय पुं० १. अथक परिश्रम। निरंतर उद्योग। दृढ़ता से किसी काम में लगा रहना।

२. उत्साह ।
३. निश्चय । प्रतीति ।

अध्याइ पुं० अध्याय । सर्ग । परिच्छेद । कांड ।
उ०—'नंद' जथा मति कै तथा, बरन्यौ प्रथम अध्याइ । नं०, १/१६५

अध्यातम पुं० (अध्यात्म) १. ब्रह्म विचार । आत्म-ज्ञान । ज्ञान-तत्त्व ।
२. परमात्मा । आत्मा ।
उ०—अरु अध्यातम दीप जु कोई । बुध्यादिक परकासक सोई । नं०

अध्यास पुं० मिथ्या ज्ञान । भ्रांत ज्ञान या प्रतीति । अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की धारणा । भ्रान्ति ।
उ०—अती पार्श्व, अवि दूर, तट उप, समीप, अध्यास । नं० १४२/८०

अध्योसाइ पुं० दे० 'अध्यवसाय' ।
उ०—संसै भई बिचारि मैं इति त्रिय अध्योसाइ । रस० ८६७/१६३

अध्रम पुं० दे० 'अधर्म' ।
उ०—टूट्यो सिसुपाल बासुदेवजू सों बैर करि टूट्यो है महिप दैत्य अध्रम विचरतें । भू० ४७७/२२३

अध्व पुं० १. रास्ता । मार्ग । पथ ।
२. यात्रा ।
३. दूरी ।
४. काल ।

अध्वा पुं० दे० अध्व ।
उ०—हार कहत अध्वा रजत मान पराजय हार । नं० १४/५६

अनंग[1]—**अनँग** वि० १. दे० अंगरहित ।
उ०—अंगी अनंग की मूढ़ अमूढ़ उदास अमीत कि मीत सही को । के०

अनंग[2] पुं० १. कामदेव ।
उ०—हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर । भू० ४०८/२०६
२. आकाश ।
३. मन ।
—अरि पुं० [अनंग+अरि] कामदेव के शत्रु अर्थात् शिव ।
—अराति पुं० अनंग का शत्रु । महादेव । शिव ।
—इत वि० बेसुध ।
उ०—जाकौं निरखि अनंग अनंगित, ताहि अनंग बढ़ावै । सूर० १०/१४३८/५६६
—कला पुं० केलिलीला । काम क्रीड़ा ।
—क्रीड़ा स्त्री० १. रति ।
२. छंदःशास्त्र में मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदों में से एक जिसके पूर्व दल में १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल में ३२ लघु वर्ण हों ।
—चमू पुं० कामदेव की सेना—वसन्त, मलय, चाँदनी । प्रकृति-सौन्दर्य ।
—झरी स्त्री० अति काम-क्रीड़ा । काम की झड़ी या वर्षा । काम की अतिशयता ।
उ०—रीति रची बिपरीति रची रति प्रीतम संग अनंग झरी में । प० ५३/८६
—भुव पुं० अनंग-स्थान । गुप्तांग ।
—रंग पुं० काम-भाव । कामजनित आनंद ।
उ०—सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंगरंग । प० १२/८१
—वती वि० स्त्री० कामवती । कामिनी ।
—शेखर पुं० दंडक नामक वर्ण वृत्त का एक भेद जिसमें ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु कोई क्रम नहीं होता ।

अनंग[3] अक० १. विदेह होना । शरीर की सुधि छोड़ना । बेसुध होना । सुध-बुध भुलाना ।
उ०—जाकौं देखि अनंग अनंगत, नागरि छवि भरमावै हो । सूर० १०/२०२०/५६
२. रुक-रुक कर चलना ।
३. देर करना । बिलम्ब करना ।

अनंगना स्त्री० (अंगना) कामिनी । रमणी । सुन्दर स्त्री ।
उ०—छवि पै वारि डारौं कोटन अनंगना । नं० १५६/३२५

अनंगम पुं० १. अनंग ।
२. काम-भावना ।
उ०—छूटि गयो मान नवल नागरि कौ अंग अंग अनगम गावत । गो० ३१७/१३७

अनंगा स्त्री० रमणी । कामिनी ।
उ०—मुग्धा नववधू नवजोवना वयस संधि नवल अनंगा नवसंगा लाजनिधि है । दे० I, ४१/५४

अनंगी वि० १. अंगरहित । बिना देह का ।
२. अंगविहीन । अपाहिज ।
पुं० १. ईश्वर ।
२. कामदेव । निर्गुण ब्रह्म ।
उ०—सूरदास यह विरद स्रवन मुनि, गरजत अधम अनंगी । सूर० वि० २१/६

अनंगु पुं० दे० 'अनंग' ।

अनंत वि० १. जिसका अंत न हो । असीम । अपार ।
उ०—परम जोति जाकी अनंत, रमि रही निरंतर। क० १/१/१
२. असंख्य । अनेक ।
उ०—अनंत कथा स्रुति गाई। सूर० वि० ६/२
पुं० १. विष्णु ।
उ०—गुरु-गुन अनंत, भगवंत-भव, भगतिवंत भव-भय-हरन । के० I, १/१
२. शेषनाग ।
उ०—अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग, असरन-सरन, निधिरक्षक निधान है । के० I, ३१/१६४
३. लक्ष्मण ।
४. बलराम ।
५. अभ्रक ।
६. बाहु में पहनने का एक आभूषण ।
७. सूत का गंडा जिसे अनंत व्रत के दिन पहनते हैं ।
८. अनंतचतुर्दशी का व्रत ।
—चतुर्दशी स्त्री० भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी।
—ताटंक पुं० एक राग विशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है ।
—ता स्त्री० असीमत्व । अत्यंत अधिकता।

अनंता वि० जिसका अंत या पार न हो ।
स्त्री० १. पृथ्वी ।
२. पार्वती ।
३. अनंतमूल ।
४. दूब ।
५. पीपर ।
६. जवासा ।
७. अनंतसूत्र ।

अनंद—अनँद पुं० आनन्द । प्रसन्नता । हर्ष ।
उ०—अनँद अतिसै भयो घर-घर, नृत्य ठावँहि-ठावँ । सूर० १०/२६/२१९
वि० आनन्दित । प्रसन्न । हर्षित ।
उ०—मारि ताड़ुका, यज्ञ करायो, विश्वामित्र अनंद भयौ । सूर० ६/२१/१६०
२. अनंद नाम का एक संवत्सर ।
अक० आनन्दित होना ।
—रूप वि० आनन्द के रूप वाली । आनन्द-स्वरूप ।
उ०—अलिकुल-कलित कपोल ध्याय ललित अनंद-रूप सरित मों भूपन अन्हाइयै । भू० १/१२८

अनंद² [अ+नंद] वि० पुत्रहीन । निपूता ।

अनंदित वि० हर्षित । मुदित ।
उ०—कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै । सूर० २/१८/१००

अनंदी वि० प्रसन्न । हर्षित ।
उ०—बंदन करत, इंदु सेखर मुनिंद सेस, बंदन हरत, उर इंदिरा अनंदी के । दे० I, १/३५/५३

अनंभ¹ वि० बिना पानी का ।

अनंभ² वि० निर्विघ्न । बाधा-रहित ।

अन¹ पुं० अन्न । अनाज ।
उ०—जैसे हैं गिरिराजजू, तैसो अन को कोट । सूर० १०/८४१/४४१
—कन—कनो पुं० अन्न-कण । अन्न के दाने । मोती के अतिरिक्त अन्य कण ।
उ०—संसारै नीको लागै पै अनकन कबहुँ चुगति नहिं हंसी । भि० I, २३७/२१२

अन² वि० अन्य । और । दूसरा ।
उ०—क्रीड़त हैं पिय रसिक सुदिन दिन अन अन भातैं । नं० ११४/३०
क्रि०वि० बगैर । बिना । रहित ।
उ०—हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छूटि गयौ ए ही घोर राधिका रमन को । के०
—आनँद वि० बिना आनंद के । आनंद-विहीन । आनन्दरहित ।
उ०—सीरी परि जात रोम रोम अनआनँद हो । घ० १५४/१२७
—इस पुं० अनिष्ट । अनैस ।
—ईस पुं० १. वह जिसका ईश न हो । परमात्मा ।
२. कृष्ण ।
उ०—दधिसुत बाहन मेखला, जैकै बैठि अनईस गनौरी । सा०
—उतर वि० अनुत्तर । निरुत्तर ।
उ०—सुनि सखी सूर सरबस हर्‌यौ साँवरै, अनउतर महरि कैं द्वार ठाढ़ी । सूर० १०/३०७/२६३
—कंप वि० अकंप । कम्प रहित । स्थिर । निश्चल । निष्कंप ।

अन³ निषेधार्थक उपसर्ग ।
—करनी वि० न करने योग्य । अकरणीय । वर्ज्य ।
—कहनी वि० न कहने योग्य ।

—कहो वि॰ न कही हुई । बिना कही । अकथित ।

उ॰—सूर अनकही दै गोपिनि सौं, स्रवन मूंदि उठि धायौ। सूर॰ १०/४१४६/५२७

—कोन्ही वि॰ अकृत । जो न की गई हो । बिना की हुई ।

—खुलो वि॰ [स्त्री॰ अनखुली] १. बंद । जो खुला न हो ।

उ॰—रस अनखुलो खुलत है खुलौ खुलो ही नाहिं । र॰

२. जिसका कारण प्रकट न हो । गुप्त ।

उ॰—लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ। वि॰ १६६, ८५

—गढ़ वि॰ १. बिना गढ़ा हुआ ।

२. जिसे किसी ने न बनाया हो । प्रकृत । स्वाभाविक ।

३. बेडौल । भद्दा । कुरूप । बेढंगा ।

४. अपरिष्कृत ।

उ॰—अनगढ़ सोना ढोलना (गढ़ि), ल्याए चतुर सुनार। सूर॰ १०/४०/२२४

५. उजड्ड । अक्खड़ । अनाड़ी ।

६. बेसिर-पैर का । अंडबंड ।

—गन वि॰ जो बिना गिने हुए हों । अगणित । अनेक । बहुत ।

उ॰—प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन । क॰ २४/८

—गनित वि॰ अगणित ।

उ॰—कहै कबि गंग अनगनित गनीम गढ़ गढ़ कै निगूढ़ गिरि कंदरनि जात हैं । गं॰ ३३४/१०२

—गना[1] पुं॰ गर्भ का आठवाँ महीना ।

—गना[2]—गनी वि॰ दे॰ 'अनगन'। [स्त्री॰ अनगिनी]

—गिना—गिनो वि॰ अगणित । असंख्य । अपार ।

उ॰—मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं । सूर॰ वि॰ ३३८/९३

—गिनिया वि॰ १ न गिनने वाला । संख्या न करने वाला ।

२. अगणित । अनगिनती । असंख्य । अनेक बहुत ।

—गैरी वि॰ [अन+गैरी] १. अनामंत्रित बिना बुलाये आया ।

२. अपरिचित, अजनबी ।

उ॰—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी । हित की कहै बनाय चित्त में पूरे बैरी ।

—घरी [अन=विरुद्ध+घरी=घड़ी] स्त्री॰ असमय । कुसमय । अनवसर । बेवक्त । बेमौका ।

—घात वि॰ बिना घात या चोट वाला ।

उ॰—अचट और अनघात अनागत चपल करज गति भेद जनावति । गो॰ ४१८/१६६

—घैरी वि॰ दे॰ 'अनगैरी' ।

—घोरी क्रि॰वि॰ अचानक । चुपके से ।

उ॰—जीति पाइ अनघोरी आए । छ॰

—चह्यो वि॰ अनिच्छित । अप्रिय ।

उ॰—अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो, नीके जिय जानि इहाँ भली अनचह्यो हौं । तु॰, पृ॰ ५८८

—चाखा [अन+चाखना] वि॰ बिना चखा या खाया हुआ ।

—चारौ पुं॰ आचारहीनता । अनाचार ।

उ॰—करुना मार्‌यो गर्व, हर्‌यो श्रद्धा अनचारौ । दे॰ I, १३३/२५६

—चाहत [अन+चाहत] वि॰ जो न चाहे ।

पुं॰ न चाहने वाला आदमी । प्रेम न करने वाला व्यक्ति ।

उ॰—हाय दई कैसी भई अनचाहत को संग ।

—चाहनी वि॰ न चाहने योग्य । अग्राह्य ।

उ॰—बानी बिलानी सुबोलनि मैं, अनचाहनी चाह जिवावति है हति । घ॰ ४५६/२५३

—चाहा—चाहो [अन+चाहना] वि॰ [स्त्री॰ अनचाही] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो । अनिच्छित । अवांछित ।

उ॰—बात करिबे कों अनचाही मीच ठाढ़ी है । प॰ १६/२४१

—चित वि॰ जो ध्यान न दे । लापरवाह । असावधान रहने वाला ।

क्रि॰ वि॰ अनचीते । सहसा । यकायक । अकस्मात् ।

—चिन्हा [अन+चीन्हा] वि॰ अपरिचित । अनजान । बिना पहचाना ।

—चीता वि॰ [अन + चीतना=सोचना] न सोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा ।

क्रि॰वि॰ अचानक या अकस्मात् ।

—चीन्हो [अन+चीन्ह] वि॰ अनजान । अपरिचित । अज्ञात ।

—चैन स्त्री० बेचैनी । व्याकुलता । विकलता । अशान्ति । दुःख । क्लेश ।

वि० बेचैन । व्याकुल ।

उ०—चित अनचैन आँसू उमगत नैन देखि लोग कहैं बैन आजु कहियत काहिनै ।

भू० ३२५/१८८

—च्छवि स्त्री० असुन्दरता । कुरूपता ।

—छिलो वि० १. जो छिला हुआ न हो । छिलकेदार ।

२. अनाड़ी ।

—छुई वि० अस्पृष्ट । जिसका स्पर्श न किया गया हो । अछूती । कोरी ।

—जल वि० बिना जल का । जल रहित । निर्जल ।

पुं० १. अन्न पानी । खाना-पीना ।

२. अन्य जल । स्वाति जल से भिन्न अन्य जल ।

उ०—चातक बतियाँ ना रूचीं अनजल सींचे रूख ।

तु० II, ३११/१०८

—जान [अन+जान] वि० १. अज्ञानी । नादान । ना समझ ।

२. अपरिचित । अज्ञात ।

क्रि०वि० अनजाने । बिना सोचे समझे ।

उ०—डगरि गए अनजान ही गह्यो जाइ बन घाट ।

सूर० १०/१४६१/६०२

पुं० १. एक प्रकार की लम्बी घास ।

२. अजान नाम का पेड़ ।

—जानत—जाने क्रि०वि० बिना जाने । बिना समझे ।

उ०—अनजानत अपराध किए प्रभु, राखि सरन मोहिं लेहु । सूर० १०/५५८/३६१

उ०—अनजाने मैं करी बहुत तुमसौं बरियाई ।

सूर० १०/४६२/३४४

—जामो वि० बिना जमाया हुआ । बिना उगा हुआ ।

पुं० १. मरुस्थल ।

२. बोझ ।

—जीवन [अन+जीवन] वि० जिसमें प्राण न हों । प्राण-रहित ।

पुं० मुर्दा । शव । मृत शरीर ।

—जोखा वि० बिना जोखा हुआ । बिना तौला हुआ । बिना अन्दाज लगाया हुआ ।

—ठिक वि० ठिकाना-शून्य । स्थान-रहित । बिना ठिकाने का ।

—डीठ वि० बिना देखा ।

—ढरी वि० १. जो खाली न हो । अनरीती ।

उ०—कैधौं नाम कूप को रहट घरी रूप भरी ढरी अनढरी है विचित्र भाँति झोरी की ।

शृं० सु०

वि० २. बिना ढली हुई । अनगढ़ । बिना गढ़ी ।

—तोला वि० बिना तोला या मापा हुआ ।

—देख—देखें—अनदेखें क्रि०वि० बिना देखे हुए ही । अनजान में ही ।

उ०—देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाँहि ।

बि० ६६३/२७२

—देख्यो [अन+देख] वि० बिना देखा हुआ । अदृष्ट ।

उ०—देख्यौ आनदेख्यौ कियैं अँगु अँगु सबै दिखाइ ।
पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ।

बि० ६१८/२५५

—दोष वि० निर्दोष । निरपराध ।

उ०—अनदोषे कौं दोष लगावति, दई देइगो टारि ।

सूर० १०/२९२/२८६

—धन वि० १. निर्धन । दरिद्र । गरीब ।

पुं० २. अन्न-धन । अन्न और धन । धन-धान्य । सम्पत्ति ।

—पच पुं० [अन+पच] अजीर्ण । बदहजमी । कुपच ।

वि० न पचने योग्य पदार्थ ।

—पढ़—पढ़ा वि० १. [अन+पढ़] बेपढ़ा । अशिक्षित । मूर्ख । निरक्षर ।

२. न पढ़ा जाने योग्य ।

—पहचान वि० अनजान । अपरिचित ।

उ०—पहचानै हरि कौन, मो से अनपहचान कौं ।

घ० क० २२/५२

—प्यारी वि० जो प्रिय न हो । अप्रिय ।

—फूल्यौ वि० न फूला हुआ । अविकसित । न फूले हुए के समान ।

उ०—फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई-गावँ गुलाब ।

बि० ४३८/१८०

—विध—विधा वि० [अन+विद्ध] बिना बेधा हुआ । बिना छेद किया हुआ ।

—बूड़ा [अन+बूड़] वि० न डूबा हुआ । जो गहरे न पैठा हो । जो निमग्न न हुआ हो ।

उ०—अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।
वि० ६४/४४

—बेली वि० जो (रोटी) चकले पर रखकर बेलन से न बढ़ाई गई हो। हाथ से पोई गई।

—बोल वि० [अन+बोल] अनबोला। बोल रहित। न बोलने वाला।
पुं० १. चुप्पा। मौन।
२. गूंगा। बेज़बान।
३. जो अपना सुख-दुःख न कह सके (पशु आदि)।

—बोलनि स्त्री० चुप्पी। न बोलना।
उ०—अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी, सु बोलनि की कहियै धौं कहा। घ० २६४/१६०

—बोला वि० [स्त्री०—बोली] दे० 'अनबोल'।
उ०—जौ तुम हमैं जिवायौ चाहत, अनबोले ह्वै रहिऐ। सूर० १०/३६०७/३६४
उ०—हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन।
सूर० १०/७४६/४१५

—बोल्यो वि० दे० 'अनबोल'।

—ब्याहा वि० [अन+ब्याहा] [स्त्री—ब्याही] अविवाहित। जिसका विवाह न हुआ हो। क्वाँरा।
उ०—अनब्याही केहु पुरुष सों अनुरागिनी जो होय।
म० ६२/२१४

—भंग वि० [अन+भंग] अखंडित। अभंग। पूर्ण। परिपूर्ण।
उ०—गोरे रँग ओरे सु दृग भए अरुन अनभंग।
प० १५०/५१

—भजता वि० [अन+भज] न भजने वाला। न चाहने वाला।
उ०—इक भजते को भजैं एक अनभजतनि भजहीं।
नं०

—भतियाँ [अन्य भाँति] क्रि०वि० और भाँति से। अन्य प्रकार से।
उ०—देह सहित ब्रह्म देखन गये। तहँ के सुख ते सब अनभये। नं० २८/२७२

—भयो [अन+भया] वि० बिना हुये। जो न हुआ हो।

—भल [अन+भल] पुं० बुराई। हानि। अहित अमंगल।
उ०—सूर अनभल आन को सुनत वृक्ष वैरि बुताइ।
सा०

—भला [अन+भला] वि० [स्त्री०—भली] बुरा। निंदित। हेय। खराब।
उ०—सूर-प्रभु कौं मिली, भेंटि भली अनभली, चून-हरदी-रंग देह छाहीं।
सूर० १०/१६४६/६५२

—भव पुं० १. अजन्मा। २. अचंभा।

—भाउतो वि० अप्रिय। अनचाहा।
उ०—त्यों पदमाकर सौति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को। प० ४१४/१७०

—भायो—भायौ [अन+भाव] वि० जो न भावे। जिसकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसन्द।
उ०—ऐसें माँझ कुबुधि बिधि आयौ। अब तैं अधिक भयौ अनभायौ। नं० १३/२३०

—भाव [अन+भाव] वि० भाव या प्रेम का अभाव। कुभाव। अविचार। कुत्सित भावना।

—भावत वि० जो अच्छा न लगे। जो न रुचे।
उ०—ऊखल चढ़ि, सीकैं कौं लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ। सूर० १०/३३१/२६८

—भावता वि० दे० 'अनभावत'।

—भावरी [अन+भावरी] स्त्री० नापसंद होने की भाव या स्थिति। अनचाही हुई स्थिति।
उ०—भावरि अनभावरि भरे करौ कोटि बकवादु।
बि० ६३७/२६२

—भौ [अन+भव] पुं० अचंभा। अनहोनी बात। दे० 'अनभव'।
वि० अपूर्व। अद्भुत। अलौकिक। लोकोत्तर।
उ०—हम मति हीन अजान अल्पमति तुम अनभौ पद ल्याए। सूर०

—मत वि० १. अविचारित।
२. अनिच्छित।
पुं० (अनुमति) १. सलाह।
२. आज्ञा।

—मतौ वि० दे० '—मत'।

—मद [अन+मद] वि० मदरहित। अहंकार-हीन। गर्वरहित। निरभिमान। सरल।
पुं० सहजता। बिना नशे की स्थिति।
उ०—मद अनमद दोऊ दये निज प्रीतम को प्याइ।
र० ७२२/१३८

—माँगा—माँग्यौ [अन+माँग] वि० जो माँगा न हुआ हो। अयाचित।

—मापा [अन+माप] वि० जो मापा न जा सके। जिसकी माप न की जा सके।

—माया [अन+मा] वि० जो अँट न सके। जो समा न सके।

उ०—भेंटी भालु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो। तु०

—मारग [अन=बुरा+मारग] पुं० १. कुमार्ग। बुरा रास्ता।

२. पाप। दुराचार। दुष्कर्म।

उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सोई करत अनीति। सूर० वि० १२६/३६

—मिल पुं० दे० 'अनमिल'।

—मिला वि० दे० 'अनमिला'।

—मीच [अन+मीच] क्रि०वि० मृत्यु के विना। बिना मौत के।

उ०—है घनआनँद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो। घ० ४६६/२६६

—मेल [अन+मेल] वि० दे० 'अनमेल'।

—मोद वि० १. अप्रसन्न। रंजीदा।

२. [अनुमोद] समर्थन किया गया।

—मोल [अन+मोल] वि० [स्त्री०—मोलो] दे० अनमोल।

—मोलो वि० दे० 'अनमोल'।

—रँग—रंग [अन+रंग] वि० रंग-रहित। रंगहीन।

उ०—कारो अपनो रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई। सूर० वि० ६३/१८

—रटौ क्रि०वि० बिना रटे। बिना पुकारे। आप ही आप। स्वतः।

वि० बिना याद किया हुआ। बार-बार न कहा हुआ।

—रस वि० १. नीरस। रसरहित।

२. निर्जल।

उ०—जो मोहिं राम लागते मीठे। तौ नवरस, षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। तु०

पुं० १. रसहीनता। शुष्कता।

२. कोप। मान। रुखाई।

३. दुःख। विषाद।

उ०—भो रसु अनरसु, रिस रली, रीझ खीझ इक बार। अ०

४. मनोमालिन्य। अनबन। बुराई।

—राता वि० बिना रँगा हुआ। सादा।

—रितु—ऋतु स्त्री० १. विपरीत ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। अकाल। असमय।

उ०—चातक कैं रट नेह सदा, वह रितु अनरितु नहिं हारत। सूर० १०/२३३२/११७

२. ऋतु के विरुद्ध कार्य।

—रीझो वि० जो प्रसन्न न हो।

उ०—अनरीझे दारिद दलहि अनखीझे अरि सैन। भू० १७०/१६१

—रीति [अन+रीति] स्त्री० १. कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

२. अनुचित व्यवहार। अत्याचार।

उ०—इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधु पाइ परौं। यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि, अब नई कहा करौं? सूर० ९/९८/१८३

३. अंधेर।

उ०—देखि मधुमास को इतीक अनरीति। शृ० ७७/२०२

—रीतो वि० १. रीति-रहित। अमर्यादित।

२. जो रीता न हो। परिपूर्ण। भरा-पूरा।

—रुच [अन+रुचि] वि० जो पसंद न हो। अरुचिकर।

—रुचि [अन+रुचि] स्त्री० १. अरुचि। अनिच्छा।

उ०—बार-बार अनरुचि उपजावति महरि हाथ लिए साँटी। सूर० १०/२५४/२८०

२. भोजन न रुचना।

—रुष [अन+रोष] वि० १. रोषरहित। शान्त।

२. बिना रुख के। बिना इशारे के।

३. बिना इच्छा के।

—रूप [अन=बुरा+रूप] वि० १. असुन्दर। कुरूप। बदसूरत।

२. [अनु+रूप] असमान। अतुल्य। असदृश।

उ०—मदन निरूपम निरूपन निरूप, चंद बहुरूप अनरूप कै बिचारिए। के०

३. रूप-रहित। बिना रूप का।

उ०—रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते। पल०, पृ० ७४

—रूसो वि० न रूठा हुआ। प्रसन्न।

—रोचक वि० जो रुचिकर न हो। अप्रिय।

उ०—सीतल जल थल बसन असन सीतल अनरोचक। के० I, ३३/१५६

—रोर पुं० आवाज न होना। शान्ति। सन्नाटा।

—लगी [अन+लगी] वि० जो लगी हुई या संयुक्त न हो। अविद्यमान।

उ०—लगी अनलगी सी जु बिधि करी खरी कटि खीन। किए मनौ वै ही कसर कुच नितंब अति पीन। वि० ६६४ २७३

—लहता [अन+लहता] वि० जो उपयुक्त न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके। अनुचित।

उ०—अनलहते अपराध लगावति विकट बनावति बात। सूर १०/३२६ २६७

—लायक [अन + लायक] वि० नालायक। अयोग्य।

उ०—अनलायक हम हैं, की तुम हौ, कहौ न बात उघारि। सूर० १०/२८८३/२४३

—लेख [अन=नहीं+लक्ष्य=देखने योग्य] वि० अदृश्य। अगोचर।

उ०—आदि पुरुष अनलेख है सहजैं रहा समाय। दादू

—वाद⁀वाद [अन=बुरा+वाद=वचन] पुं० बुरा वचन। कुबोल। कटुवचन।

उ०—रूप की साठि कै तोलति घाटि बदै अनवाद ददै फल जूठे। दे०

—व्योगे वि० अवियुक्त। वियोग-रहित।

—सत्त [अन+सत्त] वि० असत्य। झूठ।

उ०—सपने अनसत्त किधौं सजनी घर वाहिर होत वड़े घरवारे। के०

—सनमाना [अन+सनमान] वि० असम्मानित

उ०—कैइक रहे ताहि अरगाने। अक्रूरादिक अन-सनमाने। नं० २,१६५

—समझ [अन=नहीं+समझ] वि० नासमझ नादान। अनजान। अबोध।

—समझा वि० दे० 'अनसमझ'।

—समझी स्त्री० नासमझी।

—समुझा वि० दे० 'अनसमझ'।

—समै [अन+समय] क्रि०वि० असमय। कुसमय। कुअवसर। वेमौका।

उ०—ऋतु वसन्त अनसमै अधममति पिक सहाउ लै धावत। सूर० १०,४१४७/५२७

—सहत वि० जो सहा न जा सके। असह्य। असहनीय।

—सिख वि० [स्त्री० 'अनसिखई'] मूढ़। मूर्ख। अजान। अशिक्षित। गँवारिन।

—सुन⁀सुनी स्त्री० [अन+सुन] आनाकानी। वि० अश्रुत। बेसुनी। बिना सुनी हुई।

उ०—कैसे अनसुनी करी चातिक पुकार तैं। घ० ३२/५८

—सुलगी वि० बिना जली हुई। अप्रदीप्त।

—सोची वि० [अन+सोची] बिना सोची हुई।

—हित पुं० [अन+हित] १. अहित। अपकार। बुराई। हानि।

उ०—बाल-विनोद बचन हित-अनहित बार-बार मुख भाखैं। सूर० वि० १/६०/१७

२. अहितचिंतक। अपकारी। शत्रु।

उ०—बंदउँ संत समान चित। हित अनहित नहिं कोउ। तु०

—होता वि० [अन+होना] [स्त्री० अनहोनी] अनहोना। अलौकिक। अपूर्व।

उ०—पलु ही मैं होती अनहोती करतु है। सुं० II, पृ० ४४३

—होनी[1] स्त्री० १. असंभव बात। अलौकिक घटना।

उ०—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात। सूर० १०/१८६/२६४

२. ऐसी बात जो न होने वाली हो।

उ०—ह्वै रहै होनी प्रयास बिना अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई। प० ४६६/१८४

—होनी[2] वि० न होने वाली। अलौकिक। असंभव। अचंभे की।

अनख स्त्री० झुंझलाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। असंतोष।

उ०—अनख-भरी धुनि अलिन की बचन अलीक अमान। भि० ग्र० I, ३२६/४८

अक० नाराज़ होना। रुष्ट होना। रिसाना।

उ०—सूरदास यसुदा अनखानी यह जीवन धन मोर। सूर १०/३१०/२६३

उ०—पिय परतिय कुच गहत लखि लली चली अनखाइ। र० ११८/२६

सक० नाराज करना। अप्रसन्न करना। खिझाना।

उ०—उठत सभा दिन मधि सेनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात-खात सुख करत साहिबी कैसें करि अनखाऊं। सूर ६/१७२/२०५

अनखाइ, अनखात (व०कृ०)

अनखाये, अनखाने, अनखानी (भू०कृ०)

अनखनि (अनु+क्षण) क्रि०वि० १. हर समय। प्रत्येक क्षण।
(अनख) २. क्रोध से। खीझ से।
उ०—सूर इते पर अनखनि मरियत, ऊधौ पीवत मामी। सूर १०/३६२९/३६६
उ०—अनखन दैकै कीजियै अनखन भरि अँखियानि। म० ३३८/२६६

अनखानि स्त्री० अमर्ष। झुँझलाहट। रिस। नाराजी।
उ०—दृग काहि लगे जु कहूँ न लगै मन-मानिक ही अनखानि ठई। घ० ६७/८१

अनखारी वि० अनख करने वाली। झुँझलाने वाली। अप्रसन्न होने वाली। डाह करने वाली। ईर्ष्यालु।
उ०—सूरदास ऐसी को त्रिभुवन. जैसी यह अनखारी। सूर १०/१२५०/५५५

अनखीली वि० ईर्ष्यालु। क्रोधी। दुःखी। अप्रसन्न। तुनकने वाली।
उ०—पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी। घ० २४६/१७३
उ०—नेको अनखाति स अनख भरी ओखिन अनोखी अनखीली रोख ओखे से करति है। दे० । ४३०/१२१

अनखाहटौ पुं० अनखने या क्रोध दिखाने की क्रिया।
उ०—वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिनु नाहिं। बि० ४६८/१६३

अनखीजे क्रि०वि० बिना क्रुद्ध हुए। बिना झुँझलाए हुए। दे० 'खीज—'।
उ०—अनरीझे दारिद दलहि, अनखीझे अरि-सैन। भू० १७०/१६१

अनखौंनो वि० दे० 'अनखौंहीं'।

अनखौंही वि० १. क्रोध से भरा। कुपित। रूठा।
२. चिड़चिड़ा। जल्दी क्रोध करने वाला।
उ०—भए हँसौं हैं सबनु के अति अनखौंहैं नैन। बि० २२४/६५
३. क्रोधजनक। क्रोध दिलाने वाला।
उ०—रोपे मापे लखन अकनि अनखौंहीं बातैं। कवि० १९/६
४. अनुचित। खोटा। बुरा।
उ०—सूरदास बातैं अनखौंहीं, नाहिन मोपै जाति सही। सूर १०/१७०९/६६६

अनट पुं० १. गाँठ। गिरह।
२. ऐंठ।
३. विरुद्धाचरण। विपरीत आचरण।
४. उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार।
उ०—सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। तु०, पृ० १४२

अनडुह पुं० १. बैल।
२. वृषभ राशि।

अनडुही स्त्री० गाय।

अनत[1] [अ+नत] वि० न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2] (अन्यत्र) क्रि०वि० दूसरे स्थान पर। पराई जगह पर।
उ०—मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। सूर०

अनतर[1] (अंतर) पुं० १. भेद। फर्क। विभिन्नता। अलगाव।
२. बीच। मध्य। फासला। दूरी।
३. ओट। आड़। परदा।
४. हृदय। अंतःकरण।

अनति[1] वि० बहुत नहीं। थोड़ा।

अनति[2] स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनतु क्रि०वि० अन्यत्र। दूसरी जगह। पराए स्थान।

अनतूल वि० १. अतुल।
२. असमान।

अनतैं—अनतैं क्रि०वि० अन्यत्र। दूसरी जगह। दूसरे स्थान पर। पराए स्थान पर।
उ०—ह्याँ हमसों मिलिबो ठहराय कै सैन कहूँ अनतैं ही करीजै। म० १३१/२३०

अनदर सक० तिरस्कार करना। आदर न देना।
उ०—या रस के प्रतिबंधक जेते उनि बातनि अनदरि रे रसना। छी० १८५/७८

अनन (अनन्य) वि० दे० 'अनन्य'।
उ०—बाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी। भीखा

—ताई स्त्री० १. अनन्यता।
२. एक देव की उपासना।
३. सब देवताओं में अभेद बुद्धि। सब देवताओं में एकरूपता का भाव।

अननि वि० दे० 'अनन'।
उ०—राह भगति की अननि है, विरला पावै कोय। रामा०, पृ० ५४

अनन्य वि० १. एकनिष्ठ। एक ही में लीन रहने वाला। अन्य से संबंध न रखने वाला।
उ०—और न मेरी इच्छा कोइ।
भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ।
सूर० ७/२/१३८
२. अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो।
उ०—नैननि के आगें नित नाचत गुपाल रहै ख्याल रहैं सोई जो अनन्य रसवारे हैं। उ० ६८

—गति वि० जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसका और ठौर ठिकाना न हो।
उ०—भेवहि भगति मन बचन करम अनन्य-गति हर चरन की। तु०, पृ० ३१

—ता स्त्री० १. एकनिष्ठता। एकाश्रयता। एक ही में लीन रहने का भाव।
२. एकदेवोपासना। सब देवताओं में अभेद-बुद्धि।
३. अद्वितीयता। अप्रतिमता।

अनन्वय पुं० वह अलंकार जिसमें उपमेय और उपमान अभिन्न हों; एक ही वस्तु को उपमान और उपमेय कहा जाय।
उ०—तहाँ अनन्वय कहत हैं कवि मतिराम सुजान। म० ५३/३०७

अनन्वै पुं० दे० 'अनन्वय'।

अनप्रासन पुं० अन्नप्राशन। बच्चों को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। चटावन।
उ०—नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए। सूर० १०/८८/२३६

अनफाँस पुं० [अन+फाँस=पाश] मोक्ष। मुक्ति।

अनबंछी वि० [अन+वांछित] अवांछित। अनचाही।
उ०—और सकल यह वरतनि कहिए अनवंछी ही आवैं जू। सुं० I पृ० ३११

अनबन[1] स्त्री० [अन+बनना] न बनने का भाव। बिगाड़। तनातनी। खटपट। विरोध। वैमनस्य। फूट।
उ०—साहि रह्यौ जकि सिव साहि रह्यौ तकि और चाह रह्यौ चकि बनै ब्यौंत अनबन के। भू० ३४६/१६५

—आव पुं० विगाड़। द्वेष। तनातनी।

—यो वि० बुरा। खराब। बिगड़ा।
उ०—बन्यों अनबन्यो समुझि के, सोधि लेहिंगे साधु। भि० II, पृ० ४

अनबन[2] (अन्य+वर्ण) वि० भिन्न-भिन्न। नाना प्रकार। अनेक। विविध।
उ०—द्रुम फूले बन अनबन भाँती। सूर०

अनबात क्रि०वि० बिना बात। बेबात। निष्प्रयोजन। बेसबब। अकारण।

अनबाद पुं० दे० 'अनवाद'।
उ०—आनंदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनबाद करौ तिहारी। घ०, पृ० ५५५

अनबूझ—अनबूझा [अन+बूझ] वि० [स्त्री० अनबूझी]
१. न समझ में आने योग्य।
२. अनजान। नासमझ। बुद्धिहीन। मूर्ख।

अनभव पुं० अनुभव। दे० 'अनुभव'।
उ०—नादवेद रतिरंग सुन्दरता अनभव बिभव। बो०, ४५/१५५

अनम वि० अनम्र। उद्धत। बली। उजड्ड।

अनमन स्त्री० अनमनापन। अन्यमनस्कता। उदासी। अस्वस्थता।

—आ—ई वि० अनमना। खिन्न। उदास। अस्वस्थ।
उ०—कत सजनी है अनमनी अँसुवा भरति सशंक। म०
उ०—तबै आजु अनमनी बत्यानी, यह कछु मान ठयौ री। सूर० १०/२४२६/१३५

अनमारनो वि० न मारने वाला। अहिंसक।

अनमिख (अ+निमिष) क्रि०वि० दे० 'अनिमिष'।
उ०—हीतल को सीतल करन चारु चाँदनी-सी मद मृदु मुसुकानि अनमिख पेखिहौं। म० २७३/२६४

अनमिल [अन+मिल] वि० १. बेमेल। बेजोड़। असंबद्ध।
उ०—मिल्यौ यवन मदमत्त बकत कछु अनमिल बातें। म०
२. पृथक। भिन्न। अलग। निर्लिप्त।

—त वि० दे० 'अनमिल'।

—उक्ति स्त्री० दे० 'अनमिल उक्ति'।

अनमिल उक्ति स्त्री० १. अक्रमातिशयोक्ति अलंकार जिसमें कारण के साथ ही कार्य का होना बताया जाता है।
२. बेमेल बात। असंबद्ध बात।
उ०—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै। सा० १५

अनमिष वि० दे० 'अनिमिष'।
उ०—अनमिष नैन सुनैन ये निरखत अनमिष नैन। म० ३३८/२७८

पुं० मछली।

—नैनता [अ+निमिष+नयनता] स्त्री० नेत्रों की अपलक स्थिति।
उ०—तो मैं अनमिषनैनता, मोहन मूरति मैन। म० ३३८/२७८

अनमील— (अन+मील) अक० १. (आखें) खुलना । २. (कलियों आदि का) खिलना या विकसित होना । ३. प्रफुल्लित या प्रसन्न होना ।

अनमेल (अन+मेल) वि० १. जिसका किसी से मेल या जोड़ न बैठे। बेमेल । २. जिसमें मिलावट न हो । विशुद्ध । ३. जिसके मेल या बराबरी का और कोई न हो । बेजोड़ ।
पुं० १. न मिलने का भाव । २. अद्वितीयता ।

अनमेष वि० अनिमेष । स्थिर दृष्टि । टकटकी के साथ । दे० 'अनमिष' ।

अनमोल (अन+मोल) वि० १. जिसका मूल्य इतना अधिक हो कि उसकी कल्पना न हो सके । २. बहुमूल्य । ३. सुन्दर । ४. उत्तम ।
उ० अनमोल कपोलनि की छवि है। तु० पृ० १६४
क्रि०वि० बिना मोल लिये । बिना दाम दिये । मुफ्त में ।
उ० मोल कहा अनमोल बिकाहुंगी। दे० दी० ६/१३

अनय (अ+नय) पुं० १. अनीति । अन्याय । दुष्ट कृत्य ।
उ०—काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल । तु०, पृ० १४७
२. अमंगल । दुर्भाग्य । विपद् ।
उ०—सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी । भा० I, पृ० ११७

अनम्र (अ+नम्र) वि० १. जो झुका न हो । २. जो नम्र न हो । अविनीत । ३ उद्दंड । उद्धत ।

अनयास क्रि०वि० दे० 'अनायास' ।
उ०—जो थाई को आनि कै प्रगट करै अनयास । र० ५१/१३
उ०—बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमंग अनयास । सूर १/६०/२४
वि० अकृत्रिम । स्वाभाविक । प्राकृतिक ।

अनरंग[1] (अन्य+रंग) वि० दूसरे रंग या प्रकार का ।
उ०—कारो अपनो न छाँड़े, अनरंग कबहुँ न होई । सूर०

अनरंग[2] (अन+रंग) वि० रंगहीन । विकृत ।

अनर— सक० अनादर करना । अपमान करना ।
उ०—क्यों तुमको कहि बनै सरै ज्यों और सबै अनरै । सूर०

अनरथ—अनरत्थ (अन+अर्थ) पुं० दे० 'अनर्थ' ।
उ०—आयु कीति, संपति सब हरै । अबर बहुत अनरथ कौ करै । नं० ४/२०३
वि० अर्थरहित । व्यर्थ । अमंगलकारी ।

अनरथ्थ वि० दे० 'अनर्थ' ।
उ०—जोर सिवा करता अनरथ्थ भली भई हथ्थ हथ्यार न आया । भू० १६१/१६५

अनरस— (अन+रस) अक० उदास होना । खिन्न होना । नाराज होना ।
उ०—हँसे हँसत, अनरसे अनरसत, प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई । तु०, पृ० २७७
—आ [अन+रस>रसा] वि० अनमना । बीमार । रोगी ।
उ०—आगु अनरसेहि भोर के पय पियत न नीके । तु० पृ० २७४

अनरसा पुं० एक प्रकार की मिठाई । अँदरसा ।

अनरसौं क्रि०वि० १. अतरसों । बीते हुए परसों से एक दिन पहले का दिन । २. आने वाले परसों से एक दिन बाद का दिन ।

अनर्घ (अन्+अर्घ) वि० १. बहुमूल्य । कीमती ।
उ०—बिबेक सों अनेकधा दए अनूप आसने । अनर्घ अर्घ आदि दै बिनै किये घने घने । के० II, ६/३५०
२. अल्प मूल्य का । सस्ता ।

अनर्थ (अन्+अर्थ) पुं० १. उपद्रव । उत्पात । बिगाड़ । विपद् । अनिष्ट ।
उ०—को बरजै प्रभु कों प्रगट, बरजैं होय अनर्थ । के० III, २७/६५६
२. अन्याय । अत्याचार । ३. गुनाह । अपराध । जुर्म ।
वि० १. व्यर्थ । निकम्मा । २. अमंगलकारी । ३. भाग्य-विहीन । ४. निरर्थक ।

अनल पुं० १. अग्नि । आग ।
उ०—भ्रमि-भ्रमि अब हारयौ हित अपनैं, देखि अनल जग छायो । सूर वि० १५४/४३
२. तीन की संख्या । ३. चीता । ४. माली नामक राक्षस का पुत्र और विभीषण का मंत्री । ५. भिलावाँ नामक जंगली वृक्ष ।

—वन पुं० दवाग्नि । वन की आग जो बाँस आदि की रगड़ से स्वतः लग जाती है ।

—पंखी पुं० एक चिड़िया । इसके विषय में कहा जाता है कि यह सदा आकाश में उड़ा करती है और वहीं अंडा देती है । अंडा जमीन पर गिरने से पहले ही फूट जाता है तथा उसमें से बच्चा निकलकर उड़ने लगता है ।

—प्रभा स्त्री० ज्योतिष्मती नामक लता विशेष ।

—प्रिया स्त्री० अग्निपत्नी । स्वाहा ।

अनवच्छ (अन+अवच्छिन्न) वि० अखण्ड । अटूट ।
उ०—उच्छलत सुजस बिलच्छ अनवच्छ दिच्छ-दिच्छनहूँ छीरधि लौं स्वच्छ छाइयतु है ।
प० ६/३०५

अनवट पुं० पैर के अँगूठे में पहनने का एक प्रकार का छल्ला ।
उ०—सुबरन अनवट चरन कौ बरन करत यह मूल ।
र० १७१/२८५

अनवद्य वि० अनिंद्य । निर्दोष । बेऐब ।
उ०—कर कपाल, सिरमाल-ब्याल, विष भूत विभूषन । नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर-अनवद्य, अदूषन । अज्ञात

अनवय पुं० दे० 'अन्वय' ।

अनवरत (अन्+अवरत) क्रि० वि० लगातार । निरन्तर । सतत ।
उ०—धरत ध्यान अनवरत, पार ब्रह्मादि न पावत।
क० १/१

अनवसर पुं० कुसमय । अनुपयुक्त समय ।

अनवाँसा पुं० कटी हुई फसल का एक बड़ा मुट्‌ठा या पूला ।

अनवाँसी स्त्री० एक बिस्वे का ४००वाँ भाग ।

अनशन पुं० अनाहार । उपवास ।

अनष पुं० दे० 'अनख' ।

अनषौहीं—अनखौहीं वि० अनखाया सा ।

अनसंग[1] (अन्य+संग) पुं० बुरी संगति ।
उ०—सूर अनसंग तजत तावत अयोपतिका स्राप ।
सा० ३६

अनसंग[2] (अ+संग) वि० १. बिना साथ । अकेले । संगरहित ।
पुं० २. असंगति नामक अलंकार जिसमें कार्य का होना एक स्थान पर वर्णित हो, और कारण का दूसरे स्थान पर अथवा जो समय किसी कार्य के लिये निश्चित है तब कार्य का होना न दिखाकर अन्य समय दिखाया जाय ।

अनसखरी—अनसखड़ी [अन+सखरी] वि० पक्की (रसोई) । दूध या घी में पका हुआ ।
उ०—महाप्रसाद अनसखड़ी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी । दो सौ०

अनसन (अन्+अशन) पुं० दे० 'अनशन' ।

अनसूय (अन्+असूय) वि० असूया-रहित । ईर्ष्या-रहित ।

अनसूया (अन्+असूया) स्त्री० १. दूसरों में दोष न देखना ।
२. अत्रि मुनि की पत्नी ।
३. शकुन्तला नाटक में उल्लिखित आश्रम-वासिनी एक स्त्री, शकुन्तला की सखी ।

अनसैना (अनु+शयना) स्त्री० दे० 'अनुशयना' ।
उ०—जाइ न समैं सँकेत तिहु दुख अनसैना एह ।
र० २५२/५२

अनस्त (अन्+अस्त) वि० जो अस्त न हो । अस्त न होने वाला ।
उ०—अनस्त अस्त ह्वै गये, दुरस्त रस्त छोड़हीं ।
प०

अनहड़ [अन+घट] वि० १. विचित्र । अघटित होने वाला ।
२. विकट ।
उ०—भीखा ब्रह्मसरूप प्रगट पर अनहड़ बड़ा तासु मिलना । भीखा

अनहद[1] [अन+हद] वि० हद-रहित । सीमा-रहित । असीम । अनन्त ।
उ०—ऊधो राखियै वह बात । कहत हौ अनगढ़ी अनहद, सुनत ही चपि जात ।
सूर० १०/३६०२/४७२

अनहद[2] पुं० दे० 'अनाहत' ।

—नाद पुं० दे० 'अनाहत' ।

अनहारो वि० (अनुहार) समान । सदृश । तुल्य ।

अनहितू (अन+हितू) वि० अहित । भलाई या हित न करने वाला । शत्रु ।

अनहूबा (अन+हूवा) वि० अनहोनी । अलौकिक ।
उ०—अनहूबे की बात कछू प्रकट भई सी जान ।
भू०

अनहेत (अन+हेत) पुं० विराग ।

उ०—न न अच्छर सब मों निरस, सुनि उपजत अनहेत। गं० ४०१/१२३

अनाकनी स्त्री० आनाकानी। सुनी-अनसुनी करना। टाल मटोल। जान-बूझकर बहलाना।

उ०—नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि। बि० ११/६

अनाकर्न (अन्+आकर्ण) वि० (अनाकर्ण)। बिना सुना हुआ। अनसुना।

उ०—अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन। नं० ११०/३८

अनाकानी स्त्री० दे० 'अनाकनी'।

उ०—केती अनाकानी कै जँभानी अँगिरानी पै न अंतर की पीर बहराए बहरानी है। भि० I, पृ० १४६

अनाकार (अन्+अकार) वि० जिसका कोई आकार न हो। निराकार।

अनाकृष्ट (अन्+आकृष्ट) वि० जो खिंचा हुआ न हो। अनाकर्षित। अप्रभावित।

उ०—अनाकृष्ट मन कृष्ण दुष्ट-मद-हरन पियारे। नं० ५०/३४

अनागत[1]—**अनागति** (अन्+आगत) वि० १. न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान। अप्राप्त। आगे आने वाला। भावी। होनहार। भविष्य। अपरिचित। अज्ञात। बेजाना हुआ। अनादि। अजन्मा।

उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अविगत अनघ अनंत। सूर०

२. अपूर्व। अद्भुत।

उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोभा गुन अमित अनागत। सूर० १०/२१२४/७६

क्रि०वि० अकस्मात्। अचानक। सहसा।

उ०—संकित बचन अनागत कोऊ, कांहु जु गयौ अधरात। सूर० १०/२६८१/२७९

—विधाता पुं० आने वाली विपत्ति के लक्षण को जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करने वाला व्यक्ति। अग्रसोची या दूरंदेश आदमी।

अनागत[2] पुं० संगीत के अंतर्गत ताल का एक भेद।

उ०—सुर स्रुति तान बँधान अमित अति, सप्त अतीत अनागत-आवत। सूर० १०/६४८/३६२

अनागम (अन्+आगम) पुं० आगमन का अभाव। न आना।

उ०—सोचै अनागम कारन कंत को मोचै उसासनि आँसहू मोचै। प० १६४/१२१

अनाघात[1] (अन्+आघात) पुं० संगीत का वह ताल या विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी-कभी सम का काम देता है।

उ०—उपजावत गावत गति सुन्दर अनाघात के ताल। सूर० १०/१२१६/५४८

वि० आघात या चोट से रहित।

अनाघात[2] (अन्+आघ्रात) वि० अनाघ्रात। जो सूंघा न गया हो।

अनाचार (अन्+आचार) पुं० १ निंदित आचरण। दुराचार। बुरा व्यवहार।

उ०—अनाचार-सेवक सौं मिलिकै करत चबाइनि काम। सूर वि० १४१/३८

२. कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

—ई वि० आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। दुष्ट। क्रूरकर्मा।

अनाज पुं० अन्न। धान्य। गल्ला।

अनाड़ी (अ+ज्ञानी) वि० १. नासमझ। नादान। निर्बोध। गँवार।

२. अकुशल। अदक्ष।

अनाढ्य (अन्+आढ्य) वि० धनहीन। दरिद्र। कंगाल। गरीब।

अनातप (अन+आतप) पुं० आतप या धूप का अभाव। छाया।

वि० १. आतपरहित। जहाँ धूप न हो।

२. शीतल। ठंडा।

अनातम (अन्+आत्म) वि० अनात्म। आत्मा का विरोधी पदार्थ। पंचभूत। (आत्मा-व्यतिरिक्त द्रव्य)

उ०—सुनि शिष्य यहै मत सांख्यहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै। सुं० I, पृ० ५०

अनातुर (अन्+आतुर) वि० १. जो आतुर या उत्कंठित न हो। स्थिर मन। शान्त। गम्भीर।

२. अविचलित। धीर।

३. नीरोग।

अनात्म वि० दे० 'अनातम'।

अनाथ (अ+नाथ) वि० [स्त्री० अनाथा, अनाथिनी] १. जिसका कोई नाथ या स्वामी न हो। बिना मालिक का।

२. जिसका कोई पालन-पोषण करने वाला न हो।

३. असहाय। निराश्रित।

उ०—हौं अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट मित्र हमार।
सूर० ६/१४७/१६८

—अनुसारी वि० अनाथों का सहायक। दीन पालक। अनाथों का आश्रयी।

उ०—अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
के० II, ५८/३००

—आलय पुं० वह स्थान जहाँ अनाथों का पालन होता है। यतीमखाना।

—नाथ वि० अनाथों के स्वामी। बेसहारों का सहारा।

उ०—स्वामिघात बिरवघात तें अनाथनाथ साथ।
के० III, ४१/७०१

—बंधु वि० अनाथों का सहायक। ईश्वर के लिए प्रयुक्त विशेषण।

उ०—श्रीरघुनाथ अनाथबंधु सौं सनमुख खेत खर्यौ। सूर० ६/१४४/१६७

अनाथा वि० दे० 'अनाथ'।

उ०—राखि लेहु त्रिभुवन के नाथा। नहिं मोतैं कोउ और अनाथा। सूर १०/६५०/४६६

अनादर (अन्+आदर) पुं० १. निरादर। असम्मान। अप्रतिष्ठा। अवज्ञा।

२. अपमान। बेइज्जती। तिरस्कार।

उ०—करै अनादर कंत को प्रगट जनावै कोप।
प० ६०/६१

सक० दे० 'अनर—'।

अनादि (अन्+आदि) वि० जिसका आदि न हो। जो सदा से हो। परब्रह्म। स्थान और काल से अबद्ध।

उ०—तुम तौ जग ब्योहार के कारन, ईस अनादि।
दे० I, ४०/२५२

—अन्त (अनाद्यन्त) वि० जिसका आदि अंत न हो।

उ०—अमेयं प्रबर्जी अनाद्यंतरंता असेषप्रहारी दसग्रीवहंता। के० III, २७/६६६

अनाधार (अन्+आधार) वि० जिसका कोई आधार न हो। निरालंब। बे सहारा।

अनाधिकारी (अन+अधिकारी) वि० १. अनधिकारी। बिना अधिकार के। २. अयात्र। ३. अनुत्तरदायी।

उ०—अनाधिकारी जिते तिते सुनि सुनि मुरझाये।
नं० ७२/२६

अना— (आ+नय.) सक० लाना। बुलाना। दे० 'आन—'।

उ०—केलि रसम से मिथुन कौं सुखनींद अनाऊँ।
घ०

अनापा [अ+नाप] वि० १. बिना नापा हुआ।

२. जो नापा न जा सके। अतुल। असीम।

अनाम (अ+नाम) वि० १. बिना नाम का।

२. अप्रसिद्ध।

अनामा स्त्री० अनामिका। कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली।

वि० स्त्री० दे० 'अनाम'।

अनायक (अ+नायक) वि० नायक या स्वामिरहित।

अनायास (अन्+आयास) क्रि०वि० १. बिना प्रयास। बिना परिश्रम। बिना उद्योग।

उ०—अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै। सूर० वि० १०५/२८

२. अकस्मात्। अचानक। सहसा।

उ०—मारिए तौ अनायास कासीबास खासफल, ज्याइयै तौ कृपा करि निरूज सरीर हौं।
कवि० १६६/८२

अनारँगी स्त्री० १. नारंगी (स्तन)। २. नारंगी सदृश स्तन।

उ०—बिकच कंज अनारँगी पर लसि, करत पय पान। सूर १०/२१३२/७७

अनारंभ (अन्+आरंभ) वि० आरंभरहित। अनादि।

अनार पुं० एक पेड़ और उसके फल का नाम। दाड़िम।

उ०—दसन अनार अधर बिंब जानौ।
सूर० १०/२६०१/२५०

—ई वि० अनार के दानों के रंग का। लाल।

अनारज (अन्+आर्य) पुं० अनार्य। वह जो आर्य न हो। जो श्रेष्ठ न हो।

उ०—भावै देह छूटौ देस आरज अनारज मैं भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में।
सुं० II, पृ० ६४२

अनारपन (अनाड़ी+पन) पुं० गंवारपन। मूर्खता। अज्ञता। अनाड़ीपन।

अनारी वि० दे० 'अनाड़ी'।

उ०—न्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी, बरनैं अनारी ये कटारी तरवारी है।
भि० II, पृ० १०२

अनार्य पुं० दे० 'अनारज'।

अनालस (अन+आलस्य>आलस) पुं० अनालस्य । आलस्य का अभाव । तत्परता ।

अनालसी वि० आलसरहित । तत्पर ।

अनाविद्ध (अन+आविद्ध) वि० जो विद्ध या बिंधा न हो । अनबिंधा । माला में अनगूंथा (फूल) ।

अनाविल (अन्+आविल) वि० स्वच्छ । निर्मल । साफ़ । जो गँदला न हो ।

अनावृत (अन्+आवृत) वि० जो ढका न हो । खुला । आवरणरहित ।

उ०—कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी । नं० ३६/३३

अनावृष्टि (अन्+आवृष्टि) स्त्री० वर्षा का अभाव । सूखा ।

उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं, यह जानत सब कोई । सूर० १०/४१६१/५४३

अनासक्त (अन्+आसक्त) वि० १. आसक्ति-रहित ।

उ०—निज प्रारब्ध कर्म-फल खाइ । अनासक्त, नैंकु ना ललचाइ । नं० १४/२३४

सं० २. गीता का नैष्कर्म्य-योग ।

अनासा (अ+नाश) वि० जिसका नाश न हुआ हो । जो टूटा हुआ न हो ।

उ०—जलचरजासुत-सुत सम नासा धरे अनासा हार । सा० ३५

अनासुरी (अन्+आसुरी) वि० जो असुरजातीय न हो । दैवी ।

अनाश्रमी (अन्+आश्रमी) वि० १. आश्रम भ्रष्ट । आश्रम धर्म से च्युत ।

२. पतित ।

अनाश्रय (अन्+आश्रय) वि० १. आश्रय से रहित । निरवलम्ब । अनाथ । दीन ।

२. आश्रय की जिसे अपेक्षा न हो ।

अनाह[1] पुं० रोग-विशेष । अफरा ।

अनाह[2] (अ+नाथ) वि० स्वामी-रहित । अनाथ ।

अनाहक क्रि०वि० नाहक । वृथा । निष्प्रयोजन ।

उ०—चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक । सूर० वि० ३१०/८५

उ०—चंदमुखी सुनि मंद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक । घ० १४५/११६

अनाहत[1] (अन्+आहत) वि० आघातरहित । जो आहत न हुआ हो ।

पुं० १. दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों के रंध्र बंद करने पर ध्यान करने से सुनाई पड़ने वाला शब्द (योग) ।

२. हठ योग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रों में से एक ।

—नाद पुं० योग का एक साधन जिसमें हाथ के अँगूठे से कान बंद करके शब्द विशेष सुनते हैं ।

उ०—हृदय कमल तैं जोति बिराजै अनहद नाद निरंतर बाजै । सूर० १०/४०६४/५१३

—बानी स्त्री० आकाशवाणी । देव वाणी ।

अनाहार (अन्+आहार) पुं० भोजन का त्याग । उपवास ।

वि० निराहार । जिसने कुछ न खाया हो ।

अनाहूत (अन्+आहूत) वि० बिना बुलाया हुआ । अनामंत्रित ।

अनिंद (अ+निन्द्य) वि० १. अनिंद्य । जो निंदा के योग्य न हों । निर्दोष ।

२. उत्तम । प्रशंसनीय ।

उ०—बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी पीठि दै प्रबीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद्य । प० १०२/१०१

अनिंद्य वि० दे० 'अनिंद' ।

उ०—देव देवी देवता न तोसी पति देवता अनिंद्य, इन्दु इन्दिरा ते उदित अदीनता । दे० I, ३१६/१०२

अनिआई (अ+न्यायी) वि० अन्यायी । अनाचारी ।

अनिकेत (अ+निकेत) वि० बिना घर का । निराश्रय ।

पुं० १. संन्यासी । परिव्राजक ।

२. खानाबदोश । घूम फिर कर जीवन व्यतीत करने वाले ।

अनिच्छ—अनिच्छा (अन्+इच्छा) वि० इच्छा-रहित । संइच्छा का अभाव । पूर्ण-काम ।

उ०—दै दै दीरघ दान अचेते । करै अनिच्छ विप्र जग जेते । बो०, २६/१३४

अनित[1] (अ+नित्य) वि० १ अनित्य । अस्थायी ।

२. नश्वर । नाशवान् ।

उ०—दारा सुत बिरत अहें सबहि अनित तासों । पो०, पृ० ४६३

अनित[2] (अन्यत्र) क्रि०वि० अन्यत्र । दूसरी जगह ।

अनित्य—अनित्त वि० दे० 'अनित' ।

—ता स्त्री० १. अनित्य अवस्था । अस्थिरता ।

२. क्षणभंगुरता । नश्वरता ।

अनिद्र—अनिद्रा (अ+निद्रा) वि० १. निद्रा-रहित। जिसे नींद न आये।
२. जागरूक। जागा हुआ।
पुं० नींद न आने का रोग।

अनिप [अनी+प] पुं० सेनापति। सेनाध्यक्ष।
उ०—मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर।
तु०, पृ० ३४६

अनिमा स्त्री० अणिमा। योग की सिद्धियों में से पहली, जिससे योगी अणु रूप ग्रहण करके अदृश्य हो सकते हैं।
उ०—रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाही, महिमाहि देइ भक्ति नाम देइ मुक्ति कों।
के० I, ७२/१३०

अनिमिष (अ+निमिष) वि० १. एकटक देखने वाला। स्थिर दृष्टि।
२. विकसित या खुला हुआ।
पुं० १. देवता। २. मछली।
क्रि०वि० बिना पलक गिराये। एकटक।
उ०—भारी भरे नैंन रतनारे तारे अनिमिष दीरघ उसास लै लै पगन खगतु है। बो०, १५/६२
—आचार्य पुं० देवगुरु। बृहस्पति।
—नयन वि० टकटकी बाँधकर देखने वाले नेत्र।

अनिमेष (अ+निमेष) वि० दे० 'अनिमिष'।
क्रि०वि० दे० 'अनिमिष'।
उ०—अनिमेष दृग दिये देखहीं मुख, मंडली वर नारि। सूर० १०/२८४१/२२८

अनियत (अ+नियत) वि० १. जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्धारित। २. अस्थिर। अनित्य। ३. अपरिमित। असीम। ४. असाधारण।

अनियम (अ+नियम) पुं० १. नियम का अभाव। व्यतिक्रम। अव्यवस्था।

अनियाँ वि० पैनी। नुकीली। नोकदार। अनीदार।

अनियाई पुं० दे० 'अनिआई'।

अनियाउ पुं० अन्याय। अनीति।

अनियार—अनियारा—अनियारो—अनियारौ (अनि=नोक+आर) वि० नुकीला। कँटीला। तीक्ष्ण। धारदार।
उ०—अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वि० ५८८/२४४
उ०—जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम बान अनियारौ।
सूर० १०,३३३७/३५५

अनियास (अन्+आयास) क्रि०वि० दे० 'अनायास'।

अनिरुद्ध (अ+नि+रुद्ध) पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको उषा ब्याही थी।
वि० अबाध। जो रोका न जा सके। जिसका निरोध न हो सके।

अनिरुध पुं० दे० 'अनिरुद्ध'।
उ०—'सूर' प्रभु ठटी ज्यौं भयौ चाहै सु त्यौं, फाँसि करि कुँवर अनिरुध बाध्यौ।
सूर० १०/४१९७/५४६

अनिल पुं० १. वायु। पवन। हवा।
उ०—जल, धर, अनिल, अनल, नभ छाया।
सूर० १०/३/२०६
२. पवन देवता।
३. अष्ट वसुओं में से एक।
—कुमार पुं० पवन-पुत्र हनुमान्।

अनिवार—अनिवारौ (अ+निवार्य) वि० जो निवारण के योग्य न हो। जो हटे नहीं। अटल। अपरिहार्य। आवश्यक। दे० 'अनिवार्य'।
उ०—अति सूधौ टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार।
रसखान पृ० ६

अनिवार्य वि० दे० 'अनिवार'।

अनिष्ट (अन्+इष्ट) वि० जो इष्ट न हो। अनभिलषित।
पुं० अमंगल। अहित। बुराई। खराबी। हानि।
उ०—इष्ट अर्थ उद्यमहि ते जहँ अनिष्ट ह्वै जाय।
म० २२६/३३७

अनी[1] (अणी) स्त्री० १. नोक। सिरा। कोर। अग्रभाग।
उ०—मारि तुरकान घोर बल्लम की अनी सों।
भू० ४६६/२२०
२. चूचुक। स्तनाग्र भाग।
उ०—निकसि लसी हैं अनी जुगल उरोज की।
प० ४६/३१६
—दार वि० नोंकदार। नुकीला।

अनी[2] स्त्री० समूह। झुण्ड। दल। सेना।
उ०—वैसैंहि मालती मंद भई, फिरि वैसैं अनंग-अनी उठि दौरी। श्रृं० २४६/७०८

अनीकिनी (अनीक+इनी) स्त्री० १. अक्षौहिणी सेना का दसवाँ भाग जिसमें २१८७ हाथी, ५६६१ घोड़े और १०६३५ पैदल होते हैं।
२. कमलिनी। पद्मिनी।

अनीठ (अन्+इष्ट) वि० १. अनिष्ट, जो इष्ट न हो। अप्रिय। अवांछित।

२. बुरा। खराब।

उ०—हा हा बलाइ ल्यों पीठ दै बैठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी। दे०

अनीठि (अन्+इष्टि) स्त्री० १. अनिच्छा २. बुराई। ३. क्रोध।

अनीति—अनीत—अनीती (अ+नीति) स्त्री० १. नीति-विरोध। अन्याय।

उ०—विषय-विष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति। सूर० वि० १०६/२६

२. अँधेर। अत्याचार।

उ०—जिम्में उनके, माँगैं, तह तौ बड़ी अनीति। सूर० वि० १४३/३६

अनीर (अ+नीर) वि० नीर-रहित। निर्जल। सूखा। पुं० रेगिस्तान। मरुस्थल।

अनीस (अन्+ईश) वि० १. ईश्वर रहित।

२. जिसका कोई ईश या स्वामी न हो फलतः अनाथ या दीन।

३. जो ईश्वर को न मानता हो। नास्तिक।

४. जो किसी के नियन्त्रण या वश में न हो।

५. अशक्त। शक्तिहीन। निर्बल।

६. असमर्थ।

पुं० विष्णु का एक नाम।

अनीसर (अन्+ईश्वर) वि० अनीश्वर। ईश्वर को न मानने वाला। नास्तिक।

अनीह (अन्+ईहा) वि० १. इच्छारहित। निस्पृह।

उ०—अज-अनीह-अबिरुद्ध-एक रस, यहै अधिक ये अवतारी। सूर० १०/१७१/२५८

२. निश्चेष्ट। आलसी। उदासीन।

अनीहा (अन्+ईहा) स्त्री० १. अनिच्छा। निष्कामता। निस्पृहता।

२. निश्चेष्टता। उदासीनता। आलस्य।

अनु[१] उप० शब्दों के पहले लगकर यह उपसर्ग इन अर्थों का संयोग करता है—

१. पीछे। २. सदृश। ३. साथ। ४. प्रत्येक ५. बारंबार।

अनु[२] पुं० अणु।

उ०—मिल्यो चंद्रकनि चंपकनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ। भि० II, पृ० १४१

अनु[३] अव्य० हाँ। ठीक है।

अनुआँ पुं० मिथ्या दोषारोपण। मिथ्या अभियोग।

अनुकंपा (अनु+कम्पा) स्त्री० १. दया। कृपा। अनुग्रह।

२. सहानुभूति।

उ०—मया, दया, किरपा, घृणा, अनुकंपा अनुक्रोस। नं० १८५/८५

अनुक पुं० कामी। कामुक। विषयी।

वि० १. लालची। २. काम-वासना-ग्रस्त।

अनुकरन वि० १. अनुकरण। देखादेखी आचरण। नकल।

उ०—जहँ कहनावति अनुकरन लोक उक्ति मतिराम। म० ३६६/३५६

२. पीछे आने वाला। जो पीछे उत्पन्न हो।

अनुकरनीय वि० अनुकरणीय। अनुकरण करने योग्य।

अनुकारी वि० १. अनुकरण करने वाला। नकल करने वाला। २. आज्ञाकारी, आज्ञापालक।

अनुकूल वि० १. पक्ष में रहने वाला। समर्थक। सहायक। हितकर।

२. प्रसन्न।

उ०—भए अनुकूल हरि, दियौ तिहि, तुरत बर, जगत करि राजपद अटल पायौ। सूर० ४/१०/११६

३. अनुरूप।

उ०—सुरति संगर साजि, स्रवति जस रस लाजि, अंग अनुकूल रतिराज रन जै री। सूर० १०/२४५३/१४०

पुं० वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त हो।

उ०—दच्छिन-नाइक एक तुही भुवि-भामिनि कौं अनुकूल ह्वै भावै। भू० १६७/१६०

क्रि०वि० ओर। तरफ।

अक० १ पक्ष में होना। हितकर होना।

२. प्रसन्न होना।

उ०—हार चीर मान्यौ तरु फूल्यौ। निरखि स्याम आपुन अनुकूल्यौ। सूर० १०/७६६/४२७

—यो वि० अनुकूल हुआ।

उ०—झूठेहू रूठि रह्यौ हँसि रोयौ, रिसान्यौ, खिसायौ खरो अनुकूल्यौ। दे० I, २/३४

अनुकूला स्त्री० एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, तगण, नगण और दो गुरु होते हैं।

उ०—भगन तगन पुनि नगन दै द्वै गुरु अंतहि देखि। अनुकूला यह छंद है ग्यारह अक्षर लेखि। के० II, २७/४३६

अनुकृति स्त्री० १. नकल। अनुकरण। समान आचरण। देखा-देखी कार्य।

२. वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना, वर्णन किया जाय।

अनुक्त वि० जो कहा न गया हो। अकथित। अवर्णित।

—**विषया** पुं० बिना कहा कथानक। अकथित बात।

उ०—पुनि अनुक्तविषया कही दूजी जानहु ताहि। प० ५५/३६

अनुक्रम वि० क्रमबद्ध। सिल-सिलेबार। तारतम्य में।

उ०—प्रकृति पुरुष, श्रीपति, सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई। सूर० १०/२६१८/२१२

पुं० क्रम। सिलसिला। तरतीब।

अनुक्रोस पुं० दया। अनुकंपा।

उ०—मया, दया, किरणा, घृणा, अनुकंपा अनुक्रोस। नं० १८५/८५

अनुग वि० पीछे चलने वाला। अनुगामी। अनुयायी।

उ०—कीनास जुषित हरु अनुग दानव जम कीनास। नं० ३५/५८

पुं० अनुचर। नौकर। सेवक।

अनुगत (अनु+गत) वि० दे० 'अनुगत'।

अनुगनना (अनु+गणना) स्त्री० अर्थालंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु में पहले से विद्यमान गुण का अन्य वस्तु की संगति या संसर्ग से बढ़ जाना दिखलाया जाय।

उ०—आदि अंत भरि बरनियै, सो क्रम केशवदास अनुगनना सो कहत हैं जिनके बुद्धि प्रकाश। के० I, १/११

अनुगमन (अनु+गमन) पुं० १. पीछे चलना। अनु-सरण।

२. विधवा का मृत पति के साथ जल मरना।

अनुगामी (अनु+गामी) वि० १. पीछे चलने वाला।
२. आज्ञाकारी। ३. सहचर।

उ०—तनु अनुगामी मनि मै भँके भीतर सुरुच सकेरत। सा०—३

अनुगुन (अनु+गुण) पुं० एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के संसर्ग से बढ़ना दिखाया जाय।

उ०—अनुगुन तासों कहत हैं जे कवि बुद्धि उतंग। म० ३३६/३५५

वि० १. सदृश। समान प्रकृति वाला।
२. अनुकूल।

अनुगौन पुं० दे० 'अनुगमन'।

उ०—देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन। भा० I, पृ० २२०

अनुग्या (अनु+ज्ञा) स्त्री० १. आज्ञा। आदेश। हुक्म।
२. अनुमति।
३. एक काव्यालंकार जिसमें दूषित वस्तु में कोई गुण देखकर उसके पाने की इच्छा का वर्णन किया जाय।

अनुग्रह (अनु+ग्रह) पुं० १. कृपा। दया। अनुकंपा।

उ०—तब करि अनुग्रह बर दियौ, जब बरष जुव-तिनि तप कियौ। सूर० १०/१०७२/४६६

२. वरदान।

उ०—रिषि अंगिरा साप मोहिं दीन्हौ, भयौ अनुग्रह सोइ। सूर० १०/११८४/५३८

अनुघात पुं० संहार। विनाश।

—**न** वि० संहार करने वाला।

उ०—काली-दवन केसि-कर-पातन।
अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन॥ सूर० १०/१५६६/४७५

अनुच [अन्+उच्च] वि० जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो। निम्न।

उ०—इहिं विधि उच्च-अनुच तन धरि-धरि, देस-बिदेस बिचरतौ। सूर० वि० २०३/५६

अनुचर (अनु+चर) पुं० [स्त्री० अनुचरी] १. पीछे चलने वाला। अनुयायी। अनुगामी।

२. दास। सेवक।

उ०—कमल-नयन, घन-स्याम-मनोहर, अनुचर भयौ रहौं। सूर० वि० १६१/४४

३. सहचर। साथी।

अनुचित (अन्+उचित) वि० अयुक्त। अनुपयुक्त। निन्द्य।

उ०—अनुचित कर्महि तें जहाँ काज सुरस को भाव। प० २६२/६८

उ०—अनुचित चित धरि उचित लहा लहौ। घ० २०६/१५३

अनुचिष्ट—अनुच्छिष्ट (अन्+उच्छिष्ट) वि० जो उच्छिष्ट या जूठा न हो। पवित्र। शुद्ध। निर्दोष।

अनुछिन (अनु+क्षण) वि० अनुक्षण। प्रत्येक क्षण। लगातार।

उ०—'हरीचंद' ते महामूढ़ जे इनहिं न अनुछिन ध्यावैं। भा० II, पृ० ८०

अनुज [अनु+ज] वि० जो पीछे उत्पन्न हुआ हो।
पुं० छोटा भाई।
उ०—सुनी अनुज, इहिं बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी। सूर० ६/६३/१७०

अनुजा (अनुज+आ) स्त्री० छोटी बहन।
उ०—पुत्रवधू तनुजा अनुजा सुख पावहिं जो कछु होय फलिछ्छा। बो०, पृ० ६६

अनुजीवी (अनु+जीवी) वि० १. पराधीन।
२. आश्रित।
पुं० दास। सेवक। नौकर।

अनुज्ञा (अनु+ज्ञा) स्त्री० दे० 'अनुग्या'।

अनुट्ठा वि० अनूठा। अपूर्व। अनुपम।

अनुतम (अन्+उत्तम) पुं० कवि-कोटि का दूसरा भेद। अनुतम कवि वह है जो सदैव स्वार्थ साधन में लगा रहता है अर्थात् प्रशंसायुक्त मानव चरित्र कहता है और उनसे धन प्राप्त कर चैन करता है।

अनुताप (अनु+ताप) पुं० १. ताप। जलन।
२. दुःख। रंज। ३. पछतावा। पश्चात्ताप।

अनुत्तम (अन्+उत्तम) वि० १. जिससे उत्तम दूसरा न हो। सर्वोत्तम।
२. जो सबसे अच्छा न हो। घटिया।

अनुत्तर [अन्+उत्तर] वि० १. निरुत्तर। मौन।

अनुदय (अनु+उदय) पुं० अनूदय। सूर्योदय से पहले का काल। भोर, विहान।

अनुदित[1] वि० १. अकथित। जो कहा न गया हो।

अनुदित[2] वि० २. जो उदित न हुआ हो।
उ०—कैसैं जियैं बदन बिनु देखे, अनुदित छिन अनुरागी। सूर० १०/२९७०/२७६

अनुदिन (अनु+दिन) क्रि०वि० नित्यप्रति। प्रतिदिन। हर दिन।
उ०—अनुदिन राम राम रटि लाए मोहि दीनबंधु देखत ही केती बिपदानि में। भि० I, ५१७/७६

अनुनय (अनु+नय) पुं० १. विनय। प्रार्थना।
उ०—अनुनय करत बिबस बोलत हैं, दै परिरंभन दान। सूर० १०/२५७८/१६४
२. मनाना। अनुकूल करने की चेष्टा।

अनुप (अनु+उपमा) वि० दे० 'अनुपम'।

अनुपम (अन्+उपमा) वि० उपमा रहित। बेजोड़। बेमिसाल।
उ०—सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई। सूर० १०/६१६/३८४

अनुपलब्धि (अन्+उपलब्धि) स्त्री० १. अप्राप्ति। न मिलना।
२. जानकारी न होना।
उ०—सबद 'रु अर्थापत्ति पुनि अनुपलब्धि चित देहु। प० २८४/६७

अनुपयोग (अन्+उपयोग) पुं० १. उपयोग या व्यवहार का अभाव। काम में न लाना।
२. अनुचित रूप से किया जाने वाला उपयोग।

अनुपात (अनु+पात) पुं० १. गणित की त्रैराशिक क्रिया।
२. सम। समान। समता भाव। समानता के साथ बराबर सम्बन्ध।

अनुपातक (अनु+पातक) पुं० ब्रह्महत्या के समान माने जाने वाले पाप।

अनुपान (अनु+पान) पुं० औषधि के साथ या उसके ऊपर से खाई जाने वाली वस्तु।

अनुप्राशन पुं० खाना। भक्षण।
(अनु+प्राशन) दे० 'अन्नप्राशन' भी।

अनुप्रास पुं० एक शब्दालंकार जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर बार-बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण होता है। वर्ण-मैत्री।

अनुवाद (अनु+वाद) पुं० १. अनुवाद। २. अफवाह।
उ०—ताहि तू बताई जोई बाँह दै उसीसैं सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं। गं० २६४/७६

अनुवृत्ति (अनु+वृत्ति) स्त्री० १. पहले की बात से सम्बन्ध जुड़ जाना।
उ०—विकृत वस्तु में आनि पुनि होत जहीं अनुवृत्ति। भू० २६६/१७९
२. अनुकूल वृत्ति। अनुकूल आचरण।

अनुभव (अनु+भव) पुं० १. प्रत्यक्ष ज्ञान। स्व-परीक्षण जन्य-ज्ञान।
उ०—जिनहीं तें रति भाव को चित में अनुभव होत। प० १६६/३९२
सक० अनुभव करना। बोध करना।
उ०—पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँदघरनि। सूर० १०/१०६/२४३

अनुभवी [अनु+भव+ई] वि० अनुभव रखने वाला। तजुरबेकार।

उ०—अनुभवी जानही बिना अनुभव कहा, प्रिया जाको नहीं चित्त चोरें ।
सूर० १/२२२/६०

अनुभाव (अनु+भाव) पुं० १. प्रभाव । महिमा । बड़ाई ।
२. काव्य में रस के चार अंगों में से एक । वे गुण और क्रियायें जिनसे रस का बोध हो । चित्त का भाव प्रकाश करने वाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टायें । कायिक चेष्टायें ।
उ०—बर बिभाव अनुभाव अरु संचारिन सों जल ।
प० २८७/६८

अनुभावक (अनु+भावक) वि० प्रतीति या अनुभूति कराने वाला ।

अनुभूत (अनु+भूत) वि० १. जिसका अनुभव हुआ हो । २. स्वयं परीक्षित ।
उ०—बदत नृप दूत अनुभूत उर भीरुता, सुनत हरि सूर सारथि बुलायौ ।
सूर० १०/४२१३/५५३

अनुभूति (अनु+भूति) स्त्री० अनुभव । परिज्ञान । किसी भाव से भावित होना ।

अनुभेद (अनु+भेद) पुं० भेद । उपभेद । सूक्ष्म विभेद ।
उ०—कौन बड़ौ को छोट, भेद अनुभेद न जानैं ।
सूर० १०/५८६/३७०

अनुभै (अनु+भाव) पुं० दे० 'अनुभाव' ।
उ०—कहि थिर भाव विभाव पुनि अनुभै अरु चर भाव ।
रस० ६२५/१७४

अनुभौ (अनु+भव>भौ) पुं० अनुभव ।
उ०—हम मतिहीन अजान अल्प बुधि, तुम अनुभौ पद ल्याए ।
सूर० १०/३७६१/४४८

अनुमत (अनु+मत) वि० सम्मत । स्वीकृत । अंगीकृत ।

अनुमति (अनु+मति) स्त्री० १. आज्ञा । हुक्म । आदेश । २. सम्मति । इजाजत । ३. चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा ।

अनुमती स्त्री० नदी विशेष ।
उ०—सिनिवाली रजनी कुहू नंदा राका जानि । सरस्वती अरु अनुमती, सातौ नदी बखानि ।
के० I, २४/६६०

अनुमरण (अनु+मरण) पुं० पश्चात मरण । विधवा का पति के साथ चितारोहण ।

अनुमान (अनु+मान) पुं० १. अंदाज । अटकल ।
उ०—नव-मनि-मुकुट-प्रभा अति उद्दित, चित्त-चकित अनुमान न पावति । सूर० १०/७/२१३
२. विचार । भावना । तर्क करके किसी वस्तु का निर्द्धारण करना ।
उ०—बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किएँ नीठि ठहराइ । सूर० वि०/२०४/५६
३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदों में से एक ।
उ०—कहि प्रतच्छ अनुमान पुनि पुनि उपमान बखान । प० २८३/६७
४. एक अलंकार जिसमें अटकल के आधार पर कोई बात कही जाय ।
सक० १. अनुमान करना । अंदाज लगाना ।
उ०—'सूर' सुभ्रुव, नासिका मनोहर, अनुमानत अनुराग अमोल । सूर० १०/१७६३/१०
२. समझना ।
उ०—राख्यो चाहै गुपत रस, उचित पंथ अनुमानि ।
कृ० ११२/२६

अनुमेय (अनु+मेय) वि० अनुमान करने योग्य ।

अनुमोद पुं० १. प्रसन्नता । सुख ।
(अनु+मोद) २. समर्थन ।
उ०—अंतबासिन सुनतहीं, तन मन पायौ मोद । देखि परस्पर तब कर्‌यौ, मेरो अति अनुमोद ॥ के० III, २६/७४७

अनुमोदन (अनु+मोदन) पुं० १. प्रसन्नता का प्रकाशन । २. समर्थन ।

अनुयायी (अनु+यायी) वि० १. अनुगामी । पीछे चलने वाला । अनुकरण करने वाला ।

अनुरंजन (अनु+रंजन) पुं० १. अनुराग । आसक्ति । प्रीति ।
२. दिलबहलाव । मनबहलाव । मनचाहा काम ।
उ०—तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन, निज प्रमाद बिहाइ । सत्य० ११/१८१
३. प्रसन्न या तुष्ट करना ।
४. रँगना ।
वि० मन बहलाने वाला । प्रसन्न करने वाला ।
उ०—अंजन अनूप, मुख मंजन सरूप अनुरंजन सुगंध, दुखभंजन सलोने कै । दे० I, ५८/५७

अनुरक्त (अनु+रक्त) वि० १. अनुराग युक्त । प्रेम युक्त । २. लीन । ३. आसक्त ।
उ०—अंबरीष राजा हरि-भक्त । रहै सदा हरि-पद अनुरक्त ॥
सूर० ६/५/१५३

—इ (अनु+रक्ति) स्त्री० आसक्ति । प्रीति । रति । भक्ति ।
उ०—भक्ति सात्त्विकी, चाहत मुक्ति । रजोगुनी, धन-कटुंबऽनुराति ॥
सूर० ३/३६४/११०

अनुरत (अनु+रत) वि० लीन । आसक्त ।
उ०—चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना-चरित-रसाल । सूर० वि०/१८६/५२

अनुराग (अनु+राग) पुं० १. प्रेम । प्रीति । आसक्ति । प्यार । मुहब्बत ।
उ०—तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु । बि० २०१/८६
२. भक्तिभाव । ३. लाल रंग ।
सक० १. प्रेम करना ।
उ०—स्याम विमुख नर-नारि बृथा सब, कैसे मन इन सौं अनुरागत । सूर० १०/१६३३/६४६
२. स्वीकार करना ।
उ०—इस्क दिलदार सों लागा । हमन दिलदर्द अनुरागा । बो० पृ० ६३
अक० प्रसन्न होना ।
उ०—झपकीहैं पलनि पिया के पीकलीक लखि झुकि झहराइहूँ न नैक अनुरागे त्यों ।
प० १५६/११३

अनुरागिनी (अनु+रागिनी) स्त्री० अनुराग करने वाली । प्रेम करने वाली ।
उ०—अनुरागिनि की रीति यह गनै न ठौर कुठौर ।
भि० I, १२१/१६

अनुराध (अनु+राध) पुं० विनती । विनय । आराधन । प्रार्थना ।
उ०—धन्य-धन्य कहि कहि जुवतिनि कौं आपु करत अनुराध । सूर० १०/१०३३/४८६
सक० विनय करना । मनाना । याचना करना ।
उ०—मैं आजु तुम्हैं गहि बाँधौं । हा-हा करि-करि अनुराधौं । सूर० १०/१८३/२६१
अनुराधौ—अनुराध्यौ भू०कृ० ।

अनुराधा स्त्री० २७ नक्षत्रों में १७वाँ नक्षत्र । यह सात तारों के मिलने से सर्पाकार दिखाई देता है । यह नक्षत्र बड़ा शुभ और मांगलिक माना जाता है ।

अनुरूप (अनु+रूप) वि० १. सदृश । समान । सरीखा । तुल्य । समान रूपधारी ।
२. योग्य । अनुकूल । उपयुक्त ।
उ०—गुन अनुरूप समान भेषता, मिले दुआदस बानी । सूर० १०/३६२७/३६६
सक० १. समान या सदृश बनाना ।
२. विचारना । सोचना ।
उ०—मैं निज मन यह अनुरूपी । तू मोहन प्रेम सुरूपी । भि० I, ११८/१६४

अनुरूपक (अनु+रूपक) पुं० प्रतिमा । प्रतिमूर्ति ।
उ०—सोभिजिति दंतरुचि सुभ्रउर आनिये । सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये ।
के० II, ५१/२५६
उ०—गति आनन लोचन पाइनि के अनुरूपक से मन मानि लिये । के० II, २२/२६६

अनुरोध (अनु+रोध) पुं० १. रुकावट । बाधा ।
उ०—सोधु बिनु, अनुरोध ऋतु के बोध बिहित उपाउ । करत है सोइ समय साधन फलति बनत बनाउ । तु० ३७३
२. प्रेरणा । उत्तेजना ।
३. आग्रह । दबाव । विनयपूर्वक किसी बात के लिए हठ ।
४. इच्छापूर्ति करना ।

अनुलाप (अनु+लाप) पुं० १. बातचीत । वार्तालाप ।
२. पुनरुक्ति । किसी बात को प्रकारांतर से बार-बार कहना ।

अनुलेपन (अनु+लेपन) पुं० १. किसी तरल वस्तु की तह चढ़ाना । लेपन ।
२. सुगंधित द्रव्यों या औषधों का मर्दन । उबटन करना । बटना लगाना ।
३. लीपना । पोतना ।

अनुलोम (अनु+लोम) पुं० १. ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम । उतार का सिलसिला ।
२. उत्तम से अधम की ओर आता हुआ श्रेणीक्रम ।
३. संगीत में सुरों का उतार । अवरोही ।
४. प्रतिलोम का उलटा या विलोम ।
५. जाति विशेष ।
—ज पुं० ब्राह्मण के औरस और क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न सन्तान ।
—विवाह पुं० उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से नीचे वर्ण की स्त्री से विवाह ।

अनुवरती (अनु+वर्ती) वि० अनुसरण करने वाला । अनुसार बरताव करने वाला । अनुयायी । अनुगामी । पैरवी करने वाला ।

अनुवा[1] पुं० १. कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खींचते हैं ।

२. पानी निकालने के लिए खोदा हुआ गड्डा ।

३. ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या पौरी के द्वारा खेत सींचने के लिए पानी ऊपर फेंकते हैं ।

अनुवा² आनने वाला । लाने वाला ।

उ०—ताहि तू बताइ जोई बाँह दै उसीसै सोई अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं । गं० २६४/७२

अनुसयना—अनुसयाना (अनु+शयना) स्त्री० अनुशयना । परकीया नायिका का एक भेद । वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने का स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो ।

उ०—केलि करे जहँ कंत सों सो थल मिट्यो निहारि । कहि अनुसयना तासु सों सोच करे बर नारि । म० ८४/२१८

अनुसयनिका (अनु+शयनिका) स्त्री० दे० 'अनुसयना' ।

उ०—स्वयंदूति अनुसयनिका, गुह्यादि के विचार । कृ० ३०/१०

अनुसर (अनु+सर) सक० १. पीछे चलना । साथ साथ चलना ।

उ०—तुम बिनु प्रभु को ऐसी करै । जो भक्तनि कैं बस अनुसरै । सूर० १/२७७/७४

२. अनुकरण करना । नकल करना ।

उ०—पतित उद्धार किए तुम, हौं तिनको अनुसरतौ । सूर० वि०/२०३/५६

३. अनुकूल आचरण करना । (आज्ञा) पालन करना ।

उ०—राजा सेब भली बिधि करै । दंपति आयसु सब अनुसरै । सूर० १/२८३/७५

अनुसरत व०कृ० । अनुसरी, अनुसरई, अनुसर्यौ भू०कृ० । अनुसरिबो क्रि०सं० ।

अनुसार (अनु+सार) क्रि०वि० १. अनुकूल । मुआफिक ।

उ०—सुकदेव कह्यौ जाहि परकार सूर कह्यौ ताही अनुसार । सूर० ३/६/१०७

२. सदृश । समान । तुल्य ।

उ०—बरनि सुनावौं ता अनुसार । सूत कह्यौ जैसे परकार । सूर० १/२८४/७५

अक० १. अनुसरण करना । अनुकूल आचरण करना ।

उ०—करै पद्माकर चहौं जो बरदान तौ लौं कैधौ बरदानन के गान अनुसारती । प० २२/२६०

२. आचरण करना ।

३. कोई कार्य करना ।

अनुसारत, अनुसारति व०कृ० ।

अनुसारयौ, अनुसारी भू०कृ० ।

अनुसारिबौ क्रि०सं० ।

यौ० १. उच्चारण करना । कहना ।

उ०—तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी । सूर० ७/२/१३८

२. आरम्भ करना ।

उ०—सूर इन्द्र पूजा अनुसारी । तुरत करी सब भोग सँवारी । सूर० १०/८६०/४५२

अनुसारिनी (अनु+सार+इनी) वि० अनुकूल चलने वाली । अनुसरण करने वाली ।

अनुसारी वि० अनुसरण करने वाला ।

उ०—सूरदास सम, रूप-नाम-गुन-अन्तर अनुचर अनुसारी । सूर० १०/१७१/२५८

अनुसाल [अनु+साल] पुं० वेदना । पीड़ा ।

अनुसासन (अनु+शासन) पुं० आदेश । आज्ञा । नियमपालन ।

उ०—औरनि कौं जम कैं अनुसासन, किंकर कोटिक धावै । सूर० १/१६७/५४

अनुसूया—अनुसुया स्त्री० १. अत्रि मुनि की स्त्री ।

२. सहेट स्थल (संकेत स्थल) नष्ट हो जाने से दुखी परकीया नायिका ।

उ०—अनुसूया के भेद त्रय, होत ग्रंथ परमान । कृ० १५८/३८

अनुसैना (अनु+शयना) स्त्री० दे० 'अनुसयना' ।

अनुहर (अनु+हर) सक० अनुकरण करना । नकल करना ।

अनुहरण (अनु+हरण) पुं० अनुकरण । अनुकूल आचरण ।

अनुहरत (अनु+हरत) वि० १. अनुसार । अनुरूप । समान ।

उ०—दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार । स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार । तु०, १५०

२. अनुकूल । योग्य ।

उ०—मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि सूर० १०/१०६/२४२

अनुहरिया (अनु+हरिया) वि० समान । तुल्य । स्त्री० आकृति । मुखानी ।

अनुहार (अनु+हार) वि० सदृश । तुल्य । समान । एक रूप ।

उ०—हरि बल सोभित इहिं अनुहार।
सूर० १०/३०३५/२८६

स्त्री० १. रूप। आकृति। चेहरा-मोहरा। मुखानी
२. रूप-भेद। प्रकार।
उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ़ गनि, तिनके तीनि बिचार
एक एक की जानिए चार चार अनुहार।।
के०

सक० तुल्य करना। सदृश करना। समान करना
उ०—देखि री हरि के चंचल तारे, कमल मीन कौं
कहँ ऐती छबि, खंजन दृगन जात अनुहारे।
सूर० १०/१७६७/११

अनुहारक (अनु+हारक) पुं० अनुकरण करने वाला। नकल करने वाला। सदृश कर्म करने वाला।

अनुहारि—अनुहारी (अनु+हारी) वि० १. समान। सदृश। तुल्य।
उ०—गिरि-समान तन अगम अति, पन्नग की
अनुहारि। सूर० १०/४३१/३२७
२. योग्य। उपयुक्त।
स्त्री० १. आकृति। रूप। प्रतिच्छवि।
उ०—सूर सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि।
सूर० १०/११८/२४५
२. भेद। प्रकार।
उ०—बहु मिष्टान्न बहुत बिधि भोजन ब्यंजन
अनुहारि। सूर०
क्रि०वि० अनुसार।
उ०—पति समदेव न दूसरो, बधू हिऐं अनुहारि।
कु० ६७/१६

अनुहारो—अनुहारौ वि० समान। सदृश।
दे० 'अनुशरि' भी।
उ०—गति मराल, केहरि कटि, कदली जुगल जंघ
अनुहारौ। सूर० १०/२७५१/३

अनुहोरैं वि० समान। तुल्य। सदृश।
उ०—नंददास प्रभु रस बरषत जहाँ नव धन दामिन
के अनुहोरैं। नं० १६५/३२६

अनूज्ञा (अनु+ज्ञा) स्त्री० १. दे० 'अनुग्या'।
२. एक अलंकार जिसमें दूषित वस्तु पाने की इच्छा उसकी कोई विशेषता देखकर हो।
उ०—करत अनूज्ञा भूषन मोको सूर स्याम चित
आवै। सा० ६६

अनूठा वि० [स्त्री० अनूठि, अनूठी] १. अपूर्व। अनोखा। विचित्र। विलक्षण। अद्‌भुत।
२. सुन्दर। अच्छा। बढ़िया।

अनठो—अनूठौ वि० दे० 'अनूठा'।
उ०—देव मोहि सिखैं, तहै कौन सो अनूठो बिषै,
जाहि चित माहि चाहि ऐसो बहक्यो है।
दे० १/५/३४

अनूढ़ (अन्+ऊढ़ा) स्त्री० दे० 'अनूढ़ा'।
उ०—परकीया के भेद द्वै, ऊढ़ा और अनूढ़।
कु० २८/६

अनूढ़ा स्त्री० वह नायिका जो बिना ब्याहे ही किसी से प्रेम करती है।
उ०—दोय भेद ऊढ़ा कहत बहुरि अनूढ़ा मान।।
म० ५८/२१३

अनूतर—अनूतरी (अनु+उत्तर) वि० १. निरुत्तर। कायल। २. चुपचाप बैठने वाला। मौन धारण करने वाला।
उ०—बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी, पीठि
दै प्रबीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।
प० १०२/१०१

अनूदय (अनु+उदय) पुं० सूर्योदय। प्रातःकाल।
उ०—तेह तरेरे अनूदय तैं, सु तौ साँझ भई पिय
आपके लेखैं। शृं० ८७/२३६

अनून (अ+न्यून) वि० १. अखंड। पूर्ण। पूरा। समग्र।
उ०—आवत बढ़्यो न जग, जातहू घट्यो न कहू
देव को विलास, देव ऐसोई अनून तो।
दे० १/४/२६
२. अन्यून। अधिक। ज्यादा। बहुत।
३. पूर्ण अधिकारयुक्त।

अनूनो—अनूनौं वि० दे० 'अनून'।

अनूप[1] पुं० वह स्थान जहाँ जल प्रचुर हो। (अनु+आप)

अनूप[2] (अनु+उपमा) वि० [स्त्री० अनूपी] अनुपम। जिसकी उपमा न हो। अद्वितीय। बेजोड़।
उ०—हरि जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम
अनूप। सूर० वि०/४०/१२
—कारी वि० अनुपम करने वाला। असमान करने वाला।

अनूपम वि० दे० 'अनुपम'।
उ०—तेरी निकाई निहारि छक, छबि हू को अनूपम
रूप कढ़्यो है। घ० क० २३५/१६८

अनूह (अन+ऊह) वि० १. जिस पर विचार न हो सके। अतर्क्य। २. विचारहीन। लापरवाह। ३. निश्चेष्ट। चेष्टारहित।

अनृत (अ+ऋत) वि० झूठ। असत्य।

उ०—मिथ्याध्यवसिति अनृत–सिधि–हित भनि मिथ्या आन। प० २१५/५६

अनेक (अन+एक) वि० एक से अधिक। बहुत। ज्यादा। असंख्य। अनगिनत।

उ०—उपजत अर्थ अनेक जहँ स्लेष कहावै सोइ। प० १०२/४५

अनेकधा (अन्+एकधा) क्रि०वि० कई प्रकार से। कई तरह से।

अनेकलोचन (अनेक+लोचन) पुं० १. इन्द्र। २. शिव। ३. विराट् पुरुष।

अनेग[1] (अन्+एक) वि० १. दे० 'अनेक'।

उ०—रोकि रहे द्वार नेग माँगन अनेग नेगी, बोलत न खाल व्याल खोलव खहिनि के। देव

अनेग[2] (अ+नेग) २. बिना नेग के।

अनेम (अ+नियम) पुं० दे० 'अनियम'।

उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम ठौर जु अनेम। भि० II/२३४

अनेरो—अनेरौ (अन्+ऋत) वि० [स्त्री० अनेरी]

१. झूठ। व्यर्थ। निष्प्रयोजन।

उ०—रे रे चपल, विरूप, ढीठ, तू बोलत वचन अनेरौ। सूर० ६/१३२/१६४

२. झूठा। अन्यायी। दुष्ट। निकम्मा।

उ०—अब लौं मैं करी कानि, सही दूध दही की हानि, अजहूँ जिय जानि मानि, कान्ह है अनेरौ। सूर० १०/२७६/२८५

३. स्वच्छंद। निरकुंश।

४. विलक्षण।

उ०—रूप-छकी, तितही थिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी। घ० ४१५/२३६

५. दूर। असमीपस्थ। जो निकट न हो।

उ०—प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान। घ० १०३/६६

क्रि०वि० व्यर्थ। झूठ-मूठ। निष्प्रयोजन।

अनेह (अ+स्नेह) पुं० अप्रेम। अप्रीति। विरक्ति।

अनैस—अनैसा (अन्+इष्ट) पुं० [स्त्री० अनैसी] उनिष्ट। बुराई। अहित।

वि० जो इष्ट न हो। अप्रिय। बुरा। खराब।

अक० बुरा मानना। रूठना।

अनैसे क्रि०वि० अनिच्छा पूर्वक। बुरे भाव से। बुरी तरह से।

उ०—छोरि छोरि बाँधौं पाग आरस सों आरसी लै अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हो। अज्ञात

अनैसो वि० १. दे० 'अनैस'।

पुं० २. अंदेशा। आशंका। डर।

उ०—औरनि अनैसो लगै ही तौ ऐसी चाहती जो। भि० I, १५८/१२३

अनैहो (अनेस=अन्+इष्ट) पुं० १. उत्पात। उपद्रव। २. दुष्टता।

अनोकह पुं० १. जो अपना स्थान न छोड़े। २. पेड़ या वृक्ष।

उ०—शाखी, विटपी, अनोकह, कुज द्रुम पादप होइ दे० १६६/८६

वि० घर का परित्याग न करने वाला।

अनोखा वि० [स्त्री० अनोखी] १. अनूठा। निराला। विलक्षण। विचित्र। अद्भुत।

२. नूतन। नया।

३. सुन्दर। खूबसूरत।

अनोखो—अनोखौ वि० दे० 'अनोखा'।

उ०—सूर स्याम कौं हटकि न राखैं तैं ही पूत अनोखौ जायो। सूर० १०/३३१/२६८

प्रिय। सुन्दर।

उ०—काकैं नहीं अनोखौ ढोटा, किहिं न कठिन करि जायौ। सूर १०/३३६/३००

अनोट—अनौट पुं० अनवट। पैर के अँगूठे में पहना जाने वाला आभूषण।

उ०—देखि करोट सु ऐंचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी। भि० I, ६६/१०५

अनोदक (अन्न+उदक) पुं० अन्न और जल।

उ०—वार-विलासिनी सों मिलि पीवत मद्य, अनोदक के व्रत पाएँ। के० III, २०/६६४

अनोहैं वि० अनोखे। अद्भुत।

उ०—खलभल देखि कह्यो आयो उत इत सबै सबैई बचाए चाव आपने अनोहैं री। ठा० ६/६३

अनौखो—अनौखौ वि० [स्त्री० अनौखी] दे० 'अनोखा'

अनौत वि० अनिमन्त्रित। बिन बुलाया।

अनौसर (अन्+अवसर) पुं० दे० 'अनवसर'।

—इ वि० बिना अवसर के। बेमौके।

अन्न[1] पुं० १. खाद्य पदार्थ। २. अनाज। नाज। धान्य। दाना। गल्ला। ३. पकाया हुआ अन्न। भात। ४. सूर्य। ५. विष्णु। ६. पृथ्वी। ७. प्राण। ८. जल।

—कूट पुं० १. अन्न का पहाड़ या ढेर।

उ०—गोवर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ। अन्नकूट ऐसो रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ। सूर १०/८३२/४३७

२. एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त यथारुचि किसी दिन (विशेषत: प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ) होता है। उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर भगवान का भोग लगाते हैं।

—जल पुं० १. दाना पानी। खाना पीना। खान पान।

उ०—ग्राम दए धाम दए उदिक अराम दए, अन्न जल दीन्हो जगती के जीवधारी कों।
प० ६६६/२२६

२. आबदाना। जीविका।

३. संयोग। इत्तफाक।

—पूर्णा स्त्री० अन्न की अधिष्ठात्री देवी। दुर्गा का एक रूप।

—प्राशन—परासन पुं० बच्चे को पहलीवार अन्न खिलाने की रस्म या संस्कार।

अन्न² (अन्य) वि० दूसरा। विरुद्ध। पर।

अन्नमयकोश (अन्नमय+कोश) पुं० वेदांत के अनुसार पंचकोशों में से प्रथम। अन्न से बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय। स्थूल शरीर।

उ०—अन्नमयकोश सुतौ पिंड है प्रकट यह प्रानमय कोश पंचबायु बखानियै। सुं० ४२६

अन्नाद¹ (अन्न+अद) पुं० १. वह जो सबको ग्रहण करे। ईश्वर।

२. विष्णु के सहस्त्र नामों में से एक।

अन्नाद² वि० अन्न खाने वाला। अन्नाहारी।

अन्नेकंडा पुं० बिना थापे हुए कंडे। वन से, जंगल से बीन कर लाये हुए कंडे।

अन्य वि० दूसरा। और कोई। भिन्न। गैर। पराया

—मार्गी वि० दूसरे मार्ग का। जो राम और कृष्ण का उपासक न हो।

—संभोग-दु:खिता स्त्री० वह नायिका जो पति में अन्य के साथ रति के चिह्न देखकर दु:खी हो।

अन्यत्र अव्य० और जगह। दूसरे स्थान पर। और कहीं।

उ०—ता नृप कौ परमातम मित्र। इकछिन रहत न सो अन्यत्र। सूर० ४/१२/१२१

अन्याइ (अ+न्याय) पुं० दे० 'अन्याय'।

उ०—पुत्र अन्याइ करैं बहुतेरै। पिता एक अवगुन नहि हेरै। सूर० ५/४/१२७

अन्याई (अ+न्यायी) स्त्री० न्याय-विरुद्ध व्यवहार। अनीति।

उ०—सेए नाहिं चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याई। सूर० वि०/१४७/४०

वि० दे० 'अन्यायी'।

उ०—औगुन की कछु सोच न संका। बड़ो दुष्ट अन्याई। सूर० वि०/१८६/५१

अन्याय पुं० १. न्याय के विरुद्ध आचरण। अनीति। बेइंसाफी।

उ०—हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित, नौबत द्वार बजावत। सूर वि०/१४१/३६

२. अंधेर। अन्यथाचार। जुल्म।

अन्यायी वि० अन्यथाचारी। अन्याय करने वाला। अनुचित कार्य करने वाला दुराचारी। जालिम अधर्मी। दुर्वृत्त। दुष्ट। न्यायरहित। अनीति करने वाला।

उ०—चोर, ढुंढ़, बटपार कहावत अपमारग अन्यायी ये। सूर १०/२२८५/१०८

अन्यारा (अ+न्यारा) वि० १. जो पृथक् न हो। जो अलग न हो। शामिल जुदा या विलग

२. अनोखा। निराला।

३. खूब। बहुत।

अन्यारी¹ (अनि+आरी) वि० १. जो पृथक् न हो। जो अलग न हो। २. अनूठी। निराली।

अन्यारी² तीक्ष्ण। तेज। नुकीली।

उ०—स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में। प० ६७/३२१

अन्याव (अ+न्याय) पुं० दे० 'अन्याय'।

उ०—करत अन्याव न बरजौं कबहूँ, अरु माखन की चोरी। सूर १०/३१७६/५

अन्याश्रय (अन्य+आश्रय) पुं० १. दूसरे का आश्रय। दूसरे का सहारा।

२. श्रीकृष्ण अथवा राम के अतिरिक्त अन्य देवता का आश्रय लेना, अन्य देव पूजन। पुष्टिमार्गीय आराध्यदेव श्रीनाथ जी अथवा भगवान कृष्ण से इतर किसी अन्य देवता या अवतार की उपासना करना।

अन्याश्रित (अन्य+आश्रित) वि० दूसरे पर आश्रित या अवलंबित।

अन्यास (अन्+आयास) क्रि०वि० बिना परिश्रम। सरलता से। अकस्मात्। दे० 'अनायास'।

उ०—आपति अन्यास सुख प्रापति कहीं न ही। बो० २२/१५१

अन्योन्य (अन्य+अन्य) वि० आपस में या एक दूसरे के साथ दिया लिया जाने वाला।

पुं० साहित्य में एक अलंकार जिसमें दो कार्यों, वस्तुओं आदि में एक-दूसरे के कारण कार्य का संबंध बतलाया जाता है अथवा दोनों के एक दूसरे के प्रति समान रूप से कार्य करने का उल्लेख होता है।

उ०—सो अन्योन्य जु परस्पर करैं जु मल उपकार। सेना सों सोभित नृपति नृप सौं सैंत अपार। प० १६०/५२

अन्योन्याश्रय (अन्य+अन्य+आश्रय) पुं० १. दो वस्तुओं का आपस में या एक-दूसरे पर आश्रित होना। २. न्याय में, एक वस्तु के ज्ञान से दूसरी वस्तु का होने वाला ज्ञान।

अन्योन्याश्रयी (अन्य+अन्य+आश्रयी) वि० आपस में एक दूसरे पर अवलंबित।

अन्योन्याश्रित (अन्य+अन्य+आश्रित) वि० दे० 'अन्योन्याश्रयी'।

अन्वय (अन्+वय) पुं० १. दो वस्तुओं के आपस का संबंध या उनमें होने वाली अनुरूपता।
२. पद्य या कविता की वाक्य-रचना को गद्य की वाक्य-रचना के अनुसार बैठाने या ठीक करने की क्रिया।
३. किसी वाक्य की शब्दावली के अनुसार उसका ठीक और संगत अर्थ लगाना।
४. कार्य-कारण का पारस्परिक सम्बन्ध।
५. अवकाश।
६. कुल।
७. वाक्य के शब्दों का पारस्परिक संबंध।

अन्वाचार्य पुं० कुल-गुरु। कुल के आचार्य। कुल पुरोहित। कुल में पूज्य। वंश में पूजनीय।

अन्हा— अक० स्नान करना। नहाना।

उ०—हम लंकेस दूत प्रतिहारी, समुद्र तीर कौं जात अन्हाए। सूर ९/१२०/५

अन्हात व०कृ०। अन्हाई, अन्हाये, अन्हायों भू०कृ०। अन्हान क्रि०सं०।

—न पुं० नहान। नवजात शिशु के जन्म लेने के तीसरे या चौथे शुभ दिन में जच्चा-बच्चा के नहाने को 'नहान' या 'अन्हान' कहते हैं।

अन्हबारि वि० लाने वाली (दूती)।

उ०—यहि कारी अन्हबारि मैं यतो मान बिस्तारि। रस० ५६५/१०६

अन्हवा— सक० नहलाना। स्नान कराना।

उ०—उबटन उबटि अँगन अन्हवाई। वोपी दामिनी लोपी माई। नं० ११६/१०७

अन्हवावति व०कृ०।

अन्हवाई, अन्हवाए, अन्हवायो भू०कृ०।

अन्है— अक० स्नान करना। नहाना।

उ०—पद्माकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिंधु सुधा के अन्हैयतु है। प० ५३७/१६३

अन्हैयत, अन्हैयतु व०कृ०।

अन्हैया वि० नहाने वाला, स्नान करने वाला।

अपंग (अप+अंग) वि० १. अंगहीन।
२. जिसके कोई अंग न हो अथवा टूटा-फूटा या बेकाम हो।
३. अपाहिज। पंगु। लंगड़ा-लूला।

उ०—हाव भाव रस लरत कटाच्छनि भृकुटी धनुष अपंग। सूर १०/२२८८/४

अप[1] उप० एक अपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर निम्नलिखित अर्थ देता है—
अलग या दूर—अपगमन।
अनुचित निंद—अपजात, अपव्यय।
नीचे या पीछे—अपकर्ष, अपभ्रंश।
रहित या हीन—अपकरुण, उपभय।
आकस्मिक—अपमृत्यु।
गुप्त, छिपा या दबा हुआ—अपद्वार।
दिशा, प्रकार आदि का उल्लेख या निर्देश—उपदेश।

अप[2] पुं० आप। जल। पानी।

उ०—तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की आछी अपमाला या अनादि ब्रह्मबेस की। प० ४४/२६६

अप[3] सर्व० अपने आप। स्वयं।

उ०—सकल विश्व अप वस करि मो माया सोहति है। नं० १८/१६

अप-उक्ति स्त्री० अपकथन। बुरा कथन। बुरी कल्पना।

अपक[1] पुं० पानी।

उ०—अपक, अमय अरु वारि पुनि, पानी पुष्कर होय। नं० ६/१०१

अपक[२] वि० विना पका हुआ।

अपकरुन (अप+करुन) वि० निर्दय। निष्ठुर। कठोर।

अपकर्म (अप+कर्म) पुं० कुकर्म। कुचलन। अनिष्ट कर्म। पाप।

उ०—जुवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति करै कोटि अपकर्म। सूर० १०/१०१५/४

अपकर्मा (अप+कर्मा) वि० १. बुरे कर्मों वाला। आचरण भ्रष्ट।

२. दूसरे की बुराई करने वाला।

अपकर्ष (अप+कर्ष) पुं० १. नीचे या पीछे की ओर खींचना।

२. घटाव या उतार होना।

३. पद, महत्व, मान-मर्यादा आदि में कमी होना।

४. पतन होना।

अपकाजी (अप+काज) वि० स्वार्थी। मतलबी। खुद गरज।

उ०—अहंकारि लंपट अपकाजी, संग न रह्यौ निदानी। सूर०

अपकार (अप+कार) पुं० १. अहित करने या हानि पहुँचाने वाला कार्य या बात 'उपकार' का विपर्यय। २. अनुचित आचरण या व्यवहार। बुरा व्यवहार।

उ०—अपत, उतार, अपकार को अगार जग, जाकी छाँह छुए सहमत व्याध बाघ को। कवि० ६८/५६

—ई (अप+कारी) वि० अपकार करने वाला। बुराई करने वाला। अनिष्टकारी। विरोधी। द्वेषी।

अपकीरत—अपकीरति (अप+कीर्ति) स्त्री० अपयश। अकीर्ति। बदनामी।

उ०—डरू अरू लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गनैं। कुं० २२१/८२

अपकृति स्त्री० १. अपकार।

अपकृष्ट (अप+कृष्ट) वि० १. जिसका अपकर्षण हुआ हो। २. जिसका महत्व या मान घट गया हो। ३. अधम। नीच। ४. घृणित। ५. बुरा।

अपक्रम (अप+क्रम) पुं० १. बदला, बिगड़ा या उलटा क्रम। २. उचित, उपयुक्त या ठीक क्रम का अभाव।

वि० जिसका क्रम बिगड़ा हुआ हो।

अपक्व [अ+पक्व] वि० १. जो पका हुआ न हो। कच्चा। २. असिद्ध।

३. जिसका पूर्ण विकास न हुआ हो।

४. अनभ्यस्त। अनुभवहीन। अकुशल।

उ०—ज्यों अपक्व जोगी चित धाइ। विषयनि पाइ भ्रष्ट ह्वै जाइ। नं० २०/२५०

अपगत (अप+गत) वि० १. जो अपने ठीक मार्ग से इधर-उधर हो गया हो।

२. दूर हटा हुआ। ३. आँखों से ओझल।

४. मरा हुआ। मृत। ५. नष्ट।

—इ (अप+गति) स्त्री० १. निकृष्ट या बुरी गति। दुरावस्था। दुर्गति।

२. नीचे की ओर अर्थात् अनुचित या बुरे मार्ग पर होना।

३. पतन। अधोगति। ४. नाश।

५. दुर्भाग्य।

अपगम (अप+गमन) पुं० दे० 'अपगमन'।

अपगमन पुं० १. नीचे की ओर या बुरे मार्ग पर जाना।

२. छिप या भाग जाना।

३. अलग होना। दूर होना।

४. प्रस्थान।

अपगा स्त्री० आपगा। नदी। सरिता।

अपघन (अप+घन) पुं० देह। अंग।

वि० आकाश, जिसमें घन या बादल न हों। मेघ रहित। स्वच्छ आकाश।

उ०—अपघन घाय न विलोकियत घायलनि घनोसुख 'केसोदास' प्रगट प्रमान है। के० ६/३७८

अपघर (अप+घर) पुं० १. अपना घर। २. बुरा घर।

अपघात (अप+घात) पुं० १. अनुचित या बुरा आघात। २. हत्या। हिंसा। ३. विश्वासघात। धोखा। ४. आत्मघात। आत्महत्या।

उ०—सूरदास सिसुपाल पानि गहै, पावक रचौं करौ अपघात। सूर० १०/४१७१/८

अपघाती (अप+घाती) वि० १. हिंसक। २. विश्वासघाती। ३. आत्म-हत्या करने वाला।

अपच (अ+पच) वि० न पचने वाला।

पुं० अन्न के न पचने की दशा या भाव। भोजन न पचने का रोग। अजीर्ण। बदहजमी। कुपच।

अपचय (अप+चय) पुं० १. कमी। क्षति। क्षय। घाटा। हानि। २. लेन या प्राप्य के सम्बन्ध में होने वाली रियायत। छूट। ३. व्यय। ४. विफलता। ५. पूजा। सम्मान।

अपचार (अप+चार) पुं० १. अनुचित बुरा या निकृष्ट आचरण। २. अनिष्ठ। बुराई। ३. अनादर। ४. निंदा। ५. अपयश। ६. कुपथ्य। ७. अभाव हीनता। टोटा। घाटा। ८. दोष। ९. भ्रम।

—ई (अप+चारी) वि० बुराई करने वाला। दुराचारी। दुष्ट। अपयशी।

अपचाल (अप+चाल) पुं० १. अनुचित आचरण। कुटेव। कुचाल। खुटाई। २. अनुचित या बुरा बरताव या व्यवहार। ३. नटखटपन। शरारत। चपलता। ४. उल्टी चाल।

अपछरा स्त्री० १. अप्सरा।
२. देववधूटी। देवताओं की वाराङ्गना।
३. परम सुंदर स्त्री।
उ०—बर किन्नर गंधर्व अपछरा तिन पर करि बलि। नं० २७/३

अपजय (अप+जय) स्त्री० पराजय। हार।

अपजस—अपजसु (अप+यश) पुं० दे० 'अपयश'।
उ०—बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहैं लोइ। सूर ६/९९/४
उ०—'द्विजदेव' तापर अलापैं ए कलापिन की, भरि भरि दैंइ गोद नित अपजसु रे। शृं० १८१/५२०

अपजसी (अप+यशी) पुं० दे० 'अपयशी'।
उ०—सूम सबंभक्षी दैवबादी जो कुवादी जड़ अपजसी ऐसो भूमि भूपति न सोहियै। के० १०/३२५

अपजात (अप+जात) वि० जिसमें अपने उत्पादक या मूलवर्ग के पूरे-पूरे गुण न आये हों। अपेक्षाकृत कम गुण वाला।
पुं० १. वह पुत्र जो कुमार्गी हो गया हो।
२. वह पुत्र जो अपने माता-पिता से गुणादि के विचार से घट कर हो। कपूत।

अपजानि पुं० १. अजान। २. बुरा जानकार। ३. अपना जानकार।

अपजोग (अप+जोग) पुं० कुचाल। अनुचित कर्म।
उ०—जिनके संग स्याम सुन्दर सखि, सीखे हैं अपजोग। सूर० १०/३५९०/३९०

अपट (अ+पटु) वि० १. अपटु। जो पटु या कुशल न हो। चातुर्य रहित। बुद्धिहीन।
२. अनिपुण। मूर्ख।
उ०—मेरे हेरत बेस कपट को। रहिहै नहिं पूतना अपटको। नं० ४/२०७

अपटा (अ+पटा) पुं० [स्त्री० अपटी] १. नंगा। वस्त्रहीन। २. पक्षपाती।
३. उबटन कराया। बाँटा।
४. कनात। पर्दा। तम्बू। शामियाना।

अपठ (अ+पढ़) वि० १. अनपढ़। २. मूर्ख। गंवार।

अपठित (अ+पठित) वि० अशिक्षित। जो पढ़ा न हो। बिना पढ़ा हुआ।

अपठ्यमान वि० न पढ़ने योग्य।
उ०—अपठ्यमान पापग्रंथ पठ्यमान बेद बै। के० ३/२३८

अपडर (अप+डर) पुं० भय। शङ्का। डर। मिथ्या डर।
उ०—सूरदास प्रभु गिरिधर को कौतुक देखि काम धेनु आयौ लिये इन्द्र अपडर डारि। सूर १०/९५२/६
अक० भयभीत होना। डरना। शंकित होना।

अपड़ा— अक० १. पहुँचाना।
२. खींचातानी करना।
उ०—इत कुलकानि उतै हरि कौ रस, मन जो अति अपड़ाई। सूर०
३. लड़ाई-झगड़ा करना।
अपड़ाई भू०कृ०।

अपड़ाउ—अपड़ाव पुं० १. झगड़ा। तकरार। रार।
उ०—यह कहती औरै जो कोऊ, तासौं मैं करती अपडाउ। सूर० १०/१७०१/६६४
२. खींचातानी।

अपडार (अप+डर) सक० डराना। भयभीत करना।
उ०—सुफलकसुत कछु भली न कीन्ही, बठैं ही अपडारे। सूर० १०/४०१०/४६४
अपडारे भू०कृ०।

अपडाहु (अप+डाहु) वि० डाह-रहित। ईर्ष्या-शून्य। द्वेष-रहित।

अपढ़ (अ+पढ़) वि० १. बिना पढ़ा-लिखा ।
२. मूर्ख । अनाड़ी ।

अपढ़ार (अप+ढार) वि० अकारण ही ढलने (प्रसन्न या अनुरक्त होने) वाला । मनमाने ढंग से उदारता, कृपा आदि दिखलाने वाला ।

उ०—अरु जौ अपढ़ार ढरै न ढरै, गुन त्यों तकि लागत दोष महा । घ०क० १६४/१४८

पुं० १. झुकाव । ढरकाव ।

अव्य० २. अपने आप ही । स्वतः ही ।

उ०—नां जानों कहां चले जात अपढारे ।
कुं० १५८/६२

अपत[1] [अ=नहीं+पत्र] वि० (पौधा, बेल, वृक्ष आदि) जिसमें पत्ते न हों अथवा जिसके पत्ते झड़ गए हों । पत्र-विहीन ।

उ०—अब, अलि, रही गुलाब मैं अपत, कँटीली डार । बि०२२५/१०७

अपत[2] [अ+पत=प्रतिष्ठा] वि० १. जिसकी प्रतिष्ठा न हो । अप्रतिष्ठित ।
२. निर्लज्ज । बेहया ।
३. अधम । नीच ।

उ०—अपत, उतार, अभागी, कामी, विषयी निपट कुकर्मी । सूर १/१८६/२

अपत[3]—अपति (आपत्ति) स्त्री० १. अपत होने की अवस्था या भाव ।
२. धृष्टता । निर्लज्जता ।

उ०—अति ही करी उन अपतई हरि सी समताई ।
सूर० १०/२२५३/१०२

स्त्री० १. विपत्ति । मुसीबत ।
२. दुर्दशा । दुर्गति ।

उ०—जौ मेरे दीन दयाल न होते तौ मेरी अपत कौरव सुत, होत पंडवनि ओते ।
सूर १/२५६/२

३. अप्रतिष्ठा ।

उ०—अफजल की अगत सायस्तखाँ की अपत बहलोल की विपत डरे उमराउ हैं ।
भू० १५६/१५८

४. उत्पात । उपद्रव । ५. झंझट । बखेड़ा ।

अपताना [अप=अपना+तानना] पुं० झंझट । बखेड़ा । जंजाल ।

अक० १. धृष्टता या ढिठाई करना । चंचलता या चपलता दिखाना ।

अपति (अ+पति) वि० १. जिसका पति मर गया हो । विधवा । २. जिसका कोई स्वामी न हो । बिना मालिक का ।
[अ=बुरा+पति=गति] १. पापी । दुराचारी । २. निर्लज्ज ।

उ०—कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी ।
सूर १/२४८/४

अपत्य (अ+पत्य) पुं० सन्तान । पुत्र-पुत्री ।

उ०—आतमज, सून अपत्य पुनि तनुज, तनय कहि जात । नं० ११२/७८

अपत्य-शत्रु (अपत्य+शत्रु) वि० जिसका शत्रु उसकी अपत्य या संतान हो । जो अपने अंडे या बच्चे स्वयं खा जाय ।
पुं० १. केंकड़ा । २. साँप ।

अपत्र (अ+पत्र) वि० १. (वृक्ष) जिसमें पत्ते न हों ।
२. (पक्षी) जिसके पंख या पर न हों ।

अपथ (अ+पथ) पुं० १. विकट मार्ग । बीहड़ । न चलने योग्य रास्ता ।
२. कुमार्ग । बुरा रास्ता । कुपथ ।

उ०—भ्रमत निसि-बासर, अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ । सूर १/५६/१६

—इ वि० १. विकट मार्ग का अनुयायी ।
२. कुमार्ग पर चलने वाला ।
३. अनीति करने वाला । अन्यायी ।

अपथ्य (अ+पथ्य) वि० १. जो पथ्य न हो । स्वास्थ्य-नाशक । जो सुपाच्य न हो ।

उ०—अकिलौ विष अपथ्य दुखदायी । लीने ताके प्रान मिलाई । नं० ६/२०७

अपदल (अप+दल) पुं० १. अपना दल । अपनी सेना । अपना पक्ष । २. बुरा दल । बुरी सेना ।

अपद (अ+पद) वि० १. जिसके पैर न हों । बिना पैर का जैसे मछली, साँप आदि ।

उ०—अपद-दुपद-पसु भाषा बूझत, अविगत अल्प अहारी । सूर० ८/१४/३

२. स्थान रहित । बिना स्थान का ।
३. उपाधि रहित । जो किसी पद या ओहदे पर न हो । पदच्युत ।
४. कर्मच्युत ।

पुं० १. अनुचित या अनुपयुक्त पद या स्थान ।
२. अनुपयुक्त समय ।
३. आपदा । आपत्ति ।

अपदाँव (अप+दाँव) पुं० १. बुरा दाँव। चालबाजी। कपट का दाँव।

उ०—दूसरै आइकै इंद्रियनि लै गयौ, ऐसी अपदाँव सब इनहिं कीन्हे। सूर० १०/२२४०/६६

अपदेखा (अप+देखा) वि० अपने को बड़ा समझने वाला। अपने आप देखा हुआ। स्वदृष्ट।

अपदेवता (अप+देवता) पुं० १. बुरे देवता। २. असुर राक्षस आदि। ३. भूत-प्रेत। पिशाच।

अपदेश पुं० १. कोई कार्य करने की आज्ञा देना अथवा ढंग प्रकार स्वरूप या विधि बतलाना। निर्देश। २. लक्ष्य। उद्देश्य। ३. बुरा देश या स्थान। ४. कारण या हेतु। ५. बहाना। ६. प्रसिद्धि। ७. छिपाना। ८. इन्कार।

अपद्रव्य (अप+द्रव्य) पुं० अनुचित, निकृष्ट या बुरा द्रव्य या धन।

अपद्वार (अप+द्वार) पुं० चोर दरवाजा। छिपा हुआ दरवाजा।

अपन सर्व० अपना। निज का। स्वयं का।

उ०—अपन अपन जतगती भेद नर्तन लागति जब। नं० ८०/२७

अपनई सर्व० अपनी। निजी। स्वयं की।
स्त्री० अपनापन।

अपनपो—अपनपौ पुं० १. अपनापन। अपनत्व। निजस्व। आत्मीयता।

उ० १—पुनि अपनपे सहित ब्रज देखि। जसुमति चकित भई सुविसेषि। नं० ८/२१५

२. आत्मभाव। निजस्वरूप।

उ० ३—देखि स्याम को बदन रीमाई, मोहि अपनपो भूल्यो। सूर १०/२७७४/१

३. संज्ञा, सुध, ज्ञान। चेत।
४. अहंकार, गर्व, अभिमान।

अपनयन (अप+नयन) पं० १. अलग। जुदा या दूर करना। हटाना। २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना या पहुँचाना। स्थानान्तरण। ३. खंडन।

अपना—अपनो सर्व० सम्बन्धवाचक सर्वनाम जिसका प्रयोग प्रायः विशेषण के रूप में होता है। निजका। स्वत्कीय। स्वजन। सगा।

उ०—घन आनन्द मीत सुजान सुनौं अपनी अपनी दिसि को हटि है। घ० क० १६६/१४६

अपना— सक० १. अपना बनाना। अपना कर लेना। २. ग्रहण या स्वीकार करना। ३. अपने अधिकार या वश में करना। ४. किसी को अपनी शरण में लेना। ५. गले लगाना।

उ०—पहिलें अपनाय सुजान सनेह सौं। घ० क० १४/४८

अपनाइत व०कृ०। अपनाई, अपनायो, अपनायौ भू०कृ०। अपनैबो क्रि०सं०।

अपनाइत—अपनाइति—अपनाइयत—अपनायत (अपना+इत) स्त्री० १. अपना होने का भाव। आत्मीयता। प्रीति।

उ०—अपनाइत हूँ सों नहीं अब परतीत बिचारि। भि० I, १०५/१७

२. आपसदारी का संबंध। बहुत पास का वैसा व्यवहार या संबंध जैसा सगे सम्बन्धियों का होता है।

अपनाम (अप+नाम) पुं० १. बदनामी। दुर्नाम। लाँछन। २. निन्दा।

अपनियाँ वि० अपनाने वाला। स्वत्व रखने वाला। मानने वाला। स्नेही।

उ०—सूरदास प्रभु निरखि मगन भये, प्रेम विवश कछु सुधि न अपनियाँ। सूर० १०/१०६/१२

अपनेजान क्रि०वि० अपनी समझ से। अपने ज्ञान के अनुसार।

अपनो—अपनौ—अपनौं सर्व० दे० 'अपना'।

अपन्हव पुं० १. कोई बात किसी से छिपाना। २. सच बात छिपाना। ३. टालमटोल। बहाना। ४. तृप्त या संतुष्ट करना। ५. प्रेम। ६. निषेध। ७. अपलुति। अलंकार। दे० 'अपह्नुति'।

उ०—यह अपन्हवजुत जहाँ सापन्हवा सु भान। प० ६४/४०

अपबंस (अप+वंश) पुं० १. अपने वंश का। २. बुरा वंश।

उ०—असुरकंस अपबंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारे। सूर १०/१०/२१३

अपबरग (अप+वर्ग) पुं० दे० 'अपवर्ग'।

उ०—सरग न चाहैं अपबरग न चाहैं सुनो। भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
उ० ५८/५८

अपबल (अप+वल) पुं० १. अपना बल। आत्मवल।
उ०—'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों कहा हौं कहोरी। इननु अपबल मूसि दया।
कुं० २३३/८५
२. निकृष्ट बल। निन्द्य शक्ति।

अपबस (अप+वश) पुं० १. जो अपने वश में हो। वशीभूत।
उ०—अतिहिं सुघर पिय को मन मोहति अपबस करति रिझावति। सूर० १०/११६४/५१६
२. स्वतंत्र।
३. स्वेच्छाचारी।

अपबाद (अप+वाद) पुं० दे० 'अपवाद'।

अपभय (अप+भय) पुं० १. निर्भयता।
२. अकारण भय। अनुचित या व्यर्थ का भय।
वि० १. जो भय रहित हो। निर्भय। निडर।
२. बहादुर। वीर।

अपमान (अप+मान) पुं० अनादर। बे-इज्जती। तिरस्कार। असम्मान।
उ०—घटि घटि पूरि पूरि फिरत दिगंज अजौं, उपमान बिन भयो खान अपमान की।
भि० ४०१/५८
सक० अपमान करना। तिरस्कार करना। बेइज्जत करना।
उ०—हारि जीति नैना वहिं जानत, धाये जात तहीं कौ फिरि-फिरि वे कितनौ अपमानत।
सूर० १०/२३१३/२
अपमानत व०कृ०।

अपमारग (अप+मार्ग) पुं० १. कुमार्ग। कुपंथ। २. कुचलन। बुरा चलन। दे० 'अपमार्ग'।
उ०—चोरी अपमारग बट पारयौ, इन पटतर के नहिं कोऊ है। सूर० १०/१५८०/४
—ई (अप+मार्ग+ई) वि० बुरे मार्ग पर चलने वाला। कुमार्गी। कुमार्गगामी। अन्यथाचारी
उ०—चोर, ढुंढ, बटपार, कहावत, अपमारगी अन्यायी ये। सूर० १०/२२८५/१०८

अपयश (अप+यश) पुं० अपकीर्ति। बदनामी। निन्दा। बुराई। कुख्याति।

अपयसु पुं० दे० 'अपयश'।

अपयोग (अप+योग) पुं० १. अनुचित समय। कुसमय।
२. बुरा मौका। कुअवसर।
३. बुरा योग। अयोग। अपशकुन।
४. कुचाल। बुरे काम।
उ०—सबै खोट मधुबन के लोग, जिनके संग स्याम-सुन्दर सखि सीखे सब अपयोग। सूर०

अपर वि० १. जो पर या बाद का न हो। पहला।
२. जिससे बढ़कर और कोई न हो श्रेष्ठ।
३. और कोई। अन्य। दूसरा।
उ०—अपर सनेस की न बातैं कहि जाति हैं।
उ० ३२/३२
४. परवर्त्ती।
५. किसी दूसरी जाति या वर्ग का। विजातीय। ६. अधम। नीच।
पुं० १. हाथी का पिछला आधा भाग।
२. वैरी। शत्रु।
—दिशा स्त्री० पश्चिम दिशा।

अपरछन (अ+प्रच्छन्न) वि० अप्रच्छन्न। जो छिपा न हो। जो गुप्त न हो। खुला हुआ। स्पष्ट।

अपरता[1] (अप+रता) [आप+रत] वि० १. जो अपने ही आप में रत या लीन हो।
२. मतलबी। स्वार्थी।

अपरता[2] (अपर+ता) स्त्री० अपर होने की अवस्था या भाव। परायापन।
[अ=नहीं + परता=परायापन] भेद-भाव-शून्यता अपनापन।

अपरति (अप+रति) स्त्री० १. रति का अभाव। प्रेम का अभाव। २. असन्तोष। ३. अलगाव। विच्छेद।

अपरती (आप+रति) स्त्री० केवल अपना ध्यान रखना स्वार्थ।

अपरना स्त्री० अपर्णा। पार्वती का एक नाम।
उ०—उमा, अपरना, ईस्वरी, गवरी गिरिजा होइ।
नं० १२२/७६

अपरपुर (अपर+पुर) पुं० परलोक। स्वर्ग।
उ०—मारू के करैया अरि गे अपरपुर तऊ अजौं मारू-मारू सोर होत है समर में।
भू० २०२/१६७

अपरबल (अपर+वल) वि० १. बलवान। २. उद्धत।
३. बहुत अधिक। प्रचण्ड।
उ०—चली अपरबल बात अघात। उडे जात कहि बनति न बात। नं० २५/२६६

अपरम्पार (अपरम्+पार) वि० १. जिसका आरपार न हो। अपार।
२. असीम। बेहद। बहुत अधिक।
उ०—जीव अनेक किए जु कृतारथ महिमा अपरंपार। छी० ३२/१३

अपरस[1] (अ+परस) [अ+परस=स्पर्श] वि०
१. जिसे किसी ने छुआ न हो।
२. अस्पृश्य। स्नान करने के पश्चात् बिना किसी का स्पर्श किये रहना। ३. रसोई का शुद्ध नियमाचार। ४. अनासक्त।
उ०—अपरस रहत सनेह तगा तें नाहिन मन अनुरागी। सूर १०/३६५८/४८४

अपरस[2] (अप+रस) वि० १. नीरस। रसहीन।
स्त्री० २. हथेली व तलुए में होने वाला चर्म रोग

अपराजित (अ+पराजित) वि० १. जो पराजित न हुआ हो। अजेय।
पुं० १. विष्णु। २. ऋषि विशेष। ३. शिव।
—आ (अ+पराजिता) स्त्री० १. जो पराजित न हुई हो। २. दुर्गा। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक रगण, एक सगण, एक लघु और गुरु होता है।
उ०—द्रवहिं द्रवहिं 'दास' कों अपराजिता। भि० ५१/२५४

अपराध—अपराधु—अपराधो (अप+राध) पुं०
१. ऐसा अनुचित कार्य जिससे किसी का अपमान या हानि हो। कसूर। २ जुर्म। ३. दोष। कलंक। ४. पाप।
उ०—सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूंद तुल्य भगवान। सूर० वि०/८/३

अपराधी वि० [स्त्री० अपराधिनी]
१. अनुचित कार्य करने वाला। कसूरबार। २. जुर्म करने वाला। मुलाजिम। ३. दोषी। कलंकी। ४. पापी।
उ०—तुम मो से अपराधी माधव केतिक स्वर्ग पठाए (हो) सूर० वि/७/३

अपरापत (अ+प्राप्त) वि० अप्राप्त। जो प्राप्त न हो। दुर्लभ। अलभ्य।

अपराह्न (अपर+अह्न) पुं० मध्यान्ह और संध्या के बीच का समय।

अपरिच्छन्न (अ+परिच्छन्न) वि० १. जो ढका न हो आवरण रहित। खुला हुआ।

अपरिच्छिन्न (अ+परिच्छिन्न) वि० सीमा-रहित। व्यापक।
उ०—जौ कहहु कि हम यौं करि पाये। अपरिछिन्न नित निगमन गाये। नं० १४/२३५

अपरिमित—अपरमिति (अ+परिमित) वि०
१ जो परिमित न हो।
२. जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। बेहद। अपार। अनन्त।
उ०—अलख अनंत-अपरिमिति महिमा, कटि तट कसे तूनीर। सूर० ६/२६/१६१

अपलच्छन (अप+लक्षण) पुं० १. अशुभ या बुरा लक्षण या चिन्ह। कुलक्षण। अवगुण। अपशकुन। २. दोष। ३. साहित्य में किसी चीज का बतलाया जाने वाला ऐसा लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष हो। दूषित या त्रुटिपूर्ण लक्षण।

अपलज्ज (अप+लज्ज) वि० निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म

अपलक (अ+पलक) वि० जिसकी पलकें न गिरें। जो टकटकी लगाकर देख रहा हो। निर्निमेष।
क्रि०वि० बिना पलकें गिराये या झपकाये। एकटक।

अपलट (अ+पलट) वि० न मुड़ने वाला। न बदलने वाला। न लौटने वाला। एक रस रहने वाला।

अपलाप (अप+लाप) पुं० १. व्यर्थ की बकबक। बकवाद।
२. प्रसंग टालने के लिए इधर-उधर की बात कहना। बात बनाना।
३. जानबूझ कर कोई बात न कहना। बात का छिपाव या दुराव।

अपलोक[1] (आप+लोक) पुं० १. अपना लोक। निज लोक।
उ०—लोक में लोक बड़ो अपलोक, सु 'केशवदास' जु होउ सु होऊ। के II, ३३/२६७

अपलोक[2] (अप+लोक) १. बदनामी। अयश। अपयश प्रवाद। कलङ्क।
उ०—बनिता को बस कहा पुरुप अपलोक लगावै। बो० ८/७७

अपवंस वि० दे० 'अपबंस'।

अपवर्ग पुं० १. सब प्रकार के दुःखों से होने वाला छुटकारा। २. मोक्ष।

उ०—इंद्रिय वर्ग निसर्ग करै बस, जाइ बसै अपवर्ग की छाया। दे० I, ६२/२२१

३. त्याग। ४. दान। ५. कार्य समाप्ति या सिद्धि। ६. किये हुए कर्मों का फल।

—दा वि० मुक्तिप्रद। मोक्षदायक। परमगति देने वाला।

अपवाचा (अप+वाचा) स्त्री० १. अनुचित कथन या बात। २. गाली। ३. निंदा। ४. अपवाद।

अपवाद (अप+वाद) पुं० १. किसी बात के विरुद्ध कही हुई बात। विरोध या खंडन। २. निंदा। बदनामी। ३. दोष। बुराई। ४. वह बात जो व्यापक या सामान्य नियम के अन्तर्गत आकर उसके विरुद्ध या अतिरिक्त पड़ती हो।

अपवादी वि० दूसरों की बुराई करने वाला। बदनामी करने वाला। परनिंदक।

अपवाहक (अप+वाहक) वि० भगाने वाला।

अपवाहन (अप+वाहन) पुं० १, पुष्ट वाहन। २. किसी चीज को उचित या नियत स्थान पर न ले जाकर भूल से कहीं इधर-उधर ले जाना। फुसला के लाना। भगा देना। एक राज्य से भागकर दूसरे में जा बसना।

—क वि० दे० अपवाहक।

—इत वि० दे० अपवाहित।

अपवाहित वि० (स्त्री० अपवाहित) भगाया हुआ।

अपवित्त[1] (अ+पवित्र) वि० नालायक। मलिन। धूर्त।

अपवित्र[2] (अप+वित्र) वि० निर्धन। धनहीन। धन-रहित। कंगाल।

अपवित्र वि० जो पवित्र न हो। अशुद्ध। दूषित। मैला।

अपसगुन पुं० दे० 'अपशकुन'।

अपसमार (अप+स्मार) पुं० १ दे० 'अपस्मार'।

उ०—अपसमार जहँ सूर समारत बहु बिषाद उर पेरों। सूर०

२. तैंतीस संचारी भावों में से एक।

उ०—अपसमार सो कवि उर धरई। भि० I, ७२

अपसर[1] (आप+सर) वि० आप ही आप। मनमाना। मन ही मन।

अपसर[2]**—अपसरा** स्त्री० १. अप्सरा। २. वाष्पकण।

उ०—रहै अपसर ही की सोभा जो अनूप धरि सुभग निकाई लीने चतुर सुनारी है। क० ३७/१२

३. अप्सरा। स्वर्ग नर्तकी। परमसुन्दर स्त्री।

अपसर[3] अक० दूर होना। हटना। खिसकना। सरकना।

उ०—बारम्बार सरक मदिरा की अपसर रहत उधारे। सूर०

अपसरक (अप+सरक) अक० १. भाग जाने वाला। २. जो अपना उत्तरदायित्व, कर्तव्य, पद, आदि छोड़कर भाग गया हो।

उ०—नारायन तहँ परगट करी। इन्द्र अपसरा सोभा हरी। सूर ११/३/२४

अपसव्य (अप+सव्य) वि० १. शरीर का दाहिना भाग २. उलटा। विपरीत। ३. जिसने पितृकर्म करने के लिये जनेऊ अपने दाहिने कंधे पर रखा हो।

अपसर्प (अप+सर्प) पुं० भेदिया। जासूस। गुप्तचर। खुफिया।

उ०—सहस्राक्ष, अपसर्प, चर गूढ़ परप पुनि चारू। नं० १०/६५

अपसोस (अफसोस) पुं० १. चिंता। सोच। २. दुःख। रंज। ३. पश्चात्ताप। पछताना।

उ०—यह साँची कहैं, नाँहि काँची तऊ, तुम्हैं हाइ कछू अपसोस नहीं। शृं० २०५/५६०

अक० १. अफसोस करना। पछताना। २. चिंतित और दुःखी होना।

अपसौन (अप+सगुन) पुं० असगुन। बुरा सगुन। दे० 'अशकुन'।

अपस्मार पुं० १. मिर्गी रोग। मूर्च्छा। २. साहित्य में प्रेमी प्रेमिका की वह अवस्था जिसमें विरह का बहुत कष्ट सहने के कारण मिरगी के रोगियों की तरह काँप कर मूर्छित होकर गिर पड़े। (संचारी भाव)

उ०—अपस्मार मति उग्रता त्रास तर्क औव्याधि उन्माद मरन अविहत्य है व्यभिचारी युत-आधि। के० I, १४/३२

अपस्वारथी (अप+स्वार्थी) वि० स्वार्थी। अपना मतलब गाँठने वाला। अपना काम निकालने वाला। अपना मतलब साधने वाला। चंट। मतलबी। खुदगरज।

उ०—अपराधी अपस्वारथी मोको बिसराई।
सूर० १०/२२५३/१०२

अपशकुन (अप+शकुन) पुं० बुरे सगुन। अपसगुन। अमंगल के चिह्न। बुरे लक्षण। अशुभ सूचक चिह्न।
उ०—अर्जुन बहुत दुःखित तब भये, इहाँ अपसगुन होत नित नये। सूर० १/२८६/६

अपहरन (अप+हरण) पुं० १. छीना छपटी। हरण। किसी की कोई चीज बलपूर्वक छीनकर ले जाना।
उ०—अपहरन पुनि बरन बंस हरि जानिहौं, केहि योग भायौ। सूर०
२. रुपये वसूल करने या कोई स्वार्थ सिद्धि करने के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को बलपूर्वक कहीं से उठा ले जाना।
३. छिपाव।
४. दुराव।

अपहर— सक० १. अपहरण करना। छीनना। २. लूटना। ३. चुराना। ४. कम करना। घटना। ५. दूर या नष्ट करना।

अपहारा—अपहारी पुं० १. अपहरण करने वाला। छीनने वाला। चोर। लुटेरा।
उ०—कर करिकै हरि हेरयौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी। सूर० १०/१६६/२६६
२. नाश करने वाला।

अपह्नुति स्त्री० १. दुराव। छिपाव।
२. टालमटोल। बहानेबाजी।
३. एक प्रकार का अलंकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय।
उ०—मिसु करि और कथनुह विधि, होत अपह्नुति भाइ। भि० II, पृ० ६०

अपांग (अप+अङ्ग) पुं० १. आँख का कोना। आँख की कोर। २. कटाक्ष। तिरछी नजर। ३. सम्प्रदाय सूचक तिलक। ४. कामदेव। ५. अपामार्ग।
वि० १. शरीर रहित। अशरीरी। २. अंगहीन। अंग भंग। ३. अपाहिज। पंगु।

अपा स्त्री० अभिमान। अहंकार। गर्व। स्वत्व। आत्म भाव।

अपाइ पुं० दे० 'अपाय'।

अपाउ पुं० दे० 'अपाय'।

अपान[1] पुं० १. शरीर की पंचवायु में से एक वायु जिसकी गति नीचे की ओर होती है।
२. गुदा मार्ग से बाहर निकलने वाली वायु
३. मलद्वार, गुदा।

अपान[2] पुं० १. अपनापन। आत्मभाव। २. आत्मज्ञान सुधि। ३. आत्म गौरव। ४. घमण्ड। अभिमान।
वि० अपेय। न पीने योग्य।
उ०—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहूँ न मनसा धापी। सूर० वि०/१४०/३८
सर्व० अपना।

अपाना सर्व० अपना। अपने वश का। अपने हाथ का।
उ०—बिना कृपा भगवान उपाउ न सूर अपाना।
सूर०

अपानी सर्व० १. अपनी। निजी।
२. बिना हाथ का। हाथ रहित।
३. निर्लज्ज।

अपानु पुं० गुह्यस्थान। दे० 'अपान' भी।

अपाप (अ+पाप) वि० निष्पाप। पाप-रहित।
पुं० वह जो पाप न हो अर्थात् पुण्य। सुकृत।

अपामार्ग पुं० औषधि विशेष। चिचिड़ा। लटजीरा।

अपाय पुं० १. दूर या पीछे हटना।
२. अलगाव।
३. नाश। बर्बादी।
४. नीतिविरुद्ध आचरण।
५. किसी के प्रति किया जाने वाला अनुचित या हानिकारक कार्य।
६. उत्पात। उपद्रव। ७. अंत।
वि० [सं० अ=नहीं+पाद प्रा० पाय=पैर] बिना पैर का लंगड़ा।
वि० [सं० अनुपाय] १. जिसके पास कोई उपाय न रह गया हो। निरुपाय।
२. निर्धन।

अपायी वि० १. नष्ट होने वाला। नश्वर।
२. अस्थिर। अनित्य।
३. अलग रहने या होने वाला।
४. हानिकारक।

अपार (अ+पार) वि० १. जिसका पार न हो। अनन्त। अपरिमित। असीम।

उ०—अकथ अपार भवपंथ के बिलोको।
भू० १/१२८

२. बहुत अधिक। असंख्य।
३. उग्र। तीव्र। प्रचंड।
पुं० १. समुद्र। सागर।
२. नदी के सामने वाला किनारा।

अपारदर्शी (अपार+दर्शी) वि० जो पारदर्शी न हो। जिसके उस पार की चीज न दिखाई दे।

अपारमुखी (अपार+मुखी) वि० असंख्य धाराओं वाली

उ०—गंग हजारमुखी गुनि 'केसो' गिरा मिली मानो अपारमुखी ह्वै। के० II, ११/३०५

अपारथ (अप+अर्थ) वि० १. अर्थहीन। निरर्थक। व्यर्थ।

उ०—स्वारथ न सूझत, परारथ न बूझत, अपारथ ही झूझत, मनोरथ मर्यो फिरै।
दे० I, २०/३६

२. अनुचित। अशुद्ध। दूषित अर्थवाला।
३. जिसका कोई उद्देश्य, प्रभाव या फल न हो। निष्प्रयोजन। निष्फल।
पुं० साहित्यशास्त्र में वाक्यार्थ के स्पष्ट न होने का दोष-विशेष।

अपारु—अपारू वि० दे० 'अपार'।

अपारौ वि० दे० 'अपार'।

उ०—ममता-घटा, मोह की बूंदैं, सरिता मैन अपारौ। सूर० वि०/२०६/५७

अपावन (अ+पावन) वि० जो पावन या पवित्र न हो। अपवित्र। अशुद्ध। अशुचि।

अपाहज—अपाहिज वि० १. अंगहीन।
२. लंगड़ा-लूला। ३. काम न करने योग्य। ४. आलसी। निकम्मा।

उ०—ईसुरी के असराप अधोमुख ऊरध बाहु अपाहिज पांगे। दे० I, ४७/२४०

अपीच वि० १. सुन्दर। मनोहर। छविमान। रूपवंत।
२. स्वच्छ। निर्मल। साफ।
३. अच्छा। बढ़िया।

उ०—फहर गई धौं कबे रंग के फुहरान में, कैधों तरावोर भई अतर-अपीच में।
प० ६०/३१९

अपीन (अ+पीन) वि० हल्का। क्षीण। कृश। जो मोटा और मांसल न हो।

अपीव (अ+पीव) वि० न पीने योग्य। अपेय।

उ०—ह्वै है अधिक अपीव जीव कोउ नीर न छ्वैहैं।
दे० दी० २०२

अपु सर्व० अपना। निजी। आप। स्वयं।
अव्य० आपस में।

उ०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु में भैया-भैया। सत्य०

अपुन सर्व० आप। स्वयं। हम-तुम। दोनों।
मु० अपुन करि—अपना करके। अपना समझकर। अपने अनुकूल बनाकर।

उ०—तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावं पकरैंगौ। सूर० वि०/७५/२१

अपुनपौ (अपना+पौ) पुं० १. अपनपौ। अपनापन। स्वत्व। निजता।
२. संज्ञा। सुध। ज्ञान।

उ०—अपुनपौ, आपुन ही बिसर्यौ।
सूर० २/२६/१०१

३. आत्मगौरव। मान। मर्यादा।

उ०—बाकौं मारि अपुनपौ राखै, सूर ब्रजहिं सो जाइ। सूर० १०/६०/२२६

४. अपनायत। आत्मीयता। सम्बन्ध।

उ०—अगनित गुण हरिनाम तिहारैं, अजा अपुनपौ धारौ। सूर० वि०/१५७/४३

अपुनर्भव (अ+पुनर्भव) पुं० जन्म न लेना। मोक्ष। मुक्ति। निर्वाण। जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाना।

उ०—मुक्ति, अमृत, कैवल्य पद, अपुनर्भव, अपवर्ग।
नं० २६/६८

अपुने—अपुनौ सर्व० अपना। स्वयं।

उ०—अपुने हिय तें दूरि करौ सब दोस हमारे।
नं० १६/१६

अपुने जान—अपने विचार से। अपनी सूझ-बूझ से। अपने ज्ञान से।

अपुव्व वि० अपूर्व। अद्भुत। विचित्र। अनोखा।

अपुस पुं० १. आपस। परस्पर। २. रिश्ता, सम्बन्ध, नाता। ३. पास-पड़ोस।

अपूठ— सक० १. विध्वंस या नाश करना। चौपट या विदीर्ण करना।
२. चीरना-फाड़ना। ३. उलटना-पलटना।

अपूठा (अ+पुष्ट) वि० १. जो पुष्ट या प्रौढ़ न हो। कच्चा। अप्रौढ़।
२. जिसे ठीक व पूरा ज्ञान न हो।
३. जो पूर्णता तक न पहुँचा हो। अपरिपक्व।
४. अजानकार। अनभिज्ञ।

५. अद्‌भुत । विलक्षण ।

६. उलटा । विपरीत ।

उ०—रावन हति, लै चलौं साथ ही, लंका धरौं अपूठी । सूर० ६/८७/१८०

अपूत[1] वि० १. अपवित्र ।

२. जो परिष्कृत या स्वच्छ न हो, गंदा या मैला ।

अपूत[2] वि० [अ+पूत=पुत्र] पुत्रहीन । निस्संतान । निपूता ।

पुं० कपूत । बुरा लड़का ।

अपूप पुं० यज्ञ का हविष्यान्न विशेष । पुआ ।

अपूर[1] (आ+पूर्ण) वि० १. आपूर्ण । भरा-पूरा । भरपूर । २. पूर्ण । पूरा । ३. बहुत अधिक ।

उ०—मजलिस लखि रीझो नृपति दीन्हो दान अपूर । बो० ६६/४२

आ+पूर्ण) सक० १. पूर्ण करना । भरना । आपूरित करना ।

२. फूंकना । बजाना ।

अपूरना क्रि०सं०

—आ वि० १. भरा हुआ । २. फैला हुआ । व्याप्त ।

अपूर[2] (अ+पूर्ण) वि० अपूर्ण । न्यून । कम ।

अपूरणता स्त्री० अधूरापन । न्यूनता । कमी । ऊनता ।

अपूरब (अ+पूर्व) वि० १. अपूर्व । अनोखा । २. उत्तम । ३. पश्चिम । ४. अभूतपूर्व । ५. नूतन, नया, नवीन ।

उ०—दरसि अपूरब रसिक को, होइ कामबस नारि । कृ० ११६/३०

—ई स्त्री० नूतनता । नवीनता । अनूठापन । नयापन ।

अपूरबु—अपूर्ब वि० दे० 'अपूरव' ।

अपेइ (अ+पेय) वि० अपेय । न पीने योग्य । जिसके पान करने का निषेध है—शराब और ताड़ी आदि ।

उ०—कौन गनै ऊखन, गनै न सुर रुखन, पियै न सुख जूखन पियूखन अपेइ कै । दे० I/१३/४६

अपेख—अपेष (अ+पेख=प्रेक्ष) वि० अदृष्ट ।

उ०—कुंचित केस सुदेस तिलक रुचिर माल उर माल मोतिन, की बीच अपेष करे ।] ब० १६०/१०६

अपेखे क्रि०वि० विना देखे ।

अपेय वि० दे० 'अपेइ' ।

उ०—पूत भई जहँ पूतना प्रभुहिं अपेय पिवाइ । नं० ६/२०६

अपेल [अ=नहीं+पेलना=दबाना] वि० १. जो टाला न जा सके । अटल । दृढ़ ।

उ०—ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल रेल-रेला हैं । उ० ७६/७६

२. पक्का । ३. मान्य । अनुल्लंघनीय ।

अपैठ (अ+पैठ) वि० जहाँ पैठ (प्रवेश) न हो सके । अगम । दुर्गम । जहाँ कोई प्रविष्ट न हो सके । अप्रवेश्य ।

अपोच (अ+पोच) वि० १. जो नीच न हो, पापी न हो, कायर न हो ।

२. उदार । महान् । ३. बड़ा, श्रेष्ठ, उत्तम ।

उ०—ताहि विषाद बखानहीं जे कबि सदा अपोच । प० ५०१/१८५

अपोढ़—अपौढ़ (अ+प्रौढ़) वि० १. अप्रौढ़ । जो प्रौढ़ न हो । जो युवा न हो ।

उ०—ढीठ्यौ दै बोलति, हँसति पोढ़-बिलास अपोढ़ । बि० ३८७/१५६

२. बच्चा । नासमझ ।

३. निरक्षर । अपढ़ ।

अप्रमान (अ+प्रमाण) पुं० जो प्रमाण न हो । अदृष्टान्त ।

उ०—गर्ग हो निसर्गभाव सर्ग अप्रमान हो । के० III, ५४/७३५

अप्रतीति (अ+प्रतीति) स्त्री० प्रतीति या विश्वास का अभाव ।

उ०—होइ कि नहीं सोच मति आँनहि अप्रतीति हृदये तें टारि । सुं० ३८

अप्रवानी (अ+प्रमाण) वि० अप्रमेय । अज्ञेय ।

उ०—जड़ चेतन द्वै भेद हैं, ऐसे समुझानी जड़ उपजै बिनसै सदा चेतन अप्रवानी । सुं० २०७

अप्रस्तुत (अ+प्रस्तुत) वि० जो प्रस्तुत या विद्यमान न हो । अनुपस्थित । जिसकी चर्चा न आयी हो । अप्रासंगिक ।

पुं० १. अपमान । २. इतर विषय ।

उ०—जहँ प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत को ज्ञान । म० १६२/३२६

—प्रशंसा स्त्री० एक अलंकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत का बोध कराया जाय ।

अप्राकृत (अ+प्राकृत) वि० जो प्राकृत न हो । अस्वाभाविक । असाधारण ।

उ०—प्राकृत धर्म रहित अप्राकृत निखिल धर्म सहित साकार। गो० ५६४/२११

अप्रिय (अ+प्रिय) वि० जो प्यारा न हो। अरुचिकर। नापसंद।

उ०—सुनि कै प्रिय के अप्रिय बैन। ज्यौं कोउ इतर कहै दुख दैन। नं० २६/२७६

पुं० शत्रु। बैरी।

अप्प—अप्पन सर्व० अपना। निजी। स्वयं।

उ०—अप्प बुद्धि ये सरिसा (सरिसा) पंती उघरिया गुरू लट्टू देहु। भि० २/१७१

उ०—अप्पन हित मैं देत हूँ तो तोहि द्वार पे ठाँव। र० १८/३४३

अप्पु[1] (आप्) पुं० जल।

उ०—भनि भूपन सब भूमि घेरि किन्हिय सु अप्पु-बस। भू० ५७/१३८

अप्पु[2] सर्व० दे० 'आप'।

अप्सरा स्त्री० १. स्वर्ग की नर्तकी। दिव्य स्त्री। परी। २. परम सुन्दर स्त्री। ३. जलकण। वाष्पकण।

अफजूँद वि० आवश्यकता से अधिक। अनावश्यक।

उ०—रंज ओ नाज नमूद सनम्, बेताब शुदम् अफजूंद कुदरत। गं० २३७/७१

अफताब—अफताबा (आफताव) पुं० सूर्य।

उ०—झरत जहँ नूर जहूर असमान लौं रुह अफताब गुरु कीन्ह दाया। भीखा०

अफना— अक० उत्तेजित होना। उबाल खाना। घबराना।

उ०—अरु ताटंक कमठ घूँघट उर, जाल बाझि अफनात। सूर० १०/१२०६/५४३

अफनात व०कृ०

अफयूँ (अफयून) स्त्री० अफ़ीम।

उ०—अफयूँ मदक चरस के व चंडू के बदौलत। प्यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती। भा० II, ७९२

अफर— अक० १. इतना अधिक भोजन करना कि पेट फूल जाय।

२. अघाना। तृप्त होना।

३. वायु आदि के प्रकोप के कारण पेट फूलना।

४. किसी बात की अधिकता से ऊबना।

अफरत व०कृ०। अफरान्यो भू०कृ०।

—आ० पुं० पेट फूलना। अजीर्ण या वायु-विकार से पेट फूलने का रोग-विशेष।

वि० तृप्त, खाये हुए। सन्तुष्ट।

—आई० स्त्री० अघाना। परितृप्ति। अफराना। अफरा रोग।

अफल (अ+फल) वि० १. (वृक्ष) जिसमें फल न लगता हो या न लगा हो। फलहीन।

२. निष्फल। विफल।

पुं० झाऊ का वृक्ष।

अफला स्त्री० १. वह स्त्री जिसके सन्तान न होती हो। बाँझ। २. आँवला। ३. घृत कुमारी, घी-कुँवार।

अफसर पुं० हाकिम। नायक। सरदार। प्रधान। अधिकारी। मुखिया।

अफ़ीम स्त्री० दे० 'अफयूँ'।

—ई वि० दे० 'अफ़ीमची'।

—ची पुं० अफ़ीम खाने का आदी। नियमित अफ़ीम खाने वाला व्यक्ति।

अफुल्ल (अ+फुल्ल) वि० फूल या वृक्ष जो फूला या खिला न हो। अविकसित।

अफेन (अ+फेन) वि० जिसमें फेन न हो। फेन-रहित।

पुं० अफ़ीम।

अफैलाव (अ+फैलाव) पुं० फैलावट-रहित। संकीर्ण। विस्तार-हीन।

अबंध (अ+बंध) वि० बन्धन-रहित। न बंधा हुआ।

अबंधुर (अ+वन्धुर=निम्नोन्नत) वि० १. समतल। सपाट। २. असुन्दर।

उ०—गज दंतनि कंध धरे बिबि बंधु महा गुन सिंधु अबन्धुर से। दे० I, १३४/२६

अब क्रि०वि० इस समय। इस क्षण। अभी। आजकल।

उ०—असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै। सूर० वि०/१७/५

—ताईं क्रि०वि० अब तक। इस समय तक। आज तक।

—लौं—लौं—लौ क्रि०वि० इस समय तक। अब तक। इस क्षण तक।

—हिं—है क्रि०वि० अभी हाल। इसी समय।

उ०—लै मधुराधर के मधु को, अबहै मधुमास मधुव्रत मातो। दे० I, ८४२/१८९

अबका पुं० एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल या रेशम से रस्सियाँ बनती हैं। सेवार।

अबगत (अव+गति—गत) वि० दे० 'अवगत'।

अबगाह— अक० दे० 'अवगाह'।

सक० दे० 'अवगाह'।

अवगाहत व०कृ० अवगाह्यौ भू०कृ०।

अबघर (औघड़) पुं० दे० 'अवघर'। अंड-बंड, उलटा-पलटा।

वि० दे० 'अवघर'।

अबड़-धबड़ वि० १. बेजोड़। वेमेल। असंगत। २. भद्दा। भोंड़ा। ३. जल्दी समझ में न आने वाला। ४. विक्षिप्त। ५. अस्पष्ट। वेसुरा।

अबतंस पुं० दे० 'अवतंस'।

अबताल पुं० स्थान-विशेष का नाम।

उ०—पच्छिम पुरतगाल, कासमीर, अबताल। गं० ३०७/९३

अबदुल्लह (व्यक्तिवाचक) पुं० मधुकरशाह से पराजित पठान योद्धा।

उ०—सँदखान तिन लीनो लूटि। अबदुल्लह खाँ पठ्यो कूटि। के० III, ३७/४८७

अबद्य[1] (अ+वद्य) वि० १. त्याज्य। अकरणीय। २. निन्द्य।

उ०—कहौ विप्र कैसे वनै ये अवद्य लखि दोय। बो० ७८/१५९

अबध्य[2] (अ+वध्य) वि० दे० 'अवध्य'।

अबध[1] [अ+वद्ध] वि० जो बंधा न हो। आबद्ध।

अबध[2] [अ+बाध्य] दे० 'अबाध्य'।

अबध[3] [अ+वध्य] दे० 'अवध्य'।

उ०—तब हीं अवध जानि कै राख्यौ मन्दोदरि समुझाइ। सूर० ९/१०४/१८५

अबध[4] (अवधि) स्त्री० दे० 'अबधि'।

अबध[5] स्त्री० दे० 'अवध'।

अबधि—अवधि स्त्री० १. नियत, निश्चित या सीमित समय।

उ०—दूसरी अवधि 'द्विजदेव' राधिका के आगें, बाँचै कौन नारि जौंन पीढ़ छतिया की है। शृं० २३७/६८०

२. कोई काम पूरा करने या होने का निश्चित किया हुआ समय। निर्धारित समय।

३. सीमा। हद। पराकाष्ठा।

उ०—नखसिख कुसुमविसिप की सेना, कौतुक अवधि रची। सूर० १०/२४४८/१३९

अ० तक। पर्यंत।

अबध्य (अ+वध्य) वि० दे० 'अवध्य'।

अबधू[1] (अवधूत) वि० अज्ञानी। अबोध। मूर्ख।

पुं० दे० 'अवधूत'।

अबधू[2] (अ+वधू) वधूविहीन।

अबधूत पुं० दे० 'अवधूत'।

अबन पुं० आबाद स्थान।

उ०—मठ, निकाय, मंदिर, अबन, निकेतायतन सद्म। नं० २/९४

अबनि स्त्री० दे० 'अवनि'।

अबर[1] (अ+वल) वि० १. निर्बल। शक्तिहीन। दुर्बल। कमजोर।

अबर[2] वि० दे० 'अवर'।

क्रि०वि० इस बार।

अबर[3] पुं० दे० 'अभ्र'।

अबरक (अभ्रक) पुं० पत्तरों या वरकों के रूप में पाई जाने वाली एक प्रसिद्ध चमकीली भुरभुरी सफेद धातु। अवरख। अभ्रक।

अबरन [अ+वर्ण] वि० १. जिसका कोई रूप या रंग न हो। वर्ण-रहित। बदरंग।

उ०—अवरन, बरन सुरति नहिं धारै। सूर० १०/३/२०६

२. जो आस-पास के रंगों से भिन्न रंग या प्रकार का हो।

३. अवर्णनीय। अकथनीय।

पुं० १. अक्षर-रहित। वर्णेतर। २. अकार। ३. कुजाति। वर्णाधम।

अबराध— (आराध) सक० उपासना करना। आराधना करना। दे० 'अवराध'।

अबरेख— सक० दे० 'अवरेख –'।

अबरोह— (अवरोह) अक० १. उतरना। गिरना। २. चढ़ना। ३. अवरोधन। रोकना। मना करना। दे० 'अवरोह'।

अबर्न वि० दे० 'अबरन'।

उ०—जो तुम देही अबर्न कै लेखौ। देह धरे बहु बर्ननि देखौ। के० III, ५/६६३

अबर्न्य (अ+वर्ण्य) वि० १. अवर्णनीय। जो वर्णन करने के योग्य न हो।

पुं० २. जो उपमेय या प्रस्तुत न हो, अप्रस्तुत या उपमान।

उ०—कहूँ अबर्न्यन कौ कहत भूपन बरनि विवेक। भू० ११२/१४६

अबलंब— सक० दे० 'अवलंब'।

—न पुं० अवलंबन। आश्रय। सहारा। शरण।

अबल (अ+वल) वि० निर्बल। बलहीन। कमज़ोर। अशक्त।

उ०—अबल प्रह्लाद, बलि दैत्य सुख ही भजत, दास ध्रुव चरन सीस नायौ ।
सूर० वि०/११६/३३

—ई स्त्री० १. जो बली न हो । निर्बल । शक्ति-हीन । २. पंक्ति । कतार । ३. समूह ।
उ०—बर विहंग अबली जहँ भाँति-भाँति की आवति
प्रे० १, पृ० २

अबलख वि० सफेद और काले रंग का या सफेद और लाल रंग का, चितकबरा । दोरंगा ।
पुं० घोड़े की एक किस्म विशेष ।
उ०—अति ही अरबीले अबलख लीले गति गरबीले महि खूदैं ।
प० ६५/२८७

अबलखा स्त्री० मैना की तरह की एक काले रग की चिड़िया, जिसकी छाती सफेद रंग की होती है ।

अबलनिया स्त्री० स्त्री । नारी । अबला ।

अबला स्त्री० १. स्त्री । नारी । औरत ।
२. अनाथ स्त्री ।
उ०—मन मैं डरी, कानि जिनि तोरै, मोहि अबला जिय जानि ।
सूर० ६/७६/१७६
३. पत्नी ।
उ०—जोति सों चित्र की पूतरी काढ़ी कि ठाढ़ी मनोजहि की अवला सी । भि० I ६१/१०३

—ई० स्त्री० १. नारीपन । त्रिया-चरित्र । नारी चरित्र । २. नारीत्व । ३. निर्बलता । कमज़ोरी ।

अबलीक वि० अनिन्द्य । निन्दा-रहित । शुद्ध । निष्कलङ्क । निर्दोष ।

अबलेहु पुं० दे० 'अवलेह' ।

अबलोक— अक० देखना । दे० 'अवलोक' ।
उ०—'नंददास' ललितादिक ओट भयें अबलोकत ।
नं० ४७/२६५
अबलोकत व०कृ० ।
अबलोकी, अबलोक्यौ भू०कृ० ।

अबस (अ+वश) वि० दे० 'अवश' ।
क्रि०वि० व्यर्थ ।

अबस्त स्त्री० अवस्था । वय ।
उ०—नव अबस्त बिरहीतन जबही । अतन सतन बरनत कवि तबहीं ।
बो० ६/३६

अबस्य क्रि०वि० विवशता में ।
उ०—जब अबस्य बीतत है जैसी । तब सहाय साजत विधि तैसी ।
बो० ५५/३५

अबहित्थ—अबहित्था स्त्री० दे० 'अवहित्थ' ।

अबा[1] पुं० अंगे से नीचा एक ढीला-ढाला वस्त्र विशेष, अचला, चोगा ।

अबा[2] पुं० दे० 'अवाँ' ।

अबाज स्त्री० आवाज़ । शब्द । ध्वनि ।

अबाती[1] (अ+वात+ई) वि० १. वायु-रहित । बिना हवा का । २. जिसमें वायु का प्रवेश या संचार न हो सके । ३. जो वायु से काँप न रहा हो । ४. भीतर ही भीतर सुलगने वाला ।
उ०—जौ पै लगनि लगाइ एती अगिनि अबाती सी ।
प० ३७३/१६०
५. बिना बत्ती का दीपक ।

अबाती[2] (अवा+ती) स्त्री० आगमन । आना ।

अबाद[1] (अ+वाद) वि० जो वादशून्य हो । निर्विवाद ।

अबाद[2] (आवाद) वि० आबाद । बसा हुआ ।

अबाध—अबाधा वि० दे० 'अबाध्य' ।
—इत वि० दे० 'अबाध्य' ।
उ०—साधु रीति माधुरी अबाधित अगाध बोल ज्यों दुगध सिंधु, त्यों मुगध बुध गोत है ।
दे० I, ७/४८

अबाध्य (अ+बाध्य) वि० १. जो रोका न जा सके । बे-रोक ।
२. जिस पर किसी को अधिकार या नियन्त्रण न हो । मनमाना । स्वच्छंद ।
३. अनिवार्य । ४. अपार । असीम ।
५. पूर्ण । परम ।

अबानरी (अ+वानर+ई) वि० बन्दरों से रहित । वानर-शून्य ।
उ०—अमानुषी भूमि अबानरी करौं ।
के० II, ३०/३१७

अबान (अ+वाण) वि० जिसके हाथ में बाण न हो । शस्त्रहीन । निहत्था ।

अबानी (अ+वाणी) वि० १. वाणी-रहित ।
२. मौन । चुप । बेजुबान ।
३. बुरी वाणी । दुर्वचन । बदजबान ।

अबार[1] [अ+वेला] स्त्री० दे० 'अबेर' ।
उ०—सूरदास प्रभु कहत चली घर, बन में आजु अबार लगाई ।
सूर० १०/४७१/३३८

अबार[2] क्रि०वि० शीघ्र ।
[अ+ःवाल] वि० दे० 'अबाल' ।

अबारजा पुं० रोजनामचा । जमाखर्च की बही ।
उ०—करि अबारजा प्रेम प्रीति की, असल तहाँ खतियावै ।
सूर० वि०/१४२/३९

अबाल (अ+बाल) पुं० १. जो बालक न हो । युवा । २. पूरा । पूर्ण ।

—आ वि० जो बाला न हो । जो किशोरी न हो । युवती । तरुणी ।

अबाल-बृद्ध (आबालवृद्ध) अ० बच्चे से लेकर बुड्ढे तक सभी ।

अबास (आ+वास) पुं० दे० 'आवास' ।

उ०—चलौं न जाइ देखियै री, वे राधा को जु अबास । सूर०

उ०—ऊँचे अवास, प्रति ध्वज अकास । के० II, ३७/२३२

—ई—उ वि० १. आवासी । रहने वाला । निवासी ।

२. मकान-मालिक । गृहस्वामी ।

अबिकारी (अ+विकारी) वि० १. जिसमें विकार न हुआ हो न हो सकता हो । विकार-शून्य ।

२. ब्रह्म । ईश्वर । अरूप । मायाकृत विचार से रहित ।

उ०—निजु ये अबिकारी, सब सुखकारी, सबहीं विधि संतोषी । के० II, ४५/२६६

३. व्याकरण में अव्यय शब्द जिसके रूप में कभी विकार नहीं होता । जैसे—अत:, परन्तु, प्राय: और बहुधा आदि ।

अबिंगि (अ+व्यंग्य) वि० दे० 'अव्यंगि' ।

अबिंधन (अप्+इन्धन) पुं० १. बड़वानल । २. समुद्र ।

अबिंध्य पुं० रावण का एक मंत्री ।

[अ+विंध्य] वि० १. जो बींधा न जा सके । २. न बंधे जाने योग्य ।

अबिगत (अ+विगत) वि० दे० 'अविगत' ।

उ०—अविगत-गति कछु कहत न आवै । सूर० वि०/२/१

अबिचल वि० दे० 'अविचल' ।

उ०—कह्यो विप्र के चित्त में अविचल एक सनेह । बो० ४१/८५

अबिचारित (अ+विचारित) वि० १. बिना विचारा । बिना सोचा । २. बिना समझा-बूझा ।

अबिछिन्न (अ+विच्छिन्न) वि० दे० 'अविच्छिन्न' ।

क्रि०वि० निरन्तर । सतत । सदा ।

अबिताली पुं० अफ्तारी । वह अफसर जो बड़े राजा की यात्रा से पहले आगे के मुकामों में जाकर उस राजा के ठहरने और आराम का प्रबंध करता है ।

उ०—निज दूत अभूत जरा के किधौं अबिताली जरा जन जाइ के । के० I, १४/११३

अबिदात (अव+दात) वि० १. उज्ज्वल । स्वच्छ । साफ । २. पवित्र । ३. सुन्दर । ४. श्वेत ।

अबिद्या (अ+विद्या) स्त्री० दे० 'अविद्या' ।

अबिध—अबिधि (अ+विधि) वि० १. जो नियम या विधि से न हो । अव्यवस्थित ।

२. नियम-विरुद्ध ।

उ०—राग-द्वेष, विधि-अविधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारी । सूर० वि०/१५७/४३

क्रि०वि० नियम या विधि का ठीक तरह से बिना पालन किए । अनियमित रूप से ।

अबिद्ध [अ+विद्ध] वि० दे० 'अविद्ध' ।

अबिनति [अ+विनती] पुं० ढिठाई । लड़ाई ।

उ०—जुगल खंजन करत अविनति, बीच कियौ बनराइ । सूर० १०/२२५/२७३

अबिनास [अ+विनाश] वि० जिसका कभी नाश न होता हो । अक्षय ।

उ०—प्रथम भूमिका अंकुरै दूजी होत प्रकास । फलै तीसरी भूमिका फल अद्भुत अविनास । के० III, ४६/७६६

—ई वि० जिसका कभी नाश न हो सकता हो, फलत: नित्य या शाश्वत ।

उ०—अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै मरै न सोइ । सूर० २/३६/१०४

अबिबाद [अ+विवाद] पुं० बिना विवाद की स्थिति । विवाद का अभाव ।

उ०—ब्याधि बहुरि जड़ता कहत कवि कोबिद अविवाद । म० ३६६/२६०

वि० १. जिसमें विवाद न हो । विवाद-रहित । २. निर्विवाद ।

अबिबेक [अ+विवेक] पुं० १. विवेक का अभाव । अविचार । अज्ञान ।

उ०—जा हिय में अविवेक तो छायो तहाँ विवेक । प० १८५/५५

२. नादानी । नासमझी । ३. मिथ्या ज्ञान । ४. न्याय का अभाव । अन्याय ।

—ता स्त्री० विवेकशील न होने की अवस्था या भाव ।

—ई० वि० १. विचारहीन । २. अज्ञानी । ३. मूर्ख । दे० 'अविवेकी' ।

अबिर—अबीर पुं० १. रंगीन बुकनी । गुलाल । अबरक का चूरा जो कई रंगों का, मुख्यतः गुलाबी रंग का होता है, जिसे होली में एक-दूसरे के चेहरे पर मलते हैं ।

उ०—कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं ।
प० ५०३/१८६

२. पुष्टमार्गीय श्वेत रंग की बुकनी को अबीर कहते हैं और होली के दिनों में मन्दिरों में उड़ाते हैं ।

अबिरल [अ+विरल] वि० १. जो विरल अर्थात् दूर-दूर पर स्थित न हो फलतः साथ सटा या लगा हुआ ।

२. घना । सघन । निविड़ ।

उ०—अलक अबिरल, चारु हास-बिलास, भृकुटी भंग । सूर० १०/६२७/३८७

३. अपृथक् । अभिन्न ।

४. निरन्तर । लगातार ।

उ०—कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले, कोऊ चले कहत संदेस अबिरल से ।
उ० ११२/११२

अबिरुद्ध [अ+विरुद्ध] वि० दे० 'अविरुद्ध' ।

उ०—कर कपाल, सिर माल व्याल, बिष भूति बिभूषन । नाम सुद्ध अबिरुद्ध, अमर अनवद्य अदूषन । कवि० १५१/७८

अबिरोध [अ+विरोध] पुं० दे० 'अविरोध' ।

अबिलंब [अ+विलम्ब] क्रि०वि० तुरन्त । शीघ्र । तत्काल ।

उ०—जय, जय, बलभद्र बीर धीर गंभीर अबिलंब अवंबहारी । घ० ५५०

अबिलोक[१]— [अ+विलोक] सक० न देखना ।

अबिलोक[२] (अव+लोक) सक० ध्यान से देखना ।

उ०—जान प्रानप्यारे के बिलोकें अविलोकिबे कों ।
घ० क० २०८/१५३

अविलोकित्र क्रि०सं०

अबिषाद [अ+विषाद] पुं० खुशी ।

उ०—रग सोभमान सरस्वती जनु अंबिका अबिषाद ।
के० III, ५/७०३

वि० दुःखरहित । प्रसन्न ।

अबिस्कार पुं० आविष्कार । किसी बात का पहले-पहल पता लगाना । नवीन खोज । प्राकट्य । ईजाद ।

अबिहित [अ+विहित] वि० १. जो उचित या ठीक न हो ।

२. न करने योग्य । अनुचित ।

३. अशास्त्रीय । जिसका शास्त्रों में विधान न हो या निषेध हो ।

उ०—अबिहित बाद-बिबाद सकल मत इन लगि भेष धरत । सूर० वि०/५५/१६

अबी—अबै—अबैं क्रि०वि० दे० 'अभी' ।

उ०—हो रघुनाथ, निसाचर कैं संग अबै जात हौं देखी । सूर० ९/६४/१७०

अबुध [अ+बोध] वि० १. मूर्ख । नादान । नासमझ । अज्ञानी । २. अनभिज्ञ ।

३. संज्ञाशून्य । सुध-बुध-रहित ।

उ०—एक पहर यों अबुध ह्वै रही । पुनि निज मात बात अस कही । नं० ४३०/१२१

अबुधि—अबुद्धि [अ+बुद्धि] वि० जिसे बुद्धि न हो । बुद्धिहीन । मूर्ख ।

उ०—हम अबुधि कहु जोग जानैं, सपथ हमसों लेहु ।
सूर० १०/३९२३/४७६

स्त्री० बुद्धि का अभाव । नासमझी ।

अबूझ—अबूझा [अ+बूझ] वि० १. जिसे जाना, बूझा या समझा न जा सके । अज्ञेय ।

२. जिसे बुद्धि या बोध न हो । अबोध । नासमझ । अज्ञ । मूर्ख ।

३. अपरिचित ।

उ०—बूझै यो न एते पै अबूझन को भ्राता है ।
प० ३२१/१४९

अबूत [अ+बुध] वि० अबोध । अज्ञानी ।

क्रि०वि० व्यर्थ । वृथा ।

अबे अव्य० अरे । हे । अपने से छोटों को पुकारने का शब्द । अपमान या तिरस्कार सूचक सम्बोधन ।

अबेध [अ+विद्ध] वि० जो बेधा न गया हो अथवा बेधा न जा सकता हो । अनबिंधा । अनवेधा ।

अबेर—अबेरौ—अबेर्यौ (अ+वेला) स्त्री० देर । विलम्ब । क्रि०वि० निश्चित समय के पीछे ।

उ०—चकित भई ग्वालिनि, तन हेरौ । माखन छाँडि गई मथि वैसेंहि, तबतें कियौ अबेरौ ।
सूर० १०/२७१/२८४

क्रि०वि० बिना देर लगाये । जल्दी । शीघ्र ।

अबेस[१] [आ+वेश]

पुं० आवेश । जोश ।

अबेस[2] [अ+वेष] पुं० कुवेश। कुरूपता। बुरा पह-
नावा।
उ०—राजा रंक अबेस, अहो हरि होरी है।
सूर० १०/२९१४/२६०

अबैन [अ+वैन] वि० जो बोल न रहा हो। चुप।
मौन।
उ०—लिये सुचाल बिसाल बर समद सुरंग अबैन।
प० १०६/४५
पुं० अनुचित या न कहने योग्य बात। अवाच्य।
[अबै+न] (अव्य यौ०) अभी नहीं।

अबोध [अ+वोध] पुं० अज्ञान। नासमझ। मूर्ख।
वि० छोटी अवस्था के कारण जिसे सांसारिक
बातों का ज्ञान न हुआ हो।

अबोल [अ+वोल] वि० १. चुप। मौन।
२. जिसके विषय में कुछ बोल या कह न
सकें। अनिर्वचनीय।
पुं० १. न बोलने या चुप रहने की अवस्था या
भाव। चुप्पी।
२. कटु वाणी। कुबोल। बुरा बोल।
दुर्वचन।
३. क्रोध के कारण न बोलना।
क्रि०वि० बिना बोले हुए। चुपचाप।
—आ वि० [स्त्री० अबोली] १. जो बोला या
कहा न गया हो। २. न बोलने वाला।
पुं० किसी से खिन्न या दुःखी होने के कारण
उससे न बोलना। रूठने के कारण होने
वाला मौन।

अब्ज पुं० १. जल से उत्पन्न वस्तु। २. कमल।
३. शंख। ४. चन्द्रमा। ५. धन्वंतरि।
६. कपूर। ७. सौ करोड़ या एक अरब की
संख्या।
उ०—पुंडरीक, पुष्कर, कमल, जलज, अब्ज, अंभोज।
नं० ९७/७६
—नाल पुं० कमलनाल। कमल की डंडी।

अब्द[1] पुं० १. वर्ष। २. बादल। मेघ।
उ०—अब्द निनद करि क्रुद्ध कुटिल अरि जुझ्झि
मरत लरि। भि० I, ४२/२२८
३. नागर–मोथा। ४. कपूर। ५. आकाश।
६. एक पर्वत।

अब्द[2] पुं० १. गुलाम। दास। जैसे अब्दुल्ला=ईश्वर
का दास।
२. अनुचर। सेवक।
—निनद पुं० मेघ-गर्जन।
उ०—अब्द निनद करि क्रुद्ध कुटिल अरि जुझ्झि मरत
लरि। भि० I, ४२/२२८

अब्बुल फजल पुं० अकबर के दरबार का प्रमुख कवि
अबुल फजल जिसकी हत्या वीरसिंहदेव के
द्वारा हुई थी।
उ०—तामें एकै बैरी लेख। अब्बुलफजल कहावै
सेख। के० III, ५७/५०२

अब्धि पुं० १. तालाव। सरोवर। २. झील। ३. समुद्र
४. सात की संख्या।
—ज पुं० १. समुद्र से उत्पन्न वस्तु। २. शंख।
३. चन्द्रमा। ४. अश्विनीकुमार।
—जा स्त्री० लक्ष्मी। वारुणी।
—शयन पुं० विष्णु।
—सार पुं० रत्न।

अब्यंगि [अ+व्यंग] वि० व्यंग्य-रहित।
उ०—प्रीतम कौं जब सागस लहै। ब्यंगि अब्यंगि
बचन कछु कहै। नं० १२९/१२९

अब्यपेत पुं० अव्यपेत यमकालंकार। जहाँ पदों में अन्तर
न हो, वहाँ अव्यपेत यमकालंकार होता है।
उ०—अव्यपेत सव्यपेत पुनि, यमक बरनि दुहुँ देत
अव्यपेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सव्यपेत।
के० I, ९५/२१४

अभंग [अ+भंग] वि० १. जो भंग या भग्न न हुआ
हो। अखंड, सम्पूर्ण।
२. अनाशवान्, न मिटने वाला।
३. जिसका क्रम न टूटे, लगातार।
पुं० संगीत में एक ताल जिसमें एक लघु, एक
गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं।
क्रि०वि० १. लगातार। निरन्तर।
उ०—सरद ससी बरसत मनो घन घनसार अभंग।
प० ५७/३९
२. सदैव।
—ई वि० जो किसी प्रकार भंग न हो सके
अथवा जिसका भंग करना उचित न हो।
—पद पुं० श्लेष अलंकार का एक भेद जहाँ
समूचे शब्द से ही दो अर्थ निकल आते हैं
वहाँ अभंग-पद श्लेष होता है।

उ०—कोई है अभंग, कोई पद है सभंग सोधि, देखे सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की। क० ६/२

अभंजन [अ+भंजन] वि० १. जिसका भंजन न हो सके जैसे—तरल या द्रव पदार्थ।
२. अटूट। अखण्ड।

अभई[1] क्रि०वि० दे० 'अब'।

अभई[2] वि० अभय। निर्भय। भय-रहित।

अभक्त [अ+भक्त] वि० १. जो विभक्त न हुए हों। पूरे। समूचे।
२. जो भगवान का भक्त न हो। भगवद्विमुख।

अभक्ष—अभक्ष्य [अ+भक्ष्य] वि० १. (पदार्थ) जो खाये जाने के उपयुक्त या योग्य न हो।
२. जिसे खाने का धर्मशास्त्र में निषेध हो।
३. जो खाया न जा सकता हो।

अभख [अ+भक्ष्य] पुं० दे० 'अभक्ष'।
उ०—केचित, अभख भखत न सकाहीं। मदिरा मांस पुनि खाहीं। सुं० ८२

अभगत वि० दे० 'अभक्त'।

अभपद [अभय+पद] पुं० दे० 'अभय'।
उ०—अभपद भुजदंड मूल, पीन अंस सानुकूल, कनक मेखला दुकूल, दामिनी धरखी री। सूर० १०/१३८४/५८४

अभय [अ+भय] वि० [स्त्री० 'अभया']
१. जिसे भय न हो। भय से रहित।
उ०—भव सागर में कबहुँ न झूकै अभय निसान बाजै। सूर० वि०/३६/११
२. न डरने वाला। निर्भीक।
मु० अभय देना=यह आश्वासन देना कि अब तुम्हारे लिए भय की कोई बात नहीं है।
पुं० १. परमात्मा। २. ज्ञान। ३. शिव। ४. उशीर। खस।
पुं० १. भय से मिलने वाली रक्षा। निर्भयता।
—दान (यौ०) भय से बचाने का वचन देना। भय से छुड़ाने की प्रतिज्ञा।
उ०—दीन को दयाल सुन्यो, अभयदान-दान। सूर० वि०/१२३/३४
—पद (यौ०) निर्भयता का स्थान। मोक्ष (मुक्ति)।
उ०—रंक सुदामी कियो अजाची, दियो अभय-पद ठाउं। सूर० वि०/१६४/४५
—प्रद वि० अभय देने वाला।
उ०—दससीस विभीषण-अभयप्रद जय जय जानकि रमन। कवि० ११४/६६

अभया स्त्री० १. एक विशेष प्रकार की हरीतकी या हड़ जिसमें पाँच रेखायें होती हैं।
२. दुर्गा का एक रूप। ३. नदी विशेष।
उ०—सुल्का, अभया, आर्यका, अरु पवित्रवति नाम। के० III, १७/६५६

अभर [अ+भार] वि० जो ढोया न जा सके। दुर्वह। बहुत भारी।

अभरन[1] [अ+भरना] वि० १. खाली। रिक्त।
२. जिसकी प्रतिष्ठा या मान नष्ट कर दिया गया हो। अपमानित।

अभरन[2] (आभरण)पुं० आभरण। गहना। जेवर।
उ०—सूरदास कंचन कै अभरन लै झगरिनि पहिराई सूर० १०/१६/२१५

अभरम [अ+भ्रम] वि० १. (बात) जिसमें कोई भ्रम या संदेह न हो।
२. (व्यक्ति) जिसे भ्रम या संदेह न हो। भ्रम-रहित।
३. निडर। निर्भय। ४. अचूक।
क्रि०वि० १. बिना कोई भूल किये। अचूक।
२. बिना किसी भ्रम या सन्देह के। निःसन्देह। निश्चय।

अभल [अ+भला] वि० जो भला न हो। बुरा या खराब।
अभल ताकना—किसी के सम्बन्ध में अशुभ की कामना करना।
पुं० १. भलाई या मंगल का अभाव। २. अशुभ कामना।

अभा वि० प्रभाहीन।
उ०—जग चंद बिना न विराजति जामिनि जामिनि हू बिन चंद अभा है। भि० I १४/२४६

अभाऊ [अ+भाव] वि० १. जो मन को न भावे। अच्छा न लगने वाला। २. अशोभन।
वि० [अ+भावुक] १. जो भावुक या रसिक न हो। शुष्क हृदय। अरसिक।
२. अशिष्ट। उजड्ड।
पुं० दे० 'अभाव'।

अभाग[1] [अ+भाग] वि० जिसके खंड या भाग न हो सकते हों।

अभाग[1] [अ+भाग्य] पुं० अभाग्य । दुर्भाग्य । बुरा भाग्य ।

उ०—देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की, मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ।
कवि० १८/४६

वि० अभागा ।

—आ वि० [स्त्री अभागिनी]

१. भाग्यहीन । जिसका भाग्य अनुकूल न हो। २. जिसने बहुत ठोकरें खाई हों अथवा कष्ट सहे हों।

—ई वि० १. जिसका किसी व्यापार या संपति में अंश या हिस्सा न हो। २. जिसे उसका भाग न मिला हो। ३. भाग न लेने वाला। शरीक या शामिल न होने वाला।

अभाजन [अ+भाजन] वि० १. जो उपयुक्त भाजन या पात्र न हो । कुपात्र ।

२. खराब । बुरा ।

अभाय [अ+भाव] पुं० बुरे भाव । दुष्ट भाव ।

क्रि०वि० मूर्च्छित । भावना रहित ।

उ०—पाय परे उबरि अभाय मुख छायो है ।
उ० १/१

अभार [आ+भार] पुं० उत्तरदायित्व का बोझ । दे० 'आभार' ।

उ०—छोड़ि दियो इहि बाग को बगवानहूँ अभार ।
मि० I ८५/१५

अभाव[1] [अ+भाव] पुं० १. असत्ता । अनस्तित्व । अविद्यमानता । न होना ।

२. आधुनिक नैयायिकों के मत के अनुसार वैशेषिक शास्त्र में सातवाँ पदार्थ । (कणादकृत सूत्रग्रंथ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, इन छः पदार्थ के अलावा अभाव माना गया है।) अभाव पाँच प्रकार का है, यथा (क) प्रागभाव (ख) प्रध्वंसाभाव। (ग) अन्योन्याभाव। (घ) अत्यंताभाव। (च) संसर्गाभाव ।

३. टोटा । त्रुटि । कमी । घाटा ।

अभाव[2] वि० भाव-रहित, स्नेह-रहित, लांप, अंतरिक्ष, अंतर्धान ।

अभाव[3] पुं० [अ=बुरा+भाव] कुभाव, दुर्भाव, विरोध।

—ई [अ+भावी] वि० जिसका सत्ता या स्थिति न हो सके । न होने वाला ।

—क [अ+भावक] वि० १. अरसिक, भाव-भक्ति से रहित ।

२. बुरे भाव रखने वाला । अरुचिकर विचार रखने वाला ।

३. टोटे वाला । कमी वाला ।

४. विरोधी ।

अन—नै [अ+भावन] वि० १. अप्रिय । अरुचिकर । न आने वाला ।

२. कुवेश । कुरूप । दुष्ट ।

अभास[1] (आ+भास) पुं० प्रतिबिम्ब । आभा । दे० 'आभास' ।

उ०—नाथ तुम्हारी जोति अभास। करति सकल जग मैं परकास।
सूर० १०/४३००/५७४

अभास[2] सक० प्रतीत होना । प्रतिबिम्बित होना ।

उ०—कंकन, किंकिन, भूषन जिते मोहिं श्रीकृष्ण अभासत तिते ।
नं० १३/२३१

अभासत व०कृ०

अभि[1] उप० उपसर्ग जो कुछ शब्दों के आरम्भ में लगकर निम्नलिखित अर्थ सूचित करता है—

आगे या सामने की ओर=अभिमुख ।

मात्रा या मान की अधिकता =अभिकंपन । अभिसिंचन ।

अच्छी तरह से । भलीभाँति =अभिव्यंजन । अभ्युदय ।

किसी प्रकार की विशेषता या श्रेष्ठता का सूचक =अभिनव । अभिभाषण। अभिपत्र ।

—अंतर पुं० १. मध्य । बीच । अंतर ।

उ०—मानहुँ कमल-कोप-अभिअंतर, भ्रमर भ्रमत बिनु प्रात ।
सूर० १०/२८६६/२३८

२. हृदय ।

क्रि०वि० भीतर । अन्दर । अन्दरूनी ।

—काम वि० १. इच्छुक । २. स्नेही । ३. कामुक

पुं० १. प्यार । २. इच्छा ।

—क्रमण पुं० १. आरम्भ । २. प्रयत्न । ३. आक्रमण । ४. आरोहण ।

—गमन पुं० १. पास जाना । २. संभोग । सहवास ।

—गामी वि० १. पास जाने वाला।
२. सम्भोग करने वाला।

—ग्रह पुं० १. ग्रहण। २. कलह। ३. लूट। ४. आक्रमण। ५. चुनौती। ६. शिकायत। ७. अधिकार।

—घात पुं० १. प्रहार। आघात। चोट पहुँचाना। २. विनाश।

—घार पुं० १. घी। २. होम में घी की आहुति। ३. बघार। घी का छौंक।

—चर पुं० नौकर, अनुचर।

—चार पुं० १. तंत्रोक्तमारण। मोहन, उच्चाटन आदि अनुष्ठान।
उ०—तहँ अभिचार असुर इक सटक्यो।
नं० ७/२१०
२. बुरे कामों के लिए मंत्र का प्रयोग।
३. जादू-टोना।

—चारी वि० तान्त्रिक।

—जन पुं० १. वंश। कुल। २. जन्मभूमि। वह स्थान जहाँ बाप-दादा आदि जन्मे या रहते हों। ३. घर का मुखिया या श्रेष्ठ व्यक्ति। ४. ख्याति। ५. अनुचर। हमराही।

—जात वि० १. उच्चकुल में उत्पन्न, कुलीन। २. योग्य। ३. सुन्दर। ४. श्रेष्ठ। ५. विद्वान्, बुद्धिमान्।
पुं० उच्चवंश। कुलीनता।

—जित वि० विजयी। अभिजित नक्षत्र में उत्पन्न।
पुं० १. एक नक्षत्र। २. एक लग्न। ३. दिन का आठवाँ मुहूर्त। दोपहर के एक घड़ी पहले से एक घड़ी बाद तक का समय। ४. एक यज्ञ। ५. विष्णु।

—ज्ञ वि० १. जानने वाला। २. कुशल।

—ज्ञान पुं० १. पहचानना। २. याद करना। ३. जानना। ४. पहचान। ५. निशानी। ६. मुद्रा की छाप। ७. मुहर।

—त क्रि०वि० निकट। सब ओर से। पूरे तौर से।
उ०—श्री गोपाल-चरन-सेवारत गोप-सखा सब अभित अथाही। छी० ३७/१४

—द वि० अभेद्य। भेदशून्य। एकरूप। समान।
उ०—अभिद अछेद रूप मम जान।
सूर० ३/१३/१०६

—नायक पुं० अभिनेता। स्वांगिया। नक्काल। नट।

—निवेश पुं० १. आग्रह। २. संकल्प। ३. उत्कट या दृढ़ अनुराग। ४. पक्की लगन। कार्य विशेष में दृढ़ निश्चय और मनोयोग के साथ लग जाना। ५. योग दर्शन में बताये पाँच क्लेशों में से एक—मरणभय-जनक अज्ञान।

—नंदन पुं० अभिवंदन। स्तुति। वन्दना। प्रशंसा। स्तवन।

—धान पुं० १. नाम। उपाधि। २. कथन। ३. शब्द। ४. शब्दकोश।

—नन्दन पुं० आनन्दित या प्रसन्न करना। सराहना करना। प्रोत्साहन। बधाई देना। स्वागत करना।

—नव वि० नया। बिल्कुल नया। ताजा।
उ०—अभिनव जीवन-आगमन जाके तन में होय।
म० १४/२०३

—मान पुं० गर्व। घमंड। अहंभाव।

—मानी वि० अहंकारी। घमंडी।

—मुख क्रि०वि० सामने। सम्मुख। समक्ष। आगे।
उ०—स्थाई भावन कों जिते अभिमुख रहैं सिताब।
प० ४६६/१८०

—रत वि० लीन। लगा हुआ।

—राज वि० अत्यन्त शोभित।
उ०—परम धाम जग धाम परम अभिराज उदारा।
नं० १/३१

—सर पुं० अनुचर। अनुयायी।
उ०—तपा मुंच मुग्धे अभिराम। अभिसर बलि जहँ सुंदर स्याम। नं० २४१/१३७

अभिक पुं० कामुक। लम्पट। लुच्चा। व्यभिचारी।

अभिनय—अभिनै पुं० १. खेल, नाटक आदि में आंगिक चेष्टाएँ या हाव-भाव कलात्मक ढंग से प्रदर्शित करना।
२. केवल दिखलाने के लिए अथवा किसी के अनुकरण पर की जाने वाली आंगिक चेष्टा। ३. नाटक।

अभिन्न [अ+भिन्न] वि० १. जो भिन्न न हो। एकमय। २. किसी से मिला, लगा या सटा हुआ। सम्बद्ध।

उ०—बरनत विषयी विषय कौं करि अभिन्न तद्रूप।
मति० ६८/३१०

३. जिससे कोई अन्तर या भेदभाव न रखा जाय। अंतरंग। घनिष्ठ।

—ता स्त्री० १. अभिन्न होने की अवस्था या भाव। २. एकरूपता। ३. घनिष्ठ सम्बन्ध।

—पद पुं० श्लेषालंकार का एक भेद। भिन्न पदों के हेतु श्लिष्ट शब्दों के अर्थों में भिन्नता न आए अर्थात् जो अर्थ एक पक्ष में लिया गया है वही अन्य अर्थ में भी लग सके, उसे अभिन्न श्लेष कहते हैं।

—क्रिय स्त्री० केशव के मतानुसार श्लेषालंकार का एक भेद। श्लेष में जहाँ विविध पक्षों के लिए क्रिया एक हो पर उसका फल विरुद्ध हो, वह अभिन्न-क्रिय श्लेप कहलायेगा।

उ०—बहुरयो एक अभिन्नक्रिय अविरुद्धक्रिय जान।
के० I, ३६/१६६

अभिप्राय पुं० १. किसी के पास जाना या पहुँचना।
२. वह उद्देश्य या विचार जो हमें कोई काम करने में प्रवृत्त करता है। इरादा।
३. वह उद्देश्य या ध्येय जिसकी पूर्ति या सिद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक कोई काम किया जाता है। नीयत।
४. आशय। तात्पर्य।
५. चित्रकला, मूर्तिकला आदि में वह काल्पनिक अथवा प्राकृतिक भाव जो उसमें मुख्य रूप से झलकता हो अथवा वह आशय, भाव या विचार जो अलंकारों परिरूपों आदि में अधिकतर या मुख्य रूप से सब जगह स्पष्ट दिखाई देता हो।
६. रूप। ७. सम्बन्ध। ८. विष्णु।

अभिमत [अभि+मत] वि० १. जो किसी के मत या राय के अनुकूल हो। सम्मत।
२. मनचाहा। वांछित।

पुं० किसी प्रश्न अथवा विषय के सम्बन्ध में अच्छी तरह सोच समझकर स्थिर किया हुआ निजी या व्यक्तिगत मत।

अभिमन्यु पुं० सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का बेटा।

उ०—न रहे न रहे अभिमन्यु से, धन्य मनोहर श्री-व्रज भूवर से।
दे० I, ३/२६

अभिर— अक० भिड़ना। मुठभेड़ करना।

उ०—कढ़ि कोटनवारे वीर हुँकारे न्यारे-न्यारे अभिरि परे।
प० १८४/२६

अभिराम [अभि+राम] वि० [स्त्री० अभिरामा]
१. अपनी उत्कृष्टता तथा सुन्दरता के कारण मन रमाने वाला, आनंद देने वाला।
२. प्रिय, मधुर या रुचिकर।

उ०—नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम।
सूर० २/१२/६८

अभिरूप [अभि+रूप] वि० १. मनोहर। २. किसी से मिलता जुलता। सदृश। समान। ३. प्रचुर या यथेष्ट।

पुं० १. शिव। २. विष्णु। ३. कामदेव। ४. चन्द्रमा। ५. पंडित।

अभियोग [अभि+योग] पुं० १. कोई काम पूरा करने के लिए मन लगाकर प्रयत्न करना।
२. किसी काम या बात में होने वाला मनोयोग। लगन।
३. आक्रमण। चढ़ाई।
४. किसी पर दोष लगाना या दोषारोपण करना।
५. किसी के अपराध आदि का विचारार्थ न्यायालय में उपस्थित किया जाना। दंड दिलाने के लिए की जाने वाली फरियाद।

उ०—अभिजोगऽरू व्यवसाय पुनि, उद्यम करि हरि जोग।
नं० ५०/६६

अभिलाख—अभिलाष पुं० दे० 'अभिलाषा'।

उ०—प्रथम लाख अभिलाख बहुरि गुनकथन गुनन गनि।
बो० २३/५३

सक० इच्छा करना। चाहना।

उ०—जिन तीस कोस कराल भूमि मझाइकै रन अभिलखौ।
प० ६५/१४

अभिलाखत व०कृ०।

अभिलखौ भू०कृ०।

—इ वि० १. इच्छुक। २. कामुक।

उ०—हनुमंत दुरंत नदी अब नाखौ। रघुनाथ-सहोदर जी अभिलाषौ।
के० II, ५/४०६

सक० इच्छा करना । चाहना ।
उ०—जिन तीस कोस कराल भूमि मझाइकै रन अभिलखी । प० ६५/१४
अभिलाखत, अभिलापत व० कृ० ।
अभिलखी भू० कृ० ।
—आ स्त्री० दे० 'अभिलाप' ।
—ई वि० चाहने वाला । इच्छुक ।
उ०—तब सब सेना वहि थल राखी । मुनिजन लीने सँग अभिलाषी । के० II, २७/२८१

अभिलाषा स्त्री० १. इच्छा । कामना । आकांक्षा ।
२. विरह की दशाओं में से एक ।

अभिलाख्यो स्त्री० दे० 'अभिलाप' व 'अभिलाख' ।
उ०—प्यारो केलिमंदिर तें करत इसारो उत, जाइबे कों प्यारी हू के मन अभिलाख्यो है । भि० I, २६०/१४६

अभिसंधि स्त्री० साजिश ।

अभिसंधिता स्त्री० कलहांतरिता नायिका । पति या नायक का अपमान कर पीछे पछताने वाली नायिका ।
उ०—अभिसंधिता बखानियै और खंडिता बाम । के० I, २/३६

अभिसार—अभिसारि—अभिसारू [अभि+सार]
पुं० १. साधन । सहाय । सहारा । बल ।
२. युद्ध ।
३. प्रिय से मिलने के लिए नायक या नायिका का संकेत स्थल में जाना ।
—इका—इनी स्त्री० प्रिय से मिलने के लिए निर्दिष्ट स्थान पर जाने वाली स्त्री ।
उ०—परकीया सी अभिसारिनी सतमारग की विध्वंसिनी । के III, १३/५३०

अभी[1] क्रि०वि० १. इसी क्षण । इसी समय । इसी वक्त । तुरंत । तत्काल । २. अब तक । ३. अभी भी । ४. आजकल । इन दिनों । इस समय, इसी समय । तुरन्त । तत्काल ।

अभी[2] वि० निर्भय । निडर ।

अभीत [अ+भीत] वि० निर्भय । निडर । साहसी ।
उ०—सो माधो लखि लेहु मो सों होय अभीत तब । बो० ६/५७
—आ वि० निश्चल । अचंचल ।
उ०—है मनि दर्पन में प्रतिबिम्ब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता । के II, ११/३३५
—ई क्रि०वि० विना डर के । बिना भय के ।

उ०—कुलटनि के सँग पकरि कै मारी बाँधी अभीति । र० ५४३/१०६

अभीतौ वि० दे० 'अभीत' ।
मु० अभीतौ करौ=निर्भय करना । निडर करना । मोक्षपद देना ।

अभीर[1] (आभीर) पुं० १. गोप । ग्वाला । अहीर ।
२. छन्द-विशेष ।
उ०—बीर अबीर अभीरन को बीन भाषै । प० १५६/११२

अभीर[2] [अ+भीर या अ+भी] वि०
१. निर्भय । निडर ।
२. भीड़-रहित । एकान्त ।

अभुआ— अक० जोर-जोर से हाथ पैर पटकना और चिल्लाना, जिससे यह ज्ञात हो कि शरीर में किसी देवता का आवेश हुआ है ।

अभूत [अ+भूत] वि० १. जो हुआ न हो । २. वर्तमान । ३. असत्य । मिथ्या । ४. अपूर्व । विलक्षण । अनोखा ।
—पूर्व वि० १. जो पहले न हुआ हो ।
२. अपूर्व । अनोखा । विलक्षण ।

अभूषन पुं० दे० 'आभूषण' ।
उ०—करि अलिंगन गोपिका, पहिरै अभूषन-चीर । सूर० १०/२६/२१६

अभेद [अ+भेद] वि० १. जिसमें कोई भेद न हो ।
२. जिसके भेद या विभाग न हुए हों ।
३. जिसका आकार या रूप किसी के अनुरूप, समान या मिलता-जुलता हो ।
पुं० १. भेद का न होना । भेद का अभाव । अभिन्नता ।
उ०—अरु जे आहि उपासक तिनहिं अभेद बतायौ । नं० ७८/३६
२. अनुरूपता । एकरूपता । समानता ।
३. साहित्य में रूपक अलंकार का एक भेद ।
—ई वि० १. भेद न जानने वाला ।
२. अज्ञानी, मूढ़ ।

अभेद्य [अ+भेद्य] वि० १. जिसका भेदन, छेदन या विभाग न हो सके । अखण्डनीय ।
२. जिसका भेदन-छेदन या विभाग करना उचित या उपयुक्त न हो ।

अभेर— सक० १. भेद दूर करना । २. मिश्रित करना । मिलाना । ३. अनुरक्त या प्रवृत्त करना ।

—आ पुं० १. आघात। धक्का। २. टक्कर। भिड़ंत। मुठभेड़।

—ई वि० मुठभेड़ लेने वाला। भिड़ने वाला। टक्कर लेने वाला।

अभेव पुं० दे० 'अभेद'।

उ०—जो प्रभु जोति जगत मय, कारन करन अभेव। नं० १/४१

अभै[1] [अ+भय] वि० दे० 'अभय'।

उ०—सर्वसु कंसु हरौ न अभै किन, आंखिन ओट करौ न कन्हैये। दे० I, १०६/२१

—दान पुं० दे० 'अभयदान'।

उ०—जे जे जन बिछुरे प्रभु तें ते अभैदान करन। छी० १८२/७७

—पद दे० 'अभय-पद'।

उ०—तिन तुम पै गोविंद-गुसाईं, सबनि अभै-पद पायौ। सूर० वि०/१६३/५३

अभै[2] क्रि०वि० अभी। इसी समय।

अभोग [अ+भोग] वि० १. बिना भोगा हुआ। जो प्रयोग या व्यवहार में न लाया गया हो।
२. अछूता।

—ई० वि० १. भोग अर्थात् उपभोग या उपयोग न करने वाला। प्रयोग या व्यवहार न करने वाला।
२. सांसारिक वस्तुओं या सुखों का भोग न करने वाला। उदासीन। विरक्त।

अभोज [अ+भोज्य] वि० दे० 'अभोज्य'।

उ०—भोज अभोज न रत बिरत नीरस सरस समानु। के० II, ३७/३६१

अभोज्य वि० १. (पदार्थ) जो खाने के उपयुक्त या योग्य न हो।
२. जिसे खाना निषिद्ध या वर्जित हो।

अभौतिक [अ+भौतिक] वि० जो भौतिक न हो।

अभौम [अ+भूमि+अ] वि० जो भूमि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव।

अभ्यंग पुं० १. पोतना या लेपना।
२. सारे शरीर में तेल की मालिश करना।

अभ्यंजन पुं० १. अंगों को सँवारने-सजाने का काम।
२. अंगों को सजाने की सामग्री। प्रसाधन-सामग्री।

अभ्यंतर [अभि+अंतर] पुं० १. अंदर या बीच का स्थान। २. मध्य। बीच। ३. हृदय।
वि० भीतरी। आन्तरिक।

उ०—अभ्यंतर दृष्टी देखन कौं, कारन रूप मुरारी। सूर० १०/३८६६/४६४

अभ्यर्चन [अभि+अर्चन] पुं० [स्त्री० अभ्यर्चना] आराधन या पूजन करने की क्रिया या भाव।

अभ्यर्थन पुं० १. अपनी आवश्यकता, अधिकार या स्वत्व जतलाते हुए किसी से कुछ माँगना या किसी काम के लिए जोर देकर कहना। माँग।
२. किसी से अपना प्राप्त धन या पदार्थ माँगना।

—आ स्त्री० किसी के सम्मुख दीनता तथा विनयपूर्वक की जाने वाली प्रार्थना।

—ईय वि० १. आगे बढ़कर लेने योग्य। स्वागत करने योग्य।
२. (विषय) जिसके लिए अभ्यर्थन (या माँग) की जा सके या की जाने को है।

अभ्यर्थी पुं० १. अभ्यर्थन करने वाला।
२. अभ्यर्थना करने वाला।

अभ्यस्त वि० १. जिसने किसी काम या बात का अच्छा अभ्यास किया हो। दक्ष। निपुण।
२. (विषय) जिसका अभ्यास किया गया हो।

अभ्यागत [अभि+आगत] वि० सामने आया हुआ।
पुं० १. वह जो कहीं से चलकर आया हो।
२. अतिथि। ३. साधु। संन्यासी।

अभ्यागम [अभि+आगम] पुं० १. सामने आना। उपस्थिति। २. समीपता। ३. सामना। मुकाबिला। ४. मुठभेड़। ५. युद्ध। ६. विरोध। ७. खड़े होकर की जाने वाली अगवानी। अभ्युत्थान।

अभ्यास पुं० १. कोई काम स्वभाववश निरंतर करते रहने की क्रिया या भाव। आदत।
२. किसी कार्य में दक्ष अथवा किसी विषय के विशेषज्ञ होने के लिए उस कार्य या विषय में दत्त-चित्त होकर बार-बार लगे रहना या उसे बार-बार करते रहना।

उ०—पढ़ब होत अभ्यास तें ताहि तजहु मति कोइ। प० १७४/५४

३. किसी कार्य के पूरे होने अथवा उसे पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने से पहले उसकी की जाने वाली आवृत्ति। ४. एक प्राचीन

काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर बात को सिद्ध करने वाले कार्य का उल्लेख होता है।

—ई वि० निरन्तर अभ्यास करने वाला।

—कला स्त्री० योग की चार कलाओं में से एक जो विविध योगांगों के मेल से बनती है। आसन या प्राणायाम का मेल।

—योग पुं० किसी आत्मा या देवता का बार-बार चिंतन करना या अभ्यास करना जो एक प्रकार का योग माना गया है।

—इत वि० अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

उ०—रात दिन के सुनें किए जे अति अभ्यासित भाव……कोटिक करौ उपाव। भा० II, ५३९

अभ्र पुं० १. मेघ। बादल। २. आकाश। ३. अवरक। ४. सोना। ५. शून्य। ६. कपूर। ७. नागरमोथा।

—पुष्प पुं० १. एक प्रकार का बेंत।

उ०—बेत, सीत, बिदुलरथी, अभ्रपुष्प, वानीर। नं० २५९/६३

२. पानी। ३. अनहोनी या असंभव बात।

अभ्रक पुं० १. राहु ग्रह। २. अबरक धातु।

अभ्रांत [अ+भ्रांत] वि० १. (व्यक्ति) जिसे किसी प्रकार की भ्रान्ति न हो।

२. (बात) जिसमें से जिसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रान्ति या भ्रम न हो।

—ई स्त्री० भ्रांति न होने की अवस्था या भाव। भ्रम-हीनता।

अभ्रित वि० अभ्र या बादलों या घिरा हुआ। मेघाच्छन्न।

अमंगल [अ+मंगल] वि० जो मंगलकारक या शुभ न हो। जो कल्याण करने वाला न हो।

पुं० मंगल या कल्याण का अभाव। अहित। खराबी।

उ०—भागे सकल अमंगल जग के। सूर०

अमंद [अ+मंद] वि० १. जो मंद, धीमा या सुस्त न हो।

उ०—रही न सुधी सरीर अरु मन की, पीव किरनि अमंद। सूर० १०/२०३/२६७

२. उत्तम। श्रेष्ठ। ३. अच्छा। भला। ४. सुन्दर। ५. उद्योगी। प्रयत्नशील। ६. प्रकाशवान्।

पुं० ७. वृक्ष। पेड़।

अमका वि० दे० 'अमुक'।

अमचुर—अमचूर [आम+चूर] पुं० आम्र-चूर्ण। कच्चे आम के टुकड़ों को सुखाकर तथा उन्हें पीसकर बनाया हुआ चूर्ण जो तरकारी आदि में डाला जाता है। सूखी कुटी खटाई।

अमड़ा पुं० १. एक पेड़ जिसके छोटे किन्तु खट्टे फल चटनी और अचार के काम आते हैं

२. उक्त वृक्ष का फल।

अमत [अ+मत] वि० १. जिसका अनुभव न हो सके। अननुभूत। २. अमान्य। ३. अस्वीकृत। ४. अज्ञात।

पुं० मत या सहमति न होना।

पुं० १. रोग। २. मृत्यु। ३. धूलि-कण। ४. काल। समय।

अमत्त[1] [अ+मत्त] वि० १. जो मत्त अथवा नशे में न हो। मद-रहित।

उ०—मत्त दंति अमत्त ह्वै गए देखि देखि न गाजहीं। के० II, २/२६२

२. सावधान।

अमत्त[2] पुं० ऐसी कविता या वाक्य-रचना जिसमें मात्राओं का प्रयोग न हुआ हो।

अमद[1] [अ+मद] वि० १. जिसे मद या अभिमान न हो। मद-रहित। २. जो मद या नशे में न हो। ३. जो प्रसन्न न हो। दुःखी। ४. विकल। बेचैन। ५. गंभीर।

अमद[2] पुं० संकल्प। विचार।

अमन [अ+मन] वि० १. जिसे अनुभूति, ज्ञान अथवा बुद्धि न हो।

२. जिसका मन किसी काम में न लगे।

पुं० १. सुख-शान्ति। आराम। चैन।

२. बचाव। रक्षा।

अमनियाँ[1]**—अमनिया** वि० १. खाने-पीने की ऐसी चीजें जिनमें कोई छूत न मानी जाती हो। पक्का भोजन।

उ०—विविध भाँति के मधुर पाक वे रचत हैं भोग अमनिया। ना० २२/२१

२. पवित्र। शुद्ध।

अमनिया[2] स्त्री० भोजन या रसोई बनाने की क्रिया।

अमनेक—अमनैक पुं० १. नायक या सरदार।

२. अधिकारी। ३. साहसी। ४. ढीठ, उद्दंड, उच्छृंखल, आदमी।

उ०—द्यौरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ ।
प० ६३/६६

५. वह जो मनमाने काम करता हो ।

६. ऐसे काश्तकार जिन्हें किसी कुल विशेष के होने के कारण लगान में कुछ छूट दी जाती थी ।

—ई स्त्री० १. मनमाना आचरण या व्यवहार । २. स्वेच्छाचार ।

अमर [अ+मर] वि० १. जो कभी मरे नहीं । न मरने वाला । २. जिसका कभी अंत, क्षय या नाश न हो । शाश्वत । ३. चिरस्थायी ।

पुं० १. देवता । २. पारा । ३. स्वर्ग । ४. उनचास पवनों में से एक । ५. ज्योतिष में, नक्षत्रों का एक गण या वर्ग जिसका विचार विवाह के समय वर और कन्या की राशियों के मिलाने के लिए होता है । ६. एक प्रकार का देवदारु वृक्ष ।

—अरि (अमरारि) पुं० अमरों के शत्रु । असुर । दैत्य ।

—आलय पुं० १. इन्द्र-लोक ।

उ०—राती दिन फेरें अमरालय के आसपास ।
भ० ६६/३१६

—औती स्त्री० अमर बनाने वाली जड़ी । संजीवनी बूटी । २. अमरावती । स्वर्ग ।

—इन्द्र पुं० देवराज इन्द्र ।

—ई० स्त्री० १. देव की पत्नी । २. प्रियमाल नामक वृक्ष ।

—ईश पुं० देवराज इन्द्र । सुरेश ।

—कंटक पुं० विन्ध्य-पर्वत-श्रेणी का एक भाग जहाँ से नर्मदा नदी निकलती है ।

—नाथ पुं० १. देवताओं के स्वामी इन्द्र । २. काश्मीर का एक प्रसिद्ध तीर्थ ।

—नारि स्त्री० देवांगना । अप्सरा ।

उ०—पहुँचे जाइ आपनें लोकनि, अमर-नारि अति हरष भरें । सूर० १०/६८२/४७५

—पख पुं० पितृ-पक्ष । श्राद्ध-पक्ष ।

—पति पुं० देवराज । इन्द्र । अमरेश ।

उ०—पुहुप बरिखा करें अमर-पति आई ।
कुं० ८८/४१

—पद पुं० १. देवताओं का पद या स्थिति । २. मुक्ति । मोक्ष ।

उ०—सहस्रनाम तहँ तिन्हैं सुनायौ । जातैं आपु अमर-पद पायौ । वि० २२६/१६

—पुर पुं० १. देवताओं का नगर । अमरावती । २. स्वर्ग ।

—पुरी स्त्री० इन्द्रपुरी । अमरावती । देवपुरी ।

—वेल—वेलि स्त्री० १. आकाश बेल नाम की लता जो बिना जड़ के फैलती है । २. हठयोग में सहस्रार का वह रूप, जब उसमें से अमृत प्रवाहित होना माना जाता है ।

—भनित स्त्री० अमरबाणी । संस्कृत ।

उ०—चित चकोर भाषा भनी अमर भनित अवगाहि
घ० ६०७

—मूरि स्त्री० संजीवनी बूटी । अमृत-मूल ।

—लता स्त्री० अमरवेल ।

—लोक पुं० देवलोक । स्वर्ग ।

उ०—अमरलोक आनंद भए सब ।
सूर० १०/६५०/४६७

अमरइया—अमराई स्त्री० १. आमों की बगीची या वाटिका । २. आम्र-वृक्षों की छाँह ।

अमर-कंटक पुं० दे० 'अमर' ।

अमरकोष—अमरकोस पुं० लिंगानुशासन नामक संस्कृत का प्रसिद्ध अमरकोश ग्रन्थ ।

उ०—गूँथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय ।
नं० ३/३६

अमरख पुं० १. दे० 'अमर्ष' । २. वृक्ष-विशेष, जिसके फल खट्टे-मिट्ठे होते हैं, जिसे 'कमरख' कहते हैं ।

—ई वि० १. क्रोधी । अमर्षी । २. डाही । ईर्ष्यालु ।

अमरत पुं० दे० 'अमृत' ।

अमरत-बान पुं० अमृतवान । अमृतदान । मर्तबान । लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का एक प्रकार का ढक्कनदार बरतन जिसमें अचार घी इत्यादि रखते हैं ।

अमरण—अमरन [अ+मरण] वि० जो मरे नहीं । अमर ।

पुं० अमरता । न मरने की अवस्था या भाव ।

अमरष पुं० (स्त्री०—अमरषता) दे० 'अमर्ष' ।

अमरस [आम+रस] पुं० १. पके आम का निचोड़ा हुआ रस । २. अमावट ।

उ०—विविध भाँति मेवा जु परोसे आम, अमरस अधिकाई। कु० १०/६

अमरा [अ+मर] स्त्री० १. दूब। २. गुर्च, गिलोय। ३. सेहुँड़। थूहर। ४. नील का पेड़। ५. चमड़े की झिल्ली जिसमें गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है। जरायु। ६. नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है। ७. इन्द्रायण। ८. बरगद की एक छोटी जंगली जाति। बरियारा। ९. घी-क्वार। १०. इन्द्रपुरी।

पुं० १. देवता।

उ०—अमरा-सिव-रवि-ससि-चतुरानन, हय-गय बसह-हंस-मृग-जावत। सूर० १०/६७६/४७३

२. दे० 'अमड़ा'।

—पति पुं० अमरपति। इन्द्र।

उ०—अमरापति चरननि तर लोटत। सूर० १०/६५०/४६६

अमराई—अमराय स्त्री० दे० 'अमरइया'।

उ०—आसपास अमराय बरारी। जहँ लग फूल तिती फुलवारी। नं० ५३/१०५

अमरारि [अमर+अरि] पुं० दे० 'अमर'।

अमराव पुं० आम का बगीचा।

अमरावति स्त्री० अमरपुरी।

अमरी [अ+मर+ई] स्त्री० १. दे० 'अमर'। २. हठ-योगियों की एक विशिष्ट क्रिया।

अमरुत वि० शान्त।

अमरूत—अमरूद पुं० १. एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके फल खाये जाते हैं। २. इस पेड़ का फल, जो अकार में छोटा, गोल तथा पीले रंग का होता है।

अमरेंद्र [अमर+इन्द्र] पुं० दे० 'अमर'।

उ०—ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्र वृन्द की भीर भुलावैं। नं० ४३/१७८

अमरेश—अमरेस (अमर+ईश) पुं० दे० 'अमर'।

उ०—सुख-साहिबी अमरेस है भुव-भाव-धर भुजंगेस है। प० ४/५

अमरैया स्त्री० दे० 'अमरइया'।

अमरौती स्त्री० दे० 'अमर'।

अमर्ष पुं० १. किसी को दबा न सकने के कारण मन में होने वाला रोष। २. क्रोध।

उ०—उपमानादिक ते कछू कोप अवै सु अमर्ष। रस० ८५२/१६०

अमल[1] [अ+मल] वि० १. जिसमें मल न हो। मल-रहित। २. पवित्र। शुद्ध। ३. साफ। स्वच्छ। ४. निष्पाप।

पुं० ५. मल का अभाव। ६. स्वच्छता। ७. अबरक। ८. पर-ब्रह्म।

अमल[2] पुं० १. प्रयोग। व्यवहार। २. कार्य। ३. आचरण। ४. संधान। ५. अधिकार। ६. शासन। ७. शासन-काल। ८. नशा लाने वाली वस्तु। ९. प्रभाव।

—ता० स्त्री० १. निर्मलता। पवित्रता, शुद्धता २. निर्दोषता।

अमलतास पुं० १. एक लम्बी गोल फलियों वाला पेड़। २. एक प्रकार की औषधि।

अमल-दरामत पुं० १. हुकूमत। राज्य। शासन। २. कब्जा।

अमलदारी पुं० १. अधिकार। दखल। शासन। २. ऐसी काश्तकारी जिसमें पैदावार के अनुसार असामी को लगान देना पड़ता है।

अमलबेत—अमलबेद पुं० १. एक प्रकार के पेड़ जिसके फल बहुत खट्टे होते हैं। २. एक प्रकार की लता, जिसकी सूखी टहनियाँ बहुत खट्टी होती हैं और चूरनों में डाली जाती है।

अमला[1] स्त्री० १. लक्ष्मी। २. शीतला। ३. भू-आँवला।

वि० १. जिसमें मल या दोष न हो। २. जिसमें कोई बनावट या छल-कपट न हो।

अमला[2] पुं० कचहरी या दफ्तर में काम करने वाला कर्मचारी।

अमली[1] वि० १. अमल में आने या लाया जाने वाला। व्यावहारिक। २. अमल करने वाला। व्यवहार में लाने वाला। ३. अमल या नशा करने वाला। नशेबाज।

अमली[2] स्त्री० इमली।

अमलु वि० दे० 'अमल'।

उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छनदानप्रिय किधौं सूरज अमलु है। के० II १०/२३५

अमस वि० १. जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। २. मूर्ख।

पुं० १. एक प्रकार का रोग। २. समय।

अमहर स्त्री० कच्चे आम की कटी सूखी हुई फाँकें।
अमाँ अव्य० संबोधन- ऐ मियाँ, अरे यार।
अमा[1] स्त्री० १. दे० 'अमावस'।
उ०—मेरु को सोनो कुबेर की संपति ज्यों न घटै बिधि राति अमा की। भू० ५५८/२४२
२. चन्द्रमा की सोलहवीं कला। ३. घर। मकान। ४. मर्त्य-लोक।
अमा[2] स्त्री० पशुओं की आँख में होने वाली बतौरी।
अमा[3]— अक० १. किसी चीज के अन्दर पूरा-पूरा समाना। अँटना।
२. अभिमान से युक्त होना। ३. इतराना। फूलना।
सक० किसी वस्तु के अन्दर पूरी तरह से भरना। अँटाना।
अमाउस स्त्री० दे० 'अमावस'।
अमात[1] (अ+माता) वि० १. बिना माता का।
अमात[2] (अ+मात=मत्त) २. जो पागल न हो।
३. शुद्ध-बुद्धि।
अमात[3]— सक० १. आमंत्रित करना। बुलाना।
२. न्योता देना। ३. भरना। ४. समाना।
उ०—पौढ़ि रही उमगी अति ही मतिराम अनंद अमात न जीके। म० १७४/२४०
अमात्य पुं० १. राजा का सहचर। २. प्राचीन राज्यतन्त्र में राजा को परामर्श देने वाला मन्त्री।
अमान[1] [अ+मान] वि० १ जिसका मान निश्चित या नियत न हो। २. जिसका मान न हुआ हो। अप्रतिष्ठित। ३. जिसे मान न हो।
पुं० मान का अभाव।
वि० न मानने वाला। आत्मसमान-रहित।
उ०—अनख-भरी धुनि अलिन की बचन अलीक अमान। भि० I ३२६/४८
—ई वि० १. मान या अभिमान न करने वाला। २. न मानने वाला। ३. किसी की मान-प्रतिष्ठा का विचार न करने वाला।
उ०—हैं उनए सु नए न कछू, उघटै कत ऐंड अमैड़ अमानी। घ० क० ४०३/२३६
अमान[2] पुं० १. बचाव। रक्षा।
अमानी स्त्री० १. मनमानी कार्यवाही। २. देन, लगान आदि में होने वाली छूट।
३. मजदूरों के काम करने का वह ढंग जिसमें केवल दैनिक मजदूरी मिलती है, काम का कोई मान निश्चित नहीं होता।

अमानत स्त्री० अमानत, धरोहर। थाती। अपनी वस्तु किसी दूसरे के यहाँ कुछ काल के लिए रखना।
अमाना पुं० अन्न रखने की कोठरी का द्वार। बखार का मुँह।
अमानुष [अ+मानुष] पुं० वह जो मनुष्य न हो, बल्कि मनुष्य से भिन्न हो। अलौकिक या देवपुरुष।
अमान्य [अ+मान्य] वि० १. जो माना न जा सके।
२. जो मान अथवा आदर के योग्य न हो।
अमाप [अ+माप] वि० १. जो मापा न जा सके, जिसका माप न हो सके।
उ०—कहियो जाइ जोग आराधैं, अविगत अकथ अमाप। सूर० १०/३४८६/३६६
२ जिसके परिणाम का अंदाजा न हो सके अपरिमित। ३. असीम। बेहद।
४. बहुत अधिक।
अमाय—अमायक—अमाया [अ+माया] वि०
१. माया से रहित। २. छल-कपट, स्वार्थ आदि से रहित। ३. सांसारिक प्रेम, मोह आदि से विरक्त। निर्लिप्त।
स्त्री० माया का अभाव।
अमारग [अ+मार्ग] पुं० १. अमार्ग। कुमार्ग। २. निंदनीय आचरण। ३. मार्ग-विहीन।
अमारी स्त्री० १. आमड़ा नामक वृक्ष। २. आमड़े का फल।
स्त्री० १. अम्बारी। हाथी का हौदा।
उ०—ऊलर अमारी गंग भारी बंब धौं-धौं होत। गं० ३७७/११७
२. छज्जा।
अमाल (अव) पुं० अमल रखने वाला व्यक्ति। हाकिम। शासक।
उ०—पैज प्रतिपाल·········चक्क को अमाल भयो दंडत जिहान को। भू० ६८/१४०
अमाव (अमाय) वि० दे० 'अमाय'।
अमाव— सक० समाना। अँटना। भरना।
अमावट[1] (आम+आवट) स्त्री० पके आम को निचोड़कर निकाले हुए रस की जमाई हुई परत या तह।
अमावट[2] स्त्री० पहिना जाने वाला एक प्रकार का मछली की तरह का गहना।
अमावस स्त्री० १. अमावस्या। कृष्णपक्ष की अन्तिम

तिथि जिसमें रात को चन्द्रमा की एक भी कला नहीं दिखाई देती ।

२. हठयोग में ध्यान की वह अवस्था जिसमें इड़ा (चन्द्रमा) और पिंगला (सूर्य) दोनों नाड़ियों का लय हो जाता है ।

अमास वि० काला ।

उ०—तहँ अरि पंथ पिता जुग उद्दित, बारिज बिबि रँग भयो अमास । सूर० १०/३४०६/३६८

अमाहिर [अ+माहिर] वि० अनाड़ी । अकुशल ।

उ०—अमाहिर लोग की छाँह न छ्वै है । मि० I १३१/११७

अमिट [अ+मिट] वि० १. जो मिटने या नष्ट होने वाला न हो । स्थायी ।

२. निश्चित रूप से घटित होने वाला । अटल । अवश्यंभावी ।

अमित [अ+मिति] वि० १. जिसका परिमाण न हो । असीम । बेहद । २. बहुत अधिक । ३. जो किन्हीं निश्चित सीमाओं में न रखा गया हो ।

उ०—अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यो करै । घ० क० ७५/८३

—अशन वि० सब प्रकार की वस्तुओं को खाने वाला । सर्वभक्षी ।

पुं० अग्नि ।

अमित्त वि० दे० 'अमित्र' ।

अमित्र [अ+मित्र] वि० १. जो मित्र न हो ।

उ०—मित्रन मित्र, अमित्रन शत्रु सो दूलह सो दुलही पहिचान्यो । दे० I २/३८

२. शत्रु । बैरी ।

वि० जिसका कोई मित्र न हो । मित्र-हीन ।

पुं० मित्र न होने का भाव ।

अमिय पुं० अमृत । सुधा । पीयूष ।

उ०—अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करो, सुनत तिन अमिय-भंडार खोले । सूर० ६/१६३/२०२

—मय वि० अमृतयुक्त ।

—मूरि स्त्री० अमृत-बूटी । संजीवनी जड़ी ।

अमिया—अमियाँ स्त्री० आमी । कच्चा छोटा आम ।

अमिरत पुं० दे० 'अमृत' ।

अमिरती स्त्री० इमरती । मिठाई-विशेष ।

उ०—गुझा, इलाचीपाक, अमिरती । सीरा साजौ लेहु व्रजपती । सूर० १०/३६६/३१७

अमिल वि० १. न प्राप्त होने वाला । २. जो दूसरों के साथ मिलता-जुलता न हो । ३. (वह वस्तु) जो दूसरों से मेल न खाये । ४. ऊँचा-नीचा । ऊबड़-खाबड़ ।

—ता स्त्री० 'अमिल' होने का भाव । बिल्कुल अलग या बे-मेल होने की अवस्था या भाव ।

उ०—कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई । घ० क० १३१/१११

—ताई स्त्री० दे० 'अमिलता' ।

अमिली[1] स्त्री० किसी के साथ आपसदारी या मेल-मिलाप न होने की अवस्था या भाव ।

अमिली[2] स्त्री० दे० 'अमली'[2] ।

अमिष[1] [अ+मिष] पुं० छल अथवा बहाने का अभाव ।

वि० जिसमें छल-कपट या बहाना न हो ।

अमिष[2] पुं० दे० 'आमिष' ।

अमी[1] वि० बीमार । रुग्ण ।

अमी[2] पुं० दे० 'अमिय' ।

—कर पुं० चन्द्रमा ।

—कला पुं० दे० 'अमीकर' ।

—निधान वि० अमृत का समुद्र । चन्द्रमा ।

उ०—कर विष जैसे तजि विषय, भजि हरि अमी-निधान । नं० २०/४३

—निधि वि० दे० 'अमीनिधान' ।

—मूरि स्त्री० दे० 'अमियमूरि' ।

अमीफल—अमृतफल [अमृत+फल] पुं० दे० 'अमृत-फल' ।

अमीच [अ+मीच] वि० १. अमर । अनश्वर । अमृत्यु । २. अकाल मृत्यु ।

अमीत [अ+मीत] वि० जो मीत अथवा मित्र न हो । बैरी । शत्रु ।

अमीन (अ०) पुं० माल-विभाग का वह कर्मचारी जो जमीन की नाप-जोख, बँटवारे आदि का प्रबन्ध करता है ।

अमीर (अ०) पुं० १. अमीर । धनवान । सम्पन्न । २. उदार । ३. नेता । सरदार । ४. अफगानिस्तान के राजाओं की उपाधि ।

अमीव पुं० १. पाप । २. कष्ट । दुःख । ३. बीमारी । रोग ।

अमंद (अमन्द) वि० दे० 'अमंद' ।

उ०—जोवन-किसान मुख-खेत रूप-बीज बीजे, भीजे सुधा-बुंदन अमुंद दमकत हैं। दे० I, ७८२/१७६

अमुक वि० किसी ऐसे अज्ञात या कल्पित व्यक्ति या बात के लिए प्रयोग में आने वाला शब्द, जिसका नाम न लिया गया हो।

अमुक्त (अ+मुक्त) वि० १. जो मुक्त न हो। २. बंधन में पड़ा हुआ। ३. (ग्रह) जिसका ग्रहण से मोक्ष न हुआ हो। ४. (शस्त्र) जो हाथ में पकड़कर ही चलाया जाय।

अमुत्र पुं० १. जन्मांतर। २. परलोक।

अमूँझ वि० अबूझ। नासमझ। नादान।

अमूक [अ+मूक] वि० १. जो मूक अथवा गूँगा न हो। २. बहुत बोलने वाला। वाचाल। ३. चतुर। होशियार।

अमूझ[1] स्त्री० अमैत्री।

उ०—जगत किचपिच-कीच बीच तैं अति अमूझ कैं कढ्यो। ना० १४८/११४

अमूझ[2]— अक० उलझना। फँसना।

उ०—कठिन करम की परत भापसी मनहिं अमूझत है रे। सुं०/८४२

अमूझत—व०कृ०

अमूढ़ (अ+मूढ़) वि० जो मूर्ख न हो। चतुर। विद्वान।

अमूरत—**अमूर्त** [अ+मूर्त] वि० १. जिसका मूर्त्त या साकार रूप न हो। २. अप्रत्यक्ष।
पुं० १. परमेश्वर। २. आत्मा। ३. जीव। ४. काल। ५. दिशा। ६. वायु। ७. आकाश।

अमूल (अ+मूल) वि० १. जिसका कोई मूल या जड़ न हो। निर्मूल। २. जिसका कोई आधार न हो। निराधार।

अमूलक [अ+मूल+क] वि० १. दे० 'अमूल'। २. झूठा। मिथ्या।

अमूल्य [अ+मूल्य] वि० १. जिसका मूल्य न आँका जा सके। अनमोल। २. बहुमूल्य। ३. जिसके लिए कोई मूल्य न चुकाना पड़े। मुफ्त का।

अमृत [अ+मृत] वि० १. जो मृत या मरा हुआ न हो, अर्थात् जीवित। २. कभी न मरने वाला। अमर। ३. अविनाशी। ४. परम प्रिय और सुन्दर।
पुं० १. एक प्रसिद्ध कल्पित पदार्थ जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसके सेवन से प्राणी सदा के लिए अमर हो जाता है। पीयूष। सुधा। २. परम स्वादिष्ट अथवा बहुत अधिक गुणकारी पदार्थ। ३. सोम का रस। ४. जल। पानी। ५. स्वर्ग। ६. दूध। ७. घी। ८. अनाज। अन्न। ९. यज्ञ की बची हुई सामग्री। १०. मुक्ति। मोक्ष। ११. औषध। दवा। १२. जहर। १३. पारा। १४. धन-संपत्ति। १५. सोना। स्वर्ण। १६. रहस्य सम्प्रदाय में—(क) ईश्वर या परमात्मा। (ख) ईश्वर के प्रति होने वाला अनुराग या प्रेम। (ग) गुरु का सदुपदेश। (घ) तालु-मूल में स्थित चन्द्रमा से निकलने वाला रस, जो योगी जीभ उलटकर पीता है। १७. देवता। १८. शिव १९. विष्णु। २०. धन्वन्तरि।

—कर पुं० चन्द्रमा।

—कुंड पुं० अमृत का तालाब।

—कुंडली स्त्री० १. एक प्रकार का छंद। २. स्वरमंडल की तरह का एक बाजा, जिसका आकार कुंडली मारे हुए सर्प की तरह होता है।

—धुनि स्त्री० एक प्रकार का छन्द जो वीर रस के लिए उपयुक्त माना जाता है।

—फल पुं० १. नाशपाती। २. परवल। ३. रहस्य सम्प्रदाय में परमात्मा या मोक्ष की प्राप्ति।

—फला स्त्री० १. आँवला। २. अंगूर। ३. मुनक्का।

—सार पुं० मक्खन।

—सारज पुं० गुड़।

अमृता स्त्री० १. गुर्च। २. इन्द्रायण। ३. मालकँगनी। ४. अतीस। ५. हड़। ६. लाल निसोथ। ७ आँवला। ८ दूब। ९. तुलसी। १०. पीपल। ११. मदिरा। १२. फिटकरी १३. खरबूजा।

अमृतेश—**अमृतेस** [अमृत+ईश] पुं० १. देवता। २. शिव। ३. चन्द्रमा।

अमृतौघा स्त्री० नदी।

उ०—तीर्थवती वृति रूपवति, अमृतौघा सुखधाम। के० III, १७/६५६

अमेज पुं० मिलाव । मिश्रण ।

अमेठ—अमेंठ सक० उमेठना । मरोड़ना । घुमाना । चक्कर कराना ।

उ०—घन आनँद ओठ अमेठ कियें कहियै कहा पै अब पैयति है । घ० क० ४१०/२३८

अमेठत—व०कृ०

अमैंठ्यौ—अमैंठी—भू०कृ०

अमेठन क्रि०सं०

सक० किसी में कुछ मिलावट करना । मिश्रण करना ।

अमेड़ी वि० १. बिना मेंड़ी का । बिना कुटिया का । घर-बार रहित ।

२. बिना मर्यादा के । सीमा-रहित ।

अमेधा [अ+मेधा] वि० जिसमें मेधा-शक्ति या बुद्धि न हो; अर्थात् मूर्ख ।

अमेय (अ+मेय) वि० १. जो नापा या मापा न जा सके ।

२. असीम । निस्सीम ।

उ०—अमेयं प्रबर्जी अनाद्यंतरंता । असेषप्रहारी दसग्रीवहंता । के० III, २७/६६६

अमेल [अ+मेल] वि० (स्त्री०—अमेली)

१. जिसका किसी से ठीक मेल न बैठता हो । जो किसी से मेल न खाता हो ।

२. असंबद्ध । ३ अनमेल ।

अमै [अ+माया] वि० १. माया-ममता रहित । निर्विकार । २. निष्ठुर ।

अमैड़ (अ+मैड़) वि० दे० 'अमेड़ी' ।

उ०—हैं उनए सु नए न कछु, उघटै कत ऐंड़ अमैड़ अमानी । घ० क० ४०३/२३८

अमैन [अ+मैन] वि० काम-रहित । निर्विकार ।

अमोघ (अ+मोघ) वि० १. जो निष्फल, निरर्थक या व्यर्थ न हो ।

उ०—इक धतूर फल दै सिवहिं लिय अमोघ फल चारि । प० १८६/५५

२. अपने उद्देश्य या लक्ष्य तक ठीक पहुँचने वाला । अचूक ।

पुं० १. व्यर्थ न जाने का भाव । २. शिव । ३. विष्णु ।

अमोघा स्त्री० १. कश्यप ऋषि की एक स्त्री । २. हरीतकी । हर्र । ३. वायविडंग । ४. पाठर का पौधा और फूल ।

अमोचन [अ+मोचन] वि० न छूट सकने वाला ।

अमोद [आ+मोद] पुं० १. मन बहलाने और प्रसन्नता प्राप्त करने के उद्देश्य से, किया जाने वाला काम ।

उ०—आगें आगें तरुन तरायले चलत चले तिनके अमोद मंद मंद मोद सकसै । भू० ३०७/१८५

२. महक । सुगन्धि । ३. शतावर ।

अमोल—अमोर—अमोला[1] पुं० (स्त्री०—अमोरी)

१. आम का कच्चा छोटा फल । अमियाँ ।

२. अमड़ा । आम्रातक । ३. आम का छोटा पौधा ।

अमोल—अमोर—अमोला[2] [अ+मोल]

वि० जिसका मूल्य न लग सके । बहुत अधिक मूल्यवान । कीमती ।

उ०—और तजे तोरहु तजे भूपन अमल अमोल । प० १३४/१०८

अमोलक—अमोलिक (अ+मोल+क)

वि० १. बहुमूल्य ।

उ०—छाँड़ि कनक-मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही । वि० ३२४/५

२. अमूल्य ।

अमोस स्त्री० दे० 'अमावस' ।

अमोही [अ+मोही] वि० १. जिसे किसी से मोह न हो । विरक्त । २. जिसे किसी से ममता न हो । निर्मोही ।

उ०—अमोही के मोह मिठास लगी । घ० क० १०/४६

अमौआ (आम+औआ) पुं० १. एक प्रकार का रंग जो पके हुए आम के रस के समान पीला होता है । अमरसी ।

२. उक्त रंग का एक प्रकार का कपड़ा ।

वि० जिसका रंग आम के रस के समान पीला होता है ।

अमौर[1] (अ+मौर) वि० १. अविवाहित ।

अमौर[2] (अ+मोल) अमूल्य ।

उ०—उत्प्रेच्छा गनि गुप्त सो भूपन कहत अमौर । भू० ६७/१४६

अम्बर—अम्मर पुं० १. आकाश । २. वस्त्र ।

अम्माँ—अम्मा स्त्री० अम्बा । माता । जननी ।

अम्मामा पुं० सिर पर बाँधी जाने वाली एक प्रकार की भारी पगड़ी ।

अम्मारी[1] स्त्री० १. अंबारी । एक प्रकार का छज्जेदार मंडपवाला हौदा । २. छज्जा । मंडप ।

अम्मारी[2] स्त्री० पटसन ।

अम्रत्या पुं० देवता। अमर।

उ०—कृत-भुज, अरि भव, अम्रत्या, सुप्ता, आदित होइ। नं० ८/६४

अम्ल पुं० १. खाद्य पदार्थों के छः रसों में से एक रस खटाई। २. कोई ऐसा तत्त्व या रासायनिक द्रव्य जिसमें खटाई वाले तत्त्वों के अतिरिक्त क्षारों का गुण नष्ट करने की भी शक्ति हो। तेजाब।

वि० खट्टा। तुर्श।

—सार पुं० १. अमलवेत। २. चुक। ३. काँजी ४. हिंताल। ५. आमलासार गंधक।

अम्लान [अ+म्लान] वि० १. जो उदास, मलिन या म्लान न हो। २. खिला हुआ। प्रसन्न। ३. निर्मल। स्वच्छ।

पुं० १. वाणपुष्प नामक पौधा। २. कटसरैया। गुल-दुपहरिया।

—माला स्त्री० एक विद्या-विशेष, जिसके प्रयोग से गूँथी हुई माला कभी मुरझाती नहीं है। राजकुमार उदयन इस विद्या का ज्ञाता था।

अम्हौरी स्त्री० एक प्रकार का चर्म रोग, ताप से शरीर पर छोटे दाने निकलना।

अय पुं० १. लोहा। २. हथियार। ३. अग्नि। ४. सोना। ५. अगुरु नामक वृक्ष। ६. चुम्बक।

अव्य० १. सम्बोधन का शब्द।

उ०—अय रे अहीर तैं तो हीरा को सो हियो कियो। गं० २८४/८६

२. क्रोध, विषाद, भयादि-द्योतक अव्यय।

अयतेंद्रिय [अयत+इन्द्रिय] वि० १. जिसने अपनी इन्द्रियों का संयमन न किया हो। २. ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट। ३. इन्द्रियलोलुप।

अयत्न [अ+यत्न] वि० यत्न न करने वाला।

पुं० १. यत्न या चेष्टा का अभाव। २. उद्योगहीनता।

अयथा क्रि०वि० जैसा है, वैसा नहीं।

अयथार्थ [अ+यथार्थ] वि० १. जो यथार्थ या वास्तविक न हो। २. असत्य। मिथ्या।

अयन पुं० १. मार्ग। रास्ता। २. गति। चाल। ३. राशिचक्र की गति या मार्ग। ४. सूर्य की मकर रेखा से कर्क रेखा अथवा कर्क रेखा से मकर रेखा की ओर की गति या मार्ग, जिसे क्रमात् उत्तरायण या दक्षिणायन कहते हैं। ५. उत्तरायण और दक्षिणायन के आरम्भ में होने वाला एक प्रकार का यज्ञ। ६. ज्योतिष की वह प्रक्रिया जिससे आकाशस्थ पिंडों की गति और मार्ग का ज्ञान होता है। ७. प्राचीन भारत में व्यूह तोड़ने के लिए उसमें प्रवेश करने का एक सैनिक ढंग। ८. गाय-भैंस आदि में स्तन का वह ऊपरी भाग जिसमें दूध भरा रहता है। ९. आश्रम। १०. घर।

उ०—जाकी अयन जल मैं, तिहि अनल कैंसै भावै। सूर० १०/३७००/४३०

११. जगह। स्थान। १२. काल। समय। १३. अंश। भाग।

अयव [अ+यव] वि० १. यव से रहित। जिसमें यव न हो। २. जो पूरा न हो। जिसमें किसी प्रकार का अभाव हो।

पुं० १. पितृ-कर्म जिसमें यव या जौ काम में नहीं लाया जाता। २. वीर्य। शुक्र। ३. कृष्णपक्ष। ४. दुश्मन। शत्रु। ५. मल में होने वाला एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

अयश [अ+यश] पुं० १. यश का अभाव। २. अपयश या बदनामी।

अयस—अयस् पुं० दे० 'अय'।

—कांत पुं० चुंबक।

अयाच [अ+याच] वि० याचना रहित।

—क वि० १. जो याचक न हो। न माँगने वाला। २. जिसे किसी काम या बात की आवश्यकता या कामना न रह गई हो। ३. पूर्ण-काम। सन्तुष्ट।

—ई० वि० दे० 'अयाचक'।

अयान[1] (अ+यान) पुं० १. न जाना। २. ठहराव। स्थिरता।

पुं० प्रकृति, स्वभाव।

वि० जिसके पास यान या सवारी न हो।

अयान[2]—**अयाना** वि० [स्त्री० अयानि—अयानी]
१. मूर्ख । २. नादान । अबोध । ३. भोला-भाला । ४. मूर्च्छित । संज्ञाहीन । बेहोश ।
—ता स्त्री० १. अज्ञानता । नासमझी ।
२. बचपना ।
—प~पन पुं० १. अयाने या अज्ञान होने की अवस्था या भाव । अज्ञानता । अनजानपन ।
२. भोलापन । सरलता । सिधाई ।

अयारी[1] (ऐय्यार+ई) स्त्री० १. धूर्तता । मक्कारी ।

अयारी[2] (यारी) २. मित्रता । मैत्री ।

अयाल पुं० १. घोड़े, सिंह आदि की गर्दन पर के बाल । केसर । २. बाल-बच्चे । सन्तान ।

अयास— क्रि०वि० अनायास ।

आयास पुं० १. परिश्रम । मेहनत । २. प्रयास ।
३. शान्ति ।

अयुक्त [अ+युक्त] वि० १. (पशु) जो जोता न गया हो । २. जो किसी से युक्त न हो । न मिला हुआ अर्थात् पृथक्-पृथक् । ३. जो संबंध के विचार से ठीक न हो । असंबद्ध । ४. जो युक्ति-संगत न हो । ५. जो प्रयोग या व्यवहार में न लाया गया हो । ६. अधार्मिक । ७. अनमना । अन्यमनस्क । ८. अविवाहित ।

अयुत (अ+युत) पुं० १. गिनती में दस हजार की संख्या का स्थान । २. उक्त स्थान पर पड़ने वाली संख्या ।

अयुध—**आयुध** पुं० १. शस्त्र । हथियार । २. ऐसा सोना जो आभूषण बनाने के काम आ सके ।

अये—**अयि** अव्य० दे० 'अय' ।

अयोग[1] [अ+योग्य] वि० दे० 'अयोग्य' ।

अयोग[2] [अ+योग] पुं० १. योग का अभाव । अलग या पृथक् होना । २. वियुक्त होना । बिछुड़ना । ३. एकरूपता का अभाव । ४. प्राप्ति का अभाव । ५. बुरा योग । कुसमय । ६. कठिनता । संकट । ७. वह वाक्य जिसका अर्थ कठिनता से बैठाया जाता है । कूट । ८. दुष्ट, ग्रह, नक्षत्र आदि से युक्त काल ।

अयोग्य वि० १. जो योग्य या विद्या-सम्पन्न न हो ।
२. जो सक्षम न हो । असक्षम । असमर्थ ।
३. जो अधिकारी या पात्र न हो ।
४. जो उपयुक्त, संगत या सटीक न हो । अनुपयुक्त ।

अयोध्या स्त्री० आधुनिक फैजाबाद के आस-पास के क्षेत्र का पुराना नाम, जहाँ सूर्य-वंशी राजाओं की राजधानी थी । साकेत ।

अयोनि [अ+योनि] वि० १. जो योनि से उत्पन्न न हुआ हो । अजन्मा । २. नित्य । ३. मौलिक
४. अवैध रूप से उत्पन्न ।
पुं० १. योनि का अभाव । २. ब्रह्मा । ३. शिव ।
—ज वि० १. जिसकी उत्पत्ति योनि या माता-पिता के लैंगिक संबंध से न हुई हो ।
पुं० १. वृक्ष । २. ब्रह्मा । ३. विष्णु । ४. महेश । शिव । ५. अगस्त्य ऋषि ।
—जा स्त्री० जानकी । सीता ।

अरंग[1] [अ+रंग] पुं० १. बुरा या खराब रंग ढंग ।
२. दुर्दशा ।
उ०—व्याधि के अरंग ऐसी व्यापि रह्यो आधो अंग । से०
३. अड़ंगा । बाधा । ४. ढेर । समूह ।
वि० १. बिना रंगा । जिस पर किसी का रंग न चढ़े । अप्रभावित ।
—ई वि० १. रंग-रहित । २. राग-रहित ।

अरंग[2] पुं० सुगन्ध । महक ।
उ०—रूप के तरंगन के अंगन ते सोंधे के अरंग लै तरंग गठै पौन की । देव

अरंग[3] (एरंड) [अरण्ड] अंडी । अण्डी का पौधा ।

अरंभ[1] (आरंभ) पुं० प्रारम्भ । शुरू ।
उ०—देव सदंभ अरंभ महामख……। दे० I ९८/२०
अक० आरम्भ या शुरू होना ।
सक० आरम्भ या शुरू करना ।

अरंभ[2] (रँभाना) पुं० १. हलचल । २. नाद । शब्द ।
३. शोर । हल्ला ।
अक० १. बोलना । नाद करना । २. रँभाना ।

अर[1] पुं० १. पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी । आरागज । आरी ।
२. कोण । कोना । ३. सेवार । ४. पित्त-पापड़ा । पर्पट । ५. चकवा पक्षी ।
स्त्री० अड़ । जिद । हठ ।
वि० १. तेज । २. थोड़ा ।
क्रि०वि० जल्दी से । शीघ्रता से ।

अर[2]— अक० अड़ना ।

उ०—लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
घ० क० ४/४१

अरत, अरति (व०कृ०)

—नारो वि० अड़ने वाला। जंगली भैंसा जैसा।

अरई स्त्री० बैल हांकने की छड़ी या पैने के सिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बैल को गोदकर हांकते हैं।

अरक[1] पुं० १. किसी पदार्थ का रस जो भभके से खींचने से निकले। आसव। अर्क।
२. पसीना। स्वेद।

अरक[2] पुं० १. सूर्य। २. मदार। आक। ३. सेवार। ४. पहिए का आरा। ५. पित्तपापड़ा।

अरक[3]— अक० १. अरराकर गिरना। २. टकराना। ३. फटना। दरकना। ४. जोर से बोलना।

अरकनाना पुं० एक अरक जो पुदीना और सिरका मिला कर खींचने से निकाला जाता है।

अरकसी स्त्री० आलस्य। सुस्ती। प्रमाद। शिथिल।

अरकासर पुं० तालाब। बावड़ी।

अरग[1] पुं० दे० 'अरगजा'।

अरग[2] पुं० दे० 'अर्घ्य'।

अरग[3] क्रि०वि० अलग।

अरगजा—अरगज [अरग+जा] पुं० एक सुगन्धित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है। यह चन्दन, केशर, कपूर आदि को मिलाने से बनता है।

—ई पुं० एक रंग जो अरगजे का सा होता है।
वि० १. अरगजी रंग का। २. अरगजा की सुगन्ध का। ३. मसली हुई। सिलवट पड़ी हुई।

अरगट (अलग+ट) वि० १. पृथक्। अलग। २. भिन्न ३. निराला।
उ०—अरगट हीं फानूस सी परगट होति लखाय।
वि० ६०३/२४६

अरगनी स्त्री० वह रस्सी, डोरी या बाँस आदि जिसे कमरे की दो खूँटियों या छत की कड़ियों में बांध देते हैं, जिस पर कपड़े आदि सामान लटका देते हैं।

अरगल—अरगला (अर्गला) पुं० वह लकड़ी जो किवाड़ बन्द करने पर इसलिए आड़ी लगाई जाती है कि किवाड़ बाहर से खुले नहीं। व्योड़ा। गज। रोक। आड़।

अरगा— अक० १. अलग होना। पृथक होना।
उ०—चोधा किसू सों कहा कहियै जो विधा मुनि फेरी रहै अरगाइ कै। बो० ४५/८
२. सन्नाटा खींचना। चुप्पी साधना। मौन रहना।
उ०—सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ।
सूर १०/२६५/२८२
सक० १. अलग करना। २. चुनना। छाँटना।
उ०—ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी सुत, कौन कौन अरगानो। सूर० वि० १/११/४

अरघ पुं० दे० 'अर्घ्य'।
उ०—नैन आरती अरघ आंसू, भेंट तन मन धन चढ़ायौ। सूर० १०/४१८०/५३५

अरघटी स्त्री० १. वह बाल्टी जो रहट में लगी रहती है २. गहरा कूप।

अरघट्ट पुं० १. रहट। अरहट। २. कुँआ।

अरघट्टक पुं० दे० 'अरघट्ट'।

अरघा[1] पुं० दे० 'अर्घा'।

अरघा[2] पुं० [सं० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिए बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान—अरघानि स्त्री० [सं० आघ्राण] गंध। महक। सुगन्ध। खुशबू।

अरचन (अर्चन) पुं० दे० 'अर्च'।
उ०—पद-सेवन-अरचन उर धरै। सूर ६/५/१५३

अरच— सक० दे० 'अर्च'।
उ०—अरचत चरन गगन-चर अनगन।
क० ७०/११६
अरचत व०कृ०, अरचा भू०कृ०
—आ स्त्री० दे० 'अर्च'।
उ०—बेद पुरानन की चरचा अरचा दुज देवन की फिरि फैली। भू० २६८/१७९
—इ स्त्री०दे० 'अर्च'।
—इत वि० दे० 'अर्च'।
पुं० विष्णु।
—भाव वि० पूजनीय। सम्मानित।

अरज (अर्ज) स्त्री० विनय। निवेदन। विनती।
उ०—अरज हमारी एक येही अनुसरिये।
प० १६५/११५
—ई (अर्जी) स्त्री० आवेदन पत्र। निवेदन पत्र। प्रार्थना पत्र। दरख्वास्त।
वि० अरज करने वाला। प्रार्थी।
सक० १. विनय करना।

अरज[2] पुं० कपड़े की चौड़ाई ।

अरज[3] वि० (सं०) १. जिसमें धूल न लगी हो । स्वच्छ ।
२. राग आदि से रहित । ३. जिसे मासिक धर्म न हो ।
उ०—सुनियै सुमान हरि तिनको गुमान तिन्हैं दीबे कौं जवाब कवि भूषन यौं अरजा ।
भू० ३२३/१८८

अरज[4] सक० १. उपार्जन करना । पैदा करना । कमाना
२. संग्रह करना ।
अरजत—वर्त० कृ०, अरजा, अरज्यौ भू०कृ०

अरजन पुं० अर्जन । उपार्जन । कमाना । संचय ।

अरजल पुं० १. [अ० अर्जल] वह घोड़ा जिसके दोनों पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रंग का हो । (ऐसा घोड़ा ऐबी माना जाता है) ।
२. तुच्छ व्यक्ति । कमीना । नीच ।
३. वर्णसंकर ।

अरजित वि० अर्जित । उपार्जित की हुई । पैदा की हुई । कमाई हुई । प्राप्त की हुई । संचय की हुई

अरजुन[1] (अर्जुन) पुं० १. एक वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियों के किनारे होता है ।
२. पाँच पांडवों में से मँझले का नाम । ये बड़े वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे ।
३. हैहयवंशी एक राजा । सहस्त्रार्जुन ।
४. सफेद कनैल । ५. मोर । ६. आँख का एक रोग जिसमें आँख में सफ़ेद छींटे पड़ जाते हैं । फुली । ७. इकलौता बेटा ।
वि० १. उज्जवल । सफेद । २. शुभ्र । स्वच्छ ।

अरझ—अक० उलझना ।

अरझ—अरझा वि० उलझा । फंसा ।
पुं० छोटी जाति का सन । सनई ।

अरणि—अरणी पुं० १. सूर्य । २. अग्नि । ३. अग्निमंथ नामक वृक्ष जिसकी लकड़ियों की रगड़ से आग जलाई जाती है । ४. चीता नामक वृक्ष । ५. चकमक पत्थर ।
—सुत पुं० शुकदेव ।

अरण्य पुं० १. वन । जंगल ।
उ०—पुन्य अरण्यन की अवलीनु, घनीनु वनीनु जनी परवीने । दे० I/८२/२१२
२. कटफल । कायफल । ३. संन्यासियों के दस भेदों में से एक । ४. रामायण का एक काण्ड ।
—गान पुं० १. वन में एकान्त स्थान पर गाया जाने वाला गीत ।
२. लाक्षणिक अर्थ में, वह सुन्दर काम या बात जिसे देखने, सुनने या समझने वाला कोई न हो ।
—पति पुं० सिंह ।
—यान पुं० १. जंगल की ओर प्रस्थान करना ।
२. वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना ।
—राज पुं० सिंह ।
—रोदन पुं० ऐसी चिल्लाहट, पुकार, व्यथा या निवेदन, जिसकी ओर कोई ध्यान देने वाला न हो ।
—क पुं० १. जंगल । २. जंगल में रहने वाला ।
—आनी पुं० १. अरण्यानी । बहुत बड़ा वन । २. मरुस्थल । रेगिस्तान । ३. वन की देवी ।

अरत (अ+रत) वि० १. जो किसी काम में रत या लगा हुआ न हो । २. जो अनुरक्त न हो । अनासक्त । ३. विरत । विरक्त । ४. सुस्त । आलसी । असंतुष्ट ।

अरति (अ+रति) स्त्री० १. (किसी से) अनुराग या प्रीति न होना ।
२. असंतोष । ३. क्रोध । ४. चिंता ।
५. उच्चाटन । ६. उद्वेग । ७. सुस्ती । प्रमाद । ८. व्यथा, पीड़ा । ९. एक प्रकार का पित्तरोग ।
वि० १. असंतुष्ट । २. शांति रहित । अशांत ।
३. सुस्त । प्रमादी ।

अरथ[1] पुं० [सं० अर्थ] १. शब्द का अभिप्राय । मनुष्य के हृदय का आशय जो शब्द से प्रगट हो । शब्द की शक्ति ।
२. अभिप्राय । प्रयोजन । मतलब ।
उ०—याको अरथ नहीं कोउ जानत ।
सूर० १०/२५४४/१५८
३. काम । इष्ट । ४. हेतु । निमित्त ।
५. इन्द्रियों के विषय । ६. चतुर्वर्ग में से एक—धन, सम्पत्ति । ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि । ८. कुंडली में लग्न

से दूसरा घर। ९. कारण। १०. वस्तु। पदार्थ। ११. लाभ। प्राप्ति। १२. याचना प्रार्थना। १३. वास्तविक स्थिति। १४. तौर तरीका। ढंग। १५. रोक। रुकावट। १६. मूल्य। १७. परिणाम। नतीजा। १८. धर्म का एक पुत्र। १९. विष्णु। २०. पूर्व मीमांसा के अनुसार एक श्रेणी अपूर्व। २१. शक्ति। २२. दावा।

अरथ[2] [अ+रथ] वि० बिना रथ के। रथ-रहित।

—वाद (पु० यौ०) [अर्थ+वाद = अर्थवाद] १. काल्पनिक। बकवाद। २. वह वाक्य जो सिद्धान्त रूप में नहीं बल्कि चित्त को किसी दूसरी ओर ले जाने वाला हो। ३. किसी विधि के करने की उत्तेजना की सूचना देने वाला वाक्य। ४. स्तुति। प्रशंसा।

—विचार (पु०) अर्थ समझना। तात्पर्य जानना भाव समझना।

अरथा— सक० १. अर्थ लगाना।

२. विस्तारपूर्वक अर्थ या आशय बतलाना। पूरी व्याख्या करना। समझाना।

अरथी[1] स्त्री० टिखटी, मुर्दे को रखकर ले जाने वाला अंड़ौआ (अरण्डों) या बाँसों वाला एक प्रकार की सीढ़ी के आकार का ठाट या ढाँचा।

अरथी[2] [अ+रथी] पुं० जो रथी न हो। बिना रथ के। पैदल।

अरथी[3] वि० १. मतलबी। २. धनी-मानी। ३. याचक। कार्यार्थी। गर्जी। प्रयोजनवाला। ४. इच्छा रखने वाला। चाह रखने वाला। ५. वादी ६. सेवक।

अरद[1] वि० जिसके दाँत न हों। बिना दाँतों वाला।

अरद[2]— सक० १. कष्ट पहुँचाना। २. नष्ट करना।

अरदा— सक० कुचलने का काम किसी दूसरे से कराना अक० कुचला जाना।

अरदास स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १. निवेदन के साथ भेंट। नजर।

२. शुभ कार्य या यात्रारंभ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना।

३. वह ईश्वर प्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढ़ावे आदि के प्रारम्भ में करते हैं।

४. प्रार्थना। विनती।

उ०—बहुत भाँति वंदन कही, बहुतहिं करि अरदास। नं० ३/१७०

अरधंग[1] पुं० १. आधा अंग।

उ०—क्यों कामहिं जारयो, कियो क्यों कामिनि अरधंग। भि० II १२५

२. शिव। ३. एक रोग जिसमें आधा अंग चेष्टाहीन और बेकाम हो जाता है। लकवा। फ़ालिज। पक्षाघात।

अरधंगी स्त्री० पत्नी। विवाहिता। स्त्री।

अरधाँगी पुं० दे० 'अर्द्धांगी'।

अरध वि० आधा।

उ०—रही पाग ढरकि अरध भाल। च० ७५/३६

क्रि०वि० १. अधः। अन्दर। भीतर।

२. नीचे तले।

—आसन पुं० [अर्द्धासन] आधा आसन। अपनी गद्दी या बैठक की आधी जगह जो किसी सम्मानित व्यक्ति को बैठने को दी जाती है

उ०—सबरी-आस्रम रघुबर आए। अरधासन दै प्रभु बैठाए। सूर० ९/६७/१७१

—गिरा (वि०) आधी वाणी। अधूरी बात।

—घरी (स्त्री०) आधी घड़ी। बारह मिनट।

—चन्द्र (पुं०) १. आधा चन्द्रमा। अष्टमी का चन्द्रमा। २. चन्द्रिका। मोर पंख पर बनी हुई आँख। ३. चन्द्र विन्दु। ४. एक प्रकार का त्रिपुण्ड। ५. नखक्षत। ६. एक प्रकार का बाण या तीर।

—धाम (पुं०) घर का आधा पाखा, पक्ष।

—पले (पुं०) आधे पल। आधे क्षण।

—पामड़े (पु०) [अर्ध–पामड़े] एक प्रकार का उपहार।

—भाल (पुं०) आधा माथा।

अरधाली स्त्री० [अर्द्धाली] आधी चौपाई। चौपाई की दो पंक्तियाँ।

अरन[1] पुं० एक तरह की निहाई जिसके एक या दोनों ओर नोक निकली होती है।

अरन[2] पुं० अरण्य। वन। जंगल।

अरन[3] स्त्री० अड़न।

अरना पुं० १. जंगली भैंसा। २. बिना पथे जंगली कंडे। सूखा गोबर। ३. एक पौधा विशेष।
—रो वि० अड़ने वाला। जंगली भैंसा जैसा।

अरनी स्त्री० दे० अरणी।

अरनारो वि० १. दे० 'अर—'।
२. लाल रंग का।

अरप— सक० १. अर्पण करना। सौंपना।
२. भेंट करना। देना।
उ०—पट अंतर दै·····तुम अरप्यौ देव नहीं कछु खाय। सूर० १०/२६१/२८१
अरपत व०कृ०। अरपित, अरप्यौ भू० कृ०। अरपन क्रि०सं०।

अरपा पुं० एक प्रकार का मसाला।

अरन्य पुं० दे० 'अरण्य'।
उ०—भली कही यह बात कन्हाई, अति ही सघन अरन्य उजारि। सूर० १०/४७२/३३८

अरप— [अर्पण] सक० १. अर्पण करना। सौंपना।
२. भेंट करना। देना।
अक० आरूढ़ होना। चढ़ना।
उ०—फनी फनन पर अरपे डरपे नहिन नैकु तब। नं०
अरपत व०कृ०। अरप्यौ भू०कृ०।

अरब[1] पुं० सौ करोड़ की सूचक संख्या।
वि० जो गिनती में सौ करोड़ हो।

अरब[2] पुं० १. पश्चिमी एशिया का रेगिस्तानी देश।
२. उक्त देश का निवासी।
३. उक्त देश का घोड़ा जो बहुत अच्छा और तेज होता है।

अरब[3] (अर्वन) पु० इन्द्र।
—ई वि० अरब देश में होने वाला। अरब संबंधी।
पुं० १. अरब देश का घोड़ा जो बहुत अच्छा माना जाता है।
२. ताशा नामक वाद्य।
स्त्री० १. अरब देश की भाषा। २. वह लिपि जिसमें उक्त भाषा लिखी जाती है।

अरबर वि० १. ऊंचा-नीचा या टेढ़ा-मेढ़ा। बेढंगा।
२. असंबद्ध। ऊट-पटाँग।
३. कठिन। विकट।
स्त्री० व्यर्थ की, ऊट-पटाँग या धृष्टतापूर्ण बात।

अरबरा वि० १. इधर-उधर हिलता हुआ। २. चंचल।
३. घबराया हुआ। विकल। ४. टक लगा-कर या स्थिर दृष्टि से देखने वाला।
५. प्रेम में मग्न या विह्वल।
उ०—ताकौं निरखि नैन अबरे। नं०
अक० व्याकुल होना। घबराना। २. चलने में लड़खड़ाना।
उ०—अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैयाँ। सूर० १०/११५/२४४
३. प्रेम-मग्न या विह्वल होना।
४. तड़पना। ५. व्यर्थ की या उद्दंडतापूर्ण बातें करना। बड़बड़ाना। ६. जल्दी मचाना। हड़बड़ी करना।

अरबरि—अरबरी स्त्री० १. घबराहट। २. बेचैनी। विकलता। ३. विह्वलता। ४. जल्दी। आतुरता। ५. भगदड़।

अरबीला—अरबीलौ वि० १. तेज-पूर्ण। २. आन वाला।
३. हठ करने या अड़ने वाला। हठी।

अरबिन्द—अरबिन्दु पुं० दे० 'अरविंद'।
उ०—मुख अरबिन्द देखि हम जीवत, ज्यौं चकोर ससि राता। सूर० ६/४६/१६७

अरभक वि० दे० 'अर्भक'।

अरभटी स्त्री० आरभटी। क्रोधादिक उग्र और भयानक भावों की चेष्टा। नाटक की वृत्ति-विशेष।

अरमान पुं० १. इच्छा। इरादा। हौंसला। चाह। साध।
मु० अरमान निकलना=लालसा पूरी होना।
२. पछतावा। पश्चात्ताप।

अरर[1] अव्य० विस्मय, विकलता, व्यग्रता आदि का सूचक अव्यय।
उ०—अरर अरर फटि दरकि गिरत घसमसति धुकनि ध्रुव। गं० ३६४/११२
पुं० १. कपाट। किवाड़। २. ढक्कन। ३. युद्ध लड़ाई। ४. उल्लू पक्षी।

अरर[2]— सक० १. कुचलना, दलना या पीसना।
२. बुरी तरह से नष्ट करना।

अररा— अक० अरर शब्द करते हुए सहसा गिरना या टूटना।
उ०—अरररात दोउ बृच्छ गिरे धर। अति आघात भयौ ब्रज-भीतर। सूर० १०/३६१/३१४
अररात व०कृ०।

अरव [अ+रव] वि० १. जिसमें रव या शब्द न हो।
२. जो शब्द न करता हो अर्थात् चुप, मौन या शांत।

पुं० रव या शब्द का अभाव ।

अरविंद पुं० १. कमल । २. तांबा । ३. सारस (पक्षी) ।

—नाभ पुं० विष्णु ।

—बंधु पुं० सूर्य ।

—योनि पुं० ब्रह्मा ।

अरवी स्त्री० १. पान के पत्ते के आकार के बड़े-बड़े पत्तों वाला कंद ।

२. उक्त कंद के लंबोतरे फल जिनकी तरकारी बनाई जाती है । अरुई । घुंइयाँ ।

अरस[1] (अ+रस) वि० १. जिसमें रस न हो । नीरस । रसहीन । २. बिना स्वाद का । फीका । ३. अनाड़ी । गँवार । ४. कमज़ोर । निर्बल ।

अरस[2] (अलस) पुं० आलस्य ।

अरस[3] (अर्श) पुं० १. आकाश ।

उ०—सेनापति जीवन अधार निरधार तुम, जहाँ को ढरत तहाँ टूटत अरस तें । सेना०

२. स्वर्ग । ३. बहुत ऊँचा भवन । महल ।

४. कमरे की छत या पाटन ।

अरस[4]— अक० १. आलस्य से युक्त होना । २. ढीला मंद या शिथिल होना ।

अरसा[1] (अर्सः) पुं० १. काल । समय । २. अधिक समय बहुत दिन । ३. देर । विलंब । ४. शतरंज की बिसात ।

अरसा[2]— अक० १. आलस्य से युक्त होना । २. आलस या सुस्ती करना । अलसाना ।

उ०—अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर ।
घ०क० २९/५४

अरसात व०कृ० । अरसानी भू०कृ० ।

—नि स्त्री० आलस्य ।

उ०—अरसानि गही उहि बानि-कछू सरसाने सौं आनि निहोरत है । घ०क० ८७/८९

—ईला—ईलौ वि० [स्त्री० अरसीली] अलसाया हुआ । आलसी । थका । तन्द्रित ।

उ०—अरसीली ढीली मिलनि मिली रसीली बाल ।
भि० I, ५१/१०

—औंहा—औंहै वि० [स्त्री० अरसौंहीं] आलस्य से भरा हुआ ।

उ०—गोहें गहिबे की, अरसोहें, सरसोहें, भ्ररसोहें वे बरसोहें रस मोहें बिलसी करें ।
दे० I, ८२/१७

अरसी पुं० १. अलसी । तीसी । पुष्प विशेष ।

२. आरसी ।

अरह— सक० आराधन करना । पूजा करना ।

—ना स्त्री० पूजा ।

अरहट—अरहद पुं० कुएँ से पानी निकालने की रहँट ।

अरहन पुं० तरकारी या साग आदि पकाते समय उसमें डाला या मिलाये जाने वाला आटा या बेसन ।

अरहर स्त्री० एक प्रसिद्ध पौधा जिसके दाने चने की की दाल जैसे होते हैं । तुअर ।

उ०—अब फूली-फूली फिरै फूली अरहर देखि ।
म० ६७/३७४

अरा[1] स्त्री० पहिये के बीच की खड़ी लकड़ी ।

पुं० लकड़ी चीरने का एक औजार ।

अरा[2] पुं० अड़ा । अक० किसी वस्तु का बीच में अड़ना ।

—अरी स्त्री० १. एक दूसरे के सामने अड़े रहना २. अड़ । जिद । हठ । ३. लाग-डाँट । होड़ ।

—ई स्त्री० जिद ठाने रहना । लड़ाई ।

—क वि० अड़ने वाला । अड़ीला । हठी ।

अराक पुं० ईराक देश ।

अराग पुं० राग का अभाव । अ-रति । विराग ।

वि० राग से रहित ।

अराज [अ+राज] वि० १. बिना राजा का (देश) ।

२. क्षत्रिय-विहीन ।

पुं० १. अराजकता । २. शासन-विप्लव ।

३. हलचल । ४. बुरा राज । कुराज ।

उ०—जग अराज ह्वै गयो, रिपुनि तव अति दुख पायो । सूर० ९/१४/१५८

—क वि० १. शासक या शासकहीन (राज्य या राष्ट्र) । २. जो शासक या शासन की सत्ता न मानता हो अथवा उसका उल्लंघन या विरोध करता हो । ३. विद्रोही या षडयन्त्रकारी ।

—ता स्त्री० १. देश में राजा या शासक का न होना ।

२. समाज की वह अवस्था जिसमें किसी प्रकार का तन्त्र, विधि, व्यवस्था या शासन न रह गया हो ।

अरात—अराति—अराती पुं० १. बैरी । शत्रु ।

२. काम क्रोधादि षड्-विकार । ३. ज्योतिष में जन्मलग्न से छठा स्थान ।

अराध— सक० १. आराधना या उपासना करना ।

उ० १—एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा। उ० ५४/५४

२. पूजा करना। सेवा करना। ३. ध्यान करना। ४. जपना।

अराधत व०कृ०। अराधा भू०कृ०।

अराधन—अराधना पुं० दे० 'आराधना'।

अराध्य वि० दे० 'आराध्य'।

अराना पुं० अड़ाना।

अराबन पुं० तोपों का दगना।

उ०—यों ही अरराहट अराबन को छायो है। प० ६३/३२०

अराम पुं० दे० 'आराम'।

उ०—बिनु घनस्याम अराम में लागी दुसह दवारि। प० ४८/३८

अराबा—अराबी—अराबौ पुं० १. पुरानी चाल की गाड़ी या रथ। २. तोप लादने की गाड़ी। तोप-गाड़ी।

अराल वि० १. टेढ़ा। तिरछा। वक्र। २. घुंघराला। ३. अपवित्र।

पुं० १. मतवाला या मस्त हाथी। २. राल। ३. सिर के बाल। केश।

अरावल पुं० हरावल। फौज का अगला भाग।

अरावली स्त्री० राजस्थान की एक प्रसिद्ध पहाड़ी।

अरिंद पुं० दे० 'अलिन्द'।

उ०—दाबि यौं बैठो नरिंद-अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछार्‍यो। भू० ३५४/१६६

अरि पुं० १. बैरी। शत्रु। रिपु। २. काम क्रोधादि छः मनोविकार। ३. जन्म कुण्डली में लग्न से छठा स्थान जहाँ से शत्रु भाव का विचार किया जाता है। ४. चक्र। ५. दुर्गन्ध।

—केसी पुं० केशी दैत्य का शत्रु। कृष्ण।

—घ्न वि० १. शत्रुओं का नाश करने वाला। २. शत्रुघ्न।

—ता स्त्री० शत्रुता। दुश्मनी।

—त्र वि० शत्रु से रक्षा करने वाला।

पुं० नाव खेने का डाँड़ा। २. वह डोरी जिससे जल की गहराई नापते हैं। ३. जहाज या नाव का लंगर।

—दमन वि० शत्रु का दमन या नाश करने वाला।

पुं० शत्रुघ्न का एक नाम।

—मंडल पुं० शत्रु समूह।

—मर्दन वि० दे० 'अरि-दमन'।

—मेद पुं० १. दुर्गंध। २. शत्रु राज्य।

—प पुं० अरि। शत्रु।

उ०—मींगों पासो अरिय अड़े। पाइत्ता है करम बड़े। भि० I, १०८/१६३

—हा वि० १. शत्रु का नाश करने वाला।

पुं० १. लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। सूर्यवंशी महाराज दशरथ के सबसे छोटे पुत्र।

२. अहित।

उ०—बान की बायु उड़ाइकै लक्षन लक्ष करौं अरिहा समरथ्थहि। के० II, १२/२६४

अरियल वि० अड़ने वाला।

अरिया[1] स्त्री० पानी के किनारे रहने वाली एक छोटी चिड़िया जो मछली खाती है।

अरिया[2]—सक० अपमानजनक शब्दों से संबोधन करना।

अरिल्ल पुं० १. राग विशेष। २. सोलह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो लघु अथवा एक नगण होता है परन्तु इसमें जगण का निषेध होता है।

उ०—अंत भगन भनि पाय पुनि बारह मत्त बखान, चौसठ मत्ता पाय चहुँ यों अरिल्ल मन मान। के० II, ३४/४५३

अरिवन पुं० रस्सी का वह फंदा जिसमें घड़ा आदि फंसाया जाता है।

अरिष्ट पुं० १. कष्ट। क्लेश। २. आपत्ति, विपत्ति। ३. अपशकुन। अशुभ लक्षण। ४. कोई प्राकृतिक उत्पात। ५. दुर्भाग्य। ६. लंका के एक पर्वत का नाम। ७. एक राक्षस जो श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था। वृषभासुर। ८. बलि के पुत्र एक दैत्य का नाम। ९. रीठा। १०. लहसुन। ११. नीम १२. कौआ। १३. गिद्ध। १४. दही का मट्ठा। १५. सूतिकाग्रह। सौरी। १६. ज्योषित में दुष्ट ग्रहों का एक योग जो मृत्युकारक माना गया है। १७. प्राचीन भारत की एक प्रकार की सैनिक व्यूह-रचना।

वि० १ दृढ़। पक्का। २. अविनाशी। ३. अशुभ।

अरी अव्य० स्त्रियों के लिए सम्बन्ध सूचक अव्यय।

अरीत [अ+रीत] स्त्री० रीति के विरुद्ध होने वाला आचरण। अनुचित या बुरा काम।

अरीला—अरीले वि० १. अड़ने वाला। हठी। जिद्दी। २. दुराग्रही।

अरुंधती स्त्री० १. महर्षि वशिष्ठ की धर्मपत्नी। २. धर्म से ब्याही गई एक दक्ष-कन्या। ३. एक तारा-विशेष जो सप्तर्षि-मण्डल में वशिष्ठ तारे के समीप रहता है। ४. नासिका का अग्रभाग। ५. तंत्र शास्त्र में जिह्वा। जीभ।

अरु[1]—अरू (अपर) अव्य० और।

अरु[2] पुं० १. सूर्य। २. मंदार वृक्ष। ३. मर्मस्थान। ४. जख्म। घाव। ५. नेत्र। आँख।

अरुआ पुं० १. एक प्रकार का जंगली वृक्ष [जिसकी लकड़ी ढोल, तलवार की म्यान आदि बनाने के काम आती है]।
उ०—आरिन में अरुआ अटारिन में......।
भू० ४९४/२२६
२. एक प्रकार का कंद जिसकी तरकारी बनती है।

अरुई स्त्री० दे० 'अरवी'।

अरुगा— सक० अच्छी तरह समझाकर कोई बात कहना
उ०—समौ पाय कहियो अरुगाई......।
नं० ७४/१४८

अरुचि स्त्री० १. रुचि या प्रवृत्ति का अभाव। अनिच्छा। २. दिलचस्पी न होना। रस न लेना। ३. घृणा। ४. अग्निमांद्य रोग। मंदाग्नि।

अरुज—अरूज वि० नीरोग। रोग-रहित। स्वस्थ।
उ०—ऊधौ साँच मन की हिये की अरु जी की हैं।
उ० ६६/६६
पुं० १. अमलतास। २. केसर। ३. सिन्दूर।

अरुझ— अक० १. उलझना। फँसना। २. अटकना। ठहरना। अड़ना। ३. लड़ना-भिड़ना। संघर्षरत होना। ४. लिपटना।
अरुझत व०कृ०। अरुझायौ, अरुझी भू०कृ०।
—न स्त्री० १. अटकाव। फँसाव। चिन्ता। समस्या। उलझन। २. गाँठ। बाधा।

अरुझा— सक० उलझाना। फँसाना।
उ०—नागरि मन गई अरुझाई।
सूर० १०/६७८/३९९
अक० लिपटना। उलझना।
उ०—मेरौ मन हरि-चितवनि अरुझानौ।
सूर० १०/१६६७/६५७
अरुझात व०कृ०। अरुझाई भू०कृ०।
व— पुं० उलझाव। अटकाव। फैलाव। उलझन

अरुझेरा पुं० उलझन।

अरुण—अरुन वि० लाल रंग का। रक्त वर्ण का। सुर्ख।
पुं० १. सूर्य। २. सूर्य का सारथी। ३. गुड़। ४. ललाई जो संध्या के समय पश्चिम में दिखलाई पड़ती है। ५. एक दानव का नाम। ६. एक प्रकार का कुष्ठ रोग। ७. पुन्नाग वृक्ष। ८. गहरा लाल रंग। ९. कुमकुम। १०. सिन्दूर। ११. एक देश। १२. बारह सूर्यों में से एक सूर्य। माघ महीने का सूर्य। १३. आचार्य का नाम, जो उद्दालक ऋषि के पिता थे। १४. जहरीला क्षुद्र जंतु। १५. झील जो हिमालय के इस पार है। १६. सोना। स्वर्ण। १७. एक प्रकार का पुच्छल तारा।
—कर पुं० सूर्य।
—चूड़ पुं० १. वह जिसकी चोटी या शिखा लाल हो। २. मुर्गा।
—ता स्त्री० लालिमा। ललाई। लाली।
उ०—सूर स्याम छवि अरुनता (हो)।
सूर० १०/४२/२२५
—नेत्र पुं० १. कबूतर। २. कोयल।
—प्रिया स्त्री० १. सूर्य की स्त्रियाँ। २. एक अप्सरा का नाम।
—मल्लार पुं० मल्लार राग का एक भेद जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।
—शिखा पुं० मुर्गा, जिसकी चोटी लाल होती है

अरुणा स्त्री० १. प्रातःकाल की पूर्व दिशा की लाली। २. उषा। ३. लाल रंग की गौ। ४. मंजीठ। ५. अतिविषा। ६. घुँघची। ७. एक प्राचीन नदी।
—ई स्त्री० ललाई। लालिमा।
उ०—ऐसी अरुनाई तरुनाई कहाँ पाई है।
गं० ६९/२३

अरुणोदय—अरुनोदय पुं० ब्रह्म मुहूर्त। तड़का। भोर। प्रातः। उषाकाल। भुकभुका।
उ०—सोरह कला सँपूरन मोहौ, ब्रज अरुनोदय भोर। सूर० १०/१२०३/५४२

अरुणोपल पुं० पद्मराग मणि। लाल रंग का एक रत्न। लाल उपल।

अरुनिमा—अरुणिमा स्त्री० लाली। लालिमा।

उ०—कोमल किरन अरुनिमा मैं व्यापि रही अरा ।
नं० ४३/४

अरुना[1] स्त्री० दे० 'अरुणा' ।

उ०—अरुना नृमना सतमरा, ऋतंभरा अवदात ।
के० III, २७/६६०

अरुना[2]— अक० १. लाल होना । रक्तवर्ण होना ।
२. छिलना । चुभना ।

—या वि० १. लाली लिए हुए । ललौंहा ।
२. गदराया । अधपका ।

—रा वि० जिसका रंग लाल हो । लाल रंग वाला ।

अरुर—अरूर[1]—अक० दुखित होना । पीड़ित होना ।

अरुर[2]— सक० मुड़ना । सिकुड़ना । संकुचित होना ।

अरुवा[1] पुं० एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते के सदृश्य होते हैं । इसका कंद खाया जाता है ।

अरुवा[2] पुं० उल्लू पक्षी ।

अरुष[1] वि० १. अक्रोधी । २. चमकदार । ३. विना हानि का । अक्षत । ४. चक्कर काटने वाला, जैसे घोड़ा ।

अरुष[2] पुं० १. अग्नि का लाल रंग का घोड़ा ।
२. सूर्य । ३. ज्वाला । ४. रक्त वर्ण के तूफानी बादल ।

अरुझ—अरुझ वि० उलझी हुई । अवरुद्ध ।

उ०—आरसी जौ सम दीजै बूझ कौं अरुझ कीजैं ।
घ० क० २५९/१७७

अरूट वि० अत्यंत क्रुद्ध ।

अरूढ़[1] वि० दे० 'आरूढ़' ।

अरूढ़[2] वि० जो रूढ़ न हो । प्रचलित न हो । अप्रचलित

अरूप[1] (अ+रुप) वि० १. रूप से रहित । निराकार ।
२. कुरूप । भद्दा । ३. असमान ।

उ०—जोति अनादि अनंत अमित अद्भुत अरूप गुनि ।
के० III, १/६४३

अरूप[2] पुं० १. बदसूरत वस्तु । २. सांख्य में प्रधान और वेदांत में ब्रह्म ।

अरूल—अक० छिलना । छिदना । चुभना ।

उ०—छत आजुको देखि कहौगी कहा, छतिया नित ऐसे अरूलति है ।
देव०

—ए वि० पीड़ित । व्यथित । दुखित ।

उ०—करि सुकेलि दीनो न कछु, तिनहिं अरूले गात ।
कृ० ३५४/७७

अरूसा पुं० दे० 'अड़ूसा' ।

अरे अव्य० [स्त्री० अरी] १. संबोधन का शब्द । ए ! ओ ! २. आश्चर्यसूचक अव्यय ।

अरेर— सक० रगड़ना । मलना । मसलना ।
अरेरत व०कृ० । अरेरा—अरेरौ भू०कृ० ।

अरैल—अड़ैल वि० अड़ने वाला । हठी ।

उ०—छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत का पै अरैल भए हौ ।
घ० क० ४०२/२३७

अरोक [अ+रोक] वि० १. जिस पर रोक या नियंत्रण न लगा हो । २. जिसके आगे कोई रुकावट न हो । ३. जो रुकता न हो ।

अरोग[1] (अ+रोग) वि० रोग-रहित । नीरोग ।
पुं० रोग का अभाव । आरोग्य ।

अरोग[2]— अक० आरोगना । भोजन करना ।

उ०—ब्यारू स्याम अरोगन लागे । च० २८३/१४२

अरोच स्त्री० अरुचि ।

उ०—मौनु पंनवान को, अरोच अभिमान को, ये सोचु पति प्रान को, सकोचु सखियौन को ।
दे० I, ६६१/१५८

वि० अरुचिकर ।

—क वि० स्वादहीन । अरुचि-उत्पादक । अरुचिकर ।

पुं० अग्निमांद्य रोग, जिसमें मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है ।

अरोप— अक० आरोपित करना ।

उ०—सुषमा सकेलि कै न उपमा अरोपै री ।
ठा० १२/५

अरोह— अक० १. सवार होना । चढ़ना । आरोहण करना । २. ऊपर चढ़ना ।

अरौद्र वि० जो रौद्र न हो ।

अर्क[1] पुं० १. सूर्य ।

उ०—सक्र जिमि सैल पर अर्क तमफैल पर बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिए ।
भू० ४०८/२०६

२. बारह आदित्यों या सूर्यों के आधार पर १२ की संख्या । ३. सूर्य का दिन या वार । रविवार । ४. सूर्य की किरण । ५. विष्णु । ६. इन्द्र । ७. उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र । ८. पंडित । ९. बड़ा भाई । १०. बिल्लौर । स्फटिक । ११. ताँबा । १२. आक या मदार नामक पौधा । १३. एक प्राचीन धार्मिक कृत्य ।

—कांता स्त्री० अड़हुल ।

—क्षेत्र पुं० सिंह राशि।
—ज पुं० १. सूर्य के पुत्र, यम। २. शनि।
३. अश्विनी कुमार। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण।
वि० सूर्य से उत्पन्न होने, निकलने या बनने वाला।
—जा स्त्री० १. सूर्य की पुत्री, यमुना।
२. ताप्ती नदी।
—दिन पुं० सौर दिन। रविवार।
—पुत्र पुं० आक के पत्ते।
—पर्ण पुं० १. मंदार का वृक्ष।
२. मंदार का पत्ता।
—कर पुं० सूर्य की किरण।
वि० १. आदरणीय या पूज्य। २. गुणों का गान करने वाला। प्रशंसक।

अर्क² पुं० भभके से खींचा हुआ किसी चीज का रस।
—वादियान पुं० सौंफ का अर्क।

अर्गजा पुं० दे० 'अरगजा'।

अर्गल पुं० दे० १. 'अरगल'।
२. किवाड़। ३. कल्लोल। लहर।
४. सूर्योदय के समय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाले रंग-बिरंगे बादल।
—आ स्त्री० १. दे० 'अरगल'।
२. अवरोध। रुकावट।
३. किवाड़ बंद करने की कील या सिटकिनी।

अर्घ पुं० १. दूब, दूध, चावल आदि मिला हुआ जल जो देवता या पूजनीय पुरुष को अर्पित किया जाता है।
२. किसी देवी-देवता के सामने पूज्य भाव से जल गिराना या अँजुली में भरकर जल देना।
३. अतिथि को हाथ-पैर धोने के लिए दिया जाने वाला जल।
४. मधु। शहद। ५. घोड़ा। ६. भेंट।
७. दाम। मूल्य।
—आ पुं० अर्घपात्र। जलहरी। ऐसे २० मोतियों का लच्छा जिसकी तौल २० रत्ती हो।
—दान पुं० देवता, अतिथि आदि को अर्घ देना।
—पतन पुं० सस्ती होना। भाव गिरना।
—पात्र पुं० अर्घ अर्पण करने का पात्र या अरघा
—ईश्वर पुं० शिव।

अर्घ्य वि० १. बहुमूल्य। २. पूजनीय। ३. पूजा में देने योग्य (जल, फल, फूल, दूब आदि)।
पुं० १. नजराना। भेंट या उपहार में देने योग्य।
२. एक प्रकार का मधु।

अर्च— सक० अर्चन करना। पूजा करना।
—आ स्त्री० १. पूजा। २. देव-मूर्ति।
—इत वि० पूजित। आदृत। सम्मानित।
पुं० विष्णु।
—क वि० पूजा करने वाला। पुजारी।
—न—ना पुं० १. पूजा। पूजन। नव प्रकार की भक्ति में से एक।
२. आदर। सत्कार।
—नीय वि० १. पूजा करने योग्य।
२. आदरणीय। श्रद्धास्पद।
—मान वि० अर्चनीय।

अर्चि स्त्री० १. अग्नि-शिखा। ज्वाला। लपट।
२. सूर्योदय अथवा सूर्यास्त की किरणें।
३. दीप्ति। तेज।

अर्ज¹ (अ०) स्त्री० दे० 'अरज'।

अर्ज² पुं० दे० 'अरज'।
—ई स्त्री० दे० 'अरज'।

अर्जक वि० उपार्जन करने वाला। कमाने या पैदा करने वाला। उपार्जक।

अर्जन पुं० दे० 'अरजन'।

अर्जमा पुं० १. मदार। २. सूर्य। ३. उतरा फाल्गुनी नक्षत्र।

अर्जुन पुं० दे० 'अरजुन'।
—ध्वज पुं० हनुमान।
—ध्वजा स्त्री० वह पताका जिस पर हनुमान जी का चित्र अंकित होता है।

अर्जुनी स्त्री० १. सफेद रंग की गाय। २. कुटनी।
३. उषा।
पुं० अभिमन्यु।

अर्जुनोपम पुं० सागौन का पेड़, जो अर्जुन की तरह सफेद तने वाला होता है।

अर्ण पुं० १. वर्ण। अक्षर। २. जल। पानी।
३. एक प्रकार का दण्डक वृत्त।
४. शाल वृक्ष। साखू।
—व पुं० १. समुद्र। सागर। २. सूर्य। ३. इन्द्र
४. अंतरिक्ष। ५. दंडक वृत्त का भेद।

अर्थ पुं० दे० 'अरथ¹'।

—गौख पुं० अर्थ की गंभीरता।
—चिंता स्त्री० धन की चिंता।
—दंड पुं० जुर्माने की सजा।
—पति पुं० कुबेर। राजा।
—पिशाच पुं० अति धनलोभी।
—शौच पुं० लेन-देन या पैसा कमाने में ईमानदारी से काम करना।
—सिद्ध पुं० प्रसंग से ही जिसका अर्थ स्पष्ट हो।
—सिद्धि स्त्री० अभीष्ट की सिद्धि।
—हीन वि० १. निर्धन। २. निरर्थक।

अर्थना स्त्री० प्रार्थना। निवेदन।

अर्थवान वि० १. अर्थ-युक्त। २. मतलबी। स्वार्थी।

अर्थागम पुं० धन-प्राप्ति। आमदनी।

अर्थाना— सक० अर्थ बताना। मतलब समझाना।

अर्थानर्थ पुं० अर्थ और अनर्थ। शुभ और अशुभ।

अर्थान्तर पुं० १. दूसरा विषय। नयी स्थिति। २. दूसरा मतलब।
—न्यास पुं० एक अर्थालंकार जहाँ सामान्य से विशेष का, विशेष से सामान्य का अथवा कारण से कार्य का या कार्य से कारण का समर्थन हो।
उ०—सो अर्थान्तरन्यास हैं बरनत मति उल्लेप।
म० २८६/३४८

अर्थापत्ति पुं० १. ऐसा प्रमाण जिसमें एक बात से दूसरी बात की सिद्धि आप ही आप हो जाय।
२. एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलायी जाय। इसे काव्यार्थापत्ति भी कहते हैं।
उ०—कहत काव्यपद सहित तहँ अर्थापत्ति सुजान।
म० २८७/३४८

अर्थालंकार पुं० वह अलंकार जिसमें अर्थगत चमत्कार प्रकट किया जाय।

अर्थालि (अर्थ+आलि) स्त्री० अर्थ-माला। अर्थ-पंक्ति।
उ०—गहब तजब अर्थालि को जहाँ एकावलि सोय।
प० १७५/५४

अर्थावृत्ति (अर्थ+आवृत्ति) स्त्री० १. अर्थ का दुहराया जाना।
२. एक अलंकार जिसमें एकार्थवाची शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया जाता है और वे शब्द या तो एक ही अर्थ को अथवा सदृश अर्थ को व्यक्त करते हैं।

अर्थी वि० इच्छा रखने वाला। चाह रखने वाला। प्रयोजन वाला।
पुं० प्रार्थी। सेवक। याचक।

अर्थ्य[1] वि० १. माँगने योग्य। २. उचित। अच्छा।
पुं० शिलाजीत।

अर्थ्य[2] पुं० लाल खड़िया।

अर्द —सक० पीड़ित करना।
—न पुं० १. पीड़न। हिंसा। २. जाना। गमन। ३. माँगना। ४. शिव का एक नाम।
वि० पीड़ा देने वाला। नष्ट करने वाला।
उ०—काली मर्दन दावानल अर्दन जमुला तारन नमो नमो। गो० १०/५

अर्द्धंग—अर्धंगा [स्त्री० अर्धंगी] पुं० १. शिव। २. आधा शरीर।
उ०—तिय अर्धंगा सिर में गंगा।
भि० I, २३६/२१२

अर्द्ध—अर्ध वि० आधा।
उ०—अर्द्ध गई सर्वरी कछुक उर डरीं न सगरी।
नं ७२/७
—क[1] पुं० घुटनों तक पहनने का लहँगा या पेटीकोट।
—क[2] वि० आधा।
—कूट पुं० शिव।
—गंगा स्त्री० कावेरी।
—गिरा वि० आधी बात। अधूरी बात।
—चंद्र पुं० १. आधा चाँद, अष्टमी का चन्द्रमा। २. चंद्रिका, मोर पंख की आँख। ३. एक प्रकार का बाण जिसके अग्रभाग पर अर्ध चन्द्राकार नोंक होती है।
—जल पुं० श्मशान में शव को स्नान कराकर आधा जल में आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धांश पुं० अर्धभाग। आधा हिस्सा।

अर्द्धतूर पुं० एक प्रकार का वाद्य।

अर्द्धनटेश्वर पुं० शिव का एक रूप।

अर्द्धनयन पुं० देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में होती है।

अर्द्धनारीश्वर पुं० तंत्र में शिव और पार्वती का सम्मिलित होना।

अर्द्धपारावत पुं० तीतर।

अर्द्धांग पुं० १. दे० अर्द्धंग।

२. एक विशेप प्रकार का लकवा या वायु-रोग जिसमें आधा शरीर बेकाम और शून्य होकर जड़ीकृत सा हो जाता है। फालिज, पक्षाघात।

—इनी स्त्री० पत्नी। सहधर्मिणी।

—ई पुं० शिव। शंकर।

वि० पक्षाघात-पीड़ित।

अर्द्धाली स्त्री० आधी चौपाई।

अर्ध-नराच पुं० १. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण और लघु, गुरु होता है। २. एक प्रकार का बाण।

अर्प—अरप—सक० अर्पण करना। भेंट करना।

उ० करि-करि पाक जबै अर्पत हैं तबहीं तब छ्वै आवै। सूर० १०/२४६/२७६

अर्पत व०कृ० अरप्यौ भू०कृ०।

—इत वि० अर्पण किया हुआ। भेंट किया हुआ।

अर्पण—अर्पन पुं० १. देना। दान। २. नज़र। भेंट।

अर्ब (अर्बुद) पुं० दशकोटि, दस करोड़ की संख्या। अरब।

उ०—सुपर्व सर्ब अर्ब खर्ब जैधुनी अरंभहीं। प० ६७/२८३

—खर्ब पुं० असंख्य। अत्यधिक।

उ०—अर्ब-खर्ब लौं द्रव्य है, उदय-अस्त लौं राज। तु०

अर्बुद पं० १. गणित में ९ वें स्थान की संख्या, दस। कोटि, दस करोड़ की संख्या। २. अरावली पर्वत। ३. एक असुर का नाम।

उ०—सेन के कपिन को को गनै अर्बुदै। कवि० २०/३०

४. कद्रू का पुत्र, एक सर्प का नाम। ५. बादल। ६. दो महीने का गर्भ। ७. शरीर में एक प्रकार की गाँठ पड़ने वाला रोग, बतौरी रोग।

अर्भ[1] पुं० १. बालक।

उ०—तुम करि वे संकर्पन अर्भ। नं० १/१९१

२. शिष्य। ३. शिशिर। ४. साग-पात।

अर्भ[2] वि० १. मलिन। धुँधला। २. लघु। छोटा।

—क[1] वि० १. छोटा। अल्प। २. मूर्ख। ३. दुबला-पतला। कृश।

—क[2] पुं० १. बालक। लड़का।

उ०—गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। तु०

२. किसी भी जानवर का बच्चा। शावक।

अर्रा[1] पुं० १. एक जंगली वृक्ष की लकड़ी, जो छत आदि पाटने के काम आती है।

२. अरहर।

अर्रा[2]— अक० १. चिल्लाना। २. जोर से पुकारना। ३. व्यर्थ की बात करना। ४. एक बेर में भहरा पड़ना, अरराना।

अर्राटा पुं० शोर। भयानक शब्द। किसी वस्तु के गिरने का शब्द।

अर्रारा पुं० अकस्मात् एक ही समय में पतन।

अर्वाचीन वि० आधुनिक। नया। नूतन।

अर्श[1] पुं० १. पीड़ा। वेदना। दर्द। २. बवासीर।

अर्श[2] (अ०) पुं० आकाश।

अर्शपर्श पुं० छुआछूत। अशुद्धि। अपवित्रता। अशुचिता

अर्सा पुं० १. समय। काल। वक्त। २. देर। अबेर। विलम्ब।

अर्ह वि० १. पूज्य। २. योग्य। उपयुक्त। श्रेष्ठ।

पुं० १. ईश्वर। २. इन्द्र।

अर्हत वि० पूज्य।

पुं० १. परम ज्ञानी। २. बुद्ध। ३. तीर्थंकर।

अलं अव्य० यथेष्ट। पर्याप्त। काफी।

अलंकार (अलम्+कार) पुं० १. वह वस्तु या सामग्री जिसके योग से किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है।

२. जेवर। गहना। आभूषण।

३ साहित्य में, प्रभावशाली तथा रोचकता-पूर्ण रूप में किसी बात का वर्णन करने का ढंग या रीति।

—इक वि० अलंकृत। विभूषित। अलंकार से युक्त।

—शास्त्र पुं० वह विद्या या शास्त्र जिसमें साहित्यिक अलंकारों की परिभाषा, विवेचन तथा वर्गीकरण किया जाता है।

अलंकृत वि० १. वस्तु या व्यक्ति जिसका अलंकरण हुआ हो अथवा किया गया हो।

उ०—सातै रासि मेलि द्वादस में, कटि मेखला अलंकृत साजत। सूर० १०/१८०१/१२

२. सजाया हुआ। अलंकारों से युक्त (कविता)।

—इ स्त्री० सजावट।

उ०—लेश अलंकृति दोइ बिधि है जहँ गुन में दोष।
प० २३१/६१

अलग[1] (अलं+अंग) पुं० १. ओर। तरफ। दिशा।
२. मकान के किसी खंड का किसी ओर का भाग या विभाग।
स्त्री० बाज। सेना का पक्ष।

अलंग[2] (अ+लंग) वि० जो लँगड़ाता न हो।

अलंघन (अ+लंघन) पुं० १. न लाँघना। न फाँदना। अनुल्लंघन। २. उपवास का अभाव।
—ईय वि० १. जो लाँघने योग्य न हो। अलंघ्य। २. अ[illegible]।

अलंघ्य (अ+लंघ्य) वि० १. जो लाँघने योग्य न हो। जिसे न फाँद सकें। २. अटल। अनिवार्य।

अलंपट[1] (अ+लंपट) वि० चरित्र वाला। सच्चरित्र।

अलंपट[2] स्त्री० अंत:पुर।

अलंब पुं० आलंब। सहारा। आसरा।
—न पुं० दे० 'आलंबन'।
उ०—अब लगि अवधि अलंबन करि करि राख्यौ मनहिं सराहि। सूर०
—इत वि० आश्रित। आधारित।

अल[1] पुं० १. बिच्छू का डंक। २. विष। जहर।
उ०—लपरि गयो सब अंग अंग प्रति निर्विस कियो सकल अल झार्‌यो। सूर०

अल[2] पुं० १. आभूषण। गहना। २. मनाही।
३. निरर्थक। वृथा।

अलक[1] स्त्री० १. मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए मरोड़दार बाल।
उ०—नीकी लसी लखी मुख ऊपर बंक अलक अलबेली। बो० २४/६६
२. बाल। केश। ३. हरताल। ४. सफेद आक।

अलक[2] पुं० (दे० अलक्त)

अलक[3] पुं० अलकापुरी।
—अवली स्त्री० १. सँवारे हुए बालों की पंक्ति। २. घुँघराले या छल्लेदार बाल।
—त पुं० दे० 'अलक[2]'।
—नंदा स्त्री० १. ८ से १० वर्ष की लड़की। २. एक नदी का नाम जो भागीरथी की धारा में मिल जाती है।
—पट पुं० घूंघट-पट। ओढ़नी।
—प्रभा स्त्री० अलकापुरी।
—प्रिय पुं० पीतसाल नाम का पेड़।
—फंदन—फंदनि पुं० घुंघराले बालों का गुच्छा।
उ०—मकर संकट काम बाणी अलक-फंदनि डोरा। सूर० १०/२१३३/७८
—लड़ैता। दुलारा। लाड़ला।
उ०—मेरी अलक लड़ैतो मोहन, ह्वैं है करत संकोच। सूर० १०/३१७५/३२३

अलकतरा पुं० एक गाढ़ा तरल पदार्थ, जो पत्थर के कोयले को विशेष रासायनिक क्रिया द्वारा गलाने से बनता है, कोलतार।

अलका स्त्री० १. आठ और दस वर्ष के बीच की उम्र की बालिका। २. कुबेर की नगरी, अलकापुरी।
उ०—हलका छुटत सोर अलका परत हैं। गं० ३४३/१०५
३. कुसुम-विचित्रा नामक छंद।
—पति पुं० अलकापुरी का राजा। कुबेर।
—पुरी स्त्री० कुबेर की नगरी।

अलकेस पुं० कुबेर। धनपति। अलकेन्द्र।
उ०—धूरि-धुंध-मंडित रबि-मंडल अकबकात अलकेस अखंडल। प० ६०/१०

अलक्ख—अलक्ष वि० अलक्ष्य। जो दिखाई न दे।
उ०—लक्खक्खलि रन ढक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि। भू० २३४/१६१
—इत वि० १. अप्रकट। अज्ञात। २. अदृश्य। गायब। ३. अचिह्नित।

अलक्त—अलकाक पुं० १ कुछ वृक्षों से निकलने वाला एक प्रकार का लाल रस जो उसकी डालों या तनों पर जम जाता है। लाख, लाही, चपरा आदि इसके विभिन्न प्रकार या रूप हैं। २ उक्त लाख से तैयार किया हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैरों पर लगाती हैं। महावर।

अलक्षण पुं० १. बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।
वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षण वाला।

अलक्ष्य वि० दे० 'अलक्ष'।
—गति वि० अदृश्य रूप से गमन करने वाला।

अलख[1] (अ+लक्ष्य) वि० १. जो दिखाई न पड़े। अदृश्य। अप्रत्यक्ष।
उ०—सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहिं जायं। वि० ६४८
२ अगोचर। इंद्रियातीत।
३. ईश्वर का एक विशेषण।
मु० अलख जगाना १. पुकार कर पर-

मात्मा का स्मरण करना । २. परमात्मा के नाम पर भिक्षा माँगना ।

—इत वि० अप्रकट, अदृश्य ।

पुं० ब्रह्म । ईश्वर ।

—धारी पुं० दे० 'अलखनामी' ।

—नामी पुं० एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में हैं ।

—निरंजन पुं० परब्रह्म । ईश्वर । परमात्मा ।

—मंत्र निर्गुण सम्प्रदाय में ईश्वर मंत्र ।

अलग वि० १. पृथक् । जुदा । न्यारा ।

उ०—तू सदा अलग जाकी छाँहीं न दिखाति है ।
घ० क० १४२/११७

—थलग वि० १. दूर-दूर । २. पृथक्-पृथक् । भिन्न-भिन्न ।

—ई वि० १. बिना लगी ।

उ०—लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है ।
घ० क० १४२/११७

२. दूर । ३. अलग । भिन्न ।

अलगनी स्त्री० दोनों सिरों पर बँधी हुई वह आड़ी रस्सी या बाँस जिस पर कपड़े आदि लटकाए जाते हैं । अरगनी ।

अलगरज वि० १. लापरवाह । वेपरवाह । बेफिक्र ।

उ०—अलगरजें जैसो बनै, वैसो करै उपाव ।
कृ० ५४/७१

२. अन्यमनस्क ।

—ई वि० १. जिसे गरज या परवाह न रह गई हो । बेपरवाह ।

२. अपने स्वार्थ साधन में पक्का । परम स्वार्थी ।

स्त्री० वेपरवाही । लापरवाही ।

अलगा—सक० १. अलग करना । छाँटना । बिलगाना । जुदा करना । २. दूर करना । हटाना ।

अक० अलग होना । बिछुड़ना ।

उ०—तीरथ करत दोऊ अलगाई ।
सूर० ३/४/१०६

—ऊ वि० अलग करने वाला । अलग रखने वाला ।

—व पुं० १. पृथक्करण । बिलगाव । २. जुदाई ।

अलगोजा—अलगोय पुं० एक प्रकार की बाँसुरी । वंशी की एक जाति । मुँह से बजने वाला बाजा विशेष ।

उ०—अलगोजे बज्जत छिति पर छज्जत सुनि धुनि लज्जत कोइ रहैं ।
प० ८४/२८५

अलबल वि० १. ऊट-पटाँग । मनमाना । बेसिर पैर का । असम्बद्ध ।

उ०—ह्वै गईं बिह्वल बाल लाल सों अलबल बोलैं ।
नं० १/१५

२. बहुत कोमल ।

अलबली स्त्री० बेल द्वारा उपजने वाले छोटे-छोटे फल ।

वि० १. नूतन । नवीन । २. बहुत ही नरम ।

अलच्छ वि० दे० 'अलक्ष्य' ।

उ०—लागत अलच्छ कुबजा के पच्छवारे हौ ।
उ० ८६/८६

—ई स्त्री० १. अलक्ष्मी । दरिद्रता ।

उ०—अलच्छी अलज्जी दुओ गीत गावै ।
के० III, ११/६६३

अलज[1]—**अलज्ज** वि० अलज्ज । निर्लज्ज । वेहया । बेशर्म । लज्जाहीन ।

उ०—बारबधुन को रसिक सों वैसिक अलज अभीत ।
प० २६६/१४५

अलज[2] पुं० एक प्रकार का पक्षी ।

अलट क्रि० वि० औंधा, उलटा ।

—पलट यौ० उलटा-सीधा । उलट-पुलट ।

अलता पुं० महावर ।

अलप (अल्प) वि० १. थोड़ा । कम । २. छोटा । सूक्ष्म । ३. पतला । क्षीण ।

उ०—अलप जु कटि तहँ किंकिनी करत खुधुनि अवरेख ।
प० १६२/५१

—अहारी वि० थोड़ा खाने वाला । स्वल्पभोजी

—क वि० १. थोड़ा । कम । न्यून । २. कुछ ।

—तलप वि० १. थोड़ा बोलने वाला ।

२. तुतला कर बोलने वाला ।

—धी वि० कम बुद्धि वाला । मामूली बुद्धि वाला ।

पुं० नव-सिख बच्चों की बोली ।

अलपासी वि० थोड़ी सी । अल्प सी । बहुत ही कम । न्यून से न्यून ।

अलफ (अ०) पं० १. घोड़े का आगे के दोनों पाँव उठाकर पिछली टाँगों के बल खड़ा होना ।

२. अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर ।

अलबत अव्य० दे० 'अलबत्ता' ।

अलबत्ता अव्य० १. बिना शंका या संदेह के । निस्संदेह । बेशक । २. परन्तु । लेकिन । किन्तु ।

अलबेल—अलबेला—अलबेलौ वि० [स्त्री० अलबेली] १. अनूठा । अनोखा ।

उ०—देखति हौं अलबेले बिचित्र कों आली चरित्र मैं चारि घरी सों । ल० I, १६५/२५

२. बना-ठना । सुंदर । ३. बाँका । छैला । छैल-छबीला । ४. अल्हड़ । मौजी । लापरवाह ।

उ०—वैसे उदोतहि भारो न होत ज्यों नीरे की नाई फिरै अलबेलो । गं० २४४/७३

—पन पुं० १. बाँकापन । छैलापन । २. अनोखापन । अनूठापन । ३. अल्हड़पन । बेपरवाही ।

पुं० नारियल का हुक्का ।

अलब्ध वि० जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो । अप्राप्त ।

अलभ—अलभ्य वि० १. अप्राप्य । दुर्लभ । कठिन । २. दुष्प्राप्य । जिसके मिलने में कठिनाई का सामना करना पड़े । ३. अमूल्य । अनमोल । अमोल ।

—ई १. अप्राप्य । दुर्लभ । २. अमोल ।

—लाभ वि० अप्राप्य वस्तु का मिलना । कठिनता से मिलने वाली वस्तु का मिलना । अलभ्य का प्राप्त होना ।

अलम् अव्य० १. पर्याप्त । यथेष्ट । २. बस । इतना ही । बहुत हो चुका । ३. योग्य । सक्षम ।

अलम पुं० १. कष्ट । दुःख । २. मानसिक पीड़ा या व्यथा । ३. सेना का चिह्न और पताका । ४. पर्वत । पहाड़ ।

—ई १. दुःख देने वाला । २. झंडा लेकर चलने वाला ।

अलमस्त वि० अपनी प्रस्तुत स्थिति में सदा मस्त रहने और कभी किसी बात की चिंता न करने वाला । सदा निश्चिन्त और प्रसन्न रहने वाला । मतवाला । लापरवाह ।

अलमारी स्त्री० चीजों के रखने के लिए खड़ा सन्दूक । बड़ी भँडरिया ।

अलमास पुं० हीरा ।

अलय वि० १. बिना घर वाला । चलता-फिरता । गृहहीन । २. जिसमें लय न हो । लय-हीन । बिना लय का ।

अलर्क पुं० १. पागल कुत्ता । २. सफेद मदार या आक । ३. एक अंधे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनों आँखों को निकाल कर देने वाले एक प्राचीन राजा का नाम ।

अलल[1] वि० १. सुंदर । बढ़िया । २. अल्हड़ । मौजी ।

क्रि०वि० इधर-उधर ।

—टप्पू वि० १. जो यों ही बिना सोचे-समझे मान या स्थिर कर लिया गया हो । अटकल पच्चू । २. अंड-बंड । बे-ठिकाने का । ऊट-पटाँग ।

—बछेड़ा पुं० १. घोड़े का जवान बच्चा । २. अनुभव-शून्य या अल्हड़ व्यक्ति ।

अलल[2] दे० 'अलल' ।

अलल[3] पुं० एक विशेष प्रकार की ध्वनि ।

उ०—करिक अलल भूत भैरो तमकत है । भू० ४५२/२१७

अलला— अक० १. बहुत जोर से चिल्लाना । तेज चिल्लाना । २. गला फाड़कर बोलना । ३. बकना । व्यर्थ बोलना ।

अलवाँती स्त्री० वह स्त्री जिसे हाल ही में बच्चा हुआ हो । प्रसूता । जच्चा ।

अलवाई स्त्री० ऐसी गाय या भैंस जिसे बच्चा हुए एक या दो महीने हुए हों ।

अलवान पुं० ऊनी या पशमीने की बढ़िया चादर ।

अलवाल पुं० दे० 'आलबाल' ।

अलविदा स्त्री० १. विदाई के समय कहा जाने वाला शब्द ।

२. अन्तिम विदा ।

अलस पुं० दे० 'आलस्य' ।

उ०—चारि जाम जु निसि उनींदे, अलस बसहि जम्हात । सूर० १०/२६७६/१८५

वि० आलस्ययुक्त । आलसी । सुस्त । मंद ।

उ०—चंदन मिटाए तन अतिहीं अलस मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोली । सूर० १०/२५०७/१५१

—इत वि० सुस्त ।

—ई स्त्री० अलसता ।

उ०—कुंभकरन को रन हुयो गह्यो अलसई । भि० I, ५१४/७५

—ज आलस्य से उत्पन्न । शैथिल्य ।

अलसा[1] स्त्री० हंसपदी लता । लज्जावंती ।

अलसा[२]— अक० १. आलस्य का अनुभव करना या आलस्य से युक्त होना।
उ०—अलसानी अँगराइ मोरि तनु ठाढ़ी उलटि उभय भुज जोरी। कुं० ३१८/१०७
२. उक्त के फलस्वरूप शिथिल होकर कर्तव्य पालन से दूर रहना।
३. उदासीन खिन्न या विरक्त होना।
अलसात व०कृ०। अलसानी भू०कृ०।
—न—नि स्त्री० १. आलस्य। सुस्ती। शैथिल्य थकावट।
उ०—कहि ठाकुर चाहनि सों उमगे अलसान सने अँखियान अरे। ठा० १५/६५
वि० अलसाई हुई।
उ०—करि आदर तिय पीय को देखि दृगनि अलसानि। प० ६५/६२

अलसाले—अलसालो—अलसालौ पुं० आलस्य।
उ०—पदमाकर भावें न भावें बनै जिय ऐसे कछू अलसाले पर्‌यो। प० १४६/१११

अलसी[१] (अतसी) स्त्री० एक प्रकार का पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। इसी पौधे के बीज, तीसी।

अलसी[२] (अ+लसना) वि० जो न छीजती हो। अशोभित।

अलसेट—अलसेठ स्त्री० १. व्यर्थ की ढिलाई या शिथिलता। २. जानबूझ कर खड़ा किये जाने वाला झगड़ा या तक़रार। ३. झंझट। बखेड़ा। ४. अड़चन। बाधा।
—ई वि० झगड़ालू। बेसिर पैर की बातें करने वाला।
इया वि० १. अड़चन डालने वाला। २. झगड़ालू ३. टालने वाला। विलम्ब करने वाला।

अलसौंहा वि० [स्त्री० 'अलसौंहीं']
१. आलस्य में पड़ा हुआ। अलसाया हुआ।
उ०—एते अचानक जागि परी सुख ते अँगिरात उठी अलसौंहैं। म० ८४/३१३
२. खुमारी या नींद से भरा हुआ (नेत्र)।
उ०—बल-सौंहैं कत कीजियत ए अलसौंहैं नैन। बिं० ४९८/२०५

अलह वि० दे० 'अलभ्य'।
पुं० अल्लाह। खुदा।

अलहदगी स्त्री० अलगाव। बिलगाव। पार्थक्य।

अलहदा वि० जुदा। अलग। पृथक्।

अलहन (अ+लभन) पुं० १. अप्राप्ति। प्राप्ति या लाभ का अभाव। २. आपत्ति। संकट।
—आ वि० न पाने वाला।

अलहा वि० अलभ्य। जो प्राप्त न हो।

अलाई[१] वि० १. आलसी। सुस्त। शिथिल। काहिल।
स्त्री० १. सुस्ती। आलस्य। २. अन्हौरी।

अलाई[२] पुं० घोड़े की एक जाति।

अलाई[३] स्त्री० लक्ष्मी।

अलाग वि० १. निर्दोष। बेदाग़। २. बिना लगाव के। निष्पक्ष।
—लाग पुं० नृत्य का एक ढंग या प्रकार।

अलाज (अ+लाज) वि० १. बेहया। निर्लज्ज। बेशर्म। बिना लज्जा के।

अलात पुं० १. जलता हुआ अंगारा या कोयला।
उ०—दुहूँ रुख मुख मानौं पलट न जानी जाति देखिकै अलात जाति ज्योति होति मंद लाजि। के० III, ४५/६२२
२. वह बनैठी जो दोनों सिरों पर जलाकर चलाई जाती है।
उ०—चकरी, चक्र, अलात अरु आत-पत्र, खरसान। के० I, ६/११८
—चक्र पुं० १. प्रकाश का वह चक्र या मंडल जो जलती हुई लकड़ी या बनैठी को जोरों से घुमाने पर बनता है।
उ०—त्यों कर लागे यों फिरी, ज्यों अलात को चक्र। कृ० १९१/४५
२. किसी प्रकार का मंडलाकार प्रकाश।
३. गति-भेदानुसार एक प्रकार का नृत्य।

अलान[१] पुं० १. हाथी बाँधने का खूँटा। वह मोटा सिक्कड़, जिससे हाथी बाँधा जाता है।
उ०—जोरन करि तोरन चहत कुल को ज्ञान-अलान भि० I, ६५/१२
२. बंधन। बेड़ी।
३. लता या बेल को चढ़ाने के लिए गाढ़ी गई लकड़ी।
वि० अधजला।

अलान[२] पुं० ४. ऐलान। मुश्तहारी। मुनादी। डुग्गी। घोषणा।

अला— अक० चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना। अललाना।

अलाप पुं० दे० 'आलाप'।

उ०—'द्विजदेव' तापर अलापैं ए कलापिन की'''।
शृं० १८१/५२०

अक० बोलना। बात करना।

सक० तान लगाना। गाना। स्वर देना या उठाना। स्वर चढ़ाना।

उ०—अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत। सूर० १०/१३६८/५८०

अलापत व०कृ०। अलाप्यौ भू०कृ०।

—ई वि० बोलने वाला। शब्द निकालने वाला।

पुं० गायक।

—चारी वि० १. आलाप करने वाला। राग उठाने वाला। गायक। २. गायकों में रहने वाला।

अलाभ पुं० १. हानि। क्षति।

उ०—दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ। सूर० १/२६२/७०

२. लाभ का अभाव।

अलाम वि० १. बात बनाने वाला। बात गढ़ने वाला। २. गप्पी। मिथ्यावादी। ३. कल्पना जगत में विचरने वाला।

अलायक पुं० १. अयोग्य। नालायक। २. असमर्थ।

अलाय-बलाय स्त्री० १. आपत्ति। २. बाधा। रुकावट। ३. ऐसा संकट जो परोक्ष से आता है

अलार[1] पुं० १ कपाट। किवाड़।

अलार[2] पुं० २. अलाव। अवाँ। भट्टी।
३. आग का ढेर।

अलाल वि० १. आलसी। सुस्त। काहिल।
२. अकर्मण्य। निकम्मा। निरुद्योगी।
३. जो लाल न हो।

स्त्री० १. आलसीपन। निकम्मापन। निरुद्योग।
२. लालिमा-रहित होना।

—ई स्त्री० १. आलसीपन। निकम्मापन।
२. क्रूरता।

अलाव पुं० १. आग का ढेर। २. तापने के लिये जलाई हुई आग। कौड़ा। ३. वह स्थान जहाँ तापने के लिए आग जलाई जाती है।

अलावज (अलाप+वाद्य) पुं० एक प्रकार का पुराना बाजा जो चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है।

अलावनी (अलापनी) स्त्री० एक पुराना बाजा जो तार से बनाया जाता था।

अलावा क्रि०वि० सिवाय। अतिरिक्त।

अलाहदा—अलाहदी वि० दे० 'अलहदा'।

उ०—कबि ठाकुर देखौ बिचारि हिये कछु ऐसी अलाहदी राह सी है। ठा० १८८/४८

अलिंग[1] वि० लिंग रहित। बिना चिह्न या बिना लक्षण का।

अलिंग[2] पुं० व्याकरण का वह शब्द जो दोनों लिंगों में व्यवहृत हों, जैसे हम, तुम, मैं।
२ वेदांत। ईश्वर। ब्रह्म।

—ई वि० बिना लिंग या पहचान का।

अलिंगन पुं० दे० 'आलिंगन'।

उ०—करि अलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन-चीर।
सूर० १०/२६/२१६

अलिंद[1] पुं० भ्रमर। मधुप।

उ०—गुन अवगुन सब आपुनें आपु हि जानि अलिंद।
नं० ५६/१६३

अलिंद—अलिंदा[2] पुं० १. दरवाजे का चबूतरा।
२. छज्जा।

उ०—हे देवी तुव विपुन भवन की उतहँगिन जाऊँ अलिंदा। ना० १००/१०२

अलि पुं० १. भौंरा। भ्रमर।

उ०—हंस, मोर, चकोर, चातक, कोकिला, अलि, कीर। सूर० १०/२८३३/२२५

२. कोयल। ३. कौआ। ४. बिच्छू।
५. कुत्ता। ६. मदिरा। ७. वृश्चिक राशि

उ०—मुख बास अलि गुंजे भौंहैं धनु सीक हैं।
भि० २५६/३८

स्त्री० सखी, सहेली।

—इन्द पुं० भौंरा।

उ०—गुंजत मंजु, अलिंद बेनु जनु बजाई सुहाई।
नं० ६१/६

—क पुं० मस्तक। ललाट।

उ०—मस्तक, अलिक, ललाट पर बेंदी बनी जराय।
नं० ५४/७१

—गंजन—गुंज पुं० अलकावलि। घुँघराले बालों की लट। भ्रमर-गुंजन। भँवरों की गूँज।

उ०—अलि-गंजन अंजन-रेखा पै, बरषत बान मनोज। सूर० १०/१०५५/४६४

—चारन पुं० १. भ्रमर-पाट। भ्रमर रूपी बंदीजन। २. भँवरों की गूँज।

—छौना ३. छोटे-छोटे भ्रमर।

—नि—नी स्त्री० भ्रमरी। मधुकरी।

—माल पुं० भ्रमर-माला। भ्रमरसमूह।

उ०—नाभि पर हृद आपु वारत, रोम अलि अलि-
माल। सूर० १०/१८३५/२०

—वल्लभ पुं० लाल कमल।

—वाहन पुं० कामदेव।

उ०—अलिबाहन को प्रीतमवाला ता बाहन रिपु
ताहि सतावै। सूर० १०/२७९६/२०८

—विरुत पुं० भौंरे का गुंजन।

—सावक पुं० दे० 'अलिछौना'।

उ०—मनौ कमल की पी पराग, अलि-सावक सोइ
न जाग्यौ री। सूर० १०/१३६/२५०

—सैनी[1] वि० १. भ्रमरावलि। २. सखि-समुदाय।

अलि—सैनी[2] वि० अलसाई सी। थकी सी।

अलिखि वि० बिना लिखी हुई। जो लिखी न जाय। अलेखनीय।

—त वि० १. जो लिखा न हो। २. मौखिक रूप से परंपरा-प्राप्त।

अलिजिह्वा स्त्री० गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा।

अलिनी स्त्री० भ्रमरी।

अलिपक पुं० १. भौंरा। २. कोयल। ३. कुत्ता।

अलिप्त वि० जो लिप्त न हो। आसक्ति-रहित।

उ०—ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै।
सूर० ५/४/१२७

अली[1] पुं० १. दे० 'अलि'। २. सखी।

उ०—गुंजत फिरत अली-गन झूले।
सूर० १०/२३३/२७५

—गन पुं० ३. सखियों का समुदाय। सहेलियाँ। ४. भ्रमरावलि। भ्रमरों का समूह।

अली[2] पुं० १. मुहम्मद साहब के दामाद। मुसलमानों के चौथे खलीफा।

अलीक[1] वि० १. बेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा।

उ०—अनख भरी धुनि अलिन की वचन अलीक
अमान। भि० I, ३२६/४८

२. अमान्य। अप्रिय। अरुचिकर।

अलीक[2] (अ+लीक) वि० मर्यादा-रहित। अप्रतिष्ठित।

उ०—अली चली सकल अलीक मिस करि करि
आवत निहारि करि मदन गुपाल को।
म० ३३१/२७६

अलीकुलीखाँ पुं० एक योद्धा जो मधुकर शाह से हार गया था।

उ०—जिन जीत्यो रन न्यामतिखान। अलीकुली
खाँ बुद्धि निधान। के० III, ३६/४८७

अलीजा[1] वि० १. बहुत अधिक। प्रचुर।

अलीजा[2] पुं० २. आलीजाह।

उ०—बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौ
साजि दल दपटि फिरंगिन दबावैगो।
प० २७/३११

अलीढ वि० अनखाया हुआ।

अलीन (अ+लीन) वि० १. जो किसी में लीन न हो। निर्विकार। २. जो उपयुक्त न हो। ३. अनुचित। ४. द्वार के चौखट की लम्बी लकड़ी। ५. दीवार से सटा दालान। ६. बरामदे के किनारे का खंभा।

अलील वि० बीमार। रुग्ण। रोगी। अस्वस्थ।
पुं० एक वृत्त।

अलीह (अलीक) वि० १. मिथ्या। झूठ। २. अनुचित। ३. अनुपयुक्त।

अलुक्क वि० लुप्त हुआ।

उ०—अलुक्क लुक्क मान की कला अचुक्क धारहीं।
प० ७०/२८३

अलुझ— सक० दे० 'अरूझ'।
अलुझत व०कृ०।

अलुट— अक० लड़खड़ाना। लोटना। डगमगाना। गिरना-पड़ना। उलटना।

अलूप वि० लुप्त। लोप। छिपा हुआ।

अलुप्त वि० १. जो लोप न हो। अलोप। २. प्रकाशित, जो छिपा न हो। प्रगट।

अलूपी स्त्री० एक नाग-कन्या जो अर्जुन को ब्याही थी।

अलूम वि० पूँछ विहीन। बिना पूँछ का।

अलूल-जलूल क्रि०वि० ऊट-पटाँग। अंड-बंड। अंट-संट।

अलला पुं० १. पानी का बुलबुला। बबूला। २. आग की लपट। भभूका।

अलेख[1]**—अलेखे—अलेखैं—अलेषि**
वि० [स्त्री०अलेखी] १. जो सहज में समझ में न आवे। दुर्बोध। २ जो जाना न जा सके। अज्ञेय।

अलेख[2] वि० जिसका लेखा, नाप जोख या अंदाज न हो सके। बहुत अधिक।

उ०—काहे कि रन में मरन तें जस जगमगात अलेख
है। प० १०६/१५

अलेख[3] वि० १. जो दिखाई न दे। २. जिस पर किसी का ध्यान न गया हो। ३. अभूतपूर्व।
पुं० देवता।

उ०—साजि तिय नरभेपनि सहित अलेखनि करहि
असेपनि गानन कों। भि० I, ४४/२२९

—आ वि० १. बेहिसाब । अगणित । २. व्यर्थ । निष्फल ।

—ई वि० १. असंख्य । बेहिसाब ।

उ०—कलस दीप महताब अलेखी ।
जानत वह जिन खूबी देखी ॥ बो० ३/२२४

२. ऊट-पटाँग काम करने वाला । गड़बड़ी डालने वाला । अन्यायी । अत्याचारी ।

अलेल पुं० क्रीड़ा । कलोल ।

उ०—घनआनँद खेल-अलेल-दसै बिलसै, सुलसै लट झूमि झुली । घ० क० ३८३/२२८

अलेले पुं० १. दे० 'अलेल' । २. घूँट ।

उ०—लोहू के अलेले गंग गिरजा गलेले देत ।
गं० ३०४/९२

अलेस—अलेष—अलेश (अ+लेश) वि० १. अशेष । निर्लेश । अरंचक । २. बेलगाव ।

—कलेस पुं० क्लेश । कष्ट । कठिनाई ।

अलैदा वि० दे० 'अलहदा' ।

अलैया-बलैया स्त्री० १. निछावर होना । कुर्बान होना । सर्वस्व देना । २. खेल-विशेष ।

अलोक[1] वि० १. अदृश्य । छिपा हुआ ।
पुं० १. परलोक । पातालादि लोक ।
२. कलंक । अपयश ।

उ०—लोक की लाज औ सोच अलोक को वारियै प्रीति के ऊपर दोऊ । बो० ३/१८

अलोक[2] पुं० १. आलोक । प्रकाश । २. चाँदनी ।

उ०—चंद अलोक तिलोक सुखी यह कोक अभाग सो सोग न छूटै । भू० २५४/१७६

अलोक[3]— सक० १. देखना । ताकना । अवलोकन करना । २. प्रकाशित करना । आलोकित करना ।

अलोना—अलोनो~अलोनौं (अ+लोना) वि० १. बिना नमक का । २. जिसमें कोई रस या स्वाद न हो । फ़ीका । ३. जिसमें लावण्य या सौन्दर्य न हो । कान्तिहीन । अकमनीय

उ०—कौ लगि अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन ।
के० I, १०/२१

अलोप (अ+लोप) वि० १. लुप्त । अदृश्य । छिपा हुआ

उ०—अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सों धरै
प० ७४/२८४

२. अलुप्त । प्रगट ।

सक० लुप्त करना ।

—ई वि० लुप्त न होने वाला ।

अलोभ वि० लोभ-रहित । निर्लोभ । लालच-विहीन ।

—ई वि० संतोषी । जिसमें लालच न हो ।

—मान वि० लोभ या इच्छा से शून्य ।

उ०—लोभ तें कुलोभ तें बिलोभ तें अलोभमान ।
के० III, ४१/७०१

अलोम—अलोमक (अ+लोम) वि० लोम-रहित । बिना रोंगटों वाला । बाल विहीन ।

अलोल वि० १. अचंचल । दृढ़ । स्थिर । अडिग ।

उ०—नैना री करे अलोल, धरे री पानी कपोल ।
सूर० १०/२७९७/२०८

—क वि० दे० 'अलोल' ।
१. अलौकिक । विलक्षण । विचित्र ।
२. असुन्दर ।

—लोल वि० ३. स्थिरास्थिर । डाँवाडोल ।

अलोहित वि० जो लाल न हो ।

अलोही वि० १. जो लाल न हो । लालिमा-रहित ।
२. रक्त से लाल । ख़ून से सनी ।
३. अलोहित । रक्त से अछूती ।

उ०—इहि बिधि सु बीरनि संग लै पैठो अलोही अनी में । प० १२७/१८

अलौकिक वि० १. जो इस लोक से सम्बन्ध न रखे । अपूर्व । लोकोत्तर । दिव्य ।

उ०—मरम अलौकिक की थाह थाहिबौ करैं ।
उ० १६/१६

२. असाधारण । अद्भुत । ३. अमानुषी ।

अल्प वि० १. थोड़ा । कम ।

उ०—जज्ञ, जप, तप नाहिं कीन्ह्यौ, अल्प मति बिस्तार । सूर० १/२९४/८१

२. छोटा । ३. तुच्छ । ४. मरणशील ।
५. विरक्त ।

पुं० ६. साहित्य में एक अलंकार, जिसमें आधेय की अपेक्षा आधार को अल्प या सूक्ष्म बताया जाता है ।

—क[1] वि० थोड़ा । कम ।

—क[2] पुं० जवास का पौधा ।

—कालिक वि० क्षणस्थायी । थोड़े काल का ।

—कालीन वि० दे० 'अल्पकालिक' ।

—गंध पुं० रक्त कुमुदिनी । लाल कुंई ।

—जीवी वि० थोड़ा जीने वाला । अल्पायु ।

—ज्ञ वि० १. थोड़ा ज्ञान रखने वाला ।

२. छोटी बुद्धि का । नासमझ ।

—धी वि० कम बुद्धि वाला ।

उ०—जहाँ कोमलै बल्कलै बास सोहैं । जिन्हें अल्पधी कल्प साखी बिमोहैं ।
के० II, ४१/३३६

—मति वि० मूर्ख । अज्ञानी ।

उ०—हय अबला अज्ञान अल्पमति, बरजति प्रीति लगाई । सूर० १०/३६८३/४२६

अल्ल पुं० १. वंश, गोत्र, जाति आदि का विशिष्ट नाम, जो बराबर हर पीढ़ी में चलता रहता हो । २. पदवी । ३. उपनाम ।

अल्ल-बल्ल वि० बिलकुल निरर्थक । व्यर्थ का । ऊट-पटाँग ।

अल्लम—गल्लम पुं० अनाप-शनाप । व्यर्थ का बकवाद । प्रलाप ।

अल्ला[1]—अल्लाह स्त्री० ईश्वर । परमात्मा ।

अल्ला[2]— अक० चिल्लाना । जोर से बोलना ।

अल्लामा स्त्री० १. लड़की । २. कर्कशा स्त्री ।

अल्लावदी पुं० अलाउद्दीन ।

उ०—दिल्लीपति अल्लावदीं कीनी कृपा अपार ।
के० I, ७/६६

अल्लोल वि० लोल । चंचल ।

अल्ह पुं० दिन । दिवस ।

अल्हड़[1] वि० १. कम उम्र का । २. अपने लड़कपन वाले स्वभाव के कारण व्यवहार में जो कुशल न हो । ३. उद्धत । मनमौजी । ४. गँवार ।

—पन पुं० अल्हड़ होने की अवस्था या भाव ।

अल्हड़[2] पुं० १. वह बछड़ा जिसके दाँत अभी न निकले हों । २. ऐसा बैल या बछड़ा जो अभी तक गाड़ी या हल में न जोता गया हो ।

अल्हैया पुं० अलहिया राग ।

उ०—कहि भूपाली अल्हैया सहित सुहेला जान ।
बो० ६/१२०

अवंति—अवंती स्त्री० १. उज्जैन । २. एक नदी ।

—का स्त्री० दे० 'अवंति' ।

अव उप० एक उपसर्ग जो जिस शब्द में लगता है उसमें निम्नलिखित अर्थों की योजना करता है—
निश्चय—अवधारण ।
अनादर—अवज्ञा ।
न्यूनता, कमी—अवहनन । अवघात ।
निचाई या गहराई—अवतार । अवक्षेप ।
व्याप्ति—अवकाश । अवगाहन ।

अवकल— अक० १. ज्ञान होना । समझ में आना सूझना ।

अवकलन पुं० १. इकट्ठा करके मिला देना । २. देखना ३ जानना । ज्ञान । ४. ग्रहण ।

अवकलित वि० समझा-बूझा । ज्ञात ।

अवका स्त्री० शैवाल । सेवार ।

अवकाश—अवकास पुं० १. स्थान । जगह । २. शून्य-स्थान । आकाश । अंतरिक्ष । ३. अंतर । फासला । दूरी । ४. अवसर । मौका । समय ।

उ०—पाउस निकास तातैं पायौ अवकास भयो जोन्ह कौं प्रकास । क० ३७/६४

५. छुट्टी । फुर्सत ।

अवक्रम पुं० उतराव । नीचे की ओर उतरना । पतन । स्खलन ।

—ण पुं० दे० 'अवक्रम' ।

अवखंडन पुं० १. नष्ट करना । तोड़-फोड़ करना । २. खनना । खोदना ।

अवखात स्त्री० समय ।

उ०—स्यामा स्याम ध्याइबे की ये ही अवखात है ।
बो० ५१/१५४

अवगत वि० १. विदित । ज्ञात । २. परिचित । ३. नीचे गया या गिरा हुआ । निरर्थक । व्यर्थ ।

सक० सोचना । समझना । विचारना ।

—ई स्त्री० १. बुद्धि । धारणा । समझ । २. कुगति । नीच गति । ३. निश्चयात्मक ज्ञान ।

अवगन— अक० १. निंदा करना । तिरस्कार करना । २. तुच्छ समझना । घटिया समझना । ३. कम मूल्य आँकना । कम महत्त्व आँकना । ४. उपेक्षा करना । ५. गिनती करते समय किसी को छोड़ देना ।

अवगाढ़ वि० (स्त्री०—अवगाढ़ी) १. अंदर धँसा, घुसा या पैठा हुआ । २. छिपा या दबा हुआ । ३. घना । अधिक ।

उ०—बड़ी पीर ताके तन बाढ़ी । सो ना बाल बिरह अवगाढ़ी । बो० ६३/७४

अवगाध अक० १. निमज्जित होना । २. मग्न होना ।

उ०—षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि । सूर० १०/११५६/५१६

अवगाधि—भू०कृ० ।

अवगार— सक० १. समझाना या जतलाना । २. बुरा-भला कहना । निन्दा करना ।
अवगरी—भू०कृ० ।

अवगाह वि० १. अथाह । गहरा । २. अनहोनी । ३. कठिन ।
पुं० १. गहरा स्थान । २. संकट स्थान । खतरे की जगह । ३. कठिनाई । ४. पानी में उतर कर नहाना । ५. भीतर पैठना । थाह लेना । खोजबीन करना ।
अक० जल में पैठकर नहाना । निमज्जन करना ।
उ०—यों मन लालची लालच में लगि लोभ तरंगन में अवगाह्यौ । प० ४७७/१२८
सक० १. थहाना । छानना । छानबीन करना । २. हलचल मचाना । ३. सोचना-विचारना । समझना ।
उ०—दैबे कौं कोटि लौं दान अनेक महेस लौं जोग खरे अवगाहिबो । बो० २६/२४
अवगाहत व०कृ० । अवगाह्यौ भू०कृ० ।
—इत वि० नहाया हुआ । स्नान किया हुआ ।
—क वि० अवगाहन करने वाला । स्नान करने वाला ।
—न पुं० १. स्नान करना । २. मंथन । विलोड़न । ३. थहाना । खोजबीन । ५. लीन होकर विचार करना ।
पुं० १. अथाह जल । गहरा स्थान ।

अवगाही—अवगाँही वि० थहाई हुई । अभ्यस्त की हुई ।
उ०—त्यों पदमाकर संन सरबन को भूलि भुलाई कला अवगाँहीं । प० २२०/१२८

अवगीत (अव+गीत) वि० १. जो भद्दे या बुरे ढंग से गाया गया हो । २. जिसकी लोक में निन्दा या बदनामी हुई हो । ३. गर्हित ।
पुं० १. बेसुरा गीत । २. अश्लील, गन्दी या भद्दी बातों से भरा गीत ।

अवगीरी वि० मौनी । चुप्पा ।

अवगुंठन पुं० १. ढँकना । छिपाना । २. घूँघट । पर्दा ।
—वती वि० घूँघट वाली ।

अवगुंठित वि० ढँका हुआ । छिपा हुआ ।

अवगुन—अवगुण पुं० १. दोष । दुर्गुण । ऐब ।
उ०—सूर अवगुन भरयो आइ द्वारे परयो । सूर० वि०/११०/३०
२. अपराध ।
—ई वि० १. अवगुणी । दुर्गुणी । २. दोषी । अपराधी ।

अवग्या स्त्री० दे० 'अवज्ञा' ।

अवग्रह पुं० १. बाधा । रुकावट । २. अनावृष्टि । सूखा । ३. बंद । बाँध । ४. व्याकरण के शब्दों की सन्धियों का विच्छेद । ५. वह अक्षर जिसके उपरान्त सन्धि विच्छेद हो । ६. कृपा का भाव । ७. हाथियों का समूह । ८. हाथी का मस्तक । ९. प्रकृति । स्वभाव । १०. शाप । कोसना ।

अवग्रहण (अव+ग्रहण) पुं० १. अनादर । अपमान । २. रोक । बाधा ।

अवघट वि० १. कठिन । विकट । दुर्गम । २. ऊबड़-खाबड़ । ऊँचा-नीचा ।

अवघर पुं० औघड़ । अघोरी ।
वि० १. अनगढ़ । अटपटा । टेढ़ा । विचित्र ।
उ०—झंपताल में अवघर गति उपजावें । गो० ५८/२६
२. मनमौजी । अलमस्त ।

अवघात पुं० १. चोट । ताड़ना । प्रहार । २. कूटना ।

अवचट (अव+चट) पुं० १. अनजान । २. कठिनाई ।
क्रि०वि० अकस्मात् । एकाएक । अचानक ।

अवचनीय वि० १. जो कहने के योग्य न हो । २. अश्लील ।

अवचल वि० दे० 'अविचल' ।

अवछंग पुं० १. उछंग । उत्साह । उमंग । २. गोद ।
उ०—सो लीन्हौ अवछंग जसोदा । सूर० १०/४८७/३४१

अवज्ञा स्त्री० १. अपमान । अनादर ।
उ०—अहिरनि करी अवज्ञा प्रभु की, सो फल उनकौं तुरत दिखावहिं । सूर० १०/८५६/४४४
२. आज्ञा न मानना । अवहेलना ।
उ०—तुम मति करौ अवज्ञा नृप की । सूर० ९/३६/१६३
३. पराजय । हार ।
४. एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक वस्तु के गुण-दोष से दूसरी वस्तु को गुण-दोष का प्राप्त न होना सूचित किया जाय ।

अवट— सक० १. मथना । आलोड़न करना । २. औटाना ।

उ०—मधु दधि दूध ल्याई अवटि अवहिं हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं।
सूर० १०/१५९६/६३५

पुं० १. गड्ढा। कुंड।
२ हाथियों को फँसाने का गड्ढा जिसे ऊपर से तृणादि से ढँक देते हैं। खाँड़ा।

अवडेर पुं० १. चक्कर। फेर। २. झंझट। बखेड़ा।
३. राग-रग या सुख-भोग में होन वाली बाधा। रंग में भंग।

अवडेर— सक० १. चक्कर में डालना। फेर में डालना।
२. झंझट में फँसाना। त्याग करना। बसने न देना।
उ०—पोषि तोषि आपने न थापि आपने न थापि अवडेरिए। कवि० ३४/९८

—आ वि० १ जो चक्करदार हो। पेंचीला।
२. झंझट में डालने या फँसाने वाला।
३. बेढ़ब। कुढ़ब।

—ई स्त्री० चक्कर।
उ०—बिना कष्ट यह फल न पाइ हौ, जानति हौ अवडेरी सी। सूर० १०/१३३८/५७४

अवढर (अव+ढर) वि० १. परम दयालु। २. उदार।
उ०—लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर-ढरन। सूर० वि०/२०२/५५

अवतंस—अवतँस पुं० १. आभूषण। अलंकार।
२. शिरोभूषण। मुकुट।
उ०—गुच्छनि के अवतंस लसैं सिर पच्छन अच्छ किरीट बनायो। म० २३८/२५६
३. टीका। ४. कर्ण-फूल। कर्ण-भूषण।
४. दूल्हा। वर। ५. श्रेष्ठ व्यक्ति।

—इत वि० आभूषित। अलंकृत। विभूषित।

—क पुं० दे० 'अवतंस'।

अवतर— अक० प्रगट होना। उत्पन्न होना। जन्म लेना। अवतार लेना।
उ०—जानतु न कोऊ अवतरे आए दोऊ, नंद महरि के बारे, रखवारे ब्रजपुर के।
दे० I, ७३/१५
अवतरत व० कृ०।
अवतरो, अवतर्‍यौ भू० कृ०।

—इत वि० १. उतरा हुआ। अवतार के रूप में उत्पन्न। २. उद्धृत।

—ण पुं० नीचे उतरना।

अवतार—अवतारु पुं० १. उतरना। नीचे आना। २. जन्म। शरीर-ग्रहण। ३. पुराणों के अनुसार किसी देवता का मनुष्यादि संसारी प्राणियों का शरीर धारण करना।
उ०—लीनो अवतार करतार के कहें तें काली।
भू० ७८/१४२
४. विष्णु का संसार में शरीर धारण करना। पुराणों के अनुसार विष्णु के २४ अवतार हैं इनमें १० मुख्य हैं—मत्स्य, कच्छप, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

सक० १. उतरना। ऊपर से नीचे लाना।
२. जन्म देना। उत्पन्न करना।
उ०—ते बिधना काहैं अवतारे।
सूर० १०/२२२७/९७
अवतारत व०कृ०।
अवतारे, अवतारयौ भू०कृ०।

—ई वि० १. नीचे आने या उतरने वाला।
२. अवतार-धारण करने या लेने वाला।
उ०—अवतारीं अनन्य मति जाकी। तिहि गुन माधो की मति छाकी। बो० ७/८१

पुं० ईश्वर के अवतार के रूप में माना जाने वाला और अलौकिक गुणों से युक्त व्यक्ति। देवांशधारी।
उ०—यह कोउ आहि पुरुष अवतारी, भाग हमारैं आयौ। सूर० १०/१३९१/५८६

—वाद पुं० भगवान् का मनुष्य आदि का शरीर धारण करने का सिद्धान्त।

अवतारी पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके रोला, दिक्कपाल, शोभा आदि भेद हैं।

अवदात—अवदाति वि० १. उज्ज्वल। शुभ्र। श्वेत।
उ०—सेत बसन में यों लगै उघरत गोरे गात। उड़ै आगि ऊपर लगी ज्यों बिभूति अवदात॥
म० २२२/३८६
२. गौर, शुक्ल वर्ण। ३. पीत। पीला।

अवदान (अव+दान) पुं० १. प्रशस्त कर्म। महत्व-पूर्ण काम। २. शुद्धाचरण। उज्ज्वल कर्म। ३. खंडन। तोड़ना। ४. त्याग। उत्सर्ग। ५. पराक्रम। शक्ति। ६. उल्लंघन। ७. साफ करना। शुद्ध करना। ८. ख़स। उशीर।

अवदान्य वि० १. पराक्रमी। बली। २. सीमा का अति-क्रमण करने वाला। ३. कंजूस।

अवदीच्य वि० उदीची का, उत्तर का, औदीच्य, गुजराती ब्राह्मणों की एक शाखा-विशेष।

अवध[1] पुं० १. कौशल, एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी । २. अयोध्या ।

अवध[2] (अ+वध्य) पुं० दे० अवध्य ।

अवध[3] (अवधि) पुं० दे० 'अवधि' ।

उ०—तजि तिय पिय परदेश कों, जाइ अवध दे ताहि । कृ० ३६६/७६

—ई वि० अवध-संबंधी । अवध का ।

स्त्री० अवध प्रांत की बोली ।

पुं० अवध का निवासी ।

—ईस (अवधेश) पुं० १. अवध के राजा । २. दशरथ ।

—चन्द्र पुं० १. अवध के चन्द्र, कोई भी अयोध्या नरेश । २. रामचन्द्र ।

—पुरी स्त्री० दे० 'अवध' ।

अवधा स्त्री० १. राधा की एक सखी का नाम ।

उ०—सुखमा, लीला, अवधा, नंदा, वृंदा, जमुना, सारि । सूर० ३०/२००८/५४

अवधान पुं० १. ध्यान । मनोयोग । एकाग्रता ।

उ०—सीखत हूँ अवधान अहो हरि होरी है । सूर० १०/२६१४/२५६

२. समाधि । चित्तवृत्ति का निरोध कर ध्यान लगाना ।

३. सावधानीपूर्वक देख-रेख करना ।

अवधार— सक० १. धारण करना । ग्रहण करना ।

उ०—तातें पुनि बैकुंठ सिधारे । तहँ के सुख नीके अवधारे । नं० २८/२७२

२. समझना । निश्चय करना ।

उ०—अलि ए उड़गुन अगिनि कब अक घूम अवधारि । प० ३३८/७५

—आ —ई कृ०वि० निश्चय किया गया । शोधा या विचारा हुआ ।

—क वि० अवधारण करने वाला ।

अवधारण [अव+धारण] पुं० [स्त्री० अवधारणा]

१. अच्छी तरह सोच-समझकर कोई धारणा बनाना या निश्चय करना ।

२. किसी परिणाम तक पहुँचना या परिणाम निकालना ।

३. किसी कार्य के संबंध में दृढ़ता-पूर्वक किया जाने वाला निश्चय । स्थिरीकरण ।

अवधि स्त्री० दे० 'अवधि' ।

उ०—दै अवधि गयो परदेस पिय प्रोपितपतिका सहति दुख । प० ११८/१६

—भूत वि० निर्धारित समय तक रहने वाला ।

उ०—अवधिभूत नागर नगधर कर पारस पायो । नं० ६४/३५

—मान पुं० सागर । समुद्र ।

अवधूत वि० १. कंपित । हिला हुआ । २. विनष्ट । नाश किया हुआ ।

पुं० १. संन्यासी । साधु ।

उ०—धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ । कवि० १०६/६६

—वृत्ति स्त्री० अवधूतों की वृत्ति या प्रवृत्ति, उनका आचार-विचार ।

अवधेश—अवधेस पुं० दे० 'अवध' ।

उ०—अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे । कवि० १/१

अवध्य (अ+वध्य) वि० वध के अयोग्य । जिसे प्राण दंड न दिया जा सके । न मारने लायक ।

अवन[1] पुं० १. प्रसन्न या सन्तुष्ट करना । २. प्रीति । प्रेम । ३. रक्षण । बचाव ।

अवन[2] स्त्री० दे० 'अवनि' ।

अवनत (अव+नत) वि० १. झुका हुआ । नत । २. नम्र । ३. नीचे की ओर गिरा हुआ । पतित । ४. दुर्दशा की ओर बढ़ा हुआ । दुर्दशा-ग्रस्त ।

—इ स्त्री० १. घटती । कमी । न्यूनता । २. अधोगति । पतन । दुर्दशा । दुर्गति । ३. विनय । नम्रता ।

अवनि—अवनी स्त्री० १. पृथ्वी । ज़मीन । २. एक प्रकार की लता । ३. उँगली ।

—ईस पुं० राजा ।

—कुमारी स्त्री० सीता । जानकी ।

—ज पुं० मंगल ग्रह ।

—जा स्त्री० पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली, भूमिसुता सीता ।

—देव पुं० ब्राह्मण ।

—धर पुं० शेषनाग ।

—तल पुं० जमीन की सतह । धरातल ।

उ०—करि करुना प्राप्यो अवनि-तल असरन सरन श्री विट्ठलनाथ । गो० ६२/४६

—प पुं० यौ० पृथ्वी का पालन करने वाला । राजा । भूपति ।

—पति पुं० यौ० राजा । नरेश ।

—पाल पुं० राजा ।

अवभृथ (अव+भृथ) पुं० यज्ञ की समाप्ति के समय का अन्तिम कृत्य और स्नान।

अवमान (अव+मान) पुं० १. तिरस्कार। अपमान। अनादर।

अवयब—अवयव पुं० १. अंश। भाग। हिस्सा।
२. शरीर का कोई अंग या हिस्सा।
३. न्याय शास्त्रानुसार वाक्य का एक अंश या भेद—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन।

अवरंग पुं० औरंगजेब।
उ०—जानौ अवरंगहू के प्रानन की लेवा है। भू० ७४/१४२

अवर—अवरु वि० (स्त्री०—अवरि—अवरी)
१. जो श्रेष्ठ न हो। अधम। तुच्छ। नीच।
२. नीचा। ३. कम। न्यून। ४. पीछे या बाद में आने या होने वाला।
५. गुण, मर्यादा आदि के विचार से किसी के अधीन रहने वाला।
पुं० ६. बीता हुआ समय। अतीत काल।
७. हाथी का पिछला भाग।
अव्य० ८. और।
उ०—ता सुर तरु मँह अवर एक अद्भुत छवि छाजै। नं० २९/३

—ज पुं० (स्त्री० अवरजा) १. छोटा भाई। अनुज। २. शूद्र।

अवराध— अक० आराधना करना। पूजा करना। जपना। ध्यान में लाना।
उ०—सूधो गुरु ऊधो, अब राधे अवराधे क्यों न, आयो हो सिखावन सु सीखि चल्यो चेला ह्वै। दे० I, २/४२
अवराधा, अवराध्यो भू०कृ०।

—ई वि० आराधना करने वाला।

—क वि० आराधना करने वाला। पूजा करने वाला। सेवक। भक्त।

—न पुं० आराधन। उपासना। पूजा।

अवरुद्ध (अव+रुद्ध) वि० १. रुँधा या रूँधा हुआ।
२. जिसके आगे का मार्ग रुका हो या रोका गया हो।
उ०—ताही के बधू सुत उषा जो अनुरुद्ध ब्याहि, आने अवरुद्ध जुद्ध जीत तान बली को। दे० I, १४७/२८
३. ढँका हुआ। आच्छादित।
४. छिपा हुआ। गुप्त।

अवरूढ (अव+रूढ़) वि० १. नीचे उतरा या उतारा हुआ।
उ०—छत्र अवरूढ़ नछत्र आरूढ़ बल सतुगन गूढ़ ढिग ढूंढ़ि ढौरे॥ दे० I, ६२/२३३

अवरेख (अव+रेख) स्त्री० १. प्रतिज्ञा। २. लेख। रेख। लकीर। ३. गणना। गिनती।

अवरेख— सक० १. लिखना। २. चित्रित करना।
उ०—ऐसो हियो-हिता पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ। घ० ६२/२८६
३. देखना।
उ०—सो सामान्य-निबंधना पद्माकर अवरेख। प० ११४/४६
४. सोचना। ५. मानना या जानना।
६. प्रतिज्ञा करना।
उ०—भरौं हौं, न भरौं जान, हिये अवरेखियै। घ० क० ६४/७९
अवरेखियत व० कृ०।
अवरेखी, अवरेख्यौ भू०कृ०।

अवरेब पुं० १. वक्र गति। तिरछी चाल। २. कपड़े की तिरछी काट (औरेब)। ३. पेंच। उलझन। ४. बिगाड़। खराबी। दोष। ५. झगड़ा। विवाद। खींचातानी। ६. वक्रोक्ति। टेढ़ी या पेचीदी उक्ति।

—दार वि० यौ० तिरछी काट का। औरेबदार।

अवरेष स्त्री० दे० 'अवरेख'।

अवरोध (अव+रोध) पुं० १. रुकावट। रोक। अड़चन २. घेरा। ३. दबाव। ४. बन्द करना। निरोध। ५. अन्तःपुर। रनिवास।
उ०—किए अवरोध अति क्रोध गहि गिरि गुहा। सूर० १०/४२१३/५५३
६. राजगृह।

अवरोध— सक० १. रोकना। २. मना करना।
अवरोध्यौ भू०कृ०।

—क वि० रोकने वाला।
पुं० १. पहरेदार। २. रोक। बाड़।

—न पुं० १. रोकना। छेकना। २. अन्तःपुर। जनानखाना।

—इत (अवरोधित) वि० रोका हुआ। रुका हुआ। घेरा हुआ।

—ई वि० अवरोध करने वाला। रोकने वाला।

अवरोह—अवरोहन[१] (अव+रोहण) पुं० १. उतार। गिराव। २. अवनति। पतन। ३. लता का

वृक्ष के चारों ओर लिपटना। ४. साहित्य में एक अलंकार जिसमें किसी प्रकार के उतार का उल्लेख होता है। ५. संगीत में स्वरों का उतार।

अक० १. उतरना। नीचे आना।

२. चढ़ना। ऊपर जाना।

३. उमड़ना।

उ०—सुनि सुनि कथा नंदनंदन की, मन आयौ अवरोहि। सूर० १०/२६७७/२

अवरोह[२] (उरहेना) सक०[१] खींचना। अंकित करना। चित्रित करना।

उ०—गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये। के०

अवरोह[३] सक०[२] रोकना।

उ०—साँस की न साँसति कै औरो अवरोहैंगी। उ० ६६/६६

—ई वि० १. नीचे आने वाला।

२. पतित। गिरा हुआ।

पुं० ३. ऊपर से नीचे आने वाला स्वर।

४. वट वृक्ष।

—क[१] वि० १. गिरने वाला।

२. अवनति करने वाला।

—क[२] पुं० अश्वगंध।

—ण पुं० १. नीचे की ओर जाना। पतन। गिराव।

अवर्ज वि० जिसे रोका न जा सके। रोक-रहित।

अवर्ण (अ+वर्ण) वि० १. वर्ण-रहित। बिना रंग का।

२. बदरंग। बुरे रंग वाला।

३. वर्ण (जाति) रहित। कुजाति।

पुं० १. अकाराक्षर। अकार। २. निंदा।

३. अपशब्द।

अवर्त (आवर्त्त) पुं० १. पानी का चक्कर। भँवर।

२. घुमाव। चक्कर।

अवर्न्य—अवर्ण्य (अ+वर्ण्य) वि० १. जिसका वर्णन न हुआ हो अथवा न हो सकता हो। वर्णनातीत।

२. जो वर्ण्य अथवा उपमेय न हो, अर्थात् उपमान।

अवर्षन (अ+वर्षण) पुं० अवर्षण। वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। सूखा।

अवलंघ (अव+लंघ) सक० १. उल्लंघन करना।

२. लाँघना। फाँदना।

उ०—तिहिं अधार छिन मैं अवलंघ्यो आवत भई न बार। सूर० ६/८६/१८०

अवलंघ्यौ भू०कृ०।

—न (पुं०) उल्लंघन।

अवलंब (अव+लंब) पुं० आश्रय। सहारा। आधार।

सक० १. किसी को अवलंब बनाकर उसके सहारे टिकना। आश्रय लेना। टिकना।

उ०—विमल कदंब मूल अवलंबित ठाढ़े हैं पिय भानु सुता तट। गो० ३२६/१४०

—अवलंबत—व०कृ०।

—इत वि० आश्रित।

उ०—चरनकमल अवलंबित, राजति बनमाल। सूर० १०/१८२४/१७

उ०—ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माहिं तरे। सूर वि० १६८/५४

—ई वि० सहारा लेने वाला। शरणागत।

—त वि० आश्रित।

उ० १—अवलंबत, ख, जव, चपल रंहसि रयत्वर बाज। नं० १/६४

—न पुं० १. सहारा। आधार।

उ०—सुधि अवलंबन टेकहीं, कहुँ वार न पार। सूर० १०/१६६३/४५

२. अंगीकार करना।

३. अनुकरण। अनुसरण।

अवलच्छ (अव+लक्ष) सक० १. दिखाई देना। लक्ष्य बनाना।

उ०—अच्छ अवलच्छ कला कच्छनन कच्छे हैं। प० ६/३०४

२. बुरे लक्षण। अलक्षण।

अवलि—अवली स्त्री० १. पंक्ति। माला।

उ०—मानो प्रगट कंज मंजुल अलि-अवली फिरि आई। सूर० १०/१०८/२४२

२. समूह। झुण्ड। राशि।

उ०—सोचती कहा हौ कहा करिहैं चवाइनै ये, आनँद की अवली न काहे अवगाहती। प० ३६३/१५८

३. नवान्न करने के लिए खेत से पहले-पहल काटी गयी अन्न की गाँठ।

अवलेख पुं० कोई खरोंची हुई या चिह्नित वस्तु।

सक० १. खोदना। खुरचना। २. चित्र या मूर्ति अंकित करना। उकेरना। ३. चिह्न या निशान लगाना।

उ०—मोसों बात कहत किन सन्मुख, कहा अवनि अवलेखौ। सूर० १०/४१५४/५२८

—न पुं० चिह्न करना या लकीर खींचना।

अवलेप पुं० १. उबटन। लेप।

उ०—कुच-कुंकुम-अवलेप तरुनि किये, सोभित स्यामल गात। सूर० १०/२७३४/१९६

२. मलहम। ३. अभिमान। घमंड।

अवलेह पुं० १. गाढ़ी लेई। २. चाटने की वस्तु यथा—चटनी, शहद आदि।

उ०—'सूर' स्याम रस सहज माधुरी, रसकनि को अवलेह। सूर० १०/४०१८/४९६

३. ऐसी औषधि जो चाटी जाय।

४. फलों आदि का वह गूदा और रस जो पकाकर गाढ़ा कर लिया जाता है।

—न पुं० चाटना। आस्वादन करना। स्वाद लेना

अवलोक पुं० १. देखना। २. विशेष उद्देश्य से ध्यान-पूर्वक देखना। जाँच-पड़ताल। निरीक्षण।

सक० १. ध्यानपूर्वक देखना। निहारना।

उ०—ह्रद बिध नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय भाजै। . सूर० वि०/६९/१९

२. निरीक्षण करना। जाँच-पड़ताल करना

अवलोकत व०कृ०। अवलोक्यौ भू०कृ०।

—न पुं० दे० 'अवलोक'।

उ०—अवलोकन पैयत नाहीं अवलोकनि सो ताहि। म० ५३१/४१२

—नि स्त्री० आँख। दृष्टि। चितवन।

अवलोच- सक० आँखों से दूर करना। सामने से हटाना

उ०—को चैंत की इह चाँदनी तैं अलि याहि निबाहि बिथा अवलोचै। प० १९४/१२१

अवश—अवस (अ+वश) वि० १. जो अधिकार या वश में न हो।

२. जो अपने वश में न होकर किसी दूसरे के वश में हो। पराधीन।

अवशि—अवसि क्रि०वि० १. अवश्य। २. निस्संदेह। निश्चित रूप से। ३. दे० 'अवश'।

—कर वि० अवश्य ही करने वाला।

उ०—वसिकर रूप अवसिकर हरि को लखि निज दृग न अघाई बो० ५/१८

अवशिष्ट (अव+शिष्ट) वि० जो बाकी या शेष बचा हो।

उ०—पद अवशिष्ट जु परम रसाल। नं० २३/२९२

अवशेष—अवसेख (अव+शेष) वि० १. बचा हुआ। शेष। बाकी। २. समाप्त।

पुं० १. वह जो कुछ उपभोग, नाश, विश्लेषण, व्यय आदि के उपरांत बचा हो।

२. वह धन या सम्पत्ति जो किसी के मरने के उपरान्त बची हो।

३. अंत। समाप्ति।

अवश्यंभावी (अवश्य+भावी) वि० जो अवश्य हो। टले नहीं। ध्रुव।

अवश्य[1] क्रि०वि० दे० 'अवशि'।

अवश्य[2] वि० दे० 'अवश'।

—मेव क्रि०वि० निस्संदेह। जरूर।

अवसथ पुं० १. रहने का स्थान। निवास-स्थान।

उ०—अवसथ, बसतिङरु आवसति, धाँम, कुंज सुपवास। नं० ३/९४

२. घर। मकान।

३. विद्यार्थियों के रहने का स्थान। छात्रावास।

अवसन्न वि० १. विषाद-प्राप्त। दुःखी। २. नष्ट होने वाला। ३. सुस्त। आलसी। निकम्मा।

४. श्रान्त। क्लान्त।

अवसर पुं० १. समय। काल।

उ०—परिघ वज्र, परवत परिघ, अवसर सर्व-विशेष। नं० १५/९३

२. ऐसी अनुकूल या वांछनीय परिस्थिति जिसमें अपनी रुचि के अनुसार कार्य किया जा सके।

३. अवकाश। फुरसत। ४. इत्तफ़ाक।

अवसाद पुं० १. आशा, उत्साह, शक्ति आदि का अभाव।

२. विषाद। रंज।

३. मन या शरीर की ऐसी शिथिलता जिसमें कुछ भी करने को जी न चाहे।

४. पराजय। हार।

५. दुर्बलता। कमज़ोरी। ६. थकावट।

अवसान पुं० १. विराम। ठहराव। २. अंत। समाप्ति।

३. सीमा। हद। ४. सायंकाल। ५. मृत्यु।

६. कविता या छन्द का अन्तिम चरण।

७. पतन। ८. चेतना।

उ०—सरजा खुमान सिवराज के निसान सुनें, धाके अवसान बहलोल खाँ के उर के। भू० ५०३/२२८

अवसेख पुं० दे० 'अवशेष'।

अवसेर स्त्री० १. उलझन । झंझट । अटकाव । २. देर । विलम्ब । ३. बेचैनी । विकलता । ४. चिंता । व्यग्रता । ५. याद ।

उ०—आये स्याम रही मुख हेरि । मन मन करन लगी अवसेरि । सूर० १०/२५३५/१५७

सक० १. विलम्ब करना । २. कष्ट देना । परेशान करना ।

उ०—तुम अवसेरत मो दृगन गई जु नींद हिराइ । र० १८६/४०

३. याद करना । ४. चिंता करना । ५. प्रतीक्षा करना ।

उ०—दिन अवसेरत ही गयौ नहिं आये बृजनाथ । र० ८५६/१६२

अवसेरत व०कृ० ।

—ई स्त्री० १. व्याकुलता । व्यग्रता । बेचैनी ।

उ०—इंद्री गईं, गयौ तनु तें मन, उनहिं बिना अवसेरी लागि । सूर० १०/२३१७/११४

२. चिंता ।

उ०—कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करति अवसेरी सी । सूर० १०/१३३८/५७४

३. राह जोहना । मार्ग देखना ।

अवसेस—अवसेष वि० दे० अवशेष ।

उ०—इहि बिधि होइ अवसेस परम प्रेमहिं अनुरागीं नं० ४२/१५६

अवस्त—अवस्थ स्त्री० दे० 'अवस्था' ।

उ०—नव अवस्त विरहीतन जवहीं । अतन सतन बरनत कवि तबहीं । बो० ६/३६

अवस्था स्त्री० १. दशा । स्थिति । हालत ।

२. आयु । वय । उम्र ।

उ०—पाइ अवस्था को धरम, समझत कवि चितलाइ । कृ० २२/८

३. समय । काल ।

४. वेदांत के अनुसार मनुष्य की चार दशायें या अवस्थायें—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय ।

५. स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन की आठ अवस्थायें—कौमार, पौगंड, कैशोर, यौवन, बाल, वृद्ध, वर्षीयान्, गति ।

६. मनुष्य की ३ या ४ अवस्थायें—बाल-युवा (प्रौढ़) वृद्ध । संसार की ३ दशायें—उत्पत्ति, स्थिति, संहार ।

अवस्थान पुं० १. स्थान । जगह । २. वास । आश्रय ।

अवस्थापन (अव+स्थापन) पुं० स्थापित करना । स्थापना ।

अवस्थित वि० १. उपस्थित । विद्यमान । मौजूद । २. ठहरा हुआ । स्थिरीभूत ।

—इ पुं० वर्तमानता । स्थिति । विद्यमानता ।

अवहित वि० १. सावधान । विज्ञात । एकाग्रचित्त । २. विदित ।

अवहित्थ—अवहिथ्थ—अवहिथ्था

पुं० (स्त्री०—अवहित्था)

१. भाव-गोपन । साहित्य में चतुरतापूर्वक मन का कोई भाव छिपाना ।

उ०—संगोपन बेवहार को सो अवहित्था भाव । र० ८८५/१६६

२. एक प्रकार का संचारी भाव, जिसमें लज्जा, भय आदि भावों को छिपाने का प्रयत्न होता है ।

उ०—उन्माद मरन अवहित्थ है ब्यभिचारी-युत आधि । के० I, १४/३२

अवहेल— सक० अवहेलना करना । आज्ञा का उल्लंघन करना । उपेक्षा करना ।

अवहेलत व०कृ० ।

—इत वि० उपेक्षित । तिरस्कृत ।

अवहेलना स्त्री० १. अवज्ञा । तिरस्कार । २. उपेक्षा । ३. लापरवाही ।

अवाँ—अवा पुं० दे० आँवाँ । भट्ठी ।

उ०—याद किये तिनकौं अँवाँ सौं घिरिबौ करैं । उ० ७/७

अवांग वि० (स्त्री०—अवांगी)

१. नमित शरीर । २. अधोमुखी ।

३. लज्जाशील ।

अवांतर वि० अन्तर्गत । मध्यवर्ती ।

पुं० बीच । मध्य ।

—दिशा स्त्री० बीच की दिशा ।

—भेद पुं० अंतर्गत भेद । भाग का भाग । उपभेद ।

—घटना स्त्री० मध्यवर्ती घटना ।

—कथा स्त्री० अन्य कथा । कथा के भीतर कथा ।

अवाई स्त्री० १. आने की क्रिया या भाव । आगमन ।

उ०—वन मैं ऋतुराज की जानि अवाई । शृं० ११/४५

२. खेत की गहरी जुताई ।

अवाक् (अ+वाक्) वि० १. जिसके मुंह से वचन न निकल रहा हो । चुप । मौन ।
२. जो चकित या स्तम्भित होने के कारण कुछ बोल न सके । ३. गूंगा ।

अवाची स्त्री० दक्षिण दिशा ।
उ०—प्राची प्रतीची अवाची बिलोकि । गं० ३४१/१०४

—न वि० १. दक्षिणी । २. अधोमुख । मुंह लटकाए हुए । ३. लज्जित ।

अवाच्य (अ+वाच्य) वि० १. न कहने योग्य । २. बात न करने योग्य । नीच । निंदित । ३. अस्पष्ट । ४. दक्षिणी । दक्षिण दिशा का ।
पुं० अपशब्द । अनुचित बात । गाली ।

अवाज—अवाजि—अवाजु स्त्री० दे० 'आवाज़' ।

अवाद वि० दे० 'आबाद' ।

अवाय[1] (अवार्य) वि० १. जा रोका न जा सकता हो ।
२. अनिवार्य । जरूरी ।
३. उच्छृंखल । उद्धत ।

अवांय[2] पुं० हाथ में पहनने का आभूषण । कड़ा ।

अवार पुं० १. नदी के इस ओर का किनारा । २. एक ऋषि-विशेष । ३. देर । विलम्ब । ४. मूर्ख ।
उ०—रंगु वहै संग जैहै, निपट अवार व्है है । च० १६/११

—ई—ए स्त्री० १. देरी ।
उ०—'चतुर्भुज' प्रभु कत रहत अवारे बन गोकुल के प्रतिपाल । च० २२०/११८
अव्य २. किनारे पर ।

अवारजा पुं० १. वह बही जिसमें असामी की जोत आदि का लेखा रहता है ।
२. दैनिक आय-व्यय आदि लिखने की बही ।
३. लेखा-जोखा ।
उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै । सूर० वि०/१४२/३६
४. दोहराने या मिलान करने की क्रिया या भाव ।

अवास—सक० पहली बार धारण करना ।

अवासा[1]**—अवासाँ** पुं० दे० 'आवास' ।
उ०—चितवत मंदिर भए अवासा । सूर० १०/३१०६/३०६

अवासा[2] वि० जो वस्त्र न पहने हो । नंगा ।
पुं० दिगम्बर जैन साधुओं का एक सम्प्रदाय ।

अवासो—अवासी वि० अवाँ जैसा । अत्यन्त गर्म ।
उ०—ब्रज सो सुबासो भयो अगनिअवासों है । प० ३८७/१६४

अवि—अवी पुं० १. सूर्य । २. आक । मदार । ३. भेड़ा । ४. बकरा । ५. ऊन । ६. पर्वत । ७. दीवार ।
स्त्री० १. लज्जा । २. ऋतुमती स्त्री । ३. वन तुलसी ।

अविकल वि० जो विकल न हो अर्थात् शान्त । पूर्ण ।
अव्य ज्यों का त्यों । बिना हेर-फेर या परिवर्तन के ।
उ०—अविकल दरपन मँडल माहिं बिधु आनि परत जस । नं० ६६/२६

अविकार वि० १. विकार-रहित । निर्विकार । निर्दोष । २. अज । अविनाशी । ईश्वर । ब्रह्म ।
—ई वि० दे० 'अविकारी' ।
उ०—शुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी । नं० १/१
—ता स्त्री० निर्दोषता । विकृति-विहीनता ।

अविकृत वि० जो विकृत न हो । जो विकार को प्राप्त न हो । जो बिगड़ा न हो ।
—इ स्त्री० १. विकार का अभाव ।
२. सांख्ययोग के अनुसार मूल प्रकृति ।

अविगत वि० १. जो जाना न गया हो । अज्ञात । अज्ञेय । अनिर्वचनीय ।
२. अनश्वर । नित्य ।
३. ईश्वर या ब्रह्म का एक विशेषण ।

अविग्रह वि० १. अविज्ञात । २. जिसके शरीर न हो । निरवयव । निराकार ।

अविचल वि० १. जो विचलित न हो । अचल । अटल । स्थिर ।
उ०—देति असीस सकल ब्रज जुवती जुग जुग अविचल जोरी । सूर० १०/२८५८/२३३
—इत वि० दे० 'अविचल' ।

अविचार (अ+विचार) पुं० १. उचित विचार का अभाव । २. अज्ञान । अविवेक । ३. अनुचित या बुरा विचार । ४. अत्याचार या अन्याय ।
वि० बिना विचारा हुआ ।
—इत वि० बिना विचारा हुआ । जिसके विषय में विचारा न गया हो ।
—ई वि० [स्त्री० अविचारिणी] १. विचारहीन । अविवेकी । २. अत्याचारी । अन्यायी ।

अविच्छिन्न वि० अविच्छेद । अटूट । लगातार ।

अविदग्ध[1] (अवि+दग्ध) वि० १. जो जला या पका न हो ।

अविदग्ध[2] (अ+विदग्ध) वि० जो विदग्ध न हो । गँवार ।

अविदित (अ+विदित) वि० १. जो विदित न हो । अज्ञात । २. अप्रकट । गुप्त । ३. अविख्यात, अप्रसिद्ध ।

अविद्ध[1] (अ+विद्ध) वि० जो छेदा न गया हो । अनाविद्ध ।

अविद्ध[2] पुं० यवन ।

अविद्य वि० अशिक्षित । बेपढ़ा । अपढ़ ।

अविद्यमान (अ+विद्यमान) वि० १. जो विद्यमान या उपस्थित न हो । अनुपस्थित । २. जो न हो । असत् । ३. मिथ्या । झूठा ।

अविद्या (अ+विद्या) स्त्री० १. विद्या का अभाव । मिथ्याज्ञान । अज्ञान । २. माया । ३. माया का भेद—विद्या, अविद्या । ४. कर्मकांड । ५. सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति । अव्यक्त । अचित् । जड़ । ६. विपरीत ज्ञान ।

अविनय (अ+विनय) पुं० १. विनय का अभाव । उद्दंडता । धृष्टता ।
२. घमंड । अभिमान ।
वि० उद्दंड । धृष्ट । अशिष्ट ।
—ई वि० विनय-रहित । उद्दंड ।

अविनारी वि० अविवेकी ।
उ०—तुव डर भजि बन बन भजत अविनारिन बिलखाइ । भि० II, ८३६/१५८

अविनाशी[1]—**अविनासी** वि० १. जिसका कभी नाश न हो सकता हो । नाश-रहित । अक्षय । अक्षर ।
२. नित्य । शाश्वत ।

अविनाशी[2] पुं० १. परमात्मा । परब्रह्म ।
उ०—अविगत, अविनासी, पुरुषोत्तम हांकत रथ कै आन । सूर० १/२६६/७२

अविनीत वि० जिसमें विनय न हो । जो विनीत न हो । उद्दण्ड । धृष्ट । उद्धत ।

अविभक्त (अ+विभक्त) वि० १. मिला हुआ । अपृथक् । २. अखंड । ३. अभिन्न । एक ।

अविभाज्य (अ+विभाज्य) वि० जो विभाग के योग्य न हो ।

अविभु (अ+विभु) वि० जो सर्वत्र व्यापक न हो । अव्याप्त ।

अविभूषित (अ+विभूषित) वि० अनलंकृत । अभूषित ।

अविमुक्त[1] (अ+वि+मुक्त) वि० जो मुक्त न हो । बद्ध ।

अविमुक्त[2] पुं० १. कनपटी । २. काशी ।

अविमोहित वि० मोह-रहित । ममता-रहित ।

अवियुक्त (अ+वियुक्त) वि० जो वियुक्त न हो । जो अलग-अलग न हो ।

अविरत (अवि+रत) वि० १. विरामशून्य । निरंतर । २. लगा हुआ ।
क्रि०वि० १. निरंतर । लगातार ।
२. सतत । नित्य ।
पुं० विराम का अभाव । नैरन्तर्य ।

अविरति (अ+वि+रति) स्त्री० १. निवृत्ति का अभाव । लीनता । २. विषयासक्ति ।

अविरल (अ+विरल) वि० दे० 'अबिरल' ।

अविराम[1] वि० बिना विश्राम किये हुए । अनवरत ।
क्रि०वि० लगातार । निरंतर ।

अविरुद्ध (अ+विरुद्ध) वि० १. जो विरुद्ध (प्रतिकूल या विपरीत) न हो । २. अनुकूल ।
उ०—अज-अनीह-अविरुद्ध एकरस यहै अधिक ये अवतारी । सूर० १०/१७१/२५८

अविरेख— सक० दे० 'अवरेख' ।
अविरेख्यो भू०कृ० ।

अविरोध (अ+विरोध) पुं० १. विरोध का अभाव । अनुकूलता । २. समानता । साधर्म्य ।
३. मेल । संगति ।
—ई वि० जो विरोधी न हो । अनुकूल ।
२. मित्र । हितू ।

अविलंब दे० 'अविलम्ब' ।

अविलोक पुं० दे० 'अवलोक' ।
सक० दे० 'अवलोक' ।
—न पुं० दे० 'अवलोक' ।

अविवाहित (अ+विवाहित) पुं० (स्त्री० अविवाहिता) जिसका विवाह न हुआ हो । कुँवारा ।
उ०—ऊढ़ा होइ विवाहिता अविवाहिता अनूढ़ । के० I, ६६/१८

अविवेक (अ+विवेक) पुं० दे० 'अबिबेक' ।
—ई वि० १. अज्ञानी । विवेक-रहित ।
२. अन्यायी ।

अविश्वसनीय वि० जिस पर विश्वास न किया जा सके ।

अविश्वास (अ+विश्वास) वि० १. विश्वास रहित । अप्रतीति । २. अनिश्चय ।

—ई वि० जिस पर कोई विश्वास न करे । विश्वासहीन ।

अविषय (अ+विषय) १. जो मन और इंद्रियों का विषय न हो । अगोचर ।

२. अप्रतिपाद्य । अनिर्वचनीय ।

—ई वि० जो विषय-वासनाओं में लिप्त न हो । विषय-भोग-हीन ।

अविषाद (अ+विषाद) पुं० दे० 'अविषाद' ।

अविहड़—अविहर (अ+विहड़) वि० जो खंडित न हो । अखंड । अविनाशी ।

अविहित (अ+विहित) वि० १. जो विहित न हो । विरुद्ध । २. अनुचित । ३. निकृष्ट । नीच ।

अवीर पुं० दे० 'अबीर' ।

अवीरा स्त्री० १. जिसका न पति हो और न पुत्र हो । २. मनमाना आचरण करने वाली ।

अवेश—अवेस (अ+वेश) वि० दे० 'अवेस' ।

अवैदिक वि० वेद-विरुद्ध । वेद के प्रतिकूल ।

अव्यक्त (अ+व्यक्त) वि० १. अप्रकट । अदृश्य । अज्ञात २. अगोचर ।

पुं० १. ईश्वर या ब्रह्म । २. विष्णु । ३. शिव । ४. कामदेव । ५. प्रकृति । ६. जीव ।

अव्यग्र (अ+व्यग्र) वि० जो व्यग्र न हो । धीर । शान्त ।

अव्यथा[1] (अ+व्यथा) स्त्री० १. व्यथा (कष्ट या पीड़ा) का अभाव ।

अव्यथा[2] १. हरीतकी (हड़) । २. सोंठ । ३. स्थल-कमल । ४. आँवला ।

अव्यय[1] (अ+व्यय) १. सदा एकरस रहने वाला । अक्षय । २. नित्य । आदि-अंत-रहित । ३. परिणामरहित । ४. प्रवहमान ।

अव्यय[2] पुं० १. व्यय न होना । २. व्याकरण में वह शब्द जिसके रूप में कोई परिवर्तन न होता हो जैसे—कहीं, किन्तु आदि । ३. परब्रह्म । ४. शिव । ५. विष्णु ।

अव्ययीभाव पुं० समास का एक भेद जिसमें पूर्वपद अव्यय हो जैसे—यथा-शक्ति, अनुरूप ।

अव्यपेत—अब्यपेत पुं० अव्यपेत यमकालंकार, जहाँ पदों में अन्तर न हो वह अव्यपेत यमकालंकार होता है ।

उ०—अब्यपेत सब्यपेत पुनि, यमक बरनि दुहुँ देत ।
के० I, ६५/२१४

अशंक—असंक (अ+शंक) वि० १. शंकारहित । २. निर्भय । निडर ।

—आ स्त्री० संदेह । शुबहा । शक ।

अशक्त (अ+शक्त) वि० १. दुर्बल । शक्तिहीन । कमज़ोर । २. असमर्थ । ३. अयोग्य ।

—इ स्त्री० १. निर्बलता । कमज़ोरी । दुर्बलता ।
२. असमर्थता ।
३. बुद्धि का कुछ कार्य करने योग्य न रह जाना ।

अशन[1]**—असन** पुं० १. भोजन । आहार ।
२. भोजन की क्रिया । खाना ।

उ०—आछे आछे असन, बसन, वसु, बासु, पसु ।
के० I, ३/१३२

३. चित्रक या चीता नामक वृक्ष ।
४. भिलावाँ ।

अशन[2]**—असन** पुं० शस्त्रादि का क्षेपण ।

अशनि पुं० १. विजली । वज्र । २. अस्त्र । ३. स्वामी । मालिक । ४. इन्द्र । ५. अग्नि ।

—पात पुं० वज्रपात ।

अशरण—अशरन वि० १. जिसे शरण न मिली हो । २. असहाय । आश्रयहीन ।

—शरण वि० जिसे कहीं शरण न मिली हो, उसे शरण देने वाला ।

पुं० ईश्वर ।

अशरीर (अ+शरीर) वि० जिसका शरीर न हो । शरीर-रहित । निराकार ।

पुं० १. परमात्मा । ईश्वर । भगवान् । २. कामदेव । ३. संन्यासी ।

—ई वि० १. शरीरहीन । देहविहीन । अपार्थिव । २. अगोचर ।

पुं० १. ब्रह्मा । २. देवता ।

अशान्त (अ+शान्त) वि० १. शान्ति-रहित । बेचैन । व्यग्र । उद्विग्न । २. अस्थिर । चंचल ।

—इ स्त्री० १. बेचैनी । व्यग्रता ।
२. अस्थिरता । चंचलता ।
३. असन्तोष । क्षोभ । खलबली ।

अशिव (अ+शिव) पुं० वह जो कल्याणकारी न हो। अमांगलिक। अकल्याणकारी।
वि० अकल्याणकर। अमंगल-सूचक।

अशिष्ट (अ+शिष्ट) वि० असभ्य। उजड्ड। शिष्टता-रहित। बेहूदा। अविनीत।
—ता स्त्री० असभ्यता। उजड्डता। बेहूदगी। अशिष्ट व्यवहार।

अशुद्ध (अ+शुद्ध) वि० १. अपवित्र। अशौच। २. अशोधित। ३. असंस्कृत। ४. गलत। सदोष।
—इ स्त्री० १. अपवित्रता। गंदगी। २. गलती। त्रुटि।
—ता स्त्री० अशुद्धि।

अशेष (अ+शेष) वि० १. जिसमें कुछ शेष न रहे। शेष-रहित। २. जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। ३. जिसका कहीं अन्त न हो। अपार। अनन्त।
—धन पुं० यौ० अपार धन।

अशोक (अ+शोक) वि० जिसे शोक न हो। शोक-रहित। दुःख विहीन।
पुं० १. एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी पत्तियाँ मांगलिक अवसर पर काम में आती हैं। २. पारा। ३. विष्णु। ४. सम्राट् अशोक, बौद्ध हो जाने पर जिसका नाम 'प्रियदर्शी' हुआ।
—वन पुं० यौ० १. शोक-नाशक सुन्दर उपवन या उद्यान। २. रावण की प्रसिद्ध वाटिका, जिसका नाम अशोक-वाटिका था।

अशोभन (अ+शोभन) वि० १. असुन्दर। भद्दा। न फबने वाला। २. अभद्र।

अशौच (अ+शौच) पुं० १. अपवित्रता। अशुद्धता। २. हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार जन्म-मरण के कारण कुटुम्बियों को लगने वाली अशुद्धता की अवस्था।

अश्रप पुं० राक्षस। नर-भक्षक।
उ०—कोंनप, अश्रप, पुन्य जन, निपका-सुत, दुर्नाद। नं० १३३/८०
वि० अश्र या रक्त-पान करने वाला। रक्तपायी।

अश्रद्धा (अ+श्रद्धा) स्त्री० श्रद्धाहीनता। श्रद्धा का अभाव।

अश्रद्धेय (अ+श्रद्धेय) वि० जो श्रद्धेय न हो। घृणा के योग्य।

अश्रु पुं० आँसू। नेत्र-जल। नयन-नीर।
—निपात यौ० आँसुओं का गिरना। आँसू बहना। अश्रु-पात। रोना।
उ०—अति उदास अरु दीनता बिबस अश्रुनिपात। प० ४७६/१८१

अश्लाघ्य (अ+श्लाघ्य) वि० निन्दा के योग्य। निंदनीय।

अश्लील वि० जो नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों से च्युत हो। जो संस्कृत या सभ्य पुरुषों की रुचि के प्रतिकूल हो। गंदा और भद्दा। फूहड़।
—ता स्त्री० फूहड़पन। भद्दापन।

अश्लेष (अ+श्लेष) पुं० १. श्लेष का अभाव। श्लेष-विहीन। असम्बद्ध। २. असंख्य। ३. अपरिहास।

अश्व पुं० १. घोड़ा। २. २७ की संख्या का सूचक शब्द।
—आरुढ़ वि० जो घोड़े पर सवार हो।
—आरोह वि० अश्वारूढ़।
—आरोही पुं० १. घुड़सवार। २. घुड़सवारी।
पुं० १. घुड़सवार। २. घुड़सवारी।
—कंदा स्त्री० अश्वगंधा। असगन्ध।
—क पुं० १. छोटा घोड़ा। २. लावारिस घोड़ा। ३. एक प्राचीन जाति का नाम। ४. गौरैया।
—गंधा स्त्री० दे० 'अश्वकंदा'।
—गोष्ठ पुं० घुड़साल। अस्तबल।
—ग्रीव पं० १. एक दानव का नाम। हयग्रीव। २. विष्णु का अवतार।
—पाल पुं० अश्वपालक। साईस।
—पति पुं० १. घुड़सवार। २. घोड़ों का मालिक। ३. भरत के मामा।
—मुख पुं० किन्नर। गन्धर्व।
—मेध पुं० १. यज्ञ में घोड़े की बलि देना। २. एक बड़ा यज्ञ जिसमें जयपत्र बाँधकर घोड़ा छोड़ते थे। भूमण्डल की दिग्विजय करने के बाद घोड़े की चर्बी से हवन किया जाता था जो कि साल भर में समाप्त होता था। ३. संगीत में एक प्रकार की तान।

—यूप पं० अश्वमेध के घोड़े को बाँधने का खूंटा।
—वाहक पुं० घुड़सवार।
—व्यूह पुं० घुड़सवार सेना को सामने और अगल-बगल रखकर रचा हुआ व्यूह।
—शाला स्त्री० घुड़साल।

अश्वत्थ पुं० १. पीपल का पेड़। २. पीपल का गोंद। ३. सूर्य। ४. अश्विनी नक्षत्र।
—आ स्त्री० आश्विन-पूर्णिमा।

अश्वत्थामा पुं० १. आचार्य द्रोण के पुत्र का नाम। २. पाण्डवपक्षीय मालव राज इन्द्रवर्म्मा के हाथी का नाम।

अश्लिष्ट (अ+श्लिष्ट) वि० १. जो श्लिष्ट न हो। श्लेषशून्य। श्लेष-रहित। २. असम्बद्ध। असंगत।

अश्विनी स्त्री० १. घोड़ी। २. २७ नक्षत्रों में से पहला नक्षत्र। ३. जटामासी। बालछड़।
—कुमार पुं० त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र जो देवताओं के वैद्य माने जाते हैं।

अश्वेत (अ+श्वेत) वि० जो श्वेत न हो। काला। श्याम वर्ण।

अषर पुं० दे० 'अक्षर'।

अषाढ़—अषाड़—असाढ़ पुं० वर्षा ऋतु का प्रथम माह। आषाढ़।
उ०—जैसें प्रथम-अषाड़-आंजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत। सूर० वि० १०७/२९
—ई स्त्री० आषाढ़ की पूर्णिमा का दिन। गुरु-पूर्णिमा। व्यास-पूर्णिमा।
वि० आषाढ़ की (घटा, बादल)।
उ०—बिरही चकचौंधि रही बनिता वै अषाढ़ी घटा लखि आवत री। बो० ३३/२०२

अष्ट वि० आठ।
उ०—अष्ट सिद्धि, नव निधि·········कछु चहियै। सूर० २/१८/१००
—क १. आठ वस्तुओं का समूह।
२. वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक या आठ छन्द हों। जैसे—रुद्राष्टक, गंगाष्टक।
३. मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं।
४. आठ ऋषियों का एक गण।
—कमल पुं० हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो भिन्न-भिन्न स्थानों में माने गये हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आज्ञा-चक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल।
—कुल पुं० सर्पों के आठ कुल—शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक।
उ०—स्रवन हीन सुनि भरा अष्टकुल नाग गरब भय चूरि। सूर० ९/२६/१६१
—कृष्ण पुं० वल्लभ-कुल के मतानुसार आठ कृष्ण-विग्रह—श्रीनाथ, नवनीत-प्रिय, मथुरानाथ, विठ्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचन्द्र और मदनमोहन।
—कोण[1] पु० १. वह क्षेत्र जिसमें आठ कोण हों। २. तंत्र के अनुसार एक यन्त्र। ३. एक प्रकार का कुंडल जिसमें आठ कोण होते हैं।
—कोण[2] वि० आठ कोने वाला। जिसमें आठ कोने हों।
—गुन वि० अठगुना।
उ०—भूख दुगनु साहस छगुन काम अष्टगुन मित्त। र० ७३/१७
—ताल पुं० ताल के आठ प्रकार—आड़, दोज, ज्योति, चन्द्रशेखर, गंजन, पंचताल, रूपल और समताल।
—दल[1] पुं० आठ पत्ते का कमल।
उ०—अमल अष्टदल कमल महामंडल मंडित तहँ। नं० ११५/३८
—दल[2] वि० १. आठ दल का। २. आठ कोनों का।
—दश—दस वि० अठारह।
उ०—अष्टादश अध्याय की कथा। बरनि सुनावौं मो मति जथा। नं० २७/२४६
पुं० अठारह पुराण।
उ०—अष्टादस पट चारि में हरि चरित्र न समाय। प० १५६/५१
—दिशा वि० आठ दिशाएँ—पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार दिशाएँ और नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान, आग्नेय ये चार उपदिशाएँ।
—द्रव्य पुं० आठ द्रव्य जो हवन के काम आते

हैं—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसों, पायस और घी ।

—धाती वि० १. अष्ट धातुओं से बना हुआ । २. दृढ़ । मजबूत । ३. उत्पाती । उपद्रवी । ४. जिसके माता-पिता का ठीक ठिकाना न हो । वर्णसंकर ।

--धातु पुं० आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा ।

—नायिका स्त्री० आठ नायिकाएँ—स्वाधीनपतिका, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, खंडिता, कलहांतरिता, अभिसारिका, प्रोषितपतिका ।

उ०—अष्ट नायिकनि ही सों मन लाइयतु है । के० I, २३/१६३

—पदी यौ० १. आठ पदों का एक समूह । एक प्रकार का गीत जिसमें आठ पद होते हैं । २. वेला नाम का फूल या उसका पौधा । ३. मकड़ी ।

अष्टछाप पुं० वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध अष्ट कवियों का वर्ग; जिनके नाम हैं—सूरदास, कुभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास ।

अष्टप्रकृति स्त्री० १. शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, अमात्य, प्राड्विवाक् और प्रतिनिधि ।

२. राज्य के आठ अंग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामन्त और प्रजा ।

३. शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि और अहंकार ।

अष्टप्रधान पुं० राज्य के आठ प्रकार के प्रधान—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मन्त्री, प्रतिनिधि, राज्याध्यक्ष, प्रधान और अमात्य ।

अष्टभुजा—भुजी यौ० आठ भुजा वाली । दुर्गा । पार्वती ।

उ०—देत अष्टहू सिधिन कों अष्टभुजी जो कोइ । प० १०१/४४

अष्टभैरव पुं० शिव के आठ गण जिनके नाम हैं—असितांग, संहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड़, चन्द्रचूड़ तथा महाभैरव ।

अष्टमंगल पुं० १. आठ मंगल द्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पंखा, वैजयंती, भेरी और दीपक । अन्य मतानुसार—ब्राह्मण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा ।

२. एक घृत जो वच, कुट, ब्राह्मी, सरसों, पीपल, सरिवा, सेंधा नमक और घी इन आठ औषधियों से बनाया जाता है ।

अष्टम वि० आठवाँ ।

उ०—अष्टम वसु है वह्नि अक, बसु, सूरज, बसु, नीर । नं० ३५/४५

—ई स्त्री० १. शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठें ।

उ० १—धनि-धनि भादौं अष्टमी (हो) जन्म लियौ जब कान्ह । सूर० १०/४०/२२४

२. क्षीर-काकोली । पयस्वा ।

वि० आठवीं ।

अष्ट महानिधि स्त्री० आठ महानिधियाँ । आठ प्रकार के भण्डार । अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

अष्टमूर्ति पुं० १. शिव । २. शिव की आठ मूर्तियाँ-क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, जयमान, अर्क और चन्द्र ।

अष्टवसु पुं० आठ वसु—आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ।

अष्टविंस वि० अट्ठाईस ।

उ०—अब सुनि अष्ट विंस अध्याइ । पै हो जहाँ निरोध के भाइ । नं० २८/२७१

अष्टसिद्धि स्त्री० योग द्वारा प्राप्त होने वाली अलौकिक शक्तियाँ । जिनके नाम हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

उ०—द्विजदेव सातहुँ भुवन मैं, अष्ट-सिद्धि-दाता विदित । शृं० ६६/१६६

अष्टांग[1] पुं० १. योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

उ०—सो अष्टांग जोग कौं करें । सूर० २/२१/१००

२. आयुर्वेद के आठ विभाग—शल्य, शालाक्य

कायाचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरण।

३. शरीर के आठ अंग—जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि।

४. अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है। इसमें जल, क्षीर, कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त-चन्दन और करवीर होते हैं।

—योग पुं० दे० 'अष्टांग १.'।

अष्टांग[2] वि० १. आठ अवयव वाला। २. अठपहल।

अष्टाकुल पुं० दे० 'अष्टकुल'।

अष्टाक्षर[1] वि० आठ अक्षरों वाला। आठ अक्षरों का।

अष्टाक्षर[2] पुं० १. आठ अक्षरों का मंत्र।

२. विष्णु भगवान का मंत्र।

३. वल्लभ कुल के मत वालों के मत से 'श्रीकृष्णः शरणं मम'।

अष्टापद—अष्टपद पुं० १. सोना। २. शरभ। ३. मकड़ी।

उ०—अष्टापद क्रम जोनि तें छुटबौ मोहनलाल। नं० ५०/६०

४. कृमि। ५. कैलास। ६. धतूरा।

वि० आठ पैरों वाला।

अष्टावक्र पुं० १. एक ऋषि।

२. वह मनुष्य जिसके हाथ-पैर आदि कई अंग टेढ़े-मेढ़े हों।

अष्टि स्त्री० १. सोलह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके चंचला, चकिता, पंच चामर आदि बहुत भेद हैं। २. सोलह की संख्या। ३. खेलने की बिसात। ४. बीज। ५. फल का गूदा। गिरी।

अष्टी स्त्री० दीपक राग की एक रागिनी।

अष्ठि स्त्री० १. गुठली। २. बीज।

असंकुल[1] वि० जहाँ जन समूह न हो। खुला हुआ। प्रशस्त। चौड़ा।

असंकुल[2] पुं० राजमार्ग। चौड़ा रास्ता।

असंख वि० असंख्य। अनगिनत। बेशुमार। अपार। अनगिन। अगणित। अपरिमित।

उ०—धुनी हूंक की हैं असंखान छाई। प० १५/२७८

असंख्य (अ+संख्य) वि० दे० 'असंख'।

असंग[1] (अ+संग) वि० १. अकेला। एकाकी।

उ०—बरनत साँच असँग कै तुमकों बेद गुपाल। म० ३७६/३६६

२. निर्लिप्त। विरक्त।

उ०—मन में यहै बात ठहराई, होइ असंग भजौं जदुराई। सूर० ५/३/१२६

पुं० निर्लिप्तता। विरक्ति।

—ई वि० बिना लगाव का।

असंग[2] पुं० १. पुरुष। २. आत्मा।

असंगत (अ+संगत) वि० १. अनुचित।

२. असमान। मेल-रहित।

उ०—भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल। सूर० वि० १५३/४२

३. अप्रासंगिक। जो प्रसंग-विरुद्ध हो।

—इ स्त्री० १. अनुपयुक्तता। २. असमानता। ३. अप्रासंगिकता।

असंगति पुं० काव्य में एक अलंकार विशेष जिसमें कारण कहीं कहा जाये और कार्य कहीं दिखाया जाए।

उ०—तहाँ असंगति कहत हैं कबि रस बुद्धि समोय। म० २१४/३३५

असंगम (अ+संगम) पुं० १. असंगति। २. अनासक्ति। ३. असमानता।

वि० पृथक्। अलग। जिसका मेल न हो।

असंचय (अ+संचय) पुं० संचय का अभाव।

—ई वि० संचय या एकत्र न करने वाला।

असंज्ञ वि० १. नाम-रहित। २. चेतना-रहित।

—आ स्त्री० संज्ञाहीनता।

असंत (अ+संत) वि० जो संत या साधु न हो। दुष्ट। बुरा।

उ०—मातुल असंत के कराए अंत कर्म। दे० I, १४२/२७

असंतान (अ+संतान) वि० जिसके संतान न हो।

असंतुष्ट (अ+संतुष्ट) वि० १. जो संतुष्ट न हो।

२. अतृप्त। ३. अप्रसन्न।

—इ स्त्री० १. अतृप्ति। २. अप्रसन्नता।

असंतोष (अ+संतोष) पुं० असंतुष्टि।

—ई वि० असंतुष्ट।

असंदिग्ध (अ+संदिग्ध) वि० १. संदेह से परे। जिसके

विषय में कोई संदेह या आशंका न हो ।
२. निश्चित ।

असंबद्ध (अ+संबद्ध) वि० १. पृथक् । अलग ।
२. बेमेल । सम्बन्ध-हीन ।

असंबाधा स्त्री० एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं ।

असंभव (अ+संभव) वि० जो संभव न हो । जो हो न सके ।
उ०—सखी सुमुखी तिय की परवीन । दसा लखि चित्त असंभव कीन । बो० २/५०

असंभार (अ+संभार) वि० जो सँभाला न जा सके ।

असंभावना (अ+संभावना) स्त्री० संभावना का अभाव

असंभावित—**असंभवित** (अ+संभावित)
वि० जिसकी संभावना न रही हो । जिसके होने का अनुमान या कलपना न की गई हो ।
उ०—असंभवित जेते चरित तिनकों लखव विभाव । प० ७१७/२३०

असंभू पुं० अशुभ । अमङ्गल ।
उ०—'नसै धर्म मन वचन काम करि संभू असंभू करई' । सूर०

असंयत (अ+संयत) वि० संयम-रहित । क्रमशून्य ।

असंयम (अ+सयम) पुं० संयम का अभाव । इंद्रियों को वश में न रखना ।

असंशय[1]—**असंसय** (अ+संशय) वि० १. संशय-रहित । निर्विवाद । निश्चित ।
२. यथार्थ । ठीक ।
क्रि०वि० निःसंदेह । वेशक ।

अस वि० १. ऐसा । इस प्रकार का ।
२. तुल्य । समान । सदृश ।
अव्य० दे० अस्स' ।
उ०—ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी । नं० ११/१

असक्त[1] वि० दे० 'अशक्त' ।

असक्त[2] वि० लिप्त । चिपका या सटा हुआ ।

असक्त[3] वि० १. जो आसक्त न हो । उदासीन ।
उ०—विषयअसक्त, अमित अघ-व्याकुल, तबहुँ कछु न सँभार्‌यो । सूर० वि० १०२/२७
२. असंलग्न । ३. असंयुक्त । ४. सांसारिक विषयों से विरक्त ।

असगुन—**अशकुन** (अ+शकुन) पुं० अपशकुन । अशुभ सूचक चिह्न । अमंगल-चिह्न ।
उ०—अवर असगुन निरखि थरहरे । नं० ४२/२४३

असत (अ+सत) वि० असत्य । मिथ्या ।
उ०—बाजि मनोरथ, गर्व मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत । सूर० वि० १४१/३८
वि० झूठा ।
उ०—औघड़-असत-कुचीलनि सों मिलि माया-जल मैं तरतौ । सूर० वि० २०३/५६

असत[2] (अ+संत) दुर्जन । असाधु ।
उ०—फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस । सूर० वि० १४४/४०

असती (अ+सती) पुं० जो सती न हो । कुलटा ।
उ०—असतीन को सिख मानि । तिय क्यों तजै कुलकानि । भि० I, ६३/१६१
—त्व पुं० सतीत्व का अभाव । कुलटापन । स्वैच्छाचार ।

असतीन स्त्री० दे० 'आस्तीन' ।
उ०—है न बरी असतीन क्यों चहौ एकतहि लाल । भि० I, ६३/१६१

असतुति स्त्री० दे० 'स्तुति' ।

असत्कार (अ+सत्कार) पुं० अपमान । निरादर । असम्मान ।
उ०—काहू असतकार तोहिं कियौ । कै कहि दान न द्विज कौं दियौ । सूर० १/२८६/७७

असत्कृत्य[1] (अ+सत्कृत्य) वि० १. सम्मान न करने योग्य । अपमानित ।
२. अनुचित काम करने वाला ।

असत्कृत्य[2] (असत+कृत्य) पुं० अनुचित कर्म । दुष्कृत्य ।

असत्य (अ+सत्य) वि० दे० 'असत' ।

असत्व (अ+सत्त्व) वि० सत्त्वहीन ।
उ०—सत्व के समत्व सौं असत्व सत्व सूझि पर्‌यो । दे० I, २५/४२

असथिर (अ+स्थिर) वि० दे० 'अस्थिर' ।

असद (अ+सद्) वि० बुरा । खराब । जो सद् नहीं है ।

असदृश (अ+सदृश) वि० १. असमान । अयथा ।
२. अनुचित । अयोग्य ।

असनान पुं० स्नान । नहाना । अवगाहन ।
उ०—करि असनान, अभूषन अँग भरि, आवति पाछैं धाइ । सूर० १०/२४३८/१३७

असनाई स्त्री० दे० 'आशनाई' ।
उ०—'नागरीदास' गलत असनाई, गायब हुई जभी । ना० २१/८६

असनि पुं० दे० 'अशनि' ।
उ०—स्याम घटा गज, असनि बाजि रथ, बिच बग-पाँति सँजोयल । सूर० १०/३३०४/३४८

असनी स्त्री० दे० 'अश्वनी'।

असनेह पुं० दे० 'स्नेह'।

असफल (अ+सफल) वि० १. जो अपने काम या प्रयत्न में सफल न हुआ हो। विफल।
२. व्यर्थ। निष्फल।
—ता स्त्री० विफलता। नाकामयाबी।

असबाब पुं० वस्तु। सामान।

असभ्य (अ+सभ्य) वि० १. जो भले आदमियों की सभा या समाज के लिए उपयुक्त या योग्य न हो।
२. जो सभ्य न हो। अशिष्ट या गँवार।
—ता स्त्री० अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस स्त्री० १. दुविधा। २. सोच-विचार। चिंता।
३. अड़चन। कठिनाई।

असम (अ+सम) वि० १. जो समान या तुल्य न हो।
२. जो सम न हो। ऊबड़-खावड़।
उ०—कमठ पायौ असम, साजत उमँगि होत उतंग।
सूर० १०/२१३१/७७
—ता स्त्री० समता का अभाव।
—बाण पुं० कामदेव।
—शर—सर पुं० कामदेव।

असमझ स्त्री० अज्ञानता।
वि० नासमझ। अबोध।

असमत (अस्मत) स्त्री० १. पवित्रता।
२. सतीत्व। पातिव्रत्य।

असमय (अ+समय) पुं० १. बुरा समय। दुर्दिन। आपत्काल। २. अनुपयुक्त समय। बे-वक्त।
उ०—भेंट भए समये असमये अचाहे चाहे।
ठा० १८४/४७

असमर्थ (अ+समर्थ) वि० १. जो समर्थ न हो। सामर्थ्य-हीन। अशक्त। २. अयोग्य। अक्षम। जिसमें किसी कार्य को करने की क्षमता न हो।
उ०—हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ।
के० II, २५/४०८
—ता स्त्री० अयोग्यता। अक्षमता।

असमान[1] (अ+समान) वि० जो किसी के समान या तुल्य न हो।
—ता स्त्री० समानता का न होना।

असमान[2] पुं० दे० 'आसमान'।
उ०—बरवकत धूरि भई असमान। परै लखि नाहिं दुर्यो कत भान।
बो० १६/१६२

असमाप्त (अ+समाप्त) वि० अपूर्ण। जो पूरा न हो।
—इ स्त्री० अपूर्णता।

असमूच वि० अपूर्ण। अधूरा।
उ०—नासा-नथ-मुक्ता, बिंबाधर प्रतिबिंबित असमूच
सूर० १०/२४४५/१३८

असमेध (अश्व+मेध) पुं० दे० 'अश्वमेध'।

असमैं पुं० दे० 'असमय'।
उ०—असमैं देइ बछरुवनि छोरि। नं० ६१/२१४

असम्मत (अ+सम्मत) वि० १. जिस पर किसी की राय न हो।
२. जो किसी सम्मति के विरुद्ध हो।
पुं० विरोधी। शत्रु।

असम्हार (अ+सँभाल) वि० बिखरा। अस्त-व्यस्त।
उ०—हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत। घ० क० २०२/१५०

असयाना (अ+सयाना) वि० (स्त्री० असयानी)
१. छल-कपट से रहित। जो चतुर न हो।
उ०—बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनि।
तु० १०/१३८
२. मूर्ख।

असर पुं० प्रभाव। छाप।

असरन (अ+शरण) वि० दे० 'अशरण'।
उ०—असरन सरन, सकल खल करपन।
क० ७०/११६

असराज पुं० इसराज नामक बाजा विशेष।

असराप पुं० दे० 'श्राप'।
उ०—ही के बुझैं सब ही के सताप सु सौतिन के असराप असीसी। दे० I, ४२२/११६

असरार क्रि०वि० निरंतर। लगातार।
उ०—नैननि नीर बहै असरार।
सूर० १०/३१४०/३१६

असरीर (अ+शरीर) वि० दे० 'अशरीर'।

असर्धा स्त्री० दे० 'अश्रद्धा'।
उ०—हीन असर्धा निंदक नास्तिक धरम-बहिर्मुख।
नं० ३७/१६

असर्म (अ+शर्म) वि० लज्जाहीन।
उ०—सुनि-सुनि सुंदरि के बचन, भोगनि जानि असर्म। के० III, २५/७३२

असल वि० १. खरा। शुद्ध। ख़ालिस। शुद्ध। बिना मिलावट का। २. भोली। सीधी।
उ०—अब आए मोहिं असल सलावन।
सूर० १०/२६४४/१७८

पुं० १. वास्तविक वस्तु।
उ०—निहचै एक असल पै राखै, टरै न कबहूँ टारै।
सूर० वि०/१४२/३६
२. मूल। जड़। बुनियाद। ३. मूलधन।
उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति को, असल तहाँ खतियावै। सूर० वि०/१४२/३६
—इयत स्त्री० १. वास्तविकता।
२. मूल तत्त्व। सार।
—ई वि० असल।

असल[२] पुं० एक प्रकार का लम्बा झाड़।

असलेखा स्त्री० आश्लेषा नक्षत्र।

असवर्ण (अ+सवर्ण) वि० १. भिन्न जाति का।
२. असमान।

असवार—असबार पुं० १. सवार। २. घुड़सवार।
उ०—बारह हजार असवार जोरि दलदार ऐसे अफजलखान आयो सुर-साल है।
भू० ४७४/२२२
—ई स्त्री० १. सवारी। २. सेना।
उ०—तेरी असवारी महाराज सिवराज बली केते गढ़पतिन के पंजर मचकि गे।
भू० ४७६/२२३

असह वि० दे० 'असह्य'।
उ०—नीके आहि, असह उदेग-दुख सेल सो।
घ० क० ३७/५८

असहन (अ+सहन) वि० १. सहन न करने वाला। असहिष्णु। २. ईर्ष्यालु।
पुं० १. शत्रु। बैरी। २. असहिष्णुता। अधीरता।
—ईय वि० असह्य।
—शील—सील वि० असहिष्णु।
उ०—बाँभन नेगी, रूप विन, असहनसील चरित्र।
के० I, ३१/१२२

असहयोग (अ+सहयोग) पुं० सहयोग का अभाव। मिलकर कार्य न करना।

असहाय (अ+सहाय) वि० जिसका कोई सहायक न हो। निराश्रय। बे-सहारा।
उ०—दूत रामराय को सपूत पूत बाप को, समर्थ हाय पाय को सहाय असहाय को।
कवि० ३१/६७

असहिष्णु (अ+सहिष्णु) वि० सहन न करने वाला। चिड़चिड़ा।
—ता स्त्री० असहनशीलता। चिड़चिड़ापन।

असह्य वि० असहनीय। जो सहा न जा सके।

असाँच (अ+साँच) वि० असत्य। मिथ्या। झूठ।

असाढ़ा पुं० १. रेशम का महीन बटा हुआ धागा।
२. कच्ची खाँड।

असाध[१] (अ+साध्य) वि० दे० 'असाध्य २.'।
उ०—पल में करत असाध पित्त कोतवाली करत।
बो० १६/८८
उ०—देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की।
घ० क० २६/५४

असाध[२] (अ+साध) वि० कामना-रहित। इच्छा-रहित। निष्काम।

असाध[३] (अ+साधु) वि० असज्जन। दुष्ट। बुरा।

असाधन (अ+साधन) पुं० साधन का अभाव। साधन का न होना।
उ०—साधन असाधन त्यों सनमुख होति कैसें।
घ० क० ३४५/२१४

असाधारण (अ+साधारण) वि० जो साधारण न हो। असामान्य।
पुं० न्याय में हेत्वाभास का एक भेद।

असाधि वि० दे० 'असाध्य'।
उ०—कैसें धरौं धीर बीर, अति ही असाधि पीर।
घ० क० ९१/९१
—ता वि० असाध्य।
उ०—आधि उपाधि असाधिता ब्याधि न राधिकै कैसहु ह्वै सके हातै। भि० I २३२/१४०

असाधु (अ+साध) वि० १. दुष्ट। बुरा। खल।
उ०—साधु असाधु बासना जहाँ। 'ऊति' विभूति समझि लै तहाँ। नं० १९०
२. असंस्कृत।
पुं० बुरा आदमी।
—ता स्त्री० दुर्जनता। अशिष्टता।

असाध्य (अ+साध्य) वि० १. जो साध्य न हो। २. अच्छा न होने वाला। लाइलाज (रोग)। ३. अशक्य। दुष्कर।

असाध्वी (अ+साध्वी) वि० १. दुराचारिणी। कुलटा। व्यभिचारिणी। २. दुष्टा।

असान वि० दे० 'आसान'।
उ०—चिन्ता मति करौ हम सो असान करिहैं।
क० ४१/१३

असामर्थ्य—असामर्थ (अ+समर्थ+य)
स्त्री० १. सामर्थ्यहीनता। अक्षमता।
२. निर्बलता।

असामी पुं० १. व्यक्ति। मनुष्य। २. काश्तकार। ३. देनदार। ४. अपराधी।

असाम्य (अ+साम्य) पुं० असमानता । विषमता ।

असार (अ+सार) वि० १. निस्सार । सार-हीन । २. शून्य । खाली । ३. तुच्छ । तत्त्वहीन । ४. पोला । ५. निरर्थक । व्यर्थ ।

उ०—यह जिय जानि, इहिं छिन भजि दिन बीते जात असार । सूर० वि० ६८/१६

पुं० १. रेंड़ का पेड़ । २. अगुरु चन्दन ।

—ता स्त्री० सारहीनता । निस्सारता । तत्व-शून्यता । २. तुच्छता । ३. मिथ्यात्व ।

असावधान (अ+सावधान) वि० बेख़बर। लापरवाह।

—ई स्त्री० लापरवाही । असतर्कता ।

—ता स्त्री० असावधानी ।

असावरी स्त्री० १. छत्तीस रागिनियों में से एक विशेष रागिनी, आसावरी ।

उ०—मालवाई, राग गौरी अरु असावरि राग । सूर० १०/२८३१/२४४

२. कबूतरों की एक किस्म । ३. एक प्रकार का सूती कपड़ा ।

उ०—पाँबरी पैन्हि लै प्यारी जराइ की ओढ़ि लैं चाँचरि चारु असावरी । भि० I, ३८०/५४

असावली स्त्री० रुपहली साड़ी ।

उ०—सुंदरि क्यों पहिरति नग भूपन असावली । भि० I, ५/२७०

असि[1] स्त्री० १. तलवार । खड्ग ।

उ०—वलय ताटंक चक्र नख नेजा दामिनी से चम-कत रद असि बर । सूर० १०/२४५५/१४१

२. भुजाली ।

—नी वि० तलवार धारण करने वाली । खड्ग-धारिणी ।

—पात्र पुं० तलवार की म्यान ।

असि[2] स्त्री० श्वास ।

असि[3] सर्व० ऐसी ।

असिक पुं० १. होंठ और ठुड्डी के बीच का हिस्सा । चिबुक । २. एक प्राचीन प्रदेश का नाम।

असिक्नी स्त्री० १. अन्तःपुर में रहने वाली युवा दासी । २. पंजाब की चिनाब नदी का पुराना नाम। ३. दक्ष प्रजापति की पत्नी । ४. रात्रि ।

असित (अ+सित) वि० १. अश्वेत । काला ।

उ०—असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै । सूर० १०/६५/२३१

२. मलीन । ३. नीला ।

पुं० १. देवल नामक एक ऋषि । २. शनि ग्रह । ३. काला या नीला रंग । ४. धौ या धव का वृक्ष । ५. कृष्ण-पक्ष ।

उ०—पौस असित नौमी कौ सुभदिन सरस लगै तहाँ सीत । छी० ३१/१२

—अंग वि० १. काले अंगों वाला ।

पुं० १. शिव का एक रूप । २. एक मुनि ।

—अंबुज पुं० नीलकमल ।

—अर्चि पुं० अग्नि ।

—आ स्त्री० यमुना नदी । इसका जल नीलिमा लिए रहता है ।

—उत्पल पुं० नीलकमल ।

—उपल पुं० नीलम ।

—गिरि पुं० नीलगिरि नामक पर्वत ।

—ग्रीव पुं० अग्नि ।

—दंत पुं० मगर । घड़ियाल ।

असिद्ध (अ+सिद्ध) वि० १. जो सिद्ध न हो । २. कच्चा ३. अपूर्ण । अधूरा । ४. व्यर्थ । बेकार। निष्फल । ५. अप्रमाणित ।

पुं० १. एक प्रकार का विशाल वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम आती है । २. एक हेत्वाभास जिसमें हेतु स्वयं असिद्ध रहता है ।

—इ स्त्री० १. कच्चापन । २. अपूर्णता । ३. अप्राप्ति ।

असिष स्त्री० दे० 'आशीष' ।

उ०—जोरि कर बिधि सौं मनावति, असिष दै दै नाम । सूर० १०/३०२६/२८८

असी[1] स्त्री० १. एक नदी जो काशी के दक्षिण से बहकर गंगाजी से मिल गई हो । २. काशी में गंगाजी का 'अस्सीघाट' ।

असी[2] वि० दे० 'अस्सी' ।

असीख स्त्री० दे० 'आशीष' ।

उ०—सनमुख गिरा निहारि, सीख असीख समेत लहि । शृं० २७३/७७६

असीन वि० दे० 'आसीन' ।

असीम (अ+सीम) वि० १. सीमा-रहित । २. अपार। अगाध ।

उ०—कहै रतनाकर असीम रावरी·········हमारी हैं । उ० १०५/१०५

३. अनन्त, परम ।

—इत वि० १. जिसकी सीमा न हो। असीम। २. अपरिमित।

असील (अ+सील) वि० अशील। शील-रहित।
उ०—ओर के असील गुन ही के जे निकेत हैं। क० ४३/१४

असीस[1] (आशिष्) स्त्री० दे० 'आशीष'।
उ०—नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू। घ०क० ६८/८१

असीस[2]— सक० आशीष या आशीर्वाद देना।
उ०—भूपन असीसैं तोहिं करत कसीसैं पुनि बाननि के साथ छूटे प्रान तुरकन के। भू० १०४/१४८

असु[1] पुं० १. प्राण।
उ०—आनँद भौ बहुरी पहिलैं कुमुदावलि चक्कनि के असु धाके। भू० ३६/१३४
२. हृदय। ३. जल। ४. आँसू।
उ०—देव हिय हर्षन, विकर्षन विमोह असु वर्षन विनौ तु अघमर्षन को छाँडि कै। दे० I, ११८/२३
५. आँसू। ताप।.

—आ पुं० आँसू। अश्रु।
उ०—बासर-निसि असुआ वरषावति। भि० I, १५५/१६८

असु[2] पुं० अश्व। घोड़ा।

असु[3] वि० आशु। शीघ्र। जल्दी।

असुग वि० शीघ्रगामी।
उ०—तोमर, खग, जिह्मग, असुग, विशख, शिलीमुख बाण। नं० १५५/८२

असुन पुं० हृदय। अन्तःकरण।

असुनी स्त्री० दे० 'अश्विनीकुमार'।

असुपति पुं० अश्वपति।

असुमान पुं० प्राणी।

असुमेध पुं० दे० 'अश्वमेध'।

असुहीन वि० निष्प्राण। निर्जीव। प्राणविहीन। मृत। मरा हुआ।

असुन्दर (अ+सुन्दर) वि० १. जो सुन्दर न हो। कुरूप भद्दा। २. अशोभन।

असुकर (अ+सुकर) वि० जिसे करना कठिन हो। दुष्कर।

असुख (अ+सुख) पुं० १. सुख का अभाव। २. कष्ट। दुःख।
वि० १. अप्रसन्न। दुःखी। २. कठिन।

—ई वि० दुःखमय। शोकपूर्ण।

असुचि—अशुचि (अ+शुचि) वि० १. अशुचि। अपवित्र।
उ०—राग-द्वेष, विधि-अविधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारो। सूर० वि०/१५७/४३
२. गन्दा। मैला।

असुच्छ (अ+स्वच्छ) वि० अस्वच्छ। गंदा।
उ०—चिदानंदमय अपने बच्छ। यह प्राकृत अरु निपट असुच्छ। नं० २२४

असुत (अ+सुत) वि० पुत्रहीन।

असुद्ध (अ+शुद्ध) वि० १. अपवित्र। अशुद्ध। नापाक। २. गन्दा। मैला।

असुध[1] (अ+शुद्ध) वि० दे० 'अशुद्ध'।

असुध[2] (अ+सुध) वि० बेसुध। बेहोश। मूर्च्छित। अचेत।

असुप्त (अ+सुप्त) वि० जो सोया न हो। जागा हुआ।

असुभ—अशुभ (अ+शुभ) वि० १. अमंगलकारी। २. अनिष्ट-सूचक।
पुं० अमंगल। अकल्याण। अहित।
उ०—विष जल, ब्याल बरुन बरषानल, अखिल असुभ हति राखे। सूर० १०/३८५२/४६१

असुर (अ+सुर) पुं० १. दैत्य। दानव। राक्षस।
उ०—कमरी कैं बल असुर संहारि। सूर० १०/१५१५/६१८
२. नीच प्रवृत्ति का व्यक्ति। खल। दुष्ट।
३. राहु। ४. बादल। मेघ। ५. सूर्य।
६. समुद्री नमक। ७. देवदार नामक वृक्ष।
वि० १. अपार्थिव। अलौकिक। २. जीवित।
३. ब्रह्म और वरुण का एक विशेषण।

—अधिप पुं० राजा बलि।

—अरि पुं० १. विष्णु। २. देवता।

—आ स्त्री० १. रात। २. राशि। ३. वेश्या।

—आई स्त्री० राक्षसी निर्दयता। उत्पात। असुरत्व।

—आचार्य पुं० १. असुरों के गुरु शुक्राचार्य। २. शुक्र ग्रह।

—ई स्त्री० १. राक्षसी। २. रात्रि।

—गुरु पुं० असुरों के गुरु शुक्राचार्य।

—राज पुं० असुरों के राजा बलि।

—रिपु पुं० असुरारि विष्णु।

—सूदन पुं० विष्णु।

असुविधा (अ+सविधा) स्त्री० १. सुविधा का अभाव।

२. अड़चन । कठिनाई ।

असुस्थ वि० दे० 'अस्वस्थ' ।

असुहाता (अ+सुहाता) वि० (स्त्री० असुहाती) न सुहाने या अच्छा लगने वाला । अरोचक । अरुचिकर ।

असूझ (अ+सूझ) वि० १. अन्धकारमय । २. अपार । ३. दुष्कर । विकट । ४. जिसकी ओर किसी का ध्यान न जाय । ५. अंधा । ६. मूर्ख ।
पुं० अंधकार ।
स्त्री० अदूरदर्शिता ।

असूत (अस्यूत) वि० १. विपरीत । विरुद्ध । २. असम्बद्ध । असंगत ।

असूतिका (अ+सूतिका) स्त्री० वन्ध्या । बाँझ ।

असूया स्त्री० १. किसी के गुण, समृद्धि आदि को सहन न कर सकने की वृत्ति ।
२. ईर्ष्या । जलन ।
उ०—पति, सुत, मित्र सुहृदजन जिते । नहिंन असूया करिहैं तिते । नं० २३/२६२
३. क्रोध । रोष । ४. एक संचारी भाव ।

असूल[१] (अ०) पुं० दे० 'उसूल' ।

असूल[२] (अ०) वि० दे० 'वसूल' ।

असृक् पुं० रक्त । खून ।
उ०—श्रोणित, रक्त, ककोणि पुनि, रूधिर, असृक् क्षतजात । नं० १३२/८०

असेख वि० १. विशेष । २. बहुत ।
उ०—उर में मनो मैन सुचि रेख । ताकी दीपति दिपति असेख । के० III, ७६/५७२

असेत (अ+श्वेत) वि० दे० 'अश्वेत' ।
उ०—कीन्ही तुम सेत मैं असेत कृति कीन्ही तुम । प० ४८/२४८

असेवन (अ+सेवन) वि० १. सेवा न करने वाला । २. पूजा न करने वाला । ३. अभ्यास न करके परित्याग करने वाला ।
पुं० त्याग । व्यवहार में न लाना ।

असेस—असेष (अ+शेष) वि० दे० 'अशेष' ।
उ०—तँह गगन गरजत, बीज तरपत, मधुर मेह असेस । सूर० १०/२८४२/२२६
उ०—सो सामान्य विसेप है बरनत सुकबि असेप । भू० १०६/१४८

असेषमति वि० अधिक बुद्धिमान् ।

उ०—सँग सीता सेप असेपमति गुन असेप अंग-अंग अति । के० III, २७/४७०

असै वि० जो सहन न किया जा सके । असहनीय । बरदाश्त के बाहर । असह्य ।

असेला—असेली (अ+शैली) वि० (स्त्री० असैली) १. नीति का उल्लंघन करने वाला । २. कुमार्ग पर चलने वाला । कुमार्गी । ३. प्रचलित रीति के विरुद्ध । ४. अनुचित ।

असोक (अ+शोक) वि० दे० 'अशोक' ।
उ०—अपनेहि घर तक करत हौ, सोक असोक समाज । के० II, ४२/३६५
पुं० दे० 'अशोक' ।
उ०—कहि 'केसव' जाचक के अरि चंपक सोक असोक लिये हरिकै । के० II, ४१/२६१

असोच—अशोच (अ+शोच) वि० १. जिसे किसी प्रकार की चिन्ता न हो । निश्चिन्त । वेफिक्र । २. अपवित्र । ३. पापी ।
—इत वि० न सोचा हुआ ।
उ०—मोचि, असाच, असोचित सोचित, सो चित्त साचु के नाच नचीये । दे० I, ४७/२१६

असोज पुं० आश्विन (क्वार) नाम का महीना ।

असोध (अ+शोध) वि० अपवित्र ।

असोस (अ+शोष्य) वि० १. जो सोखा न जा सके । अशोष्य ।
२. न सूखने वाला ।
उ०—गोपिनु कैं अँसुवन भरी सदा असोस अपार । बि० २६३/१२३

असौंध (अ+सौंध) पुं० १. गंध का अभाव । २. दुर्गंध

असौख्य (अ+सौख्य) वि० १. दुःख । कष्ट । २. सुख का अभाव ।

असौच (अ+शौच) पुं० दे० 'अशौच' ।
उ०—हौं असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाऊँ । सूर० वि० १२८/३५

असौम्य (अ+सौम्य) वि० १. असुंदर । कुरूप । २. क्रूर स्वभाव वाला । ३. अप्रिय ।

अस्क पुं० नाक में पहनने की बुलाक ।

अस्त पुं० १. अवनति । पतन । २. अंत या नाश । ३. आँखों से ओझल या तिरोहित होना । ४. कुण्डली में लग्न से सातवाँ स्थान ।
वि० डूबा हुआ ।
उ०—उदै बालससि अस्त भयो रबि, जिय-जिय यहै बिचारैं । सूर० १०/२०२८/५७

—अचल पुं० पश्चिम दिशा में वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूर्य डूबता है।
—अद्रि पुं० दे० 'अस्ताचल'।
—गमन पुं० १. अवनति की ओर जाना। २. लोप। ओझल। ३. मृत्यु। ४. अंत। नाश।
—गिरि पुं० दे० 'अस्ताचल'।
—मन पुं० १. अस्त होना। २. अंत होना।
—मय पुं० १. प्रलय। २. (सूर्य आदि का) डूबना। ३. सूर्य के साथ अन्य ग्रहों का योग।
—मस्तक पुं० अस्ताचल का शिखर।
—मित वि० १. अस्तगत। २. मरा हुआ।

अस्तन पुं० दे० 'स्तन'।
उ०—अस्तन सोत समीर खैंचि उड़ायौ भृंग कौ। बो० ४१/११०
—ई वि० स्तनवाली।

अस्तबल पुं० अश्वशाला। तबेला। घुड़साल।

अस्तब्ध वि० १. चंचल। अस्थिर। २. व्याकुल। घबड़ाया हुआ।

अस्तर पुं० १. सिले कपड़े, जूते आदि के भीतर की तह। भितल्ला।
२. महीन साड़ियों आदि के साथ पहना जाने वाला वह मोटा कपड़ा जो कमर से पैरों तक रहता है। अंतरौटा। साया।
३. वह पहला तेल जिसमें दूसरे सुगन्धित पदार्थों का योग करके कोई दूसरा तेल बनाया जाता है। इत्र की जमीन।

अस्त बिस्त—अस्त विस्त वि० दे० 'अस्त-व्यस्त'।

अस्त-व्यस्त वि० तितर-बितर। इधर-उधर। बिखरा हुआ। अव्यवस्थित।

अस्ति स्त्री० १. विद्यमानता। सत्ता। २. कंस को ब्याही गई जरासंध की कन्या। ३. सस्ता।
उ०—जाकी प्रभा प्रकासियै अस्ति अनंत अगाधु। के० III, ४७/७६९
—काय पुं० सिद्ध पदर्थ।
—त्व पुं० सत्ता। विद्यमानता।

अस्तु अव्य० १. जो हो। २. ऐसा ही हो।

अस्तुत—अस्तुति—अस्तुती[1] (स्तुति) स्त्री० दे० 'स्तुति'।
उ०—अस्तुति ताकी अकथ कथा की लखी बिप्र अनुरागी। बो० ७२/१४७

अस्तुति[2] (अ+स्तुति) स्त्री० अपकीर्ति। निन्दा।

अस्तुरा पुं० दे० 'उस्तरा'।

अस्तेय (अ+स्तेय) पुं० १. चोरी न करना।
२. चोरी न करने का संकल्प।
३. योग के आठ अंगों में से नियम नामक अंग के अन्तर्गत एक व्रत।
—व्रत पुं० आवश्यकता से अधिक वस्तु के संग्रह या उपयोग को चोरी मानना।

अस्तोत्र पुं० दे० 'स्तोत्र'।

अस्त्र पुं० १. फेंककर मारा जाने वाला हथियार।
उ०—तीखे अस्त्र अनेक हाथ गिरिजा, लीन्हे महा ईड़ितै। भि० I, ६३/२६२
२. मन्त्र-प्रेरित हथियार।
३. वह उपकरण जिससे कोई हथियार फेंका जाये। जैसे—धनुपादि।
—आगार पुं० अस्त्र रखने का स्थान। अस्त्र-शाला।
—ई पुं० अस्त्रधारी।
—कंटक पुं० बाण।
—कार पुं० वह कारीगर जो अस्त्र बनाता हो।
—घला वि० अस्त्र चलाने वाला।
—चिकित्सक पुं० शल्यकार।
—चिकित्सा स्त्री० शल्य-चिकित्सा।
—जीवी पुं० वह जिसकी जीविका अस्त्र से चलती हो। सैनिक।
—धारी पुं० अस्त्र धारण करने वाला। सैनिक।
—बंध पुं० अस्त्रों की अविराम वर्षा।
—लाघव पुं० अस्त्र चलाने की कुशलता।
—विद्या स्त्री० अस्त्र-संचालन की विद्या।
—वेद पुं० धनुर्वेद।
—शस्त्र पुं० अस्त्र और शस्त्र।
—शाला स्त्री० अस्त्र-शस्त्र रखने का स्थान।
—सायक पुं० लोहे का बाण।

अस्त्रीक वि० १. कुंवारा। २. रँडुआ। बिना स्त्री का।

अस्थल पुं० दे० 'स्थल'।

अस्थान पुं० दे० 'स्थान'।

अस्थामा पुं० दे० 'अश्वत्थामा'।
उ०—भीषम, द्रोन, करन, अस्थामा, सकुनि सहित काहूँ न सरी। सूर० १/२४९/६७

अस्थावर वि० जो स्थावर न हो। जंगम। चल।

अस्थि स्त्री० हड्डी।

—कुंड पुं० पुराणों के अनुसार एक नरक का नाम जो हड्डियों से भरा हुआ है।
—ज वि० हड्डियों से निकलने वाला।
—तेज पुं० मज्जा।
—धन्वा पुं० शिव।
—पंजर पुं० शरीर की हड्डियों का ढाँचा। कंकाल।
—माली पुं० शिव।
—विग्रह पुं० शिव का भृंगी नामक गण।

अस्थिति स्त्री० १. अस्थिरता।
२. चंचलता। डाँवाडोलपन।

अस्थिर[1] वि० जो स्थिर न हो। चंचल। डाँवाडोल।
—ता स्त्री० चंचलता।

अस्थिर[2] वि० स्थिर। जो चंचल न हो।

अस्थूल[1] (अ+स्थूल) वि० जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अस्थूल[2] वि० दे० 'स्थूल'।

अस्नान पुं० नहान। स्नान।

अस्निग्ध (अ+स्निग्ध) वि० १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २. कठोर। निर्दय। हृदयहीन।

अस्पष्ट (अ+स्पष्ट) वि० जो स्पष्ट न हो।

अस्पहान पुं० एक देश। स्पेन।
उ०—खुरासान अस्पहान लगी एक आना की।
गं० ३०५/६२

अस्पृश्य (अ+स्पृश्य) वि० जो छूने योग्य न हो। नीच जाति का। अंत्यज।

अस्फी (फा०) पुं० घुड़सवार। अश्वारोही।
उ०—सु अस्फी घने दुंदभी हैं धुकारे।
प० १३/२७८

अस्फुट (अ+स्फुट) वि० जो स्पष्ट न हो। गूढ़। जटिल

अस्म पुं० अश्म। पत्थर।
उ०—जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म, लकुट, पदत्रान। सूर० वि०/१०३/२८

अस्मय वि० १. जो पत्थर का बना हो अथवा जिसमें पत्थर लगा हो।
२. पत्थर के रूप में आया हुआ।
उ०—अस्मय-तन गौतम तिया कौ साप नसावै।
सूर० वि०/४/२

अस्मर (स्मर) पुं० कामदेव। दे० 'स्मर'।
उ०—निपट अस्मर दोऊ, निरखि देखिरी सखि, बिधि बड़ो क्रूर किधौं हम अभागी।
सूर० १०/३०६०/२९६

अस्मृति स्त्री० दे० 'स्मृति'।
उ०—अस्मृति पुरान राखे वेदबिधि गुनी मैं।
भू० ४२१/२०६

अस्रु पुं० अश्रु। आँसू।
उ०—अस्रु ढरे संकेत लखि परे सकज्जल गात।
भि० I, १२५/१६

अस्व[1] पुं० अश्व। घोड़ा।
उ०—प्रेम सिपाह अस्व दृग-चपल जु अति है।
भि० I, १७४/२०१

अस्व[2] वि० दरिद्र। धनहीन।

अस्वत्थामा पुं० दे० 'अश्वत्थामा'।
उ०—अस्वत्थामा तापैं जाइ। ऐसी भाँति कह्यौ समुझाइ। सूर० १/२८६/७८

अस्वमेध पुं० दे० 'अश्वमेध'।
उ०—कीन्हें जुद्ध भारी अस्वमेध जज्ञ ठाने में।
बो० २६/१००

अस्वर (अ+स्वर) वि० १. अस्पष्ट या बुरे स्वर वाला।
२. मंद।
पुं० १. मंद स्वर। २. व्यंजन वर्ण।

अस्वस्थ (अ+स्वस्थ) वि० १. जो स्वस्थ न हो।
२. दूषित। बुरा। ३. बीमार। रोगी।

अस्वाभाविक (अ+स्वाभाविक) वि० १. प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध। २. कृत्रिम। बनावटी।

अस्वार पुं० दे० 'असवार'।
—ई स्त्री० दे० 'असवारी'।

अस्वार्थ (अ+स्वार्थ) वि० १. जो स्वार्थी न हो।
२. स्वार्थ-रहित। ३. उदासीन।

अस्विनि स्त्री० त्वष्टा की पुत्री प्रभा नामक स्त्री।
उ०—अस्विनि-सुत इहि अवसर आए।
सूर० ६/३/१५२

अस्विनी पुं० दे० 'अश्विनीकुमार'।

अस्वीकार (अ+स्वीकार) पुं० इनकार करना। न मानना।

अस्वीकृत (अ+स्वीकृत) वि० जो मान्य या स्वीकृत न हुआ हो। ना-मन्जूर।

अस्स—अस्सु पुं० अश्व। घोड़ा।

अस्स अव्य०
उ०—कस्स स्सह न सरस्स स्समिट सु अस्स स्सटपट। प० १२०/२६१

अस्सी वि० अस्सी का अंक। दस की आठ गुनी संख्या।

पुं० बनारस में गंगा के किनारे एक घाट जिसका नाम अस्सी घाट है।

अहम्—अहं[1] सर्व० मैं।

अहम्—अहं[2] पुं० अहंकार। अभिमान।

—इति घमण्ड। गर्व।

उ०—निसि-दिन फिरत रहत मुंह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। सूर० १/३३३/६२

—एव—ऐव स्त्री० गर्व। अहंकार।

उ०—कलिजुग हट्यौ मिट्यौ सकल म्लेच्छन को अहमेव। भू० १२/१३०

—पद पुं० अहंकार। अभिमान।

—भाव पुं० १. अहं। २. अहंकार।

अहंकार (अहम्+कार) पुं० १. अभिमान। गर्व। घमंड दम्य।

उ०—देव गुमान गयंद·········अहंकार को सार लै जूझ्यौ। दे० I, १६/३१

२. वेदांत के अनुसार अन्तःकरण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहंकार है। "मैं हूँ" या "मैं कहता हूँ" इस प्रकार की भावना।

३. सांख्य शास्त्र के अनुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य। ४. ममत्व।

—ई—ऊ वि० अभिमानी। घमंडी। गर्वीला।

उ०—अहंकारू चितु, मन तनै, त्रिविध त्रिगुन अनुरत्त। दे० १/५८/१६६

अहंता[1] (अहम्+ता) स्त्री० अहंकार। मद। घमंड। गर्व।

अहंता[2] (अ+हंता) वि० न मारने वाला।

अह पुं० दिन।

उ०—काम-क्रोध-मद-लोभ-महाभय, अह-निसि नाथ, रहत बेहाल। सूर० वि०/१२७/३५

—निसि—निश—निशि क्रि०वि० अहर्निश। रात-दिन।

—रह क्रि०वि० १. प्रतिदिन। २. सदा। ३. निरंतर।

—रात पुं० १. अहोरात्र। दिन-रात। २. विष्णु। ३. सूर्य। ४. दिन का अभिमानी देवता।

अहक[1] स्त्री० लालसा। कामना। आकांक्षा। इच्छा।

—सक० इच्छा करना। कामना करना।

—ई वि० इच्छा रखने वाला। इच्छुक।

अहक[2] (अ+हक) वि० जिसका हक न हो।

अहटा[1]— अक० आहट लेना। पता चलाना।

अहटा[2]— अक० दुखना। दर्द करना।

अहत (अ+हत) वि० १. जो मारा या पीटा न गया हो।

२. (कपड़ा) जो धुला न हो।

३. बिलकुल ताज़ा या नया। बेदाग़।

पुं० नया कपड़ा।

अहद पुं० १. निश्चय। दृढ़ संकल्प। प्रतिज्ञा।

२. इरादा। विचार।

३. किसी के भोग, राज्य या शासन का काल।

अहदी वि० बहुत आलसी। कोई काम न करने वाला।

पुं० १. अकबर के समय के वे सिपाही जिन्हें साधारणतः कुछ काम नहीं करना पड़ता था पर जो विकट अवसरों पर वीरता दिखाते थे।

२. दूत या सिपाही।

उ०—घेर्‌यौ आई कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी पठयौ। सूर० वि० ६४/१८

अहन् पुं० दे० 'अह'।

उ०—अटत गहन-गन अहन अखेट की। कवि० ६६/६४

अहप्पति (अहि+पति) पुं० अहिपति। शेषनाग।

अहमक पुं० मूर्ख। बेवकूफ़।

अहर[1] पुं० मिट्टी का वह बरतन जिसमें छीपी रंग रखते हैं।

अहर[2] पुं० अधर।

अहर[3]— सक० लकड़ी को छील कर साफ या सुडौल बनाना।

अहरन स्त्री० लोहारों, सुनारों आदि की निहाई।

अहरा[1] (आहरण) पुं० १. कोई चीज पकाने के लिए बनाया हुआ कंडों का ढेर।

२. कंडे जलाकर तैयार की हुई आग।

३. मनुष्यों के ठहरने का स्थान।

अहरा[1]— सक० टूट पड़ना। हल्ला बोलना। झुण्ड के झुण्ड टूट पड़ना।

अक० काँपना। थरथराना। दहलना।

अहरी स्त्री० १. प्याऊ।

२ जानवरों के पानी पीने के लिए कुएँ के पास बनाया जाने वाला हौज।

३. पानी से भरा हुआ हौज ।

अहरेटा पुं० अहीर का बेटा ।

उ०—पेटे की न पाई या करेटे अहरेटे की ।
ठा० ५/६२

अहर्मुख (अहन्+मुख) पुं० उषःकाल । सवेरा ।

अहल— अक० काँपना ।

अहलाद पुं० दे० 'आह्लाद' ।

अहल्या—अहिल्या वि० धरती जिसमें हल न चल सके या जो जोती न जा सके ।

स्त्री० गौतम ऋषी की पत्नी, जो शाप के कारण पत्थर की हो गई थी और जिसका उद्धार भगवान् राम ने किया था ।

अहवान पुं० दे० 'आह्वान' ।

अहवाल पुं० १. समाचार । वृत्तांत । हाल । २. दशा । परिस्थिति ।

अहसान पुं० एहसान । कृपा । उपकार ।

उ०—बहु धनु लै अहसान कै, पारौ देत सराहि ।
बि० ४७६/१६८

अहस्त (अ+हस्त) वि० जिसके हाथ न हो । बिना हाथ का ।

अहह अव्य० आश्चर्य, खेद, थकावट, प्रसन्नता, शोक आदि का सूचक अव्यय ।

उ०—अहह दई किन करि दई रोम-रोम प्रति नैंन ।
प०

अहाँ अव्य० हाँ । जी हाँ । स्वीकृति या सम्मति सूचक शब्द । किसी के पुकारने पर उपस्थिति-द्योतक शब्द ।

अहा अव्य० आश्चर्य, आनन्द, आह्लाद, प्रसन्नता आदि का सूचक अव्यय ।

उ०—अहा कहा विषम कटाक्ष-सर-चोट है ।
घ० क० ४१/६२

अहाता पुं० चारों ओर से घिरा हुआ मैदान या स्थान । हाता । चारदीवारी ।

अहार[1]—अहारु पुं० खाद्य पदार्थ । खाना ।

सक० १. भोजन करना । २. चिपकाना ।

—ई वि० खाने वाला । खुराकी ।

अहार[2] पुं० उघार या पर्दा जो पालकी, गाड़ी, रथ, रब्बा, मझोली या पीनस पर डाला जाता है । इसे ओहार या उघार भी कहते हैं ।

अहार[3] पुं० व्यवहार ।

उ०—विप्रनि प्रनामु, राम केसव को नाम कहि, कह्यो हित ही सौ, चित उचित अहार में ।
दे० I, ६३/१४

अहिंसक (अ+हिंसक) वि० १. जो हिंसक न हो । हिंसा न करने वाला । २. अहिंसावादी ।

अहिंसा (अ+हिंसा) स्त्री० १. हिंसा न करने की वृत्ति या भावना । किसी को कष्ट न पहुँचाना
२. धर्मशास्त्रों के अनुसार मन, वचन या कर्म से किसी को तनिक भी कष्ट या पीड़ित न करने की भावना ।
३. कंटक-पाली या हंस नाम की घास ।

अहिंस्र (अ+हिंस्र) वि० १. अहिंसक । २. किसी को कुछ भी कष्ट या पीड़ा न पहुँचाने वाला ।

अहि पुं० (स्त्री० अहिनी) १. सर्प । साँप ।

उ०—जो आँजै नभ-कुसुम-रस लखै सु अहि के कान ।
प० २१५/५६

२. साँपों के आठ कुल—तक्षक, महापद्म, शंक, कुलिक, कंबल, अवतार, धृतराष्ट्र, बलाहक ।
३. राहु । ४. वृत्रासुर । ५. ठग । वंचक ।
६. आश्लेपा नक्षत्र । ७. पृथ्वी । ८. सूर्य ।
९. पथिक । १०. बादल । ११. नाभि ।
१२. जल । १३. एक वर्ण-वृत्त जिसमें पहले छः भगण और तब एक मगण होता है ।

—इन्द्र पुं० साँपों का राजा । शेषनाग ।

—ईश पुं० शेषनाग ।

—छोना—छौना पुं० सर्प का बच्चा ।

उ०—बोने लगी विप सो अलक अहि छोने सी ।
भि० I, १३२/११७

—देव पुं० आश्लेपा नक्षत्र ।

—नाह—ना पुं० शेषनाग ।

उ०—लाख तिरासी सहस अठासी, छा सै आठ गनै अहिनाह ।
भि० I/६/२३६

—नि—नी नागिन । सर्पिणी ।

—प पुं० शेषनाग ।

उ०—गिरिस-अँग अहिप-अँग बसन बिधि धरनि को ।
भि० I, १७६/२०२

—पति पुं० १. वासुकि नाग । २. शेषनाग ।

—पुर पुं० नागलोक ।

—पूत यौ० पुं० साँप का बच्चा । संपोला ।

—फन (यौ) पुं० साँप का मुँह ।

—फेन (यौ) पुं० १. साँप के मुँह से निकलने वाली लार । २. अफ़ीम ।

—वर (यौ) पुं० १. सर्पों में श्रेष्ठ । शेषनाग ।
२. मात्रिक छन्द—दोहे का एक भेद-विशेष ।

—वरन (वि०) सर्प के रंग-सा। साँप-सा।
पुं० अभिमन्यु। अर्जुन तथा सुभद्रा का पुत्र।
—वल्ली—बल्लरी स्त्री० नागवेल। अहिलता। पानवेल।
—बासर पुं० नागपंचमी।
—बुंध्न पुं० १. शिव। २. एक रुद्र का नाम। ३. उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र जिसके देवता अहिर्बुधन हैं।
—भुक् पुं० १. गरुड़। २. मोर। ३. नेवला।
—भृत पुं० शिव।
—माली पुं० साँपों की माला पहनने वाले, शिव।
—राई पुं० सर्पराज।
उ०—गर्व-बचन कहि-कहि मुख भाषत, मोकों नहिं जानत अहिराइ। सूर० १०/५५५/३६०
—सायी पुं० शेषनाग पर शयन करने वाले, विष्णु।

अहिक[1] वि० कुछ दिनों तक स्थित रहने वाला।

अहिक[2] पुं० १. अंधा सर्प। २. ध्रुव तारा।

अहिछेत्र—अहिक्षेत्र पुं० १. दक्षिण पांचाल की राजधानी। २. प्राचीन पांचाल देश। अहिच्छत्र।

अहिजित् पुं० श्रीकृष्ण।

अहित (अ+हित) वि० १. हित न करने वाला। विरोधी २. हानिकारक। अनुपकारक।
पुं० बुराई। अकल्याण।
—कर वि० १. अहित करने वाला। २. हानि करने वाला।

अहिभूप पुं० पिंगलाचार्य।
उ०—उतर हेत यहि प्रस्न के, नष्ट रच्यो अहिभूप। भि० I, ६/७२

अहिम (अ+हिम) वि० जो बहुत ठंडा या शीतल न हो। गरम।
—अंशु पुं० सूर्य।
—कर पुं० सूर्य।
—रश्मि पुं० सूर्य।
—द्युति पुं० सूर्य।

अहिमात (अहि+मात) पुं० कुम्हार के चाक में वह गड्डा जिसमें कीली रहती है और जिसके सहारे वह घूमता है।

अहिर पुं० दे० 'अहीर'।
—इन स्त्री० अहीर की स्त्री।

अहिरख (अ+हिरख) पुं० १. हर्ष या प्रसन्नता का अभाव। २. खेद। दुःख।

अहिरावन पुं० कहा जाता है कि यह पाताल लोक का राजा था और रावण का पुत्र था।

अहिलता स्त्री० नागवेलि या पान।
उ०—अहि-लता-रँग मिट्यो अधरनि, लग्यो दीपक-जात। सूर० १०/२६७६/१८५

अहिवात पुं० सौभाग्य। सुहाग। सोहाग।
उ०—चेरि कों अहिवात दीजै, करै तुम्हरी सेव हो। सूर० १०/५७७/३६५
—ई वि० सुहागिन। सौभाग्यवती।

अहीठ (अ+हीठ) वि० १. दूर रहने वाला। २. अधकचरा।
उ०—जद्यपि वै उत कुसल समर बल, ये इत अबल अहीठ। सूर० १०/२३७२/१२५
पुं० अधीष्ट। साथी।
उ०—रहत हैं हरि संग निसि दिन, अतिहिं नवल अहीठ। सूर० १०/२२८७/१०८

अहीन (अ+हीन) वि० १. त्रुटिहीन। २. जो हीन या तुच्छ न हो।

अहिनगु पुं० एक सूर्यवंशी राजा जो देवानीक का पुत्र था।

अहीर—अहीरि पुं० [स्त्री० अहिरनि—अहीरनी] ग्वाला। गाय भैंस रखकर दूध-दही का रोजगार करने वाली जाति।
उ०—कढ़ि गो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं। प० ५०३/१८६
—ई वि० अहीर-संबंधी।

अहीस—अहीसुर (अधीश्वर) पुं० १. मालिक। स्वामी। पति। अध्यक्ष। २. अधिपति। भूपति। राजा।
उ०—ईसुर अहीसुर असुर पसु पच्छी कीटि, कोटिक कुटुंबनि में महिमा महानी की। दे० I, ६१/२४६

अहुँठ—अहुठ (अध्युष्ठ) वि० साढ़े तीन।
उ०—अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी। सूर० १०/१२५/२४६
—आ पुं० साढ़े तीन का पहाड़ा।

अहुट—अहुठ— अक० अलग या पृथक् होना। हटना।

अहुटा— सक० अलग करना। दूर करना। हटाना।

अहुत पुं० १. वह वेद-पाठ जिसमें आहुति नहीं दी जाती है। ब्रह्मयज्ञ। २. वेदाध्ययन। ३. स्तुति।
वि० १. जिसे आहुति न दी गई हो।

२. जिसे नैवेद्य न मिला हो।

अहुरि क्रि०वि० इधर। इस ओर।

उ०—जित तित तें सब अहुरि बहुरि जमुना तट आईं। नं० ३७/१३

अहूं अव्य० हाँ। आहाँ। स्वीकार है। स्वीकारात्मक शब्द।

अहू (फा० आहू) पुं० मृग। हिरन।

उ०—अहू हूरिनन में मिलत अद्ध द्धसत सु अद्ध। प० १२१/२६१

अहूख स्त्री० सन्तुष्टता। छकना। अघाना। तृप्ति।

उ०—पीवत हू पिय प्यास वुझै न अहूख मयूखन ऊखाहेरे। दे० I, २३४/८६

अहूट—अहूटा पुं० १. लकड़ी का कुंदा जिस पर चारा रखकर काटा जाता है। चारा काटने का ठीहा। २. ऊट-पटाँग बातें। ३. साँप का मंत्र या गीत।

अहे अव्य० हे। रे। अरे। सम्बोधनात्मक तथा विस्मयादि बोधक शब्द।

पुं० एक पेड़ तथा उसकी लकड़ी।

अहूल[1] (अ+हूल) पुं० पीड़ा का अभाव। हूल का अभाव आनन्द का न होना। प्रसन्नता का अभाव।

अहूल[2] पुं० दुःख। चिन्ता। पीड़ा। शूल।

अहेतु (अ+हेतु) वि० विना कारण का। अकारण।

उ०—जो अहेतु उत्कर्ष को ताहि बखानता हेत। म० २६४/३४६

अहैतुक वि० जिसमें या जिसका कोई हेतु या कारण न हो।

अहेर पुं० आखेट। मृगया। शिकार।

उ०—अस अहेर दिन खेलै सोई। जो देखै सो अचिरज होई। नं० ६६/१०५

—इया पुं० शिकारी। व्याध।

—ई पुं० शिकारी। आखेटक। व्याध।

उ०—रूप रिझौंने मुसकि चलति जब काम अहेरी के टटाबक टोने। नं० ५७/२६८

अहै क्रि० है।

उ०—जनु इह बलय नाड़िका लहै। जियति है किधौं मरि गई अहै। नं० पृ० १३१

अहो अव्य० विस्मय, हर्ष, खेद आदि सूचक एक अव्यय।

उ०—ताको विषम विषाद अहो मुनि मोपो सह्यौ न जाई। सूर० ६/७/१५५

—भाग पुं० अहोभाग्य। सौभाग्य। धन्यभाग।

अहोमनि पुं० सूर्य।

उ०—केतिक और अहो मनि होति, जहाँ छवि कोटि अहोमनि की हूत। दे० I, ६/२४८

अहोनस (अहन्+निशा) पुं० रात-दिन।

क्रि०वि० सदैव। हमेशा।

अहोभाग पुं० अहोभाग्य। सौभाग्य। धन्यभाग।

अहोरत्न (अहन्+रत्न) पुं० सूर्य।

अहोरात्र (अहन्+रात्रि) पुं० दिन और रात दोनों।

क्रि०वि० सदैव।

अहोरिन स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

आ[1] देवनागरी वर्णमाला का द्वितीय स्वर।

आ[2]— अक० १. आना।

उ०—उछट जात गैयां तुम जु आओ। च० १३८/८२

आउती ब०क्रि०। आई, आए भू०क्रि०।

२. घटित होना। ३. जानकारी होना। ४. अनुभूति होना। ५. किसी स्थिति या अवस्था में पहुँचना।

आँ अव्य० आश्चर्य सूचक अव्यय।

आँउड़— सक० उमड़ना।

उ०—भरे रुचिभार, सुकुमार सरसिज सार, सोभा रूप सागर अपार रस आंउड़े। दे० I, २५/५१

आँक—आँकु[1] पुं० १. अंक। चिह्न।

उ०—चारि को सो आँक लाँक। गं० ६३/३०

२. संख्या का सूचक शब्द।

उ०—कहत सबै, वेंदी दियें आंकु दसगुनो होतु। वि० ३२७/१३७

३. अक्षर।

उ०—रजनेरी सुभान सों आयो पढ़ै कहि दूसरो आंकु न आवतु हैं। बो० ५२/६

४. अंश। भाग। ५. गोद। क्रोड़।

६. रेखा। लकीर।

उ०—घन आनँद प्यारे सुजान सुनो यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं। घ० क० ८२/८६

७. मदार।

उ०—जागत सोवत............विनोद मोद, ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को। कवि० १२/६१

८. बार।

उ०—एकहु आंक न हरि भजे। सूर० १/३२५/६०

९. बैलगाड़ी की बल्लियों के नीचे का वह ढाँचा जिसमें पहिये की धुरी लगी रहती है।

१०. नौ मात्रा वाले छन्दों की संज्ञा।

—ऊ पुं० आँकने वाला।

आँक²— सक० १. आँकना। निश्चय करना।

उ०—अति प्रबीन वह सुंदरी, मोहन को हित आँकि। कृ० ११४/३०

२. मूल्य लगाना।

उ०—आक ही अनारन कों आंकिबो करति है। प० ६६४/२१८

आँकड़ा¹ (आँक+ड़ा) पुं० आँक। संख्या का चिह्न।

आँकड़ा² पुं० चौपायों की एक बीमारी।

आँकड़ा³ पुं० मदार। आक।

आँक-बाँक पुं० बेसिर-पैर की बात।

उ०—जैसें कछु आँक-बाँक बकत हैं आजु हरि। के० I, ४४/५३

आँकर¹ वि० गहरा।

आँकर² वि० महँगा।

आँकुस पुं० अंकुश।

उ०—आँकुस राखि कुंभ पर करष्यौ, हलधर उठे हँकारि। सूर० १०/३०५८/२६५

आँकौ पुं० अंक। गोद।

उ०—'सूरदास' प्रभु प्यारी आँकौं भरि जाइ लीजै। सूर० १०/२७६१/२०७

आँख—आँखि—आख स्त्री० नेत्र। नयन। चक्षु।

आँखा पुं० एक प्रकार की चलनी। खुरजी।

आँग—आँगु पं० १. अंग। शरीर। देह।

उ०—कुंदन के आँग माँग मोतिन सँवरि। म० २८०/३४६

२. स्तन। उरोज।

उ०—कहै पदमाकर क्यों आँग न समात आँगी। प० २६/८४

३. प्रति चौपाये के हिसाब से ली जाने वाली चराई।

आंगक वि० अंग देश से सम्बन्ध रखने वाला।

आँगन पुं० आँगन।

उ०—आजु दसरथ कैं आँगन भीर। सूर० ६/१६/१५८

आंगारिक वि० १. अंगार-संबंधी।

२. अंगारों पर पकने या बनने वाला।

आँगि—आँगी स्त्री० अंगिया। चोली।

उ०—क्यों न परै बीच-बीच आँगिहु न सहि सकै। के० I, १०/१८३

आंगिक वि० शारीरिक क्रियाओं, चेष्टाओं या संकेतों द्वारा अभिव्यक्त होने वाला।

आंगिरस पुं० १. अंगिरा ऋषि के तीन पुत्र—वृहस्पति, उतथ्य तथा संवर्त।

२. बृहस्पति।

उ०—धिषण, शिखंडी, आंगिरस, सुराचार्य, गुरु, जीव। नं० ५८/७२

आँगुर—आँगरी—अँगुरी—आँगुरिया—आँगुली स्त्री० उँगली।

उ०—चंचु चाँपत आँगुरी सुक ऐंचि लेत डेराइ। के० II, १३/३६७

उ०—मेरी गई मिलि आँगुरिया है। भि० I, १४६/१२१

आँघी स्त्री० मैदा आदि छानने की चलनी।

आँच—आँचो—आच (अर्चिस्) स्त्री० १. अग्नि। आग।

उ०—दिल्ली के दिनेस के प्रचंड तेज आँच लागे। म० ४१/३०५

२. गरमी। ताप। ३. आग की लपट।

आंचन पुं० १. हड्डी के टूटने अथवा किसी अंग में मोच पड़ने पर उसे जोड़ना या ठीक करना।

२. शरीर में धँसी हुई कोई चीज, विशेषतः काँटा, बाण आदि निकालना।

आँचर—आँचरु पुं० दे० 'आँचल'।

उ०—तैं सिर हाथ दियो उनिकैं उनि गाँठि कहा हँसि आँचरु दीनी। के० I, ११/८२

आँचल पुं० १. अंचल। साड़ी आदि का छोर। पल्ला।

२. साड़ी आदि का सामने रहने वाला छोर। अँचला। ३. स्तन।

आँज— सक० अंजन लगाना।

उ०—जो आँजै नभ-कुसम-रस लखै सु अहि के कान। प० २१५/५६

आँजत, आँजति व०कृ०। आँज्यो भू०कृ०।

आँजन पुं० दे० 'अंजन'।

उ०—कहि 'केसव' मेद जुबादि सों माँजि इते पर आँजे मैं आँजन दै। के० I, १७/१२०

आँजुरी स्त्री० अँजुरी। दोनों हाथों के पंजों से जुड़ा संपुट।

उ०—आपने हाथ सों भावती लै कर प्रीति सों आँजुरी जोरी गुपाल की। ठा० १८/६

आँट—आँटि¹ पुं० १. तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान। घाई। २. दाँव।

उ०—आँटि परि प्रासुन हरत काँटैं लौं लगि पाइ। बि० ३११/१३०

३. गाँठ। गिरह।

उ०—इन सों परी है आंट। गो० ३३/१६

४. ऐंठन।

आँट²— सक० १. अटकाना। लगाना।

उ०—छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ।
उ० ८५/८५

२. अंटी लगाना। अँटियाना।

३. अपने पक्ष में करना।

आँटी स्त्री० १. अंटी। लंबे तृणों का छोटा गट्ठा। पूला। २. लड़कों के खेलने की गुल्ली।
३. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की राँग में टाँग अड़ाते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं।
४. सूत का लच्छा।
५. धोती की गिरह। टेंट। गाँठ।

आँठी (अष्टि) स्त्री० १. दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का।
उ०—याही फेर माहि भए माठी दधि-आँठी तैं।
उ० १३३/१३३
२. गाँठ। गिरह। ३. गुठली। बीज।
४. नवोढ़ा के उठते हुए स्तन।

आँड़ पुं० अंडकोश।

आँड़ी स्त्री० १. अंटी। गाँठ। कंद।
२. कोल्हू की जाट का गोला, सिरा या मूँड़।
३. बैलगाड़ी के पहिए के छेद के चारों ओर जड़ी हुई लोहे की सामी। वंद।

आँड़ू वि० जिस (चौपाए) के अण्डकोश न कूचे गए हों। अण्डकोशयुक्त। जो बधिया न किया गया हो।

आँत स्त्री० प्राणियों के पेट के भीतर वह लंबी नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।
उ०—साँप को कंकन, माल कपाल जटान को जूट, रही जटि आँतैं।
के० I, २५/१५१

आँतर पुं० १. अन्तर। भिन्नता। खेत का उतना भाग जितना एक बार जोतने के लिए घेर लिया जाता है।
२. पान के भीटे के भीतर की क्यारियों के बीच का स्थान जो आने-जाने के लिए रहता है। पासा।
३. ताने में दोनों सिरों की खूँटियों के बीच की दो लकड़ियाँ जो थोड़ी-थोड़ी दूर पर साँथी अलग करने के लिए गाढ़ी जाती हैं। ४. भिन्नता। अन्तर।

आँदू (अन्दू) पुं० १. लोहे का कड़ा। बेड़ी।
२. हाथी के पाँव में बाँधने का सोंकड़। जंजीर। शृंखला।

उ०—पठयौ मनाइ नेह-आँदू उरझान्यौ है।
क० ६४/५०

आँध~आँधौ स्त्री० १. अंधेरा। धुंध। २. रतौंधी।
३. कष्ट।
वि० ४. अंधा। नेत्रहीन।
उ०—चारु मोहिनी आइ आँध कियो।
सूर० वि०/४३/१३

आँधर~आँधरा~आँधरौ वि० [स्त्री० आँधरि~आँधरी] अंधा।
उ०—गधा कों किताब कहाँ, आँधरे कों आरसी।
गं० २५/१४५

आँधी स्त्री० अंधड़। बवंडर।
उ०—आँधी की पुकार कोऊ नेक न सुनत कान।
गं० २८४/८६

आँनि पुं० आँसू।
उ०—उमहि उमहि आँनि आँखिनि वसत है।
घ० क० ४२२/२४१

आँब~आँबा पुं० आग।
उ०—श्रीफल आँव सुहाग के बाग में।
भू० ५७६/२४५

आँबरी स्त्री० आमड़ा। एक खट्टा फल।
उ०—आँव छाँड़ि आँबरी को काहे लागि छीयै कोऊ।
गं० २६२/७९

आँय~बाँय पुं० अंड-वंड। निरर्थक प्रलाप। बकवक।
उ०—आँय-बाँय सारे भै भागें। नं० पृ०/१६७

आँवड़ा वि० गहरा।
पुं० आमड़ा।

आँवरा~आँवला पुं० आँवला।
उ०—कहै पद्माकर अंगूर ऐसे आँवरे से।
प० ६२/३२०

आँवल पुं० वह झिल्ली जिससे गर्भ में बच्चे लिपटे रहते हैं, यह झिल्ली प्रायः बच्चा होने के बाद गिर जाती है। खेंड़ी। जेरी। जाम।

आँवा पुं० वह गड्ढा जिसमें कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं।

आँस[1] स्त्री० संवेदना। दर्द।
—ला~लो वि० जिसके हृदय में वेदना हो।
उ०—पटक्योई परै यह अंकुर आँसलो ऐसी कछू रस रीति घुरी। घ० क० १७९/१३८

आँस[2] पुं० अंश।
उ०—पै न रहै बिक्रम मिले दुख को आँस सरीर।
बो० २४/१३४

आँस[3] पुं० आँसू।

उ०—बहि बहि आँसनि सौं भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं। उ० २३/२३

—ला वि० जिसके आँखों में आँसू भरे हों।

आँस[४] स्त्री० १. सुतली। डोरी। २. रेशा।

आँसी स्त्री० १. भाजी। बैना। मिठाई जो इष्ट-मित्रों के यहाँ बाँटी जाती है।

उ०—काम कलोलनि में मतिराम लगैं मनो बाँटन मोद की आँसी। म० ३६३/२८३

२. अंश। भाग। हिस्सा।

उ०—नारि कुलीन कुलीननि लै रमैं मैं उनमैं चहौं एक न आँसी। भि० I, ३१६/१५६

आँसु—आँसू पुं० अश्रु।

उ०—भरि दृग आँसुन ही कह्यो रमे कहाँ तुम राति। प० ३०३/७०

आँहाँ अव्य० नहीं।

आइन पुं० १. स्थान। २. वर्ष। ३. ऐन। ४. रेखा। पंक्ति।

आइस—आइसु पुं० आज्ञा। आदेश। हुक्म।

स्त्री० आयु।

आई[१] स्त्री० १. आयु। जीवनावधि। २. मृत्यु। मौत।

आई[२] स्त्री० १. माता। माँ। २. पितामही। दादी।

आईना पुं० १. दर्पण। बट्टा। शीशा।

२. किवाड़ के पल्ले में का दिलहा।

आउ स्त्री० दे० 'आयु'।

उ०—काया किधौं लाज की कि लाज ही की आउ है। के० I, ८५/२१२

आउज—आउझ पुं० ताशा। एक प्रकार का बाजा।

उ०—पटह पखाउज आउझ सोहैं। के० II, ७/२७१

आक पुं० अकौआ। मदार का पौधा।

उ०—उड़ियैं उड़ी फिरति नैननि सँग, फर फूटैं ज्यों आक रुई॥ सूर० १०/१८५५/२५

—ज पुं० १. अर्कज। २. मदार।

उ०—आरिन में अरुआ अटारिन में आकज औ आँगन अदूसन में बाघ बिलसत है। भू० ४६४/२२६

—पर्न (आक+पर्ण) पुं० मदार के पत्ती।

उ०—उरग वनमूपनो, बदन आक-पर्नै भरे। भि० I, ६६/२५७

आकर पुं० १. आकर। खान। खदान। २. घर।

उ०—रागनि के आकर, विराग के विभागकर। के० I, ६२/२०८

वि० १. दक्ष। निपुण। चतुर। होशियार।

उ०—चौहान चौदह आकरे धंधेर धीरज-धाकरे। प० २७/७

२. श्रेष्ठ। ३. यथेष्ट।

आकरन— सक० सुनना।

उ०—मुरली कल गान, ब्रज जुवति मन आकरन संग बहुत सुभग जमुना-तीरे। च० १/१

आकरन्यौ, आकर्नौ भू०कृ०।

आकरस— (आ+कर्ष—) सक० दे० 'आकर्ष २'।

उ०—जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम-सुधा-रस। नं० १/२०

आकरसत व०कृ०।

आकर्ष[१] (आ+कृष्) पुं० १. खिंचाव। २. पासे का खेल चौपड़। ३. कसौटी। ४. चुम्बक। पत्थर।

—इत वि० खिंचाव। खिंची।

उ०—आकर्षित तन-मन जुवतिनि के गति बिपरीत करी। सूर० १०/१२२७/५५०

—क वि० १. आकर्षित करने वाला। २. सुन्दर।

—न पुं० आकर्षण। खिंचाव।

उ०—आकर्षनादि उचाट मारन वसीकर्न उपाम। के० III, २७/६८०

आकर्ष[२]— सक० आकर्षित करना।

उ०—आकरषि लीन्ह्यो है सोहाग सब सौतिन को। भि० I, ३३/९५

आकर्षत व०कृ०।

आकर्षे, आकरषै, आकर्ष्यो भू०कृ०।

आकलन पुं० १. ग्रहण। लेना। २. इच्छा। कामना। ३. संग्रह। संचय। ४. गिनती। गणना। ५. अनुसन्धान। जाँच। ६. अनुष्ठान।

आकला (आकुल+आ) वि० १. हड़बड़िया। उतावला। २. उच्छृंखल।

आकली[१] (आकुल+ई) स्त्री० १. बेचैनी। विकलता। व्याकुलता।

आकली[२] स्त्री० गौरैया पक्षी।

आकल्प (आ+कल्प) वि० कल्पपर्यन्त।

पुं० १. वेश-भूषा। २. अस्वस्थता।

आकसपेचा पुं० फूल-विशेष। आकाशपेच।

उ०—आकसपेचा माल गुहि पहराई मो ग्रीव। म० १६/४३०

आकार पुं० १. रूप। आकृति।

उ०—इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात। के० I, ४५/१६८

२. डीलडौल। ३. बनावट। ४. चिन्ह। ५. बुलावा। ६. 'आ' वर्ण।

आकारादि वि० वह शब्द जिसका आदि अक्षर 'आ' हो।

आकारान्त वि० जिसके अन्त में 'आ' हो।

आकाश—आकास पुं० आसमान। अन्तरिक्ष। गगन। पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व।

उ०—देवैं दिया आकास कों गृह बारि दीपक पूरि। बो० ११/२११

—**ईय** वि० १. आकाश सम्बन्धी। २. आकाश में रहने वाला।

—**कुसुम** पुं० १. आकाश का फूल। २. अनहोनी बात।

—**गंगा** स्त्री० १. आकाश में उत्तर से दक्षिण को तारागणों का विस्तृत समूह। २. पुराणों के अनुसार आकाल में रहने वाली नदी। मंदाकिनी।

—**गामी** वि० आकाश में गमन करने या विचरने वाला।

पुं० १. पक्षी। २. देवता। ३. वायु। ४. ग्रह। ५. नक्षत्र।

—**चारी** वि० आकाशगामी।

—**जल** पुं० १. वर्षा का पानी। २. ओस।

—**दीप** पुं० कार्तिक मास में बाँस के ऊपर की ओर टँगी कंडील में रखकर जलाया जाने वाला दीपक।

—**नदी** स्त्री० आकाशगंगा।

—**वल्ली** स्त्री० अमर बेल।

—**बानी** स्त्री० वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता बोलें।

उ०—तब आकाशबानी भई तिनकों 'केसौदासु'। के० III, २५/६२०

—**वृत्ति** स्त्री० अनिश्चित या अनियमित जीविका।

आकाशी—आकासी स्त्री० धूप आदि से बचने के लिए ताना जाने वाला चँदोवा।

वि० आकाशीय।

आकिल वि० अक्ल। बुद्धि।

उ०—ऊधोजू यामैं कहू सक ना हम आकिल ही तैं खुदा पहिचाने। बो० ८५/१५

आकिलखानी वि० गहरा कत्थई (रंग)।

आकिंचन पुं० दे० 'अकिंचन'।

आकीर्ण—आकीर्न वि० १. छितराया हुआ। बिखेरा हुआ। २. भरा हुआ। व्याप्त। पूर्ण।

आकुंचन पुं० १. विस्तार में कमी होना। सिकुड़ना। सिमटना। २. वैशेषिक मत के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में से एक कर्म। [पाँच कर्म ये हैं—१. उत्क्षेपण, २. अपक्षेपण, ३. आकुंचन, ४. प्रसारण, ५. गमन]।

आकुल[1] वि० १. घबराया हुआ। व्यग्र। उद्विग्न।

उ०—अलक आकुल बिधुर स्याम मुख पर रहीं। सूर० १०/२०३३/५८

२, विह्वल। कातर। ३. व्याप्त। संकुल।

—**ता** स्त्री० विकलता। व्यग्रता। घबराहट।

उ०—अति आकुलता भई अधीर। सूर० १०/१२६३/५६४

आकुल[2] पुं० १. खच्चर। २. बस्ती।

आकुसी—आँकुसी स्त्री० अंकुश। हाथी को काबू में रखने का लोहे का एक टेढ़ा औजार।

वि० अंकुश जैसा।

आकूत पुं० १. इच्छा। २. उद्देश्य। ३. प्रयोजन। ४. उत्तेजना। बढ़ावा। ५. उत्साह। चेष्टा।

उ०—जानि पराये चित्त की ईहा जो आकूत। म० ३५४/३५७

आकूति—आकूती[1] स्त्री० १. इच्छा। २. उद्देश्य। ३. प्रयोजन। ४. उत्साह। ५. सदाचार।

आकूती[2] स्त्री० स्वायंभुव मनु की एक कन्या जो रुचि नामक प्रजापति को ब्याही गई थी।

उ०—आकूती, देवहुती और परसूती चतुर सुजान। सा० ४७/५

आकृत स्त्री० दे० 'आकृति'।

उ०—नख नेजा आकृत उर लागैं। सूर० १०/१६८६/५०

आकृति स्त्री० १. स्वरूप। बनावट।

उ०—और हेतु बचननि जहाँ आकृति गोपन होय। म० ३५८/३५८

२. मूर्ति। रूप। ३. मुख। चेहरा। ४. मुख का भाव। ५. सवैया नामक छंद का एक प्रकार।

—**गोपिता** वि० प्रेम के भाव को छिपाने वाली।

उ०—बुध जन आकृति-गोपिता, और सादरा बिसेख। र० ३४/३४५

आकृष्ट वि० आकर्षित।

आकेकर—आकेकरा वि० अर्धोन्मीलित।

आकोभर (अंक+भर) वि० भरी हुई गोद वाला।

आक्रम पुं० १. किसी की ओर जाना या पहुँचना।

२. ऊपर की ओर जाना। ३. धावा बोलना। ४. अधिक भार लादना। ५. पराक्रम। वीरता।

आक्रमण पुं० १. हमला। चढ़ाई। धावा। २. घेरना। ३. निन्दात्मक आक्षेप।

आक्षेप पुं० १. दूर हटाना या फेंकना।
२. किसी के ऊपर कुछ गिरना या गिराना।
३. व्यंग्यपूर्ण दोषारोपण।
४. साहित्य में एक अर्थालंकार।
उ०—सु आक्षेप जहँ विधि प्रगट दुर्यो निषेध बखान। प० १३४/४६
५. एक वात रोग जिसमें हाथ-पैर रह-रह कर ऐंठते और काँपते हैं।

आक्षोट पुं० दे० 'अखरोट'।

आखंड—आखंडल पुं० इन्द्र।
उ०—भुवखंड आखंडल पाखंड प्रचंडनि पै, चंडकर मंडल ज्यों, कोदंड तनाये हैं। दे० I, ६२/५८
उ०—झलक्यो सो आय आखंड मेह। बो० ६/८१

आखत (अ+क्षत) पुं० १. अक्षत। बिना टूटे चावल जो कि पूजा में काम आते हैं।
उ०—भाल लाल बेंदी, ललन आखत रहे बिराजि। बि० ६६०/२८५
२. वह अनाज जो किसी नेगी को कोई वाइने की वस्तु लाने पर नेग के रूप में दिया जाता है।

आखता वि० जिसका अंडकोश निकाल दिया गया हो। वधिया किया हुआ। पुंस्त्वहीन।

आखन (आ+क्षण) अव्य० प्रतिक्षण। हर समय।

आखर[1] पुं० १. अक्षर। वर्ण।
उ०—प्रति आखर सबकों सुखद। शृं० ६४/१५६
२. शब्द। ३. वचन।

आखर[2] पुं० कुदाली।

आखर[3] पुं० अस्तवल।

आखा—आखौ वि० १. अक्षय। २. समूचा। सम्पूर्ण।
उ०—लाँबी मेलि दई है तुमकौं, बकत रहौ दिन आखौ। सूर० १०/३५४०/३८०
—तीज स्त्री० अक्षय तृतीया।

आखात पुं० १. जमीन आदि खोदना। खनन।
२. जमीन खोदने का कोई औजार।
३. समुद्र की खाड़ी।

आखिर वि० अंतिम।
पुं० १. अंत। २. नतीजा। परिणाम। फल।
अव्य० अन्त में। अन्ततोगत्वा।
उ०—'सूरदास' प्रभु इन्हैं पत्याने, आखिर बड़े निकामी। सूर० १०/२२५२/१०१

आखिल वि० दे० 'अखिल'।
उ०—नृपति भूपति आखिल ब्रह्मांड के दीन होइ सरन आइ चरन दासी। गो० ६१/४६

आखु पुं० १. चूहा।
उ०—अभिलाष लाख लाहन समुझि राखु आखु-वाहन हृदय। भि० I, ३१३/६
२. जंगली चूहा। ३. चोर। ४. सूअर।
५. देवदार वृक्ष।
वि० १. खोदने वाला। २. कृपण। कंजूस।
—वाहन पुं० गणेश।
—रथ पुं० गणेश।

आखेट पुं० आखेट। मृगया। शिकार।
उ०—ह्वै महीपाल को मोर आखेट में साँझहूँ भोर। भि० I, ११/२७४
—क वि० शिकारी।

आखोट पुं० १. अखरोट का वृक्ष। २. अखरोट।

आखोर पुं० १. वह चारा जो जानवर के खा चुकने के बाद बच रहता है। २. कूड़ा-करकट।
वि० १. गला-सड़ा। २. निकम्मा, रद्दी।
३. गंदा।

आख्या स्त्री० १. नाम। संज्ञा। २. कीर्ति। यश।

आख्यान पुं० १. वर्णन। वृत्तांत। २. कथा। कहानी।
—क पुं० १. वर्णन। वृतांत। २. कथा। किस्सा।
३. पूर्व वृत्तांत। कथानक।

आख्यायिका स्त्री० १. उपकथा।
२. शिक्षाप्रद कल्पित लघु कथा।

आगंतुक पुं० आने वाला। अजनबी। अतिथि।

आग—आगि—आगिनी स्त्री० १. अग्नि। आँच।
उ०—गाज सो गुलाब लग्यो अरगजा आग सो। प० १८७/१२०
२. गरमी। ताप।

आगत (आ+गत) पुं० अतिथि। मेहमान।
—स्वागत पुं० घर आये हुए अतिथि का किया जाने वाला आदर-स्वागत या आवभगत।
उ०—मेरी कही साँच तुम जानौ, कीजौ, आगत स्वागत। सूर० १०/१६०५/३४

आगतपति—आगतपतिका स्त्री० साहित्य में वह नायिका जिसका पति परदेश से लौट आया हो।

उ०—कही प्रवच्छतिप्रेयसी आगतपतिका वाम ।
म० ११०/२२४

आगम पुं० १. आगमन ।
उ०—सावन-आगम हेरि सखी ।
घ० क० १११/११३
२. आविर्भाव या उत्पत्ति । ३. मिलन । समागम । ३. आने वाला समय । भविष्य ।
उ०—उरज उलाकिन ह्वँ आगम जनायो आनि ।
भि० I, २८/६
४. आगम शास्त्र ।
उ०—आगम निगम नित्त बिबेक । चित्त धरि तजत नाहीं टेक । बो० २१/१३४
५. आमदनी, आय । ६. धार्मिक आचार-व्यवहार में माने जाने वाले शब्द-प्रमाण । ७. व्याकरण में कोई ऐसा अक्षर या वर्ण जो शब्द का कोई विशिष्ट रूप बनाने के लिये ऊपर या बाहर से आया हो अथवा लाया जाय । ८. आशा ।
उ०—बहुरि मिलन, कौ आगम कीन्हौं ।
सूर० ६/८२/१७७
वि० भावी । आगे चलकर आने या होने वाला ।
—ई पुं० ज्योतिषी । भविष्यवक्ता ।
वि० भावी ।

आगमन पुं० १. अवाई । कहीं से चलकर आना ।
उ०—'सूर' अरुन-आगमन देखि कै प्रफुलित भए हुलास । सूर० १०/१८०८/१३
२. प्राप्ति । लाभ ।

आग़र[1] पुं० (स्त्री०— आगरी) १. खान । भण्डार । २. कोष । खज़ाना । ४. रहने की जगह ।
उ०—जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर हौ ।
घ० क० १७८/१८०
वि० १. उत्तम । श्रेष्ठ । सम्पन्न ।
२. कुशल । दक्ष । चतुर ।
उ०—जर बलै चलै रती आगरी अनूप बानी ।
क० १४/५
—ई पुं० १. खान में काम करने वाला मजदूर । २. वह जो नमक बनाने का काम करता हो । नोनिया । लोनिया ।
स्त्री० १. खान । आकर । २. खज़ाना ।
उ०—रूप गुनन मैं आगरी नगर नागरी ल्याइ ।
र० ५५३/१०७
वि० युक्त । पूर्ण ।
उ०—अति विचित्र मति आगरी, गुन सरूप की धाम । कृ० १४/६

आगर[2] अव्य० १. बहुत । अधिक । २. आगे । सामने ।

आगरह पुं० दे० 'आग्रह' ।

आगल[1]—**आगला** (अग्र) वि० (स्त्री०—आगली)
१. सबसे आगे जाने वाला ।
२. बढ़ा-चढ़ा ।
अव्य० आगे । सामने ।

आगल[2] पुं० अर्गल ।

आगस (आगस्) पुं० अपराध । पाप । दोष ।
उ०—अघ, आगस, हेलन, अहित, अवगुन जो हैं पीय । नं० १६२/८२

आगा पुं० १. अग्र भाग । २. भविष्य में होने वाला कार्य । ३. अगवानी करना ।
—ई स्त्री० १. अगाड़ी । २. भविष्य ।
—पीछा पुं० १. सोच-विचार । दुविधा ।
२. परिणाम ।
३. आगे और पीछे की दशा ।

आगान पुं० १. गाकर कही जाने वाली बात ।
२. वृत्तान्त । हाल ।

आगामी वि० (स्त्री०—आगामिनी)
१. आने या पहुँचने वाला ।
उ०—आगामिनी जामिनी ऐहै । नं० पृ० २५६
२. भविष्य में होने वाला ।

आगार—**आगारु** पुं० १. रहने का स्थान । घर । मकान ।
उ०—कहन विथा जिय की लली चली अली आगार । भि० ८६/१५
२. भवन । मन्दिर । ३. कोश । खज़ाना ।

आगारिक पुं० चोर ।
उ०—आगारिक, तस्कर, प्रणधि, स्तेन, निसाचर चोर । नं० ४१/६८

आगारू (अग्र) पुं० आगे का भाग ।

आगिल—**आगिला**—**आगिलौं** (अग्र) वि० १. आगे का । अगला । २. भविष्य में होने वाला । भावी । ३. आगे या सामने वाला ।
उ०—काढ़ेई जीभ उड़े फिरो काग लौं, आगिलौं जाने, मनावत रूठे । दे० I, ८५२/१६०

आगुण (अव+गुण) पुं० अवगुण । दोष ।

आगे—**आगें**—**आगैं**—**आगौ** अव्य० १. सम्मुख । समक्ष । सामने ।
उ०—जतन बुझै हैं सब जांकी झर आगें, अब ।
घ० क० १८/४८
२. उपरांत या बाद में । ३. भविष्य में ।
४. पहले । पूर्व में ।

उ०—आगै चलि ब्रज युवती सेवति आनि परी तहँ।
नं० ७३/३५

५. बढ़कर। ज्यादा।

उ०—जीव की बात जनाइयै क्यों करि जान कहाय अजाननि आगो। घ० क० ९८/९४

आगेर पुं० १. आगार। घर।
२. समूह।

आगोनी—आग्योनी—अगवानी स्त्री० १. आगमन।
२. वधू के द्वार पर वर और बारात का स्वागत।
३. स्वागत।
वि० आगे आने वाली। भविष्य में आने वाली।

उ०—टेरत स्याम भुजा ऊंची करि गई सुवास आग्योनी। कुं० १७४/९८

आग्या स्त्री० दे० 'आज्ञा'।

आघ—आघु (अर्घ) पुं० १. मूल्य। क़ीमत।
२. आदर। सम्मान।

उ०—जनमु जलधि, पानिपु बिमलु, भौ जग आघु अपारु। वि० ३७६/१५५

आघात (आ+घात) पुं० १. ठोकर या धक्का।
२. प्रहार। आक्रमण। ३. ध्वनि। गूँज।

उ०—गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनी पावक झार। सूर० ९/१२४/१९१

४. चोट। घाव।

आघार पुं० १. धूम। २. हवन, यज्ञ आदि के सामने घी से दी जाने वाली आहुति।
३. छिड़काव।

आघूर्णित—आघूर्नित (आ+घूर्णित) वि० चकराया हुआ। भटकता हुआ।

आघोषन (आ+घोषणा) पुं० घोषणा।

आघ्रान (आ+घ्राण) पुं० सुगन्ध।

उ०—हृदे लगाइ आघ्रान लेत हैं खेलत हँसत प्रमोद। गो० ५३९/२०२

आचमन—आचवन पुं० १. मंत्र पढ़ते हुये जल पीना।

उ०—करि आचवन परम सुचि भए।
के० III, ३०/५००

२. भोग के पश्चात् ठाकुरजी को कुल्ला कराना।

—ई स्त्री० बहुत छोटा चम्मच जिससे आचमन करते तथा चरणामृत देते हैं।

आचमित वि० आचमन किया हुआ।

आचर— अक० आचरण करना।

उ०—खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो।
कवि० ४०/१००

आचरत वर्त० कृ०। आचर्यौ भू० कृ०।

—न पुं० १. अनुष्ठान।
२. आचरण। व्यवहार। लौकिक कर्म।

उ०—जा धर्महि आचरन समल मन निर्मल होई।
नं० ५४/३४

आचरज पुं० दे० 'अचरज'।

उ०—यह न आचरज है कछू रसना तेरो नाम।
प० २०२/५७

आचर्य वि० आचरणीय। करणीय।

आचान—आचानक क्रि०वि० दे० 'अचानक'।

आचार पुं० १. आचरण।

उ०—जहाँ न सत संतोष, तहाँ आचार रहै किमि।
गं० ३९८/१२२

२. लोकाचार। चलन। ३. प्रथा या परिपाटी। ४. चरित्र। ५. स्वभाव। ६. छुआछाई का तथा स्वच्छता का ध्यान रखना।

—ई वि० सद् आचरण करने वाला। शुद्ध आचार-विचार वाला। चरित्रवान्।

आचारज पुं० आचार्य। वेदाध्यापक।

उ०—गर्ग आचारज पांव धारे लिखि जनम की पाति। गो० १२/६

वि० पूज्य। श्रेष्ठ।

आचारी पुं० रामानुज सम्प्रदाय का वैष्णव आचार्य।

आचिंत्य—आचिन्त्य (आ+चिन्त्य) वि० अच्छी तरह चिंतन करने योग्य।

आचोट स्त्री० १. आघात। २. क्षत-विक्षत। घाव।
३. बिना जोती भूमि।

आच्छन्न वि० छिपा हुआ। ढका हुआ।

आच्छादित (आच्छाद+इत) वि० ढका हुआ। आवृत।

उ०—निसि सम गगन भयौ आच्छादित, बरषि-बरषि झर इंद। सूर० १०/८७७/४४९

आच्छेप—आछेप पुं० दे० 'आक्षेप'।

उ०—तहँ औरो आछेप को कबिजन करत प्रकास।
म० १८९/३३१

आछ— अक० १. उपस्थित या विद्यमान होना।
२. होना।

—त क्रि०वि० रहते हुए। मौजूदगी में।

आछा—आछो—आछ्यो वि० (स्त्री०—आछी)
१. अच्छा। भला। उत्तम।

उ०—आछे अलि अछर, जे कारज के मित्त हैं।
क० ३/५४

२. सुन्दर। मनोहर।
उ०—जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो।
घ० क० १७०/१३३
अव्य० कुशलपूर्वक।
उ०—आछैं रहौ राजराज राजन के महाराज।
प० ५/८०

आछे—आछैं क्रि०वि० भली भाँति। अच्छी तरह।
उ०—पाछेई परोगे तो तरोगे यार आछेई।
प० ३६/२४५

आज—आजु अव्य० १. आज। २. इन दिनों।
उ०—आगें अछूती गई सु गई घनआनँद आज भई मनमानी। घ० क० ४०३/२३६

—कल—कालिह अव्य० १. इन दिनों।
उ०—तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए आज कालिह के दान।
वि० ६८/३४
२. एक-दो दिन में। ३. वर्तमान समय में।

आजगव पुं० शिव का धनुष।

आजन पुं० अंजन। काजल। सुरमा।
उ०—यह नृप नीति रहौ कौनँहु जुग, नेह होत जस आजन। सूर० १०/३७७१/४४५

आजन्म—आजनम (आ+जन्म) अव्य० १. जन्म से।
२. जीवन भर।
उ०—जे जोग-जुत आजनम तें नहिं कबहुँ ल्यावत खेदही। प० १०५/१५

आजर पुं० अजिर। आँगन।

आजा पुं० (स्त्री० आजी) दादा। पितामह।

आजातरिपु (अजात+रिपु) वि० जिसका कोई शत्रु न हो। शत्रुविहीन।
उ०—धर्मराज, आजातरिपु, कौनतेय, कुरुराय।
नं० ८६/७५

आजानु (आ+जानु) वि० घुटनों तक लंबा या लटकता हुआ।

—बाहु (वि०) जिसकी बाँहें घुटने तक पहुँचती हों।
उ०—गूढ़ जान, आजानुबाहु मद-गज-गति लोलैं।
नं० १२/२

आजार (फा०) पुं० बीमारी। रोग।

आजि स्त्री० १. लड़ाई। युद्ध। संग्राम।
२. समतल भूमि। ३. आक्षेप।

आजीव (आ+जीव) पुं० जीविका। रोजी। वृत्ति।

—इका स्त्री० दे० 'आजीव'।
उ०—बिना आजीविका मरत सारी।
सूर० ४/११/१२०

आजीवन (आ+जीवन) अव्य० जीवन भर।

आजीवी वि० उपजीवी। उपजीवक।

आजुगत (अ+युक्त) वि० १. अयुक्त। असम्भव।
२. आश्चर्यजनक।

आजू पुं० बेगार (का काम)।
वि० बेगार का काम करने वाला।

आज्ञा स्त्री० १. आदेश। निर्देश।
उ०—सत संकल्प बेद की आज्ञा, जन के काज प्रभु दूरि धरी। सूर० १/२६८/७१
२. स्वीकृति। अनुमति।

—कारी वि० आज्ञा मानने वाला।
उ०—पतिव्रता ता नृप की नारी। अह निसि नृप की आज्ञाकारी। सूर० ६/५/१५३

आट— सक० ढकना। दबाना।
आटियत वर्त० कृ०।
आटी, आट्यो भूत० कृ०।

आटा—आटो पुं० आटा। पिसा हुआ अन्न।

आटी स्त्री० अवरोध। रुकावट। डाट।

आटोप पुं० १. ऊपर से ढकने वाली चीज। आच्छादन।
२. आडम्बर। ढोंग।
३. पेट में होने वाली गड़गड़ाहट।

आठ—आठौ सं० आठ।
उ०—मनौ बेग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखैं। सूर० वि०/६०/१७

—गाँठ वि० १. आठ पोर वाली (छड़ी)।
२. सर्वांग रूप से पुष्ट।
उ०—स्यामा सुगति सुबंस की आठौ गाँठि अनूप।
भि० I, १७६/२७

—जाम पुं० दिन-रात। चौबीसों घंटे।
उ०—आठौ जाम, अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।
वि० ४४५/१८३

आठ काठ पुं० दे० 'काठ'।

आठैं—आठैं स्त्री० अष्टमी तिथि।
उ०—भादों कृष्ण पक्ष आठैं निशा रोहिणी नछत्र बुधवार। कुं० ३/२

आठ्यौ—आठएँ वि० आठवाँ।
उ०—दोहा दुहूँ उदाहरन, आठौ आठ्यौ पाइ।
के० I, ३१/१०५
उ०—त्यों पदमाकर मोहन मीत के पाए सँदेस न आठएँ पाखैं। प० १५६/११२

आडंबर—आडम्बर पुं० दिखाना। ढोंग।
उ०—काहे कों बघंबर कों ओढ़ि करौ आडंबर।
भि० II, ३२/२४४

—ई वि० १. आडम्बर से युक्त।
२. आडम्बर रचने वाला।

आड़¹—आड़ि स्त्री० १. ओट। २. पर्दा।
३. रक्षा का स्थान।
उ०—बड़ी पड़ सरंझरी लखि सोय। भयो रन तो कहँ आड़ न कोय। बो० ११/१६०
४. बाधा। रोक। ५. टेक। थूनी।
उ०—आड़ न मानति चाड़ भरी उघरी ही रहै अति लाग लपेटी। घ० क० ४३३/२४७
मु० आड़े आना : बाधक होना, बचाना।

आड़²—आड़ि स्त्री० १. आड़ा तिलक।
उ०—बारने सकल एक रोरी ही की आड़ पर। म० ३५७/२८२
२. टीका।
उ०—निरवारै बारन बिसार पुनि हार हू कौं आड़ हू भुलावै नख सिख भरी नीर की। क० ७०/२२

आड़— सक० १. बीच में आड़ या रोक खड़ी करना।
२. बीच में आकर रुकावट डालना या बाधक होना। रोकना।
उ०—तन ओट के नाते जु कबहूँ ढाल हम आड़ी नहीं। प० ६४/१४
३. कोई चीज गिरवी रखना।
सक० स्त्रियों का शोभा के लिये अपने मुख पर विशेष ढंग से बिंदियाँ लगाना। आड़ चितरना।
आड़त वर्त०कृ०। आड़ी, आड्यो भूत०कृ०।

आड़न स्त्री० ढाल, जो तलवार का वार रोकती है।

आड़बन्द (आड़+बन्द) पुं० १. वस्त्र विशेष-ग्रीष्मकाल में ठाकुर जी को शयन तथा मंगला के समय धारण कराया जाता है।
उ०—कटि पर आड़बंद हू चंदनी, सीस पर पगा छियें। कुं० ३६४/११६
२. फकीरों, पहलवानों आदि के पहनने का एक प्रकार का लँगोट।

आड़ा वि० टेढ़ा। तिरछा। बाँका।

आड़ि पुं० अड़। हठ। जिद।
—ली वि० अड़ने वाली। हठ करने वाली।
उ०—देव ब्रज भूषन सजत बहू भूषन, तजत प्यास भूषन, अनोखी डर आड़िली। दे० I, ६२३/१५२

आड़ी स्त्री० तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढंग जिसमें किसी ताल के पूरे समय के तीसरे, छठे या बारहवें भाग में ही पूरा ताल बजा लिया जाता है।
उ०—ब्रजजन भवन भवन प्रति ठाढ़ी। देखन कों मेरी आड़ी। गो० १७१/८८

आड़ू पुं० एक खट्टा-मिट्ठा फल और उसका पेड़।

आढ़¹ दे० 'आड़'।

आढ़²—आढ़क पुं० दे० 'आढ़क'।
—क पुं० १. चार सेर की एक तौल।
२. उक्त तौल नापने का पात्र।

आढ़³ स्त्री० अरहर।

आढ़त स्त्री० किसी व्यवसायी के माल को कमीशन लेकर बेचने या खरीदने की रीति।
—इया पुं० आढ़त का काम करने वाला।

आढ़ी वि० आगे। सामने।
उ०—सूर स्याम प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब न चलत डग आढ़ी। सूर० १०/११०३/५०७

आढ्य वि० १. धनी। सम्पन्न। २. अन्वित।
उ०—हुतो आढ्य तब कियौ असद्व्यय। सूर० वि०/२१६/५६

आतंक पुं० १. भय। दहशत। २. रोब। दबदबा।
उ०—साध्वस, डर, आतंक, भय, भीति, भीर, भी, त्रास। नं० ७५/७४

आतत वि० १. विस्तारित। २. आरोपित।

आतताई—आततायी पुं० १. आग लगाने वाला।
२. निदारुण अपराध करने वाला। अत्याचारी।
उ०—आयौ आतताई पुटपाक सौं करत है। क० १५/५८
३. ज़हर देने वाला। धन, धरती, स्त्री का हरण करने वाला।
—पन पुं० आततायी लेने का भाव।

आतन पुं० यातना। पीड़ा। कष्ट।

आतप (आ+तप) पुं० १. सूर्य का प्रकाश। धूप। घाम।
२. गरमी। ताप।
उ०—घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले। घ० क० १३३/११२
३. ज्वर। बुखार। ४. कामाग्नि। ५. रोष। क्रोध।
वि० १. दुःख या पीड़ा देने वाला।
२. तपी हुई। गर्म।
उ०—सीतल सुमनमई भई आतप अवनि कठोर। भि० I, ५०७/७४
—ई पं० सूर्य।

—तान—तानि पुं॰ आतपत्र। छाता, छत्र।
—त्र पुं॰ छाता।
उ॰—चकरी, चक्र, अलात अरु आतपत्र, खरसान।
के॰ I, ६/११८
—रोस पुं॰ धूप का प्रवल ताप।
उ॰—लग्यो सुमनु ह्वै है सुफलु, आतप-रोसु निवारि। वि॰ १६/१३
आतफल पुं॰ शरीफा।
उ॰—ऊपर रूखो आतफल, अंतर अति रसु राखि।
दे॰ I, ३७/३०२
आतम—आतमा—आत्मा पुं॰ १. आत्मा। २. ब्रह्म। ३. जीव।
पुं॰ आत्मसम्बन्धी क्लेश।
उ॰—द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं आतम-कलेस है कि जंत्र सुख घात को।
घ॰ क॰ ३०३/१६६
—क वि॰ आत्मा वाला, तद्रूप।
उ॰—प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि।
भि॰ I, १/३
—गामी वि॰ आत्मा को जानने वाला। आत्म-दर्शी।
उ॰—ज्ञान आतमानिष्ट गुनत यों आतमगामी।
नं॰ ३६/३३
—घात पुं॰ १. आत्म-हत्या।
२. स्वयं कोई ऐसा कार्य करना, जिससे अपनी ही बहुत अधिक हानि हो।
—ज वि॰ अपने से या अपने द्वारा उत्पन्न।
पुं॰ १. पुत्र। बेटा। २. कामदेव।
३. खून। रक्त।
—ज्ञान पुं॰ १. अपने संबंध में अथवा आत्मा के संबंध में होने वाला ज्ञान।
२. जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान।
उ॰—आतम ज्ञान देहु समुझाइ। जातैं जनम मरन दुख जाइ। सूर॰ ३/१३/१०६
—ज्ञानी वि॰ वह व्यक्ति जिसे आत्म-ज्ञान हुआ हो। आत्मा का स्वरूप जानने वाला।
—तुष्टि स्त्री॰ अपने मन को होने वाली तुष्टि और प्रसन्नता।
उ॰—आतमतुष्टि बखानहीं सब्दहि में उर धार।
प॰ ३१८/७२
—धर्म पं॰ अपना धर्म।
उ॰—पहिले आतमधर्म तें त्रिविधि नायिका जानि।
भि॰ I, २७/६४
—निष्ठ वि॰ आत्मनिष्ठ। आत्म-विश्वासी।

—वंचक वि॰ १. अपने आप को धोखा देने वाला। २. पापी। ३. कृपण।
—बुद्धि स्त्री॰ अपनत्व की बुद्धि। ममत्वबुद्धि।
उ॰—धनि हैं जन ते निज नेह में देह में आतम-बुद्धि न चीतत हैं। प॰ ६१/३२८
—भू॰ पुं॰ दे॰ 'आतमभू'।
—भूत पुं॰ कामदेव। मन्मथ। मनोज।
उ॰—बहु भाँतिन हारे सिखाइ सबै सखि आतम-भूव के दूत घने। शृं॰ १२५/३५२
—हत्या स्त्री॰ आत्मघात। खुदकुशी।
—हन वि॰ आत्मघाती।
—हानि स्त्री॰ अपनी हानि। अपना नुकसान।
—आनंद पुं॰ परमानन्द। परमात्मा। प्रभू।
उ॰—नित्य, आतमानंद, अखंड स्वरूप उदारा।
नं॰ ८६/३६
—निवेदन पुं॰ आत्म निवेदन। आत्म समर्पण।
उ॰—सख्य और आतमनिवेदन, प्रेम-लच्छना जास।
सा॰ ११६/११
—निष्ठ पुं॰ आतमनिष्ठ। आत्म में स्थित।
उ॰—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यों आतमगामी।
नं॰ ३६/३३
—राम पुं॰ १. अपनी आत्मा में रमण करने या उसमें लीन रहने वाला। आत्मज्ञानी। योगी।
उ॰—जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम बस।
नं॰ ८६/८
२. तोते का लोक-प्रचलित नाम।
आतर—आतार (आ+तैरना) पुं॰ उतराई। खेवा।
आतश—आतस (फा॰) स्त्री॰ आतिश। आग।
उ॰—ज्यों छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी। प॰ ४०/२४६
—वाज पुं॰ आतिशबाज़ी बनाने तथा छोड़ने वाला व्यक्ति।
—बाजी स्त्री॰ बारूद, गंधक, शोरे आदि के योग से बनी हुई चीजें जिनके जलने पर रंग-बिरंगी चिनगारियाँ निकलती हैं। अग्निक्रीड़ा।
उ॰—सिगरे नगर खोर सब माहीं। आतसबाजी पूरन आहीं। बो॰ २/२२४
आतापी पुं॰ चील।
वि॰ धूर्त। शठ।
आतिथेय पुं॰ अतिथि-सत्कार करने वाला।

आतिथ्य (अतिथि+य) पुं० अतिथि-सत्कार । आव-भगत करना ।
उ०—तब कीने आतिथ्य अनेक ।
के० III, १६/६०४

—सत्कार पुं० अतिथि का स्वागत या सत्कार करना ।

आतीपाती स्त्री० लड़कों का छिपने और छूने का खेल ।

आतुर वि० १. रोगी । २. उतावला । अधीर ।
उ०—आतुर न होहु हा हा नेकु फेंट छोरि बैठो ।
घ० क० २०/४६

३. व्याकुल । बेचैन ।
उ०—जिया ता विन यौं अब आतुर क्यों ।
घ० क० ६६/६३

—आलय पुं० आतुरशाला । चिकित्सालय ।

—इया स्त्री० अधिकता । आधिक्य ।
उ०—दीपक जोति मलीनी भई मनि-भूषन जोति की आतुरिया हैं । भि० I, १४६/१२१

—ई स्त्री० व्याकुलता ।
उ०—डुलि डुलि जातीं अति आतुरी सौं छन छन ।
शृं० ६/३०

काम— पुं० कामातुर ।
उ०—सूर-प्रभु स्याम ब्रज-बाम, आतुर-काम ।
सूर० १०/१००६/४८३

—ता—ताइ—ताई स्त्री० १. व्याकुलता ।
उ०—मन-आतुरता मन ही मैं लखौं मनभावम, जान सुभाय हो जू । घ० क० १६१/१२६

२. उतावलापन । शीघ्रता ।
उ०—कहा कहौं ऐसी आतुरता, पवन बस्य ज्यौं पात । सूर० १०/२३२६/११६

—वान् वि० जल्दबाज ।

आतुरा— अक० किसी काम या बात के लिये बहुत अधिक आतुर या उतावला होना ।
सक० किसी को आतुर या उतावला करना ।

आत्त वि० गृहीत ।

आतम— वि० अपना । निज का ।
उ०—आतम अजन्म सदा अबिनासी ।
सूर० ५/४/१२७

—ईय वि० १. अपना । स्वकीय ।
२. स्वजन । सम्बन्धी ।

—ईयता स्त्री० मैत्री । अपनापन ।

—ज पुं० दे० 'आतमज' ।
उ०—आत्मज कहिए रूधिर अंग । नं० ३८/४५
उ०—ता करि आतमतत्त्व कौं पाइ । नं० पृ० २३४

—निवेदन (पुं०) प्रभु के समक्ष दैन्य प्रदर्शन ।

—भू वि० स्वतः उत्पन्न होने वाला ।
पुं० १. पुत्र । २. कामदेव । ३. ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जो स्वतः उत्पन्न हुए माने जाते हैं ।
उ०—विरंचि, बिधाता, आत्म-भू, हिरणगर्भ, लोकेश । नं० १५/६५

आत्यंतिक (अत्यंत+इक) वि० १. बहुतायत से होने वाला । २. अविच्छिन्न । सार्वकालिक ।
३. केवल एक ।
उ०—पै आत्यंतिक नाहिन ह्वै है । नं० पृ० ५६

आत्रेय वि० (स्त्री०—आत्रेयी) अत्रि मुनि के गोत्र वाला ।
पुं० अत्रि के पुत्र दत्त, दुर्वासा और चन्द्रमा ।
उ०—ग्लौ, मृगांक, आत्रेय, हरि, जीव, उडुप, उडुराज । नं० २१/६६

आथ[१] पुं० १. अर्थ । अभिप्राय ।
२. गूढ़ अर्थ वाली बात ।
उ०—गीता-बेद भागवत में प्रभु, यों बोले हैं आथ ।
सूर० वि० १६६/११

आथ[२]— अक० अस्त होना । छिपना ।
उ०—देहु दिखाय दइ मुखचन्द लग्यौ अब औधि दिवाकर आथन । घ० १६/४६
आथन क्रि०सं० ।

आदत स्त्री० १. स्वभाव । प्रकृति । २. अभ्यास ।
३. लत । व्यसन ।

आदर[१]—**आदरु** पुं० सम्मान । प्रतिष्ठा ।
उ०—अंकु भरैं आदरु करैं धरैं अरोप-बिधान ।
भि० I, ५४/१०

—ईक वि० आदर करने वाला ।
उ०—प्रानपति आगम सुनायो प्रान पोषित, अचान देव, बचन उदार आदरीक लौ ।
दे० I, ६६७/१६४

—भाव पुं० आदर ।

आदर[२]— सक० आदर या सम्मान करना ।
उ०—केतक कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ।
म० २६१/३४८
आदरत व०कृ० । आदर्यो भू०कृ० ।

आदरनीय वि० आदरणीय । सम्मान करने योग्य ।

आदरस पुं० १. आदर्श । २. दर्पण । आईना ।
उ०—तेरे बदन बराबरि को आदरस बिमल बिरंचि न बनायो है । म० ३८६/३६३

—मंदिर पुं० शीशमहल ।

उ०—आछे अवलोकि रही आदरस-मंदिर में।
प० १०२/१०१

आदर्श पुं० दे० 'आदरस' २।
उ०—प्रतिबिंबऽरु आदर्श पुनि मुकुर स्वकर तिय लेति। नं० ६७/७३

आदा—आदी (स्त्री०) पुं० अदरक।

आदान पुं० ग्रहण।

आदि[1]—आद—आदी वि० प्रथम। पूर्व। आरंभिक।
पुं० आरंभ। मूल कारण।
—**कवि** पुं० वाल्मीकि ऋषि।
—**देव** पुं० परमेश्वर। नारायण। विष्णु।
उ०—आदिदेव पूजि पूजि रामनाथ लीजई।
के० III, ५५/७७८
—**पुरुष** पुं० १. विष्णु। २. मनु।
—**ब्रह्म** पुं० आदि ईश्वर (कूर्म पुराण के मतानुसार नारायण ही आदि ईश्वर हैं। उसी नारायण के अंश श्रीराम हैं)।
उ०—आदि ब्रह्म अनंत नित्य अमेय श्रीरघुबीर।
के० III, ३६/६६१
—**शक्ति—सकति** स्त्री० दुर्गा। महामाया।
उ०—जयति जय जय आदि सकति जय कालि-कपर्दनि। भू० २/१२८
अव्य० आदि। वगैरह।
उ०—संनिपात पर यों कह्यो काढ्यो सुंठी आदि।
बो० ५१/१६५
—**क** अव्य० आदि।
—**म** वि० आदि का। प्रथम।

आदित—आदित्य अदिति के पुत्र सूर्य।
उ०—लोगनि जान्यो आदित आवत हरि सौं जाइ सुनायो। सूर० १०/४१६०/५४२
—**वार** पुं० रविवार।

आदिष्ट वि० जिसको आज्ञा दी गई हो। आदेश प्राप्त।

आदी[1] स्त्री० दे० 'आद'।

आदी[2] अव्य० १. आरम्भ में। २. जरा भी। बिलकुल। दे० 'आदी'।

आदी[3] वि० अभ्यस्त।

आदेश—आदेस पुं०—स्त्री० आज्ञा।

आद्य[1] वि० १. आरम्भ में रहने या होने वाला। आरंभिक।
२. प्रधान। मुख्य।

आद्य[2] वि० खाने योग्य।

आद्रा—आदरा स्त्री० आर्द्रा नामक छठाँ नक्षत्र जिससे वर्षारम्भ होता है।

आधा—आधो—आधौ—आधै वि० (स्त्री०—आधी) आधा। अर्ध।
उ०—लटपटी पाग सुभग आधैं सिर रखी है।
च० १०६/६७

आधान पुं० १. रखना। स्थापना करना। २. गर्भ। ३. गिरवी। बन्धक।

आधार पुं० १. वह वस्तु जिसके ऊपर कोई दूसरी वस्तु टिकी या ठहरी हो।
२. आश्रय या सहारा। ३. अवलम्ब।
उ०—जहाँ बड़े आधार तैं बरनत बढ़ि आधेय।
म० २३६/३३८
४. जड़। नींव। बुनियाद।
—**ई** वि० आश्रित। सहारे पर टिका।
स्त्री० योगियों की अड्डे के आकार की लकड़ी की बनी वह टेक जिस पर हाथ के सहारे वे बैठे हुए ध्यान करते हैं।
उ०—कंथाधारी, बिषधारी, आधारी, त्रिसूलधारी, लोचन समाधिहू सों नेकहू न खोलिहौ।
गं० ४/२

आधा-सीसी स्त्री० आधे सिर की पीड़ा। अर्ध कपाली।

आधि स्त्री० मानसिक कष्ट या चिन्ता।
उ०—आहि कहि उठति अधिक उर आधि कै।
म० २६४/२६८

आधिक वि० १. आधे के लगभग। २. थोड़ा। कुछ।
उ०—आधि, उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जम्हाइ। बि० ६३०/२६०
अव्य० प्राय:। लगभग।

आधिदैविक वि० १. देव, प्रकृति आदि के द्वारा प्राप्त होने वाला। देवता-कृत।
२. जो प्राकृतिक या लोग-गत न हो, बल्कि उससे बहुत बढ़-चढ़कर हो।

आधिभौतिक वि० भौतिक पदार्थों और जीव-जंतुओं आदि के कारण उत्पन्न होने वाला कष्ट। (प्राय: कष्ट के लिए)।

आधिनताई स्त्री० दे० 'अधीनता'।

आधीन—आधीनो—आधीनौ वि० अधीन। आश्रित। वशीभूत।
उ०—जाको जस रटत सकल जग सजनी सो तेरौं आधीनो। नं० ६८/३०१
—**ई** स्त्री० बेबसी। अधीनता।
उ०—हम तौ प्रीति लियें निबहति हीं भई रहति आधीनी। घ्र० ६५/६०

आधीर वि० दे० 'अधीर'।

आधुनिक वि० आजकल का। वर्तमान काल का।

आधेक पुं० आधे के लगभग। आधा भाग।

उ०—राधिका आधक नैननि मूँदि हिये ही हिये हरि की छबि हेरति। भि० II, ३१२/१५८

आधेय पुं० किसी आधार पर रखी हुई या टिकायी हुई वस्तु।

उ०—अलप अलप आधार तें जहँ आधेय बखान। प० १५६/५२

वि० आधार पर टिका हुआ।

आधोरन पुं० महावत। हाथीवान।

आध्मान पुं० पेट का फूलना। अफरा।

आध्यात्मिक (अध्यात्म+इक) वि० जिसमें आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध तथा स्वरूप का विचार हो। अध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाला।

आध्यापक पुं० (स्त्री०—अध्यापिका) शिक्षक।

आनंद—आनँद पुं० १. हर्ष। प्रसन्नता। सुख।

उ०—आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै। घ० क० ३२८,२०७

२. प्रसन्नता की चरमावस्था में ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियों (सत्, चित् और आनन्द) में से एक।

वि० आनन्दपूर्ण। प्रसन्न। सुखी।

—अलाप पुं० आनंद की बात। रसपूर्ण बात।

उ०—आनँद अलाप करि आए रसलीन जू। भि० I, २६४/१५३

—कंद पुं० आनंद की जड़।

उ०—श्रीमत श्रीनँददास जू रस मय आनँदकंद। नं० ५६/६१

—कारी वि० आनंदप्रद। हर्षप्रद।

—घन पुं० रीतिकालीन एक प्रसिद्ध कवि जिनका नाम घनानन्द था।

वि० आनन्द से भरपूर।

उ०—संसार सकल संताप तजि लहत परम आनंद-घन। म० २५८/३४२

—निधान वि० सदा आनंदित रहने वाला।

उ०—निसिबासर आनंदनिधान। के० III, ३५/६०६

—पूर वि० आनन्द से पूर्ण।

उ०—आनँदपुर रसै बरसै। के० II, ७१/४४५

—प्रकासी वि० आनन्द प्रकाशित करने वाला। अत्यन्त प्रसन्न।

उ०—आनँद प्रकासी सब पुरवासी,। के० II, १६/२७२

—भैरो स्त्री० आनन्द भैरव नामक औषध।

उ०—अतीसार पर रस करै आनँदभैरो तार। बो० ५२/१६५

—मत्ता वि० काम के आनंद में उन्मत्त रहने वाली।

उ०—प्रौढ़ा में पुनि आनँदमत्ता, रति प्रियनारी राखिकै। कृ० २५/६

—राइजू पुं० राजा नन्द।

उ०—फूले आनँदराइजू, फूली जसुमति माइ। कुं० ३/२

—वारी वि० आनन्द देने वाली।

उ०—सुकेलि करी अति आनँदवारी। म० ११८/२२७

—सक्ति—शक्ति स्त्री० आनन्दमयी लीला।

उ०—कहि 'केसव' परमानंद की आनँद-सक्ति किधौं धरनि। के० I, ६३/२१४

आनँद— अक० आनंदित होना। प्रसन्न होना।

उ०—लली-जन्म सुनि नँद अति आनंदे कीन मनो-रथ मन भाए। कुं० १०/५

आनंदे भू०कृ०।

—आयी वि० आनंद देने वाले।

—न वि० (स्त्री० आनन्दिनी) आनन्द देने वाला।

उ०—श्री जमुना हरित पाप, महा-आनन्दिनी। छी० १६३/८१

आनंदना पुं० आनंद। प्रसन्नता।

आन[1]—आनि (आणि) स्त्री० १. मर्यादा। प्रतिष्ठा।

उ०—बंधु बाप की आन न राखैं। बो० ३२,२१३

२. शपथ। प्रतिज्ञा।

उ०—मानहुँगी जब करहिंगे न पुनि गमन की आन। प० २६५/१३८

३. घोषणा। आदेश।

उ०—आन राय गोविंद की सुनी माधवा विप्र। बो० ७/७७

—वान स्त्री० ठाट-बाट। सजधज।

उ०—आनवान आन की सु आनबैं लगैयो जिन। प० ६३७/२१२

आन[2]—आनि वि० अन्य। दूसरा।

उ०—कह्यौ भगवान, उपाय न आन। सूर० ६/५/१३१

—कान स्त्री० आनाकानी। ध्यान न देना।

उ०—रीझ हमारी तान की आनकान करि राज। बो० ४८ १११

आन[3]— सक० लाना।

उ०—औरहि कीठि न आनत हैं। के० I, २६/३४

आनत, आनति व० कृ० ।
आन्यो, आन्यौ भू० कृ० ।

आनक पुं० १. बड़ा नगाड़ा ।
२. गरजता हुआ बादल ।
—दुंदुभि स्त्री० १. बड़ा नगाड़ा ।
पुं० २. कृष्ण के पिता वसुदेव ।
उ०—काढ़ि खरग मारत कों भयौ । आनक दुंदुभि तब तहँ गयौ । नं० पृ० १६३

आनत (आ+नत) वि० १. झुका हुआ ।
उ०—मुख आनत ऊधौ तन चितवत ।
सूर० १०/४०५६/५०४
२. विनीत । विनम्र ।

आनद (आ+नन्द) पुं० दे० 'आनंद' ।

आनन—आननि—आननु पुं० मुख । चेहरा ।
उ०—रसहि पिवाय प्यासे आननि जिवाय राखें ।
घ० क० २६०/१६१

आनन-फानन क्रि०वि० तुरन्त । बात की बात में ।

आनर्त (आ+नर्त) पुं० १. आधुनिक सौराष्ट्र देश का पुराना नाम । द्वारकापुरी । २. द्वारका के वासी । ३. नृत्यशाला ।
—क वि० १. आनर्त-सम्बन्धी । २. नर्तक ।

आना पुं० सोलहवाँ अंश या भाग ।
उ०—आना को बीघा जुतंत माफी सबै हुबूब ।
बो० २२/२१७

आनाकानी—अनाकानी स्त्री० सुनी-अनसुनी करना ।
उ०—आनाकानी दैबी दैया कैसो लौन है ।
घ० क० ७१/८१

आनि स्त्री० १. दे० 'आन'[१]
उ०—बिन तेरी आनि भृकुटी कमान तानि ।
के० I, ३५/८८
२. लिहाज । दबाव ।
उ०—औरंग उठाना साह सूर की न मानै आनि जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को ।
भू० ४६५/२१६
३. चिन्ता ।
उ०—जाहि लखौं ताहि परी अपनी-अपनी आनि ।
प० ६०७/२०७

आन्यौर पुं० गोवर्द्धन के पास का एक गाँव, जहाँ वल्लभाचार्य की बैठक है ।

आप[१] **सर्व०** १. स्वयं । २. 'तुम' या 'वे' के स्थान पर आदरार्थक प्रयोग ।
उ०—आप मनावत प्रानप्रिय, मानिनि मानि निहारु ।
के० I, १०३/२१५
३. परस्पर ।
उ०—कहि 'केसव' ज्यों आप में, सदा बढ़ सनमान ।
के० I, ३०/६४
—रूप वि० १. स्वतः । साक्षात् । २. अकेला । अनोखा । ३. स्वयं भू । विरला ।
पुं० ईश्वर । भगवान ।
—स्वार्थी वि० मतलबी । स्वार्थी ।

आप[२] पुं० जल ।
उ०—गंगा मैया धोई तूं तौ देह निज आप है ।
प० ५/२५४
—निधि (आप+निधि) पुं० समुद्र ।
उ०—धाप छाँड़ि आपनिधि जानि दिसि-दिसि रघुनाथ जू के छत्रतर भ्रमत भ्रमीनि वाजि ।
के० I, ७/११८
—पति (आप+पति) पुं० समुद्र ।
उ०—काँपि उठ्यो आपपति तपनहि ताप चढ़ी ।
के० I, ६७/१२८
—माला (आप+माला) स्त्री० मेघमाला । कादम्बिनी ।

आप[३] पुं० ईश्वर ।

आपगा (आप+गा) स्त्री० नदी ।
उ०—छावत फुलेल औ गुलाब आपगान में ।
म० १०३/३१६

आपचार[१] (अप+आचार) पुं० स्वेच्छाचार । मनमानी ।
—ई वि० स्वेच्छाचारी । मनमानी करने वाला ।

आपचार[२]—(आप+चार) मनमानी करना ।
उ०—विष लै बिसार्‌यौ तन, कै बिसासी आपचार्‌यौ । घ० क० ३७/५८
आपचार्‌यौ भू०कृ० ।

आपत्—आपत स्त्री० दे० 'आपति' ।
उ०—द्वादस लगुन सुभग नवग्रह उदित आपत मित देखी । च० ५/३
—काल पुं० आपत्ति या विपत्ति का समय ।

आपति—आपत्ति स्त्री० विपत्ति । आपदा । मुसीबत ।
उ०—आपति अन्यास सुख प्रापति कहीं न ही ।
बो० २२/१५१

आपद स्त्री० दे० १. दे० 'आपत्ति' । २. दु:ख ।
उ०—आपद संपद के न चलौं मग ।
के० II, २७/३५६
—आ स्त्री० १. विपत्ति । संकट ।
उ०—ताकी सकल आपदा टरी ।
सूर० १०/४२२४/५५७
२. कष्ट का समय ।

आपन—आपुनो—आपुनौ वि० दे० 'अपना'।
उ०—वेऊ मनावन आए हैं आपन हाथ सों जात न पाग सँवारी। म० १३४/२३०
—पो—पौ पुं० अपनत्व।
उ०—तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं। घ० क० ८२/८६
आपनिक पुं० १. आपणिक। दूकानदार।
२. पन्ना नामक रत्न।
आपना—आपनो सर्व० दे० 'अपना'।
उ०—ते छोड़त कुल आपनो ते पावत बहु खेद। प० २०८/५८
आपन्न वि० जो कष्ट में हो। आपद्-ग्रस्त।
आपस—आपुस अव्य० परस्पर। एक दूसरे के साथ।
—दारी स्त्री० रिश्तेदारी। सम्बन्ध।
आपा[1] पुं० १. निजत्व। अपनी सत्ता।
उ०—भूलि गई बापा मई आप आपा मई ह्वै गई। दे० I, २५/४२
२. अहंकार। गर्व।
—धापी स्त्री० अपने स्वार्थ के लिए की जाने वाली खींच-तान। लाग-डाँट।
—पंथी वि० स्वेच्छाचारी।
आपा[2] बड़ी बहन। ज्येष्ठ भगिनी।
आपाक पुं० आवाँ। ईंट पकाने की भट्टी।
आपात पुं० गिरना। पतन।
आपाद अव्य० पैरों तक।
—मस्तक अव्य० पैरों से सिर तक। संपूर्णतया।
आपान पुं० मद्य पीने वालों का जमघट।
आपिंजर पुं० स्वर्ण।
आपीड—आपीड़ पुं० मुकुट। किरीट।
आपीन पुं० १. गौ का थन। २. कूप। कुआँ।
वि० १. पुष्ट। २. कठोर।
आपु[1] सर्व० दे० 'आप'।
उ०—ढोलिया यों कहै हौं न बदौ इत आपु दिवैयन के कनफोरत। बो० ४६/१११
पुं० आपा। अहंभाव।
—स्वार्थी वि० मतलबी।
आपु[2] पुं० दे० 'आप[2]'।
—निधि पुं० दे० 'आपनिधि'।
उ०—आपु ही तें आपु गाज्यौ आपुनिधि प्रीत मैं। के० I, २०/२७
आपुन सर्व० दे० 'अपना'।
उ०—जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै। सूर० १०/१३४/२४९
—पो—पौ पुं० अपनापन।
उ०—भूलनि जीतति आपुनपो बलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सबेरी। घ० १५८/१२८
मु० आपुन संग औरन बोरत—स्वयं तो विपत्ति में पड़ना ही साथ ही औरों को विपत्ति में डालना।
आपूर— सक० पूर्ण करना। अच्छी तरह भरना।
उ०—मानौ पूरन चंद्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि। सूर० १०/४३७/३३०
आपूष पुं० राँगा। जस्ता।
आपेखे स्त्री० अपेक्षा।
उ०—पूरन भए मनोरथ सब कछु हुती जु जिय आपेखे। च० ५५/२९
आपै पुं० तृष्णा। लालच।
आपौ सर्व० स्वयं।
पुं० १. अपनापन। २. जल।
उ०—आली, घनआनँद सुजान सों बिछुरि परें आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है। घ० क० ९३/९२
आप्त वि० १. प्राप्त। पाया हुआ।
२. विश्वासी। सच्चा। ३. कुशल। दक्ष।
पुं० १. प्रामाणिक एवं विश्वसनीय व्यक्ति।
२. ऋषि।
आफत (अ०) स्त्री० आपत्ति। विपत्ति। संकट।
उ०—थापति सी चातुरी सरापति सी लंक अरु आफत सी पारत अरी अजानपन में। १० २३/८३
आफताब (अ०) पुं० सूर्य।
उ०—आफताब लौं ह्वै रही उदै कै रही बाल। बो० ४७/१०५
आफू स्त्री० दे० 'अफ्यूं'।
उ०—अमली मिश्री छाड़िकै, आफू खात सदाहि। 'अज्ञात'।
आब पुं० १. जल। पानी। २. इज्जत। प्रतिष्ठा।
उ०—वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब। बि० ४३८/१८०
स्त्री० १. कांति। चमक। २. छवि। शोभा।
उ०—अतर-गुलाब कैसी आव होत सर को। प० ५/३१५
—ताव स्त्री० चमक-दमक।
उ०—काबिल के दले दल, कासमीर किंगरनि, कसब की तुरकनि आबताब तुई ती। ग० ३४६/१०६
—दार वि० १. पानीदार। चमकीला।
२. शोभावाला। छविमान। ३. तेज।

आबदाना—आवदाना (फा०) (आव+दाना) पुं० १. अन्नजल । २. जीविका ।

आबनूस (फा०) पुं० एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत काली होती है ।

आबरत पुं० दे० 'आवर्त' ।
उ०—आवरत पूरे रास-मंडल की पाई सी ।
प० ४६/२७०

आबरू (फा०) स्त्री० इज्जत । प्रतिष्ठा । मान । मर्यादा ।

आबर्तन पुं० १. चक्कर । २. पुनरावृत्ति ।
उ०—जहाँ दीपक में होत है आवर्तन को जोग ।
म० १३७/३२२

आबसार (फा०) पुं० झरना । निर्झर ।

आबाल अव्य० बाल्यावस्था या बालकों से लेकर ।

आबास—आवास पुं० निवास-स्थान । रहने की जगह ।
उ०—फूले फूलन को आबास । मानो सहित नक्षत्र अकास ।   के० III, ४/५४७

आबी वि० १. जल-सम्बन्धी । २. फ़ीका । बेस्वाद ।

आबृत्ति—आवृत्ति स्त्री० किसी चीज का बार बार आना या दुहराया जाना ।
उ०—आबृति दीपक तीन प्रकारू । आबृति पद की प्रथम निहारू ।   प० ७८/४२

आबृत्ति-दीपक पुं० दीपक अलंकार का एक भेद जिसमें क्रियापदों की आवृति की जाती है ।
उ०—दीपक की आबृत्ति में आवृति-दीपक होत ।
प० ७७/४१

आबेग पुं० दे० 'आवेग' ।
उ०—दीनता हरष ब्रीड़ा उग्रता सु निद्रा ब्याधि, मरन अपसमार आबेगहु अनिये ।
प० ४७३/१८१

आबेस पुं० १. आवेश । जोश । उमंग । २. आतुरता । ३. रोग विशेष—देवता अथवा भूत प्रेतादि का आवेश ।

आब्दिक वि० वर्ष सम्बन्धी । वार्षिक ।

आभ[1] स्त्री० दे० 'आभा' ।

आभ[2] (< अभ्र) पुं० आकाश ।

आभ[3] (फा० आब) पुं० जल ।

आभरन पुं० आभूषण । गहना ।
उ०—नखसिख भूषन आभरन कहि षोडस सृंगार ।
बो० २२/६६

आभर्ना पुं० दे० 'आभरन' ।
उ०—सोहै आभर्ना, बारहो बर्न जाके, बर्नो है पाँचै, सात विश्राम ताके । भि० I, २४/२५०

आभा स्त्री० १. कांति या चमक ।
उ०—भूषन-बसन भरि आभा फैल गई है ।
घ० २३८/१६७

२. प्रतिबिम्ब ।

आभार—आभारु पुं० १. कृतज्ञता । एहसान ।
उ०—मथुरा-पति यह सुनि हरषित भयौ, मनहिं धर्‍यौ आभार ।   सूर० १०/१३६६/५८७

२. बोझ । भार । उत्तरदायित्व ।
उ०—आभार ह्यौ ह्वार को ताहि कौं सौंपि कै मोहिं औ तोहिं ह्यां राखते मौन ।
भि० I, १०/२४५

३. एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में आठ तगण होते हैं ।

—ई वि० आभार मानने वाला । कृतज्ञ ।

आभाषन पुं० बातचीत करना । बोलना ।

आभास पुं० १. मिथ्या-प्रतीति । २. संकेत । जानकारी ।
उ०—कछु जोबन आभास तें बढ़ी बधू दुति अँग ।
कृ० ८२/२२

३. छाया । झलक ।

आभास— अक० प्रकाशित होना । स्पष्ट होना ।
उ०—सत्य ज्ञान आनंद आत्मा तव आभासै ।
नं० ५५/३४

आभासै व०कृ० ।

आभिजात्य पुं० कुलीनता । उच्चवंशोद्भवता ।

आभीर पुं० १. अहीर । गोप । ग्वाला ।
उ०—जयति आभीर-नागरी-प्राननाथे ।
च० ६४/३३

—पल्ली स्त्री० वह गाँव जिसमें बसने वालों की संख्या में अहीर सबसे अधिक हों ।

आभूषन पुं० १. आभूषण । अलंकार । गहना ।
उ०—याते कुछ बरने न कछु आभूषन सृंगार ।
बो० ४/६१

२. शोभाजनक ।

आभूषित वि० गहने पहने हुए ।

आमंत्रण पुं० न्यौता । निमंत्रण ।

आमंत्रित वि० निमन्त्रित ।

आम[1] पुं० १. आम का फल । आम्र फल ।
२. आम का पेड़ ।

आम[2] स्त्री० आमाशय की एक बीमारी (आँव) ।

आम[3] (अ० आम) त्रि० सार्वजनिक । सार्वजनीन ।

—खास पं० महल या रनवास का वह भीतरी भाग जहाँ राजा या बादशाह बैठते हैं ।
उ०—छूटत हुलास आमख़ास एक संग छूटे हरम सरम एक संग बिन ढंग ही ।
भू० १३७/१५४

आम[४] वि० कच्चा ।
—गंधि स्त्री० १. दुर्गन्धि ।
२. चिता जलने पर निकली दुर्गन्धि ।
आमड़ा पुं० एक आम जैसा खट्टा फल और उसका पेड़ ।
आमदनी (फा०) स्त्री० १. आय । २. आगमन ।
उ०—'सिव आयौ सिव आयौ' संकर की आमदनी सुनिकै ज्यौं लगत अरिगोत है ।
भू० ८३/१४३
आमनाय पुं० दे० 'आम्नाय' ।
आमना-सामना पुं० १. भेंट । मुलाकात । साक्षात्कार ।
२. मुकाबला ।
आमने-सामने अव्य० एक दूसरे के सामने या मुकाबले में ।
आमय पुं० रोग । बीमारी ।
आमल (अ०) पुं० कर्मचारी ।
उ०—आमल को अरु मुल्क को खर्च बाहिरो छोड़ ।
बो० २४/२१८
आमला पुं० (स्त्री० आमली) दे० 'आँवला' ।
आमली स्त्री० छोटा आँवला ।
आमरख—आमरष पुं० दे० 'आमर्ष' ।
आमरन (आ+मरण) अव्य० मृत्यु पर्यन्त ।
आमरस—आमर्स पुं० परामर्श । सलाह ।
आमर्ष पुं० १. कोई अनुचित या अप्रिय बात न सह सकना । असहनशीलता ।
२. तज्जन्य । क्रोध । गुस्सा ।
उ०—कोप, क्रोध, आमर्ष, तम, रोष पाय रिपु होय ।
नं० ८०/७४
आमलक पुं० दे० 'आँवला' ।
उ०—जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय ।
नं० २८/१५७
आमात्य पुं० अमात्य । मन्त्री ।
आमान्न (आम+अन्न) पुं० कच्चा अन्न । दे० आम[४]
आमिख—आमिष पुं० माँस । गोश्त ।
उ०—मची सनि आमिष सोनित कीच ।
बो० ३१/१६२
—भोगी पुं० मांसाहारी ।
उ०—केते न रक्त प्रसूननि पेखि फिरे खग आमिष भोगी भुलाने । भि० I, ५४१/८०
आमिली स्त्री० इमली ।
उ०—आम की साध न आमिली पूजै ।
के० I, २६/७५
आमिनिया स्त्री० अमिया ।
उ०—अब तौ बन बौरी बिसासिनि आमिनियाँ ।
शृं० २२०/६३३

आमुख (आ+मुख) पुं० १. आरम्भ ।
२. किसी पुस्तक या नाटक की प्रस्तावना या भूमिका ।
आमूल (आ+मूल) अव्य० १. आरम्भ या मूल तक ।
२. बिलकुल । सब ।
आमेज वि० मिश्रित । मिला हुआ ।
उ०—सजी आमेजे सुगंध सेजै तजी सुभ्र सीतरे ।
दे० I, ४३६/१२२
—सक० मिलाना ।
आमेर पुं० जयपुर की प्राचीन राजधानी का नाम ।
उ०—आमेर अवनिपाल भानुसुव जगन्नाथ ।
गं० ३६०/१११
आमेहारी (आमय+हारी) वि० रोग-नाशक ।
आमोद (आ+मोद) पुं० १. मनोरंजन । दिल बहलाव ।
२. हर्ष । प्रसन्नता ।
उ०—भूषन विभव मोद आमोद विनोद भर्‌यो ।
दे० I, ३७/५३
३. सुगन्धि ।
—प्रमोद पुं० भोग-विलास । सुख-चैन ।
आमोलिक (आ+मोलिक) वि० मूल्यवान । कीमती । अमूल्य ।
आम्नाय पुं० १. वेद । श्रुति । २. श्रुतिजन्य ज्ञान ।
उ०—आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म, पुनि, धर्ममूल सब काम । नं० ११५/७८
३. वैदिक परिपाटी ।
आम्र पुं० आम ।
—मौर स्त्री० आम की मंजरी ।
उ०—पियत न आम्रमौर मधु कों जब लौं तिलको ।
भि० I, १६४/२०५
आम्रेडित पुं० एक ही शब्द को दो या तीन बार कहने का नाम ।
आय पुं० १. आमदनी । लाभ । प्राप्ति ।
आयत(आ+यत) वि० विस्तृत । लम्बा-चौड़ा । विशाल ।
उ०—आयत दृग अरुन लोल ।
सूर० १०/१३८४/५८४
आयतन पुं० १. मकान, घर । २. मन्दिर, यज्ञस्थान ।
उ०—मंदिर, मंडप, आयतन, बसति, नीक अस्थान ।
नं० २/१०१
आयत्त (आ+यत्त) वि० १. अधीन । २. वशीभूत ।
—इ स्त्री० अधीनता ।
आयस (अयस्+अ) पुं० १. लोहा । २. लोहे के बने अस्त्र-शस्त्र । हथियार ।
आयसु—आयुसु स्त्री० आज्ञा । आदेश ।

उ०—फूल-फल साजन कौं आयसु बिपिन माँहि ।
शृं० १६/५८

आयात (आ+यात) वि० आया हुआ । आगत ।

आयास (आ+यास) पुं० १. परिश्रम । २. उद्योग । प्रयत्न ।

आयु स्त्री० जीवन की अवधि । वय । उम्र । अवस्था ।
उ०—गायनि की आयु सो कसायनि कौं बकसी ।
म० २७२/३४५

आयुध (आ+युध) पुं० १. शस्त्र । हथियार । २. तीर ।
उ०—नोढ़ा भूपन को चहै, नृपसुत आयुध जानि ।
कृ० ७७/२१

आयुर्बल पुं० आयु या उम्र के रूप में माना जाने वाला बल । आयु का परिमाण ।

आयुर्दा—आयुर्दाय (आयुस्+दाय) पुं० १. फलित ज्योतिष में, जन्म-कुंडली के आधार पर आयु या जीवन-काल के सम्बन्ध में होने वाला निर्णय या विचार ।
२. जीवन-काल । आयु । उम्र ।

आयुष~आयुस पुं० आयु ।
—मान वि० दीर्घजीवी ।

आयोधन पुं० युद्ध । रण ।
उ०—आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संग, समीक । नं० १८१/८४

आरंड पुं० आराम ।
उ०—प्रथम साप कृत बाल द्वितीय आरंड खंड गनि ।
बो० ६/२२

आरंभ (आ+रंभ) पुं० प्रारम्भ । शुरूआत ।
उ०—राजसू जज्ञ कौ कियौ आरंभ मैं ।
सूर० १०/४२१५/५५३

—त क्रि०वि० प्रारम्भ से ।
उ०—आमोघ मघवा को मख, आरंभत गोप बृद्ध, हेरि हर हट के । दे० I, ६४/१४

—न पुं० प्रारम्भ ।
उ०—आरंभन रास, परिरंभन विलास ।
दे० I, ८२/१७

आर[1] पुं० १. अशोधित लोहा । २. पीतल । ३. लोहे की कील । काँटा । अंकुश ।
उ०—सूर प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिं आर ।
सूर० वि०/१९९/५५

आर[2] पुं० हठ । जिद ।
स्त्री० १. बैर । शत्रुता । २. तिरस्कार । घृणा ।

आरकत (आ+रक्त) वि० दे० 'आरक्त' ।
उ०—अधिक अनार की कली तें आरकत हैं ।
क० ६/३२

आरक्त वि० हलका लाल । लाली लिये हुए ।
पुं० लाल चंदन ।
—ता स्त्री० लालिमा । ललाई ।
उ०—ताही कों, गोपी बिबस करति है, नैन आरक्तता मैं । भि० I, ६५/२६२
—पत्रा वि० लाल बेलबूटों से सजी हुई ।
उ०—आरक्तपत्रा सुभ चित्रपुत्री ।
के० II, १०/३३५

आरज पुं० दे० 'आर्य' ।
वि० बड़ा । पूज्य । श्रेष्ठ ।
उ०—सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछू न चाड़ सरी । सू० १०/६५१/३६३
—पथ पुं० श्रेष्ठ मार्ग ।
उ०—गृह-ब्यौहार तजे आरज-पथ ।
सूर० १०/६५६/३६४
—सुवन पुं० आर्यपुत्र अर्थात् पति ।
उ०—पाये कछु समाचार आरजसुवन के ।
कवि० ३/१५

आरण्य पुं० दे० 'अरण्य' ।
वि० जंगली । वन्य ।
—क पुं० दे० 'अरण्यक' ।
वि० जंगली । वन का ।

आरत वि० दे० 'आर्त्त' ।
उ०—आस सों आरत सम्हारत न सीस पट ।
भि० I, १२४/१०६
—ताई वि० दुःखदायी ।
उ०—गएँ अति आरतताई । के० III, २८/६५६
—नाद पुं० आर्त्तनाद ।
उ०—जानकी को सुनि आरतनाद ।
प० ५५१/१६६
—बंधु वि० दीनबन्धु ।
उ०—आरतबंधु को बानो बृथा करिबे कों उपाउ करैं बहुतेरो । भि० I, ५०६/७४
—वंत वि० दुःखी ।
उ०—जैसैं कनक कटोरी मदिरा, आरतबंत पियो ।
सूर० १०/३५६५/३८५
—सब्द पुं० आर्त्त पुकार ।
उ०—आरतसब्द अकाश पुकारिय ।
के० II, ३०/२४६
—हर वि० दुःख दूर करने वाला । कष्टहारक ।

आरति[1] (आरत्रिक) स्त्री० दे० 'आरती' ।
उ०—आरति साजि सुमित्रा ल्याई ।
सूर० ६/१६६/२०४

आरति[2] (आर्त्ति) स्त्री० १. विरक्ति । २. दुःख । करुणा ।
उ०—आरति मातहि बाढ़ी । के० I, ५७/१७१

३. लालसा ।
उ०—निबरैं न मैन-आरतैं । घ० क० ३२/५८
पुं० १. दुःखी ।
उ०—आरति असम समान ।
सूर० १०/३६७४/४२४
२. हठ ।
उ०—चंदहि देखि करी अति आरति ।
सूर० १०/२००/२६६
—राती वि० दुःख में रँगी हुई । दुःखित ।
उ०—आनँद आरति-राती साधनि मरति है ।
घ० क० २६/५३
—वंत पुं० दुःखी । विपन्न ।
उ०—आरतिवंत पपीहन कों घनआनँद जू पहचनौ कहा तुम । घ० क० १३४/११५

आरती स्त्री० १. आराध्य के सामने दीपक, कर्पूर या धूप आदि जलाकर बार-बार घुमाते हुए उनके सामने रखना । नीराजन का पात्र ।
उ०—कनकधार कर लिएँ आरती व्रज भामिनि मिलि मंगल गायौ । च० २८/१५
२. वह स्तव या स्तोत्र जो आरती के समय पढ़ा जाए ।

आरतो—आरतौ पुं० थाली में आटे के बने दीपक में बत्ती जलाकर बहिन का शुभ संस्कारों पर अपने भाई पर दीपक उतारने की क्रिया ।

आरथी वि० स्वार्थी । मतलबी ।
उ०—निलज निठुर निज आरथी जेहि न हिताहित चेत । र० ५६१/१०६

आरद वि० दे० 'आर्द्र' ।
उ०—आरद होत पदारथ पारस । दे० I, ११/४६

आरन—आरन्य पुं० दे० 'अरण्य' ।
उ०—अग्र एक आरन्य सुहाई । बो० ३७/६०

आरपार (आर+पार) पुं० नदी के दोनों किनारे ।
अव्य० इस छोर से उस छोर तक ।
उ०—चंवल के आरपार नेजे चमकत हैं ।
भू० ५२७/२३४

आरभट पुं० १. साहसी । २. साहसिक कार्यों का नाटक में अभिनय । ३. साहस ।
—ई स्त्री० १. साहस की मनोवृत्ति ।
२. नटों की क्रीड़ा ।
३. साहित्य में टवर्ग प्रधान एक प्रकार की वृत्ति । ४. लौकिक कर्म ।
उ०—झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी ।
सूर० वि०/६८/२६

आरव (आ+रव) पुं० कोलाहल । शोरगुल । जोर का शब्द या नाद ।
—ई स्त्री० भीषण शब्द ।
उ०—बल की अधिक छवि आरवी सहित हैं ।
क० ६८/२२

आरस[1]**—आरसु** पुं० आलस्य ।
उ०—देखहु धौं इक बार सकोचन आरस-लोचन आरसी सौंहैं । के० I, ६६/१८

आरस[2] (आ+रस) वि० रसपूर्ण ।
उ०—आरसगात भरे गिरि जात हैं ।
भि० I, २८६/४२

आरस[3] पुं० कमल ।
उ०—मुनिजत सही सार आरसनि लै रमी ।
के० I, ३२/१८१

आरसि—आरसी स्त्री० १. दर्पण । शीशा ।
उ०—जनु बिस्वरूप की अमल आरसी रची बिरंचि बिचारि । के० II, ४५/२३३
२. हाथ के अँगूठे में पहनने का एक आभूषण जिसमें शीशा जड़ा रहता है ।
उ०—ताहि बिलोकति आरसि लै कर ।
के० I, ६/२०

आरा पुं० (स्त्री०—आरी) १. आला । ताक ।
उ०—आरे मनिखुचित खरे । के० II, २२/३७४
२. आरा (चीरने वाला) ।

आराज पुं० अराजकता । बिना राजा की स्थिति । गदर ।
उ०—भयौ आराज जब, रिपिन तब मंत्रकरि ।
सूर० ४/११/११६

आराजी (अ०) स्त्री० भूमि । खेती वाली भूमि ।
उ०—सेतिहि लय देवै आराजी औरहि दए न अपनौ ज्यान । भि० I, २३०/२११

आरात अव्य० निकट । समीप ।

आराति—आराती पुं० वैरी । शत्रु ।

आराध— (आ+राध्) सक० आराधना करना । पूजन करना ।
उ०—जोग जुगुति संकर आराधी ।
सूर० १०/३८९४/४७०
—इत वि० पूजित ।
आराधत व०कृ० ।
आराधी, आराध्यौ भू०कृ० ।
—न पुं० आराधना । पूजा । उपासना ।
उ०—साध ही तें राधे हठ-आराधन ठानती ।
भि० I, २०७/१३४

आराध्य वि० जिसकी आराधना की जाती हो । पूजनीय ।

आराम[1] (आ+रम्) पुं० उपवन । बगीचा ।

आराम[2] पुं० (फा०) विश्राम ।
उ०—आजु करहु आराम । म० ५/४२६

आरालिक पुं० रसोइया ।

आरूढ़ (आ+रूढ़) वि० १. चढ़ा हुआ । सवार ।
उ०—ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि देखत हैं संग्राम । सूर० ६/१५८/२००
२. दृढ़ । स्थिर । ३. तत्पर । सन्नद्ध ।
—जोबना—यौवना स्त्री० साहित्य में चार प्रकार की मध्यमा नायिका में से एक जो पूर्ण रूप से युवती हो चुकी हो ।
उ०—मध्या आरूढ़ जोबना पूरन जोबनवंत । के० I, ३३/१२

आरोग— सक० १. भोजन करना ।
उ०—सातैं सखि मिलि बीरी लाई, आरोगे ब्रजराज । सा० ८६/१०७८
२. उपभोग करना ।
आरोगत वर्त०कृ० । आरोग्यौ भूत०कृ० ।
आरोगन क्रि०सं० ।

आरोग्य पुं० स्वास्थ्य ।
वि० स्वस्थ । नीरोग ।
उ०—पटु तीछन, पटु वज्र कहि पटु आरोग्य कहंत । नं० ३६/४५

आरोप (आ+रोप) पुं० १. मिथ्या-कल्पना । २. सादृश्य । ३. दोष । कलंक ।
—सक० १. आरोपित करना ।
उ०—और-विषै आरोपिये यों बरनत कबिरायो । प० ४७/३८
२. एक वस्तु में दूसरे के धर्म की कल्पना करना ।
आरोपित व०कृ० । आरोपी भू०कृ० ।
—इत वि० लगाया हुआ ।

आरोधन (आ+रोधन) पुं० १. प्राणायाम ।
२. चारों ओर से रोकना । ३. चढ़ाना ।
उ०—मौनअपवाद पवन आरोधन, हितक्रम काम निकंदन । सूर० १०/३५३०/३७८

आरोह (आ+रोह) पुं० १. ऊपर को जाना । चढ़ना ।
उ०—आरोहन, आरोह पुनि, निःश्रेनी सोपान । नं० ४६/७०
२. घोड़े आदि पर सवार होना ।
३. संगीत में स्वरों का चढ़ाव ।
—ई वि० सवार । चढ़ने वाला ।
—न पुं० १. सवार होना । २. सीढ़ी । सोपान ।
३. अंकुरण ।

आरौ—आरे पुं० दे० 'आला' ।
उ०—आरिन में अरूआ अटारिन में आकज । भू० ४६४/२२६

आर्ज्जव पुं० १. ऋजुता । सीधापन । २. सरलता । सुगमता । ३. नम्रता । विनय ।

आर्त्त वि० आर्त्त दुःखी । पीड़ित ।
—इ पुं० १. पीड़ा । दर्द । २. दुःख । कष्ट ।
—ध्वनि स्त्री० क्लेश में चीत्कार ।
—नाद पुं० दुःखी स्वर ।
—स्वर पुं० क्लेश में चीत्कार । कातर स्वर ।

आर्त्तव वि० १. ऋतु या मौसम से संबंध रखने वाला ।
२. किसी विशिष्ट ऋतु में उत्पन्न होने वाला । मौसमी ।
पुं० ऋतुमती स्त्रियों के मासिक-धर्म के समय निकलने वाला रज । पुष्प ।

आर्थिक (अर्थ+इक) वि० १. अर्थ (धन) से सम्बन्ध रखने वाला । अर्थ-सम्बन्धी ।
२. शब्दों या वाक्यों के अर्थ से सम्बन्ध रखने वाला ।

आर्द्र वि० १. गीला । नम । २. पिघला हुआ ।

आर्द्रा (आर्द्र+आ) स्त्री० १. एक नक्षत्र जो प्रायः आषाढ़ में पड़ता है और साधारणतः जिसमें वर्षा आरंभ होती है ।
२. एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में दो तगण, जगण और दो गुरू होते हैं ।

आर्नव पुं० आर्णव । समुद्र ।
उ०—आर्नव-नाव-बिहंग जिमि फिरि आवै तिहि ठौर । नं० ३०३/११६

आर्य पुं० १. आदरणीय । प्रतिष्ठित या श्रेष्ठ व्यक्ति ।
२. गुरु । आचार्य । ३. पति ।
—पुत्र पुं० पति । स्वामी ।
वि० उत्तम । श्रेष्ठ । कुलीन ।
—मिश्र वि० पूजित । मान्य ।

आर्या[1] (आर्य+आ) स्त्री० १. दादी । २. सास ।

आर्या[2] स्त्री० एक प्रकार का अर्द्ध मात्रिक छन्द ।

आर्या[3] स्त्री० बरसाती खेत में उत्पन्न होने वाली ककड़ी ।

आर्यावर्त्त (आर्य+आवर्त) पुं० हिमालय और विंध्याचल का मध्यवर्ती देश, आर्यों का आरंभिक निवास भूमि ।

आर्यौ स्त्री० प्रार्थना । बिनती ।
उ०—पाइ परिकै महरि करति आर्यौ ।
सूर० १०/७५१/४१५

आर्ष—आरष (ऋषि+अ) वि० १. ऋषि प्रणीत ।
२. वैदिक ।

आलंब—आलम्ब (आ+लंब) पुं० १. सहारा ।
२. आश्रय । ३. आलम्बन । विभव ।
उ०—सो है विधि आलंब अरु उद्दीपन अवरेखि ।
रस० ४६/१३
४. नींव ।
—इत वि० १. आश्रित ।
उ०—सुरस नाइकानाइकहि आलंबित ह्वै होइ ।
प० ६/८०
२. आधारित ।
—न १. आधार । सहारा । २. आश्रय ।
उ०—दरसन आलंबनहि में कवि मतिराम सुजान ।
म० २७५ २६४
३. नींव । ४. विभाव का एक प्रकार ।
उ०—आलम्बन उद्दीपन द्विविध विभाग
दे० I, ३८/५३

आल[1] स्त्री० १. एक पौधा जिसका उपयोग रंग बनाने के लिए होता है ।
२. पीला हल्दी वाला रंग । ३. हरताल ।
उ०—सींचि आल मजीठ जैसे, निठुर काटी पोइ ।
सूर० १०/३८००/४५०

आल[2] पुं० आलय । घर ।
उ०—मोहिं बरजत उठि गवन कियौ हठि, स्वाद लुब्ध रस आल । सूर० १०/३३७२/३६२
—वाल पुं० थाला । जलाधार । वृक्ष की जड़ के चारों ओर बनायी गयी क्यारी ।
उ०—बदन सिंगाररस बेलि-आलबालभो ।
म० १५/२०३

आलकस पुं० आलस्य ।

आलजाल (आल+जाल) पुं० १. व्यर्थ की बकवाद ।
२. झंझट । बखेड़ा ।

आलन पुं० १. भूसा मिला गारा जो दीवारों पर लीपा जाता है ।
२. चने, सरसों आदि के हरे साग को बनाते समय गेहूँ या मक्के के आटे का जो घोल बनाकर डाला जाता है ।

आलना पुं० चिड़ियों का घोंसला । नीड़ ।

आलम (अ०) पुं० १. जगत् । दुनियाँ । संसार ।
उ०—तासु सुवन हिरदेस कुल्ल आलम जस सुझियै ।
बो० २४/२४
२. संसार में रहने वाले मनुष्य ।
३. जनसमूह । भीड़-भाड़ । ४. अवस्था । दशा । ५. दृश्य । ६. एक प्रकार का नृत्य ।
—गीर वि० विश्वविजयी ।
—पति पुं० राजा ।
उ०—सुनियै आलमपति इहि भेव, मारे सब हम बिरसिंघदेव । के० III, २६/५९२
—पनाह वि० संसार-रक्षक ।
उ०—आलम पुकार करै आलमपनाह जू पै ।
भू० ४७२/२२१

आलमगीर पुं० औरंगजेब का दूसरा नाम ।
उ०—एक समै सजिकै सब सैन सिकार कौं आलमगीर सिधाए । भू० ८४/१४३

आल-मजीठ पुं० एक प्रकार का काठ जिसे उबालने पर एक रंग तैयार होता है ।

आलय पुं० १. घर । मकान । मंदिर ।
उ०—सदन, सद्म, आराम, गृह, आलय, निलय, स्थान । नं० १०/६७
२. स्थान ।

आलस पुं० दे० 'आलस्य' ।
उ०—'दासजू' आलस लालसा त्रास उसास न पास तजै दिन रातै । भि० I, २३२/१४०
—इ—ई वि० सुस्त । आलस्य करने वाला ।
उ०—भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग, जागत, आलसि तुलसीहू से निकाम को ।
कवि० ७५/५६
—गात वि० श्रान्त । थका हुआ । क्लान्त ।
—वलित वि० आलसी । आलस से युक्त ।
उ०—आलसवलित कोरे काजर कलित ।
म० ४०७/२६२
—वंत वि० आलस्यवश ।
उ०—आलसवंत उठी न परी, जु परें ही परें कर केस सुधारे । गं० १४५/४४

आलस्य (अलस+य) पुं० १. सुस्ती । २. उत्साह हीनता ।
३. एक संचारी भाव ।

आला[1] पुं० ताक । ताखा ।
उ०—आपनोइ-आलै मकुर लै उनमानि कै ।
भि० I, २८०/१५१

आला[2] (अ०) वि० १. सर्वश्रेष्ठ । उत्तम ।
उ०—पंकेरुह आला याके अंकेसय आवत ।
दे० I, ६३७/१५४
२. मजबूत ।
उ०—तोरत रिपु-ताले आले-आले, रुधिर पनाले चालत हैं । प० १८८/२७

आलात पुं० ऐसी लकड़ी जिसका एक सिरा जल रहा हो । लूकाठी ।

उ०—एकहि मूरति ललित लाल आलात के नाईं।
नं० ६७/२६

आलाप[1] (आ+लाप) पुं० १. बोलना।
२. बातचीत। वार्त्तालाप।
३. संगीत में राग-रागनियों के गाने का विशिष्ट प्रकार।
उ०—जासु आलाप सुनि, दारु सोउ पल्लवै।
सूर० १०/२४५३/१४०

—ई वि० १. बोलने वाला।
उ०—मन-क्रम-बचन-दुसह सबहिनि सौं कटुक-बचन आलापी। सूर० वि०/१४०/३८
२. गवैया। तान लगाने वाला।

आलाप[2]— सक० गाना गाना। स्वर भरना।
आलापत वर्त०कृ०। आलापी भू०कृ०।

आलापिनी (आलाप+इनि) स्त्री० बाँसुरी। वंशी। मुरली।

आलारासी वि० १. मनमौजी। बेफिक्र। २. आलसी।

आलिंग— (आ+लिंग) सक० आलिंगन करना।
उ०—आलिंगत कूजत कोकिल कीर।
गो० १२/७०

आलिंगत व०कृ०

—न पुं० हृदय से लगाने की क्रिया। प्रीतिपूर्वक पारस्परिक मिलन।
उ०—जिय पिय को धरि ध्यान तनिक आलिंगन किय जब। नं० ५३/५

आलि—आली स्त्री० १. सखी। सजनी। सहेली।
उ०—गंग कहै गिरधारी बिहारी बिचारि न आलि बसंत समैं सो। गं० २०२/६१
२. भ्रमरी। भौंरी। ३. अवली। पंक्ति।

आलिक पुं० अलिक। मस्तक। माथा। ललाट।

आलिखित (आ+लिखित) वि० १. लिखित। लिखा हुआ। २. चित्रित।

आलीजाह वि० ऊँचे स्थान पर बैठने वाला। उच्च पदस्थ।
उ०—ऐसो साह आलीजाह बाहुबली दीपनाह।
र० ५/३०२

आलीन पुं० नीला घोड़ा।

आलीह पुं० १. बाण छोड़ने के समय की बैठक या आसन विशेष।
२. चार विस्वांसी का माप।

आलेख (आ+लेख) पुं० १. लिखना। २. लिखावट।

आलेख्य वि० १. लिखे जाने योग्य।
२. जो लिखा जाने को हो।
पुं० चित्र। तस्वीर।

आलेप (आ+लेप) पुं० लेप। मलहम।

—न पुं० १. लेप लगाने की क्रिया।
२. पलस्तर।

आलोक स० १. देखना। अवलोकन करना।
२. प्रकाश। रोशनी।
उ०—निरखि तर मिकर निकर को अरुन बरन आलोक। म० ५७५/४१६

—न पुं० अवलोकन। दृष्टि। चितवन।

आलोचक (आ+लोचक) वि० जाँच करने वाला। पर्यवेक्षक।

आलोच्य (आ+लोच्य) वि० आलोचना करने योग्य। जाँच करने योग्य।

आलोडन पुं० १. मथना। बिलोना।
२. मन में होने वाला ऊहापोह या सोच-विचार। ३. क्षोभ।

आलोल (आ+लोल) वि० १. हिलता-डोलता या लहराता हुआ। चंचल। २. क्षुब्ध।

आवंती स्त्री० आगमन।
उ०—आवंती जहँ कंतकी निज गृह जानै दर।
भि० I, १५६/१२३

आव[1] स्त्री० आयु।

आव[2] स्त्री० दे० 'आब'।

—दार वि० दे० 'आबदार'।

आवआदर (आव+आदर) पुं० आव-भगत। आदर-सत्कार।

आवक पुं० आमद। पहुँच।

आवज—आवझ पुं० ताशे की तरह का एक पुराना बाजा।
उ०—ताल पखावज आवज बीना मुरज बजावत।
नं० ७४/२६

आव अक० आना।

—नौ पुं० आगमन। उपस्थित होना।
उ०—स्यामा नवसत सजि सखि लै, कियौ बरसाने तैं आवनौ। सूर० १०/३४५२/११२५

—हार वि० आने वाला।
उ०—माघौ आवनहार भए।
सूर० १०/४२७७/५६७

आवनि[1]—**आवनी** स्त्री० अवाई। निकट आगमन।
उ०—नाहिं आवनि औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं। घ० क० ८८/६०

आवनि[2] स्त्री० अवनी। पृथ्वी।

आवभाव (आव+भाव) पुं० आव-भगत। आदर-सत्कार।

आवय पुं० अवयव।

आवरत पुं० दे० 'आवर्त'।

आवरदा—आवर्दा स्त्री० उम्र । आयु ।
उ०—नृप ऐसी आवर्दा पाइ ।
सू० १२/४६३५/१५६८

आवरण—आवरन पुं० १. आच्छादन । परदा ।
२. ढक्कन । ३. आघात रोकने वाली कोई वस्तु । यथा—ढाल ।

आवरा[1]—आवरो वि० (स्त्री० आवरी) अन्य । दूसरा ।

आवरा[2] वि० दीन । व्याकुल ।
उ०—घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै । घ० क० ५६/७३

आवर्त—आवर्त्त (आ+वृत्) पुं० १. घूमना । चक्कर लगाना । २. भँवर ।
उ०—उठै सिंधु के ऐन आवर्त मानौं ।
प० ४६/२८१
३. वर्ण्यालंकार का एक भेद ।
उ० —ये आवर्त बखानिजे, केसवदास सुजान ।
के० I, ६/११८

आवलि—आवली स्त्री० १. पंक्ति । कतार । २. श्रेणी ।

आवस[1] अव्य० अवश्य । निश्चित रूप से ।

आवस[2] (अ+वश) वि० बेवस । अवश ।

आवस[3] स्त्री० १. ओस । २. भाप ।
उ०—अंग उसीजै उदेग की आवस ।
घ० क० २४/५१

आवसति स्त्री० १. रात्रिकाल में विश्राम करने का स्थान ।
२. रात्रि ।
उ०—अवसथ, वसतिऽरु आवसति, धाँम, कुंज सुपवास । नं० ३/६४

आवसथ[1] (आ+वसथ) पुं० १. निवास-स्थान । घर ।
२. आबादी । बस्ती ।

आवसथ[2] पुं० व्रत-विशेष । उपवास ।

आवा पुं० दे० 'अवाँ' ।
उ०—आवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं ।
घ० क० ४२/६२

आवागमन—आवागौन (आवा+गमन) पुं० १. आना और जाना ।
उ०—बिन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ ।
नं० २६४/६३
२. जन्म-मरण का चक्र ।

आवाजाई स्त्री० दे० 'आवागमन' ।

आवाप—आवापो (आ+वप्) पुं० १. चारों ओर छितराना या बिखेरना ।
२. बीज बोना । ३. वृक्ष का थाला ।

आवार पुं० विलम्ब । देर ।

आवारजा पुं० जमा-खर्च की किताब । रोकड़-बही ।

आवाल पुं० वृक्ष का थाला ।

आवास (आ+वास) पुं० निवास-स्थान । गृह ।
उ०—निवृति, निसांतऽरु उद्वसित सरण, पस्त्य, आवास । नं० ३/६४

आवाहन पुं० १. बुलावा । निमन्त्रण ।
२. पूजन में मंत्र द्वारा देवता को बुलाना ।

आविरभाव—आविर्भाव (आविर+भाव) पुं० उत्पत्ति । प्राकाट्य ।
उ०—ताकैं गूढ़ कियो आविर्भाव ।
सूर० ६/१५/१५८
आविर्भूत भू०कृ० ।

आविली स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष ।

आविष्कार—आविसकार (आविस+कार) पुं० प्राकाट्य । नई उद्भावना । खोज ।

आविष्ट (आ+विष्ट) वि० १. आवेश युक्त ।
२. तल्लीन । मनोयोगी ।

आवृत (आ+वृत्) वि० १. ढका हुआ । आच्छादित ।
उ०—अनेक शक्ति करि आवृत सोहे परमातम ज्यौं ।
नं० १०४/३७
२. घिरा हुआ ।

आवृति स्त्री० १. किसी कार्य के बार-बार होने की क्रिया ।
२. पाठ का दोहराना ।

आवेग (आ+वेग) पुं० १. जोश । तैश ।
उ०—सो आवेग लच्छन तपन विभ्रम भ्रम ते जोइ ।
भि० II, ८४५/१५६
२. आतुरता । व्याकुलता ।

आवेदक वि० आवेदन या प्रार्थना करने वाला ।

आवेदन (आ+वेदन) पुं० १. निवेदन । प्रार्थना ।
२. अपनी दशा बताना ।
—पत्र पुं० प्रार्थना-पत्र । अर्जी । दरख्वास्त ।

आवेश—आवेस वि० दे० 'आवेस' ।
उ०—कछु जोबन आवेस लखि, बिन समझें जो नारि । कृ० ७१/१६
—ई वि० दे० 'आविष्ट' ।

आवेष्टन (आ+वेष्टन) पुं० १. चारों ओर से घेरने की क्रिया । घेराव । २. आच्छादन ।

आश स्त्री० आशा । उम्मेद ।

आशय पुं० अभिप्राय । तात्पर्य ।

आशर पुं० राक्षस । असुर ।

आशा स्त्री० उम्मेद ।
—तीत वि० आशा से अधिक ।

—प्रद वि० आशाजनक ।

आशिस—आशीष स्त्री० मंगल-कामना । आशीर्वाद । असीस ।

आशीर्वचन (आशिष्+वचन) पुं० किसी के कल्याण की कामना करते हुए बड़ों की ओर से कहे जाने वाले शुभ-वचन ।

आशीर्वाद (आशिष्+वाद) पुं० आशीर्वचन ।

आशु अव्य० आशु । शीघ्र । जल्दी ।

—कवि पुं० तुरन्त कविता बनाने में समर्थ कवि ।

—तोष वि० बहुत जल्दी या सहज में प्रसन्न हो जाने वाला ।

पुं० शिव । महादेव ।

आश्चर्य पुं० अचरज । अचम्भा । विस्मय । ताज्जुब ।

आश्रम—आस्रम (आ+श्रम) पुं० १. हिन्दुओं के जीवन की स्मृति मान्य चार अवस्थाएँ—ब्रह्म-चर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ।

उ०—चारि बरन चहूँ आश्रमनि कहत सुनत सुख होइ । के० २१/८०

२. कुटी । ऋषि-मुनियों के रहने का स्थान ।

उ०—मुनि-आश्रम सोभ धर्‌यो तिअहीं ।

भि० I, ३६/२२७

३. घर ।

आश्रय पुं० १. आश्रय । आधार । २. अवलम्ब । सहारा ।

उ०—सु पर्जाय क्रम सों जु इक आश्रय धरे अनेक ।

प० १८४/५५

वि० शरण या सहारा देने वाला ।

—ण पुं० आश्रय ।

—भूत वि० शरण्य । भरोसागीर ।

आश्रित (आ+श्रित) वि० १. आश्रित । अवलम्बित । २. किसी के भरोसे रहने वाला ।

पुं० १. दास । गुलाम । २. सेवक । नौकर ।

आषाढ़ पुं० दे० 'अषाढ़' ।

उ०—कहि 'केसवदास' आषाढ़ चल मैं न सुन्यौं श्रुतिगाथ हूँ । के० I, २७/१५८

—आ स्त्री० सत्ताइस नक्षत्रों में से बीसवें तथा इक्कीसवें नक्षत्रों का संयुक्त नाम । पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ।

—ई स्त्री० आषाढ़ माह की पूर्णिमा । गुरुपूर्णिमा ।

उ०—देखति आषाढ़ी प्रभा सखी बिसाखा संग ।

भि० I, २७२/४०

आस[1] स्त्री० दे० 'आशा' ।

उ०—रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिस घोरियै जू । घ० क० ६४/४६

—वारी वि० आशान्विता । आशा रखने वाली ।

आस[2] स्त्री० आशा नामक एक रागिनी ।

उ०—आस गुनी गुन फुनफुनी सायथ धूरिय धार ।

बो० १७/१२१

आस[3] पुं० असु । प्राण ।

उ०—मनो कर जोर पाँचो तत्व एक ठौर ह्वै (कै) आस लेन आपने कों धाये चहुँ ओर तें ।

र० ७३/३२८

आसकत (अ+शक्ति) स्त्री० सुस्ती । आलस्य ।

—ई वि० आलसी ।

आसक्त—आसकत (आ+सक्त) वि० १. अनुरक्त । किसी से अधिक लगाव होना ।

उ०—अतिहिं आसक्त जानि ।

सूर० १०/२७५४/२००

२. मोहित । लुब्ध ।

उ०—नैना निरखत, हरखत आसकत हैं ।

क० ६/३३

३. लीन । लिप्त ।

—इ स्त्री० १. अनुरक्तता ।

२. लीनता । लिप्तता ।

आसचर्ज पुं० दे० 'आश्चर्य' ।

उ०—कह्यो बसुदेव जगदीस आसचर्ज यह ।

सूर० १०/४२२१/५५६

आसते—आसतैं (फा०) अव्य० आहिस्ता । शनैः-शनैः । धीरे-धीरे ।

उ०—पौन करि आसतैं न जाउ उठि बास तैं ।

प० १६८/१२२

आसधीर पुं० निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत हरदेव जी के शिष्य और श्री हरिदास जी के गुरु ।

आसन पुं० १. आसन । बैठने का बिछावन । २. कुश का बना हुआ आसन । ३. हाथी का कंधा । ४. योगियों के बैठने का विशेष ढंग । ५. रतिबंध ।

उ०—तेरा आसन इक दिन माहीं ।

बो० ४५/११६

—ई स्त्री० छोटा आसन ।

—मूल पुं० गुरु का आसन ।

उ०—बैठि दूरि द्विज जनि छुवौ, गुरु को आसनमूल ।

के० III, १५/६५४

आसना (फा०) स्त्री० आशना । प्रेमिका ।

उ०—तेरी आसनाउ गुन गहौ तीर आइहै ।

क० २६/६

आसनाव (फा०) पुं० दोस्त । मित्र । प्रेमी ।

उ०—गोया आसनाव न थे कभी। ना० २१/८६

आसन्न (आ+सन्न) वि० १. समीपस्थ। निकटवर्ती।
२. शेष। अवसान।

आसपास—आसुपास (आस+पास) अव्य० १. अगल-बगल। इर्द-गिर्द। २. इधर-उधर।
उ०—राती दिन फेरै अमरालय के आसपास।
म० ६६/३१६

आसमान (फा०) पुं० आसमान, आकाश।
उ०—कहे बाक-बानी जिमि आसमान जाइगो।
गं० ८/३

आसमुद्र (आ+समुद्र) वि० समुद्र से वेष्टित।
उ०—सब आसमुद्र की भू सोधाइ।
के० II, ३७/३४४

आसय—आसै पुं० दे० 'आशय'।
उ०—सो परिकर आसय रहित जहाँ विसेषन ठान।
प० १००/४४

आसर पुं० दे० 'आशर'।
उ०—काहू कहुँ सर आसर मारिय।
के० I, ३०/२४६

आसरम पुं० दे० 'आश्रम'।
उ०—बरन-आसरम घर बिस्तरैं।
सूर० ३/१३/११३

आसरा—आसरो—आसरौ पुं० दे० 'आश्रय'।
उ०—जब उनकी आसुरो कर्‌यो जिय, तबहिं छोड़ि गए हैं। सूर० १०/२२२७/६७

आसव (आ+सव) पुं० मदिरा। मधु।
उ०—रूप-सुधा-आसव छक्यो, आसव पियत बनै न।
बि० ६५०/२६७

आसा पुं० १. आशा। भरोसा।
उ०—धरें याकी आसा याकों आसा धरे देखिये।
भि० I, ४६६/६७

२. तृष्णा।
उ०—सेनापति जामैं जग आसा ही सौं भटकत।
क० ५४/१७

३. दण्ड।
उ०—जोगी कैसी आसा पाइ रूप मानियतु है।
बो० ३७/१०३

—आछन्न वि० आशा को ढँकने वाला।
उ०—आसाछन्न दुरदिन दीस्यो सुरपुर माँहि।
उ० १२/१२

—द्रुम पं० आशा के अवलम्ब के लिए वृक्ष।
उ०—चलन कह्यो उज्जैन आसाद्रुम बिक्रम उतै।
बो० ३०/१३४

आसान (फा०) वि० आसान। सहज। सरल। सीधा।
—ई स्त्री० सहजता। सरलता। सुगमता।

आसार (अ०) पुं० १. आसार। लक्षण। २. (दीवार की) चौड़ाई।

आसावरी स्त्री० प्रातःकाल गाई जाने वाली एक रागिनी।

आसावसन वि० दिगम्बर। नग्न।

आसिक (अ०) पुं० (स्त्री० आसिका) आसिक। प्रेमी।
उ०—सो आसिक सब जगत सराहै। बो० ४७/२६
—ई स्त्री० प्रेम करने की वृत्ति। प्रीति।
उ०—दो दो अनोखियै कैसें सधैं इतै आसिकी ये उतै कानि कका की। बो० ८६/१५

आसिख—आसिष—आसीस—आसिषा
स्त्री० आशीष। आशीर्वाद।
उ०—आसिष पाइ, उपाइ बिनु, लाख भाँति अभिलाखि। शृं० ५७/१४५
—बानी स्त्री० आशीर्वाद। वचन।
उ०—यह प्रभु की है आसिष-बानी।
सूर० १०/८८६/४५१

आसिखा (अ+शिखा) वि० बिना शिखा वाला।
उ०—आसिखान की सिखा सी, सुख संपति पृथुल की। दे० I, १६/५०

आसिलो (अ० वसीलः) पुं० जरिया। बहाना।
उ०—कहि धौं कछु आसिलो भयौं। कै काहू बन जीवन हयौ। के० III, ८/५०६

आसीन वि० (स्त्री०—आसीना) आसीन, बैठा हुआ। आसन जमाए हुए।
उ०—नृप ता पर बैठो आसीना। बो० ३७/१६४

आसीबिष (आशीविष) पुं० वह साँप, जिसका जहर बहुत जल्दी चढ़ता हो।
उ०—आसीविष, राकसनि, दैयतनि दै पताल।
के० I, ६८/१२६

आसीसा (आ+शीर्ष) पुं० तकिया।

आसु पुं० दे० 'आशु'।
क्रि०वि० आशु। तेज। शीघ्र।
उ०—परधन रति सो आसु चलि नैकु न उर लपटाइ। रस० १०६७/२०३

आसुतोष पुं० दे० 'आशुतोष'।
उ०—रोष में भरोसो एक आसुतोष कहि जात।
कवि० १७२/८४

आसुर पुं० असुर। राक्षस।
उ०—चढ़ि जाइ हिम गिरि हाँकि कै लपटाइ आसुर अजब सों। प० ६६/१४
—ई वि० असुर-सम्बन्धी।
स्त्री० राक्षस जाति की स्त्री। दानवी।
उ०—पन्नगी नगी-कुमारि आसुरी सुरी निहारि।
के० I, ४/८

आसू अव्य० ओर ।
उ०—लगै बाल के चार आसू उलंघै ।
बो० ३३/१२३

आसेर पुं० १. किला । दुर्ग । २. एक स्थान का नाम ।
उ०—अरब ऐराक आबू आसेर अवध अंग ।
के० III, ६६/६२६

आसोज पुं० दे० 'आश्विन' ।

आसौं—आसौ अव्य० इस वर्ष । इस साल ।
उ०—ओर तें याने चराई पै हैं अब ब्यानी बर्याइ मो भागिन आसौं । प० ५५/३१८

आस्तिक वि० वेद, ईश्वर और परलोक को मानने वाला ।

आस्तीक पुं० एक ऋषि जिन्होंने जनमेजय के नागयज्ञ में तक्षक के प्राण बचाये थे ।
उ०—आस्तीक तिहिं अवसर आयौ ।
सू० १२/४६३६/५८४

आस्था स्त्री० १. श्रद्धा । निष्ठा । २. आदर ।

आस्पद पुं० १. स्थान । २. पद । ३. वंश । अल्ल ।

आस्य (आस्य) पुं० चेहरा । मुख ।
उ०—अमियमय आस्य तेरो । भि० I, ६२/१६१

आस्वाद (आ+स्वाद) पुं० १. स्वाद लेना । २. रसानुभव ।
—इति वि० स्वाद लेने वाली ।
उ०—अधरामृत आस्वादिनि रसना ।
सूर० १०/३६६६/४२२
—न पुं० १. किसी वस्तु को खाकर उसका स्वाद मालूम करना । २. रसानुभूति ।

आश्वास—आस्वास (आ+श्वास) पुं० १. साँस लेना । २. दिलासा देना । ढांढस बँधाना । सान्त्वना ।
— इत वि० सान्त्वना दिया हुआ ।
उ०—पुनि आस्वासित कीनी मही । नं० १/१६२
—न पुं० सान्त्वना देना ।

आस्विन—आश्विन पुं० आश्विन, कुँवार का महीना ।
उ०—आस्विन सुदि दसमी तिथि जबहीं ।
बो० २२/८८

आह[1] अव्य० दुःख । पीड़ा । शोक । पश्चात्ताप आदि का सूचक एक अव्यय ।
पुं० आर्त्त-निवेदन ।
उ०—दृगपंथिन की यह आह दई ।
शृं० २६५/७५७

आह[2]**—आहु** २. साहस । बल ।
उ०—गह्यो राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर-समेत । बि० ३५५/१४७

आहचरज पुं० दे० 'अचरज' ।
उ०—साहचरज सराहे आहचरज भरति क्यों ।
दे० I, ११३/६६

आहट स्त्री० १. ध्वनि से मिलने वाला आभास । २. खटका ।
उ०—नाहर सी ननदी निगोड़ी फिरै आहट कों ।
ठा० १४/६५

आहत (आ+हत) वि० घायल । जख्मी ।
—इ स्त्री० आघात । चोट । घाव ।

आहन (फा०) पुं० लोहा ।
उ०—आहननि खोदे खंभ, पाहन पटक के ।
दे० I, ६६/२३८

आहर[1] (अहः) पुं० (स्त्री०—आहरी) १. काल । समय । २. दिन । दिवस ।

आहर[2] पुं० छोटा तालाब ।
—ई स्त्री० पोखर । तालाब ।

आहर[3] पुं० आहार ।

आहरण—आहरन (आ+हरण) पुं० छीनना । लूटना ।

आहर्ता—आहर्त्ता (आ+हर्त्ता) वि० १. हरण करने वाला । २. अनुष्ठान करने वाला ।

आहव पुं० १. चुनौती । ललकार । २. युद्ध । संग्राम ।
उ०—आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संग, सभीक । नं० १८१/८४
३. यज्ञ ।
—न पुं० १. युद्ध । २. यज्ञ ।

आहाँ स्त्री० हाँक । पुकार ।
अव्य० अस्वीकृति, वर्जन आदि का सूचक शब्द ।

आहा अव्य० आश्चर्य एवं हर्ष सूचक अव्यय ।

आहार—आहारु पुं० भोजन । खाद्य-पदार्थ ।
—विहार पुं० खान-पान । रहन-सहन ।

आहारिज वि० वेशभूषा सम्बन्धी ।
उ०—आहारिज है तीसरो चौथी सातुकि जोइ ।
र० ६६६,१३४

आहार्य्य वि० १. हरण किये जाने योग्य । २. आहार (भोजन) किये जाने योग्य ।

आहाव पुं० १. छोटा तालाब । २. युद्ध । ३. आह्वान । आमन्त्रण ।

आहि[1] स्त्री० हाय । आह ।
उ०—आहि आहि करत औरंग सहसोलिया ।
भू० ४६२/२१६

आहित वि० १. रखा हुआ । स्थापित किया हुआ । २. बन्धक रखा हुआ । रेहन रखा हुआ ।

आहितुंडिक (अहि+तुंड+इक) वि० संपेरा । साँप पकड़ने वाला ।

आहुक पुं० भोजवंशी राजा अभिजित के पुत्र का नाम। आहुक के दो पुत्र थे—देवक और उग्रसेन। देवक श्री कृष्ण के नाना थे। कंस उग्रसेन का पुत्र था।

आहुति स्त्री० देवता के उद्देश्य से मन्त्रपाठ पूर्वक अग्नि में होम की जाने वाली सामग्री।
उ०—आहुति दीनी सब सुखकारी।
के० II, ६/२५४

आहूत वि० आमन्त्रित। निमन्त्रित। बुलाया हुआ।

आह्लाद पुं० प्रसन्नता। हर्ष। आनन्द।
—जनक वि० आनन्दप्रद। हर्षप्रद।

आह्वान पुं० १. आवाहन। बुलाना। २. आमन्त्रण। ३. पुकारना।

आह्निक (अह्न+इक) वि० दैनिक। रोजाना का।
पुं० दैनिक कृत्य।

इ¹ नागरी वर्णमाला का तीसरा स्वर वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान तालु और प्रयत्न विवृत है।

इ² सर्व० इस।
उ०—इ विधि ब्याहु माधी कर भयऊ।
बो०३५/२२७

इंग¹ पुं० १. संकेत। इशारा। २. चिह्न। निशान।
—इंगित पुं० संकेत। मन का भाव बताने वाली अंगचेष्टा।
उ०—सूचक पिय अपराध को इंगित कहिये मान।
प० ६३२/२११
वि० इशारा किया हुआ।
—चेष्टा स्त्री० इशारेबाजी। इशारा करने की चेष्टा।

इंग² पुं० दे० 'इंगव'।

इंगला स्त्री० इड़ा नाड़ी, यह शरीर के वाम भाग में होती है।

इंगव पुं० आगे निकला हुआ दाँत। जैसे हाथी या सूअर का।
उ०—मानौ बियोग-बराग हन्यो जुग सैल की संधिनि इंगवै डारी। के० I, १०/११६

इंगुदी स्त्री० हिंगोट नाम का पेड़।

इंगुर पुं० दे० इंगुर।
उ०—जावक सुरंग मैं न, इंगुर के रंग मैं न।
गं० ४१/१४
—औटी स्त्री० ईंगुर या सिन्दूर रखने की डिब्बी। सिंदोरा।

इँच— अक० खिचना। आकृष्ट होना।
उ०—इँचे, खिचे इत उत फिरत ज्यों दुनारि के कंत। प० ४६/८८
सक० खींचना।
इँचत व० कृ०। इँच्यौ भू० कृ०।

इंछ स्त्री० इच्छा।
—सक० इच्छा करना। चाहना।

इंडहर पुं० उर्द और चने कीं दाल की पिठ्ठी से बनी हुई सब्जी।
उ०—अमृत इँडहर है रस सागर।
सूर० १०/१८३१/५४६

इँडुरी स्त्री० कपड़े या सुतली की गोलाकार छोटी गद्दी जिसे सिर पर बोझ उठाते समय नीचे रखते हैं। गेंडुरी।
उ०—काहू की इँडुरी फटकावैं।
सूर० १०/१३६६/५८६

इंदा स्त्री० नाम-विशेष।
उ०—इंदा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि।
सूर० १०/१६१८/६४०

इंदिरा—इन्दिरा—इंदरा स्त्री० लक्ष्मी।
उ०—इंदिरा के मंदिर में संपति सिधाय है।
के० I, ६/२१
—मंदिर पुं० नील कमल।
उ०—देवजू इंदिरा मंदिर की नव सुंदरि इंदरा मंदिर नैनी। दे०

इंदीबर—इंदीवर (इंदीवर) पुं० नीलकमल।
उ०—इंदीबर सो बर बरन मुख ससि की अनुहार।
प० ३१६/७१

इंदु—इंद पुं० चन्द्रमा।
उ०—इंदु के उदोत तें उकीरी ऐसी काढ़ी सब।
के० I, १५/१६०
—उपल पुं० चन्द्रकान्त मणि। (एक मणि जो चन्द्रमा से द्रवित होती है।)
उ०—इंदु-उपल उर बाल कौ कठिन मान में होत।
म० १४७/३८०
—कर पुं० चन्द्रमा की किरण।
—कला स्त्री० चन्द्रमा की कला।
उ०—मरकत-भाजत सलिल गत इंदुकला कैं बेख।
बि० १८६/८०
—जा स्त्री० नर्मदा।
—वदना पुं० छन्द-विशेष।
वि० चन्द्रमुखी।
उ०—इंदुबदना कहत मोहि बनमाल।
भि० I, १७०/२००

—वधू स्त्री० चन्द्रमा की पत्नी ।
उ०—इंदुबधू अरविंद के मंदिर इंदिरा कौं मनो देखन आई । के० I, ३०/२०२

—बिंब पुं० १. चन्द्रमण्डल ।
२. चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब ।
उ०—नैनन कों मुख देत यह इंदबिंब सरसात । प० ३४१/७५

—मुखी वि० चन्द्रमुखी ।
उ०—इंदुमुखी लखि इन्दु लै जै है । दे० I, ६८१/१६१

इंदुका पुं० दे० 'इँडुरी' ।

इंदुमती स्त्री० राजा अज की पत्नी ।
उ०—को है दमयंती इंदुमती रति राति दिन । के० I, ४२/१२४

इंदुर—इंदूर पुं० चूहा ।
उ०—सूरदास इंदूर सदन मैं, पैठ्यौ बड़ौ भुजंग । सूर० १०/२४१०/१३२

इंद्र—इंदर पुं० वर्षा के देवता । देवराज इंद्र ।
उ०—गिरि कर धारि इन्द्र-मद मरद्यौ । सूर० वि०/२७/८
वि० १. ऐश्वर्यवान । २. श्रेष्ठ । उत्तम ।

—आनी स्त्री० इन्द्र की पत्नी । शची ।
उ०—कह्यौ इन्द्रानी मो पै आवै । सूर० ६/७/१३३

—आयुध पुं० इन्द्र का आयुध । वज्र ।
उ०—दधि-सुता-सुत-अवलि उर पर, इंद्र-आयुध जानि । सूर० १०/२०८६/६८

—कील पुं० मन्दराचल पर्वत ।

—गोप पुं० बरसाती लाल रंग का एक कीड़ा । बीर बहूटी ।
उ०—इंद्रगोप, खद्योत, कुज, केसरि कुसुम बिसेषि । के० I, २८/११५

—चाप पुं० इन्द्रधनुष :
उ०—सूरकिरनि करि जल परसियै मानौ इन्द्रचाप दरसियै । के० III, १६/५७७

—जाल पुं० दे० 'इंद्रजाल' ।

—जित—जीत पुं० इन्द्र को जीतने वाला । रावण का ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद ।
उ०—लखत इंद्रजित कों हनहुं तो मैं लछमन बीर । प० २६१/६८

—तरुवर पुं० कल्पवृक्ष ।
उ०—लोचन बचन गति बिन, इतनोई भेद इंद्रतरुबर अरु इंद्र इंद्रजीत सों । के० I, ७६/१७५

—धनुष पुं० वर्षा ऋतु में कभी-कभी धनुषाकार सात रंग का आकाश में दिखाई पड़ने वाला अर्धवृत्त ।
उ०—हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष-रँग होति । बि० ४२०/१७२

—नाग पुं० इन्द्र का हाथी । ऐरावत ।
उ०—चंदन में नाग मदभर्‌यौ इन्द्र-नाग विषधर्‌यौ । भू० ४६/१३६

—नील पुं० नीलम ।
उ०—नैन इंद्रनील नख लाल बिलसत हैं । क० २८/६

—पीनाक पुं० इन्द्रधनुष ।
उ०—तहाँ इंद्रपीनाक सी बाँक भौंहैं । बो० ३६/११८

—पूर—पूरी पुं० अमरावती । स्वर्ग ।
उ०—यह सुनि असुर इंद्र-पुर आइ । सूर० ६/५/१३१

—वज्रा पुं० १. इन्द्र का वज्र ।
उ०—है इन्द्रबज्रा मुसुकानि तेरी । भि० I, ६/२४८
२. छंद विशेष । दे० 'इंद्रवज्रा' ।

—वधू स्त्री० १. बीर बहूटी ।
उ०—भूमि सोहति इंद्र-बधू की पत्यारी । शृं० ८६/२३३
२. शची ।
उ०—इंद्रवधू घर घरनिहि दई । के० III, ६/५२६

—लोक पुं० स्वर्ग ।
उ०—इंदरलोक में होइ कुलाहल । गं० १०६/३४

इंद्रकोश पुं० १. खाट । पलंग । २. छज्जा ।

इंद्रजाल (इन्द्र+जाल) पुं० जादू की विद्या । तिलस्म ।
उ०—इंद्रजाल यह काम को लोक करत निरधार । प० ३२७/७३

—इ वि० इन्द्रजाल करने वाला ।
उ०—कोऊ जसुधा के औतर्‌यो जो इंद्रजाली है । प० ७२१/२३१

—इक पुं० दे० 'ऐन्द्रजालिक' ।
उ०—नाथ्यो जो फनिंद इंद्रजालिक गुपाल । दे० I, ७७/१६

इंद्रजीत पुं० १. मेघनाद ।
२. मधुकरशाह के पुत्र तथा केशवदास के आश्रयदाता राजा इन्द्रजीतसिंह ।
उ०—इंद्रजीत ताको अनुज । के० I, ८/२

इंद्रद्युम्न पुं० एक राजा जो अगस्त्य ऋषि के शाप से गज हो गया था और ग्राह से युद्ध होने पर जिसका नारायण ने उद्धार किया।
उ०—राजा इंद्रद्युम्न कियौ ध्यान।
सूर० ८/२/१४२

इन्द्रप्रस्थ पुं० पाण्डवों के द्वारा बसाया गया दिल्ली के निकट का एक नगर।

इंद्रबज्र—इंद्रबज्रा पुं० एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं।
उ०—आदि तगन द्वै जगन पुनि अंत देहु गुरु दोय।
ग्यारह अक्षर को सुमति इंद्रबज्र कहि लोय।
के० II, २६/४३६

इंद्राइन—इंद्रायन—इन्द्रायण पुं० एक लता जिसमें बड़ा सुन्दर फल लगता है, किन्तु कड़वा होता है।

इंद्रानुज—इन्द्रानुज (इन्द्र+अनुज) पुं० नारायण। विष्णु।

इद्रावरज पुं० दे० 'इंद्रानुज'।

इंद्रि—इंद्री—इंद्रिय—इन्द्रिय पुं० शरीर के अवयव जिनसे बहिर्जगत् का अनुभव होता है या शारीरिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। ये दस हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय।
उ०—खं इन्द्रिय दुख देत हैं। नं० ६/५५

—गन स्त्री० इन्द्रियों का समूह।
उ०—इन्द्रियगन, मन, प्रान इनहिं परमातम भायें।
नं० ६/२०

—गोचर वि० इन्द्रियगम्य।

—निग्रह पुं० इन्द्रियों का दमन।

इकंक अव्य० निश्चित रूप से। निश्चय ही।
उ०—घटती इकंक होन लागी लंक-बासर की।
भि० I, १२५/११६

इकंग वि० एक अंग वाला। एकाकी। अकेला।
उ०—अंग अनंग तरंगनि जानि इकंगनि ये सब संगिनि साजै। दे० I, २८२/६५

पुं० अर्धनारीश्वर। शिव।

इकंत वि० अकेला।
उ०—बैठि इकंत मंत्र दृढ़ कीन्हौ।
सूर० १०/२६४०/२७०

पुं० १. एकांत।
उ०—घरु जानि इकंत अनंद ते चंचल।
म० २५/२०६

२. निर्जन स्थान।
उ०—बहुरि बिरहि-जूह डरपि इकंत गौ।
शृं० ३४४/७०३

क्रि०वि० एक ओर लगा। भली प्रकार।
उ०—मदन लाज बस तियनयन देखत बनत इकंत।
प० ४६/८८

इक—इकनि—इक्क वि० एक।
उ०—इकनि कर दधि दूध लीन्हे, इकनि कर दधि जात। सूर० १०/१६०१/६३६

अव्य० मात्र। केवल।
उ०—लखौ राम के राज में इक ससि माहिं कलंक।
प० १६०/५६

—खंड पुं० एकचक्र। एकच्छत्र।
उ०—इकखंड मंड महीप। बो० १६/२१७

—चक वि० एकटक। निर्निमेष।
(अव्य०) टकटकी लगा कर।
उ०—सुंदर बदन इकचक लेखियत है।
क० ४/६०/८६

पुं० एकचक्र, सूर्य।

—छत वि० एकच्छत्र। चक्रवर्ती।

—जोर अव्य० एक साथ। इकट्ठा।

—टक अव्य० टकटकी बाँधकर। निर्निमेष।
उ०—लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै।
सूर० १०/७३/३३३

—ठाई स्त्री० एक जगह।
उ०—रबि-ससि-कांति सु उग्र भवन मैं, ठाढ़ी ही इकठाई। सूर० १०/३६७३/१८४

—ठौर पुं० (स्त्री०—इकठौरी) एक जगह। एकत्र।
उ०—ह्वै इकठौर 'सूर'-प्रभु प्यारी।
सूर० १०/१६६०/५०

—दंत पुं० एक दाँत वाला। गणेश।
उ०—लंबोदर, हेरंब, पुनि, द्वैमातुर इकदंत।
नं० १२४/७६

—वार—वारगी—वारिक क्रि०वि० एक बार।
उ०—जसुदा के कोरे इकवारिक कुरै परी।
दे० I, २/३

—वीस वि० दे० 'इक्कीस'।
उ०—ग्राम दए इकवीस तब ताके पाँय पखारि।
के० I, २०/१००

—लरा—लड़ा पुं० एक लड़ वाला।

—संग क्रि०वि० एक साथ।
उ०—एकहि मौन दुरे इकसंग ही अंग सो अंग छुवायो कन्हाई। म० १६/२०४

—सर वि० १. अकेला।
२. इकहरा। एक परत का।

इकइस—इकईस सं० दे० 'इक्कीस'।
उ०—मारे छत्री इकइस बार। सूर० ६/१३/१५७

इकट्ठां—इकठे वि० एक स्थान पर जमा किया या रखा हुआ। एकत्र किया हुआ।
उ०—इकठे उभय संभु से भये। नं० १२९/१२८

इकठानि क्रि०वि० एकत्र। इकट्ठा।
उ०—फाग के द्यौस गुपालन ग्वालिनी कैं इकठानि कर्‌यो मिसि काउ। प० ३४८/१५५

इकतरा पुं० एक-एक दिन के अन्तर पर आने वाला ज्वर। तिजारी।

इकता स्त्री० एकता।
उ०—इकता कारज हेतु की कहत सु कबिंद। प० २८०/६७

इकतान (एक+तान) वि० एक-सा। एक-रस।

इकतार वि० बराबर। एक समान।
अव्य० निरन्तर। लगातार।
उ०—सांझ तैं भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति। घ० ६/४४

इकतारा पुं० सितार की तरह का एक बाजा जिसमें एक ही तार रहता है।

इकत्र वि० एकत्र। इकट्ठा।

इकबाल (अ०) पुं० १. प्रताप। २. भाग्य। ३. स्वीकार करना।

इकरार (अ०) पुं० १. किसी को किसी कार्य के करने का वचन देना। २. प्रतिज्ञा। वादा।

इकला—इकिला वि० (स्त्री०—इकली) अकेला। असहाय।
उ०—इकली डरी हौं घनु देखि कै डरी हौं खाइ। क० ३०/६२

इकलाई—एकलाई स्त्री० १. एक पाट का महीन और बढ़िया दुपट्टा।
उ०—कंचित कुसुंभी कोरदार इकलाई की। प० ४१/३१४
२. अकेलापन।

इकलौता वि० अपने बाप का एकमात्र पुत्र।

इकसठ सं० इकसठ। ६१।
पुं० इकसठ का सूचक अंक। ६१।

इकसार—इकसारा वि० सम। बराबर। एक समान।
उ०—नीच-ऊँच हरि के इकसार। सूर० ७/८/१४०

इकसूत वि० एक साथ। इकट्ठे।
उ०—तीन जने इकसूत हो बुकरे लाए माख। बो० ७२/७५

इकहत्तर सं० इकहत्तर। ७१।
उ०—चतुर जुगी बीतें इकहत्तर, करै राज तब लगि मनवंतर। सूर० १२/४/५८३

इकहरा—इकेहरा वि० (स्त्री०—इकहरी) १. एक ही परत वाला। एकहरा।
उ०—कंचन किनारी वारी सारी तासुकी मैं आस-पास झूमी मोतिन की झालरैं इकहरी। दे० I, ३२५/१०३
२. छरहरा। दुबला-पतला।

इकहाइ—इकहाई—इकहाऊ (एक+हाई) क्रि० वि० १. एक साथ। एक बारगी। इकट्ठा।
२. अचानक। एकाएक।
उ०—सीत भीत हरषादि तें उठै रोम इकहाइ। प० ४०४/१६८

इकाकी वि० दे० 'एकाकी'।

इकादसी स्त्री० दे० 'एकादशी'।

इकान्त वि० दे० 'एकान्त'।

इकीस—इक्कीस सं० इक्कीस। २१।
उ०—तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि इकीस सबै। कवि० ७/२
—लरा पुं० इक्कीस लड़ियों की माला।

इकैठ वि० इकट्ठा। एकत्र।

इकोतर वि० एक अधिक। एकोत्तर।

इकोसो—इकौसौ—इकौं (एक+वास) वि० (स्त्री०—इकौसी) १. अकेला।
उ०—अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकैं। घ० २४०/१७०
२. एकान्त।
उ०—दुरि आप नए हू इकौसैं मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं। घ०क० २८१/१८६

इकौंना वि० १. अनुरूप। एक-सा।
२. अद्वितीय। बेजोड़।

इकौज स्त्री० काक वन्ध्या। स्त्री जिसके एक ही बच्चा होकर फिर न हो।

इक्क वि० दे० 'एक'।
उ०—इक्कहि तुरंग इक्कहि करिहि किमि सुरेन्द्र सरवर करई। भू० १३४/१५३

इक्का पुं० दो पहियों की एक घोड़े द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी।
—दुक्का वि० अकेला-दुकेला। एक-दो।

इक्कावन सं० इक्यावन। ५१।

इक्कासी सं० इक्यासी। ८१।

इक्की स्त्री० ताश का वह पत्ता जिसमें एक बूटी हो।

इक्षु—इच्छु पुं० ईख। गन्ना।
—काण्ड पुं० गन्ने का पोर।
—गंधा स्त्री० गोखरु।

—ज पुं० १. चीनी । शक्कर । २. खाँड़ । ३. गुड़ । ४. राब । ५. बूरा ।
—रस पुं० ईख या गन्ने का रस ।
—सार पुं० दे० 'इक्षुज' ।
इक्षुप्र पुं० बाण । तीर ।
इक्षुप्रमेह पुं० वह रोग जिसमें मूत्र के साथ शर्करा आये । मधुमेह ।
इक्षुमती स्त्री० कुरुक्षेत्र के समीप बहने वाली एक नदी ।
इक्ष्वाकु—इच्छ्वाकु पुं० सूर्यवंश के प्रथम सम्राट । वैवस्वत मनु के पुत्र । इन्होंने अयोध्या नगर को अपनी राजधानी बनाया था । इनके पुत्र का नाम कुक्षि था । श्रीरामचन्द्र जी इसी राजवंश में हुए थे ।
इक्ष्वालिका स्त्री० १. सरपत । काँस । २. मूँज । ३. नरकुल । नरकुट ।
इखु—इषु पुं० बाण ।
इच— अक० खिंचना । खिंच जाना ।
—नि स्त्री० आकर्षण ।
उ०—मुरि कै इचनि सों न क्यों हूँ मन ते मुरैं । घ० २३६/१६६
इचत व०कृ० । इच्यौ भू०कृ० ।
इचक— अक० खीस काढ़ना । क्रोध में दाँत पीसना ।
इच्छ सक० इच्छा करना । चाहना ।
—आ स्त्री० १. लालसा । अभिलाषा । आकांक्षा चाह ।
उ०—तामहँ क्यों रिपि इच्छ बखानी । के० II, १४/३५८
२. तृष्णा ।
—आचारी वि० स्वेच्छाचारी । मनमौजी ।
—इत वि० चाहा हुआ । अभिलषित ।
—उ—उक वि० चाहने वाला । अभिलाषी ।
इच्छन (ईक्षण) पुं० १. नेत्र । २. दृष्टि ।
इच्छाभेदी पुं० एक विरेचन दवा, जिसे यथाविधि सेवन करने से जितने चाहें दस्त होते हैं ।
इच्छुका स्त्री० नदी-विशेष ।
उ०—उत्पलावती इच्छुका, भैंमरथी सुभकारि । के० III, १७/६६६
इजति स्त्री० दे० 'इज्जत' ।
उ०—पति पातसाह की इजति उमरावन की । म० १३१/३२२
इजाफा (अ०) पुं० वृद्धि । बढ़ती । इज़ाफ़ा ।
उ०—स्तन, मन, नैन नितम्ब को बड़ो इजाफा कीन । बि० २/४

इजार (फा०) स्त्री० पाजामा ।
उ०—लसत गूजरी ऊजरी बिलसत लाल इजार । म० ६६/२२१
इजारदार वि० ठेकेदार । एकाधिकारी ।
इजारा—इजारो—इजारौ (अ०) पुं० ठेका । एकाधिकार ।
इजै स्त्री० १. अजय ।
उ०—इजै बिजै दोऊ आपस में निरए बिधना आनि । सूर० १०/१६६६/५२
२. मान । प्रतिष्ठा । ३. अधिकार ।
इज्जत (अ०) स्त्री० प्रतिष्ठा । मर्यादा । मान ।
इज्तिराब—इज्तराबी पुं० १. व्याकुलता । बेचैनी । बेताबी । घबराहट । व्यग्रता ।
उ०—इस होरी खेल बिच, इतनी इज्तराबी क्या । ना० ४६/१६६/१८५
२. आतुरता । जल्दी । जल्दबाजी ।
इज्य[1] वि० पूज्य । माननीय । आदरणीय ।
इज्य[2] पुं० बृहस्पति । देवाचार्य ।
इज्या स्त्री० १. दान । २. यज्ञ । ३. पूजा । अर्चा ।
इटौरिहा पुं० इटौरा के क्षत्रिय ।
उ०—रन-अटल बीर इटौरिहा जे रन जुरत सिर-मौरिहा । प० ३५/८
इठला— अक० इतराना । इठलाना ।
उ०—हूट्यौ दै इठलाइ, दृग करै गँवारि सुवार । बि० ६३/४३
इठलात, इठलाति व०कृ० ।
—हट—हटी स्त्री० १. गर्व । घमण्ड । २. इठलाने का भाव ।
उ०—खरैं अदब, इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु । बि० ३६०/१४६
इठाई स्त्री० मित्रता । दोस्ती ।
उ०—खारिक खात न दार्यौंइ दाख न माखन हूँ सहुँ मेटी इठाई । के० I, ३६/८६
इठि स्त्री० सखी ।
उ०—चौपा इठि इतनी मन माही । भि० I, १२८/१६५
इड़ा—इडा स्त्री० १. पृथ्वी । २. बुद्धि ।
उ०—इडा अरब्बिन जौ बसै रसनानि मंडि समग्र । भि० I, ३७/२२०
३. वैवस्वत मनु की पुत्री का नाम, जो चन्द्रपुत्र बुध को ब्याही थी । इसी के गर्भ से इतिहास प्रसिद्ध राजा पुरूरवा का जन्म हुआ था ।

४. बाईं ओर की एक नाड़ी ।

उ०—इड़ा पिंगला गंगा जमुना, सुषमन निरपद नारी । सूर० १८१/६२७

इड़िया— अक० हठ करना ।

—ना वि० हठ पकड़े हुआ (व्यक्ति) ।

उ०—आज इड़ियाने छिड़ियाने कैसे डोलो हो । ठा० २७/६६

इत क्रि०वि० इस ओर । इधर । यहाँ ।

उ०—कहि हौं कहा जाइ घर मोहन डरपति हौं इतई । कुं० ६२/४२

—उत क्रि०वि० इधर-उधर ।

उ०—पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार । सूर० वि०/६६/२६

इतनक—इतनिकु वि० इतना-सा ।

उ०—ए करों इतनिकु वचन उलटि न कहों । कुं० २८०/६७

इतना—इतनों—इतनौ वि० (स्त्री० इतनी) इस मात्रा या परिमाण का ।

उ०—घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा । घ० क० १६४/१४६

इतबार (अ०) पुं० एतबार । विश्वास ।

उ०—राखैं मुख ऊपर हूं जे न इतबार हैं । क० ४२/१३

इतमाम (अ०) पुं० प्रवन्ध । व्यवस्था ।

उ०—जहीं जायँ पावैं तहाँ बड़ आदर इतमाम । बो० १७/६६

इतर[1] अव्य० अन्य । दूसरा ।

उ०—इतर धातु पाहनहिं परसि कंचन ह्वं सोहै । नं० ५४/६

वि० १. नीच । तिरस्कृत । २. सामान्य ।

इतर[2] पुं० इत्र । पुष्पसार । सुगन्धित द्रव्य ।

इतरा— अक० गर्व करना । इठलाना । मचलना ।

उ०—अजितेंद्रिय नर ज्यौं इतराइ । नं० २०/२५०

इतरात व०कृ० ।

—औंहाँ वि० इतराहट सूचित करने वाला । गर्व-सूचक ।

—न—व पुं० १. गर्व । ठसक ।

२. अकड़ । ऐंठ ।

—हट स्त्री० दे० 'इठलाहट' ।

उ०—जोबन के इतराहट सी अठिलाति, अठोठनि ओठन ऐंठी । दे० I, २८०/६५

इतराज—इतराजी (अ०) पुं० १. ऐतराज । आपत्ति । निषेध ।

उ०—इतराजी करिबे कौं सब-सब पै तयार है । ठा० ३१/७०

२. अप्रसन्नता । नाराजी ।

इतरेतर अव्य० आपस में । परस्पर ।

इतरेद्यु क्रि०वि० अन्य दिवस । दूसरे दिन ।

इतवार पुं० रविवार ।

इतस्ततः क्रि०वि० इधर-उधर ।

इताअत (अ०) स्त्री० १. अधीनता । ताबेदारी ।

२. आज्ञापालन ।

इताति स्त्री० दे० 'इताअत' ।

उ०—करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल, को है जगजाल जो न मानत इताति है । तु० ३०/२१४

इति अव्य० १. समाप्ति बोधक अव्यय । २. इतना ही ।

उ०—बिराजति एक अंग इति बात । सूर० १०/२११२/७३

स्त्री० समाप्ति । अन्त ।

—उत क्रि०वि० इधर-उधर ।

उ०—इति उति दोऊ ओर झुकि आनि बीच ठहराइ । रस० ११६/२६

—क वि० इतनी ।

उ०—पल सूझै-सूझै बहतु बूझै इतिक मसाल । बो० ४७/१०५

—कथा स्त्री० अविश्वसनीय । अर्थ-शून्य कथा ।

—कर्त्तव्य वि० अवश्य करने योग्य ।

पुं० उचित कर्म ।

—वृत्त पुं० इतिहास । पुरानी कथा । भूतकालीन घटना ।

—श्री स्त्री० समाप्ति । अन्त ।

इतिरा— अक० दे० 'इतरा'— ।

इतिहास पुं० अतीत या बीते काल की घटनाओं का वृत्तान्त । पुरावृत्त ।

उ०—गुन पुरान-इतिहास, बेद बंदीजन गावत । क० १/१

इती वि० १. इतनी । २. ऐसी ।

उ०—इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहि पाऊँ । सूर० १/२७०/७२

—क वि० इतना ही ।

उ०—होती जो अजान तौ न जानतौ इतीक बिथा । दे० I, ५७८/१४५

इतै अव्य० इधर । इस ओर ।

उ०—इतै उतै सचकित चितै चलत डुलावत बाँह । म० २३/२०५

इतो—इतौ वि० इतना । निर्दिष्ट परिणाम का ।
उ०—मान ठानि बैठी इतो सुबस नाह निज हेरि ।
प० २८०/१४१

—त—ति अव्य० इधर-उधर ।
उ०—चंद-उदोत इतोत चितोत चकी सबकी चख-चारु-चकोरी । भि० I, २७४/१५०

इत्त अव्य० यहाँ ।
उ०—न मित्र इत्त आवही । न चित्त चैन पावही ।
बो० ५०/२१५

इत्ता वि० (स्त्री० इत्ती) इतना ।

इत्थं अव्य० इस तरह से । इस प्रकार । यों ।
उ०—इत्थं मुनि सुकबानी । चकित बाल चाहत चहूं पास । बो० ५/१३६

इत्यादि—इत्यादिक अव्य० इसी प्रकार से और । प्रभृति । वगैरह ।

इथ क्रि०वि० यहाँ पर ।
उ०—तैं इथ नैं संतारि दै जो चाहहि सो लेहि ।
भि० I, २/१६७

इधर अव्य० इस ओर ।

इध्म पुं० १. आग जलाने का सामान । ईंधन । २. हवन की सामग्री । समिधा ।

इनाम (अ०) पुं० १. पुरस्कार । पारितोषिक ।
उ०—कंचन, चीर पटंबर दैहौं, कर कंकन जु इनामहिं । सूर० १०/४१६८/५३३

इनार—इनारा पुं० कूप । पक्का कूआँ ।

इनारुन—इनारनु पुं० इंद्रायन का फल ।

इने-गिने वि० चन्द । थोड़े ही । कुछ ही ।

इभ—ईभ पुं० हाथी ।
उ०—घटा ये न होय इभ सिवाजी हँकारी के ।
भू० ४२७/२६६

—कुंभ पुं० हाथी के मस्तक पर का ऊँचा गोल भाग ।
उ०—सिव गिरि घट मठ गुच्छफल सुभ इभकुंभ समान । के० I, २४/२००

—पाल पुं० महावत । हाथीवान ।

इम—इमि—इम्मि क्रि०वि० इस प्रकार । इस तरह ।
उ०—निधरक भई कहति इम लहिये ।
नं० १२६/१३१

इमन पुं० राग यमन कल्याण ।

इमरत पुं० दे० 'अमृत' ।

—वानी स्त्री० मधुर वचन ।

इमरती स्त्री० उर्द की दाल की पीठी से बनाई गई जलेबी की तरह की एक मिठाई ।

इमली स्त्री० वृक्ष विशेष जिसमें खट्टी फलियाँ लगती हैं । इमली ।

इमामदस्ता (फा०) पुं० लोहे या पीतल का खरल और बट्टा जो दवा आदि कूटने के काम में आते हैं । हावनदस्ता ।

इयत्ता स्त्री० १. सीमा । हद । २. परिमाण । नाप ।

इरखा— सक० ईर्ष्या करना ।
उ०—चाहि चित श्रमित सगर्ब इरखाति है ।
भि० २३६/१४१

इरखाति व०कृ० ।

इरषा—इरिषा—इर्षा स्त्री० ईर्ष्या । डाह । जलन ।
उ०—इंद्र देखि, इरषा मन लायौ ।
सूर० ५/२/१२४
उ०—कछु इरिषा कछु मद लिये सो बिब्बोक रसाल । भि० २६६/१४८

इरषित—इरसित वि० ईर्षित । जिसके प्रति किसी को ईर्ष्या हो ।

इरसी स्त्री० धुरी । धुरा (पहिये या चक्के का) ।

इरा स्त्री० १. वाणी । २. भूमि । पृथ्वी । ३. सुरा । मद्य । ४. एक नाड़ी-विशेष ।

इराकी पुं० ईराक देश का घोड़ा ।
उ०—सु मंडे घुमंडे उमंडे इराकी मनौ चंचलाई लिये चंचला की । प० ३२/२८०

इराबान पुं० समुद्र ।
उ०—इराबान, अर्णव, उदधि, कौस्तुभ-अवधि, अपार । नं० १४६/८१

इल पुं० वाह्लीक का राजा कर्दम जो प्रजापति का पुत्र कहा गया है ।

इलबेस (फा०) पुं० इल्बास । पहनावा ।
उ०—रेशमी रखत इलबेस सी सुदेश किये देखि देस देस के नरेस ललचात हैं । गं० ३७७/११६

इलविला स्त्री० विश्वश्रवा की पत्नी और कुबेर की माता ।

इला[1] स्त्री० दे० 'इलायची' ।
उ०—लवली लविंग इलानि के रेला कहाँ लगि लेखियै । भू० २०/१३२

इला[2] स्त्री० दे० 'इड़ा' ।
उ०—रिषि नृप सौं जग-विधि करवाई । इला सुता काकैं गृह जाई । सूर० ६/४४६/१४८

इलाका (अ०) पुं० ताल्लुक । मन से सम्बन्ध । लगाव ।
उ०—कैधौं कछू राखै राकापति सौं इलाका भारी ।
प० २५/२६२

इलाज (अ०) पुं० १. चिकित्सा ।
उ०—तन-तें जु लाव-उपजावन इलाज से ।
भि० I, १६३/१३१
२. औषधि । दवा ।
उ०—हौं इक अजब इलाज बनाऊँ । मुयौ सात बासर को ज्याऊँ । बो० ८३/१६६
३. यत्न ।
उ०—चलै न कछू इलाज न जियत वे ही काज ।
भू० २४७/१७५

इलाम (अ०) पुं० घोषणा । आज्ञा ।
उ०—ठान्यो न सलाम भान्यो साहु को इलाम मान्यो । भू० १८६/१६२

इलायची—इलाइची—इलाची स्त्री० एक सुगंधित फल । एला । इलायची ।
—पाक पुं० पकवान-विशेष ।
उ०—गुझा, इलाचीपाक, अमिरती ।
सूर० १०/३६६/३१८

इलावर्त्त—इलावृत पुं० पुराणों के अनुसार जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक जो मध्य भाग में और सबसे ऊँचा था ।
उ०—रहत इलावृत बन मैं दुरो । नं० ४/२०३

इलाही (अ०) पुं० परमेश्वर । ईश्वर ।
उ०—कापै धौं परैया-भयो गजब इलाही है ।
प० ७०८/२२८
वि० ईश्वर-सम्बन्धी । ईश्वरीय । दैवी ।

इल्म—इलम (अ०) पुं० विद्या । ज्ञान ।
उ०—जानत रन-इलमैं पहिरैं झिलमैं.........।
प० ८६/२८५

इल्लत (अ०) स्त्री० १. रोग । बीमारी । २. दुर्व्यसन । ३. अपराध । दोष ।
उ०—घूरन पै लपटैं झपटैं सने इल्लत गावैं खसूर फफस्सा । बो० ३६/२१३

इल्ला पुं० एक छोटी और कड़ी फुंसी जो मस्से के बराबर होती है ।

इल्वल पुं० १. एक दैत्य का नाम ।
२. ईल या बाम नाम की मछली ।

इल्वला (इल्वल+आ) पुं० पाँच तारों का एक समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपरी भाग में स्थित है ।

इव अव्य० समान । तरह । सदृश ।
उ०—स्रवत सलिल सिव विदित अलक इव, राहु बदन बिधु दमत । सूर० १०/२६११/२५७

इष पुं० आश्विन मास । क्वार का महीना ।

इषद वि० कुछ-कुछ । थोड़ा-सा ।

इषना स्त्री० दे० 'एषणा' ।

इषीका—इशिका—इशीका स्त्री० १. बाण । तीर ।
२. गाँडर या मूँज की सींक ।

इषु पुं० बाण । तीर ।
उ०—बूँदियाँ बरषैं बिषु के इषु लैं बरकैं मनमोहन की बतियाँ । गं० २३२/६६
—धी पुं० तरकस । तूणीर ।

इषूपल पुं० किले के फाटक पर रखी जाने वाली तोप जिसमें भरकर कंकड़-पत्थर फेंके जाते हैं ।

इष्ट पुं० १. उपास्य । आराध्य ।
उ०—ये बसिष्ट कुल-इष्ट हमारे ।
सूर० ६/१६७/२०३
२. मित्र ।
उ०—ऊख, महूख, पियूष गनि केसव साँचो इष्ट ।
के० I, ४८/१२५
३. प्रिय व्यक्ति ।
वि० प्रिय लगने वाला । इच्छित ।
उ०—इष्टै बात अनिष्ट जहँ कैंसेहू ह्वै जाति ।
के० I, ७५/१७४
—आ स्त्री० प्रिया । प्रेमिका ।
उ०—इष्टा, दयिता, बल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ ।
नं० १०६/७७
—आलाप पुं० प्रेमालाप । वार्त्तालाप ।
—इ स्त्री० १. इच्छा । चाह । २. यज्ञ । हवि ।
—गन्ध पुं० सुगन्धित पदार्थ । सौरभ ।
—ता स्त्री० मित्रता । दोस्ती ।
उ०—मैत्री, सौरभ, इष्टता, मति, सहास्त, रसठाऊँ ।
नं० २५/६६
—देव—देवता पुं० उपास्यदेव । आराध्यदेव ।
उ०—इष्ट देवता लौं लग्यौ जिय जीहा जेहि नाम ।
भि० I, ३७५/५३

इष्टापत्ति (इष्ट+आपत्ति) स्त्री० प्रतिवादी द्वारा दिया गया ऐसा दोष जिससे वादी की कोई हानि न हो प्रत्युत वह उससे अभिप्रेत हो ।

इष्टापूर्त्त पुं० यज्ञ कर्म । लोकोपकारार्थ-कूप खनन, मन्दिर निर्माण, तालाब, धर्मशाला के निर्माण आदि का कार्य ।

इष्य पुं० बसंतकाल । बसंत ऋतु ।

इष्वास पुं० धनुष । कमान ।

इस सर्व० "यह" का एक रूप ।
उ०—करो बिस्राम इस ठौर जाइ ।
सूर० ८/१०/१४५

इसपात पुं० इस्पात । एक प्रकार का लोहा । फौलाद ।

इसारो पुं० संकेत । इशारा ।
उ०—ऐसे में चातुर आतुर ह्वै मुरली-सुरदै कियो नेक इसारो । भि० III, २९०/४३

इसे स्त्री० यष्टि । मुलेठी ।
उ०—इसे कोक ढोका करै त्रकुटी लौंग मिलाय ।
बो० ४७/१६५

इस्क—इश्क (अ०) पुं० १. प्रेम । चाह । अनुराग ।
२. आसक्ति ।
—तुवा वि० प्रेम से परितप्त । विरहाकुल ।
उ०—मुवा किधौं कैफी हुवा इस्कतुवा कै दीन ।
बो० २१/१२२
—नामा पुं० प्रेमकाव्य ।
उ०—ग्रन्थ इस्कनामा कियो बोधा सुकवि बनाइ ।
बो० १/१
—बाग पुं० प्रेमोपवन ।
उ०—जहँ इस्कबाग लखि अति प्रवीन ।
बो० ६/९१
—रामूज पुं० इश्क रमूज । प्रेमपूर्ण कटाक्ष ।
उ०—निमिष इस्करामूज पर बारौं सुरति सुराज ।
बो० ९/१३२
—हकीकी पुं० अलौकिक प्रेम ।
उ०—इस्कहकीकी है फुरमाया । बिना मजाजी किसी न पाया । बो० ४०/५४

इस्तरी[1]—इस्तिरी—इस्त्री स्त्री० धोबी का यन्त्र-विशेष, जिससे कपड़ों की सिकुड़न दूर की जाती है ।

इस्तरी[2] स्त्री० स्त्री ।

इस्तीफा (अ०) पुं० त्याग-पत्र ।

इस्थिर वि० स्थिर । निश्चल ।

इहँ क्रि०वि० यहाँ ।
उ०—कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठायौ ।
सूर० ९/१२९/१६३

इह सर्व० यह ।
उ०—ना जानौ कहुँ मिले स्याम घन, इह रट लागि रही री । च० २३३/१२३
—काल पुं० यह समय ।
—लोक पुं० मर्त्यलोक ।
उ०—इहलोक परलोक के बंधु, को कहि सकत तिहारो गुनग्राम । नं० ११/२८२

इहवाँ क्रि०वि० इस जगह । यहाँ ।

इहाँ क्रि०वि० यहाँ ।
उ०—एक ही संग इहाँ रपटे सखि । प० ९१/९८

इहामग पुं० दे० 'ईहामृग' ।

ई[1] १. देवनागरी वर्णमाला का चौथा स्वर-वर्ण, जो 'इ' का दीर्घ रूप है ।
२. प्रत्यय-ई प्रायः संज्ञा स्त्रीलिंग, क्रिया स्त्रीलिंग तथा भाववाचक संज्ञा बनाता है । यथा बच्चा से बच्ची, बुरा से बुरी, आया से आई, क्रोध से क्रोधी ।

ई[2] स्त्री० लक्ष्मी ।

ई[3] सर्व० यह (निकट का संकेत) ।

ई[4] अव्य० ही, किसी शब्द या बात पर जोर देने का शब्द ।
उ०—नैननि साधै ई जु रही ।
सूर० १०/२३६८/१२४

ईंगुर पुं० सिंदूर ।
उ०—चुवन चहत एड़ीन सों ईंगुर कैसो रंग ।
भि० ३००/४४
—ई वि० ईंगुर जैसे लाल रंग का ।
स्त्री० लालिमा । ललाई ।

ईंच— सक० खींचना । ऐंचना ।

ईंट—ईंटा—ईट स्त्री० ईंट, जिससे प्रायः दीवारें चिनी जाती हैं ।

ईंडुरी स्त्री० दे० 'इंडुरी' ।

ईंधन पुं० चूल्हे आदि में जलाने की सामग्री ।
उ०—छेंड़ी में घुसौ कि घर ईंधन के घनस्याम ।
के० I, ३२/८७

ईमन पुं० दे० 'इमन' ।
उ०—कहियतु ईमन पुनि केनीर । बो० १६/१२१

ईकार (ई+कार) पुं० 'ई' स्वर या उसका सूचक वर्ण ।

ईक्ष—ईछ पुं० ईक्षण । दर्शन ।
—इत वि० देखा हुआ ।
—क वि० देखने वाला ।
—ण—न पुं० १. आँख । नेत्र ।
उ०—ईछन छोरन तें न गिरे मनो तीछन छोरन छेद रहे हैं । म० १४७/२३३
२. देखना ।
—ण—श्रवा पुं० साँप ।

ईक्षणिक (ईक्षण+इक) पुं० ज्योतिर्विद । ज्योतिषी । भविष्यवक्ता ।

ईक्ष्य (ईक्ष+य) वि० देखने योग्य ।

ईख[1] स्त्री० ऊख । गन्ना ।
उ०—हीरा तौ हलाहल है, ईख रस लीजिये ।
गं० ४५/१५
—राज पुं० ईख बोने का प्रथम दिवस ।

ईख² पुं० द्वेष।
उ०—डर दिखाइ हित कों हिए, बढ़त न दीजै ईख। कृ० ४४/१४

ईख³— सक० देखना।

ईखना—ईषना स्त्री० इच्छा। एषणा।

ईखू पुं० एक सेनापति का नाम।

ईजति स्त्री० दे० 'इज्जत'।
उ०—हिंदुआन द्रौपदी की ईजति बचैबे बोलि बैराटनगर तें बाहिर गूढ़ ज्ञान कै। भू० ३१५/१८७

ईजान पुं० यजमान। यज्ञ करने वाला।

ईठ¹ पुं० प्रिय व्यक्ति। मित्र।
उ०—विधि बिनऊँ कर जोरि कै मोहिं देहि द्वै ईठ। बो० ५१/१३७

—इ—ई स्त्री० १. सखी।
उ०—बाँह गही ठठकी सकी परी छकी सी ईठि। भि० I, ३०७/४५

२. मित्रता। मैत्री।
उ०—ढीठ्यो मे तिहारी हमें ईठीहू ते मीठी। दे० I, ८१३/१८४

वि० इष्ट। प्रिय।
उ०—चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि तो अचूक। घ० क० ३०६/२०१

क्रि०वि० यत्नपूर्वक। भली प्रकार।
उ०—कालि जु मो तन तकि रह्यो उभज्यो आजु सो ईठि। भि० I, ३१/७

—ता स्त्री० मैत्री। दोस्ती।

ईठ²— अक० चाहना।

ईठी (यष्टि) स्त्री० भाला। डंडा।

—दाजू पुं० चौगान खेलने वाला डंडा।

ईडा (ईड़+आ) स्त्री० स्तुति। प्रशंसा।

ईडुरी—ईडुरिया—ईढुरी स्त्री० गेंडुरी। घड़ा रखने के लिए रस्सी या कपड़े का बना मेंडरा।
उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि, सोहति सुहाई सीस ईडुरी सुपट की। प० ५५८/१८७

ईड़री स्त्री० दे० 'ईडुरी'।

ईड़ित (ईड्+इत) वि० प्रशंसित।
उ०—तीखे अस्त्र अनेक हाथ गिरिजा लीन्हे महा ईड़ितै। भि० I, ६३/२६२

ईढ़—ईढ़ि स्त्री० जिद। टेक। हठ।

—ई वि० हठी। जिद्दी।

ईतर¹ वि० १. इतराने वाला।
उ०—नान्हे लोग तनक धन ईतर। सूर० १०/६२४/४६०

२. धृष्ट। ढीठ।

ईतर² (इतर) वि० दे० 'इतर'।

ईति (ई+ति) स्त्री० १. खेती को हानि पहुँचाने वाले छः उपद्रव—बाढ़, सूखा, टिड्डियाँ, चूहे, पक्षी और सेना द्वारा आक्रमण।
उ०—ईति की न भीति, भीति अधन अधीर की। के० I, ५/१३६

२. बाधा। रुकावट। ३. पीड़ा। दुःख।

ईदृस—ईदृश क्रि०वि० इस प्रकार।
वि० इस प्रकार का। ऐसा।

ईधरि क्रि०वि० दे० 'इधर'।
उ०—नंदसुवन तेरी ईधरि रहे ध्यान। गो० १०५/५०

ईप्सा स्त्री० इच्छा। अभिलाषा।

ईप्सित वि० अभिलषित। चाहा हुआ।

ईप्सु वि० इच्छुक। चाहने वाला।

ईबीसीबी स्त्री० सीत्कार का शब्द।

ईरखा स्त्री० दे० 'ईरषा'।
उ०—लगी रहै हरि हिय इहै करि ईरखा बिसाल। म० ५३४/४१३

ईरति स्त्री० इच्छा।
उ०—हे सखि! वृंदावन भुवि-कीरति। स्वर्ग तें अधिक भई मुनि ईरति। नं० पृ० २५४

ईरमद (इरम्मद) पुं० १. बिजली। २. अग्नि।

ईरषा—ईर्षा (ईर्ष्य्+आ) स्त्री० ईर्ष्या। डाह। जलन
उ०—कछू क्रोध, कछू ईरषा, कछू अधिक आधीन। दे० I, १५/२६६

—लु वि० ईर्ष्यालु। द्वेषी।

ईर्षणा—ईर्षना स्त्री० दे० 'ईरषा'।

ईवी स्त्री० दे० 'ईबीसीबी'।
उ०—मनु ईवी भासत पर्‌यो चिन्ह आँगुरीमार। र० ६३/२६४

ईश पुं० १. स्वामी। मालिक।
उ०—आय हौं वेगि ब्रज ईश तुम। भ्र० १/६३

२. ईश्वर।

—आ स्त्री० १. ऐश्वर्य। २. ऐश्वर्ययुक्त स्त्री। ३. दुर्गा।

—आन पुं० १. शिव। २. दुर्गा। ३. सूर्य। ४. ११ की संख्या।

—इता स्त्री० १. महानता। प्रभुता। २. अष्ट सिद्धियों में से एक।

उ०—वशीकरन अरु ईशिता, अष्ट सिद्धि के नाम। नं० २२/६८

—इत्व पुं० प्रभुत्त्व। महत्ता।

—ता स्त्री० प्रभुत्व। स्वामित्व।

ईशान पुं० उत्तर पूर्व का कोना।

ईश्वर पुं० स्वामी। भगवान।

उ०—आगें मैं तुमकौं सुत मान्यौ। अब मैं तुमकौं ईश्वर जान्यौ। सूर० ३/१३/११३

—ई स्त्री० दुर्गा।

उ०—उमा, अपरना, ईश्वरी, गवरी, गिरिजा होइ। नं० १२२/७६

—ईय वि० ईश्वर-सम्बन्धी।

—ता स्त्री० प्रभुता।

ईषत्—ईषद अव्य० थोड़ा।

उ०—उमँगि ईषद ज्यौं स्रवत, पीयूष कुंभ झकोर। सूर० १०/२१३३/७८

—हास पुं० मुस्कुराहट।

उ०—ईषद हास दंत-दुति बिगसति। सूर० १०/२१०/२६६

ईषन पुं० नेत्र। दृष्टि।

ईषना स्त्री० दे० 'ईखना'।

ईषिका स्त्री० १. हाथी की आँख की पुतली।
२. कूँची। तूलिका। ३. बाण। ४. सींक।

ईषु (इषु) पुं० बाण। तीर।

ईस पुं० दे० 'ईश'।

उ०—आप ईस सैल ही मैं अलकैं बहुत भाँति। क० ६२/२६

—ता पुं० ईश्वरत्व।

—पुर पुं० कैलाश।

उ०—जे गाहक निरगुन के ऊधौ, ते सब बसत ईसपुर कासी। सूर० १०/३६२८/४७७

ईसान—ईसन (ईश+आन) पुं० १. अधिपति। स्वामी।

उ०—नर नामन तें पति जुरे, परवृढ, इन, ईसान। नं० ७/६४

२. शिव।

उ०—मुचुकुंदादि नृपनि की कथा। सो ईसान कथा है जथा। नं० ६/१६०

ईसबर पुं० दे० 'ईश्वर'।

उ०—नहीं ईसबर तुमकौं बीर। के० III, ४२/५३२

ईसु पुं० १. पति।

उ०—उड़गन-ईसु द्विज-ईसु ओषधीसु भयो। के० I, ७३/२१०

२. ईश्वर।

उ०—बिस्व होत परमानु तें निमित्त कारन ईसु। के० III, ३१/७४४

ईसुर—ईसर पुं० दे० 'ईश्वर'।

—ई वि० दे० 'ईश्वरी'।

उ०—सोइ देव माया ईसुरी, त्रिभुवन करै मनुहारि है। दे० I, ४६/२०७

स्त्री० देवी।

उ०—इनके नमक तें ईसुरी हम कों करै रन में अदा। प० १२२/१८

—उ पुं० ईश्वर।

उ०—माया तनै भयो ईसरु, बाँधि अपनो बापु जु। दे० I, २०/२१६

ईस्वर पुं० दे० 'ईश्वर'।

उ०—सूर सो सुहृद मानि, ईस्वर अंतर जानि। सूर० वि० ७७/२२

—ता स्त्री० दे० 'ईश्वरता'।

उ०—ईस्वरता सो फुरै न ताके। नं० १/१६०

ईहा—ईह—ईहाँ (ईह+आ) स्त्री० १. इच्छा। कामना।

उ०—ईहा दुख अरु सुक्ख की प्रकट करे जहँ वाम। म० ३६८/२८४

२. प्रयत्न। चेष्टा। ३. लोभ।

—मृग पुं० मृगतृष्णा।

ईहामृग पुं० नाटक का भेद विशेष जिसमें नायक और नायिका किसी देवी और देवता के अवतार होते हैं।

ईहि सर्व० यह।

ईहित (ईह+इत) वि० १. वांछित। चाहा हुआ।
२. ढूँढ़ा हुआ। खोजा हुआ।

उ[1] नागरी वर्णमाला का पाँचवाँ स्वर-वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान ओष्ठ है।

उ[2] अव्य० भी।

उ[3] पुं० १. ब्रह्मा। २. नर।

उँगरी—उँगली स्त्री० हाथ या पैर की अँगुली।

उ०—गुरु नितंब उँगरी गतकारी पिंडुरी गुल्फ सुढारू। बो० १५/३०

उँचन वि० ऊँचाई।

उ०—कुचन की उँचन में अँचरा समाइ जात। गं० ६१/२६

उँचा— सक० ऊपर उठाना। ऊँचा करना।

उ०—अँचल ऐंच्यो उँचाए भुजा भरैं मुठि गुलाल की ब्याल सुहाती। प० ४४५/१७५

उँचाए भू०कृ०।

—ई स्त्री० १. ऊँचापन। २. बड़प्पन।

३. महत्व ।

—न—व—स पुं० ऊँचाई ।

उंछ पुं० खेत में (लुनाई के बाद) या रास्ते में पड़े हुए दाने जीविका के लिए चुनना । सीला बीनना ।

वि० सामान्य । तुच्छ । क्षुद्र । हेय ।

—इत वि० वर्जित । त्यक्त । छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ ।

—वृति स्त्री० सामान्य जीविका । अनाज कट जाने पर खेत में पड़े अन्न के दानों को बटोरकर उससे उदर की पूर्ति करने की क्रिया ।

—शील वि० सामान्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाला ।

उँजियारा—उँज्यारा (स्त्री० उज्यारी)

पुं० दे० 'उजियारा' ।

उ०—सु आनन उँज्यारी मैं चलनि चारु प्यारी की ।
शृं० १२६/३५६

उंदुर पुं० चूहा ।

उ०—पट-तंतुन उंदुर ज्यौं तरसै ।
के० II, १६/३५५

उँमग स्त्री० दे० 'उमंग' ।

उ०—आनँद-उँमग तैं सबीह न्यारी न्यारी मैं ।
शृं० १५४/४३९

उँमाह पुं० उमंग । उत्साह ।

उ०—बाँह दै सीस, उँमाह दै नैंनन ।
शृं० २०९/६०१

उँमैड़ो पुं० उमंग । उत्साह ।

उ०—मोहनहूँ के बिलोचन या मग आवत ही लहैं मैंन-उँमैड़ो ।
शृं० २५२/७२३

उअ— अक० उदित होना । उगना ।

उ०—लोचन बिलोल यौं बिरोचन उए हैं कौल ··· ।
भू० ५८०/२४५

उए, उई भू०कृ० ।

उआ— सक० १. उगाना । उदय करना ।

२. उठाना ।

उआदो (अ०) पुं० वादा ।

उ०—ता छन उआदो खत टीपन लिखाइ हैं ।
गं० ४४०/१३४

उऋन (उत्+ऋण) वि० जिसने अपना ऋण चुका दिया हो । जिसने किसी के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन कर लिया हो ।

उ०—हे मनहरनी तरुनी उऋन न होउँ तबौ तौ ।
नं० १७/१६

उकच— अक० १. उखड़ना । २. उचलना । पर्त से अलग होना । ३. हटना । स्थान छोड़ना ।

उकट— सक० बार-बार कहना ।

उकटा वि० किये हुए उपकार का नित्य बखान करने वाला ।

—पुरान पुं० बीती और अप्रत्याशित बातों का विस्तार से वर्णन ।

उकठ— अक० सूखकर ऐंठना ।

उ०—अंकुरित तरु पात, उकठि रहे जे गात ।
सूर० १०/३०/२२०

उकठत व०कृ० । उकठ्यौ भू०कृ० ।

उकठा—उकठौ वि० जो सूखकर लकड़ी की तरह ऐंठ गया हो । शुष्क । सूखा ।

उ०—बाँझ सुत जनै, उकठौ काठ पल्लवै ।
सूर० १०/२८२४/२१४

उकडू—उकरू पुं० घुटने मोड़कर बैठने का ढंग-विशेष ।

उकढ़— अक० बाहर निकलना ।

उ०—यहि कहि तुरंग कुदाइ आगे उकढ़ि अरि-मन मैं गयौ ।
प० १३६/१६

उकढ़त व०कृ० । उकढ़्यौ भू०कृ० ।

उकत—उकति—उकुति स्त्री० दे० 'उक्ति'—

उ०—उकुति अनेक ही पै एकहू कही न परै ।
प० १४/२४०

उकता— अक० १. ऊबना ।

२. आकुल होना । जल्दी मचाना ।

—व पुं० १. ऊब । २. आकुलता ।

उ०—कहि ठाकुर क्यौं उकताव लला इतनी सुनि राखिय मो पहियाँ ।
ठा० ८२/२२

उकनाह पुं० ऐसा घोड़ा जिसकी जाँघ में श्यामता हो और पीली तथा लाल छवि हो ।

उकल— अक० उचड़ना । तह से अलग होना ।

उकलाई स्त्री० उल्टी । कै । वमन ।

उकवथ पुं० एक प्रकार का चर्म रोग ।

उकस[1] पुं० उभार ।

उ०—उकस निकस सब तियन के परी जिअन मैं आइ ।
रस० ६०/२६

उकस[2]**—** अक० १. उचकना । २. उखड़ना ।

३. हिलना-डुलना ।

४. उभरना । निकलना । उगना ।

उ०—चोली कसत उकसत बार ।
बो० ३०/५३

५. उत्तेजित होना।

उकसत व०कृ०। उकसो, उकस्यो भू०कृ०।

उकसनि स्त्री० उभाड़। ददोरा।

उकसा— सक० १. ऊँचा उठाना। उभारना।

उ०—उकसौंहैं हीं तौ हियैं दई सबै उकसाइ। बि० ४६२/१६१

२. उत्तेजित या उत्साहित करना।

३. उखाड़ना।

उकसात व०कृ०। उकसायो भू०कृ०।

उकसार— सक० ऊपर उठाना।

उ०—इतनी कहि उकसारत बाहैं, रोष सहित बल धायौ। सूर० १०/३७४/३०६

उकसारत व०कृ०। उकसार्‌यो भू०कृ०।

उकसित वि० उमड़ा हुआ। ऊँचा उठा हुआ।

उकसौंहाँ वि० (स्त्री०–उकसौंहीं) विकासोन्मुख। उभड़ा हुआ।

उ०—उर उकसौंहैं उरज लखि धरत क्यों न धनि धीर। प० ३२/८५

उकाढ़— सक० गढ़ना। बनाना।

उ०—कंज दल नैन मैन सर तें उकाढ़े हैं। टा० १०/६४

उकाल— सक० १. उचाड़ना। २. उकेलना।

उकास— सक० ऊँचा उठाना।

उ०—वृषभ शृंग सौं धरनि उकासत, बल-मोहन-तन हैरै। सूर० १०/१३८७/५८५

उकासत व०कृ०। उकास्यो भू०कृ०।

—ई स्त्री० कुबड़ापन।

उ०—जानिके दासी उकासी हरे, कमला सीकरी कर सौं बरखाना। दे० I, १२५/२४

उकीर— सक० १. उभाड़ना। २. उचाड़ना। ढकेलना।

३. खोदना।

उकीरत व०कृ०। उकीरो भू०कृ०।

उकुरु—उकुरूँ पुं० दे० 'उकड़ू'।

उकुस— अक० दे० 'उकस—'।

उकेर— सक० १. चित्रित करना। २. निर्माण करना।

उ०—अति नीके भांवते जिय के मानो बिधि आप उकेरे। च० १५६/६३

उकेस— सक० उखाड़ना। नष्ट करना।

उ०—केसौ चलि केसरी लौं, कंस के उकेसि केस। दे० I, १४१/२७

उक्त वि० कथित। कहा हुआ।

—इ स्त्री० १. कथन। वचन।

उ०—पूरन पुरान अरु पुरूष पुराने परिपूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति कौं। के० I, ७२/१३०

२. किसी की कही हुई कोई ऐसी अनोखी या महत्त्व की बात जिसकी कहीं उल्लेख या चर्चा की जाय।

३. एक अलंकार जहाँ अपना मर्म छिपाने किसी क्रिया या उपाय द्वारा दूसरे को धोखा दिया जाय।

उ०—फेरि अपह्नुति उक्ति है, बक्रोकति सबिबेक। के० I, ३/१४८

उक्ति-उदार स्त्री० १. सारवती और गम्भीर वार्ता।

२. कवित्वमय वचन।

उ०—उक्ति-उदार कबिंदन पैं बनबासिन की सुभई न भई रति। शृं० ६१/१५०

उख—ऊख स्त्री० दे० 'ईख'।

उखट— अक० लड़खड़ाकर गिरना या लड़खड़ाना।

सक० कुतरना। खोंटना।

उखटत व०कृ०। उखटी भू०कृ०।

उखर—उखट अक० १. उखड़ना। जमी, गढ़ी या जड़ी हुई चीज का ऊपर आ जाना। अपनी जगह से हटना। टूटना।

उ०—तन तहाँ फूलत ही तुरत उखरी सु बरवतर की करी। प० १२७/१८

२. बेताल या बेसुरा हो जाना। न जमना। तितर-बितर हो जाना।

उखरत व०कृ०। उखरी भू०कृ०।

उखल—उखली—ऊखल स्त्री० उखली। ऊखल।

उ०—जब वे दाम उखल सौं बाँधे, बदन नवाइ रहे। सूर० १०/३७८७/४४८

उखार—उखाल सक० १. किसी वस्तु को खींचकर अलग करना।

उ०—ताहि तोहि समेत भंग उखारि हौं उलटी करौं। के० II, ३३/३१७

उखारत व०कृ०। उखार्‌यौ भू०कृ०।

२. नष्ट करना।

उखार स्त्री० १. उखाड़ने की क्रिया या भाव।

उ०—फूटत पहार, क्षार टूटत जरै उखार। गं० ३५०/१०७

२. कुश्ती में, किसी का दाँव व्यर्थ करने वाला कोई और दाँव या पेंच।

उखारी स्त्री० गन्ने का खेत।

उखेल— सक० अंकित करना। उकेरना।

उ०—खेलत ही खेलत उखेलत ही आंखिन मु। दे० I, २०५/८१

उग— अक० १. अंकुरित होना। उपजना।

२. उदित होना । उगना ।
उ०—आनन चंद समान उग्यो मृदु मंजु हँसी जनु जोन्ह छटा है । म० १०७/३१७
३. सुशोभित होना । खिलना ।
उगत व०कृ० । उग्यो भू०कृ० ।

उगट— अक० दे० 'उघट' ।

उगद— अक० कहना । बोलना ।

उगन स्त्री० उपजन ।

उगर अक० निकलना ।
उ०—'सूरदास' प्रभु बेगि मिलहु अब, नातरु प्रान जात उगरी । सूर० १०/३७७७/४४६
उगरी भू०कृ० ।
सक० उगलना ।

उगसा— सक० उकसाना ।

उगसार— सक० १. आगे या सामने रखना या लाना ।
२. किसी पर प्रकट या विदित करना ।

उगल— सक० पेट की वस्तु को मुँह से बाहर निकालना
उ०—उगिलत आसो तऊ सुकल समर बीच राजै राव । भू० ५३८/२३७
उगिलत व०कृ० । उगिल्यो भू०कृ० ।
—इत वि० उगला हुआ ।
उ०—मनो उगिलत राहु अमृत, कनक-गिरि पर धार । सूर० १०/११६६/५२१

उगव— अक० उगना ।

उगहन पुं० उग्रह । छुटकारा ।
उ०—दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यबल । नं० ७५/१४८

उगा— अक० उदित होना ।
उ०—मनु द्वितीया चंद उगाए ।
सूर० १०/२५१८/१५४

उगार—उगारु पुं० १. उगली हुई वस्तु ।
उ०—एक पियति चरनोदकनि, एक उगारनि खाति । के० III, ४३/६८३
२. मुख द्रव । लार ।
उ०—परस्पर दोउ पीय प्यारो, रीझि लेत उगार ।
सूर० १०/१०८२/५०३
३. रस । आनन्द ।
उ०—स्यामल गौर कपोल सुचारु, रीझि परस्पर लेत उगारु । सूर० १०/११८०/५३२

उगाह— सक० वसूल करना ।
उ०—हाट-बाट सब हमहिं उगाहत ।
सूर० १०/१५१६/६१६
—ई स्त्री० १. वसूल करने की क्रिया ।
२. वसूला हुआ धन ।
उगाहत व०कृ० ।

उगैया वि० उत्पन्न करने वाला । उगाने वाला ।

उग्ग (उग्र) वि० महादेव ।
उ०—उग्ग नाचे उग्ग पर रुद्रमुंड फरके ।
भू० ४२४/२१०
पुं० आकाश ।

उग्र वि० १. प्रचण्ड । तेज । घोर ।
उ०—इक नग्न उग्र रबिसुतातीर । बो० ५/६१
२. भयानक ।
३. क्रूर । कठोर ।
४. क्रोधी ।
५. जो असाधारण रूप से अधिक कष्ट देने वाला हो ।
पुं० १. महादेव । शिव । २. विष्णु । ३. सूर्य ।
—ता स्त्री० १. तेजी । प्रचण्डता ।
उ०—सोइ उग्रता जानिए तरजन ताड़न होइ ।
र० ८५५/१६१
२. उद्दण्डता । ३. कठोरता ।
उ०—दीनता हरष व्रीड़ा उग्रता सु निद्रा व्याधि ।
प० ४७३/१८१
—धन्वा पुं० १. इन्द्र । २. शिव ।
—शेखरा स्त्री० शिव के मस्तक पर रहने वाली गंगा ।

उग्रसेन पुं० १. मथुरा के राजा कंस के पिता का नाम ।
२. इन्द्रजीत सिंह का पुत्र ।
उ०—तिनके उग्रसेन सुत भए ।
के० III, ४६/४८८
३. राजा परीक्षित के एक पुत्र का नाम ।

उग्रास पुं० सूर्य-चन्द्र का ग्रहण से छुटकारा ।

उघ पुं० जूथ । समूह ।

उघट— सक०/अक० १. उघारना । प्रकट करना ।
उ०—मधुर बेनु सु सब्द उघटत तत्त थेई थेई ताल ।
च० ३३/१८
२. खुलना ।
उ०—पट उघटत खिन बदन । र० ३६६/७६
३. किसी भूली हुई बात को उठाना ।
४. ताना देना । व्यंग्य करना ।
अक० ताल देना ।
उ०—जहाँ रसिक गिरिधर सब्द उघटत ग्र ग्र धुंग धुंग गति थोरी । गो० ६३/२६
उघटत व०कृ० । उघट्यो भू०कृ० ।

—आ वि० १. उघटने वाला ।
२. अपना एहसान जताने वाला ।
—इत वि० १. खुला हुआ । २. कहा हुआ ।
—इनि वि० प्रकट होने वाली ।
उ०—चंचल अचल चख चालिकी उघटिनी ।
दे० I, ३७०/१११
—न पुं० १. पुनः पुनः कथन । २. प्रकटन ।
—नि वि० ताल देने वाली ।
उ०—ग्वाल लाल गति उघटनि 'गोविंद' प्रभु त्रैलोक विमोहत । गो० ३६०/१५०

उघन्नी स्त्री० ताली । कुंजी । चाभी ।

उघड़—उघर— अक० १. प्रत्यक्ष होना । प्रकट होना ।
उ०—ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै, त्यौं त्यौं उघरति जाइ । बि० १८०/७८
२. आवरण उतार कर नंगा होना ।
उ०—अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हें बिरद बिन करिहौं । सूर० वि०/१३४/३७
मु० उघरकर नाचना—लोक-लज्जा छोड़कर मनमाना आचरण करना ।
३. खुलना ।
उ०—सहज कपाट उघरि गए, ताला कुंजी टूटि ।
सूर० १०/३०६०/३०४
४. भेद खुलना ।
उ०—'नंददास' प्रभु कछु न रहैगी, जब बातन उघरौंगी । नं० ११५/३१२
मु० कलई उघरना—पोल खुलना । भण्डा फूटना ।
उ०—'सूर' स्याम को बदन बिलोकत उघरि गई कलई । सूर० परि० १/१२७/६१५
५. उचटना ।
उ०—कित हूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हो ।
घ० क० ५०/६६
उघरत व०कृ० । उघर्‌यो भू०कृ० ।
—आई वि० उघड़ी हुई । खुली हुई ।
उ०—व्याकुल फिरति भवन बन तहँ तहँ, तूल आक उघराई । सूर० १०/२२२६/६७
—आरा पुं० खुला हुआ स्थान ।
वि० खुला रहने वाला । खुला हुआ ।
उ०—उघरारो उर, उरबसी ओर तकि कै ।
क० ६१/७१

उघाड़—उघार— सक० १. खोलना ।
उ०—बदन उघारत ही मदन सुयोधन हौं, द्रोपदी ज्यौं नाम मुख तेरो ही करति है ।
के० I, १६/६७
२. पहने हुए वस्त्र हटाकर नंगा करना ।
उ०—एक अचंभो भयो घनआनँद हैं नित ही पलपाट उघारे । घ० क० ४२५/२४३
उघारत व०कृ० ।
उघारी, उघाड़्यो भू०कृ० ।
—आ—ई वि० १. विवस्त्र । नंगा ।
उ०—बसन त्यागि उठि चलीं उघारी ।
बो० ४४/६५
२. खुला हुआ । स्पष्ट । आवरण रहित ।
उ०—सबनि कैं मन जो मिलैं हरि, कोउ न कहति उघारि । सूर० १०/१४६६/६१५

उघेर—उघेल— सक० १. खोलना ।
उ०—चाइसों गाँठि उघेरि अमेठी ।
दे० I, २६६/६२
२. अलग करना । हटाना ।
उ०—कालिन्दी के कूलनि, तरुन तरु मूलनि निहारि, हारि अग के दुकूलनि उघेरतीं ।
दे० I, ८७/१८
उघेरत व०कृ० । उघेर्‌यो भू०कृ० ।

उच वि० दे० 'उच्च' ।
उ०—परी दृष्टि उच कुचनि पिया की ।
सूर० १०/१०५३/४६३
—औंहीं—ओही वि० ऊपर की ओर उठा, उभरा या तना हुआ ।
उ०—अंचर उघारे रंच कंचुकी उचोही पर ।
दे० I, ७२६/१७०
—औहनि वि० दे० 'औंहीं' ।
उ०—उरज उचौहनि दै उरू तन तकि तिया अन्हाति । प० ३६/८६

उचक— अक० १. एड़ी उठाकर थोड़ा उछलकर या पंजों के बल खड़े होकर कोई ऊँची चीज देखने या पकड़ने की कोशिश करना ।
२. उछलना ।
उ०—छाक छकी छतियाँ धरकैं दरकैं अँगिया उचकैं कुच नीके । प० २२७/१२६
सक० उछल या झपटकर कोई चीज उठाना या छीनना ।

उचका अव्य० अचानक ।

उचका— सक० १. ऊपर करना । उठाना ।
उ०—केतिक लंक, उपारि बाम कर, लै आवैं उचकाइ । सूर० ६/७४/१७३
२. उछालना ।
उचकात व०कृ० । उचकाई भू०कृ० ।

उचकावन पुं० उछाल । उठावन । ऊंचा उठने की क्रिया ।

उचकैया[1] वि० उचकाने वाला । उठाने वाला ।

उ०—स्याम कहत सब नंद गोप सौं, भले लियो उचकैया । सूर० १०/८७५/४४६

उचकैया[2] स्त्री० उछाल ।

उ०—जा गिर तें चढि कुलांच लीनी उचकैयां । नं० १६/२८४

उचकौहीं वि० ऊपर उटे हुये ।

उ०—लचकौहीं सो लंक उर उचकौहीं सो ऐन । म० २५/३७१

उचक्का पुं० उठाईगीरा । ठग ।

उ०—बटपारी, ठग, चोर उचक्का, गाँठि-कटा लठबाँसी । सूर० वि०/१८६/५०

उचट—उचिट— अक० १. छिटकना ।

उ०—गागरि ताकि काँकरी मारैं, उचटि-उचटि लागति प्रिय-गात । सूर० १०/१४४१/५८७

२. अलग होना ।

उ०—कीच बीच जैसे गुरा खँचिकैं फिर उचटैं न । बो० ८३/१४८

३. खिन्न होना । विरक्त होना ।

उ०—गिरि गगन्न तियमन्न, कंठ कमिनिय उचिट्यो । गं० २६६/६०

उचटत व०कृ० ।

उचिट्यो, उचट्यौ भू०कृ० ।

—उलटि यौ० विपरीत होकर । विरुद्ध होकर ।

उचटा— सक० १. उखाड़ना ।

२. भड़काना । उदासीन या विरक्त करना ।

उ०—जैहै कहूँ निकसि हिरदय तें, जानि बूझि तिहिं क्यों उचटावत । सूर० १०/२४१६/१३३

उचट्टा पुं० उचाट । तेजी से छूटना ।

उ०—गोला से गयंदन के गोल खोलिबे में झिले रान के इसारे लेत बान के उचट्टा से । प० ११/३०६

उचड़— अक० पृथक होना । अलहदा होना ।

उचन—उचनि स्त्री० उठान ।

उ०—नीकी नासा-पुट ही की उचनि अचंभे-भरी । घ० क० २३६/१६७

उचत वि० उचित । उपयुक्त ।

उचमि वि० ऊँची ।

उ०—बूड़ति भुजा रोम अंवर द्रुम अँस कुच उचमि थरीं । कुं० ३४५/११४

उचर— सक० १. उच्चारण करना ।

उ०—नंदकुँवर झारत मुख अंचल, जैं-जैं शब्द उचरत कलबानी । कुं० ४६/२७

२. कहना ।

उ०—प्रथम विशेष बखान करि पुनि सामान्य उचरि । प० २०६/५८

अक० उच्चरित होना ।

उचरत वर्त०कृ० ।

उचरी, उचर्‌यौ भूत०कृ० ।

उचा— सक० दे० 'उँचा' ।

उ०—औरै त्रिगुन पवन जहाँ बहै । मुख उचाइ टरि सूँघत रहै । नं० ११/२२४

उचाकु पुं० उचाट ।

उ०—उरहू में आइ आइ लागत उचाकु सो । गं० ३६/१३

उचाट—उच्चाट पुं० उच्चाटन । अन्यमनस्कता ।

उ०—नारि उरोजवतीनि कुँरोजनि । कान्ह उचाट भरे जिउ रोजनि । भि० I, ४५/२४१

वि० अन्यमनस्क ।

उ०—तोकों देउँ बताय हौं तूं कत होत उचाट । म० २६८/२६३

पुं० दे० 'उच्चाटन' ।

उ०—सोखन, बिमोहन, बसीकरन, सीकरन डाटन, उचाटन, सुचाट, चित फेरेई । दे० I, ४२६/१२०

—मंत्र पुं० दे० 'उचाटन' ।

उ०—राधे तेरो नाम कि उचाटमंत्र मानियें । के० I, १८/२३

उचाढ़ी स्त्री० उचाटी । अनमनी ।

उ०—'सूरदास' प्रभु के रस-बस सब, भवन काजतैं भईं उचाढ़ी । सूर० १०/७३६/४१२

उचापत पुं० वस्तु उधार खरीदने की रीति ।

उचार[1] पुं० उच्चारण । कथन ।

उ०—गूढ़ोत्तर उत्तर जहाँ साभिप्राय उचार । प० २४६/६३

उचार[2]— सक० १. उच्चारण करना ।

उ०—व्योम विमान-भीर भई, सुर मुनि जैं-जैं सब्द उचारी । कुं० ८६/४१

२. कहना । बोलना ।

उ०—देखत कंप छुट्यो तिय के तन यों चतुराई को बोल उचार्‌यौ । म० ३२८/२७६

उचारत वर्त०कृ० । उचार्‌यौ भूत०कृ० ।

उचारन क्रि०स० ।

उचाल—उचेड़—उचेल—उचिट—

सक० लगी या सटी वस्तु को अलग करना ।

उचित—उचत वि० मुनासिब । ठीक । योग्य ।

उ०—उचित केलि कछु तिक्त त्यागि । सूर० १०/२८२३/२१३

उच्चैस्रवा—उच्चैःश्रवा पुं० एक सुन्दर घोड़ा जो समुद्र के चौदह रत्नों में से एक था। इन्द्र इसका अधिकारी है।

उ०—निकले सबै कुँवर असवारी। उच्चैस्रवा के पोर। सूर० १०/४१६६/५३२

उच्च वि० ऊँचा। उत्तुंग।

उ०—नील मनि जटित सु बेंदा उच्चकुच पै। प० ४८/८८

—थरी स्त्री० ऊँची भूमि।

उच्चगिर वि० जोर से बोलने वाला।

उच्चर— सक० दे० 'उचर—'।

उ०—देव सुरमुनि उच्चरत बेद भारती। दे० I, ५६/५७

उच्चरत व०कृ०। उच्चर्‌यो भू०कृ०।

उच्चाटन पुं० कामदेव के पाँच बाणों (उच्चाटन, मोहन, शोषण, उन्मादन, मारण) में से एक बाण।

उ०—उच्चारन सर लाय मोहन सोपन उनमदन। मनमथ अति हरषाय मारन सर पंचम लग्यो। बो० ८/३६

उच्चार[1]**—** सक० दे० 'उचार'।

उ०—अंत औसर अरध नाम उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुन छुड़ायी। सूर० वि०/११६/३३

उच्चारत व०कृ०। उच्चार्‌यौ भू०कृ०।

उच्चार[2] पुं० दे० 'उचार'।

उ०—अंत औसर अरध नाम उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुन छुड़ायी। सूर० वि०/११६/३३

—इत वि० कहा हुआ। बोला हुआ।

उच्छन्न वि० लुप्त। दबा हुआ।

उच्छलिध्र—उच्छलिन्ध—उच्छलीन्ध्र पुं० कुकुरमुत्ता। खुमी।

उ०—बुड़ी लुड़ी जु हरित भई धरनी। उच्छलिध्र छबि फबि हियहरनी। नं० २०/२५०

उछंग—उच्छंग[1] पुं० गोद। क्रोड़।

उ०—उर उच्छंग कन्हैया लै लै, माखन खान सिखाए। सूर० १०/३६५७/४२१

—न पुं० गोद।

उ०—जान प्रभात उछंगन दंपति, लेत प्रान-रस पेखैं। सा० १०२०/८१

उच्छव पुं० दे० 'उत्सव'।

उ०—घर-घर उच्छव उज्ज्वल मंगल छिरकत-हरद दह्यो। गो० ७/४

उच्छाव—उच्छाह पुं० दे० 'उत्साह'।

उ०—मदन मोह उच्छाह गर्व रस सों भरी। कृ० ७०/३२१

उच्छिष्ट वि० जूठा। जुठारा हुआ।

उच्छू पुं० वह खाँसी जो गले में कुछ अटकने से उत्पन्न हो।

उच्छून वि० बढ़ा हुआ। फूला हुआ।

उच्छृंखल वि० उद्दण्ड। निरंकुश। स्वेच्छाचारी।

उच्छेद—उच्छेदन पुं० १. जड़ से उखाड़ने अथवा काट-कर अलग करने की क्रिया अथवा भाव। २. खंडन। ३. नाश।

उ०—करिहै कौन उपाय करि, तव कुल को उच्छेद। के० III, १८/६५१

उच्छवास पुं० १. साँस। २. उसाँस। ३. ग्रंथ का विभाग। ४. प्रकरण।

उछंग पुं० उत्साह। उचंग।

—ई वि० उत्साही। उचंगी। उमंगी।

उछक—उझक अक० १. चकित होना। चौंकना। २. होश में आना। ३. दे० 'उचक'।

उछट— अक० १. बिखरना।

उ०—उछट जात गैयां तुम जु आओ। च० १३८/८२

२. प्रकाशित होना।

उ०—ऊँचे छतज्ज छटा उछटी प्रगटी परभा परभात की मामो। भू० ६२/१४५

उछर—उछल—उच्छल—उच्छर—उछूल

अक० उछलना।

उ०—जिमि ग्राह महा गहिरे जल में उछरै दुरि जाइ अलोल भर्‌यो। गं० १२७/४०

उछरत व०कृ०। उछर्‌यो भू०कृ०।

—इत वि० १. छलकता हुआ।

उ०—प्रेम घट उच्छलित ह्वै है, नैन अंबु बहाइ। सूर० १०/२६४६/२७२

२. उछलता हुआ। तेजी के साथ ऊपर नीचे होती हुई।

उ०—स्याम सुभग तन पीत पट राजत अंग अंग उछलित छबि तरंग। गो० ४०४/१६२

—न पुं० उछलने या तरंगायित होने की क्रिया या भाव।

उ०—परम प्रेम उच्छलन इक, बढ्यो जु तन मन मैन। नं० १/१४२

उछला— सक० किसी को उछलने में प्रवृत्त करना। उछालना।

उछलावत व०कृ०।

उछव पुं० दे० 'उत्सव'।

उछाँग पुं० छलाँग। उछाल।

उ०—तब लियौ स्याम उछाँगे। सूर० १०/४/२११

उछाल—उछार पुं० १. फलांग। कुदान।

२. ऊपर उठने की सीमा। ३. वमन। कै।

सक० उछालना।

उछारत व०कृ०। उछारी भू०कृ०।

—छक्का स्त्री० व्यभिचारिणी। कुलटा।

उछाह[1]—उछाय—उछाव पुं० उत्साह। उमङ्ग।

उ०—दान समै मन दान दै हँसि उछाह कहि देत। म० १९९/३८४

—ई वि० उत्साही।

उछाह[2] पुं० १. दे० 'उत्सव'। २. आनंद।

उ०—पाहुनी जे आवैं हिमाचल उछाह में। प० ६७३/२२१

३. उत्साह। उमंग।

उछिप्त वि० ऊपर की ओर उठाया हुआ। उत्क्षिप्त।

उ०—कनक-वलय, कंकन जुग भुजानि उछिप्त करति। कुं० १४१/५८

उछिष्ट—उच्छिष्ट वि० जूठा।

उछीर पुं० १. ऊपर से खुला हुआ स्थान।

२. बीच की खाली जगह। अवकाश।

३. भीड़ की कमी। ४. एकान्त।

उछेद—उच्छेद पुं० १. उखाड़-पछाड़। २. विश्लेषण।

३. नाश। ४. खण्डन।

उ०—असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ। सूर० वि०/१०४/२८

उछ्छाह पुं० दे० 'उछाह'।

उ०—मानस लौं रूप बदलत उछ्छाह तें। भू० २७३/१८०

उछ्वास पुं० गहरी साँस लेना। आहें भरना।

उ०—मिहिर-तनया-पुलिन-वर तर, बिमल जल उछ्वास। सूर० १०/१०७१/४९८

उजका पुं० पशु-पक्षियों को खेत में चरने या चुगने से रोकने तथा उन्हें भयभीत करने के लिए लगाया जाने वाला घास-फूस, चिथड़ों आदि से बना पुतला। बिजूखा।

उजट पुं० कुटी। झोंपड़ी। पर्णशाला।

उजड़— अक० १. ध्वस्त होना। नष्ट-भ्रष्ट हो जाना।

२. तितर-बितर होना।

—आ वि० ध्वस्त।

उजड्ड वि० १. गँवार। २. वज्रमूर्ख।

३. असभ्य। उद्दण्ड।

—पन पुं० असभ्यता। उद्दण्डता।

उजबक पुं० तातारियों की एक जाति।

वि० परम मूर्ख। मूढ़।

उ०—उजबक अकुलाइ उठत अकबकाइ। के० III, ५९/६२४

उजर[1]— अक० १. उजड़ना।

उ०—सूरदास प्रभु सुख के दाता गोकुल चले उजरि कै। सूर० १०/२९८०/२८०

उजरत व०कृ०। उजर्‍यौ भू०कृ०।

उजर[2]— अक० उज्ज्वल या प्रकाशमान होना।

उजरनि स्त्री० उजड़न।

उ०—उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ····। घ० क० ५०/६७

उजरा[1] वि० (स्त्री०—उजरी) उजला।

सक० साफ करना। चमकाना।

—ई स्त्री० उजलापन। उज्ज्वलता।

उ०—जाकी उजराई लखैं आँखि ऊजरी होति। बि० ५१२/२११

—न स्त्री० निर्मलता। स्वच्छता।

उ०—सो कजरा गुजरान जहाँ कबि बोधा जहाँ उजरान तहाँ को। बो० ३१/६

—रा वि० उज्ज्वल। चमकीला।

उजरी—ऊजरी—उजली वि० उजली। साफ। स्वच्छ।

उजा वि० १. विजय करने वाली।

२. शर्माने वाली। लजीली।

उजागर—उजागरा—उजागुरौ वि० (स्त्री० उजागरी)

१. उज्ज्वल। प्रकाशमान। चमकता हुआ।

उ०—कहै पदमाकर उजागर गुबिंद जो पै, चूकिगे कहूँ तौ एतौ रोष रागियतु है। प० ६४०/२१३

२. जिसका यश चारों ओर फैला हो।

३. प्रसिद्ध। प्रख्यात।

—इ—ई वि० १. जगमगाती हुई। दीप्तिमान।

उ०—रूप गुननिकरि परम उजागरि। नृत्यत अंग थकित भई नागरि। सूर० १०/१०८४/५०३

२. निपुण। चतुर।

उजाड़—उजार—उजारि वि० उजड़ा हुआ। वीरान। ऊबड़-खाबड़।

पुं० उजड़ा हुआ स्थान। ध्वस्त स्थान।

उ०—ते ह्वाँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै। घ० क० १७४/१३६

सक० नष्ट करना। खतम करना। समाप्त करना।

उ०—हिय मैं जु आरति सुजारति उजारति है। घ० क० ४६/६५

उ०—रावरे चैन को ऐन हियौ है सु रैन-दिना मैन उजारत। घ० क० ४५४/२५१

उजारत व०कृ०। उजार्‍यौ भू०कृ०।

उजारा—उजारौ पुं० (स्त्री०—उजारी) उजाला। प्रकाश।
वि० उजाला। कान्तिमान।
उ०—ताहि डसत जाको हियो उजारो।
सूर० १०/७६२/४१८
उ०—त्यों पद्माकर बोली हसी हुलसी मुखचंद उजारी। प० ३९/८६

उजास—उजासु पुं० (स्त्री०—उजासी) १. दे० 'उजारा'।
उ०—'दास' तनदीपति प्रदीप के उजास कीन्हे।
भि० I, १३६/११८
२. चमक। द्युति।

उजियार—उजियारौ पुं० (स्त्री० उजयारी—उजियारी) दे० 'उजारा'।
उ०—हाटक सो तनु बिप्र को लसत त्रिगुन उजियार। बो० १७/६८
वि० उजाली। चाँदनी।
—इ वि० दीप्तिमान। प्रकाशमान।
उ०—बदन देखि बिधु बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी। सूर० १०/१६६/२६६
स्त्री० शुक्लपक्ष की रात।

उजियरिया—उजयारी स्त्री० चाँदनी।
उ०—छिटकि रही आछी उजियरिया।
सूर० १०/२४६/२७८
वि० उजाली। चाँदनी।
उ०—मंद सुगंध पवन जहाँ परसत तैसिये राजति निसि उजयारी। कुं० ३००/१०२

उजिआरो वि० दे० 'उजारा'।
उ०—सुनि जसुमति तेरो पूत सपूत यह कुल दीपक उजिआरो। गो० ७५/३८

उजीर (अ०) पुं० वज़ीर। दीवान। मन्त्री।
उ०—पाप उजीर कह्यो सोइ मान्यो धर्म-सुधन लुटयो। सूर० वि०/६४/१८

उजुर (अ०) पुं० उज्र। किसी कथन या कार्य के सम्बन्ध में की जाने वाली आपत्ति। अस्वीकृति। इन्कार।

उजेर— सक० उजालना। प्रकाशमान करना।
उ०—पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि किरनि उजेरत।
सूर० १०/४०५/३१६
उजेरत व०कृ०।

उजेर—उजेरा—उजेला—उजोर—उजोरा (स्त्री०—उजेरी) दे० 'उजारा'।
उ०—बिज्जु की चमकि महताब सी दमकि उठै उमगति हिय के हरष की उजेली सी।
भि० I, ४७/१००
—इ स्त्री० चाँदनी। रोशनी।

उ०—बिज्जु सी चमकि महताब सी दमकि उठै उपगति हिय के हरष की उजेली सी।
भि० I, ४७/१७०

उज्जयिनी—उज्जैन—उज्जेनि स्त्री० मालवा देश की प्राचीन राजधानी, अवन्तिकापुरी।

उज्जर वि० दे० 'उज्ज्वल'।

उज्जल[१] पुं० नदी आदि में बहाव के विपरीत की दिशा या पक्ष।

उज्जल[२] वि० दे० 'उज्ज्वल'।
उ०—उद्दीपन शृंगार के जे उज्जल संभार।
म० २८४/२६६

उज्ज्वल वि० १. चमकीला। प्रकाशमान। प्रदीप्त। कांतिमान। सुन्दर।
२. निर्मल। स्वच्छ। सफेद।
उ०—मैदा उज्ज्वल करि कैं छान्यौ।
सूर० १०/८६२/४५२
पुं० १. स्वर्ण। २. प्रेम।
—ता स्त्री० प्रकाश।
उ०—छवि अनूप उपजति छिनु-छिनु सखि! अनुपम उज्ज्वलता। कुं० १६१/६४

उज्जिहान पुं० वाल्मीकि के अनुसार एक प्राचीन देश।

उज्यागर पुं० प्रकाश। उजाला।
उ०—जसुमति भीरजानि, भीतरे भवन पार्‌यो पालक पै बालक, सदीपक उज्यागरे।
दे० I, १६/६
वि० चमकवाला। कांतिमान। उज्ज्वल।

उज्यार—उज्यारा—उज्यारो पुं० (स्त्री०—उज्यारी) दे० 'उजाला'।
उ०—दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ो उज्यारो गेह।
बि० ६९/३४

उज्यास—उज्यासु पुं० दे० 'उजास'।
उ०—सीसफूल हीरालाल मोतिन उज्यास को।
दे० I, ३२४/१०३

उझक— अक० १. उचकना। उछलना।
उ०—उझकत झुझकत कह्यो न मानत।
बो० ४२/१६७
२. झाँकने, ताकने या देखने के लिये उचकना या ऊपर उठना।
उ०—मोहि भरोसो, रीझिहै उझकि झाँकि इक बार।
बि० ६८२/२८१
३. घबराना। चौंकना।
उ०—देखि-देखि मुगलो की हरमैं भवन त्यागैं उझकि उझकि उठैं बहुत बयारी के।
भू० ४२७/२११

४. निकलना।

उ०—कहै पद्माकर सु चंचल चितौनिहूँ तें, औझक उझकि झझकीन में फसत है।

प० २१६/१२७

उझकत व०कृ०। उझक्यौ भू०कृ०।

पुं० ताक-झाँक।

—ऊन पुं० ढेंगन। ओट। उचकन।

—ऐन पुं० उझकने की क्रिया।

उझट्ट पुं० फलाँग। उछाल।

उझप— अक० पलकों का ऊपर उठे रहना।

उ०—पदमाकर झपि उझपि उझपि झपि रहत दृगंचल। प० ६१६/२०८

उझपत व०कृ०। उझप्यौ भू०कृ०।

उझर— अक० १. हटना।

उ०—करु उठाइ घूंघटु करत उझरत पट गुझरौट।

बि० ४२४/१७३

२. ऊपर की ओर खिसकना।

सक० उड़ेलना।

उझरत व०कृ०। उझर्यौ भू०कृ०।

उझल स्त्री० उझलने या उड़ेलने की क्रिया या भाव।

उ०—अंग अंग नूतन निकाई उझलनि छाई।

घ० क० २६४/१८०

अक० उमड़ना। बढ़ना।

सक० उड़ेलना।

उझलत व०कृ०। उझल्यौ भू०कृ०।

उझाक— सक० झाँकना। सिर ऊँचा कर ताकना।

उझिल[1] स्त्री० कांति। दीप्ति।

उ०—रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई।

घ० क० २३८/१६७

उझिल[2]— सक० दे० 'उझल—'।

उझिला स्त्री० उबटन के लिए भूनी हुई सरसों।

उ०—झेलो बियोग के ये उझिला निकसै जिन रे जियरा हियरा तैं। ठा० १६१/४१

उझीना पुं० आग सुलगाने के लिए लगाया हुआ उपलों का ढेर। अहरा।

उटंकित वि० संकेत किया हुआ। इशारा किया हुआ। चिह्नित।

उटंगन पुं० चौपतिया नाम की घास।

उटंग— अक० दे० 'उठंग—'।

उटंगी वि० ऊपर पैर किये हुये।

उट[1] पुं० १. तृण। तिनका। २. ऊर्ण। पत्ता। घास।

उट[2]— सक० १. उलटा करना।

उ०—जोगी जरै मरै उटि सीसी, निरगुन क्यों ठहरात। सूर० १०/३६६८/४२७

२. ओट में हो जाना।

उ०—भजि चले एकै देखि क्रुद्धित कुँवर कौं इत-उत उटैं। प० १४६/२१

उटक— सक० १. अटकल से पता लगाना। अनुमान करना।

२. कूदना। उछलना।

३. भड़कना। चिढ़ना।

अक० अटकना।

उटकन पुं० ओछे अर्ज का कपड़ा।

उटक-नाटक वि० ऊबड़-खाबड़। विचित्र।

उटक्कर वि० अंधाधुंध। अण्डबण्ड।

उ०—सीसन की टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं। प० १८५/२६

—लैस वि० अटकल-पच्चू। अण्ड-वण्ड। बिना समझा-बूझा।

उटज पुं० पर्ण-कुटी। झोंपड़ी।

उटड़्या पुं० उटड़ा। वह लकड़ी जो गाड़ी को टिकाने के लिये गाड़ी के अगले भाग में लगाई जाती है। ओटा। उटहड़ा।

उटड़ा पुं० दे० 'उटड़्या'।

उटपट—उटपटाँग पुं० दे० 'ऊटपटाँग'।

उटारी स्त्री० लकड़ी का वह टुकड़ा जिसके ऊपर चारा रखकर काटा जाता है।

उटेव पुं० छाजन की धन्नी के बीच में ठोंकी हुई डेढ़-डेढ़ हाथ की दो खड़ी लकड़ी इन पर एक बैठी लकड़ी बैठाकर धन्नी रखी जाती है।

उट्टा पुं० ओटनी। कपास ओटने की चरखी।

उठंग— अक० १. टेक लगाना। ऊँची या ऊपर उठी वस्तु का सहारा लेना। २. लेटना।

उठंगन—उठगन—उठिंग पुं० टेक। सहारा। आड़।

उठंगा—उठगा सक० किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु के सहारे से खड़ा करना।

उठ— अक० १. खड़ा होना। २. सोकर जागना।

उ०—प्रात समैं श्री बल्लभ-सुत को उठतहि रसना लीजै नाम। नं० ११/२८२

३. नीचे से ऊपर जाना। ४. ऊँचा होना।

५. उमड़ना।

उ०—उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै।

घ० क० ३२३/२०४

६. काम का बन्द होना। ७. खर्चा हो जाना। ८. फैलना। प्रसारित होना।

उ०—कल करील की कुंज तें उठत अतर की बोइ।
भि० I, १२२/१०५

९. उत्पन्न होना।

उ०—उतहि असाढ़ उठे नूतन सघन घटा।
क० १६/५८

१०. उद्यत होना।

उठत व०कृ०। उठ्यौ भू०कृ०।

उठन क्रि०सं०।

—औन वि० उठी हुई। उमड़ी हुई।

—औना पुं० उठाने की क्रिया। बंधान।

—औहे—औहें वि० उठे हुये। उभार पर आने वाले।

उ०—जोवन की ऐंठ अठिलात से उठौहें कुच।
दे० I, २६०/६७

—बैठ स्त्री० उठना-बैठना। मेल-जोल।

—वैया वि० १. उठवाने वाला।

२. उठाने वाला।

उठकठित वि० दे० 'उत्कंठित'।

उठतक पुं० वह वस्त्र या नमदे का टुकड़ा जो जीन या काठी के नीचे घोड़े की पीठ पर रखा जाता है।

उठल्लू वि० १. एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहने वाला। २. आवारा।

—चल्लू वि० अव्यवस्थित। अस्थित।

उठा— सक० १. खड़ा करना। २. धारण करना।

उ०—उठै मन में उठाइ सो तौ मन ही में गोवत।
बो० २२/५८

३. हटाना। दूर करना।

उ०—सखी उठाई पास तें झूंठे ही जमुहाइ।
म० ३०८/३६४

४. नीचे से ऊपर ले जाना।

उ०—भली कही भरथ्थ तैं उठाउ आगि अंग तें।
के० I, २३/२६६

उठात व०कृ०। उठाई भू०कृ०।

उठाईगीरा वि० १. आंख बचाकर माल उठाने वाला।

२. बदमाश।

उठाउ— सक० १. उठाना। २. खड़ा करना।

३. तैयार करना।

४. किसी देवी-देवता के नाम पर, किसी कार्य-सिद्धि के लिये कुछ धन निकालना या संकल्प करना।

पुं० उठान। उभाड़।

उठान स्त्री० १. उन्नयन। उन्नति। उभार।

उ०—सरस सुमिल चित-तुरंग की करि करि अमित उठान।
बि० १७८/७७

२. ऊपर की ओर विकास।

उ०—बान सों मार्यो मनोज अबै कहि आवत नेक उरोज उठान सों।
भि० I, ३३/७

उठाव— सक० उठाना।

उ०—आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी।
सूर० १०/२२८/२७४

उठावत व०कृ०।

—न पुं० उठाने की क्रिया।

उठावनी—उठौनी स्त्री० १. मृतक के दाह-कर्म के तीसरे या चौथे दिन लोगों के इकट्ठे होने की प्रथा।

२. उधार का लेन-देन। ४. दक्षिणा-विशेष।

५. देवता के लिये निकाला हुआ धन या अन्न।

उठेल[1] पुं० धक्का। ठेल। चोट।

उ०—प्रति गजनि उठेलैं दंतनि ठेलैं ह्वै भट-मेलैं जोर करैं।
भि० II, २०३/२६

उठेल[2]— सक० धक्का देना। ठेलना।

उठौवा वि० दे० 'उठल्लू'।

उड़[1] पुं० दे० 'उडु'।

—गन पुं० तारागण।

उ०—अंसुवा उड़गन परत हैं होन चहत उतपात।
म० १६०/३३१

—गन-ईसु नक्षत्रों का पति-चंद्रमा।

उ०—उड़गन-ईसु द्विज-ईसु औषधीसु भयो।
के० I, ७३/२१०

—प पुं० दे० 'उडुप'।

उ०—तब ही उड़प उदय ह्वै लयौं। नं० पृ० २७३

—पति पुं० दे० 'उडुपति'।

उ०—उड़ि उड़ि पियत अमिय उड़पति में।
म० १२०/३१६

—मंडल पुं० १. दे० 'उडुमंडल'।

उ०—डंका के दिये तें दल डंबर उमंड्यो उडमंड्यो उडमंडल लौं खुर की गरद है।
भू० ५४३/२३८

२. आकाश।

—राज पुं० चन्द्रमा।

उ०—मुख निरखि उड़राज तजि गयौ सुरऐन कौं।
सूर० १०/२४५०/१४०

उड़[2]— अक० १. पंख के सहारे हवा में चलना फिरना।

उ०—फूली नागरि कमलिनी उड़ि गये मित्र मलिंद।
म० २८५/३६२

२. हवा के साथ डोलना-फिरना।
उ०—उड़त पराग न चित्त उड़ावत।
के० II, ३१/२३२

उड़त व०कृ०। उड़्यौ भू०कृ०।

—औहाँ वि० उड़ने वाला। उड़ंकू।

उड़द पुं० उर्द की दाल। अन्न विशेष।

उड़न पुं० उड़ने की क्रिया या भाव।
उ०—जनु रवि गत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै। सूर० १०/६५/२३१

वि० उड़ने वाला।

—खटोला पुं० वायु-यान। विमान।

उड़नी वि० १. उड़ने वाली। २. छूत की (बीमारी) जैसे—चेचक आदि।

उड़मार पुं० चिड़ीमार। बहेलिया।

उड़ांक वि० १. उड़ने वाला।
२. ले भागने वाला। अपहरणकर्त्ता।

उड़ा—उड़ाव सक० १. भगा देना। २. लुटाना। अपव्यय करना। ३. हवा में छितराना।
उ०—ऐंड सों ऐंडाइ अति अंचल उड़ाइ ऐसी।
के० I, १८/७९

४. पृथक करना। ५. गायब करना।
६. भुलावा देना। ७. वेग से दौड़ाना।
उड़ात, उड़ावत व०कृ०।
उड़ायौ, उड़ारी भू०कृ०।

—इक वि० उड़ाने वाला।
उ०—उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक-हाथ।
बि० ५७/३०

—ऊ वि० अपव्ययी। अधिक खर्च करने वाला।

—का—कू वि० उड़ने वाला।

—न स्त्री० उड़ने की कला। उड़ने की क्रिया।

—यक वि० उड़ाने वाला।

उड़ानधाई स्त्री० १. ठगी। चालाकी। २. टालमटोल।

उड़ास[1] (उद्+वास) स्त्री० १. रहने का स्थान।
२. महल।

उड़ास[2]— सक० १. उजाड़ना। नष्ट-भ्रष्ट करना।
२. बिस्तर समेटना। ३. उठाना।

उड़िक— सक० प्रतीक्षा करना।

उड़िया[1] वि० उड़ीसा में होने वाला। उड़ीसा का।
पुं० उड़ीसा प्रदेश का निवासी।
स्त्री० उड़ीसा प्रदेश की भाषा।

उड़िया[2] स्त्री० ओढ़नी।
उ०—लाल चोली, नील उड़िया, संग जुवतिनि भीर। सूर० १०/११६८/५२२

उड़ियाना पुं० बाईस मात्राओं का एक मात्रिक छन्द जिसमें बारह और दस मात्राओं के विश्राम से बाईस मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक गुरु होता है।

उड़िल स्त्री० भेड़, जिसके बाल काटे न गए हों।

उड़िस—उड़ुस पुं० खटमल। खटकीरा।

उडु—उडू पुं० तारा। नक्षत्र।
उ०—सुंदर नंद कुँवर उर पर सोइ लागत उडु जस।
नं० ३३/३

—चर पुं० १. तारा या नक्षत्र। २. पक्षी।

—प पुं० १. नदी पार उतरने के लिए बाँसों में घड़े बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा। घड़नई। डोंगी। नाव। नौका।
२. अर्द्ध चन्द्र।
उ०—थके उडुप अरु उडुगन उनकी कौन चलावै।
नं० १३२/३९

पुं० एक प्रकार का नृत्य।
उ०—बहु उडुप, त्रियगपति, पति अडाल।
के० II, ४/३७७

—पति पुं० तारिकाओं का पति चन्द्रमा।

—मंडल पुं० ताराओं का समूह।
उ०—जनु उडुपति उडुमंडल तें महिमंडल आयौ।
नं० ४५/१७८

—मार पुं० ताराओं की पंक्ति।
उ०—छत्र, सत्यजुग, दूध, दधि, संख, सिंध उडुमार।
के० I, ७/११२

—राई—राज पुं० चन्द्रमा।
उ०—ताही छिन उडुराज उदित रस-रास-सहायक।
नं० ४२/४

उड़ेर—उड़ेल— सक० एक बर्त्तन से दूसरे बर्त्तन में डालना। उड़ेलना।

उड़ैना पुं० (स्त्री०—उड़ैनी) जुगनू।

उड्ड पुं० दे० 'उडु'।

—ईयन पुं० उड़ान। पतंगबाजी।

—ईयमान वि० आकाशगामी। नभचर।

—गन पुं० दे० 'उडुगन'।

—प पुं० दे० 'उडुप'।

—पति पुं० दे० 'उडुपति'।

उ०—अपनी दुति के उडुगन उडुपति घन खेलत ज्यों। नं० ८८/८

—पथ पुं० आकाश।

—मंडल पुं० दे० 'उडुमंडल'।

उ०—थक्यो उडु-मंडल सिगरो। नं० २३/१८

—राज पुं० वरुण।

उ०—तिहि छिन सोइ उडुराज उदित सुरराज-सहायक। नं० २३/३२

—यन पुं० उड़ान।

उड्डस पुं० दे० 'उड़िस'।

उढ़[1] पुं० बिजूखा, घास-फूस का बना पुतला जो खेत में पशुओं को डराने के लिए खड़ा किया जाता है।

उढ़[2]— अक० १. खड़े होना। उठना।

उ०—तनु रोम उढ्यो अँखियाँ भरि आई। म० १६/२०४

सक० २. ओढ़ना।

—ऐनी स्त्री० ओढ़नी।

—ऐया वि० १. ओढ़ने वाला। २. उढ़ाने वाला।

—ओनी स्त्री० ओढ़नी।

उ०—सूँघि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी। के० I, ४६/३७

उढ़क— अक० १. टेक लगाकर बैठना। २. ठोकर खाना। ३. उलझना। ४. अड़ना।

सक० १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के सहारे खड़ा करना।

—न पुं० १. टेक। सहारा। रोक। २. वह चीज जो रास्ते में पड़कर ठोकर लगाती हो।

उढ़ना पुं० (स्त्री० उढ़नी—उढ़निया) ओढ़नी।

उ०—उढ़नी लपेटे सीस सों। बो० ४२/६५

उढ़र— अक० विवाहिता स्त्री का पर-पुरुष के साथ भागना।

उढ़री स्त्री० भगाकर लाई हुई स्त्री। रखैल। उपपत्नी। घर में डाली हुई स्त्री।

—पूत पुं० वर्णसङ्कर सन्तान। रखैल से उत्पन्न पुत्र।

उढ़ला पुं० पहनने का वस्त्र।

उढ़ा— सक० ओढाना। ढकना। आच्छादित करना।

उ०—कँपत देखि उढ़ाइ पीत पट, लै करुनामय कंठ लगाई। सूर० १०/३३८४/३६४

—वनी स्त्री० ओढ़नी। चुनरी।

उढावत व०कृ०। उढ़ाई भू०कृ०।

उढ़ावनी स्त्री० पिछौरा। चादर।

उढीकन पुं० मिट्टी का ढेला या ईंट का टुकड़ा जो बर्तन के न लुढकने को लगाया जाता है।

उतंग वि० १. ऊँची।

उ०—लटपटी पाग ग्रीवा उतंग। बो० २८/४५

२. अत्यधिक।

उ०—जंगग्गरजि उतंगग्गरब मतंगग्गन हरि। भू० ३३४/१६१

३. श्रेष्ठ।

उ०—गनत अवस्था भेद मैं जिनकी बुद्धि उतंग। र० ४८७/६६

—आ वि० ऊँचा।

उ०—चार चक्कवै उरज उतंगा। सूर० १०/२४५४/१४१

उतंसक (अवतंसक) पुं० कानों का आभूषण।

वि० श्रेष्ठ।

उ०—सोइ सोइ करैं निरोध गोप-कुल केलि-उतंसक। नं० ८७/३६

उत[1]— सक० उधेड़ देना। हटा देना।

उ०—गनिका गरीबनी को पातक उतनि गो। ठा० १/६१

उत[2] क्रि०वि० उस दिशा में। उस ओर। उधर।

उ०—इत सकुच अति सखिनि की, उत होति अपनी हानि। सूर० १०/१७५६/३

उतकंठ वि० दे० 'उत्कंठ'।

उ०—स्रवन सुनत उतकंठ रहत हैं। सूर० १०/१३६/२४१

उतकंठा स्त्री० दे० 'उत्कंठा'।

उ०—उतकंठा हरि सौं बढ़ी। सूर० १०/११८०/५२६

उतकंठिता स्त्री० दे० 'उत्कंठिता'।

उ०—बिप्रलुब्ध उतकंठिता वासक सज्जा मान। म० ११०/२२४

उतकंठादिक वि० वह नायिका जिसमें काम की अभिलाषा हो।

उ०—होति सुधर अति वासिकसज्जा, उतकंठादिक गनिए। कृ० ३८/११

उतक (उत्का) स्त्री० दे० 'उतकंठिता'।

उ०—स्वाधीन पतिक, सज्जा वासक, उतक उतखंडित, कलह विप्रलंभ निसि खोती है। दे० I, ६२२/१५२

उतकरष—उतकरषा (उत्+कर्ष) पुं० दे० 'उत्कर्ष'।

उ०—'सूर' स्याम करि ये उतकरषा, बस कीन्हो बिनु मोल। सूर० १०/१७६२/१०

उतकर्ष पुं० दे० 'उत्कर्ष'।

उ०—जु न कारन उतकर्ष को कियो सु कलपित हेतु। प० २११/५८

उतखंडित (उत्+खंडित) स्त्री० खंडिता नायिका। प्रिय के दूसरे में अनुरक्त होने के कारण अपने प्रेम को खंडित अनुभव करने वाली नायिका।

उ०—उतक उतखंडित, कलह विप्रलंभ निसि खोती है। दे० I, ६२२/१५२

उतचाव (उत+चाव) पुं० अत्यन्त इच्छा। अत्यासक्ति।

उतछाह पुं० उत्साह।

उतजोग पुं० दे० 'उद्योग'।

उ०—दही मही, लवनी, घृत बेंचौ सबै करौ अपने उतजोग। सूर० १०/१६२२/३७

उतथ्य पुं० एक प्राचीन ऋषि अंगिरा के पुत्र, बृहस्पति के बड़े भाई और गौतम के पिता थे।

उतन क्रि०वि० उस दिशा में। उस ओर। उधर।

उ०—उतन ग्वालि तूं कित चली। प० ३४६/१५४

उतना वि० उस मात्रा का। उस परिमाण का। वैसा।

उतपति—उतपत्ति स्त्री० दे० 'उत्पत्ति'।

उ०—कर्मंहि तें उतपत्ति है कर्मंहि तें सब नास। नं० १५/१५५

उतपल पुं० दे० 'उत्पल'।

उ०—उत पल धरत न धीर वै उतपल-सेज परेंहु। भि० I, ४०६/५६

उतपा— सक० दे० 'उतपाद'—।

उ०—अष्ट पुत्र तासौं उतपाने। सूर० ६/४४६/१५०

उतपाट— सक० १. नष्ट-भ्रष्ट करना। २. उखाड़ना।

उ०—द्रुम गहि उतपाटि लिए। सूर० ६/६६/१८२

उतपात पुं० दे० 'उत्पात'।

उ०—ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु। बि० ५८४/२४२

—ई वि० उपद्रवी।

उतपाद— सक० उत्पन्न करना। उत्पादन करना।

उतपान— सक० उत्पन्न करना। उपजाना।

उतमंग—उतबंग (उत्तम+अंग) पुं० दे० 'उत्तमांग'।

उतर[1]— अक० १. ऊपर से नीचे आना।

उ०—सिद्ध मनोरथ गोरथ ते उतरे लखि भू प्रतिबिंबित पाइनि। दे० I, १०४/२१

२. डेरा डालना। ३. ढलना। ४. फ़ीका पड़ना। ५. कम हो जाना। ६. प्रभाव या उद्वेग दूर होना।

उतरत व०कृ०। उतर्‌यौ भू०कृ०।

—न पुं० १. उतरने की क्रिया। २. उतारे हुए पुराने वस्त्र।

—न-पुतरन पुं० शरीर से उतारे फटे-पुराने वस्त्र।

उतर[2] पुं० १. उत्तर दिशा। २. दे० 'उत्तर'।

उ०—सीन उतर सैननि दियो गन्यो न भीर बिसाल। भि० I, ८६/१६

—आरी वि० उत्तर दिशा की हवा।

—आहा वि० उत्तर दिशा का। उत्तरी।

क्रि०वि० उत्तर की ओर।

—हा वि० उत्तर दिशा सम्बन्धी।

उतरवा— सक० १. उतारने का काम करवाना। २. नकल करवाना। प्रतिलिपि करवाना।

उतरा— अक० १. पानी के ऊपर आना। तैरना।

उ०—फिर ताके उलटे कहा, बिनु पाथ उतराय। र० ५८/३४७

२. उबलना। उफान खाना।

३. प्रकट होना।

उ०—घाइल ह्वै करसाइल ज्यों मृग, त्यों उतही उतराइल घूमैं। दे० I, ४७/३१२

सक० १. तैराना।

२. उद्धार करना। उस पार पहुँचाना।

उ०—ऐसौ को जु न सरन गहे तें कहत सूर उतरायौ। सूर० वि०/१५/५

३. साथ-साथ घुमाना। चलाना।

उतरात व०कृ०। उतरानी भू०कृ०।

उतराई स्त्री० उतारने की मजदूरी।

उतराव— सक० किसी की सहायता से नीचे लाना। उतारना।

पुं० उतार। ढाल।

—न पुं० १. उतरवाना। २. उतारने की मज़दूरी।

उतरायल वि० १. उतारा हुआ। छोड़ा हुआ। पुराना। २. इधर-उधर अकारण घूमने वाला।

स्त्री० नदी वगैरह के पार जाने का खेवा।

उ०—घाइल ह्वै करसाइल ज्यों मृग, त्यों उतही उतराइल घूमैं। दे० I, ४७/३१६

उतरिन वि० उऋणी।

उतरु पुं० दे० 'उत्तर'।

उ०—उतरु न देत देव दुज अधिकार मैं। दे० I, ६३/१४

उतल पुं० व्यग्र। मस्त। मतवाला।

उतला[1]— अक० १. आतुर होना। २. जल्दी करना।

उतला[2] पुं० दे० 'उतल'।

—ई स्त्री० शीघ्रता। उतावलापन।

उ०—उलटोई अतरोहा पहिरे हो उतलाई में।
मि० I, २७३/१४६

उतसंग—**उत्संग** पुं० गोद। क्रोड।

उतसव पुं० दे० 'उत्सव'।
उ०—बचन ग्रहै उपदेस ज्यौं उतसव मंगल मानि।
के० III, ३१/५५६

उतसहकंठा स्त्री० उत्कंठा। प्रबल इच्छा।

उतसुक वि० दे० 'उत्सुक'।
—ता स्त्री० दे० 'उत्सुकता'।

उतसाह—**उतसाहस** पुं० दे० 'उत्साह'।
उ०—अगम-नगर उतसाह, अप्सरा-गावन रे।
सूर० १०/१८/२२०

उतहि—**उतहिं**—**उतहीं** अव्य० उधर।
उ०—उतहि असाढ़ उठे नूतन सघन घटा।
क० १६/५८

उताइल—**उतायल** वि० जल्दी। शीघ्र। उतावला।
—ई स्त्री० शीघ्रता। जल्दबाजी। उतावलापन।
उ०—करत कहा पिय अति उताइली, मैं कहूँ जाति परानी। सूर० १०/२०३१/५८

उतान वि० पीठ के बल लेटा हुआ। चित।

उतार¹ पुं० १. नीचे उतरने की क्रिया। २. ढाल। ३. उतरने योग्य स्थान। ४. न्यौछावर।

उतार² वि० बेशर्म। नीच। अधम।
उ०—अपत, उतार, अपकार को अगार जग।
कवि० ६८/५६

उतार³— सक० १. ऊँचे से नीचे लाना।
उ०—खाइबे को सौ हैं, भौहैं चढ़िबे उतारिबे को।
गं० ३११/६५

२. पार कराना।
उ०—मारीच बिडार्यौ, जलधि उतार्यौ मार्यौ सबल सुबाहु। के० II, १०/६३६

३. नकल करना।

४. अलगाना। लगी या लपटी वस्तु को अलग करना। उधेड़ना।

५. पहनी हुई वस्तु को अलग करना।
उ०—पाग उतारत आय, श्री वृषभानु-कुमारी।
नं०

६. न्यौछावर करना। वारना।
उ०—मनु संचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए। सूर० १/२७३/७३

७. दूर करना। हटाना।
उ०—चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
घ० क० ५१/६८

८. आरती उतारना।
उ०—दै बीरा आरती उतारति। च० १४१/८५

उतारत व०कृ०। उतार्यौ भू०कृ०।

—ऊ वि० उद्यत। तत्पर। तैयार।

—चढ़ाव पुं० उन्नति-अवनति। आरोह-अवरोह।

—न पुं० उतारा हुआ कपड़ा।
वि० उतारने वाला।

उतारा¹ पुं० प्रेतादि का प्रभाव नष्ट करने के अभिप्राय से कुछ वस्तुओं को प्रेताविष्ट व्यक्ति के चारों ओर घुमाकर चौराहे आदि पर रखने की क्रिया।

उतारा² पुं० १. पड़ाव। घाट। २. पार पहुँचाने की मजदूरी।

उताल स्त्री० १. जल्दी। शीघ्र।
उ०—सो राजा जो अगमन पहुँचे, सूर सु भवन उताल। सूर० १०/२२३/२७३

२. उतावली। तेजी।
उ०—डीठि चली इनकी उन पै उनकी इन पै घटी मूठि उताल की। प० ४२०/१७१

क्रि०वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

—आ वि० उतावला।
उ०—एकै गहि भाले करि मुख लाले सुभट उताले घोलत हैं। प० १८८/२७

—ई स्त्री० शीघ्रता। जल्दी।
क्रि०वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।
उ०—गई ताहि मनावन सासु उताली।
प० ३७८/१६१

—उ क्रि०वि० जल्दी-जल्दी। शीघ्रता से।

—क क्रि०वि० जल्दी से। तुरन्त।
उ०—बघुवा रांधि लियो जु उतालक।
सूर० १०/३६६/३१७

उतावल क्रि०वि० शीघ्रता से। वेग से। जल्दी से।
उ०—कोउ गावत कोउ बेनु बजावत, कोउ उतावल धावत। सूर० १०/४२८२/५६८

वि० चंचल। व्यग्र।

—आ वि० जल्दबाज। हड़बड़िया।
उ०—उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि पर्यौ दहै।
घ० क० ४५१/२५०

—ई— स्त्री० शीघ्रता। जल्दबाजी। व्यग्रता।
वि० आतुर। व्यग्र।
उ०—तबहि गई मैं ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाइ। सूर० १०/७२८/४११

उताहिल वि० दे० 'उतावली'।

उती अव्य० उधर। उस ओर।

उ०—अरु हम उती कहा कहै ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती। सूर० १०/३४८७/३६६

उतीर— अक० दे० 'उतर—'।

उ०—बंधु बकी को मदंधु उतै ही, उलाहितो कालिंदी तीर उतीर्यो। दे० I, ३६/६

उतीरन स्त्री० दे० 'उतरन'।

उ०—प्रभु के उतीरन की, गूदरीयौ चीरन की,····। क० २१/१०१

उतुंग—उत्तुंग वि० बहुत ऊँचा। उर्ध्व। उन्नत।

उ०—मनिमय भवन उतुंग सुहाए, नवधा भक्ति भरे। सूर० १०/३०६७/३०६

उतू पुं० एक प्रकार का औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं, चुन्नट डालते हैं।

उ०—चोली-चुनावट-चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के। घ० क० २५७/१७७

उतै—उतो अव्य० उधर। वहाँ।

उ०—इतै उतै सचकित चितै चलत डुलावत बाँह। म० २३/२०५

उत्कंठ—उत्कण्ठ वि० १. उत्सुक।
२. इच्छुक। अभिलाषावान।

—आ स्त्री० १. प्रबल इच्छा। उत्कट अभिलाषा।

उ०—उर तें उत्कंठा बढ़ै कढ़ै न मुख तें बैन। भि० I, ३०५/४५

२. उत्सुकता। ३. व्यग्रता। व्याकुलता।
४. लालसा। चाह। ५. एक संचारी भाव।

—इत वि० १. उत्सुक। २. उद्विग्न।
३. इच्छुक।

उ०—जहँ उत्कंठित अर्थ की बिन उपाय ही सिद्धि। म० ३०२/३५०

—इता स्त्री० नायिकाओं का एक भेद, वह नायिका जो संकेत स्थान पर प्रिय के न आने पर उत्कण्ठित हो, या तर्क-वितर्क करे।

उ०—प्रोषित पतिका अरु खंडिता। कलहंतरिता, उत्कंठिता। नं० पृ० १३१

उत्कंप पुं० कंपन। कँपकँपी।

उत्क वि० दे० 'उत्कंठित'।

—आ स्त्री० दे० 'उत्कंठिता'।

उ०—ताको मन चिंता करै उत्का कहिये सोय। म० १५६/२३५

उत्कट वि० तीव्र। प्रबल।

उ०—उल्वण, दारुण, घोर अरु, उत्कट, उग्र, कराल। नं० २६/६७

उत्कर्ष पुं० (स्त्री०—उत्कर्षा) १. श्रेष्ठता। उत्तमता।
२. समृद्धि। सम्पन्नता। ३. वृद्धि।
४. प्रशंसा।

उत्कल पुं० भारतवर्ष का एक समुद्र-तटवर्ती प्रान्त उड़ीसा।

उत्कलिका स्त्री० १. उत्कंठा। २. फूल की कली।
३. लहर। तरंग। ४. साहित्य में ऐसा गद्य जिसमें बड़े-बड़े सामासिक पद हों।

उत्कीर्ण वि० १. खुदा हुआ। लिखा हुआ।
२. छिदा हुआ। बिंधा हुआ।

उत्कीर्त्तन पुं० प्रशंसा। स्तुति करना।

उत्कुण पुं० १. खटमल। २. जूँ।

उत्कृष्ट वि० उत्तम। श्रेष्ठ।

—ता स्त्री० श्रेष्ठता। उत्तमता।

उत्कोच पुं० घूस। रिश्वत।

उत्क्रम पुं० उलट-पलट। क्रमभङ्ग।

उत्क्रांति स्त्री० १. धीरे-धीरे उन्नति या पूर्ण की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति।
२. अतिक्रमण। उल्लंघन। ३. मृत्यु।

उत्क्रोश पुं० १. शोर-गुल। २. कुररी नामक पक्षी।

उत्क्षिप्त वि० ताड़ित। फेंका हुआ।

उत्क्षेपण पुं० १. उछालने की क्रिया। २. चोरी।
३. मूसल। ४. पंख। ५. ढ़क्कन। ६. सूप।

उत्खात वि० १. खोदा हुआ। उखाड़ा हुआ।
२. नष्ट-भ्रष्ट किया हुआ।

उत्तंग वि० दे० 'उत्तंग'।

उ०—उत्तंग मरकत-मंदिरन मधि बहु मृदंग यों बाजहीं। भू० १६/१३१

उत्तंस (उद्+तंस) पुं० दे० 'अवतंस'।

उत्त अव्य० उधर। उस ओर।
पुं० १. शंका। संदेह। २. आश्चर्य।

उत्तप्त (उद्+तप्त) वि० १. खूब तपा या तपाया हुआ। २. जलता हुआ। ३. संतप्त।
४. कुपित।

—ता स्त्री० १. उष्णता। २. संतप्तता।
३. क्षुब्धता।

उत्तमंग—उत्तमांग (उत्तम+अंग) पुं० मस्तक। सिर। श्रेष्ठ भाग।

उत्तम[1] वि० (स्त्री०—उत्तमा) १. श्रेष्ठ। सबसे अच्छा।

उ०—प्रेम मिटै नहिं जनम भरि, उत्तम मन की लागि। नं० १२६/१३२

२. सबसे बड़ा। प्रधान।

—उत्तम—उत्तमोत्तम वि० सर्वोत्तम। सर्वश्रेष्ठ

—ऋण—र्ण पुं० महाजन। ऋणदाता।

—औजा (उत्तम+ओजस्) वि० उत्तम तेज-वाला। बली।

—पुं० मनु के दस पुत्रों में से एक, जो महाभारत में पाण्डवों की ओर से लड़ा था।

—गंधा स्त्री० चमेली। वि० उत्तम गंध वाली।

—गात वि० उत्तम शरीर। सर्व प्रशंसित।

उ०—चौंर ढारत हैं दुवौ दिसि पुत्र उत्तमगात। के० II, १५/४१४

—गाथ वि० श्रेष्ठ गाथा।

उ०—उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथ जू हाथ कै लीनो। के० II, ४२/२५२

—तया क्रि०वि० भली भाँति। उत्तम रूप से।

—ताई स्त्री० उत्तमता। श्रेष्ठता।

—त्व पुं० उत्तमता। उत्कर्षता।

—पुरुष पुं० व्याकरण में वह पद जो प्रथम पुरुष या वक्ता का वाचक सर्वनाम हो।

—श्लोक वि० उत्तम-कीर्ति।

पुं० श्रीविष्णु।

—साहस पुं० अस्सी हजार पण का जुर्माना। कठोर दण्ड।

उत्तम[२] पुं० १. विष्णु।

२. ध्रुव का सौतेला भाई जो यक्षों द्वारा मारा गया था।

उत्तमा स्त्री० १. श्रेष्ठ स्त्री। २. शूक रोग।

३. पुरी विशेष।

वि० भली। नेक।

—दूती स्त्री० साहित्य में वह दूती जो रूठे हुए नायक या नायिका को समझा-बुझाकर उसका मान छुड़ाकर उसके प्रिय के पास ले आती हो।

उत्तर[१] पुं० १. उत्तर दिशा।

उ०—उत्तर सुनाऊँ आयो उत्तर दिसा ते······। बो० ८०/२०६

२. किसी देश का उत्तरी भाग।

—अयन पुं० १. सूर्य की मकर रेखा से उत्तर और कर्क रेखा की ओर होनेवाली गति।

२. छः मास की वह अवधि जिसमें सूर्य मकर रेखा से कर्क रेखा या उत्तर की ओर गमन करता है।

—आ स्त्री० उत्तर दिशा से बहने वाली हवा।

—ईय वि० १. उत्तर दिशा का।

२. उत्तर दिशा सम्बन्धी।

—काशी स्त्री० हरिद्वार से उत्तर में बद्रीनारायण के मार्ग का एक स्थान।

—कुरु पुं० जम्बूद्वीप के नौ खंडों में से एक।

—कोसल पुं० अयोध्या के आस-पास का देश।

—खंड पुं० भारतवर्ष का हिमालय के पास का उत्तरी भाग।

उ०—महामोह अवलोकि तब उत्तम उत्तरखंड। के० III, ३७/६६१

—पथ पुं० पाटलिपुत्र से वाराणसी, कौशाम्बी, साकेत, मथुरा, तक्षशिला आदि से होता हुआ वाह्लीक तक गया हुआ एक प्राचीन मार्ग। देवयान।

उत्तर[२] पुं० जवाब। प्रतिवचन। समाधान।

उ०—उत्तर सुनाऊँ आयो उत्तर दिसा ते जो पै। बो० ८०/२०६

—आभास पुं० मिथ्या-उत्तर। ऊटपटाँग जवाब।

—दाता पुं० जवाबदेह। वह जिस पर किसी काम के बनने-बिगड़ने का भार हो। जिम्मेदार।

वि० उत्तर देने वाला।

—दायित्व पुं० जिम्मेदारी। जवाबदेही।

—दायी वि० दे० 'उत्तरदाता'।

—पक्ष पुं० प्रतिवादी का पक्ष।

—प्रत्युत्तर पुं० वाद-विवाद। तर्क।

—साक्षी पुं० वह गवाह जो दूसरों से सुन-सुनाकर गवाही दे।

उत्तर[३] वि० पिछला। बाद का।

उ०—पूरब गहहिं जु उत्तरहि उत्तर तजि पूरब्ब। प० १७६/५४

अव्य० पीछे। पश्चात्।

—अर्द्ध—अर्ध पुं० पिछला भाग।

—उत्तर क्रि०वि० १. आगे-आगे। २. एक के बाद एक। क्रमशः। ३. लगातार।

—काल पुं० आगामी काल। भविष्य काल।

—क्रिया स्त्री० शव-दाह के बाद का कार्य। अन्त्येष्टि।
—मीमांसा स्त्री० वेदान्त दर्शन।
—वयस् स्त्री० बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

उत्तरच्छद पुं० पलंगपोश। चादर।

उत्तरपट पुं० दे० 'उत्तरीय'।

उत्तरीय पुं० चादर। दुपट्टा। उपरना।

उत्तरन पुं० दे० 'उतरन'।

उत्तरा स्त्री० राजा विराट् की कन्या और अभिमन्यु की पत्नी।

उत्तराखंड (उत्तरा+खंड) पुं० भारत का वह उत्तरी भू-भाग जो हिमालय की तलहटी में और उसके आस-पास पड़ता है।

उत्तराधिकार (उत्तर+अधिकार) पुं० किसी व्यक्ति के मरने के बाद उसकी सम्पत्ति का अधिकार।
—ई पुं० वारिस। किसी मृत-व्यक्ति की सम्पत्ति का वैध अधिकारी।

उत्ता वि० उतना।

उत्तान वि० सीधा, चित्त या पीठ के बल लेटा हुआ।

उत्तानपात्र पुं० लोहे का वह बर्तन जिस पर रोटी सेकी जाती है। तवा।

उत्तानपाद पुं० एक राजा जो भक्त ध्रुव का पिता था।

उत्तानसय पुं० दूधमुंहा बच्चा।
उ०—प्रजा, तोक, उत्तानसय, उद्वह, दारक, पोत। नं० २६/६६
वि० दे० 'उत्तान'।

उत्ताप (उद्+ताप) पुं० १. तेज गर्मी या ताप। २. मन में होने वाला कष्ट। दुःख या क्षोभ।
—इत वि० १. तप्त। २. क्षुब्ध। दुःखी।

उत्ताल (उद्+तल्) वि० (स्त्री०—उत्तालता) १. बहुत ऊँचा।
उ०—कलभ कहत करि-साव कों, कलभ बहुरि उत्ताल। नं० ३३/४४
२. उत्कट। श्रेष्ठ। ३. त्वरित।
—ता स्त्री० १. ऊँचाई। २. उत्कटता। श्रेष्टता। ३. शीघ्रता।

उत्तिम वि० दे० 'उत्तम'।
उ०—हौं उत्तिम हौं उच्च उदित हौं अति उद्दिम मति। के० III, १७/४७८

उत्तीरन—उत्तीर्ण वि० १. पार गया हुआ। पारित। २. मुक्त। ३. पारंगत।

उत्तुंग वि० बहुत अधिक ऊँचा। ऊर्ध्व।

उत्तू[१] पुं० दे० 'उतू'।

उत्तू[२] वि० बदहवाश। नशे में चूर।

उत्तेजक वि० उभाड़ने वाला। उत्तेजित करने वाला। उकसाने वाला।

उत्तेजन—उत्तेजना स्त्री० १. बढ़ावा। प्रेरणा। २. शरीर के किसी अंग में होनेवाली कोई असाधारण क्रियाशीलता।

उत्तेजित वि० १. जिसमें उत्तेजना आई हो। २. उकसाया या भड़काया हुआ। प्रोत्साहित। प्रेरित। उत्साहित।

उत्तोलन पुं० १. ऊँचा करने की क्रिया। ऊपर को उठाना। तानना। २. तौलने की क्रिया।

उत्थव—उथय—सक० १. ऊपर उठाना। ऊँचा करना। २. आरम्भ करना। ३. अनुष्ठान करना।

उत्थान पुं० १. उठान। २. उन्नति। ३. आरम्भ। ४. बढ़ती। समृद्धि। ५. उठने का कार्य।

उत्थापन पुं० १. ऊपर की ओर उठाना। २. सोये हुए को जगाना। ३. उत्तेजित या उत्साहित करना। ४. ठाकुर जी को जगाना तथा उठाना। ५. मध्याह्नोत्तर ठाकुर जी की झाँकी।

उत्थित वि० उठा हुआ।
उ०—रोम-रोम जनु उत्थित हुए। नं० पृ० २५६

उत्पट (उद्+पट) पुं० १. बबूल आदि पेड़ों से निकलने वाली गोंद। २. दुपट्टा। चादर। उत्तरीय वस्त्र।

उत्पतन (उद्+पतन) पुं० १. उड़ना। २. ऊपर की ओर उठना। ऊर्ध्वगमन।

उत्पतित (उद्+पतित) वि० १. ऊपर गया हुआ। २. ऊपर उठा हुआ।

उत्पत्ति स्त्री० १. आविर्भाव। उद्भव।
उ०—बाँस तैं उत्पत्ति जाकी। सूर० १०/१२६७/५५६
२. जन्म। पैदाइश। ३. उपज। उत्पादन।

उत्पथ (उत्+पथ) पुं० १. अनुचित या दूषित-पथ। कुमार्ग।
उ०—रबि मग तज्यो, तरिक ताके हय, उत्पथ लागे जान। सूर० ६/२६/१६१
२. बुरा आचरण। दुर्व्यवहार।
वि० कुमार्गी। बुरे मार्ग पर चलने वाला।

उत्पन्न (उद्+पन्न) वि० पैदा हुआ। जन्मा हुआ।

उत्पल (उद्+पल) पुं० कमल। विशेषतः नीलकमल।

उ०—उत्पल, राजिव, कोकनद, सितांभोज, जल-जात। नं० १९/६६

उत्पलावती स्त्री० नदी-विशेष।

उ०—उत्पलावती इच्छुका, भीमरथी सुभकारि। के० III, १७/६६६

उत्पाटन (उद्+पाटन) पुं० उन्मूलन। जड़ से खोदने की क्रिया।

उत्पाटित वि० उखाड़ा हुआ। निर्मूल किया हुआ।

उत्पात पुं० १. उपद्रव। दंगा। ऊधम।

उ०—अनुदिन अति उत्पात कहाँ लगि। सूर० १०/१४८८/६९०

२. हलचल। ३. अंधेर। ४. आकस्मिक दुर्घटना।

उत्पादक (उत्+पादक) वि० (स्त्री० उत्पादिका) जन्मदाता।

उत्पादन (उत्+पादन) पुं० उत्पन्न करने की क्रिया। पैदा करना।

उत्पादित वि० पैदा किया हुआ।

उत्पीड़न (उत्+पीड़न) पुं० १. क्लेश पहुँचाना। सताना। २. अत्याचार करना।

उत्पीड़ित वि० सताया हुआ।

उत्प्रेक्षा स्त्री० १. उद्भावना।

२. एक काव्यालंकार जिसमें अनुमान या सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

उ०—जहँ कीजे संभावना सो उत्प्रेक्षा जानि। म० १००/३१६

उत्प्रेक्षित स्त्री० एक अर्थालंकार। जिसमें उपमेय के जिस गुण का वर्णन करना हो, वह गुण अनेक में पाया जाता हो।

उ०—अतिसय, उत्प्रेक्षित कहौं स्लेष, धर्म, विपरीत। के० I, ३/१८८

उत्प्लवन पुं० १. कुदान। छलांग। २. ऊपर फेंकना। ३. उल्लंघन।

उत्फाल पुं० १. लांघने की क्रिया। फलांगना। २. उद्योग।

उत्फुल्ल वि० १. खिला हुआ। विकसित। फूला हुआ। २. प्रसन्न। आनन्दित।

उत्स पुं० १. बहते हुए पानी की धारा। सोता। झरना। पर्वतीय कुण्ड।

२. स्रोत।

उत्सन्न (उत्+सन्न) वि० [स्त्री० उत्सन्ना] नष्ट। विनष्ट किया हुआ।

उत्सर्ग पुं० १. त्याग। २. दान। ३. विसर्जन।

उत्सर्ग्य वि० १. त्याज्य। हेय। २. यज्ञ भेद।

उत्सर्जन पुं० १. विसर्जन। २. दान। ३. त्याग। ४. एक वैदिक कर्म जो वर्ष में दो बार—श्रावण एवं पौष माह में होता है।

उत्सर्जित वि० १. त्यक्त। त्यागा हुआ।

२. दान किया हुआ।

उत्सर्पण पुं० १. ऊपर चढ़ने या बढ़ने की क्रिया।

२. उल्लंघन।

उत्सव पुं० त्यौहार। पर्व। जलसा।

उ०—सुनत द्वारावती माहिं उत्सव भयौ। सूर० १०/४१८३/५३७

उत्सादन पुं० विनाश। उच्छेद। नष्ट करने की क्रिया।

उत्सादित वि० विनष्ट। उजाड़ा हुआ।

उत्सारक (उत्+सारक) वि० उत्सारण करने वाला। पुं० पहरेदार। द्वारपाल। दरबान।

उत्साह—उत्साहू पुं० १. उमङ्ग, उछाह। जोश।

उ०—'सूर' सबनि उत्साहू। सूर० १०/३८१८/४५४

२. साहस। ३. उद्यम। उद्योग।

—इत वि० १. उत्साह वाला। उमङ्गित।

२. उद्यत। ३. उत्तेजित।

—इल वि० उत्साहपूर्ण।

उत्सुक वि० १. जिसके मन में कोई तीव्र या प्रबल अभिलाषा हो। जो किसी काम या बात के लिए कुछ अधीर सा हो।

२. उत्कंठित। बेचैन।

—ता स्त्री० उत्कट इच्छा। प्रबल लालसा।

उत्सूर पुं० शाम। सन्ध्याकाल।

उत्सृष्ट वि० त्यक्त। त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ।

—वृत्ति पुं० दूसरों के छोड़े या त्यागे हुए अन्न से जीविका निर्वाह करने की वृत्ति।

उत्सेध पुं० १. बढ़ती। वृद्धि। २. उन्नति। ३. ऊँचाई।

वि० १. ऊँचा। २. श्रेष्ठ।

उ०—तहाँ कहत आछेप है कबिजन मति उत्सेध।
म० १८७/३३१

उदय अक० १. उठना । २. उखड़ना ।
उथप्य व०कृ० । उथपै भू०कृ० ।

उथपन—उथप्पन पुं० १. उखाड़ । २. उजाड़ ।
उ०—नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रु ।
म० ५८/३०८

—थप्पन वि० उजड़े को बसाने वाला ।
उ०—धनि राजइंद्र गिरि-नृप-सुवन उथपन-थप्पन जग जयउ । प० ४५/८

—हार पुं० उखाड़ने वाला ।
उ०—नृथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार ।
कवि० २२/६४

उथरा पुं० छिछला । जिसमें थोड़ा सा जल हो । उथला ।
वि० नन्हा । छोटा ।
—ई स्त्री० १. थोड़ी उठान ।
उ०—नैननि बोरति रूप के भौंर, अचंभे-भरी छतिया-उथराई । घ० क० ३१२/२०१
२. उथलापन । छिछलापन ।

उथल— अक० १. डगमगाना । डाँवाडोल होना ।
२. उलटना । नीचे-ऊपर करना ।
—आ वि० छिछला । कम गहरा ।
उ०—करि थाहि, थलौ उथलौ करि डारौं ।
दे० I, ७१/२२२
—पुथल स्त्री० १. ऐसी हलचल जो सब चीजों या बातों को उलट-पुलट कर अस्त-व्यस्त या तितर-बितर कर दे ।
२. हलचल ।
वि० जिसमें बहुत बड़ा उलट-फेर हुआ हो । अस्त-व्यस्त किया हुआ ।

उथव— सक० १. उजाड़ना । २. उठाना ।

उथाप—उथापु पुं० १. उजाड़ । २. उखाड़ ।
सक० १. उत्थापित करना । उठा देना । हटा देना ।
उ०—सुत सोदर पितु माय नारि सों नेहु उथापति ।
बो० ४४/१३७
२. उखाड़ना ।
उथापति व०कृ० ।

उथुरा— अक० उथलाना ।
उ०—जिमि जिमि सैसव-जल उथुराने ।
नं० १०३/१०७

उदंगल वि० [स्त्री० उदंगली] १. उद्दण्ड । उद्धत ।
उ०—जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा ।
भू० ५१४/२३१
२. प्रबल । प्रचंड ।

उदंड वि० निडर । न दबने वाला । अक्खड़ । उद्दण्ड ।
उ०—संकटभाजन आनन की दुति पूरन दंड उदंड सो जानी । म० १/२०१

उदक[1] पुं० जल । नीर । पानी ।
उ०—जब हीं उदक दियौ बलि राजा……।
सूर० ८/१४/१४७
—अद्रि पुं० हिमालय पर्वत ।
—ऐचर पुं० जलचर । जलजन्तु ।
—ओदर पुं० पेट का एक रोग-विशेष । जलोदर ।
—क्रिया स्त्री० तिलांजलि । तर्पण ।
—दान पुं० तर्पण । जलदान ।

उदक[2]— अक० उछलना-कूदना । छिटक कर अलग होना ।

उदक्या स्त्री० रजस्वला स्त्री ।

उदगयन (उदक्+अयन) पुं० दे० 'उत्तरायन' ।

उदगर— अक० १. उद्‌गार के रूप में बाहर निकलना ।
२. प्रकट होना । सामने आना ।
३. उभड़ना या भड़कना ।
सक० १. उद्‌गार के रूप में बाहर निकालना ।
२. प्रकट करना ।
३. उभाड़ना या भड़काना ।

उदगार[1] पुं० १. उबाल । उफान । २. वमन ।
३. हृदयस्थ विचारों का उफान ।
उ०—मलय समीर सोई मोद-उदगार है ।
घ० क० ४२४/२४२
—ई वि० १. वमन करने वाला ।
२. हार्दिक भावना प्रकट करने वाला ।

उदगार[2]— सक० १. मुँह से बाहर निकालना । उगलना
२. उभाड़ना । भड़काना ।

उदग्ग वि० १. उच्च । उन्नत । ऊँचा । २. उजड्ड ।
३. उग्र । प्रचण्ड । तेज ।
उ०—भूपति प्रताप अति हीं उदग्ग । प० ८/२७८
४. उद्धत ।

उदग्र वि० दे० 'उदग्ग' ।
उ०—आयो सु अग्र उदग्र बरछी बिदित कर उल-छारिकै । प० १३५/१६
—ता स्त्री० प्रचण्डता ।
उ०—तापै तुम्हारे अग्र बचन उदग्रता कैसे लहै ।
दे० I, १७/२१५

उदघट— अक० १. प्रकट होना या बाहर निकलना।
२. उदित होना। ३. प्रत्यक्ष होना।

उदघाट— सक० उद्‌घाटन करना। प्रकाशित करना।
प्रकट या प्रत्यक्ष करना।

उदथ पुं० सूर्य। दिनकर।

उदधि पुं० १. सागर। समुद्र।
उ०—उदधि उदधि पर दावनी खुमानजू की।
भू० ४६३/२१६
२. घड़ा। घट। ३. मेघ। बादल।
—ईय वि० समुद्र-सम्बन्धी। समुद्र का।
—जात पुं० समुद्र से उत्पन्न, चौदह रत्न—चन्द्रमा, लक्ष्मी आदि।
उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात।
के० I, २४/४२
—तनया स्त्री० लक्ष्मी। रमा।
उ०—द्विजराजा, शशधर, उदधि-तनय, ससांक, मृगांक। नं० १०/१०२
—मेखला स्त्री० समुद्र जिसकी मेखला है अर्थात् पृथ्वी।
—वस्त्रा स्त्री० पृथ्वी। भूमि।
—सुत पुं० १. समुद्र से उत्पन्न होने वाले पदार्थ। जैसे—अमृत, कमल, चन्द्रमा, शंख आदि।
२. जलचरों का समूह।
—सुता स्त्री० समुद्र की पुत्री, लक्ष्मी। कमला।
उ०—सकुचि तन उदधिसुता मुसुकानी।
सूर० १०/२६२४/१७५

उदन्त वि० बिना दाँत वाला।
पुं० वृत्तान्त।

उदपान पुं० १. कमंडलु। २. कुआँ।
३. कुएँ के पास का गढा।
४. वह स्थान जहाँ जल हो।

उदबर्तन पुं० दे० 'उद्वर्तन'।

उदबस पुं० उजाड़। सुनसान।
उ०—चंचल निस उदबस रहैं करत प्रात बसि राज। म० १३६/३२२
सक० १. उजाड़ना। २. भगा देना।

उदबास— (उद्+वास) सक० भगा देना। उठा देना। निर्वासित करना।
उ०—ऊधो अब आइ कै बिसास उदबासैं हम।
उ० ६५/६५

उदबुद्ध (उद्+बुध) पुं० [स्त्री० उदबुद्धा]
दे० 'उद्‌बुद्ध'।

उदबेग (उद्+वेग) पुं० १. विरहजन्य दुःख।
उ०—गुनबर्नन उदबेग पुनि कहि प्रलाप उन्माद।
म० ३६६/२६०
२. घबराहट। व्याकुलता। विकलता।
उ०—सखि! ऐसो कछु उदबेग परो।
शृं० १६०/४५८
२. तंग करने वाला। ३. जोशीला।

उदभट (उद्+भट) वि० स्त्री० (उद्‌भटी) प्रचंड प्रबल।

उदभव पुं० उत्पत्ति।

उदभौत वि० १. अद्‌भुत। २. उद्‌भूत।
पुं० अचम्भा। आश्चर्य।
—इ स्त्री० आश्चर्यजनक घटना।
उ०—'सूर' परस्पर कहति गोपिका, यह उपजी उदभौति। सूर० १०/२४०६/१३२

उदमाद—थ पुं० पागलपन।
—ई वि० दे० 'उन्मत्त'।
उ०—आजु गोपी फिरैं उदमादियाँ।
ना० १३/१२६

उदमान[1] वि० दे० 'उन्मत्त'।
—ई पुं० दे० 'उन्मत्त'।

उदमान[2]— अक० पागल होना।

उदय पुं० १. प्रकटन। प्रकट होना।
उ०—सुख ही में दुख को उदय दंपतिहूँ ह्वै जात।
भि० I, ४२०/६१
२. वृद्धि। उन्नति। ३. प्रारम्भ।
उ०—हुलसै जोबन उदय लखि, डरपै सुनि रति-चैन। कृ० ७५/२०
अक० उदय होना। उगना।
उ०—कोटि चंद्रमा उदयो सूरज मन की तपति मिटाई। गो० १३/७
उदित व०कृ०। उद्‌यो भू०कृ०।
—अचल पुं० पुराणों के अनुसार पूर्व दिशा में स्थित एक कल्पित पर्वत जिसके पीछे से नित्य सूर्य उदित होता है।
उ०—कला उदयाचल तैं जनु घेरति आवति।
शृं० ११०/३०८
—अद्रि पुं० दे० 'उदयाचल'।
उ०—जगत बिदित उदयाद्रि सो, अवर देस अनूप।
भि० II, २/३
—अस्त पुं० १. उदय और अस्त।
२. उत्थान और पतन।
—काल पुं० प्रातःकाल। सर्प-विशेष।

—गढ़ पुं० दे० 'उदयाचल'।
—गिरि पुं० दे० 'उदयाचल'।

उदयन[1] पुं० १. कौशाम्बी के राजा वत्सराज, जो शतानीक के पुत्र और वासवदत्ता के पति थे। २. एक प्रसिद्ध दार्शनिक मैथिल उदयनाचार्य।

उदयन[2] पुं० प्रकाशन। प्राकट्य।

उदरंभर—उदरंभरि वि० १. जो केवल अपना पेट भरता हो। २. पेटू। ३. स्वार्थी।

उदर[1] पुं० पेट। जठर।
उ०—उदर दरी में करी काह्न जाकी रखवारी।
नं० ६०/६

—अग्नि पुं० जठराग्नि। भूख।
—आवर्त स्त्री० नाभि। टुंडी।
—इली स्त्री० गर्भवती।
—ई वि० तुन्दिल। बड़े पेट वाला। तोंदवाला।
—ज्वाला स्त्री० दे० 'उदराग्नि'।

उदर[2]— १. गिर पड़ना।
उ०—देखत उचाई उदरत पाग······।
भू० ६८/१४६
२. फटना। विदीर्ण होना। ३. नष्ट होना।
उदरत व०क्र०।

उदर्क पुं० १. फल। परिणाम।
उ०—ज्ञान अर्क मुनि तर्क तह, पहुँच्यो उदय उदर्क। दे० I, ४८/२६१
२. भविष्य। ३. अन्त।

उदर्चि १. ऊँची लौ वाली आग।
२. शिव। कामदेव।

उदव— अक० १. उदित होना। उगना। निकलना।
उ०—जरिहै लंक कनकपुर तेरी, उदवत रघुकुल-भान। सूर० ६/७६/१७६
२. प्रकट होना। प्रत्यक्ष होना।
उदवत व०क्र०।

उदवस वि० १. दे० 'उदवस[1]'। २. दलदल।
उ०—अब तौ बात घरी पहरन की, ज्यौं उदवस की भीत्यौ। सूर० १०/३३८३/३६४

उदवाह पुं० दे० 'उद्वाह'।

उदवेग पुं० दे० 'उदवेग'।

उदस— अक० १. उजड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट होना।
३. उदास होना।
सक० १. उजाड़ना। २. नष्ट-भ्रष्ट करना।
३. उदास करना या बनाना।

उदात पुं० दे० 'उदात्त'।

—आ वि० उदार। दाता।

उदात्त वि० १. ऊँचे स्वर में कहा हुआ। २. उदार। दाता। ३. दयावान। ४. उत्तम। श्रेष्ठ। ५. साफ। स्पष्ट। ६. सशक्त। समर्थ।
पुं० १. वैदिक स्वरों के उच्चारण का एक प्रकार या भेद।
२. संगीत में बहुत ऊँचा स्वर।
३. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें वैभव आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है।
४. एक प्रकार पुराना बाजा।
५. एक गहना।

उदान पुं० १. ऊपर की ओर साँस खींचना।
२. कण्ठ देश में स्थित वायु। इसी से डकार और छींक आती है।
उ०—प्रान उदान फिर बन बीथिनि अवलोकनि अभिलाषि। सूर० १०/३३३६/३५५

उदाम वि० दे० 'उद्दाम'।

उदायन पुं० दे० 'उद्यान'।

उदार[1] वि० १. दानी। २. अच्छा। श्रेष्ठ।
उ०—लघु क्रम कछु सुरताल कहि कहिहौं नृत्य उदार। बो० २२/६६

—आ वि० [स्त्री० उदारी] १. श्रेष्ठ।
२. सरल चित्त। सीधा। सरल।
उ०—राजत माँग उदारी। बो० २३/६६
पुं० दयालु। दानशील।
उ०—परम धाम जग धाम परम अभिराज उदारा।
नं० १/३०

—आशय वि० अच्छे और उदार विचारों वाला।
—इज—इज्ज पुं० १. औदार्य।
उ०—चारि उदारिज आदि पै सोमादिक त्रय जानि। भि० I, ४३०/६२
उ०—उदारिज्ज माधुर्य पुनि प्रगल्भता धीरत्व।
भि० I, ३३७/४६
२. सहृदय। उच्च विचार वाला।
उ०—राजिब-लोचन परम उदारी।
सूर० १०/१६८/२६६

—चरित वि० १. शीलवान।
२. उदार चरित वाला।
—चेता वि० उदार चित्त वाला।
—ता स्त्री० १. दानशीलता।
उ०—सोभित उदारता सुसीलता खुमान मैं।
भू० १२८/१५२

२. उच्च विचार।

—थ वि० दयालु।

उ०—मारग नाम काम-हित कारन सब पाखंड परम उदारथ। कुं० ६३/३२

उदार[2]– सक० १. छिन्न-भिन्न करना। तोड़ना। फोड़ना

२. नोंचना। फाड़ना।

उ०—अघ ज्यों उदारिहौ कि बक ज्यों बिदारिहौ कि। के० I, २६/८५

उदास[1] वि० १. दुःखी। खिन्न। चिंतित।

उ०—पुनि भादों की घटा लखि माघो भयो उदास। बो० ५/८६

२. उदासीन। विरक्त।

३. तटस्थ। निरपेक्ष।

पुं० उदासी।

—आ वि० दुःखी।

उ०—निरखि कुंवरि कौ बदन उदासा। नं० पृ० ११७

—इल वि० उदास। उदासीन।

—ई स्त्री० उदास होने का भाव।

उ०—जमुन निकट के बिटप पूछि भई निपट उदासी। नं० १४/१२

—ईन वि० १. विरक्त। तटस्थ।

२. प्रपंचरहित। निरपेक्ष।

३. उचटा हुआ व्यक्ति।

—ईनता स्त्री० १. विरक्ति। २. त्याग।

३. खिन्नता।

उदास[2]— अक० उदासीन होना।

सक० नष्ट करना।

उदासत व०कृ०।

उदाहर वि० १. भूरा। २. धुंधला।

उदाहरण—उदाहरन (उद्+आहरण)

पुं० १. मिसाल। २. दृष्टान्त।

उ०—या बिधि और उदाहरन लीज्यो समुझि सुजान। प० ८४/४२

उदाहृत वि० जिसका उदाहरण दिया गया हो।

उदिक पुं० जल।

उ०—ग्राम दए धाम दए उद्रिक आराम दए। प० ६६६/२२६

उदित वि० १. उगा हुआ। प्रकट। २. प्रकाशित।

उ०—उदित होत सिवराज के मुदित भए द्विजदेव। भू० १२/१३०

३. आविर्भूत। ४. उक्त। कथित।

५. उज्ज्वल। ६. प्रचलित।

उ०—इनके उदित उदाहरन क्रम तें। प० ३०७/१४७

—इ स्त्री० १. प्रकटन। प्रकाशन।

२. आविर्भाव। ३. प्रसन्नता। ४. कथन।

५. उज्ज्वलता।

—जोवना—यौवना स्त्री० मुग्धा नायिका का एक भेद जिसमें नायिका के अंग से यौवन प्रगट होने मात्र का आभास मिलता है। इसमें लज्जा की मात्रा अधिक होती है।

उ०—उदितजोबना नारि सो, बरनो पाइ प्रसंग। कृ० ८५/२२

उदिबेक पुं० दे० 'उदवेग'।

उ०—का गुनाहु रतिनाहु सों नाहु भयो उदिबेक। बो० ५३/२७

उदिय[1]— अक० उद्विग्न होना। घबराना। परेशान होना।

सक० उद्विग्न करना। परेशान करना। व्याकुल करना।

उदिय[2]— अक० उदित होना।

उ०—ज्ञान दियो उदियो उर अंतर। दे० I, ४३/२१८

उदियो भू०कृ०।

उदीची स्त्री० उत्तर दिशा।

उ०—आली दरीची की नीची उदीची। भि० I, १६६/१२५

—न वि० उत्तर दिशा का। उत्तरी।

उदीच्य वि० उत्तर दिशा का रहने वाला।

पुं० १. शरावती नदी के पश्चिमोत्तर एक देश।

२. यज्ञ के पीछे का दान। ३. एक छन्द।

४. ब्राह्मणों की एक जाति।

उदीयमान वि० [स्त्री० उदीयमाना]

१. जिसका उदय हो रहा हो।

२. उठता हुआ। उगता हुआ।

३. होनहार।

उदीरण पुं० १. कथन। २. उच्चारण।

उदीरित वि० १. कथित। कहा हुआ। २. उच्चरित।

उदुंबर पुं० १. गूलर का फल। २. चौखट।

—पर्णी स्त्री० दंती नामक वृक्ष। दाँती।

उदू पुं० शत्रु।

उदखल स्त्री० ओखली।

उदे—उदै पुं० दे० 'उदय'।

उ०—उत सूर उदै पगु धारिहौं। दे० I, १०३/२०

उ०—उदै भयो है जलद तूं जग को जीवनदान।
म० ४१६/४०३

—गिरि पुं० दे० 'उदयाचल'।

—न पुं० उगना।

उ०—नूतन अनार कचनार नूत डार मले माधुरी बकुल मल्लि वल्लिन उदैन को।
दे० I, १३४/६६

—सानू पुं० उदयाचल शिखर।

उ०—भानु की किरन उदैसानु कंदराते छूटी।
दे० I, ७३६/१७१

उदेग पुं० दे० 'उदवेग'।

उ०—दुख-दव हिय, जारि, अंतर उदेग-आंच।
घ० क० २३/५१

उदो—उदौ पुं० दे० 'उदय'।

उ०—ग्यान, निरंजन जोति सरूप, सुज्ञान अनूप, उदौ चहुँधा को।
दे० I, १२१/२३

उदोत[1]—उदौत पुं० वृद्धि।

उ०—छिरकत नीर गुलाब को हुव तन-ताप उदोत।
प० १५१/५१

वि० १. प्रकाशित। दीप्त।

उ०—आनन्द सो कहुँ सुंदरिन के बदन-इंदु उदोत है।
भू० १६/१३१

२. शुभ्र। स्वच्छ। ३. उत्तम। ४. उदित। ५. प्रकट।

उ०—पावत न कल अति कौतुक उदोत है।
भू० ८३/१४३

—ई वि० उदय करने वाला। प्रकाश करने वाला।

उदौत[2]— अक० प्रकाशित होना।

उ०—सौंहनि करि पाँइनि परयो तेरे रिसैं उदोति।
म० ७७/३७५

—कर वि० १. प्रकाशक। २. चमकाने वाला।

उद् उप० १. अतिक्रमण। २. ऊपर। ३. प्राबल्य। ४. उत्कर्ष। ५. प्राधान्य। ६. अभाव। ७. दोष। ८. प्रकाश आदि का द्योतक एक उपसर्ग।

उद्गत वि० १. निकला हुआ। उत्पन्न। २. प्रकट। ३. व्याप्त।

उद्गम पुं० १. उत्पत्ति स्थान। २. स्थान जहाँ से नदी निकलती है।

—न पुं० ऊपर जाने की क्रिया। ऊर्ध्वगमन।

उद्गाता पुं० सामवेद का गान करने वाला। यज्ञीय कार्यकर्त्ता ब्राह्मण-विशेष।

उद्गाथा स्त्री० आर्या छन्द का एक भेद। जिसके विषम पादों में बारह और सम पादों में अठारह मात्राएँ होती हैं।

उद्गार पुं० दे० 'उदगार'।

उ०—कहि सुबोधिनी निज-जन-पोषत अमृत बचन उद्गार।
छी० ३४/१३

—ई वि० दे० 'उदगारी'।

उद्गिरण—उद्गिरन पुं० वमन।

उद्गीति स्त्री० आर्या छन्द का एक भेद, जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह-बारह, दूसरे में पन्द्रह और चौथे में अठारह मात्राएं होती हैं।

उद्गीथ पुं० १. ओंकार। प्रणव। २. सामवेद। ३. सामगान का एक भेद।

उद्गीर पुं० हृदयस्थ भावना।

उद्गीर्ण—उद्गीर्न वि० निकाला हुआ।

उद्घाट पुं० १. खोलने का कार्य। २. चौकी। चुंगीघर। ३. ऋणमोचन।

—इन वि० १. खोला हुआ। २. प्रकटित। प्रकाशित।

—क वि० खोलने वाला। प्रकट करने वाला।

—न पुं० १. खोलने की क्रिया। २. कथन। ३. प्रकाशन। प्रकटन।

उद्घात पुं० १. ठोकर। २. धक्का। ३. आरम्भ।

—ई वि० १. ठोकर मारने वाला। २. आरम्भ करने वाला। ३. ऊबड़-खाबड़।

—क वि० १. धक्का देने वाला। २. आरम्भकर्त्ता।

पुं० नाटक की प्रस्तावना का एक भेद।

उद्दंड वि० १. निडर व मनमाना आचरण करने वाला उद्धत। अक्खड़। उजड्ड। २. प्रचण्ड।

उद्दंश पुं० १. खटमल। २. मच्छर। ३. मसा। चेहरे का काला दाग।

उद्दंत (उद्+दंत) पुं० आगे निकला हुआ दाँत। दंतुला।

उद्दल— सक० दलन करना। पीसना।

उद्दान पुं० १. चेष्टा। २. प्राणवायु का एक भेद।

उ०—पान, अपान, व्यान, उद्दान और कहियत प्रान समान।
सा० ६/२

उद्दाम वि० १. बंधनहीन। स्वतन्त्र। २. उद्दण्ड। ३. प्रबल। ४. महान। बड़ा।

पुं० १. वरुण।
२. दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और तेरह रगण होते हैं।

उद्दार वि० दे० 'उदार'।
उ०—ललित उद्दार हित पीर करि।
सूर० १०/२४५३/१४०

उद्दालक पुं० १. एक प्राचीन ऋषि, जिनका दूसरा नाम आरुणिक था और गुरु आयोदधौम्य के आशीर्वाद से उद्दालक नाम हो गया।

उद्दित[1] वि० १. उदित। प्रकट।
उ०—तहँ अरि पंथ पिता जुग उद्दित।
सूर० १०/३४०६/३६८
२. बाँधा हुआ।

उद्दित[2] वि० उद्यत, तैयार।

उद्दित[3] वि० उद्दीप्त, प्रकाशपूर्ण।

उद्दिम पुं० दे० 'उद्यम'।
उ०—जाहि चाहि उद्दिम कियो गने न निसि मग डाम। म० ५६५/४१७

उद्दिष्ट वि० १. अभीष्ट। अभिप्रेत।
२. उद्देश्य के रूप में स्थिर किया हुआ।
पुं० पिङ्गल के नव प्रत्ययों में से एक।

उद्दीप— सक० उत्तेजित करना। दीप्त करना।
—क वि० उत्तेजक। भावों को उभाड़ने वाला।
—न पुं० १. उत्तेजित करने या उभाड़ने की क्रिया या वस्तु। २. प्रकाशन।
३. रसों का विभाव-विशेष।
उ०—यों ही और सिंगार रस उद्दीपन के हेत।
प० ३३७/१५३

उद्दीपित वि० दे० 'उद्दीप्त'।

उद्दीप्त वि० १. प्रज्वलित किया हुआ।
२. चमकता हुआ।
३. उत्तेजित किया हुआ।

उद्दीप्य वि० उत्तेजित करने योग्य। उभाड़ने योग्य।

उद्देश्य—उद्देस पुं० १. किसी कार्य में प्रवृत्त करने वाला मनोभाव। २. इष्ट। ध्येय। ३. जिसके बारे में कुछ कहा जाय। ४. प्रयोजन। ५. आशय।
उ०—कवन सु फल, काके उद्देश। नं० २८/२६४

उद्देसकुल पुं० कवि एवं आचार्य केशवदास का वंश।
उ०—कुंभवार उद्देसकुल प्रगटे तिनकें बंस।
के० I, ५/६६

उद्दोत—उद्दौत पुं० दे० 'उद्योत'।

—इत वि० प्रकाशित। चमकीला।
—इताई स्त्री० प्रकाश।

उद्ध क्रि०वि० ऊपर। ऊर्ध्व।
अक० ऊपर उठना। फैल जाना।

उद्धत वि० १. उजड्ड। अक्खड़। २. प्रचण्ड।
उ०—उद्धत अपार तुअ दुंदुभी-धुकार।
भू० १०४/१४७
३. अभिमानी।
पुं० साहित्य में ४० मात्राओं का एक छंद।
—पन पुं० उद्धतता। उद्दण्डता। उजड्डता।

उद्धर— सक० उद्धार करना। उबारना।
उ०—भूषन भूधर उद्धरिबो सुने। भू० २७२/१८०
अक० उद्धार होना। मुक्त होना।

उद्धरन—उद्धरण पुं० १. उद्धार। मुक्ति।
उ०—'छीत-स्वामी' सकल जीव उद्धरन-हित प्रगट बल्लव-सदन दनुज-हारी। छी० १/१
२. ग्रंथ, लेख आदि से उदाहरण के रूप में लिया हुआ अंश। ३. आवृत्तिकरण।
—ई स्त्री० अभ्यासार्थ पुस्तक को बार-बार पढ़ने की क्रिया। आवृत्ति।

उद्धर्ता वि० १. उद्धारकर्त्ता। २. उखाड़ने वाला।

उद्धव पुं० १. उत्सव। २. यज्ञाग्नि।
३. कृष्ण के एक सखा जिन्हें उन्होंने ब्रज की गोपियों को सान्त्वना देने के लिए भेजा था।

उद्धार[1] पुं० १. मुक्ति। छुटकारा।
उ०—मम उद्धार करन तुम आए।
सूर० १/३४१/६४
२. दुःख की निवृत्ति।
—न वि० उद्धार करने वाला।
उ०—जय मायामृग-मथन, गीध-सबरी-उद्धारन।
कवि० ११४/६८

उद्धार[2]— सक० विपत्ति से या निम्न स्थिति से निकाल कर अच्छी स्थिति में लाना। उबारना।

उद्धृत वि० १. ऊपर उठाया हुआ।
२. किसी कथन या लेख आदि से लाकर उदाहरण, प्रमाण या साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया (अंश)।
३. उड़ेला हुआ।

उद्ध्वस्त वि० नष्ट। टूटा-फूटा। ध्वस्त।

उद्बन्धन पुं० १. ऊपर का बन्धन। २. फाँसी की रस्सी जो गले में बाँधी जाती है। ३. टाँगने की क्रिया।

उद्बह पुं० दे० 'उद्वाह'।
उद्बाहु वि० बाहों को ऊपर उठाये हुए।
उद्बुद्ध वि० १. प्रबुद्ध। ज्ञानी।
२. प्रफुल्लित। विकसित।
स्त्री० उद्बुद्धा, उपपति से स्वयं प्रेम करने वाली परकीया नायिका।
उद्बोध पुं० १. जागृति। २. ज्ञान। पुनःस्मरण।
३. जगाने की क्रिया।
—इत वि० १. चैतन्य किया हुआ। जगाया हुआ।
२. बतलाया गया।
स्त्री० उद्बोधिता, उपपति की इच्छा समझ कर प्रेम करने वाली परकीया नायिका।
—क वि० १. ज्ञान या बोध कराने वाला।
२. जगाने वाला।
३. उद्दीप्त या उत्तेजित करने वाला।
पुं० सूर्य।
—न पुं० दे० 'उद्बोध'।
उद्भट वि० १. श्रेष्ठ। २. प्रबल। प्रचण्ड।
३. अनुपम। बेजोड़।
पुं० जब किसी श्लोक को उद्धृत करते हैं, और श्लोक बनाने वाले का नाम ज्ञात नहीं होता, तब कर्त्ता की जगह 'उद्भट' लिख दिया जाता है।
उद्भत वि० दे० 'अद्भुत'।
उद्भन पुं० कथन। उक्ति।
उद्भव पुं० १. उत्पत्ति। प्रादुर्भाव। २. उन्नति। वृद्धि।
३. उत्पत्ति स्थान। ४. विष्णु।
उद्भावन पुं० १. उत्पन्न होना। २. उपपत्ति युक्त कथन।
३. मन में विचार लाना।
—आ स्त्री० १. कल्पना। २. उत्पत्ति।
३. प्रकाश।
—ई स्त्री० १. उपज। २. मन की उपज।
उद्भास पुं० १. प्रकाश। दीप्ति। तेज। आभा।
२. मन में किसी बात का आना।
३. प्रतीति।
—इत वि० १. उद्दीप्त। २. उत्तेजित।
३. प्रकट।
उद्भिज—उद्भिज्ज—उद्भिज्ज्ञ वि० (वृक्ष, लताएँ आदि) जो जमीन फोड़कर उगती या निकलती हैं।
पुं० जमीन में उगने वाले पेड़, पौधे, लताएँ आदि।
उ०—जैरज, अंडज, स्वेदज औ उद्भिज्ज्ञ चहुँ जुग देव बनाई। दे० I, ३/३८
उद्भिद पुं० अंकुर। दे० 'उद्भिज'।
—विद्या स्त्री० बागवानी।
उद्भिन्न वि० १. विभक्त किया हुआ। २. खंडित।
३. उत्पन्न। ४. विद्ध।
उद्भूत वि० १. निकला हुआ। २. प्रकटित। ३. उत्पन्न।
—रूप वि० दृष्टिगोचर रूप।
उद्भेद पुं० १. प्रकटन।
२. एक काव्यालंकार जिसमें कौशल से छिपाई हुई बात का किसी हेतु से प्रकाशित या लक्षित होना वर्णित होता है।
३. तोड़-फोड़।
—न पुं० १. किसी वस्तु को फोड़कर या छेदकर उससे दूसरी वस्तु का निकलना।
२. तोड़-फोड़। ३. उद्घाटन। ४. अंकुरन।
उद्भ्रान्त वि० १. चक्कर खाता हुआ। भटका हुआ।
२. भ्रान्तियुक्त। उन्मत्त। ३. चकित।
४. विह्वल। दुःखी।
—इ स्त्री० भ्रम। भूल।
उद्यत वि० १. प्रस्तुत।
२. जो कोई काम करने के लिए तत्पर तथा दृढ़प्रतिज्ञ हो। कोई काम करने के लिए तैयार। मुस्तैद। तत्पर।
उ०—उद्यत होत कछू करिबे कौं। भू० १८६/१६४
उद्यम पुं० १. उद्योग। प्रयत्न। अध्यवसाय।
उ०—तातें यह उद्यम अकारथ न जैहै। भि० II, ८/४
२. परिश्रम। मेहनत।
३. रोजगार। पेशा। कारोबार। कामधंधा।
४. उत्साह। चेष्टा।
—ई वि० १. उद्यम या उद्योग करने वाला। उद्योगी। २. प्रयत्नवान्।
उद्यान पुं० १. उपवन। बाग। बगीचा।
२. जंगल। वन।
—पाल पुं० माली। बागवान।
उद्यापन पुं० १. विधिपूर्वक कोई काम करना।
२. व्रत की समाप्ति पर किया जाने वाला विशिष्ट धार्मिक कृत्य।

उद्युक्त वि० [स्त्री० उद्युक्ता]
१. तत्पर। तैयार।
२. किसी काम में लगा हुआ।
३. पराक्रमी। ४. उत्साहान्वित।

उद्योग १. प्रयत्न। कोशिश।
२. परिश्रम। मेहनत। ३. उत्साह।
४. उपाय। ५. काम-धन्धा। व्यापार।
—ई वि० १. उद्यमी। प्रयत्नशील।
२. मेहनती। अध्यवसायी।

उद्योत—उद्यौत पुं० १. प्रकाश। आलोक। उजाला।
उ०—भानु उद्योत कर्ता। गो० ६०/४५
२. आभा। चमक।
उ०—आदि पुरुष उद्यौत विचारी।
सूर० १०/२६२२/२६६

उद्र पुं० ऊदबिलाव।

उद्रिक्त वि० १. बढ़ा हुआ। २. स्फुट। व्यक्त। स्पष्ट।

उद्रेक पुं० १. आधिक्य। अधिकता। प्रचुरता।
२. प्रमुखता। ३. उन्नति। उत्थान।
४. आरम्भ। ५. रजोगुण।
६. साहित्य में, एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु के किसी गुण या दोष के आगे कई गुणों या दोषों के मंद पड़ने का वर्णन होता है।

उद्वर्तन पुं० १. ऊपर उठाना।
२. अभ्यंग। उबटन। ३. वृद्धि।

उद्वसित पुं० १. जनशून्य स्थान। २. घर।
उ०—निवृत्ति, निसांतऽरु उद्वसित, सरण, परुय, आवास। नं० ३/६४

उद्वह पुं० १. पुत्र।
२. उदान वायु। ३. विवाह।
उ०—पाणिग्रहण अरु परिणयन, उद्वह, विहित विवाह। नं० १६१/८५
—आ स्त्री० कन्या। पुत्री।
—न पुं० १. ऊपर की ओर खींचने की क्रिया।
२. ढोने की क्रिया। २. उठने की क्रिया।

उद्वान्त पुं० कै। वमन।
वि० वमन किया हुआ।

उद्वासक पुं० छुड़ाने या उजाड़ने वाला।

उद्वासन पुं० १. उजाड़ने की क्रिया।
२. भगाने की क्रिया। ३. मारण।
४, एक यज्ञीय संस्कार।

उद्वासित वि० १. उजाड़ा हुआ। २. भगाया हुआ।

उद्वास्य वि० १. भगाने योग्य। २. उद्वासन के योग्य।

उद्वाह पुं० १. ऊपर की ओर ले जाने की क्रिया।
२. ढोने की क्रिया। ३. विवाह। परिणय।
—इत वि० विवाहित।
—ई वि० १. ढोने वाला।
२. विवाह करने वाला।
—न पुं० दे० 'उद्वाह'।

उद्विग्न वि० आकुल। व्यग्र। चिंतित और विचलित। घबराया हुआ।
—ता स्त्री० व्यग्रता। घबराहट।

उद्वेग पुं० दे० 'उदवेग'।
उ०—नाथ जिय दमत उद्वेग पावै।
सूर० १०/४२१३/५५३
—ई वि० १. उत्कण्ठित। २. उद्विग्न।
३. चिन्तित।

उद्वेजन पुं० १. किसी के मन में कोई उद्वेग पैदा करना।
२. निकलना।

उद्वृत वि० १. सम्पन्न। उन्नत। २. उद्धत।
२. आहत। क्षुब्ध। ४. दुराचारी।
५. फूला हुआ। ६. ऊपर को फेंका हुआ।

उध पुं० थन।

उधड़— अक० १. तितर-बितर होना। बिखरना।
२. ऊपर की परत या चिपकी हुई चीज का अलग होना।
३. सीवन आदि का खुलना या टूटना।

उधम पुं० दे० 'ऊधम'।
—इ—ई—(स्त्री० उधमिनि—ऊधमिनी)
वि० दे० 'ऊधमी'।

उधर[1] क्रि०वि० उस ओर। उस तरफ। वहाँ।

उधर[2]— अक० मुक्त होना।
उ०—म्लेच्छनि हरन उधरन भुविभार को।
भू० ७८/१४२
सक० उद्धार करना।
—ऐया वि० उद्धार करने वाला।
उ०—ध्रुव के धरैया, पह्लाद उधरैया।
दे० I, ६०/३३७
उधरत व०कृ०। उधर्यो भू०कृ०।
उधरन क्रि०सं०।

उधरन पुं० उदाहरण।
उ०—ज्यों ज्यों सुघराई सों न उधरन देति।
दे० I, २५२/८६

उधरा— अक० १. बिखरना। तितर-बितर होना।

उ०—धीर उधराग्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैं। उ० २६/२६
२. ऊधम मचाना। ३. उन्मत्त होना।
उधरात व०कृ०। उधराग्यौ भू०कृ०।

उधवा पुं० दे० 'उद्धव'।
उ०—ह्यां तो न जीको भयो उधवा। बो० ८४/१४

उधार[1] पुं० उद्धार। मुक्ति।
—ई वि० उद्धार करने वाला।
उ०—बीररस बीर तरवारि सी उधारी है। कवि० ५/१५
—क वि० छुड़ाने वाला। मुक्त करने वाला।
—थ पुं० उद्धार। छुटकारा।
—न [स्त्री० उधाटनी] वि० उद्धार करने वाला।
उ०—जगत-उधारन कारन गरु भये मधु दिखरावै। नं० ९२/३७

उधार[2] सक० किसी को विपत्ति या संकट से निकालना या मुक्त करना। उद्धार करना।
उ०—सूर-प्रभु हरि नाम उधारत। सूर० १०/१२१०/५४४
उधारत व०कृ०।
उधार्यो, उधारे, उधारो भू०कृ०।

उधार[3] पुं० कर्ज। ऋण।
उ०—हूँ तैं निबटाइ करि, करति उधार है। क० ६१/११३

उधिर— अक० १. खुलना। उघड़ना।
२. नष्ट होना। खोना।
उ०—कहै रत्नाकर पैं सुधि उधिरानी सबै। उ० ३४/३४
३. निकल कर फैलना।
उ०—गंग कवि फल फूटैं भुआ उधिरान लखि। गं० ४१५/१२७
उधिरात व०कृ०। उधिरानी भू०कृ०।

उधीर वि० अत्यन्त धैर्यवान।

उधेड़—उधेर— सक० १. लगी हुई पर्तें अलग करना। उखाड़ना।
२. सिलाई के टाँके खोलना।
३. छितराना। बिखेरना।
उ०—तिहारे गुन बुनत उधेरत न बीततो। दे० I, ६६६/१६४
—बुन (उधेड़ना+बुनना) स्त्री० बार-बार किया जाने वाला सोच-विचार। ऊहा-पोह।
उधेरत व०कृ०। उधेर्यो भू०कृ०।

उनइस—उनईस सं० दे० 'उन्नीस'।
उ०—अब सुनि उनइसवौं अध्याइ। नं० १६/२४८

उनई वि० १. प्रकट हुई। दिखाई देने वाली।
उ०—यह फूल गयंदन के उनई। बो० ६/२१०
२. झुकी हुई। ३. उमड़ी। घिरी।
उ०—जलपूरित घनस्याम रुचि उनई अँखियनि आइ। म० ६०७/४१८

उनचास सं० उनचास (४९)।

उनतिस—उनतीस सं० उनतीस (२९)।
उ०—उनतीसौं अध्याइ सुनि मित्र। नं० २६/२७३

उनदा वि० दे० 'उनींदा'।

उनमत—उनमत्त वि० दे० 'उन्मत्त'।
उ०—अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंता-रहित, असोच। सूर० वि०/१०२/२७

उनमद—उनमाद वि० मदमस्त।
उ०—बाजत सु बैन रहै उनमद मैन रहै। प० ५०६/१८७
पुं० उन्माद।
उ०—जड़स्मृति व्याधि प्रलाप पुनि, उनमद अरु अभिलाप। कु० ३७१/८०

उनमन वि० पागल। मतवाला। मस्त।
पुं० पागल आदमी। मदान्ध व्यक्ति।
उ०—इहि बिधि बन घन ढूँढि उनमन की नाईं। नं० १८/१२

उनमाना वि० [स्त्री० उनमनी]
अनमना। उदास। अन्यमनस्क। खिन्न।

उनमाथ— सक० मथना। विलोड़ित करना।
—ई वि० १. मन्थन करने वाला।
२. खलबली मचाने वाला।

उनमाद पुं० दे० 'उन्माद'।
उ०—खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसी उनमाद जग्यौ है। घ०क० २८/५३
—ई (स्त्री० उन्मादिनी) वि० दे० 'उन्मादी'।
उ०—करै जोग उनमादी होई। बो० ५५/१३८
—क वि० दे० 'उन्मादक'।

उनमान[1] पुं० १. अनुमान। ध्यान। समझ। २. अंदाज।
उ०—कहा प्रीति की रीति है कीजै कत उनमान। व्रो० २७/२४

उनमान[2] पुं० १. परिमाण। थाह।
२. योग्यता। सामर्थ्य।

उनमान[3] वि० तुल्य। समान।

उ०—उरग-इन्द्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं। सूर० वि०/६६/१६

उनमान[४]— सक० अनुमान करना। अंदाज लगाना।

उ०—अरुन चरन प्रतिबिंब अवनि मैं यौं उनमानी। नं० १०८/१८३

उनमानी भू०कृ०।

उनमीलन—उनमील पुं० दे० 'उन्मीलन'।

उ०—पीठि प्यारे की उज्यारी पुखराग उनमील की। दे० I, २३१/८६

उनमुना वि० [स्त्री० उनमुनी] १. अनमना। उदास। २. चुप।

उनमुनी स्त्री० दे० 'उन्मनी'।

उनमूल— सक० किसी वस्तु को जड़ से खोदना। समूल नष्ट करना।

उ०—निरवधि सुख की मूल सूल उनमूल करी सब। नं० ३/१७

उनमेख[१] पुं० दे० 'उन्मेष'।

उनमेख[२]— सक० १. आँखें खोलना। २. देखना। ३. खिलना।

उनमेद पुं० प्रथम वर्षा से उत्पन्न विषाक्त फेन। माँजा।

उनय[१]— अक० १. झुकना। लटकना। २. घिर आना। छाना।

उ०—घनआनँद प्रान हरैं हँसिजान, न जानि परैं उघर्‌यौ उनयौ। घ० क० २०७/१५४

३. प्रकट होना।

उ०—बैरागी के रूप कहूं सेवरा सरूप कहूँ जंगम अनूप रस रंग उनयो फिरै। दे० I, २४/३३

उनय[२] वि० कम। न्यून।

उनया वि० १. झुका हुआ। अवनत हुआ। २. घिरा हुआ।

उ०—जगत जियावन कों नए ये उनए घनस्याम। प० २७९/६७

उनर— अक० १. ऊपर उठना। २. उमड़ना। छाना।

उ०—उनरि उनरि वै परत आनि कै, जोधा परम उछाहु। सूर० १०/३३१३/३५०

उनरत व०कृ०। उनर्‌यौ भू०कृ०।

उनव— अक० १. झुकना। २. घिर आना। ३. अचानक सामने आना। ४. टूट पड़ना। ऊपर आ पड़ना।

उनवर वि० १. न्यून। अल्प। २. तुच्छ। हीन।

उनवान पुं० दे० 'अनुमान'।

उनसठ—उनसठि स० उनसठ (५९)।

उ०—सोभित सत्ताइस सिर उनसठि लोचन लेखि। के० I, ३१/१८६

उन-सर वि० वैसा। उनके समान।

उनहत्तर सं० उनहत्तर (६९)।

उनहार—उनिहार वि० सदृश। समान। दे० 'अनुहार'।

उ०—चित भूल गए उनिहार। ना० ६८/६७

—ई स्त्री० समानता। सादृश्य।

उ०—ये तौ उनही की उनहारी। नं० १७५/११०

उना— सक० १. झुकाना। २. सुनना। आज्ञा मानना। ३. उत्तेजित करना। प्रवृत्त कराना।

उ०—बनावैं उनावैं सुनावैं करखै। प० १९/२७९

उनात व०कृ०।

उनार— सक० १. ऊपर की ओर उठाना। उकसाना। २. आगे बढ़ाना।

उनिदौंहा वि० उनींदा। अर्द्ध-निद्रित।

उनिर— अक० उकसना।

उ०—आपुहि ते उत को उनिरोगी। दे० I, ८२७/१८६

उनींद—उनीद स्त्री० बहुत अधिक निद्रा में भरे होने की अवस्था। अर्द्ध-निद्रित।

उ०—लोचन अलस उनींद उते। सूर० १०/२५०४/१५१

—आ वि० ऊँघता हुआ।

उ०—कै कहुँ नींद उनींदै खुले। बो० २१/६३

—ता स्त्री० उन्निद्रता। एक रोग जिसमें रोगी को बिलकुल नींद नहीं आती या बहुत कम नींद आती है।

उ०—मोह उनीदता संग कियो करै बातैं। भि० I, २३२/१४०

उन्नत वि० १. ऊपर की ओर झुका हुआ। २ ऊपर की ओर उठा हुआ। ऊँचा।

उ०—उन्नत पयोधर बरसि रस गिरि रहे। क० ३९/६४

३. श्रेष्ठ। महान।

उ०—उन्नत बिसद हृदय राजत है। सूर० १०/१२०४/५४३

—इ स्त्री० १. उन्नत होने की अवस्था। क्रिया या भाव। २. उच्चता। ३. वृद्धि। समृद्धि।

—ताई स्त्री० ऊँचाई। उच्चता।

उ०—नत देखि गही अति उन्नतताई। भि० I, १३२/२०

उन्नमित वि० ऊपर उठाया हुआ। उत्तोलित।

उन्नयन[१] पुं० १. ऊपर की ओर ले जाना। उत्तोलन। २. सोच-विचार।

उन्नयन[2] वि॰ जिसकी आँखें ऊपर की ओर उठी हों।
उन्नाब पुं॰ वेर की जाति का एक प्रकार का सूखा फल जो औषधि के काम आता है।
—ई वि॰ उन्नाब के रंग का। सुर्ख़ लाल।
पुं॰ उक्त प्रकार का रंग।
उन्नाय पुं॰ दे॰ 'उन्नयन'।
—क वि॰ आगे की ओर ले जाने वाला। उन्नति करने वाला।
उन्नासी सं॰ उन्नासी (७९)।
उन्निद्र वि॰ १. निद्रा रहित।
२. खिला हुआ। विकसित।
उन्नीस सं॰ उन्नीस (१९)।
वि॰ जो किसी से हीन या कम हो।
उन्मज्जन पुं॰ १. जल या नदी से स्नानादि कर चुकने के बाद बाहर निकलना।
२. प्राकट्य।
उन्मत—उन्मत्त (उद्+मद्+क्त) वि॰ १. पागल। सनकी।
२. उन्मादग्रस्त। मतवाला। नशे में चूर।
उ॰—मतवारे उनमत्त ज्यों सिसु के बचन बखानि। के॰ I, ४३/१०६
पुं॰ धतूरा।
उन्मद वि॰ दे॰ 'उन्मत्त'।
उ॰—विबरन सुबरन होत छ्वै उन्मद पद निर्वान। दे॰ I, १६/३०६
उन्मन—उन्मना वि॰ [स्त्री॰ उन्मना]
१. अनमना। अन्यमनस्क। २. उन्मत्त।
३. उद्विग्न। खिन्न।
उन्मनी स्त्री॰ हठयोग की एक मुद्रा जिसमें दृष्टि को नाक की नोंक पर गड़ाते हैं और भौंह को ऊपर चढ़ाते हैं।
उन्माद पुं॰ १. पागलपन। सनक। विक्षिप्तता।
उ॰—कै उन्माद पूरन देखि। बो॰ ६२/१६७
२. एक संचारी भाव।
—ई पुं॰ पागल। विक्षिप्त।
—क वि॰ १. पागल करने वाला। २. नशीला।
पुं॰ धतूरा।
—न पुं॰ १. उन्मत्त करने की क्रिया या भाव।
२. कामदेव के पाँच बाणों में से एक।
उन्मान[1] पुं॰ ऊँचाई नापने का एक माप।
उन्मान[2] अनुमान।
उन्मार्ग (उद्+मार्ग) पुं॰ १. अनुचित या कुमार्ग।
२. अनुचित और निंदनीय आचरण।
—ई वि॰ १. कुमार्गी। २. बुरे आचरण वाला।
उन्मिष वि॰ १. खुला हुआ। २. खिला हुआ।
पुं॰ दे॰ 'उन्मेष'।
—इत वि॰ १. विकसित। खिला हुआ। प्रफुल्लित। २. खुला हुआ।
उन्मील— सक॰ १. खोलना।
२. विकसित करना। खिलाना।
अक॰ १. खुलना। २. खिलना।
—इत वि॰ १. खुला हुआ। २. खिला हुआ।
३. एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता वर्णित हो और किसी एक विशेष कारण से दोनों में अन्तर प्रकट होने का उल्लेख होता हो।
उ॰—उन्मीलित सबिसेष कबि बरनत मति उल्लेख। म॰ ३४५/३५६
—ई वि॰ खुली। उन्मीलित।
—क वि॰ खिलने वाला। प्रस्फुटित होने वाला।
—न पुं॰ १. खिलना। २. खुलना। ३. खोलना।
उन्मुक्त वि॰ १. मुक्त किया हुआ। छूटा हुआ।
२. खुला हुआ।
उन्मुख (उद्+मुख) वि॰ १. ऊपर मुँह किये हुए।
२. ऊपर को देखता हुआ।
३. उत्कंठित। उत्सुक। ४. उद्यत। तैयार।
उन्मूलक वि॰ जड़ से उखाड़ने वाला। समूल नष्ट करने वाला।
उन्मूलन पुं॰ १. समूल नष्ट करना। जड़ से उखाड़ना।
२. किसी का अस्तित्व मिटाना।
उन्मूलित वि॰ १. जड़ से उखाड़ा हुआ।
२. पूरी तरह नष्ट किया हुआ।
उन्मेष—उनमेष पुं॰ १. (आँख का) खुलना।
२. (फूल का) खिलना। ३. प्रकट होना।
४. मंद या हल्का प्रकाश।
५. ज्ञान। बुद्धि। प्रज्ञा। ६. पलक।
उन्मोचन पुं॰ १. बंधन आदि से मुक्त करना। खोलना।
२. कष्ट, संकट आदि से छुड़ाना।
उन्हानि स्त्री॰ १. स्नान। २. बराबरी। समता।
उ॰—सुख की उन्हानिये करै न एक रैनि की। दे॰ I, ६३/५८
उन्हारा पुं॰ १. डील-डौल। २. रूप। ३. ढाल।
उन्हारि—उनहारी स्त्री॰ दे॰ 'अनुहारि'।

उ०—चुनरी स्याम सतार नभ, मुँह ससि की उनहारि। बि० ३२६/१३६

उपंग पुं० १. नसतरंग नाम का एक बाजा।
उ०—ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली।
नं० ६/१७
२. उद्धव के पिता का नाम।
—ई वि० जो उपंग या नसतरंग बजाता हो।
पुं० दे० 'उपंग'।
उ०—मृदु मृदु ताल मृदंगी मुहचंगी झांझ उपंगी।
भि० I, ६/२७३
—सुत पुं० उद्धव।

उपंत वि० उत्पन्न। पैदा।
पुं० उत्पत्ति। पैदाइश।

उप उप० एक उपसर्ग जो सामीप्य, सामर्थ्य, गौणता, न्यूनता और व्याप्ति आदि का द्योतक है।

उपकंठ वि० समीप। निकट।
उ०—बुध कबि के जो उपकंठ ही बसति है।
क० ८/३

उपकथा स्त्री० १. कल्पित कथा। २. आख्यायिका। ३. पुराण। इतिहास।

उपकर— सक० उपकार करना। भलाई करना।
उ०—जहाँ परस्पर उपकरत तहाँ परस्पर नाम।
म० २४२/३३६
उपकरत व०कृ०।

उपकरण—उपकरन पुं० १. सामग्री। साधक वस्तु। सामान। २. राज, चिह्न—छत्र, चँवर आदि।

उपकर्त्ता वि० [स्त्री० उपकर्त्री] उपकार करना। भलाई करना।

उपकार पुं० भलाई। नेकी। हित। लाभ।
उ०—देखिकै ऐसी दसा द्विजदेव जो आप ही सौं उपकार न ह्वै हैं। शृं० २०२/५८३
—इका वि० भलाई करने वाली।
—इता स्त्री० १. भलाई। उपकार।
२. प्रयोजन की सिद्धि।
—ई वि० भलाई करने वाला। उपकार करने वाला।
उ०—तुम तौ साधु परम उपकारी, सुनियत बड़ौ तिहारौ नाम। सूर० १०/२६६६/२७६
—इच्छु वि० उपकार चाहने वाला। उपकार करने का अभिलाषी।
—क वि० नेकी करने वाला। उपकार करने वाला। कृपालु।

उपकारिका स्त्री० १. राजभवन।
२. खेमा। तंबू। शिविर।

उपकार्य वि० उपकार करने के योग्य। जिसके साथ उपकार करना उचित हो।
—आ[1] वि० जो स्त्री उपकार किए जाने योग्य हो।
स्त्री० दे० 'उपकारिका'।

उपकूप पुं० १. तट। किनारा।
२. कुएँ के पास का पानी का गड्ढा जो पशुओं को जल पिलाने के लिए बना हो।

उपकूल पुं० तट। तीर। किनारा।

उपकृत (उप+कृत) वि० जिसके साथ उपकार किया गया हो। कृतोपकार।
—इ स्त्री० भलाई। उपकार।

उपक्रम पुं० १. प्रथमारम्भ। भूमिका। आरम्भ। अनुष्ठान।
उ०—जामैं रास उपक्रम चित्र। नं० २६/२७३
२. चिकित्सा।

उपक्रमण पुं० आरम्भ। भूमिका। तैयारी।

उपक्रमणिका स्त्री० १. पाठ्य-सूची। विषय-सूची।
२. पुस्तक विशेष जिसमें वेद के मन्त्रों तथा सूक्तों के ऋषि छन्द एवं देवताओं का निरूपण है।

उपक्रान्त वि० आरम्भ किया हुआ। समारम्भ।

उपक्रिया स्त्री० उपकार। भलाई।

उपक्रोश पुं० निन्दा। भर्त्सना। कुत्सा।

उपकुर्बाण पुं० वह ब्रह्मचारी जो विद्याध्ययन समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

उपखन—उपखान पुं० उपाख्यान। कथा। कहानी।
उ०—जाहिर जहान उपखान यह चलही।
भू० ४६७/२२०

उपगत (उप+गत) वि० १. प्राप्त। स्वीकृत। अङ्गीकृत। २. ज्ञात। उपस्थित। ३. दिवंगत। मृत।
—इ स्त्री० १. प्राप्ति। २. ज्ञान।

उपगमन पुं० १. आगमन। पास जाना। २. योग। ३. प्रीति। ४. स्वीकार।

उपगाता पुं० यज्ञ के ऋत्विजों में एक, यह मन्त्र गान में उद्गाता की सहायता करता है।

उपगीति स्त्री० आर्या छन्द का भेद-विशेष।

उपगुरु पुं० उपदेशक। शिक्षक।

उपगूहन पुं० अंकवार। आलिंगन।

उपग्रह पुं० १. अप्रधान ग्रह। छोटा ग्रह।
२. बंधुआ। कैदी।

उपग्रहन—उपग्रहण (उप+ग्रहण) पुं० १. किसी वस्तु को गिरने या टपकने से बचाने को एक हथेली के नीचे दूसरी हथेली लगाने की क्रिया।
२. गिरफ्तारी। कैद।
३. संस्कारपूर्वक अध्ययन।

उपघात (उप+घात) पुं० १. नाश करने की क्रिया।
२. अशक्ति। ३. रोग। व्याधि।
४. पाँच पातकों का समूह—उपपातक, जाति-भ्रंशीकरण, संकरीकरण, अपात्री-करण, मलिनीकरण। ५. आघात।

उपच— अक० बढ़ना।
उ०—नैन-बदन-छबि यों उपचति, मनु ससि अनु-राग चकोर। सूर० १०/१७६१/३
उपचत, उपचति व०कृ०। उपच्यो भू०कृ०।

उपचय पुं० १. उन्नति। वृद्धि। २. संचय।

उपचरण—उपचरन पुं० १. समीप। गमन।
२. सेवा। परिचर्या।

उपचरित वि० १. सेवित। आराधित। पूजित।
२. लक्षण से ज्ञात।

उपचर्या स्त्री० १. सेवा-शुश्रूषा। २. चिकित्सा।

उपचार[1] पुं० १. व्यवहार। २. चिकित्सा।
उ०—बारी बहू मुरझानी बिलोकि जिठानी करै उपचार कितीको। प० १७२/११६
३. धर्मानुष्ठान। ४. प्रतिकार। उपाय।
उ०—फिरि न बिसारी बिसरिहै कियें कोरि उपचार। भि० I, २५१/३७
—इ—ई वि० उपचार करने वाला। चिकित्सक।
उ०—करि कोटि उपाय थके उपचारी। बो० ३६/८४
—क वि० चिकित्सक।
—सी वि० उपचार करने वाला।

उपचार[2]— सक० १. औषधि करना। चिकित्सा करना।
२. व्यवहार करना। काम में लाना।
उपचारत व०कृ०।

उपचार्य वि० उपचार करने योग्य।
पुं० चिकित्सा।

उपचित वि० १. वर्द्धित। समृद्ध। २. संचित।

उपचित्रक पुं० १. एक छंद जिसमें ग्यारह मात्राएँ होती हैं। २. साधारण चीता।
उ०—मित्र सु है उपचित्रक माहीं। भि० I, ५/२६७

उपचित्रा स्त्री० १. एक प्रकार का वृक्ष।
२. एक छंद जिसमें सोलह मात्राएँ होती हैं।
३. एक नक्षत्र।

उपचीर स्त्री० भलाई।
उ०—'सूरदास' ब्रज जुवतिनि ऊपर, क्यों न करौ उपचीर। सूर० १०/३८४१/४५६

उपज स्त्री० १. पैदावार। उत्पत्ति। २. मनगढ़न्त बात।
३. नई सूझ। उद्भावना।
४. नयी तान लगाना।
—आत वि० १. उत्पन्न। २. घटित।
—आयल वि० पैदा होने वाला।
उ०—जेहर, तेहर पाँय, बिछुवन छवि उपजायल। नं० १७६/३३३
—आवन वि० १. पैदा करने वाला।
२. प्रकट करने वाला।
—इत वि० उत्पन्न हुआ।
—उ—ऊ वि० अच्छी पैदावार वाला। उर्वरा।
—न पुं० उत्पत्ति। उपज।

उपज— अक० उत्पन्न होना। पैदा होना।
उ०—उपजी सोभा तरंग बिश्व के मनु हरन। च० १८१/१०२
उपजति, उपजतु, उपज्जिय व०कृ०।
उपजा, उपजी, उपजौ, उपज्यो, उपज्यौ भू०कृ०।

उपजा— सक० उत्पन्न करना। पैदा करना।
उ०—छांडि नाथ औरु रुचि उपजावै। छी० ४३/१६
उपजावत व०कृ०। उपजायो भू०कृ०।

उपजीवन पुं० १. रोजी। २. सहारा।

उपजीविका स्त्री० वृत्ति। जीविका।

उपजीवी वि० परावलम्बी। पराश्रित।

उपट[1]— अक० १. निशान पड़ना। दाग़ पड़ना।
उ०—जो मद होत कठोर तो कैसे उपटत भाल। र० १६/३४३
२. उभरना।
उ०—ऐसी लौद घालिहौं कि चौवर उपटहै। ठा० १०६/२८
सक० उबटन लगाना।
उपटत, उपटति व०कृ०। उपट्यौ भू०कृ०।
—इत वि० उपटा हुआ। निशान पड़ा हुआ।
उ०—कुंकुम खसित उपटित कुच उतंग। गो० २७६/१२४

—ई वि० उछरा हुआ । चिह्नवाला ।

उ०—मनमोहन की बहियाँ में छुटी उपटी यह बेनी दिखा परी है । प० १०५/१०१

—न पुं० १. उबटन । अभ्यंग । शरीर में लगाने योग्य सरसों आदि का लेप ।

२. निशान । ३. साँट ।

उपट[२]— अक० उखड़ना ।

उपटा[१] पुं० १. पानी की बाढ़ । २. ठोकर ।

—न पुं० १. बाढ़ । २. चिह्न ।

उपटा[२]— सक० १. उखाड़ना । २. दाग डालना ।

३. हटाना । उचाड़ना ।

४. उबटन लगवाना ।

उपटार— सक० १. मन को कहीं से हटाना ।

२. उठाना ।

उपड़— अक० दे० 'उपट' ।

उपढौकन पुं० १. भेंट । उपहार । २. पारितोषिक ।

उपतप्त वि० १. दुःखी । खिन्न । २. जला हुआ ।

उपताप— सक० ताप देना । क्लेश देना ।

उ०—धनी लोग उपतापहिं जाहीं । नं० २०/२५०

उपतारा स्त्री० १. क्षुद्र नक्षत्र । २. नेत्र गोलक ।

उपत्यका स्त्री० पहाड़ी के पास की भूमि । घाटी । तराई ।

उपदंस पुं० १. मद्य के साथ रुचने वाली नमकीन वस्तु ।

उ०—अधर सुदा उपदंस सींक सुचि, बिधु-पूरन-मुखवास संचारैं । सूर० १०/२८२२/२१३

२. एक रतिज रोग ।

उपदर्शक पुं० १. द्वारपाल । प्रहरी । २. साक्षी ।

उपदा (उप+दा) स्त्री० १. भेंट । उपहार ।

२. उत्कोच ।

उपदिशा स्त्री० दो दिशाओं के मध्य की दिशा ।

उपदिष्ट वि० १. जिसे उपदेश दिया गया हो ।

२. ज्ञापित । कथित ।

उपदेश—उपदेस—उपदेसु पुं० १. गुरुमन्त्र । दीक्षा ।

२. सीख । शिक्षा । हित की बात ।

उ०—'केसव' लै बिसरो उपदेसु ।

के० II, ६८/४४५

—क पुं० शिक्षा देने वाला । शिक्षक ।

उपदेश—उपदेस— सक० शिक्षा देना । सीख देना ।

उ०—कासी हूँ मरत उपदेसत महेस सोई ।

कवि० ७४/५८

उपदेसत व०कृ० ।

उपदेस्यो, उपदेस्यौ भू०कृ० ।

उपदेश्य वि० उपदेश देने योग्य । उपदेश का अधिकारी ।

उपदेष्टा पुं० दे० 'उपदेशक' ।

उपदेह पुं० लेप ।

उपद्रव पुं० उत्पात । हलचल । गड़बड़ ।

उ०—मन मैं जानि उपद्रव भारी ।

सूर० ६/१५०/१६६

—ई वि० उत्पात मचाने वाला । उत्पाती ।

उपद्रष्टा पुं० १. निरीक्षक । पर्यवेक्षक । २. साक्षी ।

उपधर— सक० १. अङ्गीकार करना । अपनाना ।

२. शरण में लेना । सहारा देना ।

उपधर्म पुं० १. गौण या अमुख्य धर्म ।

२. पाखण्ड । नास्तिकता ।

उपधा स्त्री० १. उपद्रव ।

२. राजा द्वारा मंत्री, पुरोहित आदि की परीक्षा लेना ।

उपधातु स्त्री० १. अप्रधान धातु जैसे—सोना माखी, तूतिया आदि ।

२. शारीरिक धातुओं से बनी अप्रधान धातु यथा—पसीना, दूध, चर्वी आदि ।

उपधान (उप+धान) पुं० १. सहारे की वस्तु ।

२. तकिया । ३. ढक्कन । ४. सहायक ।

उ०—विक्रम-निधान, उपधान सिय बाम के ।

क० १०/७४

उपधि पुं० छल-कपट ।

उपधृति स्त्री० किरण । रश्मि ।

उपनंद पुं० १. नंद के छोटे भाई का नाम ।

२. वसुदेव का एक पुत्र ।

३. जिसके गोष्ठ में पाँच लाख गायें हों, उसे गर्ग संहिता के अनुसार उपनन्द कहते हैं ।

उपन—उप— अक० उत्पन्न होना । पैदा होना ।

उपनत वि० १. झुका हुआ । विनत ।

२. समीप लाया हुआ । उपस्थित ।

उपनद्ध वि० १. बँधा हुआ । २. नाथा हुआ ।

उपनय पुं० १. पास ले जाना । २. वेदाध्ययन के लिए गुरु के पास ले जाना । ३. उपनयन संस्कार ।

—न पुं० १. पास लाने की क्रिया ।

२. यज्ञोपवीत संस्कार ।

उपना[१] पुं० उपर्ना । दुपट्टा ।

उपना[२]— सक० उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उपनाम पुं० १. पदवी । उपाधि ।

२. दूसरा नाम । प्रचलित नाम ।

उपनायक (उप+नायक) पुं० नाटक में नायक का साथी ।

उपनिधि (उप+निधि) स्त्री० धरोहर। थाती।

उपनिविष्ट वि० अनुभवी। सुशिक्षित।

उपनिषद स्त्री० १. पास बैठने की क्रिया।
२. ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाकर बैठना।
३. वेदों के उपरान्त लिखे गए वे आध्यात्मिक ग्रन्थ जिनमें गूढ़ आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचार भरे हैं। ब्रह्म-विद्या।
उ०—निर्गुन सगुन आतमा उपनिषद जो गानै। नं० १६/१५५

उपनीत वि० १. लाया हुआ।
२. जिसका उपनयन संस्कार हो चुका है।
३. पास आया हुआ।

उपनेत वि० उत्पन्न
उ०—कीनी नेम-धरम कहानी उपनेत है। घ० क० २७३/१८४

उपनेता पुं० १. लाने वाला।
२. उपनयन संस्कार कराने वाला। गुरु। आचार्य।

उपन्यास पुं० १. वाक्य का उपक्रम। २. धरोहर, थाती।

उपन्यस्त (उप+न्यस्त) वि० धरोहर रखा हुआ।

उपपति (उप+पति) पुं० वह पुरुष जिससे किसी दूसरे पुरुष की विवाहिता स्त्री प्रेम करती हो। जार। लगुवा।
उ०—प्रीति परम कहि कौन निज पति उपपति गनिक की। बो० ३७/२५

उपपत्ति स्त्री० १. चरितार्थ होने की क्रिया। २. हेतु। ३. साक्ष्य। ४. युक्ति।

उपपत्नी (उप+पत्नी) स्त्री० रखैल।

उपपद पुं० पद का समीपवर्ती पद।

उपपन्न वि० १. उपलब्ध। २. शरणागत। ३. युक्त। ४. उपयुक्त।

उपपातक (उप+पातक) पुं० छोटा पातक या पाप। जैसे—मारण, मोहन, परस्त्रीगमन।

उपपादन पुं० १. कार्य-सम्पादन।
२. सिद्ध करने की क्रिया।

उपपादित वि० सिद्ध किया हुआ।

उपपाद्य वि० जिसका उपपादन किया जाए।

उपपुराण (उप+पुराण) पुं० अठारह मुख्य पुराणों के अतिरिक्त अन्य गौण पुराण जिनकी संख्या भी अठारह ही है।

उपबचन पुं० निन्दा।
उ०—दोप कथन उप बचन तें प्रगट लीजियै जानि। र० ८५०/१६०

उपबन पुं० उद्यान।
उ०—बन गिरि-उपबन जाइ, कबहु बहुभाँतिन खेलहिं। शृं० ४०/११०

उपबरह—उपबर्ह—उपबर्हण पुं० तकिया।

उपबर्न पुं० उपमान।
उ०—जहँ प्रसिद्ध उपबर्न को पलटि कहत उपमेय। म० ५७/३०८

उपबीत पुं० यज्ञोपवीत।
उ०—पुनि लीबो उपबीत हम। के० I, ५७/१०८

उपबेद पुं० वेदों से निकली हुई लौकिक विद्याएँ।
उ०—बेद उपबेद बध बंधन विधानु हैं। के० I, ७०/१२६

उपभुक्त (उप+भुक्त) वि० १. भोग किया हुआ। जूठा।
२. व्यवहृत।

उपभोक्ता वि० १. भोग करने वाला।
२. काम में लाने वाला। व्यवहार करने वाला।

उपभोग पुं० १. विलास। विषयों का रसास्वादन।
उ०—हाव, भाव, भोग, उपभोग, सविलास। दे० I, ३६/५३
२. सुख या विलास की वस्तु।

उपभोग्य वि० १. भोग करने योग्य।
२. व्यवहार के योग्य।

उपमंत्री (उप+मंत्री) पुं० सहायक मन्त्री।

उपम पुं० दे० 'उपमा'।
उ०—नैन सुरसति-जमुन-गंगा, उपम डारौं वारि। सूर० १०/१८३७/२१

उपमन्यु पुं० एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि जो दधौम्य के शिष्य थे।

उपमा[1] स्त्री० १. समता। सादृश्य। समानता।
उ०—कामबन, नंदन की उपमा न देत बनैं। शृं० १०/४२
२. एक अर्थालंकार।

उपमा[2]— सक० उपमा देना।

उपमाता[1] (उप+माता) स्त्री० सौतेली माता।

उपमाता[2] वि० उपमा देने वाला।

उपमान पुं० वह वस्तु या व्यक्ति जिससे उपमा दी जाय।
उ०—रहे उपमान जु पैं हिय साजी। शृं० २६१/७४७

उपमिति स्त्री० १. सादृश्य।

२. सादृश्य से होने वाला ज्ञान ।

उ०—जु सादृश्य के ज्ञान तें अलख जु उपमिति ज्ञान । प० ३१५/७१

उपमेइ—उपमेय वि० जिसकी उपमा दी जाय । उपमा के योग्य ।

उ०—जाको बरनन कीजिये सो उपमेय प्रमान । म० ३६/३०५

उप-यन्त्र (उप+यन्त्र) वैद्यों का यन्त्र-विशेष जो शरीर में चुभा हुआ काँटा आदि निकालने के काम में आता है ।

उपयम पुं० १. विवाह । २. संयम ।

—न पुं० १. विवाह । २. कुश विशेष । ३. संयम ।

उपयुक्त वि० १. योग्य । २. उचित । ठीक । ३. उपयोगी ।

उपयोग पुं० १. प्रयोग । व्यवहार । २. योग्यता । ३. आवश्यकता । प्रयोजन ।

—इता स्त्री० १. काम या व्यवहार में आने की योग्यता । २. लाभकारिता ।

—ई वि० १. प्रयोग या व्यवहार में आने वाला । २. उपयुक्त । ३. लाभकारी । हितकर । ४. प्रयोजनीय ।

उपर[1] अव्य० दे० 'ऊपर' ।

उपर[2]— अक० १. उभड़ना । २. उबटना । ३. उफन कर बाहर आना । ४. निशान पड़ना ।

उपरत व०कृ० । उपर्यो भू०कृ० ।

सक० दे० 'उपट' ।

उपरक्त वि० १. विषयासक्त । २. पीड़ाग्रस्त । राहुग्रस्त । ३. अनुरक्त ।

उपरचट वि० बहुत अल्पज्ञान रखने वाला । पल्लवग्राही पाण्डित्य वाला ।

उपरक्षण पुं० १. रक्षा करने का कार्य । २. चौकी । पहरा ।

उपरत वि० १. उदासीन । २. विराम प्राप्त । रुका हुआ । ३. मृत । मरा हुआ ।

—इ स्त्री० १. उदासीनता । २. विरति । निवृत्ति । ३. मृत्यु ।

उपरत्न पुं० घटिया रत्न । आयुर्वेद के अनुसार ये नौ माने गये हैं—वैक्रान्त मणि, सीप, रक्सस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुड़ि मणि, शंख और स्फटिक मणि ।

उपरना पुं० (स्त्री० उपरनी) शरीर के ऊपरी भाग में ओढ़ी जाने वाली चादर या दुपट्टा ।

उ०—चोली चतुरानन ठग्यो, अमर उपरना राते (हो) । सूर० वि०, ४४/१३

उपरफट—उपरफट्ट वि० ऊपरी । व्यर्थ का । निष्प्रयोजन । अप्रासंगिक ।

उ०—मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं । सूर० १०/६८१/४००

उपरम पुं० विरक्ति । वैराग्य । उदासीनता ।

उपरवार स्त्री० ऊँची भूमि । बाँगर ज़मीन ।

उपरहित पुं० (स्त्री० उपरहिती) पुरोहित ।

उपरांत अव्य० अनन्तर । बाद ।

उ०—अनुदिनहीं उपरांत आन रुचि । सूर० १०/२३८८/१२८

उपरा[1] अव्य० ऊपर ।

उ०—उपरा उपरि छिरकि रस सर भरि । सूर० १०/२८५८/२३३

—चढ़ी स्त्री० १. स्पर्धा । २. ईर्ष्या ।

उपरा[2]— अक० १. ऊपर आना । २. प्रकट होना ।

सक० १. ऊपर करना । उठाना । २. प्रकट करना ।

उपराग पुं० १. (चन्द्र या सूर्य) ग्रहण ।

उ०—बिनु परबहि उपराग आजु हरि । सूर० १०/२६८६/२८०

२. वर्ण । ३. वासना । ४. व्यसन ।

उपराज[1] पुं० राज-प्रतिनिधि ।

उपराज[2]— सक० १. उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उ०—बिमल प्रीति उपराजी । सूर० १०/३६४८/४१६

२. बनाना । ३. उपार्जन करना ।

उपराजति व०कृ० । उपराजौ भू०कृ० ।

स्त्री० पैदावार ।

उपराम पुं० १. विरक्ति । वैराग्य । २. निवृत्ति । छुटकारा । ३. विराम । आराम ।

उपराला पुं० १. रक्षा । २. सहायता ।

उपराला—उपरारा—उप्राला वि० सबसे ऊँचा । ऊपर का ।

उपरावटा वि० १. ऊपर वाला । २. अकड़ा हुआ । तना हुआ ।

उपरापरि—उपरापरी क्रि०वि० एक-दूसरे के ऊपर ।

उ०—ऐसी खेल मच्यो उपरापरि।
सूर० १०/२८६१/२३४
स्त्री० हस्तक्षेप।
उपराह्— सक० बड़ाई करना।
उपराही क्रि०वि० ऊपर।
वि० श्रेष्ठ। उत्तम।
उपरि अव्य० ऊपर।
उ०—उपरा उपरि छिरकि रस सर भरि।
सूर० १०/२८५८/२३३
—स्थ वि० ऊपर का।
उपरिया स्त्री० उपला। गोबर का कंडा।
वि० १. ऊपर वाला। २. अन्य।
उपरी—उपरा पुं० प्रतियोगिता। एक वस्तु के लिए कई व्यक्तियों का प्रयत्न।
उपरुद्ध वि० १. रोका हुआ।
२. घेरे या बंधन में डाला या पड़ा हुआ।
उपरेज— अक० शोभित होना।
उपरेठा—उपरेटा पुं० एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ। परांठा।
उ०—उपरेठा कों खांड़ पागि के चन्द्रकला रुचि लाई।
कुं० १०/६
उपरेना पुं० (स्त्री० उपरेनी) दे० 'उपरैन'।
उ०—लाल उपरेना, सिर मोरनि कौ चंदवा।
कुं० १५३/६१
उपरैन—उपरैना—उपरौना पुं० (स्त्री० उपरैनी) दुपट्टा। उपरैनियां।
उ०—कनक-तन-गोर-छवि उमँगि उपरैन कौं।
सूर० १०/२४५०/१४०
उपरोक्त वि० उपर्युक्त। ऊपर कहा हुआ। पूर्व-कथित।
उपरोध पुं० १. बाधा। रोक। २. आच्छादन। ढकाव।
—क वि० बाधा डालने या रोकने वाला।
पुं० भीतर की कोठरी।
—न पुं० रुकावट। बाधा। अड़चन।
उपरोहित पुं० पुरोहित।
उपरौंचा पुं० अंगोछा।
उपरौंछा क्रि०वि० ऊपर की ओर।
उपरौंठा वि० ऊपर वाला। ऊपर की ओर का।
उपरौटा पुं० ऊपर का पल्ला।
उपरौना पुं० दे० 'उपरैन'।
उपर्युक्त वि० दे० 'उपरोक्त'।
उपल पुं० १. पत्थर।
उ०—इहि बिधि उपलै तरत पात ज्यौं।
सूर० ६/१२३/१६१
२. ओला। ३. बादल।
उपलक्ष पुं० दे० 'उपलक्ष्य'।
—इत वि० १. संकेत किया हुआ।
२. बोध कराया हुआ। समझाया हुआ।
—क वि० १. निरीक्षण करने वाला। लखने वाला। २. अनुमान करने वाला।
—ण—न पुं० १. संकेत।
२. बोध कराने वाला चिह्न।
उ०—संपति को अधिकार जो अरु उपलक्षन और।
म० ३७७/३६१
उपलक्ष्य पुं० १. उद्देश्य। २. संकेत। ३. दृष्टि।
उपलब्ध वि० प्राप्त किया हुआ। मिला हुआ।
—इ स्त्री० १. प्राप्ति। २. बुद्धि। ३. ज्ञान।
उपला[1] पुं० [स्त्री० उपली] गोबर से बना कंडा जो जलाने के काम आता है।
उपला[2]**—** सक० पानी के ऊपर उठना। तैरना।
उपलिप्त वि० लीपा हुआ।
उपलेप पुं० १. लेप। २. लेप की वस्तु।
—इत वि० लेप किया हुआ। लीपा हुआ।
—न पुं० लीपने की क्रिया।
उपलेप्य वि० लीपने योग्य। लेप करने योग्य।
उपल्ला पुं० ऊपर की पर्त। ऊपरी भाग।
उपलाँना वि० (स्त्री० उपलाँनी) तैरता हुआ।
उपवन (उप+वन) पुं० बाग। फुलवारी।
उपवसथ (उप+वसथ) पुं० १. व्रत। उपवास।
२. यज्ञारम्भ का प्रथम दिवस।
उपवाद (अप+वाद) पुं० दे० 'अपवाद'।
उपवारी स्त्री० छोटी-छोटी क्यारी।
उपवास पुं० व्रत। लङ्घन। फाँका।
—ई वि० व्रती। फाँका करने वाला।
उपविद्य पुं० शिल्पी। कारीगर।
उपविष (उप+विष) पुं० मृदु विष।
उपविष्ट (उप+विष्ट) वि० बैठा हुआ।
उपवीत (उप+वीत) पुं० १. यज्ञोपवीत। जनेऊ।
२. उपनयन। संस्कार।
उपवेद (उप+वेद) पुं० वेदों से निकली चार विद्याओं के ग्रन्थ। यथा—धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, आयुर्वेद तथा स्थापत्य-वेद।
उपवेशन (उप+वेशन) पुं० १. बैठना।
२. जमना। स्थित होना।
उपवेशित वि० १. बैठा हुआ। २. स्थित। जमा हुआ।

उपवेशी वि० बैठने वाला।
उपवेश्य वि० बैठने योग्य।
उपवेष्टन (उप+वेष्टन) पुं० १. लपेटने की क्रिया।
२. बस्ता।
उपशम (उप+शम) पुं० १. निवृत्ति। शान्ति।
२. इन्द्रिय-निग्रह। ३. निवारण का उपाय।
उपशल्य पुं० १. नगर के पास की भूमि।
२. पहाड़ के पास की भूमि।
३. बरछा। भाला।
उपशायी (उप+शायी) वि० १. अपनी बारी पर क्रमानुसार सोने वाला। चौकीदार।
२. जितेन्द्रिय। ३. प्रशान्त। निवृत्त।
उपशिष्य (उप+शिष्य) पुं० शिष्य का शिष्य।
उपशीर्षक (उप+शीर्षक) पुं० १. गौण शीर्षक।
२. सिर का एक रोग।
उपश्रुत (उप+श्रुत) वि० १. सुना हुआ।
२. स्वीकृत। अङ्गीकृत। ३. वाग्दत्त।
उपसंग (उप+संग) क्रि०वि० पास।
उ०—लै उछंग उपसंग हुतासन।
सूर० ६/१६२/२०२
उपस[1] (उप+बास) स्त्री० दुर्गन्धि।
उपस[2]— अक० १. दुर्गन्धित होना। सड़ना।
२. दूर होना।
उपसा— सक० सड़ाकर बदबू उत्पन्न करना।
उपसम पुं० दे० 'उपशम'।
उ०—उपसम चितन समता सबहूँ। नं० पृ० १८६
उपसर्ग (उप+सर्ग) पुं० किसी शब्द से जुड़कर विशेष अर्थ द्योतन करने वाले अव्यय—प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप आदि।
उपसर्जन (उप+सर्जन) पुं० १. ढालना।
२. उपद्रव। दैवी उत्पात। ३. गौण वस्तु।
४. त्याग।
उपसागर पुं० खाड़ी।
उपसीज— अक० अधीन होना।
उ०—आज कहूँ उपसीजि न जाहुगी।
गं० ६६/२१
उपसुंद पुं० एक दैत्य जो सुंद का छोटा भाई था।
उ०—सुंद-उपसुंद स्वेच्छा विहारी।
सूर० ८/११/१४६

उपसेचन (उप+सेचन) पुं० भिगोने या तर करने की क्रिया। छिड़काव।
उपस्कर पुं० १. हिंसा।
२. दाल-साग में डालने वाला मसाला।
३. घर का सामान।
४. वस्त्र-आभूषण।
५. रसद। सामग्री।
उपस्थ पुं० १. शरीर का मध्यभाग।
२. पेड़ू। ३. पुरुष अथवा स्त्री की जननेन्द्रिय। लिङ्ग या भग। ४. गोद।
—ल पुं० १. नितम्ब। कूल्हा। २. पेड़ू।
३. कटि। कमर।
उपस्थाता (उप+स्थाता) पुं० सेवक। भृत्य।
उपस्थान (उप+स्थान) पुं० १. सामने आने की क्रिया।
२. खड़े होकर स्तुति करने की विधि-विशेष।
३. पूजा।
उपस्थापन (उप+स्थापन) पुं० १. पास लाना।
२. उपस्थित करना।
उपस्थित (उप+स्थित) वि० १. समीप आया हुआ। विद्यमान। वर्तमान। २. पास बैठा हुआ।
३. उत्पन्न।
—इ स्त्री० विद्यमानता।
उपस्वल पुं० किसी रियासत की आय का अधिकार।
उपहत (उप+हत) वि० १. नष्ट किया हुआ।
२. दूषित। ३. पीड़ित। ४. तिरस्कृत।
—इ (उपहति) स्त्री० १. विनाश। बरबादी।
२. ताड़न। ३. हत्या।
उपहस— सक० उपहास करना। हँसी करना।
उपहसत व०कृ०।
—इत पुं० १. हास के छः प्रकारों में से एक।
२. हँसी।
वि० उपहास किया गया।
उपहार (उप+हार) पुं० १. भेंट।
उ०—लगे मिलन लै लै उपहार।
के० III, ५५/५४६
२. पारितोषिक। इनाम।
—नी स्त्री० उपहार देने की क्रिया।
उपहास (उप+हास) पुं० १. हँसी। दिल्लगी। ठट्ठा।
उ०—हौं आवत उपहास लोभ न आवत जीव को।
बो० ७०/५०
२. परिहास। खिल्ली।

उ०—त्यों पदमाकर या उपहास को त्रास मिटै न उसास लिये तें। प० १७८/११७

३. निन्दा। बुराई।

उ०—राधा कान्ह एक हैं दोऊ, तौं इतनो उपहास सहैं। सूर० १०/१६०६/३४

—आस्पद वि० १. हँसी उड़ाने योग्य। २. निन्दनीय।

—ई स्त्री० १. निन्दा। २. हँसी।

वि० हँसी करने वाला।

उपहित (उप+हित) वि० १. स्थापित। २. धारण किया हुआ। ३. दिया हुआ। सौंपा हुआ। ४. सम्मिलित। ५. उपाधियुक्त।

उपही पुं० १. अपरिचित। २. परदेशी। विदेशी। ३. ऊपरी। वायवी।

उपहृत (उप+हृत) वि० १. दिया हुआ। दत्त। २. पास लाया हुआ। उपनीत।

उपा— सक० १. उत्पन्न करना। २. रचना बनाना।

उ०—हौं मन तें विधि पुत्र उपायो। के० II, ६/३५८

उपाइ[1]**—उपाई—उपाउ—उपाऊँ—उपाऊ** पुं० दे० 'उपाय'।

उ०—क्यों हूँ क्यों हूँ बरनियै, कौनहु एक उपाइ। के० I, १४/१८९

उपाइ[2]**—** अक० उपाय करना।

उ०—कहि 'केसव' कोटि कलानि करि लोभ न क्षोभ उपाइयै। के० III, ४६/४८१

उपाकरण—उपाकरन (उप+आ+करण) पुं० १. उपक्रम। तैयारी। २. यज्ञ में वेदपाठ। ३. यज्ञीय पशु का संस्कार।

उपाकर्म (उप+आ+कर्म) पुं० १. श्रावण मास की पूर्णिमा को संस्कारपूर्वक वेदपाठ का आरम्भ करना। २. एक वैदिक कर्म जो वेदाध्ययन आरम्भ करने के पूर्व किया जाता है।

उपाख्यान (उप+आख्यान) पुं० १. पुरानी कथा। २. वृत्तान्त। ३. किसी कथा के अन्तर्गत आने वाली अन्य कथा। उपकथा।

उपाट—उपाड़— सक० उखाड़ना।

उ०—खेतिहर निरखि उपाटत। सूर० वि०/१०७/२९

उपाटत व०कृ०। उपाट्यौ भू०कृ०।

उपात्त (उप+आत्त) वि० गृहीत। प्राप्त।

उपादान (उप+आ+दान) पुं० १. ग्रहण। प्राप्ति। स्वीकार। २. बोध। ज्ञान। ३. अपने अपने विषयों से इन्द्रियों की निवृत्ति। ४. वह कारण जो स्वयं कार्य का रूप धारण करे। ५. प्रवृत्तिजनक ज्ञान।

उपादि स्त्री० १. छल-कपट। २. पदवी। ३. उपद्रव।

उ०—खोटी करनी जाहि की, सोई करै उपादि। सूर० १०/१६१८/६४४

उपादेय (उप+आदेय) वि० १. ग्राह्य। २. उत्कृष्ट। अच्छा।

उपाध[1]**—उपाधि** (उप+आधि) पुं० १. दुःख। क्लेश। २. रोग। ३. उपद्रव। ४. आरोपित गुण।

—ई वि० १. उपद्रवी। २. अधर्मी।

उपाध[2]**—** अक० लटका होना।

उ०—दामनि मोल उपाधा। सूर० १०/२००७/५३

उपाधा भू०कृ०।

उपाधा पुं० उपद्रव।

उ०—क्रीड़त करत उपाधा। सूर० १०/१८५६/२५

उपाध्याय पुं० [स्त्री० उपाध्यायी—उपाध्यायानी] १. शिक्षक। गुरु। २. ब्राह्मणों की एक पदवी। ३. वेद-वेदाङ्ग का जानने वाला या पढ़ाने वाला।

—आ स्त्री० अध्यापिका।

—आनी स्त्री० गुरु-पत्नी।

उपानह—उपानत पुं० जूता। खड़ाऊँ।

उपाम (उपम) वि० समान।

उ०—सुन्दर मुरली अधर उपाम। सूर० १०/१८२५/१८

उपामा स्त्री० उपमा।

उ०—रासि सहस-बीस द्वादस उपामा। सूर० १०/१०४०/४६०

उपाय—उपाव पुं० १. प्रयत्न। २. युक्ति।

उ०—यों भयो बीन औगुन उपाय। बो० ५/१३२

—क वि० उपाय करने वाला।

उपायन (उप+आयन) पुं० उपहार। भेंट। सौगात।

उपार— सक० उखाड़ना।

उ०—जारि डारौं लंकहि उपारि डारौं उपवन। प० ६८३/२२३

उपारत व०कृ०। उपारा, उपारो भू०कृ०।

उपार्जन (उप+अर्जन) पुं० पैदा करने या अर्जन करने की क्रिया ।

उपार्जित (उप+अर्जित) वि० अर्जित किया हुआ ।

उपालंभ (उप+आलंभ) पुं० उलाहना । ताना ।

—न पुं० उलाहना ।

उपास[1]—उपासि (उप+वास) पुं० दे० 'उपवास' ।

—इ वि० व्रती । उपवास करने वाला ।

उपास[2] (उपास्य) वि० आराध्य ।

उ०—तीसरे उपास बनवास सिंधुपास सों । कवि० ३२/२४

—इक वि० उपासना करने वाला ।

—इनि वि० १. उपासना करने वाली । २. पास बैठने वाली ।

—क वि० उपासना करने वाला ।

उ०—अरु जे आहिं उपासक तिनहिं अभेद बतायौ । नं० ७८/३६

—न स्त्री० १. आराधना । पूजा ।

उ०—आन प्रसंग-उपासन छाँड़े । सूर० २/११/६८

२. पास बैठने की क्रिया । ३. व्रत ।

—ना स्त्री० पूजा ।

उ०—करम, उपासना, कुबासना बिनास्यो । कवि० ८४/६२

उपास[3]— सक० पूजा करना ।

उ०—मूरति धरे उपासत तिते । नं० १३/२३२

उपास्य वि० जिसकी आराधना की जाए ।

उपाहन वि० नंगे पैर । बिना जूते के ।

उ०—दौरिहैं उपाहने पगन तरवारि पर । भू० ४८५/२२४

उपेक्षा स्त्री० १. घृणा । २. तिरस्कार । ३. विरक्ति । उदासीनता । ४. लापरवाही ।

उपेच्छा—मपेछा स्त्री० दे० 'उपेक्षा' ।

उ०—साम दान भनि भेद पुनि, प्रनति उपेच्छा मानि । के० I, २/५६

उपेत पुं० १. एकत्रित । २. प्राप्त । ३. युक्त ।

उ०—उठी पति निवास हू तें दीपति उपेत है । घ० २७/८२/६

उपेन्द्र (उप+इन्द्र) पुं० १. इन्द्र के लघु भ्राता का नाम । २. श्रीकृष्ण ।

उपेन्द्रवज्रा स्त्री० ग्यारह वर्णों का एक छन्द, जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं ।

उपैना वि० (स्त्री० उपैनी) अनावृत । नग्न ।

उ०—धरि करि कोप उपैनी । सूर० ६/११/१५७

उपोद्घात पुं० १. प्राक्कथन । भूमिका । प्रस्तावना । २. नव्य न्याय की छः सङ्गतियों में से एक ।

उपोषण पुं० उपवास । निराहार ।

उप्पम स्त्री० एक प्रकार की कपास ।

वि० अनुपम ।

उ०—बिभूषन उप्पम अंगनि पाइ । कवि० १/७

उफन—उफड़— अक० उबलना । ऊपर को उठना । उबाल का आना ।

उ०—अभिलाषनि पूरति ह्वै उफन्यो मन तें मन-मोहन पायहौ जू । घ० क० २०४/१५१

उफनत व०कृ० । उफन्यौ भू०कृ० ।

उपेय वि० उपाय करने योग्य । उपायसिद्ध ।

उपै[1]— अक० लोप होना । विलीन होना ।

उ०—देखत बुरै कपूर ज्यों उपै जाइ जिन लाल । बि० ८६/४२

उपै[2]— सक० उत्पन्न करना ।

उ०—पिता देखि ब्याकुल मनमोहन, तब इक बुद्धि उपैया । सूर० १०/८७५/४४६

उफना— अक० १. फेन सहित ऊपर उठना ।

उ०—चूल्हे चढ़े छांड़े उफनात दूध मांड़े । दे० I, ७६/१६

२. हड़बड़ी करना । ३. उमड़ना ।

उ०—गहै गौन छिन में बधू, छिन दृग जल उफनाइ । कृ० ३८६/८२

सक० उबालना ।

उफनात व०कृ० । उफनी भू०कृ० ।

उफला पुं० एक बाजा । वाद्य-विशेष ।

उफान पुं० उफनने या उबलने की क्रिया या भाव । उबाल ।

उफाल स्त्री० १. लम्बी डग ।

उ०—जलजाल कालकराल-माल उफाल पार धरा धरी । के० II, ४५/३४५

२. उछल-कूद । फुदकन ।

३. लम्बा डंडा ।

उफास पुं० १. उफान । २. लम्बा डग ।

उफिन— अक० उमड़ना ।

उ०—त्यों त्यों तिय की देह में नेह उठत उफिनाइ । म० ६२७/४२०

दे० 'उफन' ।

उब[1] पुं० दे० 'ऊब' ।

उब[2]— अक० १. ऊबना । घबराना । २. उगना । ३. उछलना ।

उबक— अक० कै करना।

उबका पुं० डोरी या रस्सी के एक छोर का फंदा जिसमें कलसे या लोटे को फँसाकर कुएँ से जल निकाला जाता है। फाँसा।

उबकाई स्त्री० मतली। कै। वमन।

उबछ— सक० १. पछाड़ कर धोना।
२. सिंचाई के लिए पानी खींचना।
३. उद्धार करना।

उबट[1] पुं० ऊँचा-नीचा मार्ग।
वि० ऊबड़-खाबड़।

उबट[2]— अक० उबटन मलना या लगाना।
उ०—कुंकुम उबटि कुमकुमा के न्हवाइ जल।
के० I, ३/७६

उबट—~उबठ— अक० चित्त से उतर जाना। उदासीन होना।
उ०—देखि कहा रहे धोखें परे उबटौगे जू।
के० I, ३६/१३
दे० 'उबीठ'।

—न पुं० शरीर की त्वचा के मैल को दूर करने के लिए शरीर पर किया जाने वाला लेप।
उ०—तन उबटन तेल लगाए।
सूर० १०/१८३/२६२

उबर[1] पुं० [स्त्री० उबरनि] बचाव। त्राण। रक्षा।

उबर[2]— अक० १. मुक्त होना। छुटकारा पाना।
२. बच रहना। बाकी बचना।
उबरत व०कृ०। उबरो, उबर्‍यो भू०कृ०।

उबर[3]— अक० दे० 'उबल'।

उबरा— अक० १. इतराना। इठलाना।
२. ऊबना। जी उचटना।
वि० बचा हुआ। अवशिष्ट।
—नी वि० ऊबी। उचटी।
उ०—घेर घबरानी ही रहति घनआनँद आरति-राती साधनि मरति है। घ० क० २६/५३

उबल— अक० १. उबाल आना। खौलना। उफान आना।
२. जोश में आना। उत्तेजित होना।
उबलति व०कृ०।

उबस— सक० बरतन माँजना।
अक० १. बासी हो जाने के कारण खराब होना। सड़ना। दुर्गन्धि का आना।
२. अधीर या चंचल होना।
३. थककर शिथिल होना।
—न पुं० नारियल आदि की जटा जिससे रगड़कर बरतन आदि माँजे जाते हैं। जूना।

उबसा— सक० १. उत्तेजित करना। २. बर्तन मँजवाना।
३. सड़ाना।

उबह— सक० १. हथियार उठाना। २. उलीचकर पानी बाहर निकालना। ३. खेत जोतना।
अक० ऊपर उठना। उभरना।
—न स्त्री० कुएँ से पानी निकालने की डोरी या रस्सी।

उबहना—~उबाना वि० बिना जूता पहने। नंगे पैर।

उबा— सक० १. बोना। २. रोपना। उगाना।
३. तङ्ग करना। परेशान करना।

उबाना पुं० कपड़ा बुनने में राछ के बाहर रह जाने वाला सूत।

उबार[1] पुं० उद्धार। छुटकारा। बचाव।
उ०—यासौं मेरी नहीं उबार।
सूर० १०/५८५/३६७
—न पुं० दे० 'उबार'।
उ०—संत उबारन, असुर सँहारन, दूरि करन दुख-दंदा। सूर० १०/१६२/२६५
—नहार बचाने वाला।

उबार[2]— सक० कष्ट या विपत्ति से उद्धार करना। संकट से छुड़ाना या मुक्त करना।
उ०—द्विज को दरिद्र मार्‍यो, संकरु उबार्‍यो।
दे० I, १४८/२८
उबारत व०कृ०।
उबारा, उबारो, उबार्‍यो, उबार्‍यौ भू०कृ०।

उबाल[1] पुं० १. उबलने की क्रिया। २. जोश। उत्तेजना। उफान। ३. क्षणिक आवेश, उद्वेग या क्षोभ।

उबाल[2]— सक० १. खौलाना। गर्म करना।
२. पकाना।

उबासी स्त्री० जँभाई।

उबाह— सक० दे० 'उबह[1]'।
उ०—है न मुसक्किल एक रती नरसिंह के सीस पै साँग उबाहिबो। बो० २६/२४

उबाहन वि० नङ्गे पैर।

उबीठ— अक० १. तबियत का ऊब उठना। रुचि न रह जाना।
उ०—जीवन उबीठे बीठे मीठे मीठे महबूब।
गं० ३०५/६२
२. उतर जाना।

उ०—देखत ही सब सुख तुमहीं उबीठिहै।
के० I, ७/६२

उबीठत व०कृ०। उबीठी, उबीठे भू०कृ०।

उबीध— अक० १. उलझना। फँसना।

उ०—उबीधी परजंक में निसंक अंक हितई।
दे० I, २२/३१८

२. गड़ना। धँसना।

सक० १. उलझाना। फँसाना।

२. गड़ाना। धँसाना।

उबीधी भू०कृ०।

उबेना~**उबैना** वि० नंगे पैर।

उ०—तब लौं उबैने पायँ फिरत।
कवि० १२५/७२

उबेर[1] पुं० १. अबेर। देर। २. उद्धार।

उबेर[2]— सक० १. उबारना। बचाना। मुक्त करना।

२. गाय को चराने ले जाना।

उ०—दिन बीसक तीसक तें यहि खोर ह्वै धेनु उबेरतु ही नहियाँ। ठा० ६८/१६

उबेरतु व०कृ०।

उबेह— सक० १. बिठाना। २. स्थापित करना।

उब्बी स्त्री० भूमि।

उ०—अरब्बी फिरैं बेस उब्बीन पै जे।
प० ३५/२८०

उभ— अक० १. हिचकिचाना। २. खड़ा रह जाना।

उ०—मुरली मोर-मनोहर-बानी, सुनि इकटक ज उभी। सूर० १०/१८७०/२७

उभी भू०कृ०।

उभ~**उभइ** वि० दे० 'उभय'।

उभक पुं० रीछ। भालू।

उभकौरी स्त्री० एक व्यंजन।

उ०—पानौरा राइता पकौरी। उभकौरी मुंगछी सुठि सौरी। सूर० १०/१२१३/५४६

उभट— अक० १. ऊपर उठना। उभरना।

२. अहंकार या गर्व करना। शेखी करना।

उभय वि० जिन दो के विषय में कुछ कहा जाए, वे दोनों।

उ०—उभय बूंद अंमृत तिन दीन्हा।
बो० ६२/१७६

उभर— अक० १. ऊपर उठना। ऊँचा होना।

२. प्रकट होना। ३. उगना। निकलना।

४. उभरना।

—आने वि० १. उभड़े हुए। २. उमड़े हुए।

३. इतराए हुए।

उभरत व०कृ०। उभरे, भू०कृ०।

—औंहाँ वि० उभरने की प्रवृत्ति रखने वाला।

उभा[1] स्त्री० चिन्ता।

उभा[2]— अक० किसी का प्रेत के शरीर में आने पर झूमना व सिर हिलाना।

उभात व०कृ०। उभानी भू०कृ०।

उभाड़[1] पुं० १. उभार। उठान। २. उकसाव।

३. वृद्धि।

उभाड़[2]— सक० १. उभारना।

२. उकसाना। उत्तेजित करना।

उभार[1]~**उभारु** पुं० १. उभरने अथवा बढ़ने की क्रिया या अवस्था।

२. ऊपर की ओर उभरा हुआ अंश। उठान।

उ०—उरजनि कर्‌यो उभारु अब उर जनि करै उधारु। भि० I, ३०/७

—दार वि० उभरा हुआ। उठा हुआ।

उभार[2]— सक० १. ऊपर उठाना। लाना। उभरने में प्रवृत्त करना।

२. भड़काना। उकसाना। उत्तेजित करना।

३. उत्साहित करना।

उभि पुं० हिचकिचाहट। आपत्ति।

उभिट— अक० १. ठिठकना। आश्चर्यान्वित होना।

२. हिचकना। संकोच करना।

३. भटकना।

उभै— वि० दे० 'उभय'।

उ०—चूमत ब्याल सरद कों जनु उभै अमीरस काजे। बो० १०/२६

उमंग~**उमँग**[1] स्त्री० १. उल्लास। आनन्द।

२. उत्साह। जोश। ३. उभार।

४. अरमान। आकांक्षा। ५. प्रवाह।

उ०—कज्जलकलित अँसुवानके उमंग संग दूनो होत रंग रोज जमुना के जल मैं।
भू० २७६/१८०

—ल वि० उमंगने वाला। झक्की।

उमँग[2]— अक० १. उमंगित होना। उल्लसित होना।

उ०—नाचति नटी सुलय गति उमँगत, सूर सुमन सुर बरषत। सूर० १०/१०७७/५०२

२. उमडना।

उमंगत व०कृ०।

उमंड[1] पुं० १. उमंग। उल्लास। उत्साह।

उ०—कहै पदमाकर अखंड राममंडल पै मंडित उमंड महा कालिंदी के तट पै।
प० ३८८/१६४

२. आवेश । जोश । उत्साह ।

३. वेग । तीव्रता । ४. घेरा । फैलाव ।

उमंड[२]— अक० १. उमड़ना ।

उ०—डंका के दिये तें दल डंबर उमंड्यो उडमंड्यो ।
भू० ५४३/२३८

२. जोश में आना ।

उ०—उमंडि करि तोरों भुजदंड ठोंकि लरिहौं ।
प० ८/२५५

उमंडत व०कृ० । उमंड्यो भू०कृ० ।

उमग[१] स्त्री० दे० 'उमंग' ।

उमग[२]— अक० दे० 'उमंग' ।

—न पु० उमगनि, दे० 'उमंग' ।

उमग[३]— अक० १. उमड़ना । उल्लसित होना ।

उ०—प्रेम-रतनाकर हियँ यों उमगत हैं ।
उ० ११/११

२. बहना ।

उ०—चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि लोग कहैं ।
भू० ३२५/१८८

३. सीमा या मर्यादा से बाहर होना ।

उ०—जो घट दीपक पूरि कै उमगौ नेह बनाइ ।
र० १२५/२८

उमगत, व०कृ० ।

उमग्यो, उमग्यौ भू०कृ० ।

उमगा— सक० उत्साहित करना । उमंग में लाना ।

उमग्ग पुं० दे० 'उमंग' ।

उ०—भूपति प्रताप जुट्टत उमग्ग । प० ८/२७८

उमच— अक० १ हुमकना । हुमसना ।

२. चौंकना । चकित होना ।

उ०—उमचि जाति तबहीं सब सकुचति, बहुरि मगन ह्वै जाति । सूर० १०/१६११/६३६

३. सजग होना । सावधान या सतर्क होना । चौकन्ना होना ।

उमचत व०कृ० । उमची भू०कृ० ।

उमठ— अक० दे० 'उमड़' ।

उमड़—**उमर** स्त्री० १. बाढ़ । २. धावा । घिराव ।

अक० १. बढ़कर फैलना या बह चलना ।

२. वेग से प्रवाहित होना ।

उ०—बढ़त नदीगन दान-जल उमड़त नद गज-दान ।
भू० १२१/१५१

३. छा जाना । ४. उमगना । जोश में आना ।

५. क्षुब्ध होना । आवेश में होना ।

उमड़त व०कृ० । उमड़ी भू०कृ० ।

उमड़ा— अक० दे० 'उमड़' ।

उ०—आवै उमड़ा सो मोह मेघ घुमड़ा ।
दे० I, १५/४०

सक० फैलाना । प्रवाहित करना ।

उ०—फैरिकै न देती यों अनीति उमड़ाई है ।
ग० १८३/३३०

उमण्ड[१] पुं० १. उमड़ । २. उत्साह । ३. वेग ।

उमण्ड[२]— अक० दे० 'उमड़' ।

उमत्त वि० दे० 'उन्मत्त' ।

उमद[१]—**उमद्द**— अक० १. उन्मत्त होना ।

२. उमंग में भरना ।

उमदत व०कृ० ।

उमदा[१] वि० दे० 'उम्दा' ।

उमदा[२] वि० मदमत्त । मतवाला ।

अक० उन्मत होना । झूमना । इठलाना ।

उ०—हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति ।
बि० १७६/७७

उमर स्त्री० दे० 'उम्र' ।

उमरती स्त्री० एक प्रकार का वाद्य-यन्त्र ।

उमराइ—**उमराउ** पुं० दे० 'उमराव' ।

उ०—भूपन भ्वैसिला छीनि लई जगती उमराउ अमीरनहू की ।
भू० ११०/१४६

उमराव (अ०) पुं० १. बड़ा सरदार ।

उ०—यों पहिले उमराव लरे रन जेर कियो जसवंत अजूबा ।
भू० ४६४/२१६

२. अमीर । रईस ।

उमराय पुं० दे० 'उमराव' ।

उमरि स्त्री० दे० 'उम्र' ।

—दराज पुं० दीर्घायु ।

उ०—उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ।
कवि० ७६/६०

उमस[१]—**उमसि** स्त्री० वर्षा ऋतु में हवा न चलने पर लगने वाली गर्मी ।

उमस[२]— अक० निकलना ।

उ०—और न कछू सुहात सखा सुनि सब तें रुचि उमसी है ।
भ्र० ३७/७४

उमह— अक० १. उमड़ना । उमगना ।

उ०—सेनापति कबि कहिबे कौं उमहत हैं ।
क० १४/५७

२. घिरना ।

३. उमंग में आना । तरंगित होना ।

उ०—जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बैनी ।
प० १३/८१

४. प्रसन्न या उल्लसित होना ।

उ०—हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं ।
प० ६/८०

उमहत व०कृ० । उमही, उमह्यौ भू०कृ० ।

—इयाँ वि० उत्साहित । उमङ्गित ।

—नी वि० उमड़नेवाली ।

उमहा— अक० उमड़ना ।

उमा स्त्री० पार्वती । गौरी ।

उ०—उमा जाइ सिव कौं सिर नाइ ।
सूर० १/२२६/६१

—कांत पुं० उमा के पति, शिव ।

—गुरु पुं० हिमाचल ।

—जनक पुं० हिमाचल ।

—धव पुं० शिव ।

उ०—बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं ।
क० ३८/१२

—नाथ पुं० शिव ।

—पति पुं० शिव । शंकर ।

—सुत पुं० कार्त्तिकेय । गणेश ।

उमाक— सक० १. खोदना । उखाड़ना ।
२. नष्ट करना ।

—ई वि० (स्त्री० उमाकिनी) उखाड़ने या खोदने वाला ।

उमाच— सक० १. ऊपर उठाना । २. उभारना ।
३. निकालना । ४. हुमचना । प्रसन्न होना ।

उ०—बाचै प्रेम पद्धति, उमाचै न उमंग, अंग आंचे सी-अनंग-सर सूल परि रही है ।
दे० I, ७८/६०

उमाद पुं० दे० 'उन्माद' ।

उमाह**—उमाहन** पुं० १. उत्साह ।

उ०—चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत ।
घ० क० २०२/१५०

२. उमंग । उल्लास ।

उ०—कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ।
घ० क० १८/४८

अक० १. उमंगित होना । उत्साहित होना ।

उ०—चातिक उमाहै घनआनँद अचौन को ।
घ० क० २००/१४६

२. उमड़ना ।

सक० निकालना । स्रवित करना ।

उ०—तो यों इत रोवति कहा है, कहौं कौन आगैं मेरेई जु आगैं किये आसुन उमाहे कौं ।
प० ६४/६२

उमाहत व०कृ० । उमाही भू०कृ० ।

—इ क्रि०वि० उमंगित होकर ।

उ०—हरि सनमुख आवति उमाहि, उज्जल गोधन-नार ।
नं० १६/२४६

उमाहल वि० १. उमंगित । उमंग से भरा हुआ ।

उ०—जहँ-तहँ ग्वाल फिरत उमँगे सब, अति आनन्द उमाहल ।
सूर० १०/८२६/५४७

२. उत्साहपूर्ण ।

उमिरि स्त्री० दे० 'उम्र' ।

उ०—त्यो मैं उमिरि दराज राज राउरी चहत हैं ।
प० ६/८०

उमेठ—उमेड़— सक० मरोड़ना । ऐंठना ।

उ०—भौंह उमेठत बितनु जनु चाप चढ़ावत आहि ।
नं० ७०/७३

उमेठत व०कृ० । उमेठ्यौ भू०कृ० ।

—ई वि० १. मरोड़ी हुई । ऐंठी हुई । २. अप्रसन्न ।

—न स्त्री० ऐंठन ।

उमेड़—उमेर— सक० दे० 'उमेठ' ।

उमेद स्त्री० दे० 'उम्मीद' ।

उ०—इक सेज बैठि उमगे उमेद । लागे बतान ते नाद भेद ।
बो० २/१२०

—वार पुं० दे० 'उम्मीदवार' ।

—वारी स्त्री० उम्मीदवारी ।

उमेल— सक० १ खोलना । २. प्रकट करना ।
३. वर्णन करना ।

उमेश पुं० शिव ।

उमेह स्त्री० उमंग । उत्साह । उमड़न ।

—ए वि० उमड़े हुए ।

उमैठ पुं० १. ऐंठ । मरोड़ । २. अकड़ ।

सक० दे० 'उमेठ' ।

उ०—मुच्छा उमैठत उमड़ि ऐंठत कठिन कर-कुहूँ-चान कौं ।
प० ११३/१६

उमैठत व०कृ० । उमैठ्यौ भू०कृ० ।

उम्दगी (अ०) स्त्री० अच्छाई । खूबी ।

उम्दा (अ०) वि० उत्तम । सुन्दर । श्रेष्ठ ।

उम्मग्गि पुं० उमंग । उत्साह ।

उ०—करैं रूम के अस्व उम्मग्गि ऐसी ।
मि० II, ३८/८०

उम्मट पुं० एक प्राचीन देश का नाम ।

उम्मि स्त्री० दे० 'ऊर्मि' ।

उम्मी स्त्री० गेहूँ आदि के हरे दानों की भुनी बाली ।

उम्मीद (फा०) स्त्री० १. आशा । २. भरोसा ।

—वार वि० आशा रखने वाला । अपेक्षा रखने वाला ।

पुं० १. नौकरी की आशा से बिना वेतन काम करने वाला । २. काम सीखने वाला ।

उम्मेद—उमेद स्त्री० दे० 'उम्मीद' ।
उ०—इक सेज बैठि उमगे उमेद । बो०२/१२०
—वार पुं० दे० 'उम्मीदवार' ।

उम्र (अ०) स्त्री० अवस्था । उमर । वयस । आयु ।

उय— अक० उगना । उदित होना । दे० 'उव' ।
उ०—उयौ रहत अब रैनि-दिन तपन तपावत अंग ।
म० ३४४/३६७
उयो, उयौ भू०कृ० ।

उयब— अक० जँभाई लेना ।
उ०—उतनी कहत कुँवरि उयबानी ।
नं० ५०१/१२३
उयबानी भू०कृ० ।

उरंग पुं० १. साँप । २. नाग केसर ।
—म पुं० साँप ।

उर पुं० १. वक्षःस्थल । छाती ।
उ०—गिरि गयौ विप्र उर सूल धारि ।
बो० ११/८२
२. मन । हृदय । चित्त ।
—छत पुं० छाती पर नाखून की खरोंच । रति-चिह्न ।
उ०—माला कहाँ मिली बिनु गुन की, उरछत देखि भई बेहाल । सूर० १०/२४८५/१४७
—ज पुं० उरोज । स्तन ।
उ०—पाषानहु तें कठिन ये तेरे उरज सुजान ।
प० १८२/४५
—जात पुं० स्तन । कुच ।
—मंडन पं० हृदय का भूषण, प्रिय ।
उ०—गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं, धारि घनआनंद यों सुखनि समेटि हौं ।
घ० ९६/३०७/५

उरई स्त्री० खस । उशीर।

उरक— अक० ठहरना । रुकना ।
उ०—आई उरपै उरकि जाइ । दे० I, ६७/१४

उरख अक० प्रतीक्षा करना ।

उरग पुं० [स्त्री० उरगी, उरगिनी] साँप । नाग ।
—अरि पुं० १. सर्पों का शत्रु, गरुड़ । २. मोर।
उ०—ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं ।
कवि० १०२/६६
—आद पुं० गरुड़ ।
—इन्द्र पुं० सर्पराज । वासुकि ।
उ०—उरग-इन्द्र उनमान सुभग भुज ।
सूर० वि० ६६/१६
—घरनी स्त्री० सर्प-पत्नी । नागिन । सर्पिणी ।
उ०—कंस की मारिहौं घरनि निरवारिहौं, अमर उद्धारिहौं उरग-घरनी ।
सूर० १०/५५१/३५६
—धरती स्त्री० नागलोक ।
—नाथ पुं० शेषनाग ।
उ०—अजौं उरगनाथजू, रहत सीस पृथ्वी धरे ।
भि० I, ६७/२५७
—पुर पुं० नागलोक । पाताल ।
उ०—हरिहर बिरंचिपुर उरगपुर सुरपुर लै कह आज अब । प० ६१६/२०८
—भूषण पुं० साँप जिनका आभूषण है, शिव ।
—राज पुं० वासुकी । शेषनाग ।
—लता स्त्री० नागवल्ली । पान ।
—शत्रु पुं० १. गरुड़ । २. मोर ।
—स्थान पं० पाताल ।

उरग[२]— सक० १. झेलना । अंगीकार करना । स्वीकार करना । ग्रहण करना ।
२. सहन करना ।
उ०—उरग्यौ सुरग्यौ त्रिवली की गली गहि नाभि की सुंदरता सैंधिगौ । ठा० २८/६६
३. मुक्त होना । ऋण से उऋण होना ।
उरग्यौ भू०कृ० ।

उरगा— सक० ऋण से मुक्त करना ।

उरगाय पुं० १. विष्णु । २. सूर्य । ३. स्तुति । प्रशंसा ।
वि० १. जिसका गान किया जाय ।
२. प्रशंसित । ३. फैला हुआ । विस्तृत ।

उरग्र स्त्री० भेड़ी । भेड़ ।

उरज—उरजात पुं० स्तन ।
—थली स्त्री० वक्षस्थल ।
उ०—जानिबे जोग सुजानन के उर जात थली उर-जातनि घेरे । भि० I, १२४/११६

उरझ—उरज्झ— अक० दे० 'उलझ' ।
उ०—उरझत उरग चपत चरननि फन ।
के० I, ३२/४४
उरझत व०कृ० ।
उरझ्यो, उरझ्यौ भू०कृ० ।

उरझा— सक० दे० 'उलझा' ।
उ०—पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैं ।
उ० २३/२३

उरझात व०कृ० ।

उरझो, उरझ्यों, उरझ्यौ, उरझायौ भू०कृ० ।

—न पुं० [स्त्री० उरझानि] १. उलझन । फँसाव । २. आसक्ति ।

—री वि० उलझी हुई ।

—वर पुं० १. उलझन । २. फंदा ।

उरझाखर पुं० बेहड़ । झाड़-झंकार ।

उरझेंडा—उरझेरा पुं० १. उलझाव । २. झकोरा ।

उरझोहा वि० उलझाने वाला । फँसाने वाला ।

उरण पुं० [स्त्री० उरणी] १. मेष । मेढ़ा । २. एक असुर । ३. एक ग्रह । बारुणी ।

उरद पुं० [स्त्री० उरदी] एक अनाज । उड़द । माष ।

उ०—मूंग मसूर उरद चन दारी ।
सूर० १०/३६६/३१७

उरध अव्य० ऊर्ध्व । ऊपर ।

उ०—कैसे ये बचैं नाथ साँस उरध डारे ।
सूर० १०/३०६५/२६७

उरधार[1]— (उर+धार) सक० हृदय में धारण करना ।

उ०—अचिरज माँझ अद्भुत उरधारे मैं ।
दे० I, २४/२५०

उरधारत व०कृ० । उरधारी भू०कृ० ।

उरधार[2]— सक० बिखेरना । उधेड़ना ।

उरन[1] पुं० दे० 'उरण' ।

उरन[2] —ई वि० उऋण । ऋणमुक्त ।

उरप-तिरप पुं० नृत्य-कला में अंग-संचालन का एक प्रकार ।

उ०—उरप-तिरप लाग-डाट तत-तत-तत-थेई-तथेई-थेई ।
च० ३६/१६

उरबसि—उरबसी[1] स्त्री० एक प्रकार का गले का आभूषण ।

वि० वह जो हृदय में निवास करती हो।

उ०—तू मोहन कैं उरबसी ह्वै उरबसी समान ।
बि० २५/१६

उरबसी[2] स्त्री० एक दे० 'उर्वशी' ।

उ०—तु ही उर-बसी उरबसी राजत रूप-निधान ।
प० ३५/३६

उरबी—उरवी स्त्री० दे० 'उर्वी' ।

उरबंधान स्त्री० अंगिया । चोली ।

उरम — अक० लटकना ।

उ०—तहँ कलसनि पर उरमति सुढार ।
के० II, ३६/२५८

सक० डाल देना । लटका देना ।

उ०—कंठ दुकूल सु ओर दुहूँ दिसि यों उरमै बल कैं बलदाई ।
के० I, ३७/११६

उरमति व०कृ० । उरमाई, उरमै भू०कृ० ।

उरमाल पुं० १. रूमाल ।

उरमिला स्त्री० दे० 'उर्मिला' ।

उरमी स्त्री० दे० 'ऊर्मि' ।

उ०—पानिप-सरोवरी की उरमी उतंग है ।
भि० I, ५१/१०१

उरर— सक० १. जोर से बुलाना । पुकारना । २. उलझना ।

उ०—एकनि के पैंठे उर उररि उरोजन में ।
के० I, १६/७२

अक० १. हृदय में धँसना या घुसना । २. चाव से आगे बढ़ना ।

—इ पुं० स्वीकारोक्ति । स्वीकृति ।

—ईकृत पुं० स्वीकृत । अङ्गीकृत ।

उरला[1] वि० १. इस ओर का । इधर का । 'परला' का विपर्याय । २. पीछे का । पिछला ।

उरला[2] वि० अनोखा । अद्भुत । विरल ।

उरवरी वि० उपजाऊ ।

उरविज पुं० १. धरतीपुत्र । २. मंगलग्रह ।

—आ स्त्री० धरतीपुत्री । सीता ।

उरस—उरसि[1] वि० जिसमें रस न हो । नीरस । बिना रस का ।

पुं० १. वक्षस्थल । छाती ।

उ०—चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे ।
गो० ६२/२८

२. हृदय । चित्त ।

—ज पुं० उरोज । स्तन ।

उरस[2]— सक० उठाना-गिराना । ऊपर-नीचे करना । उथल पुथल करना ।

उ०—आतुर ह्वै परसत कुच प्यारी उरसति उत ।
छी० १४६/६४

उरसत, उरसति व०कृ० ।

उरस्त्रा पुं० कवच । बख्तर ।

उरह[1] पुं० वक्षस्थल । छाती । हृदय ।

उ०—पाग लटपटी बनी, उरह छूटी तनी ।
सूर० १०/२७३०/१६५

—इ—ई पुं० १. हृदय । २. हँसुली ।

उरह¹— सक० छाती में मारना ।

उरहन—उरहना पुं० उलाहना । ताना ।

उ०—देत उरहनो चूक लखि, लखे केलि हित धारि । कृ० ४३/१३

उरा¹ स्त्री० दे० 'उर्वी' ।

उरा²— अक० चुकना । समाप्त होना ।

उ०—भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं । उ० २३/२३

उरा³— सक० उड़ाना ।

उरात व०कृ० ।

उरारा¹ वि० प्रशस्त । विस्तृत । फैला हुआ ।

उ०—दृग-कोरनि उरारे कजरारे बुंद ढरकनि । दे० I, ६५६/१५८

उराव—उराय—उराउ (उरस्+आव) पुं० चाव । उमङ्ग । उत्साह ।

उ०—तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि । कवि० १५/४५

उराह— सक० उलाहना देना । ताना देना ।

उ०—सब व्रज-नारि उराहन आईं, व्रजरानी के आगे । सा० ४४४/३६

—ना—ने पुं० उलाहना । ताना ।

उ०—अधर उराहने सु दैवै काज फरके । प० १६१/११३

उरिन—उरिण वि० १. ऋण-मुक्त । २. उद्धार ।

उ०—कैसैंहू करि उरिन कीजै । सूर० १०/३४३१/३७३

उरु—उरू वि० १. लम्बा-चौड़ा । विस्तीर्ण । २. विशाल । बड़ा । ३. श्रेष्ठ । महान् । ४. मूल्यवान ।

पुं० जांघ । जंघा ।

उ०—गुरु नितंब उरु है गदकारी । बो० ३८/१०३

—क्रम वि० १. लम्बे डग भरने वाला । २. बलवान । पराक्रमी ।

पुं० १. विष्णु का वामनावतार । २. सूर्य । ३. शिव । ४. लम्बा डग ।

—ग पुं० [स्त्री० उरुगिनी] दे० 'उरग' ।

उ०—यौं ऐंचति पग मग धरति उरझे उरुग अधीर । र० ३६३/७८

—गाय वि० १. गेय । गाये जाने योग्य । २. प्रशंसित । जिसकी प्रशंसा हुई हो । ३. प्रशस्त ।

पुं० १. विष्णु । २. सूर्य । ३. इन्द्र । ४. सोम । ५. स्तुति ।

—ज पुं० परम ब्रह्म की जंघा से उत्पन्न तीसरे वर्ण का व्यक्ति । वैश्य । वणिक ।

उरुज— अक० उलझना । फँसना ।

उरुजत व०कृ० । उरुज्यो, उरुज्यौ भू०कृ० ।

उरुवा पुं० उल्लू की जाति का एक पक्षी जिसे उरुआ कहते हैं ।

उरुस— अक० रूठना । मान करना ।

उरुसत व०कृ० ।

उरे—उरें अव्य० १. इधर । इस तरफ । २. समीप । निकट । ३. दूर । परे ।

उ०—उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै । घ० क० ३८५/२२६

—धों इधर ।

उरेख—उरेष— सक० १. देखना । ताकना ।

उ०—आयी तहाँ मतिराम सुजान मनोभव सों बढ़ि कांति उरेखी । म० ७४/२१६

२. चित्रित करना ।

उ०—अंबुद मेचक अंग उरेखे । म० २७६/२६४

उरेझा पुं० उलझन ।

उ०—परे जहाँ तहँ मुरझि भूप सब उरझि उरेझा । नं० ११४/१८३

उरेर स्त्री० लहर । झकोर ।

उरेव स्त्री० वंचना । उलझाव ।

उरेह¹— पुं० आलेखन । चित्रकारी । नक्काशी ।

उरेह²— सक० १. रचना । बनाना । लिखना । २. रंगना । ३. लगाना ।

उरेड़—उरैंड़— सक० दे० 'उड़ेल' ।

उरै क्रि०वि० उधर । परे । आगे ।

उरैंड़ स्त्री० प्रवाह । धारा ।

उ०—प्रेम की उरैंड़ कुलकानि मैंड़ तोरी है । घनानंद

—घों क्रि०वि० समीप । निकट ।

उ०—छगन-मगन बारे, कन्हैया । नैंकु उरैंघों आइ रे । नं० ३६/२९२

उरोज पुं० स्तन । पयोधर । कुच ।

उ०—लहि उरोज के अंकुरनि सौतिन कियहु ससंक । प० १३८/४६

—वती स्त्री० उन्नत । पयोधरा ।

उरोल स्त्री० छाती ।

उ०—जबहिं झंपत तबहिं कंपति, बिहँसि लगति उरोल । सूर० १०/२९२१/२६५

उर्ग पुं० दे० 'उरग' ।

उर्जस्वी पुं० एक काव्यालंकार जो ऐसे स्थलों पर आता है जहाँ रसाभास या भावाभास स्थायी भाव का अंग हो।
उ०—सूक्षम, लेस, निदर्सना, उर्जस्वी पुनि जान। के० I, २/१४८

उर्जस्वल वि० बली। बलवान।

उर्जित वि० उन्नत। वर्द्धित।

उर्ण पुं० ऊन।

उर्णनाभि पुं० दे० 'मकड़ा'।
उ०—लूता, सुता, मर्कटी, उर्णनाभि, पुनि होइ। नं० १८३/८४

उर्द पुं० दे० 'उरद'।

उर्दू[1] पुं० लश्कर। छावनी।

उर्दू[2] स्त्री० फारसी लिपि में लिखी जाने वाली अरबी-फारसी शब्दों से युक्त हिन्दी।

उर्द्ध—उर्ध वि० दे० 'ऊर्ध्व'।
उ०—उर्द्ध अधर जलधर मैं कर्‌यौ। नं० १२/२२७
—**मुख** वि० दे० 'ऊर्ध्व'।

उर्बसी—उरबसी स्त्री० दे० 'उर्वशी'।
उ०—मंदाकांता, करउ जिन है, उर्बसी मेनका कों। भि० ७३/२५८

उर्मि स्त्री० दे० 'ऊर्मि'।
—**त** वि० उमगे हुए। लहराते हुए।

उर्मिला स्त्री० लक्ष्मण जी की पत्नी।

उर्वर वि० उपजाऊ।
—**आ** स्त्री० १. उर्वर भूमि। २. पृथ्वी। ३. एक अप्सरा।
—**ता** स्त्री० १. उपजाऊपन। २. अधिक उर्वर होना।

उर्वशी—उरवसी स्त्री० स्वर्ग की एक दिव्य अप्सरा जो शापवश भूलोक में कुछ दिन पुरूरवा की पत्नी बनकर रही।
—**तीर्थ** पुं० महाभारत में वर्णित एक तीर्थ स्थान।
—**वल्लभ** पुं० पुरूरवा।
—**रमण** पुं० पुरूरवा।

उर्वारु पुं० १. खरबूजा। २. ककड़ी।
—**क** पुं० १. दे० 'उर्वारु'। २. कद्‌दू। काशीफल।

उर्वी स्त्री० पृथ्वी। भूमि।
उ०—उर्वी, जगती, बसुमती, बसुधा सर्व सहाइ। नं० १५१/८१
—**जा** स्त्री० सीता। जानकी।
—**धर** पुं० १. शेषनाग। २. पर्वत।

उलंक वि० दे० 'उलंग'।
उ०—कबि ठाकुर फाटी उलंक की चादर देउँ कहाँ कहँ लौं थिगरी। ठा० ८६/२३

उलंग[1] वि० नग्न।

उलंग[2]— सक० दे० 'उलंघ'।

उलंघ— सक० १. फाँदना। लाँघना।
उ०—जाय दरीन दुरो दरियौ तजिकै उलंघो लघुता सों। भू० १६१/१५६
२. उल्लंघन या अवहेलना करना।
उलंघत व०कृ०। उलंघ्यौ भू०कृ०।

उलक— सक० उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करना।
उ०—कुंज-भवन के द्वारें उलकति भीतरि जाति नहिं भाँति लैसी री। कुं० २६०/६६

उलका पुं० दे० 'उल्का'।
उ०—असनि, कुलिश, निर्घात, पवि, अलका सी तैं नाहिं। नं० २०६/८७

उलग— अक० कूदना। फाँदना।

उलगट स्त्री० कूद-फाँद।

उलगा— सक० कुदाना। फंदाना।

उलच— सक० दे० 'उलीच'।

उलछ— सक० १. दे० 'उलीच'।
२. छितराना। बिखराना।
अक० उछलना।

उलछा पुं० हाथ से छितराकर बीज बोने का एक तरीका। छींटा। पबेरा।

उलछार— सक० १. उछालना। फेंकना।
उ०—आयां सु अग्र उदग्र बरछी विदित कर उलछारि कै। प० १३५/१६
२. प्रकट करना। ३. आरोप लगाना।
४. निन्दा या बुराई करना।

उलझ— अक० १. फँसना। अटकना।
२. लिपटना। गुँथना।
३. लिप्त होना। लीन होना।
४. प्रेम करना। आसक्त होना।
५. विवाद करना। लड़ना-झगड़ना।
६. कठिनाई में पड़ना।
उलझत व०कृ०। उलझ्यौ भू०कृ०।

उलझन स्त्री० १. अटकाव। फँसाव। २. बाधा।
३. कठिनाई। समस्या।
४. व्यग्रता। चिन्ता।

उलझा पुं० दे० 'उलझन'।

उलझा—उलझार— सक० १. फँसाना। अटकाना।

२. लिप्त रखना । ३. उलटना । हटाना ।
उ०—मृदु मुसकाइ गुड़ाइ भुज घन घूँघट उलझारि ।
प० ३६५/१६६
—व पुं० १. दे० 'उलझन' । २. बखेड़ा । झंझट ।
३. चक्कर । फेर ।
उलझेड़ा—उलझेठा पुं० दे० 'उलझन' ।
उलझौंहाँ वि० १. अटकाने या फँसाने वाला ।
२. लुभाने वाला । मुग्ध करने वाला ।
उलट— अक० १. पलटना । २. लौटना । मुड़ना ।
३. उमड़ना । टूट पड़ना ।
४. अस्त-व्यस्त होना ।
५. विपरीत या विरुद्ध होना ।
६. क्रुद्ध होना ।
७. नष्ट होना । ध्वस्त होना ।
उलटत व०कृ० । उलट्यौ भू०कृ० ।
उ०—उलटि पिया पैं जाऊँ, नूतन चोप बढ़ाऊँ, सोरह कला कौ ससि कुहु तिगसाऊँ ।
सूर० १०/२८०६/२१०
—इ क्रि०वि० उलटकर । मुड़कर ।
—पलट—पुलट पुं० १. हेर-फेर । परिवर्तन ।
२. अस्त-व्यस्त । अव्यवस्था ।
—फेर पुं० परिवर्तन । हेर-फर ।
उलटकंबल पुं० एक पौधा या झाड़ी जिसकी छाल रस्सी और दवा बनाने के काम आती है ।
उलटकटेरी स्त्री० ऊँट-कटारा या ऊँटकटाई नामक पौधा ।
उलट-बाँसी स्त्री० साहित्य में ऐसी उक्ति जिसमें किसी बात को सीधे न कहकर उलटकर या घुमा-फिराकर कहा जाय । व्यंजना ।
उलटा[1] वि० (स्त्री० उलटी) १. औंधा ।
२. इधर का उधर । क्रम-विरुद्ध ।
३. काल, संख्या आदि के विचार से विपरीत क्रम ।
४. आसमान । ५. बायाँ ।
उलटाव— सक० १. लौटाना । फिराना ।
२. नीचे का ऊपर कर देना । उलट देना ।
३. और का और करना या कहना । अन्यथा करना या कहना ।
उ०—गोकुल की ये कुलटा ये यों हीं उलटावति हैं ।
के० I, ८/६
—पलटा—पुलटा वि० इधर का उधर ।
—पलटी—पुलटी वि० उलटा-पलटा ।
—सुलटा वि० उलटा-सीधा । क्रम-रहित ।

उलटा[2] पुं० एक विशेष खाद्य-पदार्थ ।
उलटी स्त्री० १. वमन । कै ।
२. मालखंभ की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी बीच में उलट जाता है ।
उलटौ वि० दे० 'उलटा' ।
उ०—हम उनके सिर छाँड्यो धाम । उनि कीनो सब उलटौ काम ।
के० III, ६/५८६
उलठ— सक० दे० 'उलट' ।
उलठ-पलठ पुं० दे० 'उलट-पलट' ।
उलठा— सक० दे० 'उलटा' ।
उलथ— सक० १. उलटना ।
उ०—एकैं रिपुन के जुत्थ-जुत्थ करे उलथि बिन अत्थ के ।
प० १३८/२०
२. लहराना । ३. मथना ।
उलथा[1] पुं० १. नृत्य-विशेष ।
उ०—उलथा टेकी, आलम, स-दिंड ।
के० II, ५/३७७
२. कलाबाजी । ३. करवट ।
उलथा[2]— सक० दे० 'उलट' ।
उलथा[3] पुं० अनुवाद ।
उलथो पुं० दे० 'उलथा[3]' ।
उ०—वही बात सिगरी कहैं, उलथो होत यकंक ।
भि० II, ६/४
उलद[1] स्त्री० झड़ी । बौछार ।
उलद[2]— सक० १. उड़ेलना । गिराना ।
उ०—मद्दन बिहद्दू नद्द विंध्य से उलद्दत हैं ।
गं० ३७३/११५
२. बरसाना ।
उलद[3]— सक० लादना ।
उलदत व०कृ० ।
उलप पुं० १. कोमल घास का एक प्रकार ।
२. विस्तीर्ण लता ।
वि० रुद्र ।
उलफत (अ०) स्त्री० प्रेम । प्रीति । मुहब्बत ।
उलम— अक० लटकना । झुकना ।
उलर[1]— अक० १. कूदना । उछलना ।
२. नीचे-ऊपर होना ।
उ०—ये रागहु बस करति है उलरि ऐन तिय नैन ।
र० २३६/४६
३. झपटना । ४. झुकना ।
उलर[2]— अक० सो जाना । पड़ जाना । लेटना ।
उलरुआ पुं० बैलगाड़ी को उलरने से रोकने के लिए पीछे की ओर लगाई जाने वाली लकड़ी ।

उलल— अक० १. ढरकना । ढलना ।
२. उलट-पलट होना । इधर-उधर होना ।
सक० उलट-पलट करना ।
उलवा पुं० दे० 'उल्लू' ।
उलवी स्त्री० एक प्रकार की मछली ।
उलस— अक० १. शोभित होना ।
२. उल्लसित होना । प्रसन्न होना ।
उलह— अक० १. उभड़ना । प्रस्फुटित होना । निकलना ।
उ०—डारन में जु करील की उलहत इकौ न पात ।
प० २३०/६१
२. उमड़ना ।
३. उमंगित होना । हुलसना । उल्लसित होना ।
उ०—ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा ।
घ० क० ३३६/२११
उलहत व०कृ० । उलह्यौ भू०कृ० ।
उलहना पुं० दे० 'उलाहना' ।
उलहा— सक० उल्लासित करना ।
अक० उल्लासित होना । उमगना ।
उलहित वि० उत्साहित । उमङ्गित ।
उलाँक पुं० १. डाक ।
२. संदेशवाहक ।
३. एक प्रकार की छतदार या पटी हुई नाव ।
उलाँघ— सक० १. लाँघना । फाँदना ।
२. अवज्ञा या उल्लंघन करना ।
३. पहले-पहल घोड़े पर चढ़ना ।
उला स्त्री० भेड़ का बच्चा । मेमना ।
उलाक स्त्री० ऊँचाई ।
उ०—उरज-उलाकनिहूँ आगम जनायो आनि ।
भि० I, २८/६
उलाट— सक० दे० 'उलट' ।
उलार[१] वि० जो पीछे की ओर अधिक बोझ होने के कारण झुका हो ।
उलार[२]— सक० १. उछालना । ऊपर की ओर फेंकना । गिरा देना । २. सुलाना ।
उलार[३] अक० दे० 'उलर[२]' ।
उलारा पुं० चौताल के अंत में गाया जाने वाला पद ।
उलास—उलहास पुं० दे० 'उल्लास' ।
उलाह[१] पुं० उल्लास । उमंग । उत्साह ।
उलाह[२]— सक० १. उलाहना देना । शिकायत करना ।
२. दोष देना । निन्दा करना ।
उलाहना पुं० उपालम्भ । ताना । शिकायत ।
उलाहित क्रि०वि० शीघ्र ।
उ०—देव दुहूँ करिकै मुख उलाहित ही उठि अंग अंगोछे ।
दे० I, ७७५/१७७
उलिंद पुं० १. शिव । २. एक देश का नाम ।
उलीच—उलिच— सक० फेंकना । उड़ेलना ।
उ०—दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछू गुपाल गुलाल उलीचैं ।
प० ६१/६८
उलुंबा स्त्री० हरी बाल वाले गेहूँ या जौ का भुना हुआ पौधा । उबी । ऊमी ।
उलुक पुं० उल्का ।
उ०—जाके घोर दुदुंभी घनाघननि घूमत हीं उजबक उलुक जवासे ज्यौं जरत हैं ।
के० III, ३२/६२१
उलुप—उलूप स्त्री० एक प्रकार की कोमल घास ।
उलू पुं० दे० 'उलूक' ।
उलूक[१] पुं० १. उल्लू । २. इंद्र ।
३. दुर्योधन का एक दूत ।
४. उत्तर भारत का एक प्राचीन देश ।
५. कणाद ऋषि का एक नाम ।
उलूक[२] पुं० आग की लौ । लपट । ज्वाला ।
उलूखल पुं० १. ओखली ।
उ०—माखन लागि उलूखल बाँध्यौ, सकल लोग ब्रज जोवैं ।
सूर० १०/३४७/३०२
२. खल । खरल ।
३. गुग्गुल । गूलर की लकड़ी का डंडा ।
उलूत पुं० एक प्रकार का अजगर ।
उलूपी स्त्री० १. एक नागकन्या जो अर्जुन की पत्नी तथा बभ्रुवाहन की माता थी ।
२. मछली । सूस ।
उ०—मकर, उलूपी, अंडभव, वैसारन, झष, मीन ।
नं० १४४/८१
उलूम (अ०) स्त्री० (इल्म का बहुवचन शब्द) विद्या ।
उ०—काजिम है मन भेदी सकल उलूम के ।
रस० १२/३०५
उलेख— सक० वर्णन करना । खींचना । चित्रित करना ।
उ०—बहु बिधि करत उलेख कौं सो उल्लेख उलेखि ।
भू० ६६/१४०
उलेड़—उलेढ़— सक० उँडेलना । कोई तरल पदार्थ एक बर्तन से दूसरे में डालना ।
उलेल स्त्री० १. उमंग । उत्साह । २. जोश । ३. बाढ़ ।
वि० लापरवाह । अल्हड़ ।
उलैंड़— सक० दे० 'उड़ेल' ।

उ०—नव केसरि के माट उलैहैं ।
सूर० १०/२६०२/२५१

उलैठी वि० ऐंठी हुई ।

उल्का स्त्री० १. लौ । लपट । २. मशाल ।
३. दीपक । चिराग ।
४. आकाशस्थ पिंडों से कटकर गिरने वाले चमकीले छोटे खण्ड जो रात्रि में आकाश में एक ओर से दूसरी ओर जाते हुए दिखाई देते हैं । ५. प्रकाश ।

—चक्र पुं० १. उत्पात । उपद्रव ।
२. बाधा । रुकावट । ३. हलचल ।

—धारी पुं० मशालची ।

—पथ पुं० आकाश में वह स्थान जहाँ से उल्काएँ गिरती हुई दिखाई देती हैं ।

—पात पुं० १. तारा टूटना ।
२. उपद्रव । उत्पात ।

—पाती वि० उपद्रव करने वाला । उत्पाती ।

—पाषाण पुं० एक ठोस पिण्ड जो उल्का के रूप में आकाश से पृथ्वी पर गिरता है ।

—मुख पुं० १. शिव का एक गण ।
२. मुँह से प्रकाश या आग फेंकने वाला एक प्रेत । अगिया बैताल । ३. गीदड़ ।

उल्कुषी स्त्री० उल्का ।

उलथा पुं० दे० 'उलथा[३]' ।

उलब पुं० दे० 'उल्व' ।

—ण पुं० दे० 'उल्व' ।

उलमुक पुं० १. अग्नि । २. अंगारा ।

उल्लंघ— सक० १. फाँदना । लाँघना ।
२. विरुद्ध आचरण करना । उल्लंघन करना ।

—इत वि० १. लाँघा या तोड़ा हुआ ।
२. अतिक्रमण किया हुआ ।

—न पुं० १. लाँघना । फाँदना ।
२. अतिक्रमण । विरुद्ध आचरण ।

उल्लल वि० १. हिलता हुआ । अस्थिर । २. रोएँदार ।
३. अनेक रोगों से पीड़ित ।

—इत वि० १. कम्पित । क्षुब्ध ।
२. उठाया हुआ ।

उल्लस वि० १. चमकीला । २. प्रसन्न । ३. प्रकट ।

—इत वि० १ प्रसन्न । हर्षित ।
२. चमकता हुआ । ३. आन्दोलित । कंपित ।

—न पुं० १. हर्ष । खुशी । २. रोमांच ।

उल्लाप (उत्+लाप) पुं० १. मीठी बातों से तुष्ट करना । काकूक्ति ।
२. आर्त्त-नाद । कराहना ।
३. आवेग में स्वर का परिवर्तन ।

—ई वि० उल्लाप करने वाला ।

—क वि० खुशामदी । चाटुकार ।

—न पुं० खुशामद ।

उल्लाल—उल्लाला पुं० एक मात्रिक छन्द जिसके प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ होती हैं ।

उल्लास पुं० १. प्रकाश । २. हर्ष । उत्साह ।
३. ग्रन्थ का एक भाग, प्रकरण या अध्याय । परिच्छेद ।
उ०—बरनत यों उल्लास हैं जे पंडित मतिकोष ।
म० ३१२/३५१
४. अर्थालंकार का एक भेद जिसमें एक के गुणदोष से दूसरे में गुणदोष आना वर्णित हो ।

सक० १. प्रकाशित या प्रकट करना ।
२. प्रसन्न करना । उल्लसित करना ।

—ई वि० उल्लास या आनन्द से भरा हुआ ।

—क वि० उल्लास या आनन्द उत्पन्न करने वाला ।

उल्लिखित वि० १. ऊपर लिखा हुआ ।
२. खुदा हुआ । उत्कीर्ण । ३. चित्रित ।

उल्लू पुं० १. पक्षी-विशेष । २. बेवकूफ़ । मूर्ख ।

उल्लेख पुं० १. लिखना । लेख । २. वर्णन । चर्चा ।
उ०—कै बहुतै कै एक जहँ एकहि को उल्लेख ।
म० ७७/३१२
३. साहित्य में एक अलंकार, जिसमें एक व्यक्ति या वस्तु का अनेक रूप में वर्णन हो ।

—नीय वि० उल्लेख किये जाने योग्य ।

उल्लेष पुं० दे० 'उल्लेख' ।
उ०—सो अर्थांतरन्यास हैं बरनत मति उल्लेष ।
म० २८६/३४८

उल्लोच पुं० १. चाँदनी । प्रकाश । २. चंदोवा । वितान ।

उल्लोल पुं० १. लहर । हिलोर । २. खुशी । हर्ष ।

उल्व पुं० १. झिल्ली, जिसमें लपटा बच्चा पैदा होता है । २. गर्भाशय ।

—ण पुं० दे० 'उल्व' ।

वि० विलक्षण । उत्कट । प्रबल ।
उ०—उल्वण दारुण, घोर अरु, उत्कट, उग्र, कराल ।
नं० २६/६७

उलहँग— सक० उल्लंघन करना।
उ०—हे देवी तुव विपुन भवन की उलहँगि न जाउं अलिंदा। ना० १००/१०२

उलह— अक० दे० 'उलह'।
उ०—'नंददास' ज्यों स्याम-तमालहि, कनक-लता उलहए। नं० ६७/३०१
उलहए भू०कृ०।

उव— अक० १. उगना।
उ०—बेई ससि सूरज उवत निसि द्यौस। दे० I, ७०६/१६६
२. खिलना।
उ०—कंटक लौं उवैं कंज भटके भ्रमत भृंग। गं० ७२/२४
उवत, उवैं व०कृ०।

उवटा— सक० उबटन लगाना।
उ०—चंदन घिसि मृगमद मिलाइके केसरि सों उवटावै। च० १४०/८३

उवनि स्त्री० १. उदय। २. आविर्भाव। प्राकट्य।
उ०—उवनि लुनाई की लकनि की सी लहरी। दे० I, २४६/८६

उवह सर्व० वह।
उ०—उवह चितवनि उवह हास मनोहर उवह बानिक नट-भेखें। कुं० ३३७/११२

उवीठा वि० बासी।
उ०—हार, सिंगार, बिहार, उवीठे सदा सोच रहे जिय निमिख न घटई। कं० ३३८/११२

उशना पुं० शुक्राचार्य का एक नाम।
उ०—उशना, भार्गव, काव्य, कवि असुर-पुरोहित सोहि। नं० ४१/७०

उशबा पुं० एक रक्तशोधक औषधि।

उशाना स्त्री० १. अभिलाषा। इच्छा। २. सोमलता।
३. रुद्र की एक पत्नी का नाम।

उशास पुं० दे० 'उसाँस'।

उशीनर पुं० १. गान्धार देश।
२. उशीनर देश का निवासी।
३. राजा शिवि के पिता का नाम।
—ई स्त्री० उशीनर देश की रानी।

उशीर—उशीरक पुं० खस। कतरे की जड़।

उष[1] स्त्री० दे० 'उषा'।
उ०—अच्छर हैं बिसद करति उषै आप सम। क० ८/३

उष[2] दे० 'ऊख'।

उ०—अच्छर हैं बिसद करति उषै आप सम। क० ८/३

उष[3] वि० बसा हुआ।

उषर पुं० वह जमीन जिसमें बीज न जमे। ऊसर।

उषर्बुध पुं० १. अग्नि। आग।
उ०—बीति होत्र पुनि उषर्बुध, धूमकेतु कह सोय। नं० १५/१०२
२. चीते का वृक्ष।

उषा स्त्री० १. भोर। प्रभात। २. अरुणोदय की लाली।
३. बाणासुर की कन्या जिसका विवाह अनिरुद्ध से हुआ था।
उ०—ताही के बधूसुत उषा जो अनुरुद्ध ब्याहि। दे० I, २८/१४७
—कर पुं० चन्द्रमा।
—कल पुं० मुर्गा। कुक्कुट।
—काल पुं० भोर। प्रभात।
—पति पुं० अनिरुद्ध। श्रीकृष्ण के पौत्र।
—रमण पुं० अनिरुद्ध।

उषित वि० १. जला हुआ। दग्ध। २. बसा हुआ।
३. बासी। ४. फुर्तीला। तेज।
पुं० बस्ती। आबादी।

उष्ट्र पुं० ऊँट।

उष्ण—उष्न—उसन वि० १. गरम। तप्त।
२. तीखा। तीक्ष्ण।
पुं० १. सूर्य। २. ज्वर। ३ ग्रीष्म ऋतु।
उ०—पट रितु सीत उष्न बरषा मैं, ठाढ़े पाइ रही। सूर० १०/१३३७/५७४
—आ—आक पुं० १. ग्रीष्मकाल। २. सूर्य।
—आता स्त्री० गर्मी। ताप।

उष्णीष (उष्ण+ईष्) स्त्री० १. साफा। पगड़ी।
२. मुकुट। ताज। ३. महल का गुम्वद।
—ई वि० उष्णीष अथवा मुकुट धारण करने वाला।

उष्म पुं० दे० 'ऊष्म'।
—आ स्त्री० दे० 'ऊष्मा'।
—ज पुं० पसीने या मैल आदि से उत्पन्न होने वाले कीड़े-मकोड़े आदि। जैसे—खटमल, मच्छर आदि।

उस— अक० बसना। रहना।
—इ क्रि०वि० बसकर। रहकर।

उसा— सक० बसाना। रखना।

उसक— अक० उकसना।

उकसति व०कृ० ।
—इ स्त्री० नखरा । ऐंठ ।
—आन पुं० खिसकाव । उकसन ।

उसकन (उत्कर्षण) पुं० बरतन माँजने का घास-पात आदि का बना मुट्ठा । जूना । उबसन ।

उसका— सक० उकसाना । उभारना । ऊँचा करना ।

उसटा— सक० हटाना । उखाड़ना ।
उ०—बहु ढाल ढक्कन सों ढकेलि अरिंद उसटाए भले । प०

उसन[1]— सक० गूँथना । माँडना ।

उसन[2] पुं० उत्पत्ति ।
उसना भू०कृ० ।

उसमान पुं० मोहम्मद के चार साथियों में से एक साथी जो उमर की शहादत के बाद तीसरे खलीफा चुने गये ।
उ०--मेरो कहो मान कहा मान उसमान है । नं० ३५१/१०८

उसर[1]— (उद्+सरग) अक० १. हटना । दूर होना ।
उ०—तुम धों नेंकु इत उसरो हमें देहु धों जान । गो० ४०/१६
२. व्यतीत होना ।
३. डूबते हुए का फिर से ऊपर आना । उतराना । ४. निश्चिन्त होकर बैठना ।
उ०—पहिले बैठी उसरि कें, तिय आवत लखि नाह । कृ० २५६/५८

उसर[2]— अक० भूलना ।
उसरत व०कृ० ।

उसर[3] पुं० दे० 'उषर' ।

उसरन पुं० खुलने या दूर होने की क्रिया ।

उसरा— सक० हटाना । खोलना ।

उसल— अक० १. पानी में उतराना ।
२. स्थान भ्रष्ट होना ।
उ०—गजन की ठेल पेल सैल उसलत है । भू० ४११/२०७
उसलत व०कृ० ।
—वा पुं० उच्छ्वास । ठंडी साँस । उसाँस ।

उसवा पुं० औषध-विशेष ।

उसस[1]— अक० १. उसाँस लेना । ठंडी साँस लेना ।
उ०—तिय उसास पिय विरह ते उससि अधर लौं आइ । र० ४२१/८४
२. उठना ।

उसस[2]— अक० खिसकना ।
उससित व०कृ० । उससी भू०कृ० ।
—इ क्रि०वि० ठंडी साँस लेकर । उच्छ्वास से ।
उ०—कहै पदमाकर त्यों उससि उसासज सों । प० १५०/१११

उसाँस—उसास स्त्री० १. गहरी साँस । दीर्घनिश्वास । २. ठंडी साँस । ३. श्वास । साँस ।
—आ पुं० श्वास । साँस ।
उ०—अवर सकल विद्या विनोद जिहि प्रभुक उसासा । नं० २/३१
—ई स्त्री० दम लेने की फुरसत । अवकाश ।
उ०—इन्द्र रिसाइ बरस्यो हम ऊपर नेंकु न लेत उसासी । गो० ७१/३७
अक० उच्छ्वास लेना ।
उसाँसति व०कृ० ।

उसार सक० १. उखाड़ना ।
२. बाहर निकालना अथवा निकाल कर सामने लाना । उतारना ।
उ०—बाँह उसारि सुधारि बराबर बीर, छरा धरि ढूकति आवै । घ० क० ३८१/२२७
३. उकसाना ।
उ०—जोति बढ़ावत दसा उसारि । के० II. १६/३८४
उसारत व०कृ० ।
—आ पुं० दे० 'ओसारा' ।
—ई स्त्री० घर ।
उ०—इक गोपी गोपाल पकरि कै, लै चली अपनैं मेर उसारी । सूर० १०/२८६३/२४७
उसारत व०कृ० । उसारि भू०कृ० ।

उसारा पुं० दालान । बरामदा । बरौठा ।

उसाल—उसार— (उत्+शालन) सक०—
१. उखाड़ना । निर्मूल करना ।
उ०—द्विज-गऊ पालहिं, रिपु उसालहिं सस्त्र-घावहिं तन सहैं । प० १०१/१५
२. हटाना । टालना । ३. भगाना ।

उसीज— अक० १. पसजना । २. उबलना ।
उ०—अंतर आँच उसास तजै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस । घ० क० २४/५१
उसीजै व०कृ० ।

उसीर पुं० दे० 'उशीर' ।
उ०—काम कै प्रथम जाम, बिहरै उसीर धाम । क० १४/५७

उसीला (अ०) पुं० १. आश्रय । सहारा । २. द्वारा । दे० 'वसीला' ।

उसीस—उसीसा (उत्+शीर्ष) पुं० सिरहाना । तकिया ।
उ०—दै उसीस पर सुंदर बाँहीं । नं० ५०१/१२३

उसुआस स्त्री० किसी के कार्य में दोष निकालना। छिद्रान्वेषण करना।
उ०—देवर की त्रासनि कलेवर कँपत है, न सासु उसुआसनि उसास लै सकति हौं। भि० I, ६४/११०

उसूल[1] (अ०) पुं० नियम। सिद्धान्त।
वि० सिद्धान्तवादी। उसूल का पक्का।

उसूल[2] (अ०) वि० वसूल। प्राप्त।
—ई स्त्री० उगाहना। वसूल करना।

उसे— सक० उबालना।

उस्तरा—उस्तुरा (फा०) पुं० बाल मूँडने का औजार। छुरा।

उस्ताद (फा०) पुं० [स्त्री० उस्तादनी] गुरु। शिक्षक।
वि० १. निपुण। प्रवीण।
२. चतुर। चालाक। धूर्त।
—ई स्त्री० १. प्रवीणता। विज्ञता।
२. धूर्तता। चालाकी। ३. शिक्षक की वृत्ति।

उस्वास स्त्री० दे० 'उसाँस'।
उ०—अंग बरन बिबरन जहाँ, अति ऊँचे उस्वास। के० I, ४५/५३

उह सर्व० वह।
उ०—उह सूधो मग, छांडि कहा तू इत ही कों उठि दौरै? च० २२८/१२१

उहट— अक० १. दे० 'उघड़'। २. दे० 'हट'।
सक० उघाड़ना।

उहडह— अक० खिलना।
उ०—मृगनैनी देखियत है आजु मुखचंद्र उहडह्यो भारी। कुं० ३१६/१०७

उहदा (अ०) पुं० ओहदा। पद। दर्जा।

उहवाँ क्रि०वि० वहाँ।

उहाँ क्रि०वि० वहाँ। उस जगह पर।
उ०—उहाँ जो बचैगें तौ रचैंगे रंग भूमि खेलि। दे० I, १२८/२५

उहार पुं० दे० 'ओहार'।

उहारी स्त्री० सूर्योदय के पूर्व की वेला।
उ०—कोइल अलग डारि बोलति उहारी लगे। गं० १८०/५४

उहि—उहि सर्व० वह। उसी।
उ०—मोहूँ सौं तजि मोह, दृग चले लागि उहि गैल। बि० ७७/३७
उ०—घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सींचि न छांड छियौ। घ० क० १३६/११४

उहिया पं० योगियों के पहनने का हाथ का कड़ा।

उही—उहीं सर्व० वही।

उहूँ-उहूँ अव्य० हाँ-हाँ। स्वीकारोक्ति।

उहूल स्त्री० तरंग। मौज। लहर।

उहैं—उहैं सर्व० वही।
उ०—उहै बन घास बहुत देख्यो है, तामें गांइ चराइबौ। कुं० १२/८

ऊ हिंदी का एक स्वर।
पुं० १. शिव। २. चन्द्रमा।
सर्व० वह।
अव्यय० भी।

ऊँकार (ऊ+कार) पुं० दे० 'ओंकार'।

ऊँख पुं० ईख।
उ०—रस की ऊँख उखारि 'सूर' प्रभु बई बिरह की बारी। सूर० १०/३८३२/४५७

ऊँग स्त्री० दे० 'ऊँघ'।

ऊँग— सक० निकलना। प्रकट होना। दे० 'उग'।

ऊँगा पुं० [स्त्री० ऊँगी] चिड़चिड़ा। अपामार्ग।

ऊँगना पुं० चौपायों को होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें कान बहते हैं और शरीर ठंडा पड़ जाता है।

ऊँघ[1] स्त्री० अर्द्ध-निद्रा। औंघाई। झपकी।
उ०—ऊँघ अटनि पर छत्रनि की छबि, सीसफूल मनौ फूली। सूर० १०/३०२२/२८७
—त वि० ऊँघता हुआ।
उ०—सूंघत, ऊंघत, खात हू, जीभ रहति है ऐंठि। दे० I, ३६/३०२
—न पुं० औंघाई।

ऊँघ[2]**—** अक० १. नींद में झूमना। उनींदा होना। झपकी लेना। निद्रालु होना।
२. ढिलाई से काम करना।

ऊँघटिहाई वि० ऊँघती हुई।
उ०—घटिहाई डीठि बिष के से घूँटि घूँटि ओघनि उँघटिहाई घूंघट उघारती। दे० I, ७०/५६

ऊँघर— सक० दे० 'उघड़'।

ऊँच वि० १. ऊँची जाति का। कुलीन। उत्तम।
२. उच्च। उन्नत। ऊँचा।
उ०—महा ऊँच पदवी तिन पाई। सूर० वि०/२४/७
—इ स्त्री० ऊँचा होना। बुलन्दी।
उ०—इहाँ ऊँचि पदवी हुती गोपीनाथ कहाय। नं० ४७/१६१
—ए क्रि०वि० १. ऊँचाई पर। ऊपर की ओर।
२. जोर से बोलना।
उ०—ऊँचे द्रुम बितान जनु तनें। नं० ४६५/१२२

—ओ वि० उत्तम । श्रेष्ठ ।
उ०—प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी । घ० क० २/३६

—नीच—निच क्रि०वि० भला-बुरा । लाभ-हानि ।
उ०—पचिहारी समुझाइ ऊँच निच पुनि पुनि पाइ परे री । सूर० १०/१८६४/२६

ऊँचर— सक० दे० 'उचर' ।

ऊँचा वि० [स्त्री० ऊँची]
१. ऊपर की ओर अधिक उठा हुआ । बुलन्द । उन्नत ।
२. उदात्त । श्रेष्ठ । उच्च । उत्तम ।
३. लम्बाई या अर्ज़ में छोटा (वस्त्र) । उटंगा । ४ तेज । जोर (की ध्वनि) ।

—ई स्त्री० १. ऊँचाई । बुलन्दी । उच्चता ।
२. बड़ाई । गौरव ।

ऊँछ[१] पुं० राग-विशेष ।

ऊँछ[२]— सक० कंघी करना । बाल झाड़ना । बाल काढ़ना ।

ऊँट पुं० [स्त्री० ऊँटनी] ऊँट । कवियों ने ऐसे लोगों की उपमा इससे दी है जो नीरस निरर्थक जीवन का भार ढोते रहते हैं ।

—कटारा—कटेरा पं० एक प्रकार की कँटीली लता जिसे ऊँट बड़ी रुचि के साथ खाता है ।
उ०—खारक दाख खवाइ मरी कोउ ऊँटहिं ऊँट-कटारोई भावै । के० I, १०/६

—नाल पुं० ऊँट पर से चलाई जाने वाली तोप ।
उ०—छुटी एक कालैं बिसालैं जंजालैं जगी जामगीं त्यों चले ऊँटनालैं । प० ६६/१०

—वान पुं० ऊँट हाँकने वाला ।

ऊँड़ा पुं० १. वह बरतन जिसमें धन रख कर धरती के भीतर गाड़ देते हैं । २. तहखाना ।
वि० गहरा । गंभीर ।

ऊअ— अक० उदय होना । उगना ।

ऊआबाई वि० १. इधर-उधर का ।
२. बेसिर-पैर का । व्यर्थ का ।
स्त्री० निरर्थक बात । बेसिर-पैर की बात ।

ऊक[१] स्त्री० १. लूक । उल्का । लौ । लपट ।
उ०—भीजे घनआनंद कनौड़-पुंज लाय ऊक । घ० क० ३०६/२००
२. दाह । आँच । तपन । जलन ।
उ०—हृदय जरत है दावानल ज्यौं, कठिन विरह की ऊक । सूर० १०/३२२०/३३२
सक० जलाना । दुःख देना ।

ऊक[१]— अक० चूकना । भूल करना ।
स्त्री० भूल । चूक । गलती ।
सक० १. छोड़ना । २. भूलना ।

ऊख[१] पुं० गन्ना । ईख ।
उ०—ऊख पियूष मयूख सो इक तुव बचन-बिधान । प० २२/३५

ऊख[२] वि० ऊष्मा । गर्म । उष्ण ।
—म पुं० [स्त्री० ऊखमा] गर्मी । ऊष्मा ।

ऊखल[१] (उलूखल) पुं० [स्त्री० ऊखली] ओखली ।
उ०—ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ । सूर० १०/२६२/२८६

ऊखल[२] (ऊष्म) पुं० गरमी ।

ऊखल[३] (उखवेल) पुं० एक प्रकार की घास ।

ऊखा[१] स्त्री० १. प्रभात । २. बाणासुर की पुत्री और अनिरुद्ध की पत्नी उषा ।

ऊखा[२] (ऊष्मा) स्त्री० गरमी । ताप ।

ऊखिल वि० १. अपरिचित । अजनबी । पराया ।
उ०—कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ । घ० क० १७८/१३८
२. अप्रिय ।
उ०—ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं । घ० क० ४१६/२३६

—ताई स्त्री० अमेल । अमिलाप ।
उ०—मिलाप मैं एतियौ ऊखिल-ताई । घ० क० १०२/६६

ऊग— अक० दे० 'उग' ।
उ०—ऊग्यौ पुन्य को पुंज सांवरौ सकल सिद्धि दातारु । च० २/२
ऊगत व०कृ० । ऊग्यौ भू०कृ० ।

ऊछल पुं० छलांग । उछलन ।

ऊज पुं० १. उपद्रव । उत्पात । २. अंधेर ।

ऊजड़ वि० १. उजाड़ । वीरान । २. ऊसर ।

ऊजन पुं० विशाल । दृढ़ ।
उ०—जहँ देवी अंबिका, नगर बाहर मठ ऊजन । नं० ६८/१८२

ऊजर[१]—ऊझड़ वि० उजड़ा हुआ । (दे० 'ऊजड़') ।
उ०—तो लौं जग ऊजर करि लेखौं । बो० १६/५२

ऊजर[२] वि० उजला । सफेद ।
उ०—ऊजर ही करिबे को हँसे । दे० I, ३५/३१०

—आ वि० [स्त्री० ऊजरी] दे० 'ऊजर' ।
उ०—नवल गूजरी ऊजरी निरखि ऊजरी सेज । प० १८४/११६

ऊजा वि० बलशाली ।

ऊट— अक० १. उमङ्गित होना ।

उ०—काल मही सिवराज बली हिंदुआन बढ़ाइबे कों उर ऊटै । भू० २५४/१७६

२. किसी बात को बार-बार कहना ।

ऊटि स्त्री० साध । इच्छा ।

उ०—अंतहु कान्ह आइहैं गोकुल, जन्म जन्म की ऊटि । सूर० १०/३१७४/३२३

ऊट-पटाँग वि० १. व्यर्थ का । बेसिर-पैर का ।

२. बेढंगा । बेमेल ।

ऊठ पुं० बहाना । मिस ।

उ०—कवि देव सखी के सकोचन सों, करि ऊठ सुऔसर को वितबै । देव

ऊठ—ऊठा पुं० [स्त्री० ऊठी] १. उठान । २. छटा ।

उ०—चातुरी-चोख मनोज के चोजनि चूचरिवारियै ऊठ अमैंठी । घ० क० २४६/१७१

३. उमंग ।

उ०—रिस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै । घ० क० २८४/१८८

ऊड़ी स्त्री० १. पनडुब्बी नामक एक चिड़िया ।

२. गोता । डुबकी ।

३. रेशम खोलने वाली एक प्रकार की चरखी । ४. तकुआ ।

ऊढ़ वि० १. विवाहिता । २. दूसरे के पति से प्रेम करने वाली विवाहिता स्त्री ।

उ०—वधू नव ऊढ़ को निहारि मुनि मूढ़ भये । दे० I, ४५/५५

—आ वि० १. विवाहिता स्त्री ।

२. वह परकीया नायिका जो पति को छोड़ कर किसी अन्य को प्रेम करे ।

उ०—दोय भेद ऊढ़ा कहत बहुरि अनूढ़ा मान । म० ५८/२१३

ऊढ़— अक० १. सोच-विचार करना ।

२. तर्क करना । अनुमान करना ।

३. विवाह करना ।

ऊत वि० १. निपूता । निःसंतान ।

२. मूर्ख । बेवकूफ़ । बेसमझ ।

पुं० भूत-प्रेत ।

ऊतर—ऊतरु पुं० १. उत्तर । जवाब । स्वीकृति ।

उ०—हँसि, अनबोलैं हीं दियौ ऊतरु, दियौ बताइ । बि० १३०/५८

२. बहाना ।

उ०—ऊतर कौन हूं के पद्माकर दै फिरै कुंज गलीन में फेरी । प० १५४/११२

ऊतला वि० उतावला ।

ऊती स्त्री० अनुग्रह ।

उ०—इह सब आश्रय के जग जिहि की ऊती । नं० ७६/३६

ऊथरो वि० उथला । कम गहरा ।

ऊद पुं० १. अगर का पेड़ व उसकी लकड़ी ।

२. ऊदबिलाव ।

—बत्ती स्त्री० अगरबत्ती । धूपबत्ती ।

—बिलाव पुं० बिल्ली का सा एक जल-जन्तु ।

ऊद — अक० उदय होना ।

उ०—कहै कबि गंग इक्क अक्कबर अक्क ऊदै । गं० ३५८/११०

ऊदल पुं० महोबा नरेश परमाल के एक वीर सामन्त ।

ऊदा वि० ललाई लिये हुए काला रंग । बैंगनी रंग ।

ऊदावत पं० राठौर बंश के क्षत्रियों की एक शाखा ।

उ०—दीबे की बड़ाई देखौ ऊदावत रामदास, तेरे दिये माल कों हमाल हेरियत है । गं० ३५४/१०६

ऊध क्रि०वि० उर्ध्व । ऊपर ।

उ०—ऊध अध मूल तूल पटनि लपेटे । दे० I, १७६/७६

—खुला वि० आधा खुला ।

ऊधम पुं० उपद्रव । उत्पात । हुल्लड़ ।

उ०—ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सबै रंग-तरंग उमंगनि सींचैं । प० ६१/६८

—इनि वि० उत्पाती । ऊधम मचाने वाली ।

उ०—तिनमें जु ऊधमिनि राधा मृगनैनी यों । प० ८६/६८

—ई वि० शरारती । ऊधम मचाने वाला ।

ऊधव—ऊधो—ऊधौ पुं० दे० 'उद्धव' ।

उ०—ऊधव कह्यौ, हरि कह्यौ जो ज्ञान । सूर० ३/४/५

ऊधो—ऊधौ पुं० दे० 'उद्धव' ।

उ०—जदुपति सखा ऊधो जानि । सूर० १०/३४१२/३७०

ऊन पुं० १. भेड़ या बकरी का रोयाँ ।

२. एक छोटी तलवार जिसका व्यवहार प्रायः स्त्रियाँ करती हैं ।

वि० न्यून । कम । थोड़ा ।

उ०—ऊन कनिष्ठा सम हितें, समस्नेहिका होइ । कु० १०८/२७

—ता स्त्री० १. न्यूनता । २. अभाव ।

ऊनई वि० ऊन के रंग की ।

ऊनरी वि० ऊन के रंग की । ऊन से बनी ।

ऊना—ऊनौ वि० १. कम।
उ०—सूनो कै परम पदु ऊनो कै अनंत मदु।
दे० I, ३/२
२. एक प्रकार की तलवार। ३. व्यर्थ।
उ०—ऊनो भयो जीबो अब सूनो सब जग दीसै।
घ० ६१/७७

ऊपज— अक० उत्पन्न होना।
उ०—परसि परम सुख ऊपज्यो भयो तियन मन भायो। च० ८१/४७
ऊपजै व०कृ०। ऊपज्यौ भू०कृ०।

ऊपर क्रि०वि० ऊँचे स्थान पर। ऊँचाई पर।
—इ—ई वि० बाहरी। दिखावटी।
उ०—कठिन बड़ी जन ऊपरी तहाँ न आवत जात।
बो० १/६७

ऊपरा पुं० दे० 'उपला'।

ऊब स्त्री० १. अरुचि। २. खिन्नता। उद्वेग।
३. घबराहट। व्याकुलता।
उ०—नंदनंदन लै गए हमारी, सब ब्रजकुल की ऊब। सूर० १०/३६८६/४९०
४. उत्साह। उमंग।

ऊब— अक० १. उकताना। २. घबराना। अकुलाना।
उ०—भूषन देखें बहादुर खाँ पुनि होय महावत खाँ अति ऊबा। भू० ४६४/२१६
ऊबत व०कृ०। ऊबा भू०कृ०।

ऊबट (उद्+वर्त्म) पुं० ऊबड़-खाबड़ रास्ता। कठिन मार्ग।
उ०—पैंड़ पैंड़ चलियै तो चलियै, ऊबट रपटै पाइ।
सूर० १०/३५४४/३८१
—वाट पुं० कठिन मार्ग।

ऊबड़-खाबड़ वि० ऊँचा-नीचा। अटपटा। विषम।

ऊबर— अक० दे० 'उबर'।
उ०—कह तुलसीदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन। कवि० ११७/६६
ऊबरी भू०कृ०।

ऊबार पुं० उबार। छुटकारा।

ऊभ[1] वि० उभरा हुआ। ऊँचा उठा हुआ।
स्त्री० १. उमंग। २. व्याकुलता। ३. ऊब।
४. गर्मी। उमस।
—आ वि० [स्त्री ऊभी]
१. ऊपर उठा हुआ। २. खड़ा हुआ।
उ०—कहि न सकै बासों कछू, ऊभी लेत उसाँस।
कृ० १६२/३६
३. गहरी।
उ०—ऊभी स्वास लई द्विज तबहीं। बो० ६७/६
—क स्त्री० १. झोंक। वेग। २. उमंग।

ऊभ[2]— अक० १. उठना। २. खड़ा होना।

ऊभ[3]— अक० दे० 'ऊब'।

ऊभासासी स्त्री० दम घुटना। ऊबना।

ऊमक स्त्री० उठान। वेग।

ऊमर पुं० १. गूलर। उदुंबर।
उ०—ऐसे हीं सोच के सोचै परे अब ऊमर फोरि को जीव उड़ावै। ठा० ६४/१८

ऊमस स्त्री० दे० 'उमस'।
उ०—ज्यौं कहलाय उसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सुधरै नहिं ध्यावस। घ० क० २४/५३

ऊमह्—ऊम— अक० दे० 'उमह्'।
उ०—जिहि के सु कोह-भरी कितेकी लोक लहरैं ऊमहीं। प० ११५/१७

ऊमी स्त्री० गेहूँ या जौ की हरी बाल।

ऊर पुं० सीमा।
वि० नीरस। स्वादहीन।
उ०—सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा; नीरस निगोड़ी दिन भरै भखि ऊरसों।
घना०

ऊरज[1] वि० दे० 'ऊर्ज'।
उ०—तरुनी, रमनी, सुन्दरी, तनु ऊरज पुनि सोई।
नं० ८४/७५

ऊरज[2] पुं० अर्ज। विनती।

ऊरध क्रि०वि० दे० 'ऊर्ध्व'।
उ०—जहिं तहिं जहाँ ऊरध उठे। भू० १७/१३१
—रेखा स्त्री० १. सौभाग्य सूचक रेखा। ऊर्ध्व-रेखा।
उ०—साहन में ह्वै ऊरध रेखा। बो० ४६/५५
२. विष्णु के अवतारों के चरण-चिह्नों में से एक चिह्न।

ऊरबसी स्त्री० दे० 'उरबसी'।
उ०—को बरनै उपमा कवि गंग सु तोही मैं हैं गुन उरबसी के। गं० ४२/१४

ऊर— अक० उड़ना।
पुं० ऊरी फिर—(उड़ी फिरना) स्थिर न रहना। बेहद चंचल होना।
उ०—नेक न नीचियैं बैठति नागरी, जोबन हाथ लिये फिरै ऊरी। गं० ६०/२६

ऊरु पुं० जंघा। जानु।
उ०—ऊरुन मैं ऊरु, उर उरनि उरोज मींजे।
दे० I, १८१/७७

ऊर्ज वि० बलवान। शक्तिमान। शक्ति देने वाला।
पुं० १. शक्ति। २. कार्त्तिक मास।
३. काव्यालंकार विशेष।
—स्वि पुं० ऊर्जस्वी। एक काव्यालंकार जो ऐसे स्थलों पर आता है जहाँ रसाभास या भावाभास स्थायी भाव का अंग हो।
—स्वित वि० बलवान। पराक्रमी।
उ०—इक रसवत पुनि प्रेय गनि ऊर्जस्वित ठहराउ। प० २८१/६७
—स्त्री० वि० बलवान। शक्तिशाली।

ऊर्ध्व क्रि०वि० ऊपर की ओर। ऊपर।
वि० १. ऊँचा। २. उलटा।
उ०—कहा पुरान जु पढ़े अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटँ। सूर० २/१६/१००
—अंग पुं० मस्तक।
—गति स्त्री० १. ऊपर की ओर की गति।
२. मुक्ति। मोक्ष।
—गामी वि० ऊपर जाने वाला। मुक्त।
—तिक्ति पुं० कड़वे स्वाद का एक छोटा पौधा जो दवा के काम आता है। चिरायता।
—नयन पुं० शरभ नामक जंतु।
—पाद पुं० टिड्डी।
—पुण्ड्र पुं० श्री वैष्णवों का तिलक।
—मन्थी वि० जो अपना वीर्य न गिरने दे।
—मुख वि० ऊपर मुख किये हुए।
पुं० अग्नि।
—लिंगी पुं० १. शिव। २. ब्रह्मचारी।
—लोक पुं० १. आकाश। २. स्वर्ग।
—वायु स्त्री० डकार।
—साँस पुं० १. ऊपर को चढ़ती हुई साँस।
२. साँस की कमी या तंगी।

ऊर्नंनाभि—ऊर्णनाभि (ऊर्ण+नाभि) स्त्री० मकड़ी।
उ०—ऊर्नंनाभि लौं फिरि विस्तरो। नं० २/१६७

ऊर्मि स्त्री० १. लहर।
उ०—भंग तरंग, कलोल पुनि बीची, ऊर्मि सुभाइ। नं० २५७/६२
२. पीड़ा।
—माली पुं० १. लहरों की शृंखला।
२. समुद्र।

ऊल[1] स्त्री० उल्लास। उमंग।
—जलूल वि० असम्बद्ध। अंड-बंड।

ऊल[2]— अक० १. प्रसन्न होना। २. उछलना।
उ०—देखत उमग्यो प्रेम इहाँ का, धरे रहे सब ऊलो। सूर० १०/४१२५/५२२
३. आतुर होना।
४. भाले आदि की नोंक गड़ाना।
उ०—सूर से ये उर ऊलि रहे हैं। गं० ५०/१७

ऊलट स्त्री० दे० 'उलट'।
उ०—यह ऊलट कासों कहौं निकट सुनाइ कहै न। प० १४८/५०

ऊलर वि० हिलती-डुलती।
उ०—ऊलर अमारी गंग भारी बंब धौं धौं होत। गं० ३७७/११७

ऊष पुं० दे० 'ईख'।
उ०—ऊष औ मयूष को सु छिपे हैं, अरनि में। सु० २३/१०२

ऊषर पुं० ऊसर।

ऊषल पुं० काली मिर्च।

ऊषा स्त्री० बाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को ब्याही थी।
उ०—सुपन मैं देखि ऊषा लुभाई। सूर० १०/४१६७/५४६

ऊष्म—ऊषम (ऊष्+म) पुं० १. गरमी।
उ०—ऊषम निदान ही मयूषनि मनिकमि। दे० I, १७५/७६
२. ग्रीष्म ऋतु। ३. भाप।
—वर्ण पुं० व्याकरण में, उच्चारण की दृष्टि से श, ष, स, ह आदि अक्षर या वर्ण।

ऊषढ़ वि० फीका। जो नमकीन न हो।

ऊसर—ऊषर पुं० बंजर भूमि। वह भूमि जिसमें कुछ उपजता नहीं।
उ०—उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर माह। म० ३१६ ३५२

ऊह अव्य० १ दुःख या क्लेश सूचक शब्द। ओह।
२. विस्मयसूचक शब्द।

ऊहन पुं० तर्क। दलील।

ऊहर पुं० उप-गृह। छोटा घर।
उ०—ऊहर सब कूहर भई बनितन लगी बलाय। बो० ३६ ६४

ऊहा स्त्री० १. तर्क या अनुमान द्वारा किसी बात को समझना। २. बुद्धि। समझ।
—पोह पुं० तर्क-वितर्क। सोच-विचार।

ऋ देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर वर्ण, जिसका उच्चारण स्थान मूर्धा है।
स्त्री० १. देवमाता अदिति। २. निन्दा। बुराई।
पुं० १. स्वर्ग। २. सूर्य। ३. गणेश।

ऋक् स्त्री० १. वेदमन्त्र । ऋचा । २. दे० 'ऋग्वेद' ।
ऋक्थ पुं० १. सम्पत्ति । धन । २. सुवर्ण । सोना ।
३. दायभाग । भाग । हिस्सा ।
ऋक्ष पुं० भालू ।
—न पुं० १. नक्षत्र । २. भालू ।
ऋक्ष-जिह्व पुं० कोढ़ ।
ऋक्षपति पुं० १ चन्द्रमा । २. जाम्बवान ।
ऋक्षवान पुं० नर्मदा तटवर्ती एक पहाड़ ।
ऋग्वेद पुं० चार वेदों में से एक वेद ।
—ई वि० ऋग्वेद का ज्ञाता । वह जिसके संस्कार ऋग्वेदानुसार होते हों ।
ऋचा स्त्री० १. वेदमन्त्र । कंडिका । २. स्तुति । स्तोत्र ।
उ०—बेद ऋचा ह्वै गोपिका, हरि संग कियो बिहार । सूर० १०/११७५/५२४
ऋचीक पुं० १. एक भृगुवंशीय ऋषि जो जमदग्नि के पिता थे । २. एक प्राचीन देश का नाम ।
ऋच्छ—रिच्छ पुं० रीछ । भालू ।
ऋच्छरा—रिच्छरा स्त्री० कुलटा या बदचलन स्त्री ।
ऋजु—रिजु वि० १. सीधा । २. सरल । सुगम ।
३. सरल चित्त । सज्जन ।
४. अनुकूल । प्रसन्न ।
—ता स्त्री० १. सीधापन ।
२. सरलता । सुगमता । ३. सज्जनता ।
ऋण—रिन पुं० कर्ज । उधार ।
—इक पुं० कर्जदार । ऋणी ।
—ई वि० १. कर्ज लेने वाला ।
२. कृतज्ञ । एहसानमंद ।
—दाता वि० ऋण देने वाला ।
—पत्र पुं० दस्तावेज़ ।
—मार्गण पुं० प्रतिभू । ज़मानतदार ।
—मोक्षित पुं० ऋण चुकाने में असमर्थ होने पर दास बनकर ऋण चुकाने वाला व्यक्ति ।
—शुद्धि पुं० ऋण चुकाना ।
ऋत पुं० १. सनातन गतिशील धर्म । २. यज्ञ ।
३. कर्म-फल ।
ऋति स्त्री० १. गति । २. मार्ग । ३. कल्याण । मंगल ।
४. निन्दा । ५. स्पर्धा ।
ऋतु—रितु स्त्री० प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के छः विभाग—१. वसन्त । २. ग्रीष्म ।
३. वर्षा । ४. शरद । ५. हेमन्त ।
६. शिशिर ।
उ०—छहों ऋतु तप करि पचीं हम अधर-रस कैं लोभ । सूर० १०/१२६८/५६६
—कर पुं० शिव ।
—काल पुं० स्त्री के रजोदर्शन के बाद के सोलह दिन का समय जिसमें वह गर्भाधान के योग्य मानी गई हैं ।
—गमन पं० ऋतुकाल के पश्चात् स्त्री के साथ सहवास ।
—चर्या स्त्री० ऋतु के अनुकूल आहार-विहार ।
—दान पुं० गर्भाधान ।
—नाथ पुं० वसन्त ।
—नायक पुं० वसन्त । ऋतुराज ।
—फल पुं० विशिष्ट ऋतु में होने वाले फल । जैसे—आम आदि ग्रीष्मऋतु के फल हैं ।
—मती स्त्री० रजस्वला स्त्री ।
—राज पुं० वसन्त ।
उ०—उनमादी माधो भयो सुमिरि अग्र ऋतुराज । बो० ३८/६०
—स्नान पुं० मासिक धर्म के बाद का स्नान ।
—स्नाता स्त्री० मासिक धर्म के बाद स्नान करने वाली स्त्री ।
ऋत्विज—रित्विज पुं० यज्ञ करने वाला । वह जिसका यज्ञ में वरण किया जाय । ऋत्विजों की संख्या १६ होती है ।
ऋद्ध—रिद्ध वि० संपन्न । समृद्ध ।
ऋद्धि—रिद्धि स्त्री० १. समृद्धि । २. एक औषधि ।
—सिद्धि स्त्री० १. समृद्धि और सफलता ।
२. गणेश जी की ऋद्धि-सिद्धि नाम की दो दासियाँ ।
ऋन पुं० दे० 'ऋण' ।
उ०—सबै कूर मोसौं ऋन चाहत कहौ कहा तिन दीजै । सूर० वि०/१६६/५४
—इयां वि० कर्जदार । ऋणी ।
—ई वि० दे० 'ऋणी' ।
उ०—तब बोले पिय नव किसोर हम ऋनी तिहारे । नं० १६/१६
ऋभु पुं० एक गण देवता ।
ऋभुक्ष पुं० १. स्वर्ग । २. वज्र । ३. इन्द्र ।
ऋषभ पुं० १. बैल । २. संगीत के सात स्वरों में से दूसरा । ३. एक प्रकार की जड़ी । ४. विष्णु का एक अवतार ।
वि० श्रेष्ठ ।

—कूट पुं० दक्षिण भारत का एक पर्वत ।
—देव पुं० १. विष्णु के २४ अवतारों में से एक जो भागवत के अनुसार राजा नाभि के पुत्र थे ।
उ०—पुनि नारायन ऋषभ-देव, नारद धनवंतरि।
सूर० २/३६/१०४
२. जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ।
—ध्वज पुं० शिव ।
ऋषभी स्त्री० पुरुष के रंग-रूप जैसी स्त्री ।
ऋषि पुं० १. वेदवेत्ता । वेदद्रष्टा । वैदिक मार्ग पर चलने वाला तपस्वी ।
२. ज्ञानी । दूरद्रष्टा ।
—राइ—राई पुं० ऋषिराज ।
उ०—धर्मराज कह्यौ, सुनु ऋषिराइ ।
सूर० ३/५/१०७
ऋष्टि—रिष्टि स्त्री० १. तलवार । २. शोभा । कान्ति ।
ऋष्य—रिष्य पुं० एक प्रकार का मृग जो कुछ काले रंग का होता है ।
—केतु पुं० अनिरुद्ध ।
—मूक पुं० दक्षिण भारत का एक पर्वत ।
—शृंग पुं० एक ऋषि जो विभांडक ऋषि के पुत्र थे ।
ए हिंदी का एक स्वर ।
एँच-पेंच पुं० १. अटकाव ।
२. टेढ़ी चाल या युक्ति । गूढ़ उक्ति ।
एँड़ पुं० गर्व या घमण्ड की मुद्रा ।
उ०—एँड़ सों एँड़ाति अति अंचल उड़ात उर ।
के० I, ६/२४
एँड़ा— अक० अँगड़ाना । देह तोड़ना ।
उ०—एँड़ सों एँड़ाति अति अंचल उड़ात उर ।
के० I, ६/२४
एँड़ात व०कृ० ।
एँड़ी[1] स्त्री० १. एक प्रकार का रेशम का कीड़ा ।
२. इस कीड़े का रेशम । ३. अंडी । मूंगा ।
एँड़ी[2] स्त्री० दे० 'एड़ी' ।
उ०—बड़े बड़े वार जु एँड़िनि परसत, स्यामा अपनै अंचल मैं लिएँ । सूर० १०/२६१७/१७३
एँडुआ पुं० गेंडुरी । ईंडुरी ।
ए[1] पुं० विष्णु ।
ए[2] अव्य० सम्बोधन सूचक अव्यय ।
ए[3] सर्व० यह ।
उ०—कोटि चंद वारौं मख-छवि पर ए हैं साहु कै चोर । सूर० १०/३५६/३०५

एइ—एई सर्व० यही ।
उ०—एइ माधौ जिन मधु मारे री ।
सूर० १०/३०३१/२८६
एउ—एऊ सर्व० यह भी ।
एकंग वि० अकेला । एकाकी ।
—आ वि० एक ओर का । एक तरफा ।
एकंड़िया पुं० १. एक अंडकोष वाला बैल या घोड़ा ।
२. एक अंडी वाली लहसुन की गाँठ । एक पुतिया लहसुन ।
वि० १. एक अंडकोष वाला ।
२. एक ही अंड या गाँठ वाला ।
एकंत वि० दे० 'एकांत' ।
उ०—कहुँ पौढ़े कमला के सँग मैं परम रहस्य एकंत ।
सा० ६७२ ५४
एक वि० १. एक । इकाइयों में सबसे छोटी व पहली संख्या । २. अद्वितीय । बेजोड़ ।
उ०—महाराज वै एक उन सम नहीं अनेक नृप ।
बो० २/४३
३. अनिश्चयवाचक विशेषण ।
४. तुल्य । समान ।
—आकार वि० एक आकार का । समान रूप का । मिल-जुलकर एक ।
—आध वि० एक या आधा । एक-दो ।
—आश्रित वि० एक के सहारे रहने वाला ।
—एक वि० प्रत्येक ।
अव्य० एक के बाद एक ।
उ०—आजु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
सूर० वि०/१३४/३७
—कपाल पुं० वह पुरोडास, जो यज्ञ में एक कपाल में पकाया जाय ।
—काल पुं० एक समय । कोई अनिश्चित समय । समान काल ।
—कालिक वि० एक काल का । एक ही समय में होने वाला ।
—कालीन वि० एककालिक । समकालीन ।
—कुंडल पुं० १. कुबेर । २. बलराम ।
—गाछी स्त्री० एक ही पेड़ के तने से बनाई गई नाव ।
—चक्र वि० १. एक ही नरेश द्वारा शासित ।
२. चक्रवर्ती ।
पुं० १ सूर्य । २. सूर्य का रथ ।
—चर नि० अकेले रहने या विचरने वाला ।

पुं॰ गैंडा ।

—चित्त वि॰ एकाग्र । तल्लीन ।

पुं॰ मन की एकाग्रता । ऐकमत्य ।

—चोवा पुं॰ वह खंमा जिसमें एक ही चोव या खंभा लगता हो ।

—छत्र वि॰ जिसमें दूसरे का अधिकार या प्रभुत्व न हो ।

—झर क्रि॰वि॰ लगातार ।

वि॰ एकमात्र ।

—डाल वि॰ एक-सा । बराबर । एक मेल का ।

—तान वि॰ एकाग्रचित्त । तन्मय । लीन ।

—ताल पुं॰ समताल । मेलताल । एक स्वर ।

—तीर्थी पुं॰ गुरुभाई । सहपाठी ।

—तुम्बी स्त्री॰ एक तुम्बे वाला वाद्य विशेष—इकतारा । तानपुरा ।

—देशीय वि॰ एक देश का । एक ही देश के लिये उपयुक्त ।

—देह वि॰ अभिन्न । शरीर ।

पुं॰ १. बुध ग्रह । २. वंश । गोत्र ।

—धार वि॰ लगातार । सब धाराओं का एक होकर बहना ।

—पटा वि॰ एक पाट की ओढ़नी ।

—रदन पुं॰ गणेश ।

उ॰—कदन अनेकन विघन को एकरदन गनराउ ।
भि॰ I, २/३

—रस वि॰ एक रूप । एक रस-सा । समान ।

उ॰—अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस ।
घ॰ क॰ ११४/१०२

—रूप वि॰ समान रूप वाला । एक-सा । अपरिवर्तनशील ।

—रूपता स्त्री॰ १. समानता । एकता ।
२. सायुज्य मुक्ति ।

—लिंग पुं॰ १. शिव ।
२. मेवाड़ के राजवंश के कुलदेव ।
३. कुबेर ।

—वचन वि॰ व्याकरण में एकसंख्यक पदार्थ का बोध कराने वाला । एक का वाचक ।

—वेणि—वेणी वि॰ सीधे-सादे ढंग से जूडा बांधने वाली (विधवा अथवा वियोगिनी स्त्री) । एक वेणी वाली ।

—सठ वि॰ इकसठ । ६१ ।

एकक वि॰ एकाकी । अकेला ।

एकज पुं॰ [स्त्री॰ एकजा] १. सहोदर । २. शूद्र । ३. शूद्र राजा ।

एकजाई स्त्री॰ १. एक ही बार सन्तान उत्पन्न करने वाली । २. पहलौठी सन्तान की माँ ।

एकटक—टिक वि॰ अनिमेष । बिना पलक गिराये ।

उ॰—लखति एकटक साँवरी मूरति को मुखइंदु ।
म॰ २३०/३८७

—ई स्त्री॰ स्तब्ध दृष्टि । टकटकी ।

एकट्ठा वि॰ दे॰ 'इकट्ठा' ।

एकठा—ठैयाँ वि॰ एक स्थान पर ।

एकडाल पुं॰ लोहे का फल और बेंट वाली कटार या छुरा ।

एकत क्रि॰वि॰ दे॰ 'एकत्र' ।

उ॰—देव टेरि किये एकत गुबिंद गुन आगरे ।
दे॰ I, १२२/२४

एकता स्त्री॰ मेल । समानता ।

एकत्र क्रि॰वि॰ इकट्ठा । एक स्थान में ।

—इत वि॰ इकट्ठा किया हुआ । संगृहीत ।

एकदा अव्य॰ एक बार । एक समय ।

एकध क्रि॰वि॰ एकधा । एक ही प्रकार से । एक समान ।

उ॰—त्रिय नाचत प्रेम उमंग भरी । नहिं बाचत एकध नृत्य करी ।
बो॰ ३/१०६

एकला—एकलो वि॰ अकेला ।

एकबारि अव्य॰ सहसा ।

उ॰—नंदलाल के रूप पर रीझि परी एकबारि ।
म॰ २०३/३८५

एकमेक वि॰ एकाकार हुआ । दो या दो से अधिक का मिलकर एक होना ।

उ॰—नीर छीर दोऊ एकमेक ह्वै मिलत हैं ।
गं॰ ३३२/१०१

एकरार पुं॰ (अ॰) दे॰ 'इकरार' ।

उ॰—लिखि लैजा लिखि दैजा कैजा एकरार मोसों ।
ठा॰ २१/६७

एकलव्य पुं॰ एक निषाद जिसने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना कर उससे बाण-विद्या सीखी और गुरु-दक्षिणा में दाहिना अंगूठा काट कर दे दिया ।

एकलाई स्त्री॰ दे॰ 'इकलाई' ।

उ॰—नीली एकपटी अरु मीली एकलाई में ।
भि॰ I, २७३/१४६

एकहत्तर वि॰ इकहत्तर । ७१ ।

एकहरा वि० [स्त्री० एकहरी] दे० 'इकहरा'।

एकांग (एक+अंग) वि० एक अंग वाला। विकलांग।
पुं० १. बुध ग्रह। २. चंदन।
—ई वि० १. एक अंग वाला। २. एकपक्षीय।
३. जिद्दी। हठी।

एकांत (एक+अंत) वि० १. अत्यन्त। नितान्त।
२. अकेला। ३. निरपवाद।
४. एकनिष्ठ। एक ही ओर लगा हुआ।
पुं० निर्जन स्थान। तनहाई।
उ०—गोपिन सों एकान्त कहीने बाँधि विरह की पारि। भ्र० ४२/७६
—कैवल्य पुं० जीवन्मुक्ति। मुक्ति का भेद।
—ता स्त्री० अकेलापन।

एका स्त्री० दुर्गा।
पुं० एकता। मेल।
—ई स्त्री० इकाई।
—एक क्रि०वि० अचानक। सहसा। अकस्मात्।
उ०—जाकैं एकाएक हूँ जग ब्यौसाइ न कोई। बि० ४७१/१६४

एकाकी (एक+आकिन्) वि० [स्त्री० एकाकिनी] अकेला।
उ०—एकाकी पिय पै अभिसरै। नं० २७९/१३७

एकाक्ष (एक+अक्षि) वि० [स्त्री० एकाक्षी]
१. एक आँख वाला। काना।
२. एक ही अक्ष या धुरी वाला।
पुं० शुक्राचार्य।
—पिंगल पुं० कुबेर।

एकाक्षर—एकाक्षरी (एक+अक्षर) वि० एक अक्षर वाला।

एकाग्र (एक+अग्र) वि० १. जिसका ध्यान एक ओर लगा हो। अनन्यचित्त। दत्तचित्त।
२. स्थिर।
—चित्त वि० स्थिरचित्त।
—ता स्त्री० एकाग्र होने का भाव। अचंचलता। स्थिरता।

एकात्मता स्त्री० एकता। अभिन्नता।

एकात्मा (एक+आत्म) वि० अभिन्न। एक प्राण।

एकादश—एकादस वि० ग्यारह।
उ०—नहिं रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंथ एकादस ठानै। सूर० वि०/६०/१७
—अह पुं० किसी के मरने पर ग्यारहवें दिन किया जाने वाला कृत्य।
—इ—ई स्त्री० प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि। इस दिन वैष्णव लोग अनाहार अथवा फलाहार करते हैं।
उ०—सो एकदसि व्रत आचरे। नं० २८/२७१

एकाधिपत्य (एक+आधिपत्य) पुं० पूर्ण अधिकार। पूर्ण प्रभुत्व।

एकार्णव पुं० जलप्लावन। जलप्रलय।

एकार्थ (एक+अर्थ) वि० १. एक अर्थ वाला।
२. समान अर्थ वाला।
—क वि० समानार्थक।

एकावलि—एकावली (एक+आवली) स्त्री० अर्थालंकार का एक भेद।
उ०—गहब तजब अर्थालि को जहँ एकावलि सोय। प० १७५/५४

एकाह (एक+अहन्) वि० एक ही दिन में पूरा होने वाला।

एकी—करण पुं० एक करने की क्रिया।
—कृत वि० मिश्रित।
—भूत वि० एक हो गया हुआ।

एकु वि० दे० 'एक'।
उ०—बालक बच्छ विधे विधि माया, मनौ छिनु एकु छिपे तिहिं ठैया। दे० I, ४८/११

एकै वि० दे० 'एक'।
उ०—एकै अंगोछती चीर ललै। दे० I, ७०/१५

एकोत्तरा पुं० एक रुपया सैंकड़े का ब्याज।
वि० एक दिन के अन्तराल पर आने वाला ज्वर।

एकोदिष्ट—श्राद्ध पुं० एक के उद्देश्य से किया गया श्राद्ध।

एकौंझा वि० अकेला।

एकौत अक० धान या गेहूँ का गरमाना। धान या गेहूँ का वह पत्ता निकलना जिसमें बाल लगती है।

एकौ बिसौ क्रि०वि० किंचित् मात्र।

एक्का वि० दे० 'इक्का'।

एक्यानबे वि० इक्यानबे। ९१।

एक्यावन वि० इक्यावन। ५१।

एक्यासी वि० इक्यासी। ८१।

एजु—एजू अव्य० सम्बोधन सूचक एक अव्यय।
उ०—एजू तुम तौ स्याम सनेही। सूर० १०/३४९२/३७०

एड़ स्त्री० घोड़ा चलाने का काँटा-विशेष जो चढ़ने वाले के जूते की ऐड़ी में लगाया जाता है ।

एड़ा बेड़ा—ऐंड़ा-बेंड़ा वि० उल्टा-सीधा । अंड-बंड ।

एड़ी—एड़ स्त्री० एड़ी । टखने के पीछे पैर की गद्दी का निकला हुआ भाग ।

उ०—तरवा मनोहर सु एड़ी मृदु कौहर सी ।
भि० I, ३३/६५

एढ़ा वि० बलवान । बली ।

एत वि० दे० 'एता' ।

उ०—कहि धौं री तोहिं क्यों करि आवै, सिसु पर तामस एत । सूर० १०/३४६/३०२

—**आ** वि० इतना ।

उ०—एते हाथी दिये माल मकरंदजू के नंद जेते गिनि सकत बिरंचिहू की न तिया ।
भू० १०/१३०

—**इक** वि० इतनी ।

उ०—सप्त समुद्र देऊँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ ।
सूर० ६/१०७/१८६

—**ना—नो** वि० इतना ।

उ०—एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु ।
कवि० २६/६६

एतत् सर्व० यह ।

एतदर्थ क्रि०वि० इसलिये । इस हेतु ।

एतद्देशीय वि० इस देश का । इस देश सम्बन्धी ।

एतादृश—एतादृक वि० इसके समान । इस जैसा । क्रि०वि० इस प्रकार । ऐसे ।

एतावत वि० इतना ।

एन पुं० [स्त्री० एनी] १. अयन । गृह । घर । २. काले रंग का हिरन ।

उ०—कहूँ बैल भैंसा भिरैं भीम भारी । कहूँ एन एनीनि के जूथ झारी । के० III, ५०/६२३

—**आ** पुं० १. आइना । दर्पण । २. भवन । सदन ।

—**मद** पुं० मृग का मद । कस्तूरी ।

उ०—ज्यों स्वर्नसीसी भर्‌यो एनमद बाम ।
भि० I, १७६/२०१

एनस पुं० १. पाप । २. अपराध ।

एबी वि० दे० 'ऐबी' ।

उ०—एबी अबही ते बन देवी ऐसी देखी ।
दे० I, १७/५०

ए ! बीरी अव्य० ओरी ! एरी ! आदि सम्बोधन सूचक अव्यय ।

एबुक्तुआ पुं० एक लता ।

एम—एमा वि० इस प्रकार का । ऐसा । समान । सदृश ।

उ०—प्यार के माहिं कोऊ प्यारी तो एम जान ।
गो० १०५/५०

एमन पुं० राग यमन जो सम्पूर्ण जाति का कल्याण थाट का एक राग है ।

एरँड पुं० रेंड़ । रेंड़ी ।

एरी—एरे अव्य० सम्बोधन सूचक अव्यय । अरे । हे ।

उ०—एरी, रागु बिगारि गो बैरी बोलु सुनाइ ।
बि० ५५२/२२८

एलकी पुं० राजदूत ।

एलबिल पुं० कुबेर ।

एला—एलि—एली स्त्री० १. इलायची ।

उ०—इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस ।
नं० ६३/६

२. बन-रीठा । ३. शुद्ध राग का एक भेद ।

एव अव्य० १. ही । २. भी निश्चयार्थक । ३. ऐसा । इस प्रकार । केवल मात्र ।

एवम् अव्य० इस प्रकार । ऐसे ।

—**अस्तु** यौ० पुं० स्वीकारोक्ति । ऐसा ही हो ।

उ०—एवमस्तु निज मुख कह्यौ, पूरन परमानंद ।
सूर० १०/११७५/५२४

—**एव** यौ० क्रि०वि० ऐसा ही केवल ।

उ०—हो प्रभु शुद्ध सत्त्वमय रूप । एवमेव पुनि नित्य अनूप । नं० २७/२६६

एषणा स्त्री० १. अभिलाषा । इच्छा । चाह । २. याचना ।

—**ई** वि० इच्छा करने वाला ।

एह सर्व० यह

उ०—लोपांजन सों लुकि सखी, देखि एहि बिधि तीय । नं० ६६/७३

एहो अव्य० हे । अरे । सम्बोधन सूचक अव्यय ।

उ०—एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हो बिन पानी । घ० क० ४२७/२४३

ऐ हिंदी का एक स्वर ।

ऐं अव्य० अवधान सूचक अव्यय । 'नहीं सुन पाया है' इसको व्यक्त करने का अव्यय ।

ऐंच'—ऐच— सक० खींचना ।

उ०—अंचल ऐंच्यो उँचाए भुजा भरे मूठि गुलाल की ख्याल सुहाती । प० ४४५/१७७

ऐंचत वर्त०कृ० । ऐंच्यों भूत०कृ० ।

पुं० खिचाव । तान ।

—**न** पुं० खिचाव । तानने की क्रिया ।

ऐंचक क्रि०वि० अचानक ।

ऐंचाऐंची स्त्री० खींचातानी ।

उ०—तिनकी अति ऐंचाऐंची में परि पुनि कछु न बसाय। प० २६/२६६

ऐंचाखैंची—ऐंचाखैंची (ऐंचना+खींचना) स्त्री० खींचा-खींची। अपने-अपने पक्ष का आग्रह।

उ०—ऐंचा खैंची धरि कै, दोऊ ·····बिधि जीव लीन। रस० ५६/२६२

ऐंचातानी (ऐंचना+तानना) स्त्री० खींचातानी।

ऐंछ— सक० १. साफ करना। २. बालों में कंघी करना।

ऐंठ¹—ऐंठ स्त्री० १. अकड़। २. मरोड़। ३. गर्व। घमण्ड।

—न स्त्री० १. मरोड़। २. लपेट। ३. शिकन। तनाव।

—मैंठ स्त्री० तोड़-मरोड़।

—वा वि० ऐंठा हुआ।

उ०—एरी! यह फेंटा ऐंठवा सीस धारें। कु० १८८/७२

ऐंठ²—ऐंठ- अक० १. खिचना। तनना। २. अकड़ना। ३. इतराना। गर्व करना।

उ०—जामिनी की ज्योति, भामिनी को मनु ऐंठो है। दे० I, १४०/७०

सक० १. मरोड़ना। २. निचोड़ना।

ऐंठत व०कृ०। ऐंठ्यो भू०कृ०।

ऐंठा¹ पुं० १. रस्सी बँटने का यन्त्र। २. घोंघा।

ऐंठा² वि० (स्त्री० ऐंठी) १. ऐंठा हुआ। २. गर्वीला।

उ०—रूप-गुन-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी। घ० क० २६६/१८२

ऐंड़¹—ऐंड़ स्त्री० दे० 'ऐंठ¹'।

उ०—धीर धरि ऐंड़ धरि गढ़ धरि तेग धरिकै। भू० १२०/१५०

—दार वि० १. ऐंठ या अकड़ दिखाने वाला।

उ०—सूरसरदार सूबेदार ऐंड़दार ते वै। भू० ४८७/२२५

—बैंड़—बैंड़ वि० टेढ़ा-मेढ़ा।

उ०—ऐंड़े-बैंड़े गढ़नि गयंद घेरियत हैं। गं० ३५४/१०६

ऐंड़²—ऐंड़- अक० १. ऐंठना। बल खाना। २. अंगड़ाई लेना।

उ०—ऐंड़त अंग जम्हात बदन भरि। सूर० १०/११७०/५२२

—आन पुं० अंगड़ाई।

सक० उमेठना। बल देना।

ऐंड़त व०कृ०। ऐंड़्यो भू०कृ०।

ऐंड़ा¹ वि० (स्त्री० ऐंड़ी) १. अकड़ा या ऐंठा हुआ।

उ०—मोह्यो री! ब्रज-मोहन काहे न ऐंड़ो डोलै। कु० २४६/८८

२. टेढ़ा या तिरछा।

३. घमंड करने वाला। इतराने वाला।

पुं० १. बटखरा। २. सेंध।

—बेंड़ा वि० १. बेढंगा। २. टेढ़ा-तिरछा।

ऐंड़ा²—ऐंड़ा अक० अंगड़ाई लेना।

उ०—ठेगनि मोटी गोरटी जोबन मद ऐंड़ाति। रस० ४७८/६५

सक० उमेठना। बल देना।

ऐंड़ात, ऐंड़ाबत व०कृ०। ऐंड़ायौ भू०कृ०।

—ई स्त्री० अँगड़ाई।

ऐंडायल वि० मदमस्त।

उ०—ऐंडायल गजगन गैंडा गररात गनि गेहनि में गेहनि गरूर गहे गोम हैं। भू० ३३७/१६२

ऐंड़ाहाल वि० अकड़बाज।

ऐंदव वि० इन्दु या चन्द्रमा संबंधी।

ऐंद्र वि० इन्द्र संबंधी।

पुं० १. इन्द्र का पुत्र। २. ज्येष्ठा नक्षत्र।

—इ पुं० इन्द्र का पुत्र जयंत।

—ई स्त्री० इन्द्राणी। शची।

—जाल पुं० इन्द्रजाल।

—जालिक वि० मायावी।

ऐंद्रीय वि० इन्द्रिय संबंधी।

ऐंन स्त्री० सेना।

उ०—प्रतनी, ध्वजनी, वाहिनी, चमू, बरूथिन ऐंन। नं० १०७/७७

ऐंन-मैन—ऐन-मैन वि० ज्यों का त्यों। हू-ब-हू।

ऐंयाँ-बैंयाँ क्रि०वि० इधर-उधर। दाए-बाएँ।

ऐं—ऐ सर्व० इस। यहाँ।

उ०—ऐपरि इमि दिखि इत रँग भर्‌यो। गाढ़ालिंगन टूटि है पर्‌यो। नं० १५१/१३२

ऐ अव्य० बुलाने का एक सम्बोधन।

पुं० शिव।

सर्व० दे० 'ऐं'।

उ०—ऐ पर अपनी करम री माई। नं० ४६५/१२२

वि० एक।

ऐक पुं० एकता। मेल। समानता।

—मत्य पुं० एकमत। एक राय।

ऐकान्तिक वि० १. एकान्त में रहने वाला। २. एकमात्र।

पुं० श्री वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त-विशेष।

ऐकागारिक वि० एक ही घर में रहने वाला।

पु॰ चोर।

ऐकाहिक वि॰ १. एक दिन में होने वाला।
२. एक ही दिन तक जीवित रहने वाला।

ऐक्य पु॰ एकता। एक होना।

ऐगर क्रि॰वि॰ आगे।
उ॰—ऐगर देख्यो तोहिं मुरखयो फेर निरास ह्वै।
बो॰ २२/१६३

ऐगुन पु॰ अवगुण। दोष। बुराई।
उ॰—ऐगुन बूझि हनो सखी करि दृग लाल मृनाल।
भि॰ I, ५२/१०

ऐचा-ताना वि॰ वह व्यक्ति जिसके आँखों की पुतली देखते समय दूसरी ओर फिर जाये।

ऐची स्त्री॰ चंडू पीने की नली।

ऐच्छिक वि॰ स्वेच्छाधीन। इच्छानुसार।

ऐडुरी स्त्री॰ इडुरी। गेंडुरी। बीड़ा।

ऐत—ऐतो वि॰ (स्त्री॰ ऐती) इतना।
उ॰—ऐतें दिन रही पीर तुलसी के बाहु की।
कवि॰ २८/६६

ऐतरेय पु॰ १. ऋग्वेद का एक ब्राह्मण ग्रन्थ।
२. वानप्रस्थों के लिये एक आरण्यक ग्रन्थ।
—ई वि॰ ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला।

ऐतिहासिक वि॰ १. इतिहास-संबंधी।
२. इतिहास से सिद्ध होने वाला।

ऐतिह्य पु॰ परम्परा से प्राप्त प्रमाण।
उ॰—पुनि ऐतिह्य 'रु संभवहु इनहु कों गनि लेहु।
प॰ २८४/६७

ऐन—ऐनु[१] पु॰ १. अयन। गृह। २. भंडार।
उ॰—उपजि परत गुरुमान तहँ प्रीतम क उर ऐन।
के॰ I, ६/५६
२. मार्ग।
उ॰—मन मुख भरि भरि, नैन ऐन ह्वै।
सूर॰ १०/३४००/३६७
३. गाय, भैंस आदि के स्तन का ऊपरी भाग जिसमें दूध भरा रहता है।
स्त्री॰ आँख। नेत्र।

ऐन[२] पु॰ काले रंग का हिरन, जिसे कस्तूरी मृग कहते हैं।
उ॰—जिन्हें देखिकै ऐन की सेन लाजी।
प॰ ४०/२८०

ऐन[३] (अ॰) वि॰ स्पष्ट। ठीक। उपयुक्त।
उ॰—होत रागबस एक यह सब जग जाचत ऐन।
रस॰ २३६/४९

ऐनक पु॰ चश्मा।

ऐना (फ़ा॰) पु॰ आईना। दर्पण। शीशा।
उ॰—राजति रुचिर जनक के ऐना। चंद सो बदन डहडहे नैना।
नं॰ पृ॰ १९३

ऐनि—ऐनी पु॰ १. सूर्य का पुत्र। २. मृगी। हरिणी।
उ॰—नैनन को लखि लाजति ऐनी।
म॰ ७७/२१७

ऐपन पु॰ चावल और हल्दी से बना एक मांगलिक द्रव्य।
उ॰—पावै ऐपन ओपनी कहै कुरंटक कौन।
म॰ ३७/३७२

ऐब (अ॰) पु॰ दोष।
—ई वि॰ दोषी। दुष्ट।
—दार वि॰ ऐब वाला।
उ॰—कोटि जो है ऐबदार और द्वार भयो है।
गं॰ १३/५

ऐबारा पु॰ भेड़ बकरियों को रखने का बाड़ा।

ऐया स्त्री॰ १. दादी। २. सास। ३. माँ।
४. बड़ी-बूढ़ी स्त्री के लिए सम्बोधन।

ऐयार (अ॰) पु॰ चालाक। धूर्त्त। बहुरूपिया।
—ई स्त्री॰ चालाकी। धूर्त्तता।

ऐरा पु॰ मृग-चर्म।

ऐराक (अ॰) पु॰ इराक। एक देश का नाम।
उ॰—तुरग अरब ऐराक के मनि आभरन अनूप।
म॰ ६६७/४२५
—ई [—ऐराखी] वि॰ इराकी। इराक देश की।

ऐरा-गैरा वि॰ अजनबी। बेगाना।

ऐरापति पु॰ ऐरावत हाथी।

ऐरावण[१] पु॰ १. अहिरावण। रावण का पुत्र।
२. ऐरावत नामक इन्द्र का हाथी।

ऐरावण[२] पु॰ बिजली।

ऐरावण[३] पु॰ एक नाग।

ऐरावण[४] पु॰ नारंगी। बड़हर।

ऐरावत पु॰ इन्द्र का हाथी। पूर्व दिशा का दिग्गज।
उ॰—ऐरावत-आरूढ़ अग्र-घन, लघुता जानि जु रोष भर्यौ।
सूर॰ १०/८६६/४४६
—ई स्त्री॰ १. ऐरावत की मादा।
२. रावी नदी का पुराना नाम।
३. बिजली।

ऐरावृत्त पु॰ दे॰ 'ऐरावत'।
उ॰—करोऽभिषेक 'गोविंद' ऐरावृत्त कर गंगा जल आन्यो।
गो॰ ६७/१३

ऐरेय पुं० एक प्रकार की पुरानी मदिरा।

ऐरौ पैरौ अव्य० डूबना-उतराना।
उ०—लोहू की भभक भैरो ऐरो पैरो ह्वै रह्यो।
गं० ३१४/६६

ऐल[1] पुं० इला का पुत्र। पुरुरवा।

ऐल[2] पुं० १. खलबली। परेशानी।
उ०—खलनि के खैल भैल, मनमथ-मन ऐल।
के० ३५/१४५
२. अधिकता। प्रचुरता।
उ०—भूषन भनत साहितनै सरजा के पास आइबे कौं बढ़ी उर हौंसन की ऐल है।
भू० ६२/१३६
३. समूह। भीड़। ४. सेना।
उ०—ऐलफैल खैलभैल खलक में गैलगैल।
भू० ४११/२०७
५. प्रवाह।
उ०—आइबे कौं बढ़ी उर हौंसन की ऐल हैं।
भू० ६२/१३६

ऐला[1]—**ऐलो** पुं० धूल।
उ०—बातैं मिलै अँखियाँ मिलई सखियानि के आँखिनि पारि कै ऐलो। के० I, २७/७५

ऐला[2]— अक० कुम्हलाना। मुरझाना।
उ०—दीपग फीके फूल ऐलाने। नं० ५२०/१२५

ऐलि पुं० एक कंटीली लता।

ऐलिक वि० हिरन मारने वाला।

ऐश्वर्य—ऐस्वर्य—ऐश्वर्ज पुं० धन-सम्पत्ति। वैभव।
—वान वि० सम्पत्तिशाली। वैभवशाली।

ऐस (अ०) पुं० १. ऐश। विलासिता। २. आराम।
उ०—तजन लगी है कहूँ ऐस बैस बारी की।
प० ५८१/२०१

ऐसा—ऐसो वि० (स्त्री० ऐसी) इस तरह का। इस प्रकार का। इस ढंग का।
उ०—ऐसौ तुम करो तो बिचारन कै कौन है।
घ० क० ७१/८१

ऐसा वैसा वि० मामूली। तुच्छ।

ऐसू पुं० चौपायों का एक रोग जिसमें उनका मुंह बँध जाता है वह पागुर नहीं कर सकते।

ऐहिक वि० इस लोक का। सांसारिक।

ऐहु सर्व० यह।

ओ हिन्दी का एक स्वर।

ओं अव्य० १. स्वीकृति सूचक शब्द। हाँ। अच्छा।
२. परब्रह्म वाचक शब्द ओम्। प्रणव मन्त्र।

ओंइछ— सक० न्योछावर करना। वारना।

ओंकार[1] (ओम्+कार) पुं० प्रणव मंत्र।
उ०—ओंकार, आदि बेद, असुर-हन, निरगुन, सगुन अपार। सा० ६६३/७६

ओंकार[2] पुं० सोहन नामक पक्षी।

ओंकारनाथ (ओंकार+नाथ) पुं० शिव के बारह ज्योति लिंगों में से एक जो इन्दौर राज्य में, नर्मदा नदी के तट पर है।

ओंग— सक० गाड़ी की धुरी में तेल लगाना।

ओंगा पुं० अपामार्ग। लटजीरा। एक आयुर्वेदिक औषधि।

ओंचका क्रि०वि० दे० 'औचक'।
उ०—सो ऐसे में ओंचका आइ सबै झुकाई।
च० २७/१५

ओंट— अक० गर्म होना। तचना।
सक० १. गर्म करना। तचाना।
२. कपास को चरखी द्वारा साफ करना।

ओंठ पुं० अधर। ओष्ठ। होठ।
उ०—'दास' कहा गुन ओंठ में अंजन भाल में जावक-लीक लगाए। भि० I, २७७/१५०

ओंठग— अक० १. सहारा लेना।
२. लेटना। आराम करना।

ओंढ़— सक० दे० 'ओढ़'।
उ०—तन घनस्याम पीत पट ओंढ़ें।
च० २५४/१३१

ओंध— अक० दे० 'औंधा'।
उ०—नैननि ढरत जल ज्यों गगरी ओंधति।
कुं० ३४३/११४

ओ[1] अव्य० सम्बोधन तथा आश्चर्यसूचक अव्यय।

ओ[2] पुं० १. ब्रह्मा। २. विष्णु।

ओइ सर्व० वही।
उ०—ब्रज ये हैं ऐसे ओइ।
सूर० १०/६७२/४७२

ओऊ सर्व० वह भी।

ओक[1]—**ओके** पुं० १. घर। निवास-स्थान।
उ०—हरि-आज्ञा कौं पाइ, नाइ सिर, गयो आपनैं ओक। सूर० १०/११८४/५३८
२. ग्रह-नक्षत्रों का समूह।
—दार वि० ग्रहपति।
—पति पुं० चौदह भुवनों के स्वामी।
उ०—रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, ओकपति, धरनि-पति, गगनपति, अगम बानी।
सूर० १०/१६४७/४२

ओक[२]—ओकि स्त्री० अंजलि ।
उ०—आछी ओक धरें प्यास-पीर सरसई है ।
घ० क० २३८/१६७

ओक[१] स्त्री० कै । वमन । उल्टी ।

ओखद पुं० औषधि ।
—आई स्त्री० कै करने की प्रवृत्ति ।
अक० कै या वमन करना ।
उ०—चलि वलि प्यारे पीग पैं, ओखद खात न लाज । नं० २१०/८७

ओखरि—ओखरी स्त्री० दे० 'ओखली' ।

ओखलि—ओखली स्त्री० काठ या पत्थर का बना वह बर्तन जिसमें डालकर अन्नादि कूटते हैं ।
उ०—मनु मधुकर मकरंद को ओखलि में फिर खाय । रस० ३०/३४४

ओखा[१] वि० (स्त्री० ओखी) १. खोटा । खराब । उतरा हुआ । २. ओछा । साधारण ।

ओखा[२] पुं० बहाना । मिस ।
उ०—जनु फुफु मारत डर ओखे ।
बो० १२/२६

ओग[१] पुं० कर । चन्दा ।
उ०—सूर स्याम मारग जिनि रोकहु, घर तैं लीजो ओग । सूर० १०/१५६८/६२६

ओग[२] स्त्री० गोद ।

ओगरा पुं० खिचड़ी ।

ओगह— सक० उगाहना । वसूल करना ।

ओगुन पुं० अवगुण ।

ओघ[१] पुं० १. समूह । ढेर ।
उ०—परवत सात तिलन के कीन्हें, रतनन ओघ मिलायो । सा० ३६३/३२
२. धारा । बहाव ।

ओघ[२] (अर्घ्य) पुं० मोल ।

ओघ[३]— अक० सोना । अलसाना ।

ओघट वि० अटपटा । दुर्गम ।

ओघर पुं० औघड़ । वाममार्गी साधु ।

ओचक क्रि०वि० दे० 'औचक' ।
उ०—ओचक ह्वीं मिलि गए नंद-सुत अंग-अंग रूप रसाल । च० २५४/१३१

ओचट[१] पुं० खटका । आवाज़ ।

ओचट[२] क्रि०वि० दे० 'ओचक' ।

ओछ— अक० बाल काढ़ना । बालों में कंघी करना ।

ओछका वि० औचक्के में । एकाएक । सहसा ।

ओछा—ओछो—ओछौ वि० (स्त्री० ओछी)
१. छिछोरा । गंभीरता-रहित ।
२. छोटा । तुच्छ ।
उ०—'सूरदास' प्रभु पिता मातु मैं, ओछी बुद्धि करी लरिकाइ । सूर० १०/६७५/४७३
३. साधारण । हलका ।
४. दुर्बल । कमज़ोर ।
उ०—हटपटाय के लगत हैं ओछे पिंडे भूत ।
बो० ७१/७५
—ई स्त्री० ओछापन । तुच्छता ।
उ०—हमहिं ओछाई यहै, कान्ह तुमकौं प्रतिपाले ।
सूर० १०/१६१८/६४४
—पन पुं० तुच्छता । क्षुद्रता ।

ओज पुं० १. तेज । दीप्ति । कान्ति ।
उ०—ओज तेज सब रहित सकल विधि, आरती असम समान । सूर० १०/३६७४/४२४
२. उजाला । प्रकाश ।
—इत वि० ओज-युक्त । तेजस्वी ।
—स्विता स्त्री० कान्ति । प्राबल्य ।
—स्वी वि० तेजस्वी । प्रतापी । कान्तिमय ।

ओझ पुं० १. पेट की थैली । २. आँत । अंतड़ी ।
—र पुं० पेट । आमाशय ।

ओझट पुं० मुट्ठी । चुटकी । झोंक ।
उ०—रंग रंग की ओझट छिरकति ।
नं० १६४/३४२

ओझड़[१] पुं० धक्का । झोंक ।

ओझड़[२] पुं० दे० 'ओझ' ।

ओझल—ओझिल पुं० ओट । आड़ ।
वि० १. अदृश्य । गायब । लुप्त ।
२. छिपा हुआ ।

ओझा पुं० (स्त्री० ओझाइन)
१. ब्राह्मणों की एक उपजाति ।
२. भूत-प्रेत झाड़ने वाला व्यक्ति । सयाना ।
—ई स्त्री० ओझा की वृत्ति । भूत-प्रेत झाड़ने का कार्य । झाड़-फूंक ।

ओट[१] स्त्री० १. आड़ । बचाव के लिए आधार ।
उ०—उठ्यो ढाल ते काल कह्यो ओट दीजै कहा ।
बो० ८१/१६६
२. ढाल । कवच ।
उ०—प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है ।
घ० क० ४१/६२
३. शरण । रक्षा । ४. तकिया ।
उ०—पाँह दै ओट, पनाह दै नाहै ।
शृं० २०६/६०१

ओट[2]— सक० १. कपास से बिनौले निकालना।
२. अपनी बात बार-बार कहना।
३. सहन करना।

ओट[3]—**ओटा**— सक० गर्म करना। औटाना।
ओटति व०कृ०। ओटायौ भू०कृ०।

ओटन पुं० दे० 'ओटनी'।

ओटनी—**ओटी** स्त्री० वह चरखी जिसमें दबाकर कपास से बिनौले अलग किए जाते हैं।

ओटपाय पुं० १. शरारत। दुष्टता।
उ०—कबहूँ नीके भले में ओटपाय करियै न। बो० १२/३७
२. उपद्रव।
उ०—कैसें गनै बनै जो'ब ओटपाय तब के। घ० क० २५५/१७५

ओटा[1] पुं० दीवार। आड़। ओट।
उ०—देखत रूप ठगौरी सी लागत नैननि सैन निमिख की ओटा। नं० ४३/२६४

ओटा[2] पुं० सुनारों के काम में आने वाला एक औजार।

ओठ पुं० दे० 'ओंठ'।
उ०—ओठ पके कुँदरू सुक नाक पै काहे न देखिये चोट सों बाँचे। भि० I, १०८/११३

ओड़[1] (ओड्र) पुं० गधों आदि पर प्राय: मिट्टी खोदकर ढोने वाली एक मानव जाति-विशेष।
उ०—नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं धोबी, ओड़, कुँभार। बि० ४३६/१८०
—न पुं० पशुओं पर माल ढोने का व्यवसाय।

ओड़[2] स्त्री० आड़। ओट।
सक० १. ओड़ना।
२. ऊपर लेना। स्वीकार करना।

ओड़[3]— सक० १. (हाथ) पसारना। फैलाना।
उ०—घर जाचक भीख-हित कर ओड़त कछु देहु। प० ९२/४३
२. रोकना।
उ०—सोहै अन्न ओड़े जे न छोड़े सीम संगर की। प० ६६०/२२४

ओड़व पुं० राग की जाति—जिसमें आरोह-अवरोह में पाँच स्वर होते हैं।

ओड़ा[1] पुं० १. गड्ढा। २. खाँचा। बड़ा टोकरा।
वि० गहरा। गंभीर।

ओड़ा[2] क्रि०वि० ओर। तरफ।

ओढ़— सक० १. वस्त्र से शरीर को ढँकना।
२. अपने ऊपर लेना। स्वीकार करना। सहना।
उ०—कहै कवि गंग जो भलाई तैं बुराई ओढ़ी। गं० १५२/४६
ओढ़त व०कृ०। ओढ़ा, ओढ़ी भू०कृ०।
—नि—नी—निया स्त्री० दुपट्टा। चादर।
उ०—ढके ओढ़नी लंक बक्षोज जानौ। के० II, ७/३०५

ओढ़र पुं० बहाना।

ओढ़ा— सक० पहनाना। ढकना।
उ०—तब लै हरि पलना पौढ़ाये, पीतांबर जु ओढ़ायौ। सा० ३७२/३१
ओढ़ात, ओढ़ावत व०कृ०।
औढ़ायौ भू०कृ०।

ओढ़िनी—**ओढौनी** स्त्री० दे० 'ओढ़नी'।
उ०—भुज ओढ़िनी लपेटी। कु० ११/८

ओढ़ैया वि० ओढ़ने वाला।
उ०—कंस पास हौं आइयै, कामरी ओढ़ैया। सूर० १०/३०३८/२६०

ओत[1] वि० बुना हुआ।
—**प्रोत** वि० १. भली-भाँति मिला जुला। सम्यक् गुँथा हुआ। २. सर्वावयव व्याप्त।
उ०—श्री विट्ठल ओत-प्रोत रस पागे। छी० ७०/३२
पुं० ताना-बाना। लम्बाई-चौड़ाई।

ओत[2] पुं० १. चैन। आराम।
उ०—ये लहत लै हृदय धारत, तऊ नाहीं ओत। सूर० १०/२३८०/११६
२ लाभ।
उ०—ओत पावै न मकान सो। कवि० २५/२२

ओता वि० (स्त्री० ओती) उतना।
उ०—तौ मेरी अपत करत कौरव सुत, होत पंडवनि ओते। सूर० १/२५६/६६

ओद पुं० गीलापन। नमी।
वि० १. आर्द्र। गीला। २. निमग्न।
उ०—निसि-दिन रहत केलि-रस ओद। सूर० १०/११६/२४५

ओदन पुं० पके हुए चावल।
उ०—दधि-ओदन दोना भरि दैहौं। सूर० ६/१६४/२०२

ओदर[1] पुं० दे० 'उदर'।

ओदर[2]— अक० १. फटना। विदीर्ण होना।
२. उधड़ना।

ओदा वि० (स्त्री० ओदी) १. गीला। आर्द्र।
उ०—उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ, ओदे वसन अँगौछि। सूर० १०/६०६/३८२

२. नम । तर ।

ओदार— सक० १. फाड़ना । २. उधेड़ना ।

ओध[1] वि० भरा हुआ । परिपूर्ण ।
उ०—तेरी करतूति रही अद्भुत-रस-ओध है ।
भू० २०६/१६७

ओध[2] सक० आरम्भ करना । शुरू करना ।
उ०—ऐसी भाँति भादौं आली भोर ही तें ओध्यो है । गं० २३१/६६

ओध— अक० १. फंसना । उलझना ।
२. काम में व्यस्त होना ।
ओधति व०कृ० । ओध्यो भू०कृ० ।

ओधा[1] वि० १. तिरछा । २. दे० 'औंधा' ।

ओधा[2] पुं० उपाध्याय । स्वामी ।

ओनंत वि० १. अवनत । २. झुका हुआ ।

ओनच— सक० खाट के पैताने की रस्सी को कसना ।

ओनचन स्त्री० खाट के पैताने की रस्सी ।

ओनव— अक० १. झुकना । २. घिर आना । उमड़ना ।

ओना[1] पुं० पानी का निकास ।
उ०—जाहि जु ए जिय लाग्यो है ओनो ।
गं० २७३/८२

ओना[2]— सक० कान लगाकर सुनना । ध्यान देना ।

ओनाड़ वि० बलवान ।

ओनामासी स्त्री० अक्षरारंभ । ('ओं नमः सिद्धम्' का बिगड़ा रूप) ।

ओप स्त्री० चमक । कान्ति । दीप्ति । आशा ।
उ०—कहै पदमाकर सु ओप दरसावत सी ।
प० २३/८३

—सक० चमकाना ।
उ०—पर्यास्तापह्नुति कहत कबि भूषन मति ओपि ।
भू० ८०/१४३

—ई वि० १. प्रकाशित । दीप्त । २. सुशोभित ।
उ०—तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है ।
घ० क० २३८/१६७

अक० १. चमकना । २. चौंकना ।
ओपत व०कृ० । ओप्यो भू०कृ० ।

ओपची पुं० कवचधारी सैनिक ।
उ०—जिरही सिलाही ओपची उमड़े हथ्यारन कों लिये । प० ७८/११

ओपनई स्त्री० सुन्दरता । सौन्दर्य ।

ओपना पुं० (स्त्री० ओपनी) पत्थर का वह टुकड़ा जिससे रगड़कर कटार, तलवार आदि चमकाई जाती है ।
उ०—चिंतामनि ओपना सों ओपिकै उतारी सी ।
कै० I, १५/१८६

ओपनि—ओपनी—ओपी वि० चमकीली । चमकाई हुई ।
उ०—पावै ऐपन ओपनी कहै कुरंटक कौन ।
म० ३७/३७२

स्त्री० पालिश । चमक ।

ओपार पुं० नदी के पल्लीपार । उस तह पर ।

ओपिका वि० चमकीली । चमकने वाली ।
उ०—प्रात भयै गोपिका प्रेम रस ओपिका ।
ध्रु० १/६४

ओपित वि० चमकीला । चमकदार । कांतियुक्त ।
उ०—घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज की ओज-दली । घ० क० ३१४/२०२

ओप्यौ वि० १. शृंगार-युक्त । सुसज्जित ।
२. देदीप्यमान ।
उ०—रति-सुख-स्वेद-ओप्यो आनँद बिलोकि प्यारे ।
घ० क० ३२६/२०६

ओबरिया स्त्री० दे० 'ओबरी' ।

ओबरी—ओबरि स्त्री० छोटी कोठरी ।
उ०—वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवैं ते कारे । सूर० १०/३७६२/४४३

ओभा स्त्री० दे० 'आभा' ।
उ०—देखौ री मुकुट झलक, कुंडल की ओभा ।
सूर० १०/३४६०/३७६

ओम—औम स्त्री० अमावस्या ।

ओम् पुं० ओंकार । प्रणव मंत्र ।

ओमह— अक० दे० 'उमह' ।

ओय सर्व० वह ।

ओर[1] स्त्री० तरफ । दिशा ।
उ०—इहि बानिक सौं बृषभानु-सुता, जब बाट गहैं बन-ओरन की । शृं० ६६/१७४

—ई स्त्री० ओर ।
उ०—ज्यौं मृग-सावक-जूथ मध्य, वागुर चहुँ ओरी ।
सूर० १०/१४६१/६०३

वि० पक्ष वाला ।

ओर[2] पुं० १. अंत । सिरा ।
उ०—प्रीति करै पुनि ओर निबाहै । सो आसिक सब जगत सराहै । बो० ४७/२६
२. आदि । आरंभ ।
उ०—ओर तें याने चराई पै हैं अब ब्यानी बरपाइ मो भागिन आसौं । प० ५५/३१८

—छोर पुं० आदि-अन्त । आर-पार ।

ओरम— अक० लटकना । झूलना ।

ओरमा स्त्री० इकहरी सिलाई ।

ओरहना—ओराहना पुं० उलाहना । उपालम्भ । शिकायत ।

ओरा—ओला पुं० वर्षा के साथ गिरने वाले बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़े ।

उ०—मलयज, दाख, कलिंद, सुख, ओरो, मिश्री, मीत । के० I, ३७/१२३

ओरिया वि० तरफ वाला । ओर वाला ।

ओरी अव्य० स्त्रियों के लिए सम्बोधन-सूचक शब्द । ओ ! री !

सर्व० और कोई ।

ओल[1] पुं० जिमीकन्द । सूरन ।

ओल[2] पुं० १. गोद ।

उ०—मेवा मिश्री बहु रतन, दई सबनि भरि ओल । सूर० १०/२६१५/२६२

२. आड़ । ओट । ३. शरण । पनाह ।

४. जमानत ।

उ०—आये ओल मिलावन ऊधौ । सूर० १०/३७२०/४३४

५. बंधक । गिरवी ।

उ०—कीं हमसौं हाहा करियै, कौ देहु श्रीदामा ओल । सूर० १०/२६०७/२५५

६. बहाना ।

ओल[3]— सक० १. आड़ या परदा करना । २. ओढ़ना । ३. रोकना । सहना । ४. चुभाना ।

उ०—ऐसी हू है ईश पुनि आपने कटाक्ष मृग मद घनसार सम मेरे उर ओलि है । के० I, १८/४६

ओलक पुं० आड़ । ओट ।

ओलति—ओलती—ओरती स्त्री० छप्पर का छोर या किनारा जहाँ से वर्षा का पानी जमीन पर गिरता है ।

उ०—तिन सावन दीठि सु बैठक मैं टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ । घ० क० ८६/६२

ओलम पुं० स्वर-व्यंजन । वर्ण ।

ओलरा— सक० सुलाना । लिटाना ।

ओलहना पुं० उलाहना । उपालम्भ ।

ओल—ओली स्त्री० आँचल । पल्ला । झोली ।

उ०—पसारहु ओलि भरौ पुनि फेंटी । के० I, ३५/३०

—क पुं० पर्दा । आड़ ।

उ०—विलोकति ही करि ओलिक तोही । के० I, ३८/५२

ओलिया (अ०) पुं० फकीर ।

उ०—आहि आहि करत ओरंगसाह ओलिया । भू० ४६२/२१९

ओलेभा पुं० उलाहना ।

ओल्यौ पुं० बहाना । मिस ।

ओल्हर— सक० उमड़ना-घुमड़ना । उठना । झुकना ।

ओषद पुं० दे० 'ओषधि' ।

ओषधि स्त्री० दवा ।

उ०—ओषधि कछु न बसाई । सूर० १०/३८५३/४६१

—ईश पुं० १. चन्द्रमा । २. कपूर ।

—पति पुं० दे० 'ओषधीश' ।

ओष्ठ पुं० दे० 'ओंठ' ।

उ०—बनित, ओष्ठ पुनि रदन छद । नं० ५६/७२

ओस स्त्री० बादल के जल के सूक्ष्म कण ।

उ०—मनौ भोर कन ओस । सूर० १०/२६१३/१७२

—अक० बरसना । फैलना ।

ओसर[1] पुं० (स्त्री० ओसरी) १ अवसर । समय ।

उ०—तिहिं ओसर पाउँ धारे ब्रजपति बूझन लागे बात । गो० ६७/३१

२. बारी । पारी ।

उ०—अब कै हमारी ओसरी निज भाग तैं विधि ने दई । प० १२६/१८

ओसर[2] स्त्री० बिना ब्याही गाय या भैंस ।

ओसर पुं० दालान ।

उ०—मुदित झुलावति अपनें अपनें ओसरां नवल हिंडोरो साज्यो नवल किसोर । च० १२१/७४

ओसाई स्त्री० अनाज को भूसे से अलग करने की क्रिया ।

ओसार—ओसारा पुं० दालान ।

ओसीसा स्त्री० तकिया ।

ओसेर— सक० मूंदना । ढकना ।

ओह अव्य० आश्चर्य या दुःखसूचक शब्द ।

ओहट पुं० १. दूर । २. ओट ।

ओहदा (अ०) पुं० पद । स्थान ।

ओहा पुं० थन । गाय का स्तन ।

उ०—चलि न सकति ओहनि के भार । नं० २०/२५१

ओहर[1] स्त्री० दे० 'ओझल' ।

ओहर[2]— सक० कम होना । घटना ।

ओहरी स्त्री० थकावट ।

ओहार पुं० रथ या पालकी का पर्दा । झूल ।

ओहि—ओही सर्व० वही।

ओहू सर्व० वह भी।

ओहो अव्य० हर्ष या विस्मयबोधक अव्यय।

औ एक स्वर।

औंक वि० मिला हुआ।
उ०—मन रुचि होइ नाज के औंके।
सूर० १०/१२१३/५४५

औंग— सक० गाड़ी की धुरी को तेल देकर चिकना करना।

औंगका पु० गिब्बन जाति का वानर जो सुमात्रा टापू में पाया जाता है।

औंगा वि० (स्त्री० औंगी) गूंगा। मौन।

औंगी स्त्री० चुप्पी। गूंगापन।

औंघ स्त्री० ऊँघ। तन्द्रा।
उ०—मृग छौनहिं मनो औंघ सी आवै।
नं० ४४/१२८

औंघ— अक० झपकी लेना। नींद आना।
उ०—गोरी गरबीली उठी औंघत उघारे अंग।
दे० I, ७३६/१७१

—आई स्त्री० तन्द्रा। हल्की नींद। झपकी।

औंचक क्रि०वि० दे० 'औचक'।
उ०—नाह सुख चाहि चित औंचक हँसति चौंक।
म० १७०/२३६

औंछ— सक० पोंछना। बाल काढ़ना।
उ०—दोउ भैया कछु करो कलेऊ लई बलाइ कर औंछि। सूर० १०/६०६/३८२

औंज— अक० १. उकताना। ऊबना।
२. घबराना। अकुलाना।
उ०—औंजत गागरि ढारियै, जमुना जल कें काज।
सूर० १०/२६०४/२५३

औंट— अक० दे० 'औट'।
उ०—औंट्यो दूध सद्य धौरी को।
गो० २३४/१११

—आसक० दे० 'औटा'।
औंट्यो भू०कृ०।

औंटन स्त्री० कुटहरा। जमीन में कड़ी चौड़ी लकड़ी जिस पर करवी काटी जाती है।

औंठ पु० छोर। उठा हुआ किनारा।

औंड पु० गड्ढा खोदने वाला। बेलदार।
वि० मिट्टी खोदने वाला।

औंड़ा वि० (स्त्री० औंड़ी) १. गहरा। गम्भीर।
२. चढ़ा हुआ। उमड़ा हुआ। बढ़ा हुआ।
उ०—बड़ी औंड़ी उमड़ी नदी सी फौज छेकी।
भू० ५१६/२३१

औंद—औंदा— अक० १. अकुलाना। घबराना।
२. उकताना। ऊबना।

औंध— अक० उलट जाना। पलट जाना।

औंधा—औधा वि० उलटा। उलट कर (मुँह नीचे कर) रखा हुआ।
उ०—करि कंचन के कुहूँ दुंदुभि औंधैं।
प० ३५/८६

सक० उलट देना। पलट देना।

औंरा[1]—औंला पु० आँवला। धात्रीफल।

औंरा[2] पु० बाधा। विघ्न। अटकाव।

औ[1] अव्य० और।
पु० १. अनन्त। २. शेष।
वि० अधिक।
उप० संस्कृत अव–, अप–, उप– का तद्भव।

औ[2] स्त्री० पृथ्वी।

औक— सक० बन्द करना। मूंदना।

औकन स्त्री० ढेर। राशि।

औकास पु० १. अवकाश। फुर्सत। २. खुला स्थान।
—आ पु० १. चैन। २. अवकाश।

औखद—औखध पु० दे० 'ओषधि'।
उ०—राम मेरी औखद जतनं मेरे राम हैं।
ठा० २/१

औखा पु० गाय का चमड़ा या चरसा।

औखाद स्त्री० औकात। सामर्थ्य।
उ०—मांगिन की औखाद कहा तू गाल बजावत।
बो० ५०/१८४

औखौ वि० १. टेढ़ा। २. उलटा बोलने वाला।

औगत स्त्री० १. दुर्दशा। अवगति। २. जानकारी।
—इ स्त्री० अवगति। अधोगति।
उ०—कितब वाद करत मनमोहन को तिहारि औगति कों पावे। बो० २७५/१२३

औगाह— अक० १. नहाना। २. प्रवेश करना।
३. प्रसन्न होना।
सक० १. जानना। सोचना-विचारना।
२. धारण करना। पकड़ना।

औगी स्त्री० १. पैना। २. चाबुक।
पु० कारचोवी जूते के ऊपर वाला चमड़ा।

औगुन—औगुनु पु० दे० 'अवगुण'।
उ०—जेतौ औगुनु ढूंढियै, गुनै हाथ परि जाइ।
बि० ४५३/१८६

—ई वि० निर्गुणी। बुरा। ऐबी।

औंगुरी स्त्री० अंगुली ।
औघट वि० दुर्गम । अगम्य । दुस्तर ।
उ०—घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ । सूर० १०/१४६२/६०५
पुं० घाट ।
उ०—ठाढ़ी औघट घट भरे, जो भावै तो आउ ।
कु० ५८/१७
—न पुं० अवघटन ।
औघड़ पुं० १. अघोरी । २. मनमौजी । ३. अपशकुन ।
औघर वि० १. उलटा-पलटा । अंड-बंड ।
२. विचित्र । अद्भुत ।
उ०—लेति सुघर औघर गति तान ।
सूर० १०/११८०/५३१
औचक—औचकि—औचुक अव्य० अकस्मात् । अचानक । सहसा ।
उ०—धरे भरि अँकवारि औचक, धाइ आईं बाम ।
सूर० १०/२८७६/२४०
—आय अव्य० औचक ।
औचकाँ—औचका क्रि०वि० दे० 'औचक' ।
उ०—औचकाँ उचन लागी कंचुकी रुचन लागी ।
प० ३४/८५
औचट स्त्री० कठिनाई ।
क्रि०वि० अचानक । एकाएक । बिना पहले से सोचे ।
उ०—औचट भेंट भई तहाँ, चकित भए दोऊ ।
सूर० १०/२७३५/१६७
वि० उत्सुक ।
उ०—औचट गुनि गृह बन कौं । सूर० वि०/६/३
औचनि पुं० चौदह मनु में से तीसरा ।
औचानक क्रि०वि० दे० 'अचानक' ।
औंचित वि० निश्चिन्त । बेसुध ।
औचिका पुं० १. भयङ्करता ।
२. उद्दण्डता । उचक्कापन ।
औचिती स्त्री० दे० 'औचित्य' ।
औचित्य पुं० उपयुक्तता । उचित बात या रीति ।
औछ स्त्री० दारु हल्दी की जड़ ।
औछकी वि० चौंकी हुई । घबड़ाई हुई । भ्रम में पड़ी हुई
उ०—छकी सी घुमति कछु औछकी सी बात करै ।
गं० १७५/५२
औज[1]— सक० सालना ।
अक० लगना ।
औज[2] पुं० ओज ।
औजड़ वि० उजड्ड । उद्दण्डता । अनाड़ी ।

पुं० धक्का ।
औझक—औझकि क्रि०वि० अचानक । यकायक । सहसा ।
उ०—औझक उझकि झझकीन तें सुरझि बेस ।
प० २१६/१२७
औझल पुं० दे० 'ओझल' ।
औझड़—औझर क्रि०वि० लगातार । निरन्तर ।
औट— अक० गर्म होना । खौलना । उबलना ।
उ०—ओट्यो दूध धेनु धौरी को ।
च० ३६०/१७२
ओट्यौ भू०कृ० ।
—आ सक० उबालना । खौलाना ।
उ०—रस लै-लै औटाई करत गुर ।
सूर० वि०/६३/१८
औटायौ भू०कृ० ।
स्त्री० १. उबाल । खौल । २. ताप ।
उ०—हमें मारति है बिरहागिनि औटनि ।
घ० क० १८१/१३६
—न स्त्री० उबाल ।
औटपाइ—औटपाय पुं० ऊधम । उत्पात । उपद्रव । उद्दण्डता ।
—ई वि० ऊधमी । उत्पाती । उपद्रवी ।
उ०—चिहुँटि जगाई अधराति औटपाई आनि ।
घ० क० ३८५/२२६
औठ पुं० आड़ । पर्दा ।
औटिपाँव पुं० दे० 'औटपाइ' ।
औडा— सक० १. गहिराना । २. ग्रहण करना ।
औढर वि० १. मनमौजी ।
२. शीघ्र ही प्रसन्न हो जाने वाला ।
उ०—भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ।
कवि० १५६/८०
औतर— अक० अवतार लेना । जन्म ग्रहण करना ।
उ०—दंपति सरुप ब्रज औतर्यो अनूप सोई ।
दे० I, १/४२
औतार पुं० अवतार ।
औत्कर्ष्य पुं० उत्तमता । श्रेष्ठता ।
औत्तानपादी पुं० भक्त शिरोमणि ध्रुव ।
औत्सुक्य पुं० उत्सुकता । उत्कण्ठा ।
औथरा—औथरौ वि० छिछला । उथला ।
औदक— अक० १. कूदना । २. चौंक पड़ना ।
औदरिक वि० १. बहुत खाने वाला । २. उदर संबंधी ।
औदसा पुं० दुर्दशा । दुर्गति ।
औदान पुं० १. घाल । घलुवा । २. सेंतमेंत की वस्तु ।
औदार्य पुं० उदारता । सात्विक नायक का गुण-विशेष ।

औदीच्य पुं० गुजराती ब्राह्मणों का एक भेद-विशेष ।
औदुम्बर पुं० गूलर का फल ।
वि० उदुंबर या गूलर का बना हुआ ।
औदारिज पुं० औदार्य । उदारता ।
उ०—इक बसत है बिनय तकि औदारिज को अमि ।
भि० II, ७८६/१४६
औद्यालक[१] वि० उद्यालक ऋषि के वंश का ।
औद्यालक[२] पुं० बाँबी में रहने वाले कीड़ों के बिल से निकला हुआ मधु या चेंप ।
औद्यालक[३] पुं० तीर्थ-विशेष ।
औद्धत्य पुं० अक्खड़पन । उद्दण्डता । अशालीनता ।
औद्वाहिक वि० विवाह-सम्बन्धी ।
औध[१] पुं० दे० 'अवध[१]' ।
उ०—जनम प्रभु लियौ औध में लूटि माँची ।
भि० I, १२/२१६
औध[२] स्त्री० दे० 'अवधि' ।
उ०—औध की आस बताई दगा करि राखि गए फिर स्वाँस चली करी । ठा० ३०/६
औधपुर पुं० दे० 'अवध[१]' ।
—वासी वि० अयोध्या निवासी ।
उ०—औधपुरबासी कँ कहा लौं दुख दाहिये ।
प० ६७८/२२१
औधान पुं० दे० 'अवधान' ।
औधार— सक० धारण करना । ग्रहण करना ।
औधि स्त्री० दे० 'अवधि' ।
उ०—बीती औधि आवन की । क० २८/६१
औन[१] पुं० मकान । गृह ।
औन[२]—औनि—औनू वि० दे० 'ऊन' ।
उ०—पाहन तें परमेश्वर औनू । नं० ५२८/१२५
—पन स्त्री० लघुता ।
उ०—मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही ।
कवि० १६/५
औना पौना वि० थोड़ा-बहुत । न्यूनाधिक ।
औनि स्त्री० दे० 'अवनि' ।
उ०—कुंभकर्न औरंग को औनि अवतार लैके ।
भू० ४४८/२१६
—तल पुं० दे० 'अवनितल' ।
उ०—तोसे और औनितल आज न उदार हैं ।
म० ७६/३१२
—प पुं० राजा ।
—वाल पुं० पृथ्वी-पुत्र मंगल जिसका रंग लाल माना गया है ।
उ०—इंद्रबधू अंग मैं न, रंग औनिबाल मैं ।
गं० ४१/१४
औनी स्त्री० आवनी । आगमन ।
उ०—जोहत रहति गोपाल की औनी ।
सूर० १०/४२६३/५६५
औनो पुं० घर ।
उ०—न जात कहूँ तजि नेह को औनो ।
प० २८५/१४२
औप स्त्री० दे० 'ओप' ।
औम स्त्री० वह तिथि जिसकी हानि हो गयी हो ।
उ०—अलि, अब ए तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान । बि० २७५/११६
औमल वि० अमल । निर्मल ।
औमानुषी (अ+मानुषी) वि० १. पैशाचिक ।
२. अलौकिक ।
उ०—औमानुषी ये पाँचों अंस भेद हैं ।
दे० I, ४०/५४
और अव्य० तथा । एवं ।
वि० अन्य । दूसरा ।
उ०—कहौ कुछ और, करौ कछु और, गहौ कछु और लखावत औरैं । घ० क० १८८/१४३
औरत (अ०) स्त्री० स्त्री । महिला ।
औरस[१] पुं० अपनी विवाहिता पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ।
वि० जायज । वैध ।
उ०—मैं हूँ अपने औरस पूतैं बहुत दिननि मैं पायौ ।
सूर० १०/३३६/३००
औरस[२]— अक० १. अनखना । २. रूठना ।
३. उदासीन होना ।
औरस्य पुं० दे० 'औरस' ।
औरा—औरु वि० (स्त्री० औरि—औरी) दे० 'और' ।
उ०—नख सिखहिं छबि औरि ।
सूर० १०/२२६५/११०
औरासी वि० विलक्षण । विचित्र ।
उ०—सोइ संज्ञा देखति औरासी ।
सूर० १०/२६६७/१८३
औरेख— अक० दे० 'अवरेख' ।
औरेब पुं० १. कुटिल चाल । २. चाल भरी बातें ।
और्ध्वदेव पुं० अन्त्येष्टि कर्म ।
—इक वि० १. मृतक या मृत्यु सम्बन्धी ।
२. अन्त्येष्टि ।
और्व[१] पुं० बड़वानल ।
और्व[२] पुं० नौनी मिट्टी का नमक ।

और्व[3] पुं० पुराणानुसार भूगोल का वह दक्षिण भाग जहाँ नरक है।

और्व[4] पुं० १. भृगुवंशीय एक ऋषि। २. उर्वशी का पुत्र।

—शेय पुं० १. उर्वशी के पुत्र। २. वशिष्ठ। ३. अगस्त्य।

औल[1] पुं० १. खन्दक। २. गुहा। गुफा। ३. पोल।

औल[2] पुं० जंगली ज्वर।

औल— अक० तप्त होना।

औलम्बन पुं० दे० 'अवलंबन'।

औलाद (अ०) स्त्री० संतान। संतति।

औलि स्त्री० १. गोद। २. आँचल।

औषध—औषद पुं० औषधि। दवा।

उ०—दीजै आनि औषद वियोग-रोगराज की।
घ० क० ४४८/२४६

—इ—ई स्त्री० दे० 'औषध'।

उ०—तजि पियूख कोऊ करत कटु औषधि को पान। प० ८३/४२

—ईश पुं० चन्द्रमा।

उ०—विधु, सुधांसु, सुभ्रांसु पुनि, औषधीश, निसिनाथ। नं० ६/१०२

—मूल स्त्री० औषधि।

उ०—औषध-मूल की चाइ लगी। शृं० ८८/२४०

औसर—औसरु—औसरो पुं० दे० 'अवसर'।

उ०—जो कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति। घ० क० ६/४२

औसा— सक० पाल में रखना। किसी कच्चे फल को पकाने के लिए उसे भूसे आदि में दबाना।

औसान[1] पुं० दे० 'अवसान'।

औसान[2] (अ०) पुं० होश-हवास। सुध-बुध।

उ०—'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, फुरत नहीं औसान। सूर० १०/३२१३/३३०

औसि अव्य० अवश्य। निश्चय।

औसेर[1] स्त्री० १. चिन्ता। उलझन।

उ०—मिलत करत औसेरे पाछिली नैन नीर ढरि आए। च० ६६/३४

२. अटकाव। उलझन।

औसेर[2]**—** अक० चिन्ता में पड़ना।

औहठी वि० बुरे हठ वाला।

उ०—औहठी हठीले हने बदर जहाँन रिपु।
गं० ३७६/११६

औहत स्त्री० १. कुगति। २. अपमृत्यु।

औहाती स्त्री० सुहागिन। सुहागवती।

औक्षक पुं० बैलों का समूह।

क नागरी वर्णमाला का प्रथम व्यंजन।

कं पुं० १. जल। २. अग्नि। ३. मस्तक।

उ०—सिभु भषकै पत्र बन दो बनै चक्र अनूप।
देव कं को छत्र छावत सकल सोभा रूप॥
सूर०

४. सुख। ५. अग्नि। ६. काम। ७. सोना।

कँउधा पुं० बिजली की चमक।

कंक—कङ्क पुं० १. एक मांसाहारी पक्षी। सफेद चील। काँक। २. बड़ा आम। ३. क्षत्रिय। ४. यम। ५. युधिष्ठर का एक नाम, जो विराट के यहाँ ब्राह्मण बनने पर रखा था। ६. महारथी यादव, यह वसुदेव का भाई था। ७. एक प्रकार के केतु—यह वरुण के ३२ पुत्रों में से एक थे। ये प्रायः अशुभ होते हैं। ८. बगुला।

—पत्र पुं० १. कंक का पर। २. वह बाण जिस पर कंक का पर लगा हो।

कंकई स्त्री० नैपाल की एक नदी विशेष, जो सिक्किम और नैपाल की सीमा पर बहती है।

कंकड़—कंकर पुं० १. चूना और चिकनी मिट्टी मिश्रित पृथ्वी से निकलने वाला खनिज पदार्थ। २. पत्थर का छोटा टुकड़ा।

—ईला वि० कंकड़ मिला हुआ।

कंकड़ी स्त्री० १. छोटा कंकड़। २. कण। छोटा टुकड़ा।

कंकण—कङ्कण पुं० १. कलाई का आभूषण-विशेष। कड़ा। चूड़ा। २. विवाह के समय पर कन्या के हाथ में सूत्र व पीले वस्त्र सहित बाँधा जाने वाला आभूषण।

कंकणास्त्र पुं० वाल्मीकि के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र विशेष।

कंकन—कंकना पुं० दे० 'कंकण'।

उ०—कर कै, कंकन नहिं छूटै।
सूर० ६/२५/१६०

—चार पुं० विवाह के अवसर पर वर-वधू की कंगना खोलने की रस्म।

उ०—प्रथम ब्याह बिधि होइ रही हो कंकन-चार बिचारि। सूर० १०/१०७३/५००

—छत पुं० कंगन के गड़ने से पड़ने वाला चिह्न।

उ०—उर नखछत कंकनछत पाछैं सोभित हैं रुहिरातै। सूर० १०/२६८६/१८७

—भग्न पुं॰ चूड़ी का टुकड़ा।
उ॰—अहि, कटाक्ष, धनु, बीजुरी, कंकनभग्न बिसेखि। के॰ I, ८/११६

कंकपर्वा पुं॰ एक प्रकार का सर्प-विशेष।

कंका—कङ्का स्त्री॰ वसुदेव की स्त्री, यह राजा उग्रसेन की लड़की और कंक की बहिन थी।

कंकाल—कङ्काल पुं॰ हड्डियों का ढाँचा। ठटरी।
—इनी स्त्री॰ दुर्गा।
—वि॰ झगड़ालू। कर्कशा।
उ॰—कंकालिनी कूबरी कलंकिनि कुरुप तैसी, चेट-किनि चेरी ताके चित्त को चाह कियो। प॰ ४८६/१८३
—ई पुं॰ किंगरी बजाकर भीख माँगने वाली एक नीच जाति।
स्त्री॰ १. दुर्गा का एक स्वरूप। २. प्रेतिनी।
वि॰ दे॰ 'कंकालिनी।
—माली वि॰ हड्डी की माला पहनने वाला।
पुं॰ १. शिव। २. भैरव।

कंकेर पुं॰ कड़ुआ पान विशेष।

कंकेरू पुं॰ कौआ।

कंकेलि पुं॰ अशोक वृक्ष।
उ॰—लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि। म॰ ६०६/४१८

कँख स्त्री॰ कोख। गर्भ।

कँखवारी स्त्री॰ बगल में होने वाली फुड़िया। कँखवार। कखवाली। ककराली।

कँखिया—कखिया स्त्री॰ दे॰ 'काँख'।

कँखोरी—कखौरी स्त्री॰ १. दे॰ 'काँख'।
२. दे॰ 'कंखवारी'।

कँगन—कँगण पुं॰ दे॰ 'कंकण'।
उ॰—मोर मुकुट सुमौर मानो, कटक कंगन भास। सूर॰ १०/१०७१/४९८

कँगना[१] पुं॰ कंकण बाँधते व खोलते समय गाया जाने वाला गीत-विशेष।

कँगना[२] स्त्री॰ पहाड़ी मैदानों में होने वाली घास-विशेष।

कँगनी स्त्री॰ १. छोटा कँगना। २. लाख की बनी दंदानेदार चूड़ी। ३. कार्निस। ४. साँवा की जाति का एक अन्न, काकुन।

कंगला वि॰ दे॰ 'कंगाल'।

कंगाल—कङ्गाल वि॰ १. भुक्खड़। अकाल का मारा।
२. निर्धन। दरिद्र। गरीब।
—ई स्त्री॰ निर्धनता। दरिद्रता। गरीबी।

—माला स्त्री॰ दीन-दुखियों की पंक्ति।

कंगीर पुं॰ दे॰ 'कंगाल'।
उ॰—कंचन कंगीरनि कौं, चीर दोवागीरनि कौं। हरि॰ १०/५

कंगु स्त्री॰ कँगनी। धान्य।

कँगुरिया स्त्री॰ दे॰ 'कनगुरिया'।

कँगूरा—कङ्गूरा (फा॰) पुं॰ शिखर। चोटी। बुर्ज।
उ॰—कोट औ कंगूरन की कौन सरबत है। बो॰ ४२/१३६

कँगूरेदार वि॰ कँगूरे वाला।

कंघा—कङ्घा पुं॰ १. बाल सँवारने-सुलझाने के लिए लकड़ी व सींग की बनी चीज।
२. जुलाहों का एक औजार-विशेष।

कंघी—कङ्घी स्त्री॰ १. दोनों ओर दाँते वाली छोटी पतली कंघी।
२. गज़, डेढ़ गज़ व लम्बी बाँस की तीलियों का बना हुआ जुलाहों का औजार-विशेष।
पुं॰ पान के आकार वाली पत्तियों का ५ या ६ गज ऊँचा पौधा-विशेष।

कँघेरा पुं॰ कंघा बनाने वाला। ककहगार।

कंच पुं॰ दे॰ 'काँच'।

कंचन—कञ्चन पुं॰ १. सोना। सुवर्ण।
उ॰—कंचन के बिछुवा पहिरावत, प्यारी सखी परिहास बढ़ायो। म॰ २६६/२६९
२. धन-सम्पति। ३. धतूरा।
४. एक प्रकार का कचनार। रक्त कांचन।
स्त्री॰ एक जाति-विशेष। इस जाति की स्त्रियाँ वेश्या-वृत्ति द्वारा अपना पेट पालती हैं।
वि॰ १. निरोग। स्वस्थ।
२. स्वच्छ। मनोहर। सुन्दर।
—इयाँ स्त्री॰ छोटे फूल और पत्ती वाला कचनार-विशेष।
—ई स्त्री॰ वेश्या।
—कलस पुं॰ स्तन।
उ॰—कनक थली ऊपर लसै कंचन-कलस बिसाल। प॰ ६३/४०
—कुंभ पुं॰ स्तन।
उ॰—मनहूँ सिंदूर-पूर-दुति-दरसित, कंचन कुंभ दरार लई री। सूर॰ १०/२६६४/१८२
—पुर पुं॰ लंका।
उ॰—कंचनपुर पति को जो भ्रांता, ता प्रिय बलहि न आवत। सूर॰ १०/३६२३/३९८
—पर (पति) रावण।

उ०—कंचनपुर पति की जो भ्राता ।
सूर० १०/३६२३/३६८

—पुरुष पुं० स्वर्ण पत्र पर खुदी पुरुष की मूर्ति—यह मृतक कर्म में महाब्राह्मण को दी जाती है ।

कंचु—कञ्चु स्त्री० दे० 'कंचुक' ।

कंचुक—कञ्चुक पुं० (स्त्री० कंचुकि—कुंचुकी)
१. जामा । चोलक । अचकन ।
२. चोली । अंगिया ।
उ०—टूक टूक कंचुक कियौ करि कमनैती काम ।
म० ६१/३७६
३. बख्तर । कवच । ४. केंचुल ।

कंचुकी[1]**—कञ्चुकी** स्त्री० दे० 'कंचुक' ।
उ०—कंचुकि आप कसै अरु खोलहि ।
बो० ४६/४७

कंचुकी[2] पुं० १. रनिवास के दास-दासियों का अध्यक्ष । अंतःपुर रक्षक ।
२. द्वारपाल । ३. साँप ।
४. छिलके वाला अन्न—जौ, चना इत्यादि ।

—बंद स्त्री० चोली का बंधन ।
उ०—कंचुकि-बंद तोरैं ये कसैं, सो समुझि परत नहिं मोहि । च० ३६४/१७३

कंचुरि—कंचुरी—कंचुलि—कंचुली स्त्री० साँप का केंचुल ।
उ०—कंचुरि ज्यौं त्यागि फनिग, फिरत नहीं तैसें ।
सूर० १०/२२३७/६६
उ०—मानौं कंचुलि तजि दीनी ।
सूर० १०/१६६४/६६३

केंचुवा पुं० दे० 'कंचुक' ।

कंज—कंजु—कञ्ज पुं० १. ब्रह्मा । २. कमल ।
उ०—मानहुँ कंज मिलत ससि कौं लिये ······।
सूर० १०/१५६८/६३५
३. चरण की एक रेखा जिसे कमल या पद्म कहते हैं । यह विष्णु के चरण में मानी गई है ।
४. अमृत । ५. केश ।

—अरन्य (कंजारन्य) पुं० कमल वन ।
उ०—कंजारन्य ताल सुख दायक । बो० २६/१६३

—कोष पुं० कमल की कली के बीच का भाग ।

कंजई वि० कंजे रंग का । धुंए के रंग का । खाकी ।
पुं० १. खाकी रंग ।
२. वह घोड़ा जिसकी आँख कंजई रंग की होती हैं ।

कंजज पुं० ब्रह्मा ।
उ०—कंजज की मति सी बड़भागी ।
के० II, २४/२८५

कंजड—कंजर—कञ्जड़ पुं० एक खानाबदोश जाति ।

कंजा[1]**—कञ्जा** पुं० एक कँटीली झाड़ी-विशेष ।

कंजा[2] वि० १. कंजे रंग का । गहरे खाकी रंग का ।
२. जिसकी आँख कंजे रंग की हों ।

कंजावलि स्त्री० एक वर्ण वृत्त । इसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण और दो जगण तथा एक लघु होता है ।

कँजास पुं० कूड़ा ।

कँजिया— अक० १ दहकते हुए अंगारे का ठंडा पड़ना ।
२. मुरझाना ।

कँजुवा पुं० बालों से निकाले जाने वाले अन्नों का एक रोग-विशेष ।

कंजूस—कञ्जूस वि० कृपण । सूम । जो धन खर्च न करे ।

—ई स्त्री० कृपणता । सूमपन । उदारता का अभाव ।

कंट—कँट—कण्ट पुं० दे० 'कँटक' ।
वि० कँटीला ।
उ०—जनि धावहु बलि चरन मनोहर कठिन कंट मग ऐनु । सूर० १०/५०२/३४६

—ईला—ईले वि० १. काँटेदार । २. तिरछी ।
उ०—बरुनी कँटीली भौंहैं कुटिल कठारी सीये ।
गं० १८६/५५

—ईलो वि० १. तेज धार वाला ।
२. काँटों से भरा ।

—नाल पुं० १. काँटों से भरी डंडी ।
२. अस्त्र-विशेष ।

कंटक पुं० १. काँटा ।
उ०—कंटक सौं कंटक लै काढ़यौ ।
सूर० १०/३८२२/४५५
२. सुई की नोंक । ३. क्षुद्र शत्रु ।
४. वाम मार्ग का विरोधी पुरुष । ५. पशु ।
६. विघ्न । बाधा । ७. रोमांच ।
८. ज्योतिष शस्त्रानुसार जन्म-कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान ।
९. बाधक । विघ्नकर्ता ।

—इत वि० १. कांटेदार ।
२. रोमांचित । पुलकित ।

उ०—चुभत करनि कंटकनि तौ कत कंटकित कपोल । म० १६०/३८१

—ई वि० काँटेदार । कँटीला ।

कंटकाई वि० दे० 'कंटकारी' ।

उ०—ओरनि कँटीले कंटकाई के से पात हौ । गं० १८६/५५

कंटकारी स्त्री० १. भटकटैया । कटेरी । २. सेमल ।

कंटकाल पुं० १. कटहल । २. काँटों का घर ।

कंटकी[1] वि० दे० 'कँटकी' ।

कंटकी[2] पुं० १. छोटी मछली । कँटवा । २. खैर का पेड़ । ३. बाँस । ४. गोखरू ।

कंटकी[3] स्त्री० दे० 'कंटकारी' ।

कंट्यानी वि० दे० 'कंटकित' ।

उ०—मनमोहन-छबि पर कटी, कहै कँट्यानी देह । बि० ६८८/२८४

कंटाइन स्त्री० १. चुड़ैल । भूतनी । डाइन । २. दुष्टा स्त्री । कर्कशा स्त्री ।

कँटिआ— अक० अँकुरित होना ।

उ०—सो हरी हरीं······कँटि आइबे को जनु बीज नए । ठा० १११/२६

कंठ—कण्ठ पुं० १. गला । टेंटुआ ।

उ०—मुकुताहल कंठ तें टूटि पर्यो सुलगी तिय नेकु निहारन कौं । गं० ११४/३७

२. स्वर । आवाज़ । शब्द । ३. किनारा । ४. हँसला । कंठा । ५. मदन वृक्ष ।

क्रि०वि० निकट । उपकंठ ।

उ०—बसत त्रिबिक्रमपुर सदा जमुना-कंठ सुठार । भू० २६/१३३

—अग्र वि० कंठस्थ । जबानी ।

—आ पुं० १. गले का हार ।

२. तोते आदि पक्षियों के गले की रंग-बिरंगी रेखा ।

३. कुरते व अँगरखे का गले की ओर रहने वाला अर्धचन्द्राकार भाग ।

—का पुं० गले का हार ।

उ०—जलज कंठुका मुक्ता कानन । सरदचंद सम सोहत आनन । बो० १५/६८

—कूजिका स्त्री० वीणा ।

—गत वि० गले में आया हुआ । गले में अटका हुआ ।

—नील पुं० नीलकंठ । महादेव ।

उ०—कंस के कन्हैया कामदेवहू के कंठनील । भू० ४१०/२०६

—नीलता स्त्री० गले की श्यामता ।

उ०—नीलकंठ की कंठनीलता सोऊ लखियति फीकी । बो० ६/२८

—मनि पुं० गले में पहना गया रत्न ।

उ०—बाजूबंद कंठमनि भूपन निरखि-निरखि सचु पावैं । छी० ११०/४८

—माल—माला स्त्री० १. गले का एक रोग जिसमें गले में लगातार फुड़ियाँ निकलती हैं । २. गले का आभूषण ।

उ०—कंठी कंठमाला भुजबंध बरा बाजूबंद । बो० ४१/१०४

—भूषा पुं० हार । गले का गहना ।

—ला पुं० गले में पहनने का बच्चों का एक गहना ।

—श्री स्त्री० १. सोने का जड़ाऊ गले में पहनने का आभूषण-विशेष ।

२. पोत की कंठी । गुरिया ।

—सरी—सिरी स्त्री० दे० 'कंठश्री' ।

उ०—जो न पत्याइ ग्वालिनी हम को कंठसरी लै राखि । कं० १३/८

—स्थ वि० १. गले में अटका हुआ । कंठगत । २ जुबानी ।

—हरिया स्त्री० कंठी ।

—हार पुं० गले में पहनने का गहना ।

कंठ्य—कण्ठ्य वि० गले से उत्पन्न । जिसका उच्चारण कंठ से हो ।

पुं० हिन्दी वर्णमाला के कंठ से उच्चारण होने वाले वर्ण यथा—अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग ।

कंठी—कण्ठी स्त्री० छोटी गुरियों का कंठा । तुलसी, चंपा आदि के गुरियों की गले में पहिनने वाली माला ।

उ०—कंठी कंठमाला भुजबंध बरा बाजूबंद । बो० ४१/१०४

—धारी पुं० वैरागी । भगत ।

कंठीख—कण्ठीख पुं० १. सिंह । २. कबूतर । ३. मतवाला हाथी ।

कंडा[1]**—कण्डा** पुं० पथा हुआ सूखा गोबर जो जलाने के काम आता है ।

कंडा[2] पुं० मूंज के पौधे का डंठल । सरकंडा ।

कंडिका स्त्री० १. वेद की ऋचाओं का समूह । २. वैदिक ग्रंथों का एक छोटा वाक्य, खंड या अवयव । पैरा ।

कंडो[1] स्त्री० १. छोटा कंडा। उपली। २. सूखा मल।

कंडा[2] स्त्री० बाँस की गहरी गोल टोकरी जिसमें ऊपर उठाने को गोलाकार बाँस की खप्पच लगी होती है।

कंडील (फा० कंदील) स्त्री० मिट्टी, अबरक या कागज की बनी हुई लालटेन जिसका मुँह ऊपर को होता है।

कंडु स्त्री० खुजली। खाज़।

कंडुवा पुं० बाल वाले अंगों का एक रोग-विशेष।

कंडेरा पुं० एक जाति विशेष—पहले यह तीर-कमान बनाने का काम करती थी किन्तु अब यह रुई धुनने का कार्य करती है।

कंडौर पुं० अन्न का एक रोग-विशेष।

कंडौरा (कंडा+औरा) पुं० १. गोबर पाथने का स्थान। २. कंडा रखने का घर। ३. कंडों का ढेर।

कंत (सं० कांत) पुं० १. पति। स्वामी।

उ०—कंत रमैं उर अंतर में······।

घ० क० ४३/६३

२. मालिक। ईश्वर।

कंती स्त्री० काँति।

उ०—नख मेटत मनि-मानिक-कंती।

सूर० १०/२६०१/२५०

कंथ पुं० दे० 'कंत'।

उ०—अति कोपित कंथ भयो जबहीं।

बो० १५/६२

कंथरा पुं० शिकार के चमड़े की कथरी।

उ०—स्यारथरी में खुरी पुँछ कंथरे सिंहथरी मुकता-गज पावै। गं० ४१६/१२८

कंथा स्त्री० गुदड़ी। कथड़ी।

उ०—कंथा पहिरि बिभूति लगाऊँ, जटा बँधाऊँ केस। सूर० १०/३२२६/३३३

—**धारी** वि० गुदड़ी धारण करने वाले।

उ०—कंथाधारी, विषधारी, आधारी, त्रिसूलधारी।

गं० ४/२

कद[1] (सं) पुं० १. गूदेदार बिना रेशे की जड़ जैसे—सूरन शकरकंद, मूली आदि।

२. सूरन। ३. बादल।

उ०—सुंदरि मिलन चली आनँद के कंद कों।

म० १४६/२८३

४. तेरह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त-विशेष।

५. छप्पय छन्द के ७१ भेदों में से एक।

६. योनि का एक रोग-विशेष। ७. गेंद।

—**मूल** पुं० १. पौधे जिनकी जड़ भूनकर या उबालकर खाई जाती है। २. मूली।

कंद (फा०) पुं० १. जमाई हुई चीनी। मिश्री।

२. बरफी।

उ०—गुल गुलकंद कों सुमंद करि दाखन कों दुखेहु दुचंद कलाकंद की कमाई सी।

प० ३८/३१३

—**कला** स्त्री० कलाकंद। एक प्रकार की बरफी।

उ०—मीठो महा मिसरी तें मनोहर को कहै कंद-कलान कै तैंसो। प० ८/२३८

कंदन—कंदना पुं० नाश। ध्वंस।

उ०—मोकों न कछू सुहाइ, करै लाम-कंदना।

सूर० १०/१११५/५०६

कंद— सक० नाश करना। मारना।

कंदर—कन्दर—कन्दरा पुं० गुफा।

उ०—गृह गिरि-कंदर करे अपार।

सूर० २/२०/१००

कंदरप—कंदर्प—कन्दर्प—कंद्रप पुं० कामदेव।

उ०—प्रगट दरप कंदरप को। म० १७६/३२६

उ०—पुनि कदर्प बिनास पान बीरा अति करहीं।

बो० ४४/१३७

कंदल पुं० १. नया अँखुआ। २. कपाल। ३. सोना। ४. वाद-विवाद। कचकच।

कंदला[1] पुं० चाँदी की वह लबी छड़ जिससे तारकश तार बनाते हैं। पासा।

कंदला[2] (सं० कन्दल) पुं० एक प्रकार का कचनार।

कंदसार पुं० १. नंदनवन। इन्द्र का बगीचा।

२. हिरन की एक जाति।

कंदा पुं० १. शकरकन्द। २. घुइयाँ। अरुई।

कंदिर वि० मीठा।

उ०—केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर मे।

घ० क० २६४/१६३

कंदुआ पुं० बाल वाले अन्न का एक रोग। इसमें दाना नहीं पड़ता। कंडौर।

कंदुक पुं० १. गेंद।

उ०—कंदुक केलि करत सुकुमारी।

सूर० १०/११६४/५४०

२. गोल तकिया। ३. सुपारी।

४. एक प्रकार का वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण और एक गुरू होता है।

—**तीर्थ** पुं० ब्रज में श्री कृष्णचन्द्रजी के गेंद खेलने का स्थान-विशेष।

कंदूरी स्त्री० कुंदरु । बिंबा ।

कँदेला पुं० दे० 'कंधेला' ।

उ०—टूटत हार बार नहिं बांधैं। उघरो सीस कँदेला कांधैं । बो० ४३/६५

कंदेला वि० मलिन । मैला । मलयुक्त ।

कंदोरा पुं० कमर में पहनने का तागा ।

कंध—कंधा पुं० मनुष्य के शरीर का वह भाग जो गले और मोढ़े के बीच में है । कंधा ।

उ०—लठ तें लटकि लटि कंध पै ठहरि गो । प० २२५/१२६

—नी स्त्री० किंकणी । मेखला । कमर में पहनने का एक गहना ।

कंधर पुं० १. गर्दन । ग्रीवा ।

उ०—कंधर की धरमेरू सखी री । सूर० १०/२०५७/६२

२. बादल । ३. मोथा ।

कंधार[1] पुं० १. अफगानिस्तान के एक नगर और प्रदेश का नाम ।

कंधार[2] (सं० कर्णधार) पुं० केवट । मल्लाह ।

कंधाबर स्त्री० १. कंधे पर डालने की चद्दर-विशेष ।

२. जुए का वह भाग जो बैल के कंधे के ऊपर रहता है ।

कंधेला (कंधा+ऐला) पुं० साड़ी का वह भाग जो कंधे पर रहता है ।

कँधैया पुं० १. श्रीकृष्ण । २. प्रिय व्यक्ति ।

३. बहुत सुन्दर लड़का ।

कँपकँपी स्त्री० थरथराहट । काँपना ।

कंपन पुं० दे० 'कँपकँपी' ।

उ०—उर आए रति पिय सोच जँभाई कंपनो । कृ० ३३१/७२

कंप पुं० १. कँपकपी । काँपना ।

२. शृंगार के सात्विक अनुभावों में से एक ।

उ०—त्यों पदमाकर देखती हौ तनकौ तन कंप न जात सम्हारो । प० ३०/८४

३. उभड़ी हुई कंगनी ।

अक० १. हिलना । डोलना ।

२. भयभीत होना । डरना ।

कँपत व०कृ० । कँप्यौ भू०कृ० ।

—इत वि० १. काँपता हुआ ।

उ०—तोरत कंपित करन सों मुकता समुझि नछत्र । प० २७१/६६

२. अस्थिर । चलायमान । चंचल ।

३. भयभीत । डरा हुआ ।

—न पुं० दे० 'कँपकँपी' ।

—मान वि० काँपता हुआ । कंपायमान ।

उ०—कंपमान उर क्यौंहू धीरज धरत है । क० ४८/३७

कंपा[1] पुं० बाँस की तीलियाँ जिसमें लासा लगाकर बहेलिया चिड़िया फँसाता है ।

उ०—थाको तन कंपा भयो झंपा गगन बनाय । र० १२३/२७५

कंपा[2]—कँपा— सक० १. हिलाना ।

२. भय दिखाना । डराना ।

—यमान वि० हिलता हुआ । कम्पित ।

कंपिल पुं० फर्रुखाबाद जिले में एक कस्बा । यह पांचाल राज्य की राजधानी तथा महारानी द्रौपदी का जन्म स्थान एवं स्वयंवर स्थान कहा जाता है ।

कंपू पुं० पड़ाव । डेरा ।

उ०—"कंपू बन बाग के कंदब कपतान……।" प० ६३/३२०

कंबर[1]—कंबल पुं० कंबल (भेड़ की ऊन का बना मोटा कपड़ा) ।

उ०—देहु कान्ह ! कांधे कौ कंबर । कृ० ६६/४३

कंबर[2] पुं० काले रोएँ वाला बरसाती कीड़ा-विशेष ।

कंबु पुं० १. शंख ।

उ०—कंबु कंठ सम कंठ बिराजत । बो० ११/२६

२. शंख की चूड़ी । ३. घोंघा । ४. हाथी ।

कँबुक पुं० दे० 'कंबु' ।

उ०— तब हरि पूंछ गह्यौ दच्छिन कर, कँबुक फेरि सिर वारि । सूर० १०/३०५८/२६५

कंमर स्त्री० दे० 'कमर' ।

उ०—पहिरि कंठविच किंकिनी कसि कंमरविच हार । प० ४४३/१७५

कंमान—(फा०) स्त्री० दे० 'कमान' ।

उ०—ते लड़े प्रथम कंमान बान । बो० २७/१६२

कँवरी स्त्री० पाचास पान की गड्डी । चार कँवरी की एक ढोली होती है ।

कँवल पुं० दे० 'कमल' ।

उ०—ब्रह्म-हत्या तैं पलानैं, दुरे कँवल भृनाल । ना० ६/३

—आ स्त्री० कमला । लक्ष्मी ।

उ०—नवनिद्धि घर-घर फिरत कँवला गोप कुल गन अलिन मैं । ना० १/३२

कंस पुं० १. काँसा। २. प्याला। ३. मँजीरा। झाँझ।
४. काँसे के बर्तन।
५. सूरसेन देश (मथुरा) के राजा उग्रसेन का लड़का, जो श्रीकृष्ण का मामा था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।
उ०—कंस को मरैया, बलबंस को धरैया। गं० ११/४

—अराति पुं० श्रीकृष्ण।

—ताल पुं० एक प्रकार का बाजा। करताल। झाँझ।
उ०—कंसताल कटताल बजावत, श्रृंग मधुर मुँह-चंग। सा० १०७५/८५

—पात्र पुं० १. काँसे का बर्तन।
२. चार सेर वज़न की एक तौल।

—वाल पुं० एक प्रकार का बाजा। झाँझ।

कंसासुर पुं० दे० 'कंस'।
उ०—चौकि परयौ कंसासुर सुनिकैं, भीतर चल्यौ परात। सूर० १०/१३६६/५८८

कँहीरा पुं० इन्द्रायन।
उ०—पूरन भा की खन-खन बाँकी एँडी ललित कँहीरा। बो० ३८/१०३

कइक—कइथक वि० एकाधिक। एक से अधिक।
उ०—कइक हरि फूल डारत, कइक काँकरी। ना० २७/६

कइत क्रि०वि० तरफ। ओर।

कई[1] वि० अनेक। विविध।

कई[2] स्त्री० काई।
उ०—सरिता संजम स्वच्छ सलिल सब, फारी काम कई। सूर० ३३४२/३५६

कउ क्रि०वि० कोई। कुछ।

कउतक—कउतग वि० दे० 'कौतुक'।
उ०—गोपी और निरखि रही कउतक, पलक-पलक नहिं लागैं। ना० २५/८

कउन वि० कौन।

कउस्तुभ स्त्री० कौस्तुभ (मणि)।
उ०—बरन स्यांम घन, कंठ कउस्तुभ मनि। ना० ११५/२७०

ककई स्त्री० १. छोटा कंघा, जिसमें दोनों ओर दाँत होते हैं। कंघी।
२. जुलाहों का एक औजार।
३. वृक्ष-विशेष।

ककड़ी—ककरी स्त्री० ककड़ी। एक प्रकार का लम्बा फल जो फैलने वाली बेल में लगता है।
उ०—ककरी कचरी अरु कचनार्‌यौ। सूर० १०/१२१३/५४५

ककना पुं० [स्त्री० ककनी] दे० 'कंगन'।
उ०—ककना पटेला चूरी रत्नचोक जारी सी। बो० ४१/१०४

ककनू पुं० पक्षी-विशेष जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह जब गाता है, तब इसके घोंसले में आग लग जाती है और साथ ही यह भी जल कर भस्म हो जाता है।

ककमारी स्त्री० एक बड़ी लता-विशेष जिसके फल जंतुओं के लिए मादक होते हैं।

ककराली (काँख+वाली) स्त्री० दे० 'कँखौरी'।

ककरासिंही पुं० एक औषधि-विशेष।

ककराहा पुं० फल और वृक्ष-विशेष।
वि० कँकरीला। पथरीला। बजरीयुक्त।

ककरेजा पुं० [स्त्री० ककरेजी] बैंगनी रंग।

ककरौंदा पुं० खट्टा फल-विशेष।

ककरौल पुं० एक वन्य फल विशेष जो तरकारी बनाने के काम आती है।

ककवा पुं० कंघा।

ककहरा पुं० १. 'क' से 'ह' तक की वर्णमाला। व्यंजन वर्ण।
२. किसी विषय की आरम्भिक बातें।

ककही स्त्री० १. एक प्रकार की कपास। २. दे० 'ककई'।

कका—कक्का पुं० काका। पिता। पिता का छोटा भाई।
उ०—दो दो अनोखियै कैसें सधैं इतै आसिकी ये उतै कानि कका की। बो० ८६/१५

ककुत्स्थ पुं० इक्ष्वाकु वंशीय एक राजा। बाल्मीकि ने इन्हें राजा भगीरथ का पुत्र लिखा है।

ककुद पुं० १. बैल के कंधे और पीठ के बीच वाला ऊँचा, गोल और माँसल भाग जिसे 'डिल्ला' कहते हैं।
उ०—वृत्त बेल भनि गुच्छ अरु, ककुद, साधु के अंग। के० I, १३/११९
२. राज चिह्न। ३. पर्वत-विशेष।
वि० श्रेष्ठ। उत्तम।

ककुद्मान पुं० १. बैल। २. औषधि-विशेष।
३. पर्वत-विशेष।

ककुभ पुं० १. वीणा का झुका हुआ भाग।
२. अर्जुन नामक वृक्ष। ३. राग-विशेष।
४. पूर्वादि दिशाएँ।
उ०—सपत नगेस आठौं ककुभ गजेस कोल कच्छप नगेस धरें धरनि अखंड कौं। भू० ११४/१४९

ककुभा (ककुभ+आ) स्त्री० १. दिशा।
२. दक्ष की कन्या जो धर्म को ब्याही थी।

ककुर— अक० सिकुड़ना।
उ०—कोढ़िनी सी ककुरे कर-कंजनि।
के० I, १३/६६
ककुरे भू०कृ०।

ककूदर पुं० चूतड़ पर पृष्ठ वंश के नीचे वाला गड्ढा।

ककेड़ा पुं० एक बेल जिसके फल सर्पाकार होते हैं और तरकारी बनाने के काम आते हैं। चिचड़ा।

ककै वि० कई एक।
उ०—केसवराइ की सौंहैं ककै कछू एकनि आपु में होड़ परी। के० I, ७३/१९

ककैया स्त्री० १. छोटी पतली ईंट। २. एक बेल।

ककोदर पुं० सर्प।

ककोर[1] पुं० माथुर ब्राह्मणों का एक उपभेद।

ककोर[2]**—** सक० खरोंचना। उखाड़ना।
उ०—'सूरदास' पिय मेरे तो तुमहिं हौ जु जिय, तुम बिनु देखैं मेरी हियो ककोरत।
सूर० १०/१९४५/४१
ककोरत व०कृ०।

ककोरा पुं० दे० 'ककरौल'।
उ०—कुनरू और ककोरा कौरे।
सूर० १०/१२१३/५४५

कक्कड़ पुं० १. चिलम में भरकर पीने का तमाखू।
२. खत्रियों का एक उपभेद।

कक्ष पुं० १. कांख। २. कमरा। ३. वन।

कक्षासिखा स्त्री० काकपक्ष। पाटी।
उ०—गजरद, मुख चुकैरंड के, कक्षासिखा बखानि।
के० I, ७/१६१

कक्ष्या (कक्ष+य+आ) स्त्री० हाथी कसने का रस्सा।

कखरी स्त्री० कांख। बगल।

कगर (क+अग्र) पुं० १. कुछ उठा हुआ किनारा।
२. मेंड।
क्रि०वि० १. किनारे पर। २. निकट।
३. अलग।

कगरी स्त्री० दे० 'कगार'।
उ०—हँससुता की संदर कगरी, अरु कुंजनि की छाँही। सूर० १०/४१५७/५२६

कगरौ[1] पुं० कागज।
उ०—सब कोउ जात मधुपुरी बँचन कौनें दियौ दिखावहु कगरौ। सूर० १०/१४६४/६०५

कगरौ[2] पुं० किनारा।
उ०—और कहूँ जाइ रहैं, छाँड़ ब्रज बगरौ।
सूर० १०/१४८६/६११

कगार—कगारा—कगारौ पुं० १. ऊँचा किनारा।
२. नदी का करार। ३. ऊँचा टीला।

कगा— अक० कांव-कांव करना।

कच—कचु पुं० १. केश।
उ०—चकवा से कुच, कच बादर से छाइ रहे।
गं० ८०/२६
२. सूखे हुए फोड़े का खुरंट।
३. देवगुरु बृहस्पति के पुत्र का नाम।
उ०—कच बिनु सुक्र-सुता दुख पायौ।
सूर० ६/१७३/२०६
४. स्तन।
उ०—कच, नितंब, गुन, लाज, मति, रति अति गुरु करि मानि। के० I, १५/१२०
५. समास के शब्दों में इसका अर्थ कच्चा होता है।
—एल वि० कच्चा। अधपका।
—खुवि स्त्री० खुले हुए बालों वाली स्त्री।
—मेचक पुं० घुंघराले बाल।

कचक स्त्री० १. दब जाने से लगी चोट। कुचल जाने से लगी चोट। २. ठेस।
सक० १. कुचलना।
उ०—टूटि गे पहार बिकरार भुव-मंडल के सेष के सहसफन कच्छप कचकि के।
भू० ४७९/२२३
२. ठेस लगना।

कचकच—कचमच स्त्री० बकबक। झकझक। व्यर्थ की कहा-सुनी।

कचकचा—कचकिचा— अक० कचकच करना। दांत पीसना।
सक० बलपूर्वक पकड़ कर दबाना।

कचकड़ (कच्छ+काण्ड) पुं० कछुए का सिर।

कचका स्त्री० कछुए की पीठ।

कचनार—कचनारो पुं० एक वृक्ष विशेष जिसका फूल गुलाबी रंग का होता है और जिसकी कलियों की सब्जी बनाई जाती है।
उ०—धव प्रफुलित प्रफुलित कचनारो।
प० ७९/४२
वि० गुलाबी।

कचपच पुं० छोटे स्थान में बहुत से पदार्थों अथवा लोगों का समावेश ।
वि० गिचपिच ।

कचपची—कचपचिया—कचबची स्त्री०
१. कृत्तिका नक्षत्र । २. छोटे तारों का समूह । ३. टिकुली । बेंदी ।
उ०—कंचन की कचपची चूरिन की चमकनि ।
गं० ६१/२६

कचबच पुं० १. अधिक सन्तानोत्पत्ति ।
२. लड़कों की बोली ।

कचर— सक० १. कुचलना । रोंदना ।
उ०—कारी निसि कारी घटा कचरति कारे नाग ।
प० २४४/१३३
२. दबाना ।
३. भोजन को अच्छी तरह चबाना ।
—कूट पुं० १. मारपीट । २. घमासान युद्ध ।
३. भरपेट भोजन ।
—घात पुं० १. दे० 'कचरकूट' । २. बहु सन्तति ।

कचरकचर पुं० १. कच्चे फलों को खाते समय होने वाला शब्द ।
२. निरर्थक बातचीत अथवा बकवाद ।

कचरपचर वि० गिचपिच । सघन ।

कचरा—कचरौ—कचरिया पुं० १. कच्चा खरबूजा ।
२. कच्ची ककड़ी । ३. कूड़ा करकट ।

कचरी स्त्री० १. बरसाती फल जो सुखाकर और तलकर खाया जाता है ।
उ०—कचरी चारु चिचींड़ा सौरे ।
सूर० १०/१२१३/५४५
२. रुई का बिनौला ।
३. छिलकेदार दाल । ४. कचौरी ।
उ०—कचरी बराबरी कों चामर न भात नीको ।
र० ६६/३२५

कचला स्त्री० १. गीली मिट्टी । २. दलदल । कीचड़ ।

कचलोहू (कच्चा+लोहू) पुं० घाव से बहने वाला गंदा रक्त ।

कचवाट पुं० १. चिढ़ । २. घृणा ।

कचवाई वि० भयभीत । साहसहीन ।

कचहरी—कचैरी—कचेरी स्त्री० १. दरबार । सभा ।
२. न्यायालय । ३. कार्यालय ।

कचा— अक० १. साहस छोड़ना । हिम्मत हारना ।
२. डरना ।

कचाई (कच्चा+ई) स्त्री० १. कच्चापन । अपरिपक्वता ।
उ०—तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुंह लागि ।
बि० ३६३/१६१
२. अजीर्ण । ३. अनुभवहीनता ।

कचाकु वि० १. कुटिल । कपटी । २. दुष्ट । उद्दण्ड ।

कचाटुर पुं० जंगली मुर्गा ।

कचायन स्त्री० लड़ाई-झगड़ा । किचकिच ।

कचार पुं० कछार ।

कचार— सक० कपड़ों को पटक-पटक कर धोना ।

कचालू पुं० १. एक प्रकार की अरबी । बंडा ।
२. चाट के आलू । खट्टे-चटपटे आलू ।
३. कमरख, अमरूद, खीरा, ककड़ी आदि के नमक-मिर्च मिले टुकड़े ।

कचिया स्त्री० दाँती । हँसिया ।
वि० हरा । कच्चा ।
—हट पुं० कच्चापन ।

कची वि० अपरिपक्व । कच्ची ।
उ०—सचीहू मैं रचना कची है करतार की ।
हरि० २६/१३

कचीची स्त्री० १. दे० 'कचपची' ।
२. क्रोध के समय दाँत पीसने की स्थिति ।
३. जबड़ा । ४. दाढ़ ।

कचुल्ला पुं० चौड़ी पेंदी का कटोरा ।

कचूमर पुं० १. कुचली हुई कोई वस्तु ।
२. कच्चे आम के गूदे को कूटकर बनाया गया अचार ।

कचूर पुं० १. सुगन्ध युक्त कन्द-विशेष । २. कटोरा ।

कचो— सक० चुभाना । गड़ाना ।

कचोट स्त्री० पीड़ा । दुःख ।
सक० दुःख देना । पीड़ा देना ।
अक० व्याकुल होना ।
उ०—प्रान सुजान के गान-बिधे घट लोटें परे, लगि तान कचोटें । घ० क० २४५/१७१

कचोना—कचौना पुं० कोना । अन्तरा ।

कचोरा—कचोल पुं० (स्त्री० कचोरी) कटोरा ।
उ०—कंचनि कचोरनि में चोवा कर एकन के ।
दे० I, २५१/८६

कचौड़ी—कचौरी (कच+पूरिका) स्त्री० उर्द की दाल की पीठी भरी हुई पूरी-विशेष ।
उ०—पुरी कचौरी बहु तरकारी । बो० ३५/२२४

कच्चर वि० मैला । गंदा ।

कच्चा वि० १. जो आंच पर पका न हो । २. अपुष्ट ।
३. अस्थिर ।
४. कारखाने में जाने के पूर्व माल की दशा ।

—चिट्ठा पुं० १. गुप्त भेद ।
२. पूरा और ठीक-ठीक ब्यौरा ।

कच्छ[1] पुं० १. अनूप देश । २. कछार । तट ।
उ०—जमुना के कच्छन में नाचत कन्हाई है ।
गं० १/४५
३. जल बहुल प्रदेश । ४. कच्छ की खाड़ी ।

कच्छ[2] पुं० १. छप्पय छन्द का एक भेद ।
२. धोती की लाँग या काँछ ।

कच्छ[3] पुं० १. कछुआ ।
उ०—मच्छ रूप बीभत्स कच्छ वत्सल रस जानी ।
बो० ४४/१५५
२. तुन का पेड़ । ३. सूखे पत्तों का ढ़ेर ।

कच्छ— सक० काँछना । बाँधना ।
उ०—मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं ।
प० २५/२४३

कच्छन पुं० नटों का शृंगार या वेश ।

कच्छप पुं० १. कछुआ ।
२. विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक ।
उ०—कच्छप अघ आसन अनूप अति, डाँड़ी सहस फनी । सूर० २/२८/१०२
३. कुबेर की एक निधि ।
४. मदिरा खींचने का एक यन्त्र-विशेष ।
५. तालु का एक रोग-विशेष ।
६. विश्वामित्र का पुत्र ।
—ई स्त्री० १. कछुवी ।
२. सरस्वती देवी की वीणा ।

कच्छा पुं० १. लँगोट । २. कक्षा ।
३. बड़ी नाव जिसमें दो पतवार होते हैं ।
४. नाव का बेड़ा ।

कच्छी वि० कच्छ देश का रहने वाला ।
पुं० १. अश्व-विशेष । २. कच्छ देश का घोड़ा ।
उ०—कच्छी कछवाह के बिपच्छन के बच्छ पर ।
प० ६/३०४

कछ पुं० १. नितम्ब । २. काँछ । लाँग ।
उ०—कछ कटि छबि चंदन खोरी की ।
सूर० १०/२८७२/२३६
वि० साज सजे हुए ।
उ०—कछे से फिरैं कछ्छ के दछ्छ बछ्छी ।
प० ३५/२८०
सक० साधना । धारण करना ।
उ०—बानन के वाहिबे कों कर में कमान कछी ।
प० ५६३/२०४
कछी, कछ्यौ भू०कृ० ।

कछनी—कछिनी स्त्री० वह धोती जो घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनी जाती है । छोटी धोती ।
उ०—कछनी सुरंग बिसेख । बो० ५२/४८

कछप पुं० दे० 'कच्छप' ।
उ०—सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यो ।
सूर० ८/८/१४३

कछरा पुं० दे० 'कमोरा' ।

कछलम्पट वि० व्यभिचारी । लम्पट ।

कछवाह—कछवाहा पुं० राजपूतों की एक जाति । कूर्म-वंशी ।
उ०—कच्छी कछवाह के बिपच्छन के बच्छ पर ।
प० ६/३०४

कछार पुं० नदी तटवर्ती निम्न भूमि । खादर ।
उ०—हरैं-हरैं पूंजी सब सरकि कछार ... ।
... ० २४/२४

कछिया— सक० पहनना । धारण करना ।
—ना (काछी+आना) पुं० काछियों की बस्ती या खेत ।

कछु—कछू—कछुक—कछक—कछुव वि० कुछ । थोड़ा ।
उ०—छोटो बड़ो कछू नहिं जानत ।
छी० ३६/१५

कछुइक—कछुएक—कछुक वि० किंचित् । कुछेक, कुछ ।

कछुआ—कछुवा पुं० कछुआ ।

कछोटा—कछौटा (काछा+औटा) पुं० (स्त्री० कछोटी—कछौटी) १. लंगोट ।
२. जाँघिया । ३. 'दे० कछनी' ।
उ०—काछन कछौटी सिर थोरे थोरे काकपक्ष ।
के० III, ३८/६८६

कछोवा पुं० आसाम प्रान्त का एक जिला ।
उ०—ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीनो नृप राम ।
के० I, ४०/६७

कछौवा पुं० एक गढ़ का नाम ।
उ०—सो गढ़ दुर्ग कछौवा बसै ।
के० III, ४४/४८८

कछ्छ पुं० कच्छ देश ।
उ०—कछे से फिरै कछ्छ के दछ्छ बछ्छी ।
प० ३५/२८०

कज (फा०) वि० टेढ़ा । वक्र ।
उ०—अब्रू-ए-दु कज तेग चस्म खंजर मदहोस ।
ना० ७४६/४६६
पुं० १. तिरछापन । २. दोष । ३. कमी ।
—दार वि० १. किसी अंग की न्यूनता रखने वाला । २. टेढ़ा ।

उ०—पिचकारी दर दस्त अजायब, सजि फैंटा कजदार। ना० १४६/१७८

—पूत (कज+पूत) पुं० वह पुत्र जिसमें कोई अंग विषयक न्यूनता हो।

—बंद वि० टेढ़ा।

उ०—पीरी बंसती, फैंटा कजबंद। ना० ११४८/१७७

कजक (फा०) पुं० हाथी का अंकुश।

कजकोल (फा०) पुं० भिक्षुक का खप्पर।

कजरा पुं० काजल।

उ०—दौरि जात जी में तेरो कजरा कजाकु सो। गं० ३६/१३

—ई स्त्री० कालापन।

—रा (काजर+आरा) वि० १. काजल से युक्त। २. काजल जैसे रंग का काला।

उ०—बिनहु सु अंजन-दान कजरारे दृग देखियतु। प० १३७/४६

कजरी स्त्री० १. श्यामा गाय।

२. एक रचना का भेद जो पूर्वी प्रान्त में गाई जाती है।

३. एक धान जो काले रंग का होता है।

कजरौटा—कजलौटा (काजल+औटा) पुं० (स्त्री० कजरौटी) १. काजल पारने का एक पात्र।

२. काजल रखने की डिबिया।

३. गोदना। गोदने की स्याही रखने की डिब्बी।

वि० काजल लगा हुआ।

उ०—भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकैं भर्यो उर के कजरौटी। घ० क० २६५/१८०

कजरौही वि० काजल से युक्त। काली।

कजला पुं० १. काले रंग का एक पक्षी विशेष।

२. खरबूजे की एक जाति विशेष।

३. वह बैल, जिसकी आँखों पर काला घेरा हो।

वि० दे० 'कजरा'।

अक० काला पड़ना।

सक० १. काजल लगाना। २. आग बुझाना।

कजली स्त्री० १. गीत-विशेष जो वर्षा ऋतु में गाया जाता है। २. मछली विशेष।

३. कालिख। ४. ऊख विशेष।

५. काली आंख वाली गाय।

६. जौ के जवारें, जो बहनें भाइयों को देती हैं।

उ०—राधे की कजलियाँ सिरावन कों जैहों मैं। ठा० १२३/३३

—तीज स्त्री० भादों बदी तीज, जिस दिन स्त्रियाँ रात भर कजली गाती और नाचती हैं।

—वन (कदली+वन) पुं० १. केले का जंगल।

२. आसाम-प्रदेश का एक जंगल जहाँ हाथी पाए जाते हैं।

कजा[1] स्त्री० १. काँजी। २. माँड़।

कजा[2]—(फा०) स्त्री० मृत्यु। मौत।

कजाक—कजाकु (तु०) पुं० बटमार। डाकू। दुष्ट। लुटेरा।

उ०—दौरि जात जी में तेरा कजरा कजाकु सो। गं० ३६/१३

—ई स्त्री० १. कजाक का काम। लूटमार का काम।

उ०—ए कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन। बि० ६७०/२७५

२. चालाकी। नीचता।

३. दगा। धोखा।

उ०—बाँकी-बाँकी आँखियाँ कजाकी सी करत हैं। र० ६५/३३६

कजात क्रि०वि० कभी।

उ०—दूसरो नाम कजात कढ़ै रसना जो कहूँ तो हलाहल बोरो। ठा० ४१/१२

कजावा (फा०) पुं० ऊँट की काठी, जिसमें दो आदमी बैठ सकते हैं।

कजिया (अ०) पुं० १. झगड़ा। २. झंझट। ३. मुकदमा।

कज्जल (कु+जल) पुं० आँखों में लगाने का काजल।

उ०—ता पर कज्जल द्युतिरेख। गं० ३६/१२

कटंकुट्ट पुं० कटना और कूटना। कचरकूट।

उ०—सब कटंकुट्ट हुट्टिय न फिर कामसेन दल कहँ कहत। बो० २४/१८८

कट[1] पुं० १. हाथी का गण्डस्थल। २. नरकट घास।

३. नरकट, सरकंडे आदि की बनी चटाई।

४. शव। ५. अर्थी। ६. श्मशान। ७ ऋतु।

८. काला रंग-विशेष। ९. काठ का तख्ता।

—कुटी स्त्री० तृणशाला। पर्णशाला।

कट[2]— अक० १. दूर होना। कट जाना।

उ०—धाम-धाम सबहा के पातक कटतु हैं। भू० १७२/१६१

२. मर जाना । मिट जाना ।
३. धोखा देकर साथ छोड़ना ।
४. फसल का कटना ।
५. ताश की गड्डी फेंटना ।
६. घाव होना । ७. लड़ाई में मारा जाना ।
८. डाह करना । जलना ।
९. खिसक जाना । चलते बनना ।
१०. भाग देने पर कुछ न बचना ।
११. बीतना ।
उ०—किहि भाँति भटू निस-द्योस कटै ।
घ० क० ८१/८६
१२. आसक्त होना । रीझना ।
कटत, कटति व०कृ० ।

कटक¹—कटक्क (कट+क) पुं० १. सेना । फौज ।
उ०—बरछी खड्ग जमधरनि घालि सु अरि-कटक्क कटा कर्‌यो । प० १३२/१९
२. शिविर । छावनी । ३. युद्ध ।
उ०—जाचक लाभ लह्यो यहे क्रूर कटक में जाइ । प० २२६/६०
४. पहाड़ का मध्य भाग । ५. नितम्ब ।
६. समुद्री नमक । ७. घास की चटाई ।
८. चक्र । ९. कंकड़ ।
१०. हाथी के दाँत पर जड़े हुए पीतल के बन्द ।
—आ पुं० टुकड़ा । भाग ।
—आई—ई स्त्री० सेना । लश्कर ।

कटक² पुं० उड़ीसा प्रदेश का एक नगर ।

कटक³— अक० १. बोलना । २. आवाज करना ।
उ०—पगु नूपुर की धुनि पूरि रही मिलि चूरी सों चारु बजैं कटकैं । हरि० १४०/९२
३. ढाँचा बनाना ।

कटकट पुं० वह ध्वनि जो दाँतों के बजाने से उत्पन्न होती है ।

कटकटा— अक० दाँत पीसना ।

कटकबाला (कटना+कवाला) पुं० नियत समय के लिए किसी वस्तु को बन्धक रखना ।

कटकरंज (कट+करंज) पुं० कंजा नामक पौधा ।

कटकोल (कट+कोल) पुं० पीकदान ।

कटखना—कटकनहा (काटना+खाना) वि० काट खाने वाला ।

कटघरा—कठघरा (काठ+घर) पुं० १. काठ का बना हुआ घर ।
२. न्यायालय में वादी-प्रतिवादी के खड़े होने के लिए काठ का बना हुआ घेरा ।
३. बड़ा पिंजड़ा ।

कटजोरा पुं० काला जीरा ।

कटड़ा पुं० भैंस का बच्चा । कट्टा । पढ्ढा ।

कटताल—कटताला पुं० झांझ-विशेष । करताल ।

कटती स्त्री० १. खपत । बिक्री । २. कटौती ।

कटन पुं० कतरन ।

कटनंसा¹ (काटना+नाश) पुं० काटने एवं नष्ट करने की क्रिया ।

कटनंसा² पुं० एक पक्षी जिसे कटफोड़वा अथवा खुटक-बढ़ैया कहते हैं ।

कटनास पुं० नीलकण्ठ पक्षी ।

कटनि स्त्री० प्रेम का प्रभाव । प्रेम की चोट । आसक्ति ।
उ०—फिरत जु अटकत कटनि-बिनु । बि० ५२८/२१७

कटनी स्त्री० १. काटने की क्रिया । २. फसल की कटाई ।
३. काटने का पारिश्रमिक ।
४. काटने का औजार ।
५. चैत्र की फसल काटने का समय ।

कटर (कट+र) पुं० १. चरखियों पर चलाई जाने वाली बड़ी नाव । पनसुइया ।
२. घास-विशेष ।

कटरा पुं० १. दे० 'कटड़ा' ।
२. मण्डी । छोटा बाज़ार । ३. कटार ।

कटरिया पुं० एक प्रकार का धान जो आसाम में बहुत होता है ।
स्त्री० छोटी कटारी ।

कटल्लू वि० काटने वाला ।
पुं० १. कसाई । २. बधिक ।

कटवारा वि० १. कँटीला । २. कटावदार ।

कटहरा पु० १. दे० 'कटघरा' । २. लकड़ी की पेटी ।
उ०—तट निहारिकै कटहरा निकट गयो सो आय । बो० ६५/४२
स्त्री० मछली का एक प्रकार ।

कटहल—कटहर पुं० १. एक पेड़ जिसमें बहुत बड़े-बड़े फल लगते हैं, जिनका छिलका कड़ा और काँटेदार होता है। कटहल ।
२. उक्त पेड़ का फल जो कि सब्जी एवं अचार बनाने के काम आता है ।
उ०—कहुँ दाख दारिम सेब कटहर तूत अरु जम्बीर हैं । भू० २१/१३२

कटहरिया पुं० वह आम का फल जिसमें कटहल का स्वाद हो।

कटहा (काटना+हा) वि० कटखना। काट खाने वाला।

कटहुला पुं० मुसलमान। म्लेच्छ।

कटा[1] पुं० १. घातकपना।
उ०—कजरारे कटाक्ष कटा सों भरे री। ठा० ७८/२१
२. मार-काट।
उ०—तिय तेरे कटाक्ष कटा करिबे कों। प० ३००/१४५
३. वध। हत्या।
४. गल्ला रखने का मटके से बड़ा मिट्टी का पात्र।
वि० काटने वाला।
उ०—गाँठि-कटा, लठबाँसी। सूर० वि०/१८६/५०

कटा[2]— सक० १. काटने के लिए तैयार करना।
२. किसी से काटने का काम कराना।
३. कुछ घूमकर आगे निकल जाना।

कटाई[1] स्त्री० १. काटने की क्रिया।
२. खेत काटने का पारिश्रमिक।

कटाई[2] स्त्री० दे० 'कटाली'।
उ०—पुहकरमूली सांठि पुनि मिरच कटाई आनि। बो० ४६/१६५

कटाऊ पुं० १. काट-छाँट। २. बेलबूटा।

कटाकटी (काटना+कटना) स्त्री० १. मार-काट।
२. कड़ा।

कटाक्ष—कटच्छ—कटाच्छ—कटाछ पुं०
१. तिरछी चितवन। २. व्यंग्यपूर्ण बात।
उ०—तेरें कटाक्ष कटा करिबे कौं। प० ३००/१४५

कटाग्नि (कट+अग्नि) स्त्री० घास-फूस की आग।

कटान स्त्री० १. काटने की क्रिया। कटाई।
२. काटने का प्रकार।

कटार[1]**—कटारि—कटारी** स्त्री० एक शस्त्र जिसके दोनों ओर धार रहती है, जो एक फुट से अधिक लम्बा नहीं होता।
उ०—कम्मर की न कटारी दई इस नाम ने गोसल-खाना बचाया। भू० १६१/१६५

कटार[2] पुं० एक प्रकार का वनबिलाव।

कटारा[1] पुं० बड़ी कटार।

कटारा[2] पुं० १. इमली का फल। २. दे० 'ऊँटकटेरा'।

कटारू पुं० एक प्रकार का खाद्य शाक।

कटाल पुं० १. ज्वार। जुन्हरी। २. समुद्र का चढ़ाव।

कटाली स्त्री० वन में पायी जाने वाली एक औषधि। भटकटैया।
वि० १. काँटेदार। नुकीला। २. मुग्धकर।

कटाव पुं० १. काट-छाँट। कतरब्योंत।
उ०—पहिरें दिव्य कटाव की चोली। च० ६२/५८
२. नदी तट अथवा पहाड़ का कटाव।
३. बेलबूटे आदि बनाने का काम।
—दार वि० बेलबूटेदार।
—न पुं० कटाई की क्रिया।
वि० कटावदार।
उ०—कहै कवि गंग बनी अँगिया कटावन की। गं० १०३/३३

कटास[1] स्त्री० दे० 'कटार'।

कटास[2] पुं० एक प्रकार का वनबिलाव।

कटासी स्त्री० मुर्दों को गाड़ने का स्थान।

कटाह पुं० १. बडी कड़ाही। कड़ाह।
२. कछुवे का ऊपरी कठोर आवरण।
३. कुआँ। ४. नरक। ५. झोंपड़ी।
६. भैंस का बच्चा। ७. ऊँचा टीला।
८. ब्रह्मांड।

कटि—कटी स्त्री० १. दे० 'कमर'।
उ०—पीतपटी ह्वै कटी लपटौं। प० ७०/३२२
२. देवालय का द्वार।
३. हाथी का गण्डस्थल। ४. पीपल।
—किंकिनि स्त्री० दे० 'करधनी'।
—जेव स्त्री० दे० 'करधनी'।
—डोरी स्त्री० कमर की पेटी।
—बंद पुं० कमरबंद। कमर का बंधना। नाड़ा।
—बंध पुं० कमर बंद। पटका।
—बद्ध वि० कमर कसे हुए। उद्यत। तैयार।
—पट पुं० फेंटा।
—मूल स्त्री० कमर के नीचे का भाग।
उ०—कटिमूल सुब्रन-तकंसी भृगुलात सी दरसै हियें। के० II, १५/२६४
—सूत्र पुं० दे० 'करधनी'।

कटिया[1] स्त्री० १. रत्नों को काटने-छाँटने वाला कारीगर।
२. चौपायों का कटा हुआ चारा।
३. भैंस का मादा बच्चा।
४. एक प्रकार का रेशमी वस्त्र। सन का वस्त्र।

२. मर जाना। मिट जाना।
३. धोखा देकर साथ छोड़ना।
४. फसल का कटना।
५. ताश की गड्डी फेंटना।
६. घाव होना। ७. लड़ाई में मारा जाना।
८. डाह करना। जलना।
९. खिसक जाना। चलते बनना।
१०. भाग देने पर कुछ न बचना।
११. बीतना।
उ०—किहि भांति भटू निस-द्यौस कटै।
घ० क० ८१/८६
१२. आसक्त होना। रीझना।
कटत, कटति व०कृ०।

कटक[1]—कटक्क (कट+क) पुं० १. सेना। फौज।
उ०—बरछी खड्ग जमधरनि घालि सु अरि-कटक्क कटा कर्‌यो। प० १३२/१९
२. शिविर। छावनी। ३. युद्ध।
उ०—जाचक लाभ लह्यो यहे क्रूर कटक में जाइ।
प० २२६/६०
४. पहाड़ का मध्य भाग। ५. नितम्ब।
६. समुद्री नमक। ७. घास की चटाई।
८. चक्र। ९. कंकड़।
१०. हाथी के दांत पर जड़े हुए पीतल के बन्द।
—आ पुं० टुकड़ा। भाग।
—आई—ई स्त्री० सेना। लश्कर।

कटक[2] पुं० उड़ीसा प्रदेश का एक नगर।

कटक[3]— अक० १. बोलना। २. आवाज करना।
उ०—पगु नूपुर की धुनि पूरि रही मिलि चूरी सौं चारु बजैं कटकैं। हरि० १४०/९२
३. ढांचा बनाना।

कटकट पुं० वह ध्वनि जो दांतों के बजाने से उत्पन्न होती है।

कटकटा— अक० दांत पीसना।

कटकबाला (कटना+कवाला) पुं० नियत समय के लिए किसी वस्तु को बन्धक रखना।

कटकरंज (कट+करंज) पुं० कंजा नामक पौधा।

कटकोल (कट+कोल) पुं० पीकदान।

कटखना—कटकनहा (काटना+खाना) वि० काट खाने वाला।

कटघरा—कठघरा (काठ+घर) पुं० १. काठ का बना हुआ घर।
२. न्यायालय में वादी-प्रतिवादी के खड़े होने के लिए काठ का बना हुआ घेरा।
३. बड़ा पिंजड़ा।

कटजीरा पुं० काला जीरा।

कटड़ा पुं० भैंस का बच्चा। कट्टा। पढ्ढा।

कटताल—कटताला पुं० झांझ-विशेष। करताल।

कटती स्त्री० १. खपत। बिक्री। २. कटौती।

कटन पुं० कतरन।

कटनंसा[1] (काटना+नाश) पुं० काटने एवं नष्ट करने की क्रिया।

कटनंसा[2] पुं० एक पक्षी जिसे कटफोड़वा अथवा खुटक-बढ़ैया कहते हैं।

कटनास पुं० नीलकण्ठ पक्षी।

कटनि स्त्री० प्रेम का प्रभाव। प्रेम की चोट। आसक्ति।
उ०—फिरत जु अटकत कटनि-बिनु।
बि० ५२८/२१७

कटनी स्त्री० १. काटने की क्रिया। २. फसल की कटाई।
३. काटने का पारिश्रमिक।
४. काटने का औजार।
५. चैत्र की फसल काटने का समय।

कटर (कट+र) पुं० १. चरखियों पर चलाई जाने वाली बड़ी नाव। पनसुइया।
२. घास-विशेष।

कटरा पुं० १. दे० 'कटड़ा'।
२. मण्डी। छोटा बाज़ार। ३. कटार।

कटरिया पुं० एक प्रकार का धान जो आसाम में बहुत होता है।
स्त्री० छोटी कटारी।

कटल्लू वि० काटने वाला।
पुं० १. कसाई। २. बधिक।

कटवारा वि० १. कँटीला। २. कटावदार।

कटहरा पु० १. दे० 'कटघरा'। २. लकड़ी की पेटी।
उ०—तट निहारिकै कटहरा निकट गयो सो आय।
बो० ६५/४२
स्त्री० मछली का एक प्रकार।

कटहल—कटहर पुं० १. एक पेड़ जिसमें बहुत बड़े-बड़े फल लगते हैं, जिनका छिलका कड़ा और काँटेदार होता है। कटहल।
२. उक्त पेड़ का फल जो कि सब्जी एवं अचार बनाने के काम आता है।
उ०—कहुँ दाख दारिम सेब कटहर तूत अरु जम्बीर हैं। भू० २१/१३२

कटहरिया पुं० वह आम का फल जिसमें कटहल का स्वाद हो।

कटहा (काटना+हा) वि० कटखना। काट खाने वाला।

कटहुला पुं० मुसलमान। म्लेच्छ।

कटा[1] पुं० १. घातकपना।

उ०—कजरारे कटाक्ष कटा सों भरे री। ठा० ७८/२१

२. मार-काट।

उ०—तिय तेरे कटाक्ष कटा करिबे कों। प० ३००/१४५

३. वध। हत्या।

४. गल्ला रखने का मटके से बड़ा मिट्टी का पात्र।

वि० काटने वाला।

उ०—गाँठि-कटा, लठबाँसी। सूर० वि०/१८६/५०

कटा[2]— सक० १. काटने के लिए तैयार करना।

२. किसी से काटने का काम कराना।

३. कुछ घूमकर आगे निकल जाना।

कटाई[1] स्त्री० १. काटने की क्रिया।

२. खेत काटने का पारिश्रमिक।

कटाई[2] स्त्री० दे० 'कटाली'।

उ०—पुहकरमूली सांठि पुनि मिरच कटाई आनि। बो० ४६/१६५

कटाऊ पुं० १. काट-छाँट। २. बेलबूटा।

कटाकटी (काटना+कटना) स्त्री० १. मार-काट।

२. कड़ा।

कटाक्ष—कटच्छ—कटाच्छ—कटाछ पुं०

१. तिरछी चितवन। २. व्यंग्यपूर्ण बात।

उ०—तेरें कटाक्ष कटा करिबे कौं। प० ३००/१४५

कटाग्नि (कट+अग्नि) स्त्री० घास-फूस की आग।

कटान स्त्री० १. काटने की क्रिया। कटाई।

२. काटने का प्रकार।

कटार[1]**—कटारि—कटारी** स्त्री० एक शस्त्र जिसके दोनों ओर धार रहती है, जो एक फुट से अधिक लम्बा नहीं होता।

उ०—कम्मर की न कटारी दई इस नाम ने गोसल-खाना बचाया। भू० १६१/१६५

कटार[2] पुं० एक प्रकार का वनबिलाव।

कटारा[1] पुं० बड़ी कटार।

कटारा[2] पुं० १. इमली का फल। २. दे० 'ऊँटकटेरा'।

कटारू पुं० एक प्रकार का खाद्य शाक।

कटाल पुं० १. ज्वार। जुन्हरी। २. समुद्र का चढ़ाव।

कटाली स्त्री० वन में पायी जाने वाली एक औषधि। भटकटैया।

वि० १. काँटेदार। नुकीला। २. मुग्धकर।

कटाव पुं० १. काट-छाँट। कतरब्यौंत।

उ०—पहिरें दिव्य कटाव की चोली। च० ६२/५८

२. नदी तट अथवा पहाड़ का कटाव।

३. बेलबूटे आदि बनाने का काम।

—दार वि० बेलबूटेदार।

—न पुं० कटाई की क्रिया।

वि० कटावदार।

उ०—कहै कवि गंग बनी अँगिया कटावन की। गं० १०३/३३

कटास[1] स्त्री० दे० 'कटार'।

कटास[2] पुं० एक प्रकार का वनबिलाव।

कटासी स्त्री० मुर्दों को गाड़ने का स्थान।

कटाह पुं० १. बड़ी कड़ाही। कड़ाह।

२. कछुवे का ऊपरी कठोर आवरण।

३. कुआँ। ४. नरक। ५. झोंपड़ी।

६. भैंस का बच्चा। ७. ऊँचा टीला।

८. ब्रह्मांड।

कटि—कटी स्त्री० १. दे० 'कमर'।

उ०—पीतपटी ह्वै कटी लपटीं। प० ७०/३२२

२. देवालय का द्वार।

३. हाथी का गण्डस्थल। ४. पीपल।

—किंकिनि स्त्री० दे० 'करधनी'।

—जेव स्त्री० दे० 'करधनी'।

—डोरी स्त्री० कमर की पेटी।

—बंद पुं० कमरबंद। कमर का बंधना। नाड़ा।

—बंध पुं० कमर बंद। पटका।

—वद्ध वि० कमर कसे हुए। उद्यत। तैयार।

—पट पुं० फेंटा।

—मूल स्त्री० कमर के नीचे का भाग।

उ०—कटिमूल सुब्रन-तर्कसी भृगुलात सी दरसी हियें। के० II, १५/२६४

—सूत्र पुं० दे० 'करधनी'।

कटिया[1] स्त्री० १. रत्नों को काटने-छाँटने वाला कारीगर।

२. चौपायों का कटा हुआ चारा।

३. भैंस का मादा बच्चा।

४. एक प्रकार का रेशमी वस्त्र। सन का वस्त्र।

कटिया[२] स्त्री० नुकीला टेढ़ा अंकुश । मछली पकड़ने का काँटा ।

कटिया— अक० कंटकित होना । पुलकित होना ।
सक० रोमांचित करना ।

कटियाली स्त्री० दे० 'कटाली' ।

कटीरा पुं० दे० 'कतीरा' ।

कटील पुं० १. दे० 'करील' ।
२. कपास की एक जाति ।

कटु—कटू वि० १. कड़ुआ । चरपरा । तिक्त ।
उ०—तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान । प० ८३/४२
२. बुरा लगने वाला । अप्रिय ।
३. छः रसों में से एक रस ।

—उक्ति स्त्री० १. अप्रिय बात । बुरी उक्ति ।
२. ताना । व्यंग्य ।

—कंद पुं० १. अदरक । २. लहसुन । ३. मूली ।

—क वि० १. कड़ुआ । तिक्त । २. अप्रिय ।
उ०—कोप तें कटुक बोल बोलते हैं तऊ मोकों । म० २५१/२५८

—कीट पुं० मच्छर ।

—खरी वि० बुरी लगने वाली । कड़वी एवं सही ।

—ग्रन्थि पुं० १. पीपरामूल । २. सोंठ ।

—ता स्त्री० कड़वापन । अप्रियता ।
उ०—कटुताई-भरें रोम रोमहि अमी पगो । घ० क० ३०२/१६६

—त्रय पुं० काली मिर्च, सोंठ और पीपल का सम्मिश्रण ।

—वचन (कटु+वचन) पुं० कड़ुए वचन । अप्रिय वचन ।

—वादनी वि० कड़ुवे वचन बोलने वाली ।

—वादी वि० बुरे वचन बोलने वाला ।

—वानि—वानी (कटु+वाणी) स्त्री० अप्रिय वाणी ।

—भंगा स्त्री० १. औषधि-विशेष । २. सौंठ । अदरक ।

—भद्र पुं० दे० 'कटुभंगा' ।

—वा स्त्री० १. कड़ुवापन । २. वैमनस्य ।

—सा पुं० १. दुर्वचन । २. फूहड़पन ।

कटआ पुं० १. मुसलमान ।
२. काले रंग का एक कीड़ा । ३. घोंघा ।
४. शम्बूक । ५. पानी की सिंचाई ।
६. नहरों की छोटी-छोटी शाखाएँ ।

कटुकी स्त्री० औषधि-विशेष । कुटकी ।

कटुभी स्त्री० औषधि-विशेष । मालकँगनी ।

कटूमर स्त्री० कटगूलर । जंगली गूलर ।

कटेरी स्त्री० १. दे० 'कटाली' । २. झगड़ा ।

कटेला—कटैला पुं० एक बहुमूल्य पत्थर ।

कटेहर पुं० हल के नीचे लगी हुई वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है । खोंपा ।

कटैया स्त्री० दे० 'कटाली' ।
वि० काटने वाला ।

कटोरा पुं० खुले मुँह, नीची दीवार और चौड़ी पैंदी का धातु का बना एक बरतन । बेला ।
उ०—औंट्यो दूध सदि धौरी को भरि कटोरा कौंन पिवावे । गो० ३६४/१६०

कटोरी स्त्री० १. छोटा कटोरा । बिलिया ।
उ०—एक भरति कर कनक कटोरी । च० ६१/५६
२. फूल के बाहर की ओर हरी पत्तियों का कटोरी के आकार का वह अंश जिसके भीतर पुष्पदल रहता है ।
३. तलवार की मूँठ के ऊपर कटोरी के आकार-प्रकार का धातु का बना हुआ भाग ।
४. अँगिया का स्तन ढाँकने वाला अंश ।

कटोरदान (कटोरा+दान) पुं० भोजन रखने का धातु का बना एक ढक्कनदार वर्तन ।

कटोल (कटु+ओल) वि० कड़वा ।
पुं० १. चांडाल । २. एक फल ।
३. औषधि-विशेष ।

कटौती (काटना+औती) स्त्री० कम किया हुआ धन । छूट ।

कट्टर वि० १. दे० 'कटहा' ।
२. अपने धर्म, सिद्धान्त, विचार आदि पर दृढ़ अंधविश्वास एवं आस्था रखने वाला और समर्थन करने वाला । हठी । हठ-धर्मी । ३. कठोर । ४. लड़ाकू ।
पुं० नृत्य का अंग-विशेष ।
उ०—लाग कट्टर उरप, सप्त सुर सौं सुलप । ना० ३७६/३६४

कट्टहा—कट्टिहा (कट+हा) पुं० महाब्राह्मण । महापात्र ।

कट्टा[१] वि० १. मोटा-ताजा । २. बलवान ।
पुं० १. जूँ । २. जबड़ा ।

कट्टा[2] पुं० भैंस का बच्चा।

कट्ठा पुं० १. पाँच हाथ और चार अंगुल के प्रमाण का भूमि का एक पुराना नाप।
२. लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है।
३. धातु गलाने की भट्टी।
४. अन्न कूटने का पात्र विशेष।
५. वृक्ष विशेष।

कठ[1] पुं० १. एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का प्रवर्तन किया।
२. एक उपनिषद् का नाम।
३. प्राचीन कालीन काठ का बाजा जो चमड़े से मढ़ा जाता था।
वि० निकृष्ट। खराब।

कठ[2] पुं० काठ। लकड़ी। (समस्त पदों में प्रयुक्त, जैसे—कठपुतली, कठकीली आदि।)
—पुतरी—पूतरी—पुतली स्त्री० काठ की बनी पुतली। काठ की गुड़िया जो तार के सहारे नचाई जाती है।
—पुतला पुं० १. काठ का पुतला।
२. वह व्यक्ति जो दूसरे के कहे पर काम करे।
—फार पुं० दे० 'कठफोड़ा'।
उ०—लगै बिरहीहिय ज्यों कटफार।
बो० ४६/२०४
—फुला पं० कुकुरमुत्ता।
—फोड़ा पुं० एक चिड़िया जो अपनी चोंच से पेड़ों की छाल छेदकर उसके नीचे के कीड़ों को खाती है।
—बंधन पुं० हाथी के पैर में डाली जाने वाली काठ की बेड़ी।
—बेल पुं० कैथ का वृक्ष।
—रा—ड़ा पुं० कठौता। कटहरा।
—री स्त्री० दे० 'कठेली'।
—वत—वति स्त्री० दे० 'कठेली'।

कठकेला (काठ+केला) पुं० केला विशेष जो स्वाद में फ़ीका होता है।

कठकीली (काठ+कीली) स्त्री० १. काठ की खूँटी। कील। २. पच्चर।

कठकोला पुं० दे० 'कठफोड़ा'।

कठगुलाब पुं० छोटे फूलों वाला जंगली गुलाब।

कठतार—कठताल पुं० दे० 'करताल'।
उ०—तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की। नं० ८/१७

कठपाली पुं० एक जाति-विशेष जिसका व्यवसाय भिक्षा है।

कठप्रेम (कठ+प्रेम) वि० वह प्रेम जो हठपूर्वक किया जाय।
उ०—नेहकथैं सठ नीर मथै हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहै। घ० क० २१४/१५७

कठबल्ली पुं० एक उपनिषद्।

कठबाप (कठ+बाप) पुं० सौतेला बाप।

कठबिरुकी स्त्री० ऊबर साँडा। भेक।

कठमलिया (काठ+माला+इया) पुं०
१. काठ की माला।
२. कंठी पहनने वाला वैष्णव।
३. बनावटी साधु। पाखण्डी साधु।

कठला—कठुला पुं० एक प्रकार का गहना जो बच्चों को गले में पहनाया जाता है, इसमें सोने, चाँदी या ताँबे की छोटी-छोटी चौकियाँ एक मोटे तागे में गुंथी होती हैं। इसमें बीच-बीच में बाघ के नख तथा तावीजे भी पिरोयी होती हैं।
उ०—कठुला कंठ बघनहाँ नीके।
सूर० १०/११७/२४४

कठमस्त (कठ+मस्त) वि० १. सुंडमुसुंड। मोटाताजा।
२. व्यभिचारी।
—ई स्त्री० मुसंडपना। उद्दण्डता। मस्ती।

कठमाटी स्त्री० कीचड़ की मिट्टी।

कठ-हँसी स्त्री० बनावटी हँसी। सूखी हँसी।

कठारा पुं० नदी व तालाब का किनारा।

कठारी स्त्री० काठ का बना कमण्डलु। काठ का पात्र।

कठिका स्त्री० खड़िया मिट्टी।
उ०—सम कछु घटि उपनाईका, जैसे कठिका नारि।
सूरति० ४७/१८५

कठिन—कठीन वि० १. कड़ा। कठोर।
उ०—पाषानहु तें कठिन ये तेरे उरज सुजान।
प० १८२/५५
२. मुश्किल। दुष्कर। दुःसाध्य।
म०—साहितनैं सिव सुजस कौं करै कठिनऊ काजु।
भू० १११/१४६
३. निष्ठुर। ४. स्तब्ध।
—आई स्त्री० दे० 'कठिनता'।

म०—दूझति न काहे यामें कौन कठिनाई है।
प० २९/४०

—ई स्त्री० दे० 'कठिनता'।

म०—तनिक कचाई कठिनई प्रगट करति है आइ।
र० १६४/३६

—ता स्त्री० १. कठोरता। कड़ाई। कड़ापन।
२. मुश्किल। असाध्यता।
३. निर्दयता। बेरहमी।

कठिया (कठ+इया) वि० जिसका छिलका मोटा और कड़ा हो। यथा—कठिया बादाम, कठिया गेहूँ।

अक० काठ की तरह कड़ा हो जाना। सूखकर कड़ा हो जाना।

कठिल्ल—कठिल्ला पुं० करेला। नीम का शाक।

कठिहार पुं० लकड़ी बेचने वाला।

कठीर पुं० सिंह। शेर।

कठुआ— अक० काठ की तरह कड़ा पड़ना। शीत से हाथ-पैर ठिठुरना।

कठुराई स्त्री० कठोरता। कड़ाई। कड़ापन।

कठुवा— अक० दे० 'कठुआ'।

कठूमर स्त्री० जंगली गूलर।

कठेठ—कठेठा वि० १. कड़ा। कठोर। २. दृढ़।
३. कटु। अप्रिय। ४. अधिक अवस्था का।

—ई वि० कड़ी। कठोर।

उ०—काठ सी कठेठी बात कैसें निकरति है।
के० I, १९/१२

कठेल पुं० १. धुना की कमान जिसमें ऊन या रुई धुनते समय धुनकी को बाँधकर लटकाया जाता है।
२. कसेरे का एक काठ का औजार।

कठैठो वि० दे० 'कठेठ'।

उ०—वैरि कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यौ कटार कठैठो। भू० २३३/१७

कठेली—कठैली—कठैला—कठौती स्त्री० काठ का एक छोटा बर्तन। कठौता की तरह का छोटा बर्तन।

कठोदर पुं० पेट का एक रोग-विशेष।

कठोर वि० १. कड़ा। कठिन। सख्त।

उ०—ऐसो उर जु कठोर तो त्यायहि उरज कठोर।
म० ३७३/२८५

२. निर्दय। निष्ठुर।

—ई वि० १. कठिन। २. निष्ठुर। ३. निर्दय।

—ता स्त्री० १. कठिनता। कड़ाई।
२. निष्ठुरता। निर्दयता।

—पन पुं० १. कड़ापन।
२. निठुरता। निर्दयता।

कठोलिया स्त्री० दे० 'कठैली'।

कठौटी—कठौती स्त्री० दे० 'कठैली'।

कठौता—कठैला पुं० काठ का बरतन। लकड़ी का एक औंडा बरतन।

कठौर वि० दे० 'कठोर'।

कड़ पुं० १. कुसुम। बरैं। २. कुसुम का बीज।

कड़क[1] स्त्री० १. कड़कड़ाहट। कठोर शब्द, जैसे—बिजली की कड़क।
२. घोड़े की सरपट चाल।
३. रुक-रुककर जलन के साथ पेशाब आना।

कड़क[2]— अक० १. गड़गड़ाना।
२. चटकने का शब्द होना। चटकना।
३. जोर से शब्द करना।
४. फटना। दरकना।
५. आवाज़ के साथ टूटना।

कड़कच पुं० समुद्र का नमक या क्षार।

कड़कड़ स्त्री० १. गर्जन।
२. किसी कड़ी वस्तु के टूटने का शब्द।

कड़कड़ा— अक० कड़कड़ शब्द करना।

—आहट स्त्री० गर्जना करने का शब्द। भयंकर शब्द।

कड़क नाल स्त्री० चौड़े मुँह की तोप।

कड़क बिजली पुं० १. तोड़ेदार बन्दूक।
२. एक यंत्र जिससे बिजली पैदा करके लकवा आदि के रोगियों के शरीर में दौड़ाई जाती है।

कड़का पुं० १. कड़ाके की आवाज़। बिजली की सी ध्वनि। २. बिजली की कड़कन।

कड़खा पुं० वीरों के प्रशंसात्मक उत्साहवर्धक गीत।

कड़खैत पुं० भाट। चारण। कड़खा गीत गाने वाला।

कड़बड़ पुं० घोड़े की टापों का शब्द।

कड़बड़ा वि० काला सफेद मिश्रित। कबरा। चितकबरा।

कड़बी[1] वि० कटु। तिक्त। अप्रिय।

कड़बी[2] स्त्री० दे० 'करबी'।

कड़ा[1] पुं० हाथ में पहनने का आभूषण, चूड़ा।
उ०—फूलनि के बाजूबंद, फूलनि के कड़ा।
कु० ३८०/१२३

कड़ा[2] वि० १. कठोर। कठिन। २. कसा हुआ। चुस्त।
३. हृष्ट-पुष्ट। तगड़ा।
४. प्रचंड। तेज। अधिक। (जैसे—कड़ा झोंका, कड़ी धूप आदि।)
५. सहने वाला। धीर।
६. दुष्कर। दुःसाध्य।
७. तेज। (जैसे कड़ी दवा। कड़ी शराब।)
८. असह्य। बुरा लगने वाला।
—ई स्त्री० कठोरता। सख्ती। दृढ़ता।

कड़ाकड़ी स्त्री० दाँतों की दाँतों से टक्कर।
उ०—ह्वै रहे कड़ाकड़ सुदंतों की कड़ाकड़ी।
प० १६/३०७

कड़ाका पुं० १. किसी कड़ी वस्तु के टूटने या टकराने का शब्द। २. निर्जल व्रत। लंघन।
वि० तेज। उग्र।

कड़ाबीन स्त्री० चौड़े मुँह की बन्दूक। यह आग दिखाने पर चलाई जाती है। इसे झोंका भी कहते हैं।

कड़ाह—कड़ाहा पुं० आँच पर चढ़ाने का लोहे का बहुत बड़ा गोल बरतन जिसके दोनों ओर पकड़ने के लिए कुंडे लगे रहते हैं। इसमें पूरी, हलवा इत्यादि बनाते हैं।

कड़ाही स्त्री० पूरी आदि सेकने का छोटा कड़ाह।

कड़ियल वि० कड़ा।
पुं० घड़े या मटके का टुकड़ा जो ऊपर से फूटा हुआ होता है और उसमें आग दबाकर रक्खी जाती है।

कड़िहार—कड़िहारु—कड़िहारू पुं० १. मल्लाह। २. काढ़ने वाला। उद्धारक।

कड़िया स्त्री० अरहर का सूखा डंठल।

कड़ी स्त्री० १. जंजीर की लड़ी का छोटा छल्ला।
२. छोटा छल्ला जो किसी वस्तु को लटकाने या अटकाने के लिए लगाया जाय।
३. लगाम। ४. गीत का एक पद।
—दार वि० छल्लेदार।
पुं० कसीदा विशेष—जो कड़ियों की लड़ी जैसा होता है।

कडआ[1]**—कडवा** वि० १. कटु। तिक्त। अप्रिय स्वाद वाला।
२. गुस्सैल। ३. विकट। टेढ़ा। कठिन।
—तेल पुं० सरसों का तेल।

कड़ुआ[2]— अक० १. बिगड़ना। कटु होना।
२. खिसिआना। खुनसाना।
३. न सोने के कारण आँख में होने वाली पीड़ा का होना।

कड़ुआहट—कड़वाहट स्त्री० कटुता। कडुआपन।

कड़ु पुं० दे० 'कडुआ'।
—तेल पुं० दे० 'कडुआ तेल'।

कड़े लोट—कड़े लोटन पुं० मालखम्भ की कसरत-विशेष।

कड़ोडा—कड़ोरा पुं० बड़ा ऊँचा अधिकारी जिसके नीचे अनेक कर्मचारी कार्य करते हैं।

कड्ढा—कड्ढू पुं० ऋण लेने वाला। कर्जदार।

कढ़— अक० १. निकलना। बाहर आना।
उ०—कढ़त साथ ही म्यान तें असि रिपु-तन तें प्रान। प० ६८/४०
२. उदय होना। ३. बढ़ जाना।
४. किसी व्यभिचारिणी स्त्री का किसी अन्य पुरुष के साथ भाग जाना।
कढ़त व०कृ०। कढ़्यौ भू०कृ०।
कढ़न क्रि०सं०।
—नी स्त्री० मथानी घुमाने की रस्सी।
—औहीं वि० निकली हुई। बाहर जाने के लिए तत्पर।

कढ़ला—कढ़िरा— सक० घसीटना। घसीट कर बाहर करना।

कढ़ा— सक० बाहर निकलवा देना। बाहर खिंचवा देना।
उ०—दधि मैं पड़ी सेंत की मोपै चीटीं सबै कढ़ाई।
सूर० १०/३२२/२६६

कढ़ाई[1] स्त्री० दे० 'कड़ाही'।

कढ़ाई[2] स्त्री० १. कपड़े पर बेल आदि काढ़ने की क्रिया।
२. बूटा-कसीदा बनवाने की मजदूरी।

कढ़ाव[1] पुं० कसीदे का काम। बेलबूटे का उभार।

कढ़ाव[2] पुं० दे० 'कड़ाह'।

कढ़ाव[3]— सक० निकलवाना। बाहर करना। खिंचवाना।

कढ़ी स्त्री० एक प्रकार का सालन, जो मठा और बेसन का होता है।
उ०—खाटी कढ़ी बिचित्र बनाई।
सूर० १० १२१३/५४६

कढ़ आ[1]**—कढ़ वा** वि० ऋण लेने वाला। उधार लेने वाला।

पुं० १. रात का बचा हुआ भोजन जो बच्चों के वास्ते सवेरे के लिए रख छोड़ते हैं।
२. कर्ज़ा। ऋण।

कढ़ुआ[2] वि० जातिच्युत। जाति से निकाला हुआ।

कढ़ेर—कढ़ोर—कढ़ोल सक० घसीटना। ऐसे व्यक्ति को खींचना जो साथ चलने को राजी न हो।

कढ़ेरना पुं० औजार विशेष—इससे सोने, चाँदी के बर्तनों पर गोल-गोल लकीरें खींचकर नक्काशी की जाती है।

कढ़ैया[1] स्त्री० दे० 'कड़ाही'।

कढ़ैया[2] वि० १. निकालने वाला।
२. उधार लेने वाला। ३. उद्धारक।

कण—कन पुं० १. किनका। अत्यंत छोटा टुकड़ा।
उ०—कपट कन दरस खग नैन मेरे।
सूर० १०/२२७३/१०६
२. चावल का बारीक टुकड़ा। कना।
३. अन्न के कुछ दाने।
उ०—तौ कहा जोग-जज्ञ-व्रत कीन्हैं बिनु कन तुस कौं कूटे। सूर० २/१६/१००
४. भिक्षा।
—इका स्त्री० किनका। टुकड़ा। जर्रा।
—ई स्त्री० दे० 'कणिका'।

कणकच—कणगच पुं० १. केवांच। कौंछ।
२. करंज। कंजा।

कणजीरक—कणजीरा पुं० सफेद जीरा।

कणप्रिय स्त्री० गौरैया पक्षी।
पुं० कणादमुनि, इन्होंने चावल के कणों का आहार करके देवाराधन किया था और देवता की प्रसन्नता के फलस्वरूप वैशेषिक दर्शन तैयार किया था। परमाणुवाद के प्रचारक ये ही समझे जाते हैं।

कणांच स्त्री० दे० 'कणकच'।

कणा स्त्री० १. पीपल।
२. चावल के कूटने से निकला हुआ लाल रंग का चूर्ण।
—मूल पुं० पीपरामूल।

कणाद पुं० १. वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक मुनि।
२. सुनार।

कणासुफल पुं० अंकोल।

कणिश पुं० अनाज की बाल। जौ, गेहूँ आदि की बाल।

कणीसक पुं० दे० 'कणिश'।

कण्डाल पुं० १. लड़ाई का बिगुल। नरसिंहा। तुरही।
२. गंगाल या जंगाल। पानी रखने का पीतल का बरतन।
३. जुलाहों का एक औजार विशेष।

कण्डील[1] स्त्री० मिट्टी।

कण्डील[2] (अ० कंदील) स्त्री० दे० 'कंडील'।

कण्डु पुं० दे० 'कंडु'।

कण्डेरा पुं० दे० 'कंडेरा'।

कण्डोल पुं० बांस का पात्र विशेष, बंसोला।

कण्व पुं० १. एक मंत्रकार ऋषि जिनके अनेक मंत्र ऋग्वेद में हैं।
२. शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा बनाने वाले ऋषि।
३. कश्यप गोत्र में उत्पन्न एक ऋषि जिन्होंने शकुन्तला को पाला था।

कत[1] पुं० १. निर्मली। २. रीठा।

कत[2] (अ० क़त) पुं० नरकुल की कलम की जीभ जो तिरछी कटी रहती है।

कत[3]**—कत्त** (सं० कृत) अव्य० क्यों। किसलिए।
उ०—ऊधौ ते कत चतुर कहावत।
सूर० १०/३८८८/४६६

कत[4] वि० कितना।
—क क्रि०वि० कितना। क्यों।

कत[5]— अक० काता जाना।

कतनई स्त्री० दे० 'कताई'।

कतनी स्त्री० १. सूत कातने की टेकुरी।
२. वह टोकरी जिसमें सूत कातने के सामान रखे जाते हैं, डलिया।

कतन्नी स्त्री० दे० 'कतरनी'।

कतब क्रि०वि० क्यों।
उ०—जौ बिधि यहै कियो चाहत हो, द्वै मोहि कतब दए। सूर० १०/१८६७/४२७

कतर— सक० काटना।
उ०—रंजित रन-भूमी सु खड़ग रूमी रिपु-सिर तूमी सी कतरैं। प० २००/२८
कतरत व०कृ०। कतर्‌यौ भू०कृ०।
—छाँट स्त्री० काट-छाँट। कतर-ब्योंत।
—न स्त्री० काटन, छोटे-छोटे कपड़े या कागज के टुकड़े जो काटने में फालतू निकल जाते हैं।
—ब्योंत स्त्री० १. दे० 'काँट-छाँट'।

२. उलट-फेर । इधर की उधर करना ।
३. उधेड़बुन ।
४. दूसरे के सामान से कुछ अपने लिए निकाल लेना । ५. युक्ति । जोड़-तोड़ ।

कतरनी स्त्री॰ कैंची ।

कतरबा— सक॰ कटवाना । कतर-ब्योंत कराना ।
—ई (कतरवाना+आई प्रत्य॰) स्त्री॰
१. कतरवाने की क्रिया ।
२. कतरवाने की मज़दूरी ।

कतरवाँ वि॰ टेढ़ा । तिरछा । घुमावदार ।

कतरा[1] (अ॰)पुं॰ १. कटा हुआ टुकड़ा । खंड ।
उ॰—केकई काटि करेजे ·····कतरे कतरे पतरे करिहाँ की । प॰ ६५८/२१७
२. पत्थर का टुकड़ा-विशेष जो गढ़ाई में निकलता है ।

कतरा[2] पुं॰ मूँग की दाल की पिट्ठी के घी या तेल में सेके हुए पदार्थ ।

कतरा[3] (अ॰ कतरह्) बूँद । बिंदु ।

कतरा[4] पुं॰ मस्तक का श्रृंगार । ठाकुरजी की पाग पर दाहिनो तरफ तथा शीशफूल पर बायीं तरफ धरा जाता है ।

कतरा[5]— अक॰ बचकर निकलना । सामने न आना । इधर-उधर होना ।
उ॰—जात कितैं कतराए लाल रंग होरी है ।
ना॰ ४१/१६६/१८६

कतराई स्त्री॰ दे॰ 'कताई' ।

कतरी स्त्री॰ १. जमी हुई मिठाई का टुकड़ा ।
२. कैंची । ३. कोल्हू का पाट ।
४. हाथ में पहनने का पीतल का एक गहना ।
५. लकड़ी का बना हुआ एक औजार जिससे राज कारनिस जमाते हैं ।

कतल (अ॰ कत्ल) पुं॰ वध । हत्या ।
—वाज वि॰ वध करने वाला ।
उ॰—कहै पदमाकर धरीक ही में घनस्याम, काम तो कतलबाज कुंज ह्वै है काती सी ।
प॰ ३७३/१५८

कतलान पुं॰ दे॰ 'कतल' ।
उ॰—गाढ़ेगढ़ लीन्हे केते बैरी कतलान कीन्हे जानत न भयो यहि साहु-कुल साल को ।
भू॰ ४३८/२१४

कतवा— सक॰ किसी दूसरे को कातने का काम करवाना

कतवार पुं॰ कूड़ा-करकट । घास-फूस ।

कतहि क्रि॰वि॰ क्यों । किसलिए ।

कतहुँ—कतहूँ क्रि॰वि॰ कहीं । किसी स्थान पर ।
उ॰—मैं सब ठौर फिर्यो तुम देखे, कतहुँ पार न पायो । सा॰ ६८२/५५

कता[1] स्त्री॰ १. बनावट । आकार । २. काट-छाँट ।
३. ढँग । तौर ।

कता[2] सक॰ कतवाना । किसी से कातने का काम लेना ।

कताई स्त्री॰ १. कातने की क्रिया ।
२. कातने की मज़दूरी ।

कतार (अ॰) स्त्री॰ पंक्ति । श्रेणी । समूह ।
उ॰—सुजन सुखारे ·····पतित कतारे भवसिन्धु तें उतारे हैं । प॰ १०/३५६

कतारा[1] (सं॰ कान्तार) पुं॰ लाल रंग का मोटा गन्ना ।

कतारा[2] (कटार) स्त्री॰ १. कतारा जाति की पतली ईख । २. पंक्ति । श्रेणी ।

कताव पुं॰ दे॰ 'कताई' ।

कति वि॰ १. कितने । कितना । २. कौन ।
३. बहुत से । अगणित ।
—क क्रि॰वि॰ १. कितनी । कितना । २. थोड़ा ।

कतिधा वि॰ विविध प्रकार का । अनेक भाँति का ।
क्रि॰वि॰ कई प्रकार से ।

कतिपय वि॰ १. कितने ही । कई एक ।
२. कुछ थोड़े से ।

कतीरा पुं॰ गुलू नाम के पेड़ का गोंद जो दवा के काम में आता है ।

कतुवा पुं॰ दे॰ 'तकुआ' ।

कतूह पुं॰ कौतुक । आश्चर्य ।

कतेक (कति+एक) क्रि॰वि॰ दे॰ 'कतिक' ।

कत्तर स्त्री॰ स्त्रियों की चोटी बाँधने की डोरी ।

कत्तल पुं॰ कटा पत्थर का टुकड़ा । इंट का टुकड़ा ।

कत्ता पुं॰ १. बाँस चीरने का एक औज़ार ।
२. छोटा टढ़ी तलवार ।
३. चौपड़ का पाँसा ।

कत्तान पुं॰ १. छुरा । २. कटारी ।

कत्ती (स॰ कर्त्तरी) स्त्री॰ १. चाकू । छुरी ।
२. छोटी तलवार । ३. सुनार की कतरनी ।
४. बत्ता के समान बटकर बांधी जाने वाली पगड़ी ।

कत्थ पुं॰ १. कसेरे की स्याही । लोहे की स्याही ।
२. रंगरेज़, रँगाई का काम करने वाला ।

कत्थई (कत्था>कत्थ+ई) वि॰ खैर के रग-जैसा । कत्थे जैसे रग वाला ।

करथक पुं० १. एक गाने बजाने व नाचने वाली जाति।
२. नृत्य की एक शैली।

करथा पुं० १. खैर की लकड़ियों का सुखाकर जमाया हुआ काढ़ा जो पान में खाया जाता है।
२. खैर का पेड़। कथकीकर।

कथ— सक० १. रच-रचकर बात कहना। २. कहना।
उ०—कथत निगम, नेति नेति बानी।
सूर० १०/१२४४/५४४
कथत व०कृ०। कथ्यौ भू०कृ०।
—इत[1] वि० कहा हुआ। रचित।
—इत[2] पुं० मृदंग के बारह प्रबन्धों में से एक।

कथक पुं० १. कथा, कहानी कहने वाला। पौराणिक।
२. गाने, बजाने व नाचने-गाने वालों की एक जाति। ३. कवि। रचयिता।

कथक्कड़ पुं० कथा बाँचने वाला।

कथन—कथनि पुं० १. कहना। बखान। बात।
२. कथाएँ।
उ०—काम कथन सब जानत सोई। बड़ी रीझि बिरहिन होई। बो० ३/६१
—ई स्त्री० कथन। कहने योग्य बात। बात।
उ०—कथनी कौन काम यह ऐहै। बो० ५५/२७
—ईय वि० कहने योग्य। वर्णनीय।

कथरा—कथरी पुं० चिथरा। गुदड़ी। बिछावन। कन्था।

कथवा— सक० बनवाना। रचना करवाना। निर्माण करवाना।

कथा स्त्री० १. वह जो कही जाय, उपाख्यान।
२. धर्म विषयक व्याख्यान या आख्यान।
३. उपन्यास का एक भेद-विशेष।
४. चर्चा। वृतांत। जिक्र।
उ०—सुनत सुपति मुख रति कथा, विहँसि रही गहि गांसु। कृ० १०२/२६
५. समाचार। हाल।
६. वाद-विवाद। कहासुनी।
—नक पुं० १. कथा। किस्सा।
२. किसी बड़ी कथा की छोटी कहानी। सारांश।
—निका स्त्री० उपन्यास का एक भेद जिसमें अनेक पात्रों की बातचीत से प्रधान कहानी कहलायी जाय और उसके सब लक्षण कथोपन्यास के ही हों।
—पीठ स्त्री० कथा की भूमिका।
—प्रसङ्ग पुं० १. अनेक प्रकार की बातचीत।
२. कथा का आरंभ। ३. सपेरा। मदारी।
—मुख पुं० आख्यायिका। ग्रन्थ की भूमिका।
—वार्ता स्त्री० अनेक प्रकार की आख्यायकाएँ। अनेक प्रकार की बातचीत।

कथिक पुं० दे० 'कत्थक'।

कथितव्य वि० कहने योग्य। कथनीय।

कथीर[1]—कथील—कथीला (सं० कस्तीर) पुं० राँगा। हिरनखुरी राँगा।

कथीर[2] (सं० कन्था) पुं० दे० 'कथरा'।

कथोद्घात पुं० १. प्रस्तावना। २. सूत्रधार का वक्तव्य।

कथोपकथन पुं० १. वार्तालाप। सम्भाषण।
२. प्रश्नोत्तर। सवाल-जवाब। वाद-विवाद।

कथ्य वि० कहने योग्य। कथनीय।

कदंब—कदम्ब पुं० १. एक वृक्ष विशेष।
उ०—ललित ललाम स्याम रसिक रसाल को, कदंब मुकुलित के कुलनि सों करति है।
म० ३२२/२७४
२. समुदाय। समूह। संघ।

कदंबक पुं० समुदाय। संघ। झुंड।
उ०—गुंजत ढोल कदंबक पुञ्ज कुलाहल का हल बादति तामें। देव०

कद[1] (अ० कद्) स्त्री० ईर्ष्या। द्वेष।

कद[2] (क=जल+द) पुं० बादल।

कद[3] अव्य० कब। किस समय।

कद[4] (अ० कद) पुं० आकृति। डोल। ऊँचाई।
उ०—श्रंजन से जैतवार अंजन से कद हैं।
म० ३३०/३५४

कदक पुं० १. डेरा। तम्बू। २. चाँदनी।

कदध्व पुं० खोटा मार्ग। कुपथ। बुरा रास्ता।

कदन—कदनु पुं० १. विनाश। नाश।
उ०—परै भइराइ……करि कदन रुधिर भैरों अघाऊँ। सूर० ९/१२९/१९३
२. युद्ध। संग्राम। ३. पाप। हिंसा।
४. दुःख।
(स्त्री कदनी) वि० नाश करने वाले।
—निकंद वि० दुष्टों का नाश करने वाले।

कदन्न (कद+अन्न) पुं० बुरा अन्न। वर्जित अन्न।

कदप स्त्री० १. सम्मान। इज्जत। २. अंकुश।
३. गोखरू। ४. सफेद खैर।
५. गाँठ-विशेष, जो हाथ अथवा पैर में काँटा या कंकड़ी चुभने से पड़ जाती है।

कदम पुं० १. दे० 'कदंब'।

उ०—लै कर ससन······कर कवम चढ़ी इक ठोरा।
च० २५/१४

२. घास विशेष।

—आ पुं० एक प्रकार की मिठाई जो कदम्ब के फूल के आकार की बनाई जाती है।

कदम्बनट पुं० एक राग विशेष।

कदम्बिनी पुं० मेघमाला। बादलों का समूह।

कदर—कदरि (अ०) पुं० आदर।

उ०—हम यासौं रिस वृथा करति हीं, तब इहिं कदरि न पाई। सूर० १०/१३५६/५७८

—दान वि० कद्र करने वाला। गुणग्राहक।

उ०—'नागर' मोहन साँवला, कदरदांन महबूब।
ना० ७४८/४६८

कदरई—कदराई स्त्री० भीरुता। कायरता।

कदरज पुं० एक कुख्यात पापी।

कदरमस स्त्री० लड़ाई। मारपीट।

कदरा— अक० कायरतापूर्ण व्यवहार करना। डरना।

उ०—काहे कों कदरात ही मैं राधा आनी।

—ई स्त्री० भीरुता। कायरता। डरपोकपन।

—यन पुं० दे० 'कदराई'।

कदरो स्त्री० एक पक्षी जो डील-डौल में मैना के बराबर होता है।

कदर्य—कदर्ज वि० १. कंजूस। २. कायर। ३. निरर्थक। ४. कुत्सित।

—ता स्त्री० १. कंजूसी। २. नीचता। ३. दुर्दशा।

कदलि—कदली स्त्री० १. वृक्ष विशेष।

उ०—लखि कदली तरु लाजै। बो० ३८/१०३

२. उक्त पेड़ का फल। केला।

३. एक प्रकार का हिरन।

कदा क्रि०वि० १. कब। २. कभी।

उ०—यार जुदे होय जीजिए, सो कीजिए न कदा।
ना० ५७२/४४१

कदाकार (कु+आकार) वि० जिसका आकार बेढब हो। कुरूप।

कदाकृति (कु+आकृति) वि० दे० 'कदाकार'।

कदाख्य (कु+आख्या) वि० बदनाम।

कदाच क्रि०वि० दे० 'कदाचित्'।

कदाचन (कदा+चन) क्रि०वि० १. किसी समय। २. शायद।

कदाचार (कु+आचार) पुं० बुरा आचरण। खराब चाल-चलन।

कदाचि क्रि०वि० १. कभी। २. कहीं।

उ०—सुने कदाचि होय तो कैसी। बो० १५/५२

कदाचित् क्रि०वि० १. शायद। २. यदि।

कदापि (कदा+अपि) क्रि०वि० किसी अवस्था में भी हरगिज। कभी।

उ०—कदी यार मेरो लख्यो तो छबि अजब बहार।
बो० ८/६१

कदी—कद्दी वि० दुराग्रही। हठी।

क्रि०वि० कभी।

कदीम (अ०) वि० पुराना।

उ०—ये ई हिय द्वार के कदीम दरबान दोऊ।
ठा० ७७/२१

पुं० लोहे की वह छड़ जिसकी सहायता से भारी चीजें इधर-उधर खिसकाई जाती हैं।

कदील पुं० काँटेदार वृक्ष विशेष। करील।

कदुआ—कद्वा पुं० एक फल विशेष जिसकी तरकारी बनती है। कद्दू। काशीफल।

उ०—कदुआ करत मिठाई घृत पक।
सूर० १०/८६२/४५२

कदुष्ण (कु+उष्ण) वि० कम गर्म। गुनगुना।

कद्रु (कद्+रु) स्त्री० नागमाता जो दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी थी।

वि० भूरा।

—ज पुं० कद्रु के गर्भ से उत्पन्न। नाग। सर्प।

उ०—कद्रुज रहे पताल दुरि।
सूर० १०/२७७६/२०४

कधी—कध्धी क्रि०वि० कभी। किसी समय।

उ०—नसा कध्धी न खाते हैं। बो० १६/६३

कन पुं० दे० 'कण'।

उ०—श्रम-जल-कन मुख श्रवत सुधारी।
ना० ३२५/३४४

—अवली स्त्री० १. कण राशि। २. बूंद।

उ०—गंड मंडल रुचिर श्रम जल-कनावली।
ना० १६५/३०२

—का पुं० बूंद।

उ०—जल के कनका तन सोभित हैं।
गं० १३५/४२

कनई[1] स्त्री० नई शाखा। कोंपल।

कनई[2] स्त्री० १. कीचड़। २. गीली मिट्टी।

कनउँगली (कानी+उँगली) स्त्री० सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका।

कनउड़ी स्त्री॰ दासी।
वि॰ दे॰ 'कनौड़ी'।
कनकड़ वि॰ दे॰ 'कनौड़ा'।
कनक[1] पुं॰ १. स्वर्ण। सोना।
उ॰—चलत कनक-पिचकारी। छी॰ ५६/२२
उ॰—कनक-कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ। बि॰ १९२/८२
२. टेसू। ३. ढाक। पलाश। ४. खजूर।
५. नागकेसर। ६. छप्पय नामक छंद का एक प्रकार।
—अचल पुं॰ सुमेरु पर्वत।
उ॰—कनकाचल कौं श्रुति गावै। म॰ २६५/३४३
—अलुका स्त्री॰ स्वर्णपात्र।
—कदली पुं॰ केले की एक जाति।
—फली स्त्री॰ कान अथवा नाक का एक आभूषण विशेष। लौंग।
—कशिपु—कसिपु पुं॰ हिरण्यकश्यप नामक एक दैत्य।
—चम्पा स्त्री॰ १. एक वृक्ष विशेष।
२. उक्त वृक्ष का फूल। कनियारी।
—छार—क्षार पुं॰ सुहागा।
—जीरा पुं॰ धान विशेष जो कि बहुत अच्छे प्रकार का होता है।
—थली (कनक+स्थली) स्त्री॰ सोने की भूमि।
उ॰—कनकथली ऊपर बसै कंचन-कलस विसाल। प॰ ६३/४०
—पुष्प पुं॰ १. धतूरे का फूल। २. जमालगोटा।
—फल पुं॰ १. धतूरे का फल। २. जमालगोटा।
—रस पुं॰ हरिताल।
—लता स्त्री॰ १. सोने की लता। २. देहयष्टि।
उ॰—कनक-लता तें ऊपजे श्रीफल के फल दोइ। प॰ १४०/४६
—लोचन पुं॰ हिरण्याक्ष नामक एक दैत्य।
—वरन वि॰ सुनहला।
पुं॰ सोने का रंग।
—सेन पुं॰ एक राजा जिसने २०० ई॰ में बल्लभी सम्वत् चलाया था। यह मेवाड़ वंश के प्रतिष्ठाता भी कहे जाते हैं।
कनक[2] पुं॰ १. गेहूँ। २. अन्न का एक कण।
उ॰—लंगर के दाता अरु भूखन कनक देत। क॰ ४५/१५
कनकानी पुं॰ घोड़े की एक जाति विशेष।

कनकी स्त्री॰ १. चावलों के छोटे-छोटे कण।
२. किसी वस्तु का बहुत छोटा कण।
कनकीरा (कान+कीड़ा) पुं॰ [स्त्री॰ कनकीरी] कान का कीड़ा।
कनकूत पुं॰ बँटाई का एक ढँग।
कनकैया पुं॰ दे॰ 'कनकौआ'।
कनकौआ—कनकौवा (कन्ना+कौवा) पुं॰
१. कागज की बड़ी पतंग। गुड्डी।
२. एक प्रकार का बरसाती साग।
कनखजूरा (कान+खर्जु) पुं॰ एक जहरीला कीड़ा जिसके सैकड़ों पैर होने हैं और रेंग कर चलता है। कांतर। गोजर।
कनखा[1] पुं॰ १. नवाङ्कुर। कोंपल। २. एक छन्द-विशेष।
कनखा[2] स्त्री॰ तिरछी चितवन।
उ॰—कनखा करिकै पगु सों परिकै। भि॰ II, ६३/१६
कनखिया—कनखियाँ स्त्री॰ दे॰ 'कनखी'।
उ॰—दूरि जाय फिर चितई कनखियनि, कीने बिवस जु मार। ना॰ २६१/३२३
सक॰ आँख से इशारा करना। तिरछी नज़र से देखना।
कनखी (कान+आँख) स्त्री॰ १. आँख की कोर। तिरछी दृष्टि।
२. दूसरों की दृष्टि बचाकर देखना।
३. आँख का इशारा।
कनखुरा पुं॰ एक घास का नाम।
कनखैयन क्रि॰वि॰ इशारों से। तिरछी दृष्टि से।
कनखैया स्त्री॰ तिरछी दृष्टि।
कनखोदनी (कान+खोदनी) स्त्री॰ कान का मैल साफ करने की सलाई।
कनगुरिया (कानी+उँगली) स्त्री॰ दे॰ 'कनउँगली'।
कनछेदन—कनछेदनो (कान+छेदना) पुं॰ हिन्दुओं का एक संस्कार जिसमें वालक के कान छेदे जाते हैं।
उ॰—कान्ह कुंवर की कनछेदन है। सूर॰ १०/१८०/२६०
कनटोप (कान+टोप) पुं॰ एक तरह की सिर की टोपी जिससे दोनों कान ढँक जाते हैं।
कनतूतुर पुं॰ एक प्रकार का छोटा विषैला मेंढक।
कनधार पुं॰ १. कर्णधार। मल्लाह। केवट।

उ०—यहै नाव-कनधार। सूर० ६/८६/१८०
२. एक नगर विशेष।

कनपट—कनपटी (कान+पट) पुं० मनुष्य की आँख और कान के बीच का स्थान।

कनपानि पुं० अन्न-जल। खाना-पीना।

कनपीड़ा (कान+पीड़ा) स्त्री० कान का दर्द।

कनपेड़ा पुं० कान का रोग विशेष। कर्णफेर।

कनफटा (कान+फटना) पुं० १. गोरखनाथी पंथ का साधु विशेष, जो कानों को फड़वाकर उसमें बिल्लौर मिट्टी आदि की मुद्राएँ धारण करते हैं।
२. साँप-बिच्छू पकड़ने वाले।

कनफुंका—कनफुंकना (कान+फूंकना) वि०
१. कान में मंत्र या दीक्षा देने वाला।
२. कान फुंकवाने वाला। ३. चुगलखोर।
पुं० १. गुरु। २. चेला।

कनफुसका वि० १. परोक्ष में निन्दा करने वाला। निन्दक।
२. चुगली करने वाला।
३. कान में धीरे से बात कहने वाला।
पुं० कानाफूसी।

कनफेड़ पुं० दे० 'कनपेड़ा'।

कनफेड़ा पुं० एक लता विशेष जो दवा के काम आती है।

कनबाती (कान+बात) पुं० कान में चुपके से कही गई बात।

कनबिधा (कान+बेधना) पुं० वह व्यक्ति जिसका कान बिंधा हुआ हो।
वि० कान छेदने वाला।

कनमैलिया (कान+मैलिया) पुं० कान का मैल निकालने वाला।

कनय पुं० दे० 'कनक'।

कनयून पुं० एक प्रकार का सफेद कश्मीरी चावल जो बहुत अच्छा माना जाता है।

कनरई पुं० एक वृक्ष विशेष जिससे गोंद निकलता है।

कनरश्याम (कान्हड़ा+श्याम) पुं० एक सङ्कर राग जिसमें समस्त शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है।

कनरस (कान+रस) पुं० संगीत सुनने की उत्कट रुचि।
उ०—तजै को कनरसै जो छन्द सरसांत है।
क० ८/३

कनरसिया (कान+रसिया) वि० संगीत-रसिक।

कनरा पुं० कन्नड़ देश।
उ०—प्रताप सपेत लखे कनरा नृप सारे।
मू० १६५/१६०

कनल पुं० भिलावाँ।

कनबई स्त्री० १. कण।
२. सेर का सोलहवाँ भाग। छँटाक।

कनवाँसा (कन्या+नवासा) पुं० लड़की के लड़के का पुत्र। पड़-नाती।

कनवा पुं० दे० 'कनवई'।

कनवी स्त्री० एक प्रकार का कपास जो गुजरात में पैदा होता है। इसके बिनौले बहुत छोटे हैं।

कनव पुं० एक हथियार का नाम।

कनसलाई (कान+सलाई) स्त्री० १. काँतर की तरह का एक छोटा कीड़ा।
२. कुश्ती का एक दाँव।

कनसार (काँसा+आर) पुं० धातु के पत्तरों पर लेख खोदने वाला व्यक्ति।

कनसाल (कोन+सालना) पुं० चारपाई के पायों के तिरछे छेद जिनके कारण चारपाई टेढ़ी हो जाती है।

कनसुई (कान+सुनना) स्त्री० १. छिपकर टोह लेने का भाव। २. आहट।
३. गोबर की गौर से सगुन विचारने की क्रिया।

कनहा पुं० १. फसल कूतने वाला।
२. अन्न का अनुमान लगाने वाला।

कनहार—कनहारी—कनहारु पुं० १. केवट।
२. श्रीकृष्ण।

कनहेर (कान+हेरना) पुं० दूर का शब्द सुनने की क्रिया।

कना[1] पुं० १. दे० 'कण'।
२. ईख में होने वाला एक प्रकार का रोग।

कना[2] पुं० सरकंडा।

कनाई[1] स्त्री० १. वृक्ष अथवा पौधे की पतली शाखा।
२. कोंपल। ३. अनाज का डंठल।
उ०—नाज की कनाई जैसे करेजे खगति है।
गं० १८०/५४

कनाई[2] स्त्री० रस्सी के वह दोनों भाग जिन्हें मिलाकर पशु को बाँधते हैं।

कनाई[3] पुं० आल्हा की किसी घटना का वर्णन।

कनाउड़—कनाउड़ा—कनाउड़ो वि० दे० 'कनौड़ा'।

कनाखि क्रि०वि० तिरछी दृष्टि से।

उ०—तिरछी आँखिन तें कछू लखत कनाखि जनाइ।
र० ४५४/६०

कनाष पुं० दे० 'कनखी'।
उ०—सखि तन कुँवरि कनाषन चहै।
नं० ३६६/१२०

कनागत (कन्या+गत) पुं० आश्विन (क्वार) मास का कृष्णपक्ष जिसमें पितरों का श्राद्ध किया जाता है।

कनात (तु०) स्त्री० कपड़े की दीवार जो खंमे या किसी खुले स्थान के चारों ओर खड़ी करते हैं।
उ०—बिरचि गंग बैरख कनात सजि सत्त नीर-निधि। गं० १३/१४१

कनाद पुं० दे० 'कणाद'।
उ०—मैं मुनि गौतम नाहिं कनाद रिझावत।
हरि० ३६/१५

कनार पुं० सर्दी लगने से घोड़ों को होने वाला एक रोग।

कनारी स्त्री० पालकी ढोने वाले कहारों की भाषा में काँटे के लिए प्रयुक्त संकेत शब्द।

कनावड़ा वि० १. लज्जित। २. दे० 'कनौड़ा'।
उ०—दुरत नहीं पट ओट आँखें कनावड़ी।
ना० २५६/३२१

कनासी (कण+आशी) स्त्री० १. नारियल की खोपड़ी को रगड़कर साफ करने की रेती।
२. बढ़ई की रेती।

कनि पुं० दे० 'कण'।
उ०—झुक्कि झिरत मद धुक्कि भिरत कटि कुक्कि गिरत कनि। भू० ३३६/१६१

—का स्त्री० अंश। हिस्सा।
उ०—कछु इक रह्यो नेह को कनिका ताहि देखि अनखात। घ्र० ६३/८६

—की स्त्री० चावलों के छोटे-छोटे टुकड़े। किनकी।

कनिक पुं० आटा।
उ०—सरस कनिक बेसन मिलै, रुचि रोटी पोई।
सूर० १०/१६८०/४८

कनिकदार वि० दानेदार। उत्तम .घी)।
उ०—कनिकदार घृत सक्कर सोई।
बो० ३५/२२४

कनिगर (कानि+गर) पुं० १. अपनी मान-मर्यादा का ध्यान रखने वाला व्यक्ति।
२. निज सुयश को सुरक्षित रखने वाला व्यक्ति।

कनित वि० बजता हुआ। क्वणित।
उ०—किंकिनी कटि, कनित कंकन, कर चुरी झन-कार। सूर० १०/१०४३/४६१

कनिया[1] स्त्री० गोद।
उ०—लेहु कनिया चढ़ाइ। गो० १८/१०

कनिया[2] स्त्री० कन्या।
उ०—ब्रज की कनियाँ देषत मोहै। हरि० ८३/७४

कनिया[3]— अक० १. आँख बचा कर निकल जाना। कतराना। कन्नी काटना।
२. पतंग का एक ओर झुक जाना।
३. गोद में लेना।

कनियान वि० १. अल्पज्ञ। २. अनुज। अत्यन्त छोटा।

कनियार—कनियारी पुं० एक पुष्प विशेष। कनकचम्पा।
उ०—जाही, जूही, सेवती, करना, कनियारी।
सूर० १०/१०६५/५०५

कनिष्ठ वि० १. छोटा। अनुज। २. अत्यन्त लघु।
३. निकृष्ट। ४. जो विद्वान या श्रेष्ठ न हो।

कनिष्ठा (कनिष्ठ+आ) स्त्री० १. दे० 'कनिष्ठिका'।
२. नायिका भेद के मतानुसार कई स्त्रियों में से वह स्त्री जिसे पति कम चाहता हो।
३. कई पत्नियों में से वह पत्नी जो सबसे छोटी हो अथवा सब के बाद में ब्याही गई हो।
वि० १. सबसे छोटी। २. निकृष्ट। नीच।

कनिष्ठिका स्त्री० सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली।
उ०—बरनत ज्येष्ठ-कनिष्ठिका जहँ द्वै ब्याही नारि।
म० ५५/२१२

कनिहा पुं० प्रतिहिंसाकारी।

कनिहार पुं० मल्लाह। निषाद।

कनिहेर (कान+हेर) पुं० दूर का शब्द सुनने की क्रिया।

कनी स्त्री० १. कण। छोटा टुकड़ा।
उ०—रतिरूप की न कनी है। गं० ५८/१६
२. हीरे का छोटा टुकड़ा।
उ०—फूटि गएँ हीरा की बिकानी कनी हाट हाट।
गं० ४०७/१२४
३. चावल का मध्य भाग जो पकाने पर कभी-कभी बिना गला रह जाता है।
४. बूंद।
उ०—अमृत एक कनी। सूर० १०/१४५८/६०१
५. चिन्गारी।
उ०—उडुगन कनी उचटि इत आई।
सूर० १०/३३५१/३५८

कनीन वि० युवा । तरुण ।
स्त्री० आँख की पुतली ।
उ०—चहूँ ओर कोर हेम हीरा की कनीन की ।
दे० I, २२४/८४

कनीनिका—कनीनिकनु स्त्री० १. आँख की पुतली ।
उ०—औरै-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज ।
बि० ४/५
२. कन्या । कुमारी ।
३. दे० 'कनिष्ठिका' ।

कनीर पुं० कनेर का वृक्ष या फूल ।
उ०—कुल केतकि, करनि, कनीर, मिलि झूमक हो ।
सूर० १०/२६०३/२५२

कनु—कनुका—कनूका पुं० १. कण । छोटा टुकड़ा ।
उ०—गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम ।
उ० १०/१०
२. चावल का छोटा टुकड़ा ।
३. अन्न का एक दाना । ४. भिक्षा ।

कने क्रि०वि० १. निकट । पास । २. अधिकार में ।

कनेख—कनेखी स्त्री० दे० 'कनखी' ।
उ०—सुनी-अनसुनी करि, काननि कनेख देखि ।
दे० I, १११/६५

कनेठा—कनैठा (काना+ऐंठा) पुं०
[स्त्री० कनेठी—कनैठी] १. वह लकड़ी जो कोल्हू से रगड़ खाती हुई उसके चारों ओर घूमती है । २. कान ।
वि० १. भेंगा । ऐंचाताना । २. काना ।

कनेठी (कान+ऐंठना) स्त्री० १. कान मरोड़ने का दिया हुआ दण्ड ।
२. कान उमेठने की क्रिया ।

कनेती स्त्री० दलालों का संकेत शब्द जिसका अभिप्राय रुपये से होता है ।

कनेर—कनेल पुं० १. एक प्रकार का फूलोंवाला वृक्ष ।
२. उक्त वृक्ष का फूल ।
उ०—केतकी कनेल फूले । सूर० १०/२६१७/२६३
—इया वि० जिसका रंग कनेर के फूल की तरह कुछ कालापन लिये पीला या लाल हो ।
पुं० उक्त प्रकार का रंग ।

कनेव पुं० चारपाई का टेढ़ापन ।

कनै पुं० सोना । स्वर्ण ।
क्रि०वि० पास । निकट ।
उ०—तैंसी समसेर सेर काहू के कनै नहीं ।
प० ३३/३१२

कनैखी—कनैखि स्त्री० दे० 'कनखी' ।
उ०—एकन कों तकि घूँघट में मुख मोरि कनैखिन दै चलै दै चलै । प० १०६/१०३

कनोज—कनौज पुं० कन्नौज, वर्तमान समय में गंगा तट पर एक कस्बा है । प्राचीन काल में यह महाराज गाधि की राजधानी था ।
उ०—अजामिल बिप्र कनोज-निवासी ।
सूर० ६/४/१२६
—इया वि० कन्नौज का रहने वाला ।
पुं० कान्यकुब्ज ब्राह्मण ।

कनोतर (नौ+उत्तर) पुं० दलालों का उन्नीस की संख्या के लिए प्रयोग किया जाने वाला संकेत शब्द ।

कनौठा[1] (कोना+औठा) पुं० १. कोण । कोना ।
२. किनारा । पार्श्व ।

कनौठा[2] पुं० १. भाई-बंधु । २. पट्टीदार ।

कनौड़ा[1] (काना+औड़ा) वि०
[स्त्री० कनौड़ी—कनौंड़ी]
१. अपंग । काना । २. कलङ्कित ।
३. अहसान से सीधी न होने वाली दृष्टि ।
४. अहसानमंद । कृतज्ञ । उपकार से दबा ।
उ०—हित की कनौंड़ी लौंडी भई ये अनंदघन ।
घ० क० ३०५/१६८
५. क्षुद्र । तुच्छ । ६. असमर्थ । दीन-हीन ।

कनौड़ा[2]— अक० दबना । परवाह करना ।
उ०—काहू की कानि कनौड़त कै को ।
घ० क० २५१/१७३

कनौती (कान+औती) स्त्री० १. पशुओं के कान या उनके कानों की नोंक ।
२. पशुओं के कानों को उठाने का एक ढंग या प्रकार ।
३. कान में पहनने का एक आभूषण ।
उ०—कनौती खुमी सीखड़ीं खूब छोटी ।
प० ५१/२८१

कन्न पुं० कर्ण । कान ।
—फूल पुं० १. कर्णफूल । कान का आभूषण ।
२. कोल्हू के कावर की लकड़ी-विशेष ।

कन्ना पुं० (स्त्री० कन्नी) १. पतंग की काँप में दो जगह बँधा हुआ डोरा जिसके बीचों-बीच उठाने की डोर बाँधी जाती है ।
२. किनारा । कोर । ३. चावल का कण ।

४. वनस्पतियों का एक रंग।

वि० काना।

कन्नी[1] स्त्री० राजगीरों का एक औज़ार।

कन्नी[2] स्त्री० कोंपल। नया कल्ला।

कन्यका स्त्री० १. क्वाँरी लड़की। २. पुत्री। बेटी।

उ०—पुत्री, दुहिता, कन्यका, तनया, तनुजा होय। नं० ४६/७१

कन्या स्त्री० लड़की। पुत्री।

उ०—चन्द्राबली गोप की कन्या। सा० ८७३/७०

—अलीक पुं० जैन मतानुसार वह झूठ जो कन्या के सम्बन्ध में बोला जाय।

—कुमारी स्त्री० एक देवी जिसका रामेश्वर के निकट मन्दिर है।

—जात वि० क्वाँरी कन्या से उत्पन्न। कानीन।

—दान पुं० विवाह के समय वर को कन्या देने की धार्मिक क्रिया।

—धन पुं० कन्या को अविवाहित दशा में प्राप्त सम्पत्ति। स्त्री धन-विशेष।

—पंच स्त्री० प्राचीनकाल की पाँच श्रेष्ठ कन्याएँ, यथा—अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी।

—पाल पुं० १. वह पुरुष जो कन्या बेचने का व्यवसाय करता है।

२. बंगाल की एक शूद्र जाति, जिसे अब पाल कहते हैं।

—पुर पुं० अन्तःपुर। रनिवास। जनानख़ाना।

—वेदी पुं० दामाद। जमाई।

—शुल्क पुं० वह धन जो कन्या के मूल्य स्वरूप कन्या के पिता को दिया जाय।

—रासी पुं० वह, जिसके जन्म के समय चन्द्रमा कन्या राशि में हो।

वि० १. सत्यानाशी। चौपट करने वाला।

२. कायर। ३. निर्बल।

कन्व पुं० दे० 'कण्व'।

उ०—वामदेव मुनि कन्वजुत भरद्वाज मतिनिष्ठ। के० II, ५/३५०

कन्हड़ी स्त्री० कर्णाटक देश की स्त्री।

कन्हर—**दास** पुं० कन्हरदास। रामशाह का एक दरबारी।

उ०—कन्हर नाम करै नृपकाज। के० III, ३०/५५६

कन्हाई पुं० १. भगवान श्रीकृष्ण।

उ०—मेरे दुःखहार स्याम सुंदर कन्हाई। छी० ६८/३१

२. अत्यन्त प्रिय व्यक्ति।

३. बाँका आदमी।

कन्हावर पुं० कंधे पर डाला जाने वाला दुपट्टा।

कन्हैया—कनहैया[1] पुं० १. श्रीकृष्ण।

२. घोड़े का नाम।

उ०—तहँ हय कन्हैया की फुरत। प० १७५/२५

कन्हैया[2] पुं० कंधा।

उ०—कूदिकै गज को कन्हैया पर पर्यो। प० १७६/२५

कप— अक० काँपना। थरथराना।

कपकपी स्त्री० कम्प। थरथराहट। फुरफ़री।

कपट[1]**—कपटौ—कपट्ट** पुं० १. धोखा। छल।

२. दुराव।

उ०—बिना ही कपट प्रीति बिना ही। भू० १ ८/१५४

३. बनावटी व्यवहार।

—आदर पुं० छल करने के लिए किया गया आदर।

उ०—कपटादर मृदु बचन रचि। क्रु० २४५/५६

—ई वि० छली। कपट करने वाला। धोखेबाज।

उ०—झझकैं कपटी जे निसांक नहीं। घ० क० ८२/८६

—कृपानो वि० कपट विनाशक।

उ०—कपट कृपानी मानी प्रेम-रस लपटानी। के० I, ११/६३

—निधान वि० महाकपटी।

उ०—तन आन मन आन, कपट-निधान कान्ह। के० I, १३/६

—पुरुष पुं० खेतों में काली और सफेद रंग की हाँडी जो पशु और पक्षियों को डराने के लिए लगा दी जाती है। बनावटी आदमी।

—भेष पुं० छद्मवेश। नकली रूप।

उ०—धारिकै कपट भेष भिक्षुक को। सा० २६६/२२

कपट[2]— सक० काटकर अलग करना। छाँटना।

कपटा पुं० १. एक प्रकार का कीड़ा जो धान के पौधों को हानि पहुँचाता है।

२. तमाखू के पौधे का रोग विशेष।

कपटी[1] वि० दे० 'कपट'।

कपटी[2] पुं० दे० 'कपटा'।

कपड़ पुं० दे० 'कपड़ा'।

—औटी स्त्री० किसी दवा को फूंकने के पहले कपड़े से ढककर गीली मिट्टी से बंद करने व लपेटने की क्रिया ।
—कोट पुं० तम्बू । डेरा । खेमा ।
—गंध स्त्री० कपड़े के जलने की गन्ध ।
—छन—छान पुं० किसी वस्तु के चूर्ण को कपड़े से छानने की रीति ।
वि० कपड़े से छाना हुआ ।
—धूलि स्त्री० रेशमी । महीन वस्त्र विशेष ।
—विदार पु० दर्जी ।

कपड़ा—कपरा पुं० १. वस्त्र । २. परिधान । लत्ता ।
—लत्ता पुं० व्यवहार में आने वाले कपड़े ।

कपतपिलंग पुं० पिलक कपोत के रंग का दुरंगा घोड़ा ।
उ०—तहँ कपतपिलंग उमड़ि उमंगन अंगन अंगन दुति उमहीं । प० ६८/२८७

कपतान पुं० दल का नायक ।
उ०—कंपू बन बाग के कदंब कपतान खड़े । प० ६३/३२०

कपत्थ पुं० कैथ वृक्ष ।
उ०—पटवयो ताहि कपत्थ पै । हरि० ६५/७०

कपनी स्त्री० कँपकँपी ।
उ०—मोहिं तो छूटति अति कपनी । सूर० १०/२०६२/६६

कपरिया स्त्री० एक निम्न जाति विशेष ।

कपर्द पुं० १. शिवजी का जटाजूट । २. कौड़ी ।
—इन—इनो स्त्री० भवानी । दुर्गा ।
—ई पुं० १. जटाजूटधारी शिव ।
२. एकादश रुद्रों में से एक । ३. बट ।
उ०—जटी, कपर्दी, रक्तफल, बहुपद, ध्रुव निग्रोध । नं० २५४/६२
—क पुं० (स्त्री० कपर्दिका)
१. शिवजी का जटाजूट । २. कौड़ी ।
—नि स्त्री० भवानी । दुर्गा ।
उ०—जयति जयति जय आदिसकति जय कालि कपर्दनि । भू० २/१२८

कपसा स्त्री० वह मिट्टी जिसके सहारे कुम्हार मिट्टी के बर्तन पर रंग चढ़ाता है । गारा ।

कपसेठा (कपास+एठा) पुं० (स्त्री० कपसेठी) कपास के सूखे डंठल या पौधे जो जलाने के काम में लाए जाते हैं ।

कपाट पुं० किवाड़ । दरवाजा ।
उ०—खुले अन्यास कपाट । बो० १३/१७१
—बद्ध पुं० चित्रकाव्य-विशेष जिसमें अक्षरों को विशेष प्रकार से लिखने पर किवाड़ों का चित्र बन जाता है ।
—मंगल पुं० वल्लभ कुल के लोग भगवान के मन्दिर के किवाड़ बन्द करने को कपाट-मंगल करना कहते हैं ।

कपार पुं० दे० 'कपाल' ।
उ०—हर सिर धरत कपार । म० २६१/३४८

कपाल पुं० १. खोपड़ी । सिर ।
उ०—लय हाथ में लट्ठा ताको कूटत मित्र कपाल । ना० ५/२
२. ललाट । मस्तक । ३. अदृष्ट । भाग्य ।
४. मिट्टी का पात्र विशेष, जिसमें भिखारी भीख माँगते हैं । खप्पर ।
५. यज्ञीय पुरोडाश बनाने का पात्र विशेष ।
—इ पुं० कपाल धारण करने वाले शिव ।
—इक पुं० दे० 'कापालिक' ।
—इनी स्त्री० दुर्गा । भगवती ।
—ई पुं० १. भैरव ।
२. कपाल धारण करने वाले भगवान शिव ।
उ०—कपाली लैहै सीस तेरो । हरि० ४२/१२१
३. वर्णसंकर जाति विशेष ।
—क पुं० दे० 'कापालिक' ।
—क्रिया स्त्री० मृतक संस्कार के अन्तर्गत एक कृत्य, इसमें शव की खोपड़ी लकड़ी आदि से फोड़ते हैं ।
—नाथ पुं० शिव ।
उ०—भूल तें कुभूल तें कुसूल तें कपालनाथ । के० III, ४०/७०१
वि० कपाली । कपाल धारण किये हुए ।
उ०—भूल तें कुभूल तें कुसूल तें कपालनाथ । के० III, ४०/७०१
—थली स्त्री० मुण्डमाला ।
उ०—सूली के सूल कपालथली है । के० I, ५४/१२६
—माली पुं० खोपड़ियों की माला पहनने वाले शिव ।
—मोचन पुं० काशी का एक तीर्थ विशेष ।

कपास पुं० एक प्रसिद्ध पौधे का फल जिससे रुई निकलती है ।
उ०—जब चोंच दई तो कपास लहा । गं० ३८६/११६

—ई वि० कपास के फूल के रंग का। हलके पीले रंग का।
स्त्री० भोटिया बादाम।

कपिंजल पुं० १. चातक। पपीहा। २. गौरा पक्षी। ३. तीतर। ४. एक प्राचीन मुनि का नाम।
वि० पीले रंग का।

कपि—कपी पुं० १. बन्दर। २. हनुमान।
उ०—सब सदेस कह्यौ कपि सिय प्रति। सा० २८२/२३
३. हाथी। ४. कंजा। करंज।
५. शिलारस। ६. सूर्य।
—ईश—ईस पुं० बन्दरों के राजा—बालि, सुग्रीव, हनुमान आदि।
उ०—कहु कपीस सुभ अंग। भि० II, २५/१६५
—कुंजर पुं० वानरेन्द्र। हनुमान, सुग्रीव, बालि आदि।
—केतु—धुज—ध्वज पुं० अर्जुन, जिनकी ध्वजा पर कपि की आकृति थी।
उ०—गुड़ाकेश, गांडीवधर, पार्थ, कपिध्वज सोय। नं० ९०/७५
—पति पुं० बानरराज सुग्रीव। किष्किन्धा के राजा।
—राई—राज पुं० सुग्रीव। बालि का भाई।
—प्रिय पुं० कैथ का फल।

कपित्थ पुं० १. कैथ का पेड़ या फल।
२. नृत्य की एक मुद्रा जिसमें अँगूठे के एक छोर को तर्जनी के छोर से मिलाते हैं।

कपिल वि० १. भूरा। मटमैला। २. लाल। ३. सफेद।
पुं० १. अग्नि। २. कुत्ता। ३. मूषक।
४. शिलाजीत। ५. महादेव। ६. विष्णु।
उ०—पाछैं कपिल रूप धरि प्रगटे। सा० ५४/५
७. सूर्य। ८. शीशम का वृक्ष।
९. पुराण के अनुसार वे मुनि जिन्होंने सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म किया था।
१०. कुशद्वीप के एक खण्ड या वर्ष का नाम।
—अश्व पुं० इन्द्र, जिनका घोड़ा सफेद है।
—आ स्त्री० १. भोली-भाली गाय।
उ०—कपिला नाहिं न कूटिये हरहाइन के दोस। बो० ४७/११०
२. भूरे रंग की गाय।
उ०—कपिला धेनु कनक सिंगी। गो० १२/६
३ जोंक। ४. चींटी।
५. दक्षिण-पूर्व के पुण्डरीक नामक दिग्गज की पत्नी।
६. दक्ष प्रजापति की एक कन्या।
७. सुगन्धित औषधि विशेष।
८. मध्य प्रदेश में बहने वाली एक नदी।
—ता स्त्री० १. भूरापन। मटमैलापन।
२. ललाई। ३. सफेदी।
—धार स्त्री० १. श्री गंगाजी।
२. काशी व गया का तीर्थ विशेष।
पुं० एक स्थान विशेष जो बस्ती के जिले और नेपाल की तराई में है।

कपिलता स्त्री० केवाँच। कौंछ।
उ०—कोलि वल्लिका, कपिलता, बिसर श्रेयसी नाउँ। नं० २३२/९०

कपिलवस्तु पुं० एक प्राचीन नगर जो मगध की राजधानी था। यहीं पर भगवान विष्णु के नवें अवतार बुद्ध ने अवतार लिया था।

कपिश—कपिस (कपि+श) वि० १. भूरा। मटमैला।
२. सफेद। ३. रेशमी।
उ०—कल कनक कपिस कटि तट निचोल। गो० ३६१/१५०

कपिशा (कपिश+आ) स्त्री० दे० '१. कपिश।'
२. मद्य विशेष।
३. एक प्राचीन नदी का नाम जिसे आजकल कसाई कहते हैं।
४. कश्यप ऋषि की एक पत्नी जिससे पिशाचों की उत्पत्ति हुई थी।

कपुर पुं० दे० 'कपूर'।
उ०—कपुर कुरंगमद दृगनि बिलासु है। के० I, ८४/२१२

कपूत—कुपूत पुं० कुपुत्र। बुरा पुत्र।
उ०—बेधै मन कों कपूत पिता-मोह-मयो ना। घ० क० ६५/७८
—ई स्त्री० कुपुत्र की माँ।
पुं० पुत्र के अयोग्य आचरण।

कपूर—कर्पूर पुं० एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगन्धित द्रव्य जो वायु में उड़ जाता है और जलाने से जलता है।
उ०—मृगमद कर्पूर अगर बाति बारती। च० २८६/१४३
– कचरी स्त्री० एक सुगन्धित जड़ वाली वनोषधि। गन्ध पलाशी। गन्धमूली।

—काट पुं० एक प्रकार का बढ़िया, सुगन्धित जड़हन धान।

—धूर—धूरि स्त्री० (स्त्री० धूरि)

१. कपूर की रज। २. वस्त्र-विशेष।

उ०—स्यामल कपूरधूर की उढ़ीनी ओढ़े।

के० I, १०/१४६

—न पुं० एक सुगन्धित सफेद रंग का पुष्प।

—मनि पुं० १. एक प्रकार का रत्न।

२. एक प्रकार का पांडुर-वर्ण पत्थर जो हाथ पर घिसे जाने पर तिनके को खींचने लगता है।

उ०—ह्वैं कपूरमनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि। बि० ३६२/१५०

३. एक प्रकार का श्वेत पाषाण जो औषध के काम आता है।

कपूरा पुं० १. बकरे का अण्डकोश।

२. एक प्रकार का सफेद धान एवं चावल।

वि० सफेद।

कपूरी पुं० १. एक प्रकार का पीला रंग।

२. एक प्रकार का पान।

स्त्री० पहाड़ों पर होने वाली एक बूटी विशेष।

वि० हल्का पीले रंग वाला।

कपोत—कपोतक पुं० (स्त्री० कपोती) पक्षी विशेष। कबूतर।

उ०—मुकर, कपोत, कंज काहे को बिगारयो है। गं० १०५/३४

—अरि पुं० बाज पक्षी।

—आंध्रि पुं० १. गन्धद्रव्य।

२. प्रवाल। विद्रुम। मूँगा।

उ०—सुखिरा, नटी, नलीधमणि, कपोतांध्रि, परवाल। नं० २३६/६०

—पालिका—पाली स्त्री० १. कबूतरों का दरबा। काबुक।

२. कबूतरों के बैठने की छतरी। चिड़िया-खाना।

—बंका स्त्री० ब्राह्मी बूटी।

—वर्णी स्त्री० छोटी इलायची।

वि० कबूतर के रंग की।

—वृत्ति स्त्री० १. संचयरहित वृत्ति। नित्य कमाना नित्य खाना।

२. कष्ट में चुप रहना, केवल हर्ष में बोलना। दूसरों के किये अत्याचार को चुपचाप सहना।

—सार पुं० काला सुरमा।

कपोल पुं० १. गाल। गंडस्थल।

उ०—सुभग कपोल, लोल लोचन-छबि।

छी० ८३/३७

२. नृत्य या नाट्य में कपोल की सात चेष्टाएँ।

—कल्पना स्त्री० मनगढ़न्त बात। गप्प।

—कल्पित वि० निराधार। बनावटी।

—कूप पु० हँसते समय गालों में पड़ने वाल गड्ढा। छोटी भाँवरी।

—गेंदुआ पुं० गाल के नीचे का तकिया।

कपौला पुं० वैश्यों की एक जाति।

कप्पर पुं० १. कपड़ा। वस्त्र। २. कपाल। मुण्ड।

कप्पास पुं० १. कमल। २. बन्दर का नितम्ब।

वि० लाल रंग का।

कफ पुं० १. श्लेष्मा। खखार। बलगम।

उ०—कफ कंठ विरंध्यो। सूर० वि०/११८/३२

२. शरीर की धातु-नाल।

—आशय पुं० वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है।

कफनी (अ०) स्त्री० १. साधुओं का बिना सिला कपड़ा। मेखला।

उ०—डोरे रहे बनि बास सुरंग तहाँ कफनी पल टारिकैं डाबैं। बो० २६/१४१

२. अँगौछी।

उ०—कूबरि सेली धरी जु इनाम करे तसबी कफनी अरु कासो। भू० २६४/१८३

कफोणि—कपोणी स्त्री० कोहनी।

कफन (अ०) पुं० वह कपड़ा जिसमें मुरदे को लपेट कर ले जाते हैं।

—खसोट वि० १. दूसरे के धन को जबरदस्ती छीन कर हड़प जाने वाला।

२. सूम। कंजूस।

—चोर पुं० १. भारी चोर। २. दुष्ट।

कबंध पुं० धड़।

उ०—धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं।

भू० ४५२/२१७

२ सिर कटा राक्षस जिसे राम ने मारा था।

उ०—कामद कबंध रिपु हीको लै उमहिये।

प० ५१/२४६

—रिपु पुं० कबंध के वधकर्ता राम।

कब—कबै—कबौ क्रि०वि० १. किस समय।

२. कभी नहीं ।
उ०—हाय ! कब आनंद को घन बरसाय हो ।
घ० क० १२/४५
—लौं क्रि०वि० कब तक । किस समय तक ।

कबक (फा०) पुं० चकोर ।

कबड़िया पुं० एक जाति विशेष ।

कबड्डी—कबड़ी स्त्री० बालकों का एक खेल । कबड्डी ।
उ०—हिम्मति बड़ी कै कबड़ी के खेलवारन लौं ।
भू० ५०६/२२६

कबरा वि० चितकबरा ।

कबरी वि० भूरी । धौरी गाय ।
स्त्री० चोटी । वेणी ।
उ०—कुंतल कबरि ललाट जनु । नं० ५३/७१

कबलौं—कबहिलों क्रि०वि० कब तक ।
उ०—मीड़ि हम कबलौं करेजो मन मारिहैं ।
उ० ४४/४४

कबहुँ—कबहु—कबहूँ क्रि०वि० कभी ।
उ०—जा कबहु न ढोटा जावै । भ्र० ७५/८४
—क क्रि०वि० किसी समय ।
उ०—कबहुँक माखन-रोटी लैके । सा० १६७/१५

कबाइ (अ०) स्त्री० एक प्रकार का लम्बा ढीला पहनावा ।
उ०—काहू कौं पटुका दियौ हो काहू कुलह कबाइ ।
सूर० परि०/७/५८६

कबाड़ पुं० १. टूटा-फूटा सामान । २. तुच्छ व्यवसाय ।
—इया~ई पुं० १. टूटा-फूटा सामान खरीदने वाला । २. क्षुद्र । नीच ।

कबाब (फा०) पुं० माँस में वेसन, नमक व मिर्च मिलाकर टिकिया के रूप में सेंका गया एक खाद्य विशेष ।
उ०—रीछ की कबाब करि । हरि० ८८/३७

कबायत (अ०) स्त्री० कठिनाई । दे० 'कबाहत' ।
उ०—लिखी है इस्क की आतस नसीब मन्त कबायत । ना० ७५३/५०१

कबार—कबारक पुं० १. कारोबार । व्यवसाय ।
उ०—सुर नर मुनि नहीं करत कबार ।
सूर० १०/३१४०/३१६
२. पशुओं का भोजन ।

कबाहत (अ०) स्त्री० १. अड़चन । बाधा । २. बुराई । ३. झंझट ।

कबिंद पुं० कविश्रेष्ठ । कवीन्द्र ।
उ०—इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कबिंद ।
प० २८०/६७

कबि पुं० १. कविता करने वाला ।
उ०—यौं कबि भूषन जपत है । भू० १५/१३०
२. पंडित । ३. शुक्राचार्य ।
उ०—कबि अति मंद गति चलति रसाल है ।
क० ३१/१०
—कर्म पुं० कवि की रचना ।
उ०—शुद्धापह्नुति कहत हैं, जे प्रबीन कबिकर्म ।
म० ८७/३६६
—गोत पुं० कवि-वंश । कवि का गोत्र ।
उ०—या सौं और बिभावना कहत सकल कबिगोत ।
म० २०२/३६१
—मौर पुं० उत्तम कवि । श्रेष्ठ कवि ।
—राउ—राय पुं० १. कविराज । कविश्रेष्ठ ।
उ०—ताहि कहत सहउक्ति हैं भूषन जे कबिराउ ।
भू० १३७/१५४
२. बंगाल की एक जाति ।
३. वैद्यों की उपाधि ।
—सुर पुं० कविश्रेष्ठ ।
उ०—हौं हूँ त्यों कबीसुर ह्वै राजतै रहत हौं ।
प० ६/८०

कबित्त पुं० कवि की रचना ।
उ०—यह गुनकथन कबित्त न होई । बो० ७/२२

कबीठ पुं० १. एक वृक्ष विशेष । कैथ ।
२. उक्त वृक्ष का फल ।

कबीर पुं० १. निर्गुणवादी ज्ञानाश्रयी धारा के कवि और संत ।
२. एक प्रकार का अश्लील गीत अथवा पद जो होली पर गाया जाता है ।
(अ०) वि० श्रेष्ठ । बड़ा ।

कबीरबड़ (कबीर+वट) पुं० नर्मदा तट पर भड़ौच के निकट का एक विशाल वटवृक्ष ।

कबीला (अ०) पुं० १. जंगली अथवा जनजातियों का समूह जिसका कोई नायक या सरदार होता है ।
२. कुल । वंश । ३. जाति ।
४. असभ्य । जंगली ।

कबुक क्रि०वि० कभी । किसी समय ।

कबुलित वि० १. स्वीकृत । कुबूल की हुई । २. कथित ।

कबूतर (फा०) पुं० दे० 'कपोत' ।
उ०—चित्र कबूतर के बरन बरुन देवता जान ।
प० ६७७/२११
—ई स्त्री० १. कपोती ।
उ०—बदलति चून कबूतरी, त्यों बीरी तकि बंक ।
कृ० १०३/२६

२. सुन्दरी ।

उ०—बदलती चून कबूतरी । क्रु० १०३/२६

कबूल— (अ०) सक० स्वीकार करना ।

उ०—दई-दई क्यों करतु है, दई-दई सु कबूलि ।
बि० ५१/२७

कबूल्यो भू० कृ० ।

कभी (कव+ही) क्रि०वि० किसी समय ।

कभुँ—कभू क्रि०वि० दे० 'कभी' ।

उ०—कभू सुर एक कभी सत जाँह ।
बो० २३/१२२

—चित क्रि०वि० कदाचित् ।

कमंडल—कमंडलु पुं० संन्यासियों का जलपात्र । तूम्बा ।

उ०—विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही ।
प० १२/२५७

—ई स्त्री० छोटा कमंडल ।

पुं० १. ब्रह्मा ।

उ०—देखि कमंडली छाक की, रह्यो कमंडली भूल ।
ना० ३/२६६

२. साधु संन्यासी ।

वि० १. कमंडल वाला ।

उ०—रह्यो कमंडली भूल । ना० ३/२६६

२. पाखंडी ।

कमंद पुं० बिना सिर का धड़ ।

स्त्री० फंदा । पाश । फंदादार रस्सी ।

कमंध पुं० १. दे० 'कबंध' । २. कलह । झगड़ा ।

उ०—काहू की बेटी बहून को घेरू कितने घर जाइ कमंध से पारैं । ठा० १७५/४५

कम (फा०) वि० थोड़ा । अल्प ।

क्रि०वि० प्रायः नहीं ।

कमकस (काम+कसर) वि० सुस्त । ढीला ।

कमखाब (फा०) पुं० एक प्रकार का मोटा रेशमी कपड़ा जिस पर कलाबत्तू के बेलबूटे बने होते हैं ।

कमच्छा स्त्री० असम प्रान्त में कामरूप की पीठस्थ देवी का नाम । कामाख्या ।

कमजोर (फा०) वि० शक्तिहीन । निर्बल ।

कमटा पुं० एक छोटा काँटेदार पौधा ।

कमटी स्त्री० १. पेड़ की पतली लचीली टहनी ।

२. बाँस की धज्जी ।

कमठ—कमट्ठ पुं० १. कछुआ ।

उ०—लफि सीस कमट्ठ की पीठ लगै ।
गं० २६१/८८

२. दैत्य विशेष । ३. तुम्बा ।

४. बांस व सलई का पेड़ ।

५. एक प्राचीन वाद्य विशेष ।

—इन—ईन स्त्री० १. कच्छपी ।

उ०—मेरी गति घोर या कठोर कमठिन है ।
प० १४/२४०

२. बाँस की पतली लचीली खपची ।

३. धनुही ।

कमठा पुं० १. कमान । धनुष ।

२. जैनियों के एक महात्मा ।

कमती वि० थोड़ा ।

कमधुज (कवंध+ज) पुं० १. कबंध से उत्पन्न । जोधपुर के महाराज इसी वंश के थे । युद्ध में इनके पूर्वपुरुष कन्नौज के महाराज जयचंद का कबंध उठा था । इसी से उनके वंशीय कबंधज अथवा कमधुज कहलाते हैं ।

२. जोधपुर ।

उ०—कूरम कमल कमधुज है कदंब-फूल ।
भू० ४४१/२१४

कमन वि० सुन्दर ।

सर्व० कौन ।

—ई वि० सुन्दर । मनोहर ।

स्त्री० कामिनी । नायिका ।

उ०—ख्यात जोवना कमनी । क्रु० २४/८

—ईय—कँवनीय वि० सुन्दर ।

उ०—कुंज रस केलि कँवनीय दंपति करत ।
ना० ३७२/३६१

कमनूल वि० कम उम्र ।

कमनैत (कमान+एत) पुं० धनुर्धर । तीरंदाज ।

उ०—मान कमनैत बिन रोदा की कमानै है ।
प० ७३/६४

—ई स्त्री० तीर चलाने की कला ।

उ०—तिय, कित कमनैती पढ़ी । बि० ३५६/१४८

कमर (फा०) स्त्री० दे० 'कटि' ।

—धनी स्त्री० कमर का आभूषण । करधनी ।

कमरख पुं० १. एक वृक्ष विशेष ।

२. उक्त वृक्ष का फल जो स्वाद में खट्टा होता है ।

—अचार पुं० कमरख और अचार ।

उ०—कमरखाचार फिर नीके रस भोई मैं ।
र० ६६/३२५

—ई वि० कमरख जैसा फाँकदार ।

कमरा[1] पुं० किसी भवन का वह स्थान जो चारों ओर से दीवारों आदि से घिरा हो तथा ऊपर से छाया हो । बड़ी कोठरी ।

कमरा[2] पुं० बड़ा कंबल।

कमरि पुं० १. कर्मकार। कारीगर। २. सुनार। ३. लुहार। ४. एक प्रकार का बाँस।

कमरिया—कमरि स्त्री० ऊनी मोटा वस्त्र जो ओढ़ने व बिछाने के काम आता है। छोटा कंबल।
उ०—लई उढ़ाय कमरिया कारी। ना० ६५३/४६६

कमरंग पुं० दे० 'कमरख'।

कमल पुं० १. सरोवर में होने वाला एक पौधा। २. उक्त पौधे पर होने वाला एक फूल।
उ०—गिरिबर पर इक कमल। गं० ६६/३१
३. हठयोग के अनुसार शरीर के अन्दर के कुछ विशिष्ट स्थान जो चक्र कहे जाते हैं।
४. छः मात्राओं का छंद विशेष।
५. छप्पय के भेद। ६. कामला रोग।

—अक्ष पुं० कमलगट्टा।

—आकर पुं० वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों। सरोवर। तालाब।
उ०—जग लूटि दुति देव, कमलाकरनि झूटि। दे० I, १४१/७०

—कंद पुं० कमल की जड़। कमल ककड़ी। भसींडा।

—गट्टा पुं० कमल का बीज।

—गर्भ पुं० कमल का छत्ता।

—गुन पुं० कमल की डंडी के भीतर का एक डोरा।

—चौक पुं० श्रीनाथ जी के मन्दिर में जगमोहन के आगे का चौक।

—ज पुं० कमल से उत्पन्न ब्रह्मा।
उ०—अज, कमलज, बिधि, जगपिता। नं० ८५/७५

—नाभ पुं० पद्मनाभ भगवान विष्णु।

—पुत्र पुं० ब्रह्मा।
उ०—कमलपुत्र ता सुत कर राजत। सा० ९४२/७५

—बन्धु पुं० सूर्य।

—भव—भू पुं० दे० 'कमलज'।

—मूल पुं० दे० 'कमलकंद'।

—योनि पुं० दे० 'कमलज'।

कमलबन्ध पुं० एक प्रकार का चित्रकाव्य।

कमलबाई स्त्री० एक रोग, जिसमें आँखें पीली पड़ जाती हैं।

कमला स्त्री० १. लक्ष्मी।
उ०—जदपि पद कमल कमला अमला सेवत निस-दिन। नं० ३३/१६
२. धन। ३. ऐश्वर्य।
४. एक वर्ण वृत्त जिसे रति-पद भी कहते हैं।
५. रूपवती स्त्री।
उ०—गौरी तुलित अनूप मनहरनी कमला रूप। र० ७५/१७
६. श्रीकृष्ण की पटरानी। रुक्मिणी।
उ०—कमला गहि लियौ हात। सा० ८१६/६५
७. राधा की एक सखि का नाम।
उ०—कमला, तारा, बिमला, चंदा, चंद्रावलि सुकुमारि। सूर० १०/२००८/५४
८. कुमुदिनी।
उ०—कह कमला को गेह। के० I, ६०/२२५

—अग्रजा स्त्री० लक्ष्मी की बड़ी बहिन। दरिद्रा।

—अयन पुं० लक्ष्मी के रहने का स्थान। समुद्र।

—अवली स्त्री० कमलों की पंक्ति।

—आलया स्त्री० कमल में निवास करने वाली। लक्ष्मी।

—आसन पुं० १. कमल है आसन जिनका, ब्रह्मा।
उ०—क, परमेष्टी, प्रजापति, कमलासन, हंसेश। नं० १५/६५
२. चौरासी आसनों में से एक।

—ईश पुं० कमलापति। भगवान विष्णु।

—कंत पुं० दे० 'कमलेश'।

—नायक पुं० दे० 'कमलेश'।

—निवास पुं० लक्ष्मी के रहने का स्थान। कमल।

—पति पुं० लक्ष्मीपति। भगवान विष्णु।
उ०—स्रवन सुनत, कमलापति को जियतन पुलकित सब गात। सा० ६२६/५०

—वाहन पुं० लक्ष्मी का वाहन। उल्लू।
उ०—कमलावाहन गहत कमल सौं। सा० ९६३/७७

कमलाकर पुं० छप्पय छन्द का भेद।

कमलाई पुं० १. वृक्ष विशेष।
२. अनाज व फल आदि में लगने वाला एक प्रकार का कीड़ा।

कमलिनी स्त्री० १. कुमुदिनी।
उ०—फूली नागरि कमलिनी। म० २८५, ४५६
२. बहुत कमलों वाला तालाब।
कमली[1] पुं० ब्रह्मा।
कमली[2] स्त्री० छोटा कंवल।
कमली[3] (अ०) वि० पगली।
उ०—मैं की जांणू कमली पैरनां। ना० ५४/२४४
कमलो पुं० ऊँट।
कमहा (काम+हा) पुं० बहुत काम करने वाला। कर्मठ।
कमा— सक० १. कोई उद्यम करके धन पैदा करना। अर्जित करना।
उ०—सखा जो शंकर योग कमायो। ग्र० ८६/८७
२. चमड़ा साफ करना।
३. शौचालय साफ करना।
४. तुच्छ व्यवसाय करना।
कमायो—कमायौ भू० कृ०।
—ई स्त्री० १. अर्जित करना।
उ०—देखहु दुचंद कला कंद की कमाई सी।
प० ३८, ३१३
२. व्यवसाय।
—ऊ वि० १. पैदा करने वाला।
२. इकट्ठा करने वाला।
—सुत वि० १. दे० 'कमाऊ'। २ उद्यमी।
पुं० धनोपार्जन करने वाला पुत्र।
कमाइच स्त्री० सारंगी बजाने का काम।
कमाच पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।
कमाची स्त्री० १. खपची। २. तीली।
कमाड़ पुं० किवाड़।
कमान (फा०) स्त्री० १. धनुष।
उ०—त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंह कमान लगी है। प० ४२/८७
२. तोप।
उ०—छूटत कमान बान बंदूकरु कोकवान।
भू० ४१५/२०८
३. मालखंभ की कसरत विशेष।
—इया वि० धनुषधारी। धनुर्विद्या जानने वाला। तीरंदाज।
—ई स्त्री० लोहे आदि की लचीली तीली।
—गरक पुं० धनुष बनाने के कार्य में आने वाला एक औजार। यंत्र विशेष।
कमिता वि० कामुक। कामी। कामना करने वाला।

कमी (फा०) स्त्री० १. न्यूनता। अल्पता।
२. घाटा। हानि। ३. अभाव।
उ०—कहा कछू चँदहिं चकोरन की कमी है।
घ० क० ३३, ५७
कमीन (फा०) पुं० छोटी जाति का आदमी।
उ०—जनम कमीन भौन बीर जुद्ध भीत रहैं।
क० ४५, १४
—आ—कमीनौ वि० क्षुद्र। तुच्छ।
उ०—कमल कमीनो लागै मीनो तो बहाइयै।
गं० ५६, १८
कमीला पुं० वृक्ष विशेष जिसके पत्ते अमरूद की भाँति होते हैं।
कमुआ पुं० नाव के डाँड़।
कमुकदर (कार्मुक+दर) पुं० शिव का धनुष तोड़ने वाले श्रीराम।
कमेरा (काम+एरा) पुं० (स्त्री० कमेरी)
१ मज़दूर। श्रमिक। २ सेवक। नौकर।
उ०—सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी है।
उ० ५७, ५७
३ सहायक।
वि० कमाऊ। उद्यमी। परिश्रमी।
कमेहरा पुं० कसकुट की चूड़ियाँ ढालने वाला साँचा।
कमोद[1]—**कमोदन**—**कमोदिन** पुं० १. कुमुदिनी, रात्रि में खिलने वाला एक पुष्प-विशेष।
उ०— लै अलि गंध कमोदन के पिवैं।
हरि० ६८, ७६
२. लाल कमल।
उ०—इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दरसैं।
न० ६४, ६
कमोद[2] पुं० राग विशेष।
उ०—यौं जिय सुनत प्रमोद ह्वै मधुमय राग कमोद।
ना० १, ३१२
—इक वि० १. कामोद राग गाने वाला।
उ०—मनहुं कमोदिक मुरलि सुहानी।
सूर० १०, २७८५/२०६
२. गवैया। गायक।
कमोर—**कमोरा** पुं० एक मिट्टी का बर्तन जिसका मुँह चौड़ा होता है। बड़ा मटका या घड़ा।
उ०—सौंधै भर्‌यौ कमोर, लाल रंग होगी।
सूर० १०/२८६६ २३६
—इया—ई—कमौरी स्त्री० दूध-दही रखने की बड़ी मटकी या हाँडी।

उ०—ऊपर तें कृष्णागरु भरि-भरि डारति कनक-कमौरी। छी० ५६/२२

कम्प पुं० कँपकँपी। थरथराहट। कम्पन।

कम्बल पुं० कम्बल।

कम्बु पुं० शंख। घोंघा। सीपी।

कम्मर स्त्री० दे० 'कमर'।

उ०—कम्मर की न कटारी दई इस नाम ने गोसल-खाना बचाया। भू० १६१/१६५

कय क वि० कई एक।

उ०—आपुन सुख वृज-जन बिनताए। बूंद कयक वृज पर बरसाए। सूर० १०/६३८,४६३

कयपूती पुं० एक सदाबहार वृक्ष।

कयरी—कैरी स्त्री० अमिया। टिकोरा।

कया स्त्री० काया। तन। शरीर।

करक पुं० १. अस्थिपंजर। २. नारियल की खोपड़ी। ३. कमंडल। ४. मस्तक।

करंगा पुं० धान विशेष।

करज[1] पुं० १ कंजा नाम की कटीली झाड़ी। २ आतिशबाज़ी विशेष।

करंज[2] पुं० मुर्गा।

—खाना पुं० पालतू मुर्गों के रहने का स्थान।

उ०—पीलखाने पाठा हैं करंजखाने कीस हैं। भू० ३३८ १६२

करजुवा पुं० घमोई। अंकुर विशेष जो बाँस, ईख आदि पौधों में निकलते हैं और उन्हें हानि पहुँचाते हैं।

वि० खाकी (रंग)।

करंड पुं० १. मधुकोष या शहद का छत्ता। २ हंस। ३. बाँस की टोकरी या पिटारी। डलिया। ४. हजारा चमेली। ५ तलवार। ६. हथियारों को तेज करने का पत्थर।

करंडी स्त्री० कच्चे रेशम की बनी हुई चादर।

करंब पुं० मिश्रण।

वि० मिला हुआ। गढ़ा हुआ। खचित।

कर[1] पुं० १. हाथ।

उ०—प्रफुलित अरुन कमल सम कर लखि नख नखतावलि जैसी। बो० ११/२६

२. हाथी की सूँड़।

उ०— अंधन कहत कोऊ केरा औ करी के कर। गं० ५७/१८

३. चरण।

उ०—कोमल कमल कर कमला कर कमल। के० I, ३०/१६४

४. ओला। ५. पत्थर।

६. राजस्व। मालगुजारी।

उ०—तहाँऊ के जोरि कर जोरि कर देत हैं। गं० २६०/८८

—कण्टक पुं० नख। नाखून।

—कोष पुं० हाथी की सूँड़ की कुंडली।

उ०—काकोदर कर-कोष, उदर-तर केहरि सोवत। के० I, २६/१५८

—गत वि० हाथ में आया हुआ। प्राप्त।

—गहना पुं० विवाह। पाणिग्रहण।

—ग्रह पुं० १. विवाह। पाणिग्रहण। २. भाड़ा।

वि० १. कर उगाहने वाला। २. हाथ पकड़ने वाला। ३. सहायक।

—पलई—पल्लवी स्त्री० उँगलियों के संकेत से शब्दों को प्रकट करने की कला।

—पल्लव स्त्री० हाथ की उँगलियाँ।

—पिचकी स्त्री० दोनों हाथों के योग से बनाई हुई पिचकारी जिसमें हथेलियों के बीच में रंग लेकर इस तरह दबाया जाता है कि फुहारा छूटता है।

—पीड़न पुं० पाणिग्रहण। विवाह।

—पुट पुं० अंजुलि।

—फूल पुं० दौना।

—माला पुं० १. उँगलियों के पोरुओं की माला जिस पर लोग जप करते हैं। २. हाथ में लेकर जप करने की माला।

पुं० अमलतास का वृक्ष।

—मूल पुं० कन्धा। स्कन्ध।

—शाखा स्त्री० उँगली।

—शाला स्त्री० चुंगीघर।

कर[2] पुं० किरण।

उ०—जनु रवि सन्मुख आरसी कर कंपित आभास। बो० ३२/१०२

—माली पुं० सूर्य।

कर[3]— सक० १. किसी क्रिया को समाप्ति की ओर ले जाना।

उ०—सौंधें कुमकुम करो उबटनो पहिरावौ पट पीत। छी० ३१/१२

२. निबटाना। ३. राँधना।

करत व०कृ०। करी भू०कृ०।

—इया पुं० करने वाला, कर्त्ता।

—नीय वि० करने योग्य।

उ०—और ठौर करगीय जो, करत औरही ठौर।
म० २१७/३६३

करइत पुं० कीड़ा विशेष।

करई स्त्री० मटकैना। कुल्हड़।

करए पुं० दे० 'करवा'।

करक[1] स्त्री० कसक। पीड़ा।

उ०—लखै ठौर पुनि सोय करक करेजे में उठे।
बो० २७/८६

अक० १. कड़-कड़ शब्द करके टूटना। तड़कना। फटना। चटकना।

२. चुभना। सालना।

उ०—करकि गई कर की वलय, दसि रद छद लइ साँसु। कृ० १०२/२६

३. दर्द करना।

४. टूटना। छिन्न-भिन्न होना।

उ०—भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना। भू० ३७५/१६६

—न स्त्री० दर्द। टीस। कसक।

करक[2] पुं० १. कमण्डलु।

२ अनार या दाड़िम का बीज।

उ०—रक्तबीज, हालिक, करक, शुक-प्रिय, कुट्टिम, मार। नं० २२३/८६

३. पलाश। ४. करील।

५. नारियल का खोपड़ा। ६. सोंठ।

७. मौलसिरी। ८. कचनार।

करकच पुं० समुद्री नमक।

करकचहा पुं० अमलतास।

करकचि स्त्री० हल्ला-गुल्ला। किचकिचाहट।

करकट[1] पुं० कूड़ा-कचरा। घास-फूस।

करकट[2] पुं० कर्कश ध्वनि।

उ०—प्रगट भये नरहरि बपु धरि हरि, करकट करि उच्चारी। सा० १२३/११

करकटिया स्त्री० करकरा नामक एक तरह का सारस।

करकनाथ पुं० एक पक्षी विशेष जो केवल ऊपर ही काला नहीं होता है किन्तु उसकी हड्डियाँ तक काली होती हैं।

करकर पुं० दे० 'करकच'।

वि० १. मजबूत। दृढ़।

२. तीखा।

करकरा (स्त्री० करकरी)

पुं० एक तरह का सारस।

वि० १. खुरखुरा। कुरकुरा।

२. कड़े। कठोर। दृढ़।

उ०—रन-करकरे कछवाह हैं जे लरत दिग्ध दुबाह हैं। प० ३३/७

३. तीखा।

उ०—कर-करी सूकत्ती तीखन तहनी।
प० १६५/२८

करकस वि० दे० 'कर्कश'।

उ०—तीक्षन करि भौहैं द्विज के सोहैं बोल्यो करकस बानी। बो० ३४/१०६

क्रि०वि० कठिनाई से। दुःख से।

—आ वि० लड़ाकू। कलहप्रिया। कटुभाषिणी।

करका[1] पुं० ओला।

उ०—बल, बक, हीरा, केवरो, कोडी, करका, कास।
के० I, ६/११२

करका[2]— सक० १. चटकाना। २. दुःख देना।

करका चतुर्थी स्त्री० दे० 'करवा चाथ'।

करख पुं० १. क्रोध। रोष। २. जोश। उत्तेजना।

३. शत्रुता। ४. हर्ष।

अक० १. क्रुद्ध होना।

उ०—जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
भू० १७५/१६१

२. उमंग में आना।

३. अपनी ओर खींचना। आकर्षित करना।

उ०—कर सो अंचल करखि कहत सुजान सुंदर प्यारे। गो० ४१५/१६६

करखा[1] पुं० १. उत्तेजना। २. बढ़ावा। ३. जोश।

४. आवाज़। नारा।

करखा[2]—**करक्खा** पुं० जोश उत्पन्न करने वाले गान। युद्धगान।

उ०—बनावैं उनावैं सुनावैं करक्खे।
प० १६/२७६

करखा[3] पुं० कालिख। काजल।

सक० कालिख लगाना।

करगलक पुं० कागज़।

करगस पुं० तीर। भाला।

करगहना पुं० भरेठा। पत्थर या लकड़ी जिसे दरवाजा बनाने में चौखटे के ऊपर रखकर ईंटों की जुड़ाई का काम किया जाता है।

करगही स्त्री० जड़हन मोटा धान जो अगहन में तैयार होता है।

करगी[1] स्त्री० चीनी खुरचने का औज़ार।

करगी[2] स्त्री० पानी की बाढ़।

करघा (फा०) पु० कपड़ा बुनने का यन्त्र।

करचंग (कर+चंग) पु० एक प्रकार का डफ या बड़ी खँजड़ी।

करचुली—करचली पुं० कलचुरि, राजपूतों की एक जाति।
उ०—बघरू घघेले करचुली जिनकी न बात कहूँ डली। प० २८/७

करछा[1] (कर+रक्षा) पु० बड़ी करछी।

करछा[2] पुं० एक प्रकार की चिड़िया।

करछाल (कर+उछाल) पु० उछाल। कुँलाच। फलाँग।

करछिया स्त्री० दे० 'करछा'।

करछी स्त्री० कलछी। करछुलि।

करछौंह वि० हलका काला (रंग)।

करज[1] पुं० १. नख। नाखून।
उ०—उरज करज निज करज को, गर हार सँवारत। सूर० १०/२६५३/१८०
२. उँगली।
उ०—अधर सुधा पूरित सब रंध्रनि मुरली कलित करज। गो० ३७६/१५६

करज[2] (अ०) पुं० कर्ज़ा। ऋण।
उ०—दूजे करज दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवैं। सूर० वि०/१४२/३६
—लेखनी पु० नाखूनों से कुरेदना। नख से खोदने की क्रिया।

करजी स्त्री० कैंची।
उ०—होत तन सुखी तीरथवासी इनकें हाथनि करजी। ना० ३४/२४

करजीरा पु० काला जीरा।
उ०—कूट, कायफर, सोंठि, चिरइता, करजीरा कहुँ देखत। सूर० १०/१५२८/६२१

करजोड़ी स्त्री० हत्था-जड़ी नामक ओषधि जो पारा बाँधने के काम आती है।

करट पु० १ कौआ। २. गिरगिट।
उ०—धन पट कपि विष करट खर ओज कठिन तिय ग्राम। नं० ५१ ६०
३. हाथी की कनपटी। ४. कुसुम का पौधा।
५. एकादशाहादि श्राद्ध। ६. नास्तिक।
७ कुत्सित या क्षुद्र जीव।
—ई पु० हाथी।

करटक पुं० १. दे० 'करट'।

करटा स्त्री० वह गाय जो कठिनाई से दुही जाए।

करठा वि० अत्यन्त काला।

करड़ा वि० कर्रा। कड़ा।

करण[1] पु० १. व्याकरण का तीसरा कारक।
२. हथियार। ३. इंद्रिय। ४. देह।
५. करना। क्रिया। ६. स्थान। ७. हेतु।
८. तिथियों का एक विभाग।
९. नृत्य-कला में हाथ द्वारा प्रदर्शन विशेष।
१०. गणित में वह संख्या जिसका वर्गमूल पूरा-पूरा न निकल सके।
११. जाति विशेष।
१२. योगियों का एक आसन।
—ई स्त्री० वह सख्या जिसका वर्गमूल पूरा-पूरा न निकल सके।
—ईय वि० करने योग्य।

करण[2] पुं० कान।

करणी स्त्री० खुरपी।

करण्ड पु० १. कौआ। २. बक्स। पेटी। डिब्बा।
३. शहद का छाता।

करतब (सं० कर्तव्य) पु० १. काम। करनी।
उ०—देखो आइ पूत को करतब, दूध मिलावत पानी। सूर० १०/३३७/२६६
२. कला। हुनर। ३. करामात। जादू।
—ई वि० १. पुरुषार्थी। काम करने वाला।
२. निपुण। गुणी।
३. बाजीगर। करामाती।

करतरी स्त्री० कर्त्तरी, कतरनी। कैंची।

करतल पु० १. हथेली।
उ०—मानहुँ करतल फिरत लटू लखि लटू होत पिय। नं० १२,१७
२. चार मात्राओं के गण का एक रूप जिसमें प्रथम दो मात्राएँ लघु और अंत में एक गुरु होता है।
३. छप्पय का एक भेद विशेष।

करतली[1] स्त्री० करताली। हथेली का शब्द।

करतली[2] स्त्री० दे० 'करतरी'।

करतव्य पुं० दे० 'कर्तव्य'।

करता पुं० दे० 'कर्ता'।
उ०—सृष्टि-करताऊ साँझ करता समाइगो। गं० ८/३

करतार[1]—करतारा पु० सृष्टि करने वाला, विधाता।
उ०—या कलि मैं करतार करै काहू जिन बिरही। बो० ५६/१४५

—पन—पनो पुं० ईश्वरत्व ।

करतार[२]—**करतारि**—**करतारी** पुं० हाथों की ताली ।

उ०—सोई करतार दीबी । गं० १६/७

उ०—गावहु कोमल गीत दै, सुख करता करतारि ।

के० I, १००/२१५

करतार[३] पुं० दे० 'करताला' ।

उ०—लीबो करतार को । गं० १६/७

करताल—**करताली** पुं० दे० 'करतार[२]' ।

उ०—कबहुँक कर करताल बजावत ।

सा० ४५८/३७

करताला पुं० झांझ ।

करतालिका स्त्री० दे० 'करतार[२]' ।

उ०—गावत हँसत नवाय हँसावत पटकि कर-तालिका । सूर० १०/२०६/४३२

करताली स्त्री० छोटी झांझ ।

करतो स्त्री० मरे हुए गाय के बछड़े की खाल में भूसा भरकर बनाया हुआ बछड़ा इसके प्रयोग से अहीर गाय दुह लेते हैं ।

करतू स्त्री० खेत में पानी सींचने को दौरी की रस्सियों के सिरे पर लगी हुई लकड़ियाँ ।

करतूत—**करतुत्त**—**करतूति**—**करतुतो** (करना+अत) स्त्री० १. कर्म । करनी ।

उ०—कै करतूत सखिन कछु कीन्हीं ।

बो० ७/२१६

२. गुण । कला ।

करतोया स्त्री० बंगाल की नदी विशेष ।

करद स्त्री० बरछा । कटार ।

उ०—करद सी लागी उर दरद गोपाल की ।

हरि० ८८/७६

करदपत्र पुं० जमीन का पट्टा ।

करदम पुं० १. कीच । कीचड़ ।

२. एक प्राचीन महर्षि प्रजापति भगवान के अवतार कपिलमुनि इन्हीं के पुत्र थे ।

उ०—देवहुती करदम कूँ दीनीं, तिन कीन्हीं तप भारी । सा० ५१/५

करदल—**करदला** पु० वृक्ष विशेष ।

करदा पुं० १. अन्न में मिला हुआ कूड़ा-करकट ।

२. बट्टा । बदलाई ।

करदाई वि० कर देने वाला ।

करदौना (कर+दौना) पुं० चुल्लू ।

करधनि—**करधनी** स्त्री० कमर का आभूषण विशेष । तगड़ी ।

उ०—तनक कटि पर कनक-करधनि, छीन छवि चमकात । सूर० १०/१८४/२६३

करधरि (कर=वर्षोपल+धर) पुं० मेघ । बादल ।

करधरि पुं० महुए के फल की रोटी । महुआवर या महुआरी ।

करधृत वि० हस्तगत । गृहीत ।

करन[१] पुं० औषधि विशेष ।

करन[२] पुं० १. दे० 'करण' ।

उ०—स्रम-हरन करन बीजना से बरम्हाइयै ।

भू० १/१२८

२. कर्ण, महाभारत का प्रसिद्ध योद्धा, कुन्ती का पुत्र ।

उ०—अति कोप करन पर जुर्‌यो आय ।

बो० २४/१६२

३. किरण ।

उ०—करन के जोर जीत लेत है निसा कलकै ।

क० ११/४

—**जित**—**जीत** वि० कर्ण को जीतने वाला, अर्जुन ।

उ०—कवि कहैं करन करनजित कमनैत आरिन के उरन में कीनो इमि छेउ है । भू० ६७,१४०

—**पहरा** पुं० प्रातःकाल का समय जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है ।

—**फूल** पुं० कर्णफूल । तरौना ।

उ०—कानन करनफूल, देखे जाइ सुधि भूल ।

गं० ४८/१६

—**विधि**—**वेध** पुं० कर्णछेदनसंस्कार । कनछेदन ।

करन[३] वि० करने वाला ।

उ०—यह लोक परलोक सफल करन कोकनद से चरन हियें आनिकै जुड़ाइयै । भू० १/१२८

—**बार** वि० करने वाला ।

—**हार**—**हारो** पुं० कर्ता ।

वि० करने वाला ।

उ०—जीवन अधार बड़ी गरज करनहार ।

क० ३४/६३

करनधार—**करनधारू** पुं० मल्लाह । माँझी ।

उ०—करन नाव जिहि खेइये, करन-धार भगवान ।

नं० ८०/५०

करनबेल स्त्री० एक प्रकार की लता ।

करनाई स्त्री० तुरही । नरसिंघा, बाजा ।

करनाट—**करनाटक** पुं० कर्णाट, दक्षिणी भारत का एक प्रदेश ।

—**ई** पुं० १. करनाटक देश का रहने वाला ।

२. करनाटक का संगीत ।

उ०—करनाटी गौरी मैं गाऊँ मुरलि बजाइ रिझाऊँ ।

सूर० १०/२१४०/७९

करनाटकी पुं० जादूगर । इन्द्रजाली ।

करनाल[1]—**कर्नाल** पुं० १. नरसिंघा । भोंपा ।

उ०—कहूँ भीम झंकार कर्नाल साजैं ।

के० II, १२/२५४

२. बड़ा ढोल । ३. एक प्रकार की तोप ।

उ०—बाजी करनालैं परनालैं गढ़ आयकै ।

भू० ४३९/२१४

करनाल[2] पुं० पंजाब प्रान्त का एक नगर ।

करनिकार पुं० कनियार । कनकचंपा । कनेर ।

उ०—कुटज, कुंद, कदंब, कोबिद, करनिकार सकुंज ।

सूर० १०/३३१४/३५१

करनिका—**करिनिका** (सं० कर्णिका) स्त्री०

१. कर्णफूल । २. हाथ की बीच की उँगली ।

३. हाथी के सूँड़ की नोंक ।

४. कमल का छत्ता ।

५. सेवती । सफेद गुलाब । ६. लेखनी ।

उ०—मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर ।

नं० ३२/३

करनी स्त्री० १. कर्म । कर्तव्य । करतूत ।

उ०—साहितनै सरजा समरथ्थ करी करनी धरनी पर नीकी । भू० २४३/१७४

२. मृतक क्रिया । ३. हथिनी ।

उ०—ज्यौं करनी गजराज बिलोकत, ढूँढ़त है अति गाजैं । सा० ८७६/७०

४. राजगीरों का एक औजार ।

—क वि० करनी करने वाला ।

करनेटी स्त्री० कान का एक गहना । कर्णिका ।

उ०—बेंदी भाल कान करनेटी चंचल अँखिया सारी हो । गो० २०४/१००

करनेता पुं० १. घोड़ों का एक भेद ।

२. एक रंग विशेष । कन्हेरी रंग ।

करनोरी स्त्री० कान की लोर में पहनने का आभूषण विशेष ।

करपत्र (कर+पत्र) पुं० लकड़ी चीरने का आरा । करौंत ।

स्त्री० ताली ।

उ०—सोभित मिलि कर-पत्र बजावत ।

सूर० १०/६१७/३८४

करपर स्त्री० खोपड़ी ।

वि० कंजूस ।

करपा पुं० अनाज के ऐसे पौधे जिनमें बाल लगी हो । लेहना ।

करपात पुं० लकड़ी खरादने का यन्त्र । खराद ।

करपान[1] पुं० एक प्रकार का चर्म रोग ।

करपान[2] (कृपाण) पुं० छोटी तलवार ।

करपूर पुं० दे० 'कपूर' ।

उ०—उसिर, गुलाब-नीर, करपूर परसत ।

म० ११४/२७५

करब स्त्री० ज्वार या बाजरे की लकड़ी जिसे गँड़ासे से काटकर और कुट्टी बनाकर पशुओं को खिलाते हैं ।

करबच पुं० खुरजी । थैला ।

करबर[1] स्त्री० १. विघ्न । झंझट ।

उ०—कौन-कौन करबर बिधि मानी ।

सूर० १०/३६८/३०७

२. कष्ट । विपत्ति ।

उ०—कौन-कौन करबर हैं टारे ।

सूर० १०/३९१/३१५

३. कृपाण ।

उ०—सिंधु पार कीनी कित्ति करबर की ।

के० III, ३/६१६

करबर[2] पुं० चीता ।

उ०—मो मन-मृगु करबर गहैं अहे ! अहेरी नैंन ।

बि० ५०/२७

वि० १. चितकबरा । २. खुरखुरा ।

करबर[3]— अक० १. पक्षियों का कलरव करना ।

२. शोर-गुल करना ।

स्त्री० शोर-गुल । लड़ाई-झगड़ा ।

करबल[1] स्त्री० जस्ता मिली हुई चाँदी ।

करबल[2] पुं० बाहु-बल ।

करबस पुं० दरियाई घोड़े की खाल से बनाया हुआ चाबुक ।

करबानअ पुं० पक्षी विशेष । गौरैया ।

करबार—**करबाल**—**करपाल** स्त्री० तलवार ।

उ०—कर करबाल लै कराल तैं प्रतापसिंह ।

हरि० १८/११३

करबी—**करबो** स्त्री० दे० 'करब' ।

पुं० बाँदा जिले का एक कस्बा ।

करबीर पुं० एक पौधा जिसमें सफेद, पीले और लाल रंग के फूल लगते हैं । कनैर ।

उ०—यौं करबीर करी बन राजैं ।

के० II, ६/३८७

स्त्री० तलवार।

करबुर वि० कर्बुर (रंग), धूमिल।
उ०—गोरज करबुर केस।
सूर० १०/४०७८/५०८

करबूर पुं० १ पाप। २. राक्षस। ३. सोना।
४. धतूरा।
वि० चितकबरा।

करबूस पुं० घोड़े की जीन में टँकी हुई रस्सी अथवा तस्मा जिसमें हथियार आदि लटकाए जाते हैं।

करभ पुं० १. कलाई से कनीष्ठिका तक हाथ का बाहरी हिस्सा।
२. हाथी का बच्चा।
उ०—करभ-जनक जिय जुदेई जरत हैं।
गं० ५७/१८
३. ऊँट।
उ०—काल, काक, बृक, करभ, खर स्वान कूरस्वर जानि। के० I, ४३ १२४
४. ऊँट का बच्चा।
५. नख नामक एक सुगन्धित द्रव्य।
६. कमर। ७. दोहे का एक भेद।

—आ पुं० हाथी का बच्चा।
उ०—जानु जंघ निहारि करभा।
सूर० १०/१८३५ २०

—ओरु (करभ+ऊरु) वि० हाथी की सूंड के समान जांघवाली।
उ०—इनि भांतिनि भोरु करै करभोरु सु।
गं० १६६/५०

करभीर पुं० शेर।

करम[१] पुं० १. कर्म। कार्य।
उ०—ताकी बहुत करम बिधि कीनीं।
सा० २७०/२२
२. भाग्य। अदृष्ट।
उ०—करम करै सो कोउ न करै।
सूर० १०/१३१७/५६६

—आत स्त्री० भाग्य।
उ०—लिखी नहीं करमात। सूर० १०/१८४६/२३

—ई वि० १. कर्मनिष्ठ। २. कर्मरत।

—क वि० कर्मवाली।

—चंद पुं० भाग्य।

—ठ वि० कर्मनिष्ठ।

—न पुं० कर्मण्य।
उ०—करमन पाय उपाय अमर भो।
के० III, १८/६१८

—फाँस पुं० भवबन्धन।
उ०—सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फांस न कटै। सूर० १/२६३/७०

—वली वि० भाग्यवान।

—विपाकु पुं० पूर्वजन्म के शुभ तथा अशुभ कर्मों का भला और बुरा फल।
उ०—पाछै कै घूंघट देति करमबिपाकु सो।
ग० ३६ १३

—योग पुं० १. चित्त शुद्ध करने वाला शास्त्रोक्त कर्म।
२. श्रीमद्भगवद्गीता का तीसरा अध्याय जहाँ श्रीकृष्ण ने कर्मयोग समझाया है।

—रेख पुं० भाग्य में लिखी हुई बात।
उ०—करम-रेख मटी नहि जाई।
सूर० ९/५६/१६६

करम[२] (अ०) पुं० कृपा। दया।
उ०—नबी अली का करम हुआ है।
र० ९० ३३५

करमई स्त्री० कचनार की जाति का एक झाड़ीदार वृक्ष।

करमकल्ला (फा०) पुं० पत्ता गोभी।

करमट्ठा (कर+मट्ठा) वि० कंजूस।

करमर्दक पुं० १. आँवला। २. करौंदा।

करमर (कर+मल) पुं० हाथ का मैल।

करमरा— अक० व्याकुल होना।
उ०—लाचन करमरात हैं मेरे। कुं० २१८/८१
करमरात व०कृ०।

करमा पुं० एक प्रकार का जंगली गाना जो प्रायः कोल, भील आदि गाते हैं।

करमुखा (कर+मुख+आ) वि० दे० 'करमुँहा'।
पुं० दे० 'करमुंहा'।

करमुखी (कर+मुख+ई) स्त्री० बंद किया हुआ पंजा। मुट्ठी।

करमुहाँ (कर+मुँहा) वि० १. कलमुहाँ।
पुं० १. लगूर। २ एक प्रकार का शाक।

करमेस पुं० करघे की लकड़ी।

करमोद पुं० एक प्राकर का धान।

करर[१] पुं० १. एक प्रकार का विषैला कीड़ा।
उ०—कंकन कांच, कपूर करर सम।
सूर० १०, ३५१५, ३७५
२. घोड़े की एक नस्ल।

करर[2]— सक० १. चरमरा कर टूटना। मरमरा कर टूटना।
२. कर्कश शब्द करना। कर्ण कटु शब्द कहना।
—आन पुं० धनुष चलाने का शब्द।
करा— अक० कड़ा पड़ना। कड़ा होना।
करारि—करारी[1] स्त्री० बटेर जाति की एक चिड़िया।
करारी[2] (स० कर्बुर) पुं० दे० 'कर्बुरा'।
करारी[3] वि० कड़ा। कराल।
उ०—तेग कमान गही करारी। गं० ३६६/११४
कररुह (कर+रुह) पुं० नाखून।
करल पुं० बड़ी कड़ाही।
करलगुवा पुं० स्त्री के वश में रहने वाला पुरुष।
करला—करली पुं० कोमल पत्ता। कल्ला।
करवंदा पुं० करौंदा।
उ०—दै करवंदा हरदि-रँग भीने।
सूर० १०/१२१३/५४६
करवट[1] स्त्री० करवट, हाथ के बल लेटने की क्रिया। पार्श्व पर लेटने की क्रिया।
करवट[2] पुं० एक प्रकार का विषैला वृक्ष जिसका गोंद जहरीला होता है। जसूंद।
करवट[3] पुं० दे० 'करवत'।
उ०—तौ अब लैहौं करवट कासी।
सूर० १०/३३३१/३५४
करवत पुं० आरा अथवा चक्र। काशी आदि तीर्थस्थानों में आरे व चक्र रहते थे। इनके नीचे लोग मोक्ष फल की आशा से प्राण देते थे।
उ०—चल्यो विप्र तजि प्रीत करवत दै निज जीव कों। बो० ६४/१२७
करवर पुं० १. कठिनाई। २. क्लेश। संकट।
उ०—करवर बड़ी टरी मेरे की।
सूर० १०/५१/२१७
३. तलवार। ४. बाहुबल।
करवा स्त्री० मिट्टी की झारी।
पुं० १. धातु अथवा मिट्टी से बना हुआ टोंटीदार लोटा।
उ०—करवा की कहाँ गंग तरवा न तीते होहिं।
गं० ३४०/१०४
२. जहाज की लोहे की कुनिया या घोड़िया।
३. मछली विशेष।
—चौथ स्त्री० कार्तिक कृष्णा चतुर्थी। इस दिन सुहागिन स्त्रियाँ अपने पति की आयु-वृद्धि की कामना से व्रत रखती हैं।

करवान स्त्री० तलवार।
उ०—कीनौ कतलान करवान गहि कर में।
भू० २०२/१६७
करवानक पुं० गौरैया पक्षी।
उ०—सारस से सूबा करवानक से साहजादे।
भू० ५२६/२३५
करवार—करवारी—करवाल—करिवार—
करवाल—करपाल स्त्री० दे० 'करवान'।
उ०—झीने करवारी सी, झमाइ झमझमै झमा।
दे० I, २१४/८२
—ई स्त्री० छोटी तलवार।
करवी वि० कड़वी। कटु।
पुं० दे० 'करबी'।
करवीर पुं० १. कनेर का पेड़। २. उक्त वृक्ष का फूल। ३. तलवार। ४. श्मशान। ५. करौंदा।
उ०—हे मंदार उदार वीर करवीर महामति।
नं० ६/११
करवीराक्ष पुं० एक राक्षस जो खर का सेनापति था, जिसे रामचन्द्र जी ने मारा था।
करवील पुं० दे० 'करील'।
करवैया (करना+वैया) वि० काम करने वाला।
करवोटी स्त्री० पक्षी विशेष।
करशू पुं० एक पहाड़ी सदाबहार वृक्ष।
करष[1] पुं० १. खिचाव। २. मनमुटाव। ३. आवेश। ४. उत्साह। ५. क्रोध।
करष[2]——**करस**— सक० १. अपनी ओर खींचना।
उ०—देह दसा करषी। ना० २२०/३११
२. सुखाना। ३. बुलाना। ४. समेटना। बटोरना।
उ०—सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भू० २३६/१७३
करषत व०कृ०। करषा, करष्यो भू०कृ०।
करषक पुं० कृषक। किसान।
करषा स्त्री० स्पर्द्धा।
उ०—दिन दूनी करषा सों।
सूर० १०/४११६/५२०
करषान पुं० वीररस वर्णन करने का एक छन्द जिसमें ३७ मात्राएँ होती हैं।
करस पुं० १. कलश।
उ०—सुधि न करस की। ना० ३०१/३३५
२ कंगूरा।
उ०—सरस करस आकास के। के० I, ६५/२०६
३. मुकुट।

उ०—रूप अनुरूप जातरूप के करस हैं। के० I, २५/२०१

करसनि—करसनी स्त्री० एक प्रकार की लता।

करसान पुं० किसान।

करसाइल—करसायर—करसायल पुं० काला मृग।

उ०—करसायल मृग दृग लिये। गं० १२७,७६

करसी पुं० १. उपला। कंडा। २. उपले का चूरा। ३. उपले की आग। ४. उपले की राख।

करसींगी स्त्री० सिंगी, वाद्य विशेष।

पुं० हाथ में सिंगी रखने वाले साधु।

करह (करभ) पुं० १. ऊँट। २. फूल की कली।

—आ वि० कली का रूप धारण किए हुए।

उ०—कारे लाल करहे पलासन के पुज। ठा० ३७,७२

करहनी—करहरी पुं० १. एक प्रकार का धान। २. नया कल्ला।

करहरिया पुं० काले और हरे रंग का घोड़ा।

उ०—सोभनि सरसत करहरिया। प० ६६/२८७

करहरा वि० काले अंशवाला।

उ०—टेसू करहरे मानौ ववैला अधजरे धरे। गं० २२५/६७

करहा पुं० सिरस का पेड़।

स्त्री० कटि। कमर।

करहाई स्त्री० १. लता विशेष। २. एक राग।

करहाट—करहाटक पुं० १. कमलों का समूह।

उ०—सहज महल हीरन बने, हाट बाट करहाट। भि० II, ३३/११२

२. कमलनाल। भसींडा। कमलककड़ी।

उ०—कोऊ कहै करहाट के तंतु मैं। भि० II, ४३/११३

३. कमल का छत्ता अथवा छतरी।

४. मैनफल।

करहार—करहारक पुं० दे० 'करहाट'।

करही स्त्री० वह दाना जो पीटने के बाद बाल में लगा रह जाता है।

पुं० मैनफल।

करांकुल पुं० पानी के तट पर रहने वाला एक बड़ा पक्षी। कूंज।

करांत पुं० आरा।

—ई पुं० वह व्यक्ति जो आरा चलाता हो।

करा[1] स्त्री० कला। गुण।

करा[2] पुं० क्रौंच पक्षी।

उ०—को गनै चातक चक्र चकोर करापिक मोर मराल प्रबादनि। दे० I, २४५/८८

कराइत पुं० करैत सांप, एक प्रकार का काला गंडेदार बड़ा जहरीला साँप जो लम्बाई में एक फुट अथवा ड़ेढ़ फुट से अधिक नहीं होता और कनिष्ठ अँगुली जितना मोटा होता है।

कराइन पुं० छप्पर के ऊपर रखा जाने वाला फूस।

कराई[1] स्त्री० काम करने या कराने का पारिश्रमिक।

कराई[2] स्त्री० १. दाल का छिलका।

२. अनाज आदि के फटकने पर निकलने वाली भूसी।

कराई[3] स्त्री० कालिमा। कालापन।

कराड़ पुं० ऋय करने वाला व्यक्ति। महाजन।

कराक—कराका पुं० कड़ाक की ध्वनि।

उ०—कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि। भू० ४२५/२१०

कराचोली पुं० लोहे की कड़ियों का बना छाती पर धारण करने वाला कवच।

उ०—कराचोली काम की, कि सोभा करै स्याम की। गं० २५ ६

स्त्री० किरच, नोंक के बल सीधी भोंकी जाने वाली एक छोटी तलवार।

उ०—संकट की झोली रची तेरी कराचोली है। हरि० ३७/११६

करात स्त्री० एक तौल जो कि चार जौ के बराबर होती है। इससे सोना-चाँदी, भस्मादि को तौला जाता है। कैरेट।

कराबीन (फ्रां०) स्त्री० एक प्रकार की तोड़ेदार बन्दूक।

उ०—कराबीन छूटैं करैं। प० ७१/११

करामात (अ०) स्त्री० अद्भुत कार्य। चमत्कार।

उ०—प्यो राख्यो परदेस तें, करामात अधिकाइ। म० १६२/४४६

—इ स्त्री० चमत्कारी।

उ०— जहाँ जहाँ जम की जमाति कीन्ह करामाति। प० ३५/२६६

—ई पुं० १. ऐन्द्रजालिक। २. सिद्ध पुरुष।

वि० चमत्कार दिखाने वाला।

करायजा पुं० १. इन्द्र-जौ। २. कुटज।

करायल स्त्री० १. मँगरैल। कलौंजी।

२. तेल मिली हुई राल।

३. एक प्रकार का खाद्य। व्यंजन-विशेष।

वि० जिसका रंग कुछ काला हो।

करार[1] (अ०) पुं० १. स्थिरता। २. धैर्य। ३. नियम।
उ०—पचत न बढ़ि तिल आध भोजन नित्त करार तें। बो० १६/८८
४. प्रतिज्ञा।
उ०—मेरो ए करार सुनि लीजे। बो० १५/२१७
५. वादा। निश्चय। ६. चैन।
७. इकरार।
उ०—अब करि कहा करार। म० ३४२/३६७

करार[2] पुं० नदी तट का ऊँचा किनारा जो पानी के काटने से बनता है।
उ०—कालिंदी कैं करार। सूर० १०/३२४३/३३७

करार[3] पुं० कौआ।

करार[4] वि० भयानक।

करार[5]—अक० कर्कश स्वर करना।
उ०—कदम करारत काग। सूर० १०/१२२६/५१२
करारत व०कृ०।

करारा पुं० १. ऊँचा किनारा। २. टीला। ३. कौआ।
वि० १. कड़ा। दृढ़। २. अच्छी तरह सेंका हुआ।
३. तीक्ष्ण। उग्र। ४. खरा।
५. हट्टा-कट्टा।
—पन पुं० कड़ाई। सख्ती।

करारि पुं० घाट।
उ०—बोरति कर्ताहि करारि। सूर० १०/२५९१/१६७

करारी वि० १. भयानक।
उ०—झपटति लपट करारी। सूर० १०/५९८/३७९
२. दृढ़। वचनबद्ध।
उ०—थाके करि दाव रह्यौ सुभट करारी मैं। हरि० ९२/३६
३. चोखा। सुन्दर।
उ०—अति ही छबि छीरधि रंग करारी। भू० ३८/१३५

कराल वि० १. बड़े-बड़े दाँतों वाला।
२. भयानक रूप वाला। विकराल।
उ०—यह कलिकाल बढ्यो दुरित कराल। क० ५१/११०
३. ऊँचा। ४. कठोर। कठिन।
उ०—सुनि जातना कराल। सूर० वि०/१८६/५२

करालभञ्च पुं० संगीत का एक ताल विशेष।

कराला स्त्री० १. दुर्गा का एक नाम। २. अनन्तमूल।

कराली स्त्री० १. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।
२. दुर्गा।
वि० भयावनी। डरावनी।

कराव पुं० १. विधवा स्त्री से किया जाने वाला विवाह।
२. लाल मांगलिक सूत्र।

कराह[1] पुं० कराह, व्यथा के समय निकलने वाला शब्द। पीड़ा का शब्द।
उ०—जक लागियै मोहिं कराहनि की। घ० क० ६६/७८
अक० पीड़ा के कारण दुःखसूचक शब्द करना।
उ०—चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं। उ० ३२/३२
कराहत, कराहति व०कृ०।

कराह[2]—**कराहा** पुं० [स्त्री० कराही] कड़ाह। बड़ी कड़ाही।
उ०—जरिहैं नाहिं कराह मैं कीजै राज बिचार। के० III, ७०/७१३

करि[1] पुं० करि। हाथी।
उ०—जिहि पब्बै कर पै धरी करि की करी गुहारि। बो० १०/७७
—इंद पुं० श्रेष्ठ हाथी।
उ०—भूपति प्रताप बखसैं करिंद। भू० ७/२७८
—कपोल पुं० हाथी का गण्डस्थल।
उ०—बैठत उड़ि करि-कपोल, दान-मानकारी। के० II, १६/३७९
—गन पुं० हाथियों का झुण्ड।
—ज पुं० हाथी का बच्चा।
—वदन पुं० हाथी के समान मुख वाले, गणेश जी।
—वर—वर पुं० श्रेष्ठ हाथी।
उ०—संगर में सिंह सम कीने करिबर सुरपुर के निवासी। म० ३०/३०३

करि[2] पुं० नागबेल। पान की बेल।

करिआ पुं० दे० 'करिया'।

करिअट पुं० किलकिला पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है।

करिखई स्त्री० कालिख। कालापन।

करिखा पुं० काजल ।
करिगह पुं० दे० 'करघा' ।
करिणी—करिनी स्त्री० हथिनी ।
उ०—अति ही रँग करिनी करति ।
बो० ५५/७३
पुं० करनी । कर्म । किया हुआ काम ।
स्त्री० वैश्य पिता और शूद्र माता से उत्पन्न कन्या ।
करिया[1] पुं० १. पतवार ।
उ०—यौं डोलैं, ज्यौं करिया बिन नाइ ।
सूर० १०/३३३३/३५५
२. मल्लाह । केवट ।
उ०—सूर प्रभु निठुर करिया कहा ह्वै रहे ।
सूर० १०/१०१६/४८६
३. कर्णधार ।
उ०—बरियाँ करिया बिन ज्यों तरियैं ।
प० १६६/५०
करिया[2] वि० काला ।
—ई स्त्री० कालापन । कालिमा । कालिख ।
करिया[3] वि० करने योग्य ।
उ०—मन्मथ कोटि वारने करिया ।
सूर० १०/६८८/४०१
करिया[4] पुं० ईख का एक रोग ।
करियारी[1]—करिहारी १. स्त्री० कलियारी विष ।
उ०—इन्द्रानी के फल विमल, करिहारी के फूल ।
दे० I, ३८/३०२
वि० दे० 'करिया' ।
करियारी[2] स्त्री० लगाम ।
करिवार स्त्री० दे० 'करवान' ।
करिसन स्त्री० खेती । कृषि ।
करिहाँ—करिहा स्त्री० कटि । कमर ।
उ०—लचकैं करिहाँ मचकैं मिचकी के ।
प० २२७/१३०
—व स्त्री० १. कमर ।
२. कोल्हू का वह गड़ारीदार मध्य भाग जिसमें कनेन और भुजेला घूमता है ।
करिहेत (करि+हेत) क्रि०वि० प्रेमपूर्वक ।
करी[1] पुं० १. करी । हाथी ।
उ०—जादूबस केहरि करी बाँधे आवत ब्याल ।
बो० ४०/७१
२. पुण्डरीक कमल ।
स्त्री० चौपाई या चौपाया छंद ।
—कर स्त्री० हाथी की सूंड़ ।
उ०—उरु करी-कर केरि सम ।
के० I, १८/१६६
करी[2] स्त्री० लोहे की कड़ी ।
करी[3] स्त्री० कली ।
उ०—राखी सुग्रथित कुंद करी । गो० ३६०/१५६
करीट पुं० दे० 'किरीट' ।
करीना[1] (अ०) पुं० करीना । ढंग । तरीका ।
करीना[2] पुं० पत्थर गढ़ने की छेनी । टाँकी ।
करीनि पुं० दे० 'करील' ।
करीब (अ०) क्रि०वि० करीब । निकट । पास ।
—ई वि० समीप का । निकटस्थ ।
उ०—सुन्यो भागवत, भक्त कहावत, कछु इक रीति करीबी ।
ना० २३/८६
करीर[1] पुं० १. बाँस का नया कल्ला । २. करील ।
उ०—कहि कीर करीर कहा करिहै ।
के० I, ६/१७७
उ०—कछु अरुझानी है करीरनि के झार में ।
बो० २४/२४
करीर[2] पुं० घड़ा ।
करील पुं० १. टेंटी का वृक्ष । यह एक कँटीली झाड़ी होती है, जिसमें पत्ते नहीं होते ।
उ०—क्यौं करील फल भावै । सूर० १/१६८/४६
२. कोंपल । नया कल्ला ।
करीष पुं० बिना पाथा हुआ जंगली कंडा ।
करीस—करीश हाथियों का राजा । गजराज ।
करुआ[1] वि० (स्त्री० करुइ—करुई) कड़ुवी । कटु ।
उ०—कहि न सकति करुई अरु मीठी ।
कुं० २४६/८६
—ई स्त्री० कड़ुवापन । कड़ुवाहट ।
करुआ[2] पुं० दालचीनी की तरह का एक वृक्ष ।
करुआ[3] पुं० मिट्टी का छोटा बरतन ।
करुआ[4]— अक० १. कड़ुवा लगना । २. दुखना ।
करुखी[1] स्त्री० दे० 'कनखी' ।
करुखी[2] स्त्री० क्रोध की सूचक तिरछी दृष्टि ।
करुण[1]—करुन वि० १. करुण । दयार्द्र । करुणायुक्त ।
२. दुःखद ।
करुण[2] पुं० १. साहित्य के नौ रसों में से एक ।
२. परमात्मा ।
३. करना नीबू या उसका वृक्ष ।
—रस पुं० नौ रसों में से एक ।
करुणा—करुना स्त्री० दया । तरस ।

उ०—भई नाहिं रंच तोहि करुना कसाई तूं तौ।
बो० ११/८७

—आयतन पुं० करुणा के निवास।
उ०—जग-कारन करुनायतन, गोकुल जाको ऐन।
नं० १/६६

—कर वि० करुणा करने वाला।
उ०—अपुने जीव पर अति करुनाकर।
छी० १७८/७५

—जुत वि० करुणा से युक्त।
उ०—करुना जुत श्रद्धा गई। के० III, ६/६८५

—धन पुं० करुणा रूपी धन।
उ०—मुख सांच हियें करुनाधन है।
के० III, ५२/७७८

—धाम वि० करुणा से युक्त।

—नाथ वि० करुणाधाम। दया के आश्रय।

—निधान वि० करुणाधाम। दया के आश्रय।
उ०—कहि कबि गंग तुम करुनानिधान कान्ह।
गं० १३/५

—निधि वि० करुणानिधान।
उ०—बिसर गयो करुणानिधि केसव। ना० २/१

—मई—मयी वि० करुणा या दया से पूर्ण।
उ०—अर्पितो हनुमंत कौं तिन दृष्टि के करुनामई।
के० II, ३३/३६४

—मय—मै वि० दयापूर्ण। दयालु।
उ०—करुनामय नैननि में झलकें गिरिधारी।
छी० ४७/१७

—मूल वि० दयालु।

—रस पुं० दया का भाव।

—वत्सल वि० करुणायुक्त भगवान।

—सागर वि० अत्यन्त दयावान।

—सिंधु वि० करुणा के सागर।
उ०—छाके करुना-सिंधु अपार। छी० ३४/१३

करुला[1]—करूला पुं० हाथ का कड़ा। खडुआ।

करुला[2] पुं० मिलावटी सोना जिसमें चार रत्ती फी तोला चाँदी मिली होती है।

करुला[3] पुं० कुल्ला। हाथ में पानी लेकर मुंह में डालकर फेंक देना।

करुवा[1]—करुवौ वि० (स्त्री० करुवी) दे० 'करुआ'।
उ०—करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ।
सूर० ६/१०४/१८५

करुवा[2]— अक० कड़ुवा लगना।

करुवा[3] पुं० दे० 'करवा'।

करुष—करूष पुं० गंगातट का एक देश। रामायन काल में ताड़का राक्षसी यहीं रहती थी।

करू वि० दे० 'करुआ'।

करेजा—करेजवा पुं० कलेजा। हृदय। दिल।
उ०—कोमल करेजी थामि सहमि सुखानि हैं।
उ० ४०/४०

करेणु—करेनु पुं० १. हाथी।
उ०—कलभ करेनु-कनि लीनैं संग सुख ते।
म० १२४/३७५
२. कर्णिकार वृक्ष। ३. कनेर।

—का स्त्री० हथिनी।

करेणुवती स्त्री० चेदिराज की कन्या जो नकुल को ब्याही गई थी।

करेत—करैत पुं० करैत एक प्रकार का जहरीला साँप। विषधर सर्प विशेष।

करेम—करेमु पुं० एक प्रकार का जलाशय में उत्पन्न होने वाला शाक।

करेर वि० १. कठोर। कड़ा। २. कठिन। ३. दृढ़।
उ०—क्यौं चित्त राख्यौ करेर बनाय कै।
हरि० १३२/६०

—आ—करेरो वि० (स्त्री० करेरी) कठोर।
उ०—जैतवार जगत करेरी किरवान को।
म० ७६/३१२

करेल पुं० एक बड़ा मुगदर जिससे कसरत की जाती है।

करेलनी स्त्री० घास का ढेर लगाने की काठ की फलही।

करेला पुं० १. एक तरकारी या शाक विशेष।
२. माला या हुमेल की लंबी गुरिया।
३. आतिशबाजी विशेष।

करेली स्त्री० १. जंगली छोटा करेला जो अत्यन्त कड़ुवा होता है।
२. वह स्थान जहाँ करेला उत्पन्न होता है।

करेवा पुं० कलेवा। प्रातःकालीन जलपान या हल्का भोजन।

करैंटो पुं० काँटा। कण्टक।

करैत पुं० दे० 'करेत'।

करैल[1] स्त्री० १. तालावों के किनारे की काली मिट्टी।
२. काली मिट्टी वाली भूमि।

करैल[2] पुं० १. बाँस का नया निकलता हुआ कल्ला।
२. डोम। कौआ।

करैला पुं० (स्त्री० करैली) दे० 'करेला'।

करोट—करौंट स्त्री० करवट।

उ०—जेही करोट परै तिय पी बिनु।
गं० १६६/५०

पुं० खोपड़ी की हड्डी।

—ई स्त्री० १. करवट। २. खोपड़ी।

—अक० करवट लेना।

करोड़ वि० कोटि। सौ लाख।

—ई पुं० रोकड़िया।

—खुख वि० बेमतलब की लाखों की बातें करने वाला। ढपोरशंख।

—पति पुं० बहुत धनवान जो करोड़ रुपयों का मालिक हो।

करोत—करौत पुं० दे० 'करपत्र'।

उ०—तेही करोट करोत सो दीजै।
गं० १६६/५०

करोद—करोव— सक० खुरचना। कुरेदना।

उ०—नहिं बोलत, नहिं चितवत मुख तन, धरनी नखनि करोवत। सूर० १०/२१४६/८१

करोनी स्त्री० १. दूध की सूखी खुरचन जो मटके के पेंदे में चिपकी रहती है। खुरचन।

२. छोटा करोना। खुरचनी।

करोर[1] स्त्री० खरोंच।

उ०—भौंह के मरोर में करोर कहूँ कै गई।
गं० ४८/१६

करोर[2] वि० दे० 'करोड़'।

उ०—राम की रूरी कथा सुनिबे कों करोरन कान कहाँ कहाँ पैये। प० ५/२३८

पुं० दे० 'करोड़'।

—ई पुं० करोड़पति।

करोरा—करोला पुं० १. गडुवा। २. झारी।

करोला पुं० भालू। रीछ।

करौंछा—करौछा (कारा+औंछा) वि० काले रंग का सा। काला।

करौंदा पुं० करोंदा। एक प्रकार की कटीली झाड़ियाँ तथा उसके फल। ये स्वाद में खट्टे तथा गुलाबी रंग के होते हैं।

उ०—निबुआ, सूरन, आम, अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी। सूर० १०/२४१/२७७

करौता स्त्री० करैल मिट्टी। करैली।

करौती स्त्री० १. काँच की भट्टी।

२. शीशे का छोटा बरतन।

उ०—काँच करौती जल ज्यौं जानति।
सूर० १०/२७५५/२००

करौना पुं० बर्तनों पर नक्काशी करने की छैनी।

करौल—करौला पुं० १ शिकारी।

२. हाँका लगाने वाले व्यक्ति।

उ०—धाय कै सिंधु कहाँ समुझाय करौल न जाय अचेत उठाए। भू० ८४/१४४

वि० कराल। कठोर।

उ०—काल करौल हरौल भयो। हरि० १५४,६६

करौली स्त्री० १. मूठ लगी हुई लंबी छुरी।

२. राजपूताने की एक रियासत की राजधानी जहाँ चैत्र और क्वार में देवी का मेला लगता है।

कर्क पुं० १. बारह राशियों में से चौथी राशि।

२. केंकड़ा। ३. काँकड़ासिंगी। ४. अग्नि।

५. दर्पण। ६. घड़ा।

७. कात्यायन श्रौत सूत्र के एक भाष्यकार का नाम।

कर्कट पुं० १. दे० 'कर्क'। २. सारस विशेष।

३. घिया। ४. कमल की जड़। भसिंडा।

५. तराजू की डंडी के सिरे जिसमें पलड़ों की रस्सियाँ बाँधी जाती हैं।

६. सँड़सा। ७. वृत्त की त्रिज्या।

८. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक।

कर्कटी स्त्री० १. कछुई। २. ककड़ी। ३. साँप।

४. सेमर का फल। ५. घड़ा। ६. तोरई।

७. दे० 'कर्क'।

कर्कर पुं० १. कंकड़।

२. कुरंज पत्थर जिसका चूर्ण करके सान बनाते हैं।

३. नीलम का एक भेद।

वि० कड़ा। करारा। खुरखुरा।

कर्कश—ककंस (कर्क+श) वि० कठोर। कड़ा। कर्कश।

उ०—स्तब्ध, कठिन, कर्कस, परुष, अरु कठोर अश्लील। नं० ४३/९८

पुं० कमीले का पेड़। ऊख। खड्ग। तलवार।

—आ वि० झगड़ालू। लड़ाकी।

कर्ण पुं० १. कान। श्रवणेन्द्रिय।

२. कुन्ती का सबसे बड़ा पुत्र। ३. पतवार।

४. गणित में वह रेखा जो किसी चतुर्भुज के आमने-सामने के कोणों को मिलाती हो।

५. पिंगल में चार मात्रा वाले गणों की संख्या ।
६. छप्पय का एक भेद विशेष ।
—ई वि० बड़े कानों वाला ।
—क पुं० एक प्रकार का सन्निपात जिसमें व्यक्ति बहरा हो जाता है और अनर्गल प्रलाप करने लगता है ।
—कटु वि० जो कान को प्रिय न लगे । अप्रिय । अरुचिकर । कर्कश ।
—कीटी स्त्री० कनखजूरा ।
—कुहर पुं० कान का छिद्र ।
—गूथ पुं० कान का खूँट ।
—देवता पुं० कान के देवता । वायु ।
—नाद स्त्री० गूँज या घनघनाहट जो कान में सुनाई पड़ती है । रोग विशेष इसमें वायु के कारण सदैव एक तरह की गूँज सुनाई पड़ती है ।
—परम्परा स्त्री० वह क्रम जिसके अनुसार बात एक कान से दूसरे कान तक जाती है ।
—पाली स्त्री० १. कान की लोलक ।
२. बाली । मुरकी ।
—पुट पुं० कान का घेरा ।
—मूल पुं० रोग विशेष जिसमें कान की जड़ के पास का हिस्सा सूज जाता है । कनपेठा ।
—हीन वि० जिसके कान न हों, बूँचा ।

कर्णधार (कर्ण+धार) पुं० माँझी । पतवार थामने वाला । मल्लाह ।

कर्णपिशाची स्त्री० एक तान्त्रिक सिद्धि । इसके सिद्ध होने पर, साधक में सबके मन की बातें जान लेने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है ।

कर्णपुर पुं० अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी ।

कर्णपूर पुं० १. सिरस वृक्ष विशेष । २. अशोक वृक्ष । ३. नीला कमल । ४. कर्णफूल ।
—क पुं० कदम्ब का वृक्ष ।

कर्णप्रयाग पुं० गढ़वाल प्रान्त का एक गाँव जहाँ स्नान करने का बड़ा फल है ।

कर्णफूल—कर्नफूल पुं० दे० 'करनफूल' ।
उ०—मानो कर्नफूल चारा कौं, रवकत बारंबार ।
सूर० १०/२६१०/१७१

कर्णभेद पुं० दे० 'करनबेध' ।

कर्णिका—कर्निका (कर्ण+इका) स्त्री० १. दे० 'करनफूल' । २. हाथ की बीच की उँगली । ३. हाथी की सूँड़ का अग्रभाग । ४. कमल का छाता ।
उ०—ज्यों नवदलनि मंडलहिं कमल कणिका भ्राजै ।
नं० १२/१६
५. सेवती । सफेद गुलाब । ६. मेठा सिंगी । ७. लेखनी । ८. एक प्रकार का योनि रोग ।

कर्णिकार (कर्णि+कार) पुं० १. कनक चम्पा का वृक्ष । २. अमलताश विशेष ।

कर्णी[1] (कर्ण+ई) स्त्री० एक प्रकार का बाण ।

कर्णी[2] पुं० १. सप्तवर्ण पर्वतों में से एक । २. कर्णधार । माँझी ।

कर्णेजप वि० चुगलखोर । परोक्ष में निन्दा करने वाला । पिशुन ।

कर्तरि—कर्त्तरी दे० 'कर्त्तनी' ।
उ०—जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात ।
सूर० बि०/९०/२४

कर्त्तनी (कर्त्तन+ई) स्त्री० कैंची । कतरनी ।

कर्त्तब पुं० दे० 'करतब' ।

कर्त्तरी[2] स्त्री० १. छुरी । २. ताल देने का एक बाजा । ३. फलित ज्योतिष का योग विशेष ।

कर्त्तव्य पुं० करने योग्य कार्य ।
—ता स्त्री० कर्त्तव्य का भाव ।
—विमूढ़ वि० १. अपने कर्त्तव्य के प्रति ज्ञान न रखने वाला । २ चकित । विस्मित ।

कर्त्ता—कर्ता पुं० १. व्याकरण के छः कारकों में पहला कारक । २. ईश्वर । विधाता । स्रष्टा ।
उ०—सूर स्याम त्रिभुवन कौ कर्त्ता, जसुमति गही निज टेक ।
सूर० १०/३७७/३१०
वि० १. किसी कार्य को करने वाला । २. करने, बनाने या रचने वाला ।
उ०—जब दीन सुखी कर्त्ता, हरता भयभीर को ।
भि० I, ३/२६९
—र पुं० ब्रह्मा । करतार ।
उ०—तिनकों नर नारी कहा मोहत है कर्तार ।
बो० ४६/७१

कर्दम पुं० दे० 'करदम' ।
—नी स्त्री० दलदल वाली भूमि ।

कर्धनी स्त्री० दे० 'करधनी' ।

कर्न पुं० दे० 'कर्ण' ।

उ०—क्वारी के कर्न भए पंडु तें न पांडौ भए।
गं० ४२७/१३१

कर्नतीर्थ पुं० वीरसिंह के पुत्र कर्णपाल द्वारा निर्मित तीर्थ जो कर्णधरा के नाम से प्रसिद्ध है।
उ०—तहाँ कर्नतीरथ तिन कर्यो।
के० III, २५/४८७

कर्नाल स्त्री० दे० 'करनाल'।
उ०—कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजै।
के० II, १२/२५४

कर्नेता पुं० रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद।

कर्पट पुं० चिथड़ा। गूदड़।
—इक पुं० फटे-पुराने कपड़े पहनने वाला व्यक्ति। भिखमंगा। भिखारी।
—ई पुं० दे० 'कर्पटिक'।

कर्पण पुं० एक प्रकार का प्राचीन शास्त्र।

कर्पर पुं० १. कपाल। खोपड़ी। २. खप्पर।
३ कछुए की खोपडी।
४. कड़ाह। बड़ी कड़ाही। ५. गूलर।
६. एक अस्त्र।

कर्पूर पुं० दे० 'कपूर'।

कर्फर पुं० दर्पण। आईना।

कर्बुदार (कर्बु+दार) पं० १. लिसोड़ा।
२. सफेद कचनार। ३. तेंदू का पेड़।

कर्बुरा (कर्बुर+आ) स्त्री० कृष्णा तुलसी। बन तुलसी।

कर्बुरी (कर्बुर+ई) स्त्री० दुर्गा।

कर्म पुं० १. दे० 'करम'।
उ०—आपुने धर्म, कर्म सब आपुने।
छी० १८०/७६
२. मृतक संस्कार।
—आ पुं० दे० 'कर्म'।
उ०—जज्ञ करत बैरोचन कौ सूत, वेद बिहित-बिधि-कर्मा। सूर० वि०/१०४/२८
—ई वि० दे० 'करमी'।
उ०—तुम केसव हौ सब के सब कर्मी।
दे० I, ४५/११
— इन्द्रिय स्त्री० शरीर के अंग या अवयव जो कार्य करते हैं। ये गिनती में पाँच होते हैं। जैसे—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपदस्थ।
—काण्ड पुं० १. यज्ञादि कर्म।
२. वह ग्रंथ जिसमें यज्ञादि कर्मों की विधियाँ पाई जाती हैं।
—काण्डी वि० यज्ञादि कर्म कराने वाला।
—कार पुं० १. एक वर्णसंकर जाति।
२. नौकर। सेवक। ३. बेगार।
—कारक वि० कर्म करने वाला।
पुं० १. कर्मकार।
२. व्याकरण के कारकों में से दूसरा कारक।
—तरु पुं० कल्पवृक्ष।
उ०—कहि 'केसव' त्यौं जड़ कर्मतरु उद्भिम ऋतु पाएँ फरै। के० III, १८/६१८
—फंद पुं० कर्म का फंदा।
उ०—जाको नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सबकाटै।
सूर० १०/३४६/३०२
—फल पुं० कर्म का फल।
उ०—निज प्रारब्ध कर्म-फल खाइ। नं० पृ० २३४
—भोग पुं० कर्म का फल।
उ०—जो कहौ, कर्मभोग जब करिहैं।
सूर० ७/२/११८
—योग पुं० दे० 'करम योग'।
—रेख पुं० दे० 'करम रेखा'।
उ०—वह कर्मरेख लिख्खी सोई सत्य सत्य अदृिष्ट-गति। बो० ३/११४
—वाद पुं० अन्तःकरण की शुद्धि के लिये किया जाने वाला धार्मिक कर्म।
उ०—कर्मवाद थापन कौं प्रगटे, पृश्नि गर्भ अवतार।
सारा० ३२१/२७
—विपाक पुं० दे० 'करम विपाकु'।
—शील वि० उद्योगी। कर्मवान। कर्म करने वाला।
—शूर वि० साहस से कार्य करने वाला। कर्म-बीर।
—सूत्र पुं० कारीगर का नापने का सूत।
उ०—कर्मसूत्र ठाने अरु सुनियत, रसना संधि प्रकास।
सूर० १०/३५८३/३८९

कर्मीर वि० नारंगी (रंग)।

कर्रा वि० कड़ा। कठिन।
उ०—मुख करें बैताल अति भाटन की औखात।
बो० ४१/१६३

कर्ष पुं० १. प्राचीन कालीन एक तौल जो पाँच रत्ती के बराबर था।
२. खिचाव। ३. जुताई। ४. बहेड़ा।
५. ताव। जोश।
सक० दे० 'करष'।
उ०—अति कवि-कवि हथ्यार घालत हर्ष-जुत हाँकत सबैं। प० १३७/१९

—क वि० खींचने वाला।

पुं० किसान। खेतिहर।

—ण—न पुं० कृषिकर्म। खेती का काम। भूमि जोतने का काम। खींचने का काम।

—फल पुं० वहेड़ा। आँवला।

उ०—अक्ष, विभीतक, कर्षफल, संवर्त्तक, कलिवृक्ष। नं० २२६, ८६

कर्षिणी स्त्री० १ खिरनी का पेड़। २. घोड़े की लगाम।

कलंक पुं० १. कलंक। काला अंक। दोष। दाग़।

उ०—लखो राम के राज में इक ससि माँहि कलंक। प० १६०/५६

२. चन्द्रमा का काला दाग़।

—इत वि० दूषित। दाग़ी। लांछित।

—इनि—इनी स्त्री० दूषिता, वह स्त्री जो बदनाम हो गई हो।

उ०—कंकालिनी कूबरी कलंकिनि कुरूप तैसी। प० ४८६/१८३

—ई वि० दोषी। बदनाम।

उ०—उड़ि चल्यो रंग कैसें राखियै कलंकी मुख। छ० क० ५१/६८

कलंक[२] पुं० कल्कि।

—अवतार पुं० दे० 'कलकी'।

कलंगी—कलँगी स्त्री० मुकुट में लगे हुए बगला या सुरखाब के पर।

उ०—स्वेत जरी सिर पाग लटकि रही कलंगी तामें लाल। च० ३०,१६

कलंज पुं० १. तम्बाकू का पौधा। २. हिरन। ३. पक्षी। ४. पक्षी का मांस। ५. १० पल की तौल।

कलंदर पुं० १. मदारी।

२. संसार से विरक्त मुसलमान साधु।

कलंदरा पुं० रेशमी कपड़ा विशेष, जो सूत रेशम और टसर से बुना जाता है।

कलंब पुं० १. वाग। २. शाक का डंठल। ३. कदम्ब।

कलंबिका स्त्री० गले के पीछे की नाड़ी।

कल[१] स्त्री० चैन। आराम।

उ०—कल नहिं परत निसिहू भोर। बो० २५/५३

कल[२] स्त्री० कलरव जैसे—कोयल की कूक। भौंरों की गुंजार।

उ०—दच्छिन धीर समीर पुनि कोकिल कल कूजंत। क० ६/५६

कल[३] पुं० १. दूसरे दिन का सवेरा।

२. बीता हुआ दिन।

कल[४] वि० कोमल। मधुर। मनोहर।

कल[५] पुं० कला।

कल[६] पुं० कल। मशीन।

—कैरव पुं० कलरव। भौंरों की गुंजार।

उ०—भौंरनि की अवली कल कैरव कुंजन पुंजन में मृदु गाई। म० २८५,२६६

—गान पुं० कलरव।

उ०—कोकिला-कल-गान करत पंच सुरनि साँचै। छी० ८०/३६

—धुनि पुं० १. कलरव। २. मधुर ध्वनि।

—वानी स्त्री० मीठी बोली। मधुर बाणी।

कलई स्त्री० १. राँगा। मुलम्मा।

२. राँगे का पतला लेप जो बर्तनों पर किया जाता है।

उ०—कंचन कलई लोह पर, त्यों गुन रूप प्रकास। दे० I, १०,३०५

३. चूने का छार। सफेदी।

—गर पुं० कलई करने वाला।

कलऊ पुं० दे० 'कलियुग'।

उ० कलऊ में कीन्हीं महावीरन के मारवे कों। बो० २६/१००

कलकंठ—कलकंठी (कल+कंठ) वि० अच्छे मीठे स्वर से गाने वाला।

स्त्री० कोयल।

उ०—कलकंठी सुख लहति है, प्रफुलित पाइ रसाल। म० ५६६,४१५

कलकंद पुं० १. सुन्दर मिश्री। २. कलाकंद। बर्फी।

कलक[१] स्त्री० १. दुःख। रंज। २. चिन्ता। बेचैनी।

कलक[२]— अक० चीत्कार करना। चिंघाड़ना।

उ०—चिक्करत दिक्कार हलत कलकत हैं। म० १२२ ३१६

कलकत, कलक्कति व०कृ०।

—आन—आनि—आनी[१] स्त्री० दिक्कत। हैरानी। परेशानी।

उ०—कवि 'मतिराम' निति उठि कलकानि करो। म० २५४ २५६

कलकल[१]**—कलकलु** पुं० १. जल प्रपात का शब्द। २. कोलाहल। ३. कलरव। सुन्दर शब्द।

उ०—कोकिल कीर कपोत केलि कलकल करततहिं।
भू० २३/१३२

कलकल[२] स्त्री० झगड़ा। वाद-विवाद।

कलकल[३] स्त्री० राल। गोंद।

कलकल[४] (कल्लाना) स्त्री० खुजली।

कलकी पुं० कलि के अन्त में होने वाला भगवान का एक अवतार।
उ०—कलि के आदि, अंत कलयुग के, है कलकी अवतार। सा० ३२०/२६

कलकीट पुं० १. एक कीड़ा। २. सङ्गीत में एक ग्राम।

कलकूज— (कल+कूज) अक० मधुर कुहूँ कुहूँ शब्द करना।
—इत वि० कलखपूर्ण स्थान।
—क वि० मधुर ध्वनि करने वाला।

कलकाची स्त्री० कलक। पछतावा। रंज।

कलगट पुं० कुल्हाड़ी।

कलगा पुं० १. मरसा की जाति का एक पौधा। २. जटाधारी। ३. मयूर।
उ०—नैन अलसौहैं कलगा की जनु पखियाँ।
ना० ५०/१३७

कलगी स्त्री० १. दे० 'कलँगी'।
उ०—कलगी तुर्रा कनक मनिमय तिलक मृग मद-भाल। गो० १५/८
२. ऊँची इमारत की चोटी।
३. लावनी रागनी का एक भेद।

कलचिड़ी स्त्री० एक चिड़िया जिसकी बोली बड़ी सुरीली होती है।

कलची स्त्री० कँजा नाम की कटीली झाड़ी।

कलचुरि पुं० दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश।

कलजिब्भा—कलजिह्वा—कलजीहा (काला+जिह्वा) वि० १. काली जीभ वाला। २. वह जिसकी अशुभ बातें या शाप ठीक निकलें।
पुं० काली जिह्वा का हाथी जो अच्छा नहीं समझा जाता है।

कलझवाँ वि० कलमुहाँ। सांवला।

कलटोरा पुं० वह कबूतर जिसका समस्त शरीर सफेद रंग का हो, केवल चोंच काली हो।

कलत्थ— (सं० कलह) अक० छटपटाना। दुःखी होना।
उ०—उलत्थैं पलत्थैं कराहैं न पावैं कहूँ सोक-सिंधून थाहैं। प० ७५/११
कलथ्यो भू०कृ०।

कलत्र पुं० स्त्री। भार्या। पत्नी।
उ०—पुत्र-कलत्र-मोह सब त्याग।
सूर० ६/४/१३०

कलथरा पुं० करघे की चक नामक लकड़ी।

कलदार वि० पेचदार।
पुं० टकसाली रुपया।

कलदुमा (काला+दुम+आ) वि० काली पूँछ वाला।
पुं० काली पूँछ का कबूतर।

कलधूत—कलधौत पुं० १. सोना। २. चाँदी।
उ०—जैति श्री चंद्रिका चारु कलधूत के।
ना० ३६०/३५७
—इका वि० चाँदी अथवा सोने की बनी हुई।

कलन—कलनि पुं० १. लगाना। सजाना।
२. आचरण।
३. गणित की क्रिया। हिसाब। ४. संकलन।
५. शुक्र व रज का गर्भ की प्रथम रात्रि को विकार जिससे कलल बनता है।

कलप[१] पुं० ब्रह्मा का एक दिन।
उ०—कलप सी राति, सो तो सोए न सिराति क्यों। क० र० ५२/६८

कलप[२] पुं० दे० 'कलफ'।

कलप[३] अक० विलाप करना। बिलखना।
उ०—पल कलपै कलपै पिय प्यारो। प० ७६/४२
कलपत व०कृ०। कलपी भू०कृ०।
—तरु पुं० एक वृक्ष जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों मे से माना जाता है और जो सभी इच्छा पूरी करता है।
उ०—आलवाल कृष्न-कृपा को कलपतरु।
घ० क० ३४३/२१३
—द्रुम पुं० दे० 'कलपतरु'।
उ०—भावसिंह सोई कलपद्रुम दिवान है।
म० ६६/३१०
—बेलि स्त्री० कल्पलता।
उ०—लहलही कीरति कलप बेलि बाग है।
म० ११६

कलपन पुं० दे० 'कल्पना'।
उ०—कलपन कीन्हें होत है बक्रोकति ही ठाहि।
प० २५६/६४

कलपनी स्त्री० कैंची।

कलपा— सक० दुःखी करना। जी दुखाना। तरसाना।
उ०—काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै।
घ० क० ७
कलपात व०कृ०। कलपायौ भू०कृ०।

कलपित वि० दे० 'कल्पित' ।
उ०—जु न कारन उत्कर्ष को कियो सु कलपित हेतु ।
प० २११/५८

कलपून पुं० सदाबहार पेड़ जो उत्तरी पूर्वी बंगाल में होता है ।

कलफ[१] पुं० आटे, अरारोट आदि का घोल जो गर्म करके कपड़ों को कड़ा करने के लिए लगाया जाता है ।

कलफ[२] पुं० चेहरे की झाँई । दाग ।

कलब पुं० टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ रंग ।

कलबल[१] (कला+वल) पुं० उपाय । दाँव-पेंच ।
उ०—कल बल छल करि······ आवहु अब आज ।
सूर० १०,१३६६/५८७

कलबल[२] पुं० शोर-गुल । हल्ला-गुल्ला ।

कलबूत पुं० १. ढाँचा । साँचा ।
२. लकड़ी का ढाँचा जिस पर चढ़ाकर जूता सिया जाता है ।
३. टोपी या पगड़ी का गुम्बदनुमा ढाँचा ।

कलभ पुं० १. हाथी का बच्चा ।
उ०—मानों गजराज कलभ अति मद गल लटकत आवत प्रिय सखा–भुज धरे अंस ।
गो० ४१७/१६६
२. हाथी । ३. ऊँट का बच्चा । ४. धतूरा ।

कलभ-बल्लभ पुं० पीपल का पेड़ ।

कलम (अ०) स्त्री० १. लेखनी ।
२. किसी पेड़ की टहनी जो दूसरी जगह बैठाने या पेड़ में पैबंद लगाने के लिये काटी जाय ।
३. बाल बनवाते समय कनपटी के पास छोड़ दिए गए छोटे बाल ।
४. चित्रकारों की रंग भरने वाली बालों की कूची ।
५. झाड़फानूस में लटकाया जाने वाला शीशे का लम्बा टुकड़ा ।
६. शोरा, नौसादर, मिश्री आदि में जमे हुए चमकदार दाने । रवा ।
७. काटने, खोदने या नक्काशी करने का महीन औजार । ८. फुलझड़ी ।
—ई वि० १. लिखित । कलम से लिखा हुआ ।
२. पैबन्द लगाकर संकर बनाए हुए फलों व फूलों के पौधे । जैसे—कलमी आम, कलमी अनार आदि ।
३. दानेदार या रवेदार ।
—कसाई पुं० बदमाश व बेईमान पटवारी । लिखकर दूसरों को हानि पहुँचाने वाला ।
—कार पुं० १. चित्रकार । चित्रों में रंग भरने वाला । २. बेलबूटेदार एक कपड़ा ।
—कारी स्त्री० कलम से किया जाने वाले काम । जैसे—चित्रकारी, नक्काशी, बेलबूटे आदि ।

कलमख पुं० दे० 'कलमष' ।

कलम डंक पुं० होल्डर का निब या क़त ।

कलमल—कलमला पुं० दोष । अपराध ।
अक० दबाव से अंगों का हिलना-डुलना । कुलबुलाना । छटपटाना ।
उ०—हलत धरनि कलमलत सेस संकर बिष चूरन ।
गं० ६/२
कलमलात व०क्र० । कलमल्यौ भू०क्र० ।
—ई स्त्री० बेचैनी । बेकली ।
उ०—अति अमूझनि कलमली रुकि घुटत नासा स्वास ।
ना० १३/८४

कलमकल स्त्री० घबराहट । बेकली । दुःख ।

कलमष—कल्मष पुं० १. पाप । दोष ।
उ०—कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि देखे उड़ि जात पात पात ह्वै नसत हैं ।
क० ६४/११४
२. कलँक । लांछन ।

कलमा (अ०) पुं० इस्लाम का मूलमंत्र ।
उ०—चारों वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि, शिवाजी न होते तौ सुनति होति सबकी ।
भू०

कलमास—कलमाष वि० चितकबरा ।
—पाद पुं० अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण के प्रपौत्र का नाम । इनका नाम सौदास था । शाप के लिए अभिमंत्रित जल के द्वारा शाप न देकर, उस जल को अपने ही पैरों पर डाल लिया था जिससे इनके दोनों पैर काले हो गए थे ।

कलमुहाँ (काला+मुँह+आ) वि० कलङ्कित । लांछित

कलारन स्त्री० वह स्त्री, जो जोंके या कीड़ी लगावे ।

कलरौ पुं० दे० 'कल-रव' ।
उ०—कहि दास कहा कहिये कलरौहि जु बोलन बैकल बैन लग्यो । भि० II, २३/१२७

कलल पुं० १. रजो-निवृत्ति के बाद के संगम से स्थापित हुए पहले एक या दो दिन के गर्भ

की वह अवस्था जिसमें रज व वीर्य के गर्भाशय में मिलने से एक बुलबुला-सा बन जाता है।

२. अभिलाप।

उ०—किलकति कालिका कलेजें की कलल करि करिकै अलल भूत भैरो तमकत हैं।

भू० ४५२/२१७

—ज पुं० १ राल। २. गर्भ।

वि० कलल से बनने वाला।

कलवार पुं० [स्त्री० कलवारिन] १. एक हिन्दू जाति जो पहले मुख्यतः शराब बनाने और बेचने का पेशा करती थी।

२. उस जाति का व्यक्ति। कलाल।

—ईया स्त्री० शराब की दुकान। मयखाना।

कलवास पुं० एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख पुराणों में है।

कलविंक पुं० १ गौरैया। २ तरबूज। कलींदा।

३. सफेद चँवर।

४. त्वष्टा के पुत्र विष्णुरूप के तीन मस्तकों में से वह मस्तक जिससे वह शराब पीता था।

५. तीर्थ-विशेष।

कलविनोद पुं० नृत्य के ५१ चालकों में से एक।

कलश—कलस—कलसा—कलसो पुं० १. घड़ा।

उ०—ता पर कलसा फूलनि के फूलनि के फोंदना बिराजें। छी० ६१ २६

२. मंदिर, गोपुर, हवेली आदि का शिखर। कँगूरा।

३. खपड़ैल के कानों पर रक्खे हुए मिट्टी के कँगूरे।

४. एक तौल-विशेष जो आठ सेर की होती है। ५. सिरा।

६. प्रधान अंग। श्रेष्ठ व्यक्ति।

वि० श्रेष्ठ।

उ०—साहब सिंधिया कुल कलस। प० २८/३११

—इया स्त्री० छोटा कलसा।

—ई स्त्री० १. गगरी। छोटा कलसा।

२. मंदिर का छोटा कँगूरा।

३. पृष्ठपर्णी। पिठवन।

४. कलशीमुख नामक वाद्य-विशेष।

(सुत) पुं० दे० 'कलसभव'।

—भँवरकली स्त्री० कलसा डोरी।

—भव पुं० अगस्त्य ऋषि।

कलसार पुं० मैना।

कलसिरी[1] स्त्री० एक काले सिर की चिड़िया।

वि० झगड़ालू औरत। कर्कशा स्त्री।

कलहंतरिता स्त्री० मान करने के पश्चात दुख या पश्चाताप करने वाली नायिका।

उ०—प्रोषित पतिका खंडिता, कलहंतरिता जान।

म० ११०/२२४

कलहंत्र स्त्री० दे० 'कलहंतरिता'।

उ०—कलहंत्र सो है जो किए कलह पछताइ।

र० ४६/३१६

कलहंस पुं० १. सुन्दर हंस।

उ०—ललित मंद कलहंस गति, मधुर मंद मुसक्याति। मति० ३४६/३६७

२. ईश्वर। ब्रह्म।

३. राजपूतों की एक जाति।

—इका स्त्री० सुन्दर हंसिनी। राजहंसिनी।

—का स्त्री० सुन्दर हंसिनी।

कलह—कलहु स्त्री० १. विवाद। झगड़ा।

उ०—कलह कलपना सब मिरिजैहै मन पावै विश्राम। भ्र० ६१/८१

२. लड़ाई। युद्ध।

—इनी स्त्री० १. झगड़ालू स्त्री।

वि० झगड़ा करने वाली।

—ई वि० कलह करने वाली।

पुं० झगड़ा करने वाला पुरुष।

उ०—कुटिल कुराही कूर कलही। प० ७/२५५

—कारी वि० (स्त्री० कारिणी) झगड़ालू।

पुं० झगड़ालू व्यक्ति।

—नी स्त्री० कलह करने वाली स्त्री।

वि० कलह करने वाली।

—प्रिय स्त्री० मैना पक्षी।

पुं० नारद।

वि० वह जिसे लड़ाई झगड़ा करना-कराना प्रिय हो।

कलहनी स्त्री० शनि की पत्नी।

—पति पुं० शनि।

—पिता पुं० सूर्य।

—पुत्री स्त्री० यमुना।

कलहास (कल+हास) पुं० हास के चारों भेदों में से एक।

कलांकुर पुं० १. कराकुल पक्षी। २. कंसासुर।

कलाँच वि० अंशभूत।

उ०—बीस बिसे ऊधो बीरबावन कलांच ह्वौं।
उ० ८७/८७

कला स्त्री० १. अंश। भाग।
२. चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग।
३. सूर्य का बारहवाँ भाग।
४. अग्नि-मंडल के दस भागों में से एक।
५. विद्या। हुनर। कारीगरी।
६. कामशास्त्र के आधार पर ६४ कलाएँ।
७. शरीर की सात छिल्लियाँ।
८. विभूति। तेज। प्रभाव।
उ०—कासीहू की कला गई मथुरा मसीत भई।
भू० ग्र० ४४७/२१६
९. गुण। विशेषता।
उ०—देखहु दुचंद कला कंद की कमाई सी।
प० ३८/३१३
१०. स्त्री का रज।
११. यंत्र।
१२. कर्दम प्रजापति की एक कन्या जो मरीचि ऋषि को ब्याही थी। प्रजापति कश्यप इसी के पुत्र थे।

—कर[1] पुं० १. कलाओं का आकार, चन्द्रमा।
२. कारीगर। कलावंत।

—कर[2] पुं० छली। कपटी।

—केलि पुं० कामदेव।

—कौशल पुं० १. हुनर। दस्तकारी।
२. दस्तकारी में निपुणता।

—धर पुं० १. चन्द्रमा। २. शिव।
३. ६४ कलाओं का ज्ञाता।
४. दण्डक छन्द का एक भेद।
उ०—कहै मतिराम कलाधर कैसी कला हीन।
मति० ११६/२२६

—नाथ पुं० १. चन्द्रमा। २. गन्धर्व विशेष।

—निधान वि० तरह तरह की विद्याओं में चतुर। अनेक विद्याओं को जानने वाला।
उ०—जग कों प्रगट करन परजापति, प्रगटे कलानिधान। सारा० २९/३५६
पुं० १. षोडश कलाओं से युक्त चन्द्रमा। २. कलाप्रिय नायक।
उ०—रति इक रस की खानि है, तू ही कलानिधान।
प० ८४/४२

—निधि पुं० १. कलाओं के भण्डार। चन्द्रमा।
२. इसी नाम के हिन्दी में (सन् १६१५ व १७५० ई०) दो प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं।

—पति पुं० चन्द्रमा।

—बाज वि० कलापूर्ण ढंग से अद्भुत शारीरिक खेल दिखाने वाला व्यक्ति। बाजीगर।

—बाजी स्त्री० बाजीगर द्वारा दिखलाया जाने वाला खेल।

—वंत पुं० कलाकार।
उ०—जहाँ है कलावंत अलापत मधुर स्वर।
भू० २२४/१७१

—वान (कला+वान) वि० कला जानने वाला। चतुर।

कला[2] स्त्री० बहाना।
उ०—भृग दृग नासा अधर तें कोटि कला करि जाति। रस० १३४/२९

कला[3] सक० भूनना। अकोरना। मसाले लिपटाना।

कलाई स्त्री० पहुँचा। मणिबन्ध।

कलाकुल पुं० विष। जहर।

कलाची पुं० दे० 'कलाई'।

कलाजङ्ग पुं० कुश्ती का एक पेंच। एक दाँव।

कलाजाजी—कलाजीजा पुं० कलौंजी।

कलाद पुं० सुनार।
उ०—कलाद कैसो पेसो लियो अधम अनंगु है।
भि० I, ४०८/५९

कलादा पुं० हाथी के मस्तक पर महावत के बैठने का स्थान। कलावा।

कलानक पुं० शिवजी के एक गण का नाम।

कलान्यास पुं० तन्त्र का नाम, न्यास जो शिष्य के शरीर पर किया जाता है।

कलाप—कलापि—कलापी पुं० [स्त्री० कलापिन]
१. समूह। झुंड।
उ०—कंदल, जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय, संदूह। नं० २०४/८७
२. मोर।
उ०—घूँटै घटा चहुँघा घिरिकै गहि काढँ करेजो कलापिन कूकैं। घ० क० ४६५/२५५
३. मोर की पूँछ। ४. पूला। मुट्ठा।
५. बाण। ६. तरकश। ७. कमरबंद, पेटी।
८. करधनी। ९. चन्द्रमा।
१०. कातंत्र व्याकरण। ११. व्यापार।
१२. संस्कृत व्याकरण के एक प्रसिद्ध पंडित का नाम।

१३. वह ऋण जो मयूर के नाचने की ऋतु में चुकाया जाय।
१४. भागवत के अनुसार एक प्राचीन गाँव जहाँ देवर्षि और सुदर्शन तप करते हैं। इन्हीं दोनों राजर्षियों से युगान्तर में सोमवंशी और सूर्यवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी।
१५. वेद की एक शाखा।
१६. अर्द्धचन्द्राकार अस्त्र-विशेष।
१७. एक रागिनी। १८. दुःख।

—न स्त्री० मोर की बोली।
उ०—एते में पावस की या निसा हियरा हहरै सुनि केकी कलापन। बो० ५१/६

—क पुं० १. समूह। २. हाथी के गले का रस्सा।
३. चार श्लोकों का समूह।
४. वह ऋण जो वर्षा-ऋतु में चुकाया जाय।

कलापी[1] पुं० १. दे० 'कलाप'। २. वट वृक्ष।
३. वैशम्पायन का एक शिष्य।
४. कलापि नामक व्याकरण का पढ़ा हुआ।

कलापी[2] वि० १. तरकशबंद। तूणीर बांधे हुए।
२. झुंड में रहने वाला।

कलाबत्तू पुं० रेशम के डोरे के साथ बटा हुआ सोने-चाँदी का तार।

कलाम पुं० १. कुरान की आयतें।
उ०—बेद कलाम पढ़त है दोऊ। बो० ३५/३६
२. वचन।
उ०—जाफर से हैं अमीन काजिम कलाम के। र० ११/३०४

कलामुख (कला+मुख) पुं० १. मुख का सौन्दर्य।
२. चन्द्रमा।

कलामृत (कला+अमृत) पुं० १. शिव। २. चन्द्रमा।

कलार—कलाल पुं० [स्त्री० कलारी—कलाली] दे० 'कलवार'।
उ०—आली तिहीं काली कौं पिवावत कलाली सी। हरि० १६/११३

वि० शराबी।

कलाव पुं० हाथी के गले में बाँधने का रस्सा।

कलावती (कला+वती) वि० कलायुक्त छविवाली।
स्त्री० १. तुंबरु नामक गन्धर्व की वीणा।
२. तांत्रिक दीक्षा-विशेष। ३. एक अप्सरा।
४. मध्य प्रदेशीय राजा कर्ण की स्त्री।
५. राजा द्रुमिल की रानी।

कलावा पुं० १. सूत का लपेटा हुआ लच्छा।
२. लाल, पीले, हरे आदि रंगों से रंगा कच्चे धागों का लच्छा जो माँगलिक अवसरों पर कलाई, कलश आदि पर बाँधा जाता है।
३. हाथी की गरदन में पड़ी हुई कई लरों की रस्सी, जिससे महावत रकाब का काम लेता है।

कलाविक पुं० मुर्गा।

कलास पुं० प्राचीनकाल का एक वाद्य-विशेष जिस पर चमड़ा चढ़ा होता था।

कलिंग पुं० १. महाराज बलि के एक पुत्र का नाम।
२. आधुनिक आंध्र प्रदेश के उस भाग का प्राचीन नाम जो समुद्र के किनारे-किनारे कटक से मद्रास तक फैला है।
३. उक्त प्रदेश का निवासी।
४. सिरस का पेड़। ५. तरबूज।
६. पाकड़ का पेड़। ७. कुटज।
८. कलिंगड़ा नामक राग।
वि० कलिंग देश का।

कलिंद पुं० १. वह पर्वत जिससे यमुना नदी निकली है।
उ०—दूजो स्रोत तरनि तनूजा को कलिंद तें। भू० ६३/१४५
२. सूर्य। ३. बहेड़ा। ४. तरबूज।

—ई स्त्री० कलिंद पर्वत से निकलने वाली नदी। यमुना।
उ०—याही तें कलिंदी सूरनंदिनी बदंत लोग। गं० २१/७

—जा स्त्री० कलिंद पर्वत से उत्पन्न यमुना।
उ०—फूले कमल कलिंदजा। छी० ५७/२३

—दुलारी स्त्री० यमुना।
उ०—बलिहारी कुल सैल सरित जिहिं, कहत कलिंददुलारी। सूर० १०/४०५४/५०३

—नंदिनी स्त्री० यमुना।
उ०—जै जै श्री सूरजा कलिंदनंदिनी। छी० १६३/८०

कलि पुं० १. कलियुग।
उ०—भक्ति-मारग प्रगट करि कलि जननि देहु उपदेस। च० ६२/३१
२. कलियुग प्रवर्तक-देवता।
३. पुराणों के अनुसार क्रोध का एक पुत्र जो हिंसा से उत्पन्न हुआ है।
४. शंकर का नाम।

५. छंद का एक भेद विशेष । ६. तरकश ।
७. कलह ।
उ०—सबै कलि को कुल मानी ।
के० III, १६/६४५
८. पाप ।
उ०—काया कलि कोह मोह माया की कठिन है ।
प० १४/२४०
९. पाँसे का वह पहलू जिसमें एक बिन्दी खुदी हो । १०. बहेड़े का फल ।
वि० १. काला । २. वीर ।
—कर्म पुं० युद्ध । लड़ाई ।
—काल पुं० कलियुग । वर्तमान युग ।
उ०—भौ अकरुन करुनाकरो इहि कपूत कलिकाल ।
बि० ६६१/२७१
—जुग—युग पुं० चार युगों में से एक ।
उ०—कलिजुग हट्यौ मिट्यौ सकल म्लेच्छन को अहमेव । भू० १३०/१२
—जुगी—युगी वि० १. पापी । दुराचारी ।
२. कलियुग का ।
—द्रुम पुं० बहेड़े का पेड़ ।
—मल पुं० कलियुग के पाप ।
उ०—कलिमल-हरन चरन चित धरिकै ।
छी० १७९/७६
—राउ पुं० कलिराज ।
उ०—यही सुनि कै कलिराउ सम्हार्यो ।
दे० I, २७/२०४
—वर्ज्य वि० जिसका करना कलियुग में शास्त्रानुमोदित नहीं है ।
—वृक्ष पुं० बहेड़ा ।
उ०—अक्ष, विभीतक, कर्षफल, संवर्त्तक, कलिवृक्ष ।
नं० २२९/८९

कलिका—कलीका स्त्री० १. विना खिला फूल । कली ।
उ०—अंचल मैं कंचन कमल कलिका से कुच ।
दे० I, १२१/६७
२. एक प्राचीन बाजा । ३. वीणा का मूल ।
४. संस्कृत की पदरचना-विशेष ।
५. कलौंजी । मंगरैल । ६. अंश । ७. मुहूर्त्त ।

कलिकान वि० हैरान । परेशान ।
उ०—कहि को सकै बिन काज को निसि ह्वै सकी कलिकानि । बो० ५/६७

कलित वि० १. ध्वनित । गूंजती हुई ।
२. विदित । ज्ञात । ३. प्राप्त । गृहीत ।
४. शोभित ।
उ०—अलिकुल कलित कपोल ध्याय ।
भू० १/१२८
५. सुन्दर ।
उ०—कलित कमल करकंठ गही (हो) ।
सूर० ९/३३/१६३

कलिधौत पुं० दे० 'कलधूत' ।
वि० सुन्दर ।

कलिनाथ पुं० महामोह ।
उ०—रोप कर्‌यौ कलिनाथ कछू तब ।
के० III, २४/६६५

कलिमल-सरि स्त्री० कर्मनासा नदी ।

कलिया पुं० पकाया हुआ माँस ।

कलियान पुं० दे० 'कल्याण' ।
उ०—सूहे के परस कलियान सरसति है ।
क० १८/६

कलिया— अक० १. कली युक्त होना ।
२. चिड़ियों के नए पंख निकलना ।

कलियारी स्त्री० १ औषधि विशेष ।
२. एक विषैला कन्द ।

कलियुगाद्या (कलियुग+आद्या) स्त्री० माघ की पूर्णिमा तिथि जब से कलियुग का आरम्भ हुआ है ।

कलिल पुं० १. समूह । २. ढेर । ३. दलदल ।
वि० १. मिश्रित । २. घना । ३ दुर्गम ।

कलिवल्लभ पुं० चालुक्य वंशीय एक राजा जिसे ध्रुव नाम से भी जाना जाता है ।

कलिविक्रम पुं० चालुक्य वंशीय एक राजा ।

कलिहारी[1] स्त्री० १. एक विषैला पौधा ।

कलिहारी[2] (कलह+हारी) वि० बहुत अधिक झगड़ा करने वाली स्त्री ।

कली[1] स्त्री० १. फूल की फूलने से पहले की अवस्था ।
उ०—सोन-सरोज-कलीन के खोज ।
दे० I, ३६०/११०
२. अप्राप्तयौवना । किशोरी ।
३. कुर्ते या अँगरखे आदि में लगाया जाने वाला तिकोना कटा कपड़ा ।
४. हुक्के के नीचे का भाग जिसमें पानी भरा रहता है ।

कली[2] स्त्री० १ दीवारों आदि पर होने वाली चूने की पुताई । कलई ।
२. सफेद रंग का एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो पीतल आदि के बरतनों को चमकाने के लिए प्रयुक्त होता है ।

कलीट वि० काला-कलूटा ।

कलीरा (कली+रा) पुं० कौड़ियों, छुहारों आदि को पिरोकर विवाहादि उत्सवों पर उपहार में दी जाने वाली माला ।

कलुख पुं० दे० 'कलुष' ।
—ई वि० दे० 'कलुषी' ।
उ०—कलाधर-कला न कलुखी भई ।
दे० I, ३३६/१०५

कलुष—कलुस पुं० १. मलिनता । २. अपवित्रता । ३. दोष । ४. पाप ।
उ०—किल्बिष, कल्मष, कलुष, कलि ।
नं० १२८/७६
५. क्रोध । ६. कलंक ।
वि० १. मलिन । २. अपवित्र । ३. दोषी । ४ पापी ।
—आई स्त्री० बुद्धि की मलिनता । चित्त-विकार ।
—इत वि० १. मलिन । २. पापी ।
—ई वि० १. मलिन । २. अपवित्र । ३. दोषी । ४. पापी ।
—ता स्त्री० १. मलिनता । २. अपवित्रता ।

कलूटा (काला+टा) वि० (स्त्री० कलूटी) काले रंग का ।

कलूना पुं० एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में उत्पन्न होता है ।

कलेउ—कलेऊ पुं० अल्पाहार । नाश्ता ।
उ०—करत कलेऊ मोहनलाल । छी० ७१/३२

कलेजा पुं० हृदय । दिल ।

कलेटा पुं० एक प्रकार की बकरी जिसके ऊन से कम्बल आदि बनाये जाते हैं ।

कलेवर पुं० देह । शरीर ।
उ०—स्याम मृदुल कलेवर की छवि ।
कु० २३४/८५

कलेवा पुं० दे० 'कलेउ' ।
उ०—जाऊं बलि-बलि अब कीजिए कलेवा ।
कुं० १२८/५४

कलेस[1] पुं० क्लेश । दुःख । कष्ट ।
उ०—बिना ही कपट प्रीति बिना ही कलेस जीति ।
भू० १३६/१५४
—आ पुं० क्लेश ।
—कारी वि० १. झगड़ा करने वाला । २. कष्ट देने वाला ।
—हर वि० दुःख दूर करने वाला ।
पुं० १. प्रियतम । पति । २. भगवान । देवता ।

कलेस[2] (कला+ईश) पुं० कलाओं के स्वामी ।
उ०—कैसे करि कीजियै कलेस नाम धारी है ।
क० ८३/२६

कलेसुर[1] पुं० काले सिर वाला एक पक्षी ।

कलेसुर[2] स्त्री० लड़ाकू स्त्री ।

कलै पुं० १. अवसर । २. इच्छा ।
उ०—बरसै हरषि आपनै कलै । नं० ५/१२६

कलैया स्त्री० मणिबन्ध । कलाई ।

कलोर—कलोरी स्त्री० बछिया । वह गाय जो ब्याई न हो ।

कलौंजी स्त्री० १. मँगरैल । नेपाल और दक्षिण भारत की तराई में होने वाला एक पौधा ।
२. आम का बनाया हुआ एक प्रकार का मीठा अचार ।

कलौंस (काला+औंस) स्त्री० १. कालिमा । कालापन । २. कलंक ।
वि० १. हलका कालापन । २. कलंकित ।

कल्कफल पुं० अनार ।

कल्कि—कल्की (कल्क+इ) पुं० दे० 'कलकी' ।
उ०—सोई कल्की होइहै । सूर० २/३६/१०४

कल्प पुं० १. मांगलिक विधि-विधान ।
२. वेद के छः अंगों में से एक ।
३. हिन्दू पंचांग के अनुसार काल का एक बहुत बड़ा विभाग जो चार अरब बत्तीस करोड़ मानव वर्षों का कहा गया है ।
उ०—कोटि कल्प बीतत नहिं जानत ।
सा० १०६६/८७
४. प्रकरण । विभाग ।
५. रोग-निवृत्ति की एक युक्ति ।
६. शरीर ।
उ०—कल्प कलहंस को कि छीरनिधि छबि वृन्न ।
के० I, ५०/१६६
—तरु पुं० मनोकामना पूर्ण करने वाला एक वृक्ष विशेष ।
उ०—असरन सरन उदार कल्पतरु ।
सा० २६०/२४
—तरोवर पुं० दे० 'कल्पतरु' ।
उ०—कल्पतरोवर-तर बंसीबट ।
सूर० १०/१०३८/४६०
—द्रुम पुं० दे० 'कल्पतरु' ।
उ०—मदनमोहन ठाढ़े कल्पद्रुम की छाँहि ।
छी० ६५/४२
—पादप पुं० दे० 'कल्पतरु' ।

—लता पुं० कल्पतरु ।
उ०—कल्पलता रस-पुंज । गा० १०४५/८३
—वास पुं० त्रिवेणी संगम प्रयाग में माघ मास में महीना भर तक संयम। नियम से रहने को कल्पवास कहते हैं ।
—वृक्ष—वृच्छ पुं० दे० 'कल्पतरु' ।
उ०—दीन्हौं कल्पवृच्छ-तर छाउँ ।
सूर० वि०/१६४/४५
—साखी स्त्री० दे० 'कल्पतरु' ।
—सूत्र पुं० संस्कृत के वे ग्रन्थ जिनमें यज्ञादि कर्मों की विधि वर्णित है ।
कल्पक पुं० १. नाई । २. एक संस्कार ।
वि० १. कल्पना करने वाला । २. रचने वाला।
कल्पकार (कल्प+कार) पुं० काव्य का रचयिता ।
कल्पन[1] पुं० १. रचना । बनाना ।
२. सजाना । संवारना ।
कल्पन[2] पुं० बिलखना । वियोगजन्य व्यथा ।
उ०—कल्पन मेटि प्रेम रस माचैं ।
सूर० २/११/६८
कल्पना स्त्री० १. रचना । २. उद्‌भावना ।
३. मन की वह शक्ति जो परोक्ष विषयों का रूपचित्र उसके सामने ला देती है ।
उ०—जहाँ जोग ते नाम की अर्थकल्पना और ।
म० ३८४/३६३
४. अध्यारोप । ५. मनगढ़ंत ।
कल्पांत (कल्प+अन्त) पुं० सृष्टि का अंत । प्रलय ।
—स्थायी वि० सृष्टि के अंत तक का बना रहने वाला ।
कल्पारंभी (कल्प+आरंभी) वि० प्रशंसा के लिए कार्य करने वाला ।
कल्पित वि० १. मन से गढ़ा हुआ । बनावटी ।
२. कल्पना किया हुआ । ३. सजाया हुआ ।
कल्य पुं० १. प्रातःकाल । २. आने वाला कल ।
३. बीता कल । ४. मदिरा ।
—पाल पुं० मदिरा बेचने वाला ।
कल्या स्त्री० १. मदिरा । २. हर्रे का पौधा ।
३. बरदाने योग्य बछिया । कलोर गाय ।
कल्याण—कल्यान पुं० १. भलाई ।
उ०—ताकौ होइ तुरत कल्यान ।
सूर० १०/४२६८/५७२
२. मङ्गल । शुभ । ३. एक प्रकार का राग ।
उ०—आवत राग कल्यान बजावत ।
सूर० १०/१३६६/५८०

उ०—सुभा हरड़ थोहर सुभा सुभा कहत कल्याण ।
नं० ४७/६०
—इ—ई वि० १. कल्याण करने वाली ।
२. सुन्दरी ।
उ०—अहो तुलसी कल्यानि । नं० १६/१२
कल्लर पुं० १. ऊसर भूमि । २. नोनी मिट्टी । रेह ।
कल्ला[1] पुं० नवांकुर ।
कल्ला[2] पुं० छोटा कुआँ ।
कल्ला[3] (फा०) पुं० जबड़ा ।
—तोड़ वि० मुँहतोड़ ।
पुं० कुश्ती का एक दाँव ।
कल्ला[4]— अक० चोट लगने से दर्द या जलन होना ।
कल्लू वि० काला-कलूटा ।
कल्लोल—कलोल[1] पुं० १. जल की लहर । तरंग ।
उ०—कल्लोलनि बढ़ि समुद उच्छलत ।
प० ५६/६
२. क्रीड़ा । केलि ।
उ०—लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं ।
क० ६४/११४
३. आमोद-प्रमोद ।
अक० १. क्रीड़ा करना ।
उ०—नवल नवल ब्रज नारिनी संग कलोलना ।
गो० १६६/६६
२. तरंगित होना । ३. हिलना-डुलना ।
उ०—लट लोल कपोल कलोल करैं ।
घ० क० २/४०
४. छटपटाना ।
उ०—करत कलोलै मिटै रंचक न साध वा ।
बो० ७/१३६
—आ पुं० १. क्रीड़ा । २. आमोद-प्रमोद ।
—इ स्त्री० क्रीड़ा । केलि ।
—इनि—इनी—नी वि० क्रीड़ा करने वाली ।
स्त्री० नदी ।
कल्व पुं० वास्तु या भवन निर्माण-शिल्प में द्वार के किनारे जो नुकीले बनाए जाते हैं ।
कल्ह पुं० वर्तमान दिन के बाद आने वाला दिन । कल ।
कल्हक स्त्री० एक पक्षी विशेष । चिड़िया ।
कल्हर[1] पुं० ऊसर भूमि ।
कल्हर[2]— अक० कड़ाही में तला जाना ।
कल्हार[1] पुं० कह्लार, एक पुष्प । श्वेत कमल ।
उ०—मानों फूले कुमुद कल्हार । कुं० ४४/२६
कल्हार[2]— सक० कड़ाही में घी अथवा तेल डालकर

तलना ।

कल्हार[३] अक० कराहना ।

कवक पुं० १. ग्रास । २. कुकुरमुत्ता ।

कवच पुं० १. लड़ाई के समय शरीर पर पहना जाने वाला लोहे का बख्तर । तनुत्राण ।
२. मंत्रयुक्त यंत्र । ताबीज ।
उ०—पहिरे गरे गुटिका कवच रचि ।
प० १११/१६
३. पाकड़ का वृक्ष ।

—ई पुं० १. शिव ।
२. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
वि० कवच धारण करने वाला ।

—पत्र पुं० भोजपत्र ।

कवन सर्व० कौन ।
उ०—अब विलंब कारन कवन ?
सूर० वि०/१८०/४२

कवनी वि० दे० 'कमनीय' ।

कवनीय[१] क्रि०वि० किस तरह । किस भाँति ।

कवनीय[२] वि० दे० 'कमनीय' ।
उ०—मध्य कवनीय सैंनीय ठांनी । ना० ८६/२५७

कवयी स्त्री० एक प्रकार की मछली ।

कवर[१]—**कवर** पुं० दे० 'कबर' और 'कबरी' ।
उ०—कवरि छूटि, भई सिथिल नीबी ।
ना० ३१/११

कवर[२] पुं० कौर । ग्रास ।

कवर[३]— सक० सेकना । तनिक सा भूनना ।

कवल[१] पुं० १. कौर । ग्रास । २. कुल्ली ।
३. एक प्रकार की मछली विशेष ।
४. एक तौल विशेष ।
उ०—कालसर्प के कवल तें, छोरत जिनको नाम ।
के० II, १३/१२०

—इत वि० १. ग्रसित । २. खाया हुआ । भक्षित ।

—कृत वि० भक्षित ।

कवल[२] पुं० १. एक प्रकार का फोड़ा ।
२. एक प्रकार का पक्षी विशेष । ३. शूकर ।

—इका स्त्री० फोड़े पर बाँधी जाने वाली पट्टी ।

कवलनवी—**कविलनबी** स्त्री० दिशा बताने वाला यंत्र ।
उ०—कविलनवी लौं, दीठि । बि० ३०/१८

कवलय—**कबलय**—**कुवलय** पुं० नीलकमल ।
उ०—दूख कवलय, कुलटानि । के० I, २३/१३५

कवष पुं० १. ढाल । २. एक ऋषि का नाम ।

कवाँड़—**कवाट** पुं० किवाड़ । कपाट ।

कवाइत (अ०) स्त्री० क़वायद, सिपाहियों द्वारा युद्ध के नियमों के अभ्यास की क्रिया ।
उ०—ते करत कवाइत साइत । प० ६२/२८६

कवाई—**कवाष** पुं० रजाई ।

कवाप (फा) पुं० दोहरा लंबा अंगरखा ।

कवार—**कबार** पुं० १. कमल ।
२. एक प्रकार का जलपक्षी ।
३. क्वार का महीना । ४. किवाड़ ।
उ०—नार लागें लागी मग जोहे हौं, कवार लागी ।
भि० II, २४/४३
५. यशोगान ।
उ०—सुर नर मुनि नहिं करत कबार ।
सूर० १०/३१४०/३१६

कवि—**कवी** पुं० १. वह व्यक्ति जो कविता अथवा काव्य की रचना करता हो । रचनाकार ।
उ०—कबि मति मंद प्रकास । ना० ८/३४१
२. ऋषि । ३. ब्रह्मा । ४. सूर्य ।
५. शुक्राचार्य । ६. उल्लू ।

—कुल पुं० कवि । समाज ।
उ०—कबिकुल लेहु सुधारि । के० I, १४/६३

—ज्येष्ठ पुं० आदिकवि वाल्मीक ।

—त—ता स्त्री० हृदय पर प्रभाव डालने वाला सरस एवं रमणीयार्थ प्रतिपादक पद्य । काव्य ।
उ०—नाहक कवित रचै जो कोई । बो० ५८/५६

—ताई स्त्री० १. कवित्व-शक्ति ।
२. कविता । पद्यमयी रचना ।
उ०—कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं ।
उ० ६६/६६

—त्व पुं० १. काव्य-रचना-शक्ति ।
२. काव्य का गुण ।

—नाह पुं० कविनाथ । कवियों में श्रेष्ठ ।
उ०—प्रकटं मदन अठारहें बरस कहे कविनाह ।
र० ५०८/६६

—पुत्र पुं० १. शुक्राचार्य की एक उपाधि ।
२. भृगु के एक पुत्र का नाम ।

—मत पुं० कवियों की मान्यताएँ एवं सिद्धान्त ।
उ०—रच्यो ग्रंथ कविमत धरे । कृ० ३/४

—राज—राय—राव पुं० १. कविश्रेष्ठ ।
उ०—ताहि बखानत नायका जे प्रबीन कबिराव ।
म० ५/२०१

२. चारण अथवा भाट ।
३. बंगाल के वैद्यों की एक उपाधि ।
—स्वर—श्वर पुं० कविश्रेष्ठ ।

कविक (कवि+क) स्त्री० लगाम ।

कविका (कविक+आ) स्त्री० १. दे० 'कविका' ।
२. केवड़ा । ३. कवई मछली ।

कवित्त—कबित्त पुं० १. एक वर्णिक छन्द ।
२. कविता । काव्य ।
उ०—पचि कीजै सरस कवित्त । के० I, १४/२
३. अक्षरों की एक वृत्ति ।

कविनासा स्त्री० कर्मनाशा नदी ।

कविलास पुं० १. कैलाश पर्वत । २. स्वर्ग ।
उ०—किधौं टूट्यो कविलास । हरि० २५/११

कविलासिका स्त्री० एक प्रकार की वीणा ।

कवीठ पुं० कैथ । कपित्थ ।

कवीला पुं० लाल रंग की एक ओषधि विशेष ।

कवला[1] पुं० दिग्दर्शक यंत्र की वह कील जिस पर सूई घूमती है ।

कवला[2] (कौआ+एला) पुं० कौए का बच्चा ।

कवैं—कवै क्रि०वि० कब ।

कवोष्णा वि० कुनकुना । हल्का गरम ।

कव्य पुं० पितृपक्ष में पितरों को दिया जाने वाला अन्न ।
—वाह पुं० वह अग्नि जिसमें पितृपक्ष में आहुति दी जाती है ।

कश—कष—कस पुं० कोड़ा । चाबुक ।
—आ स्त्री० दे० 'कश' ।

कशारि स्त्री० कर्मकाण्ड में अग्नि जलाने और अग्निकुण्ड बनाने के काम में आने वाली उत्तर वेदी ।

कशिपु पुं० १. बिछावन । २. तकिया । ३. आसन ।
४. वेशभूषा । ५. अन्न । ६. भात ।

कशेरुक—कशेरू पुं० तालों और झीलों के किनारे मिलने वाली मोथे की जड़ विशेष । कसेरू ।

कशेरुका स्त्री० रीढ़ की हड्डी ।

कश्मल पुं० १. मोह । २. पाप । कल्मष ।

कश्मीर—कसमीर पुं० काश्मीर राज्य ।
उ०—कोपि कसमीर तें चल्यो है दल साजि बीर ।
गं० २३६/७०
—ई वि० काश्मीर का । काश्मीर देश में उत्पन्न ।
—ज पुं० केसर । जाफरान ।

कश्य पुं० १. अश्व । २. घोड़े का पुट्ठा । ३. शराब ।

कश्यप पुं० सप्त ऋषियों में से एक ऋषि ।
उ०—तिनमैं प्रथम लियो कश्यप गृह । सा० ४४/५
—मेरु पुं० वह पर्वत, जिस पर काश्मीर प्रदेश बसा हुआ है ।

कष पुं० कसौटी । सान ।

कषाय—कसाय वि० दे० 'कसैला' ।
उ०—नखछत छार, कसाय कुचग्रह ।
सूर० १०/२८२२/२१३
पुं० १. कसैली वस्तु । २. दूषित मनोविकार ।
३. गोंद । ४. काढ़ा । गाढ़ा रस ।
५. सोनापाढ़ा वृक्ष ।

कषैला वि० दे० 'कसैला' ।

कष्ट पुं० १. क्लेश । दुःख ।
उ०—जहँ जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं ।
सूर० वि०/८२/२३
२. वेदना । ३. रोग । ४. आपत्ति ।
—ई वि० दुःखी । पीड़ित ।
स्त्री० प्रसव-वेदना से पीड़ित स्त्री ।
—कल्पना स्त्री० कठिनाई से बैठने वाली युक्ति या कल्पना । विचारों की खींचा-तानी ।
—साध्य वि० कठिनाई से पूरा होने वाला ।

कष्मल पुं० दे० 'कश्मल' ।
उ०—कष्मल, समल, कलंक । नं० १२८/७६

कस[1] पुं० १. बल । जोर । २. चातानीखीं ।
३. अँगिया कसने की डोरी ।

कस[2] क्रि०वि० कैसे ।
उ०—कहो सुजस जग में कस पाऊँ ।
बो० २६/१७२

कस[3]— सक० बाँधना । कसना ।
उ०—कांछै कांस कसि जंघनि । छी० ८४/३७
कसत व०कृ० । कसि भू०कृ० ।
२. परीक्षा करना । परखना ।
उ०—तन सुबरन के कसत यों । र० ६४/२२

कसक[1] स्त्री० १. वेदना । रह-रहकर होने वाली पीड़ा ।
साल । टीस ।
उ०—कढ़ि गई रैयत के मन की कसक ।
भू० ५०४/२२८
२. सहानुभूति । ३. वैर । द्वेष ।

कसक[2]— अक० १. पीड़ा होना । टीस होना ।
उ०—निसि-दिन काँटे लौं करेजें कसकत है ।
उ० ६/६
२. ढरक जाना ।
कसकत, कसकै व०कृ० । कसक्यो भू०कृ० ।

कसकसा वि० (स्त्री० कसकसी) कसकने वाला ।
कसका— सक० पीड़ा देना । टीस पैदा करना । सालना
उ०—मल्लनि की ध्यान आनि हिय कसकायौ जो ।
उ० ८८/८८
कसकती व० कृ० ।
कसकायौ भू० पू० ।
कसकी स्त्री० सी-सी ।
उ०—कसकी नहीं नैकुहूँ काटत ।
सूर० १०/१३३७/५७४
कसकुट पुं० ताँबे और जस्ते के मेल से बनी हुई एक मिश्रित धातु । काँसा ।
कसती स्त्री० छोटा फावड़ा ।
पुं० जमीन का एक नाप ।
कसन स्त्री० १. कसने की क्रिया । २. कसावट ।
३. घोड़े का तंग नामक साज ।
४. कष्ट । पीड़ा ।
कसनई स्त्री० १. काले पंखों, गुलाबी छाती और लाल रंग की चोंच तथा पीठ वाली एक चिड़िया विशेष ।
२. दे० 'कसन' ।
कसना पुं० १. बाँधने की डोरी या अन्य उपकरण ।
२. ठाकुरजी की शय्या की चादर को पायों से बाँधने की रस्सी । उसके दोनों सिरों पर चाँदी या सोने के फूल लटके रहते हैं । यह रामनवमी से प्रबोधिनी तक बाँधा जाता है ।
उ०—गोप सुता कसना अवधि देहि रीझि बकसीस ।
व्र० ११६/६४
कसनि—कसनी स्त्री० १. दे० 'कसन' ।
उ०—बेनी की कसनि रही कसनि सु कारो साँप ।
गं० ७३/२४
२. कंचुकी । अंगिया ।
३. कसौटी । परख । परीक्षा ।
कसब पुं० १. श्रम । मेहनत । २. व्यवसाय । रोजगार
३. वेश्या । रूपजीवा ।
उ०—कसब की तुरकिनि आबताब तुई ती ।
गं० ३४६/१०६
४. वेश्यावृत्ति ।
उ०—कोटिक कसब करैगो । सू० वि० ७५/२१
—**आती** स्त्री० वेश्या । व्यभिचारिणी स्त्री ।
—**इन** स्त्री० वेश्या ।
—**ई** स्त्री० कसबिन । वेश्या ।
कसबल पुं० १. साहस । २. बल । ताकत ।

कसबा (अ०) पुं० बड़ा गाँव । ऐसी बस्ती जो गाँव से कुछ बड़ी और शहर से छोटी हो ।
—**ती** वि० (स्त्री० कसबातिन) कसबे में रहने वाला ।
कसम (अ०) स्त्री० सौगन्ध । शपथ ।
उ०—कसम बल्लीन की लेखे । बो० २२/६३
कसमस स्त्री० १. कसमसाहट । २. संकोच ।
—**ई** स्त्री० दे० 'कसमस' ।
कसमसा— अक० १. कसमसाना । कुलबुलाना ।
२. संकोच करना । हिचकिचाना ।
कसर[1]**—कसरि** (अ०) स्त्री० १. कमी । न्यूनता ।
उ०—अब कछू हरि कसरि नाहीं ।
सू० वि०/१६६/५५
२. त्रुटि । दोष । ३. बैर । दुश्मनी ।
कसर[2] पुं० कुसुम या बर्रे का पौधा ।
कसरत (अ०) स्त्री० १. प्रचुरता । अधिकता ।
२. व्यायाम ।
—**ई** वि० व्यायाम करने वाला । परिश्रमी ।
कसरवानी—केसरवानी पुं० बनियों की एक जाति विशेष ।
कसरहट्टा पुं० कसेरों का बाजार । वह बाजार जहाँ धातु के बर्तन बिकते हैं ।
कसली[1] पुं० एक प्रकार का छोटा फावड़ा, जिसकी धार पतली होती है ।
कसली[2] स्त्री० बिजली ।
उ०—निकसी नभ कसली अनियारी ।
सू० १०/११६४/५४१
कसहना पुं० काँसे के बरतन के टूटे-फूटे टुकड़े ।
कसहड़—कसहड़ी—कसहनी स्त्री० काँसे या पीतल का चौड़े मुँह का बरतन । कसैड़ी ।
कसा[1] स्त्री० दे० 'कशा' । कसौटी ।
कसा[2]— अक० कसैला हो जाना । काँसे, ताँबे या पीतल के पात्र के प्रभाव से किसी वस्तु का बिगड़ना ।
कसाई (अ०) पुं० (स्त्री० कसाइन—कसाइनी)
१. हिंसक । पशुओं को मारकर उनके माँस का व्यापार करने वाला व्यक्ति ।
२. निर्दय या निष्ठुर व्यक्ति ।
उ०—कारी कुरूप कसाइनी गे सु ।
प० ३८३/१६२
कसाकसी स्त्री० मतभेद । आपस में होने वाली खींचा-तानी या द्वेष ।

कसाकी स्त्री० कसक । वेदना ।
कसामसी स्त्री० धक्का-मुक्की । स्थान की संकीर्णता ।
कसार[१] पुं० घी में आटा भूनकर शक्कर आदि मिलाकर बना हुआ पदार्थ । पंजीरी ।
कसार[२] पुं० कासार । छोटा तालाब । सरोवर ।
उ०—फूले कमल कसार । नं० ३४८/११७
कसाला—कसालो पुं० १. कष्ट ।
उ०—ऐसेई कसाला मैं परी है लंक ।
हरि० १७४/१०२
२. श्रम । मेहनत ।
कसाव[१] पुं० दे० 'कषाय' ।
कसाव[२] पुं० खिचाव । तनाव ।
—ट स्त्री० खिंचाव । तनाव ।
कसावड़ा पुं० कसाई ।
कसासी वि० कसौटी की तरह की कसने वाली ।
कसि—कसी स्त्री० १. जमीन की एक नाप ।
२. गवेधुक नाम का पौधा । ३. एक यंत्र ।
क्रि०वि० क्यों । कैसे ।
कसिकाई स्त्री० कसाईपन । हिंसक वृत्ति ।
कसिपु स्त्री० दे० 'कशिपु' ।
उ०—कसिपु, तल्प, शय्या, शयन, संस्तर पुनि शयनीय । नं० ४७/७०
कसिया[१] पुं० भूरे रंग का पक्षी-विशेष ।
कसिया[२]— अक० कसना । परीक्षा करना ।
उ०—सोनो सो तौं नाहीं कोऊ सोऊ कसियत है ।
गं० १६५/५६
कसियत व०क्रि० ।
वि० कसने वाला ।
उ०—गउर स्याम ललित अंग, भुज-लतानि कसिया ।
ना० १२१/१७०
कसिवान पुं० सोने को परखने वाली कसौटी ।
उ०—मूल तोल कसिवान बनि काइथ लिखत अपार । के० I, १६/१७८
कसीट— सक० १. कसना । २. रोकना ।
कसीदा[१] (फा०) पुं० कपड़े के ऊपर रंगीन तागों से बूटा काढ़ने का काम ।
उ०—कंचुकी सोभित कसीदा सुदर आजु लौं देख न जान्यो । गो० ४२/२०
कसीदा[२] (अ०) पुं० उर्दू में कविता की एक शैली ।
कसीर वि० १. बहुत अधिक । प्रचुर ।
२. भूल करने वाला ।
कसीला वि० कसकपूर्ण ।

उ०—निरख कसीले बदन को छुईमुई ह्वै जात ।
र० ६/३४२
कसीस[१] पुं० एक लौहजन्य पदार्थ । कसीस ।
कसीस[२] (फा०) स्त्री० १. कशिश । खिंचाव ।
उ०—गंग कसीस दई सरपंजर, कुंजर प्रानहु सुक्कत हाड़े । गं० ३६६/११४
२. निर्दयता ।
सक० १. खींचना । २. चढ़ाना या तानना ।
उ०—साँस हियें न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत । घ०क० ११७/१०४
कसीसत व०क्रि० ।
कसुबाछठ स्त्री० श्रावण शुक्ला षष्ठी । इस दिन भगवद्-भक्त भगवान के अपङ्ग उबटन आदि लगाकर कुसुंभी रंग की पोशाक पहिनाते हैं ।
कसूँभा—कसूँभी वि० 'कुसुम' के रंग का ।
उ०—चढ़ी तेरी तेग पै कसूंभनि की लाली सी ।
हरि० १६/११३
कसून पुं० कंजी आँख का घोड़ा । सुलेमानी घोड़ा ।
कसूमर पुं० कुसुम ।
कसूमी वि० लाल । कुसुंभी के रंग का ।
कसूर (अ०) पुं० १. अपराध ।
उ०—करत कसूर कैसे कासी करवत री ।
दे० I, ६८५/१६२
२. दोष ।
उ०—बट्टा काटि कसूर भरम को, फरद तलै लै डारै । सूर० वि०/१४२/३६
कसेड़ी स्त्री० एक कसकुट या पीतल का बड़ा बर्तन । टोकनी ।
कसेरा पुं० (स्त्री० कसेरिन) काँसे, पीतल आदि के बर्तन बनाने व बेचने वाले व्यक्ति । ठठेरा ।
उ०—धन-धन बृंदा बिपुन कसेरा । ना० २३/२१
कसेरु पुं० दे० 'कशेरु' ।
कसैया[१] पुं० बधिक । कसाई ।
कसैया[२] वि० १. बाँधने वाला । जकड़ने वाला । कसने वाला ।
उ०—कत्ता के कसैया महावीर सिवराज तेरी ।
भू० ४६१/२१८
२. परखने वाला । जाँचने वाला ।
कसैला वि० १. कषाय स्वाद वाला । आँवला, सुपारी आदि के जैसा स्वाद वाला । २. सुरभित ।
—पन पुं० कसैला होने का भाव ।

कसैली स्त्री० सुपारी ।

कसोरा (काँसा+ओरा) पुं० १. काँसे का प्याला। कटोरा । २. मिट्टी का प्याला । सकोरा ।

कसौंजा पुं० एक कड़ुआ गरम कफ, बात और खाँसी नष्ट करने वाला पौधा । यह वर्षा ऋतु में उगता है । यह बवासीर की दवा में भी काम आता है ।

कसौंदी[1] स्त्री० १. दे० 'कसौंजा' ।
२. तितऊ चकवड़ की एक जाति ।

कसौटिया स्त्री० दे० 'कसौटी' ।
उ०—मनो कनक कसौटिया पर, लीक सी लपटाति । सूर० १०/१८४/२६३

कसौटी स्त्री० एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर सोना घिसकर परखा जाता है ।
उ०—काम सराफ कसौटी लै हाथ सु ऐंचि कसी मनो कंचन-लीके । गं० १३६/४२

कसौती स्त्री० दे० कसनी ।
उ०—एकै लिये कर में कसौनी सो कसी नहिं जाय । बो० ४२/६५

कस्त (अ०) पुं० १. इरादा । विचार ।
२. दृढ़ निश्चय । संकल्प ।
उ०—यह कस्त करि आए यहाँ कै रन हय्यारन भेठबी । प० ६५/१४
३. कड़ा ।
उ०—समस्त लस्त पस्त ह्वै सिकस्त कस्त ओड़हीं । प० ७७/२८४

कस्तरी स्त्री० मिट्टी का एक चौड़े मुँह वाला बर्तन जिसमें दूध उबाला या रखा जाता है ।

कस्तूर पुं० १. वह हिरन जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है ।
२. बीवर नामक जन्तु विशेष से प्राप्त होने वाला एक सुगन्धित पदार्थ ।
—आ पुं० हिरन की नाभि से निकलने वाला सुगन्धित पदार्थ ।
—इका—ई स्त्री० कस्तूरी मृग ।
उ०—रेनु-मंडित कुटिल अलक सोभा कस्तूरिका तिलक भाल की । कुं० १८५/७२

कस्यप पुं० १. दे० 'कश्यप' ।
उ०—भारद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कस्यप मुनि ।
२. एक जातीय उपाधि । कश्यप-गोत्र ।
—ई वि० कश्यप गोत्री ।
उ०—द्विज कनोज कुल कस्यपी रतिनाथ को कुमार । भू० २६/१३३

कस्स पुं० दे० 'कष्ट' ।
उ०—कस्स ससह न सरस्स ससमिट सु अस्स रसट-पट । प० १२०/२६१

कस्सी स्त्री० १. मालियों का छोटा फावड़ा ।
२. जमीन नापने की रस्सी ।

कहँ—कहँवा—कहवाँ क्रि०वि० कहाँ । किस जगह ।
उ०—गोबिंद सौं पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै । सूर० २/९/६७

कह[1] क्रि०वि० क्या ।
उ०—कह पांडव कैं घर ठकुराई ? सूर० वि०/१६/६

कह[2]— सक० बोलना । उच्चारण करना ।
उ०—कहत सखा हरि ! हलधर ! भोजन इहि कीजै । छी० ७२/३२
—वोल स्त्री० बदनामी या कलंक की चर्चा । निन्दा ।

कहकहा—कहकह्यो (फा०) पुं० (स्त्री० कहकही) अट्टहास । ठहाका । जोर की हँसी ।
उ०—अहै सखी मैं कहकह्यो, जाते गो पिय रूसि । कु० ३८५/८२

कहगिल (फा०) स्त्री० भूसा मिला हुआ मिट्टी का गाढ़ा गारा ।

कहत (अ०) पुं० अकाल । दुर्भिक्ष ।

कहन—कहनि स्त्री० १. कथन । उक्ति ।
उ०—सुनहु सुर वेइ करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल । सूर० १०/५६८/३७६
२. वचन । ३. कहावत । ४. कविता ।
—आउत—आवत—आवति स्त्री० कहावत । लोकोक्ति ।
उ०—ठाकुर या कहनावत ओर की साँचियै आजहू आनि परी है । ठा० ४५/१३
—ई स्त्री० १. कथन । २. कहानी । कथा ।
—ऊत—ऊति स्त्री० कहावत ।
—हारी वि० कहनेवाली ।
उ०—रानी कमला कौं पिय-आगम कहन हारी । क० २/१

कहर[1]—कहरु (अ०) पुं० १. आपत्ति । विपत्ति ।
उ०—हजरत नबी कहर फरमाया । कानी को काना वर आया । बो० ४३/५५
२. विकट क्रोध । प्रकोप । ३. हलचल ।
—ई वि० मुसीबत ढाने वाला ।

उ०—लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है। कवि० २६/३३

कहर[२] वि० अगम। अपार।

उ०—बन-बेली प्रफुलित कलिनि कहर के।
सूर० १०/३०/२२०

कहर[३]—अक० कराहना। व्याकुल होना।

—न स्त्री० कराहना।

कहरवा पुं० १. आठ मात्राओं की एक ताल।
२. उक्त ताल पर होने वाला नृत्य।

कहल स्त्री० १. कष्ट। बेचैनी। २. उमस।

उ०—ग्रीषम कहल कहा मान के महल बैठी।
प० ७६/३२४

अक० १. गरमी या उमस से व्याकुल होना।
२. अकुलाना।

कहला—अक० किसी बात को दूसरे व्यक्ति के द्वारा कहलवाना।

कहवत स्त्री० १. दे० 'कहावत'।
२. कहानी। आख्यायिका। ३. कथन।

उ०—राधिका की कहवत कहि दीजौ मोहन सों।
प० ४८६/१८३

कहवर्त पुं० कैवर्त। केवट। माँझी।

कहवाँ क्रि०वि० कहाँ।

कहवा[१] (अ०) पुं० एक पेड़ के बीज जिन्हें भूनकर उनसे बनाया हुआ चाय की तरह का पेय पदार्थ।

कहवा[२]—सक० कहलाना।

कहाँ क्रि०वि० किस जगह। किस स्थान पर।

उ०—कहाँ तें दुखी सो बैरी आडें आनि है भयो।
घ० क० ३०१/१६६

कहा[१] सर्व० क्या।

उ०—कहा कहों री! आली! छी० १८७/७६

कहा[२] पुं० १. कथन। बात। २. आज्ञा।
स्त्री० कथा। चर्चा।
—ई स्त्री० कथन। उक्ति।
—कही स्त्री० कहा-सुनी। विवाद।
—सुना पुं० अनुचित कथन। अनजाने में कोई अप्रिय या अनुचित बात या व्यवहार का होना।
—सुनी स्त्री० वाद-विवाद। आपस में कही या सुनी जाने वाली अप्रिय या अनुचित बातें।

कहानी स्त्री० १. किस्सा। कोई झूठी या मनगढ़ंत बात।
२. कथा।

उ०—पुरजन-पुंज मैं कहानी सी धौं कौन काज।
घ० क० ४६८/२६८

कहार पुं० (स्त्री० कहारिन, कहारी) एक जाति विशेष जिसकी जीविका पालकी ढोने, पानी भरने, बँहगी उठाने और मछली पकड़ने आदि से होती है।

उ०—काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं।
कवि० २३/२१

कहारा पुं० बड़ा टोकरा। दौरा।

कहाल पुं० एक प्रकार का बाजा।

कहावत—**कहाउति** (कहा+बात) स्त्री० उक्ति। लोकोक्ति।

कहियाँ[१] क्रि०वि० किस जगह। कहीं।

उ०—नित नउतन सब लोग सनेही, प्रीत रीत यह और न कहियाँ। ना० ६५/३०

कहियाँ[२] पुं० संदेश। बात।

उ०—दूती एक गई मोहिनी पै, जाइ कह्यौ यह प्यारी कहियाँ। सूर० १०/२७६३/२०७

कहिया क्रि०वि० कब। किस दिन।

कहीं—**कहिं** क्रि०वि० किस स्थान पर। किस जगह।

कहु क्रि०वि० १. कहीं।

उ०—अबलौं कहुँ देखे नहीं मैंने। भ्र० ६०८/४६

२. कभी।

—क क्रि०वि० १. कहीं। २. कभी।
—कहुँ क्रि०वि० १. कहीं-कहीं।

उ०—कहुँ-कहुँ कुमकुम की काँति।
छी० १६४/७०

२. कभी-कभी।

कहुँचौ स्त्री० कलाई।

उ०—मारै प्रबल पमारै गहि कहुँचौ।
प० २०६/२६

कहुवा पुं० अर्जुन वृक्ष।

कहूँ क्रि०वि० कहीं।

उ०—आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
घ० क० ६७/६४

कहूँनी स्त्री० दे० 'कुहनी'।

कहैया वि० कहने वाला।

काँ क्रि०वि० कहाँ।

काँइ-काँइ पुं० शोर।

उ०—संपति में कांइ कांइ विपति में झाइ झाइ।
दे० १/१७/३२

काँइयाँ—**काइयाँ** वि० चालाक। धूर्त।

काँई—**काये** अव्य० क्यों।

काँक पुं० कँगनी नामक अन्न विशेष।

काँकड़ा पुं० कपास का बीज। बिनौला।

काँकर—काकर पुं० कंकड़।

उ०—पटु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग। बि० ६१६/२५६

—ई स्त्री० छोटा कंकड़।

काँ-काँ पुं० कौए की बोली—काँव काँव।

उ०—जैसें काग काग के मूएँ कां कां करि उड़ि जाहीं। सूर० १/३१६/८७

काँख[1] स्त्री० बाहुमूल के नीचे का गड्ढा। बगल।

उ०—कूबरी काँख जो दाबे फिरै। भि० I, ७३/१०६

—ड़ी स्त्री० बगल।

उ०—कौंठा बसी निस कांख डियों। ना० ४६८/४१३

काँख[2] अक० १. कष्ट सूचक 'उँह' आदि शब्द मुँह से निकलना।

२. मल अथवा मूत्र को निकालने के लिए पेट की वायु को प्रेरणा देना।

काँखासोती स्त्री० दुपट्टा डालने की एक शैली जिसमें बाँऐ कंधे से पीठ पर ले जाकर काँख के नीचे से फिर बाँए कंधे पर उसे ले जाते हैं।

काँखी वि० आकांक्षी। किसी प्रकार की कामना वाला।

काँगड़ा[1] पुं० एक पक्षी विशेष।

काँगड़ा[2] पुं० हिमाचल का एक पहाड़ी स्थान।

कांगड़ी स्त्री० एक प्रकार की छोटी अँगीठी जिसे कश्मीरी लोग गले में लटकाते हैं।

कांगणि स्त्री० कंगुनी, अनाज विशेष।

उ०—स्यामा कांगणि अस्म निसि स्यामा पीपल नाम। नं० ४५/६०

काँगनी स्त्री० छोटा कँगन।

कांगही स्त्री० दे० 'कंघी'।

कांगुरा पुं० दे० 'कंगूरा'।

काँग्नी स्त्री० धूनी। अँगीठी।

काँच[1] स्त्री० १. लाँग। २. गुदेन्द्रिय। गुदाचक्र।

काँच[2] पुं० काँच।

उ०—काँच-फलकनि ज्यों अनेक एक सोई है। उ० ३८/३८

—आ वि० १. कच्चा। अपक्व।

२. अदृढ़। दुर्बल।

उ०—प्रेम न हूजै काँचे, प्रेम काँचे जो लौं तो लौं साँचे क्यों परत हो। गं० १८८/५६

—मणि—मनि पुं० काँच की मणि। स्फटिक।

उ०—पाई आगें काचमनि, सो लीनी पी लागि। के० III, ८४/७३६

कांचन—काञ्चन पुं० १. सोना। २. कचनार। ३. चंपा। ४. नागकेसर। ५. गूलर। ६. धतूरा।

कांचनक पुं० १. हरताल। २. चम्पा।

कांचनार पुं० दे० 'कचनार'।

कांचनी स्त्री० १. हल्दी। २. गोरोचन।

काँचरी—काँचली—काँचुली—काँचुरी स्त्री० १. साँप की केंचुली। २. चोली। अंगिया।

उ०—काँचुली सनाह जे पिसाची बिन नाह की। हरि० १०३/४२

कांची[1]**—काञ्ची** स्त्री० १. करधनी। मेखला।

उ०—कटिपट सुपट सुबेस, कल कांची सुभ मंडई। के० II, २३/२४१

२. दक्षिण भारत का एक तीर्थ, जिसका आधुनिक नाम काँजीवरम् है।

—कल्प पुं० करधनी।

—गुणस्थान पुं० कमर।

—पद पुं० १. कमर। २. नितम्ब।

—पुर पुं० काँजीवरम्।

काँची[2] वि० १. अपरिपक्व। कच्चा।

उ०—'सूर' एकहू अंग न काँची, मैं देखी टकटोरि। सूर० १०/४१२८/५२३

२. झूठी। बनावटी।

उ०—कहैं बनै छाँड़ो चतुराई, बात नहीं यह काँची। सूर० १०/१८६०/२६

३. अस्थिर।

कांचू[1] पुं० दे० 'काँचरी'।

कांचू[2] वि० काँच रोग का रोगी।

काँछ पुं० धोती का वह भाग जो पेड़ू पर से होकर पीछे खोंसा जाता है। लाँग।

उ०—सीस टिपारो मोर-पच्छवा कांछे कांछ कसि जंघनि। छी ७३, ०८४

—सक० कमर में लपेटे हुए वस्त्र के लटकते भाग को जाँघों पर से ले जाकर कसकर बाँधना। सनाद्ध। पहनना।

उ०—सीस टिपारो मोर-पच्छवा कांछे कांछ कसि जंघनि। छी० ८४/३७

काँजिक पुं० १. दे० 'कांजी'।

२. मही या दही का पानी। छाछ।

३. चावल का माँड़ जो उठ गया हो।

कांजी स्त्री० १. एक प्रकार का खट्टा रस जो कई प्रकार से बनाया जाता है जिसमें अचार और बड़े आदि पड़ते हैं।

उ०—पावक तें पारो काँजी छिपे हू विचारौ छीर।
घ० क० २१३/१५६

२. मट्ठा या दही।

कांजीवरम् पुं० दे० 'कांची'।

काँट—काँटा—काँटो पुं० १. सुई की भाँति नुकीले अंकुर जो किसी पेड़ की डालियों में निकल आते हैं और बड़े कठोर हो जाते हैं। कांटा।

उ०—तिहि पैंडे कहा चलियै कबहूँ जिहि काँटो लगै पग पीर दुकोहों। के० I, ५/५६

२. मोर, मुर्गा, तीतर आदि पक्षियों के पंजे के ऊपर का कांटा जिससे वे लड़ते समय एक दूसरे को मारते हैं।

३. मैंना आदि पक्षियों के गले में निकलने वाला काँटा।

४. जीभ में निकलने वाली छोटी नुकीली फुन्सियाँ।

५. मछली पकड़ने की कँटिया।

६. कील। नाक का आभूषण-विशेष।

७. गुणनफल की शुद्धता की परीक्षा के लिये की जाने वाली क्रिया विशेष।

८. प्रतिद्वंदिता के भाव से लड़ी जाने वाली कुश्ती।

९. दरी में बेलबूटे काढ़ने की शैली।

१०. आतिशबाजी। ११. तराजू।

काँटा² पुं० जमुना के किनारे की निकम्मी भूमि।

काँटी स्त्री० १. छोटा काँटा। छोटी-तराजू।

२. सुनार की छोटी काँटेदार तराजू।

३. छोटी कील। अँकुड़ी।

४. साँप पकड़ने की लकड़ी-विशेष।

५. बेड़ी।

६. धुनने के बाद बिनौलों के साथ रह जाने वाली रुई।

७. डोरे में कंकड़ बाँधकर खेलने का एक खेल। लंगर।

काँठा¹ पुं० १. गला। २. तोते के गले की रेखा-विशेष।

३. किनारा। तट।

काँठा² पुं० जुलाहों की एक बालिश्त लंबी, बुनने की लकड़ी।

कांड¹—काण्ड पुं० १. बाँस, नरकट, ईख आदि का पोर।

२. सरकंडा। ३. तना।

४. तने का वह भाग जहाँ से ऊपर चलकर डालियाँ निकलती हैं।

५. डाली। शाखा। ६. गुच्छा।

७. धनुष के मध्य का भाग।

८. किसी ग्रंथ का कार्य या विषय का विभाग जैसे —कर्मकांड।

९. किसी ग्रंथ का विभाग।

१०. समूह।

११. हाथ अथवा पैर की लंबी हड्डी अथवा नली। १२. डाँड। बल्ला।

१३. तीर। बाण।

उ०—जैसे कांड सु बधिक चनकटि होत हैं बिसु-सानें। कुं० ३३६/११२

१४. खेत की माप विशेष। १५. खुशामद।

१६. जल। १७. निर्जन-स्थान। एकांत।

१८. अवसर। १९. व्यापार। २०. लीला।

२१. प्रपञ्च। २२. घटना।

वि० कुत्सित। बुरा।

—कार पुं० तीर बनाने वाला। कार्य करने वाला।

—त्रय पुं० तीनों कांडों का समूह। वेद के तीन विभाग—कर्म कांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड।

—पृष्ठ पुं० १. भारी धनुष।

२. कर्ण के धनुष का नाम।

३. धनुष बनाने वाला ब्राह्मण।

४. सिपाही। सैनिक।

५. अपने कुल को छोड़ अन्य कुल में मिलने वाला व्यक्ति।

—ऋषि (काँडर्षि) वेद के किसी काण्ड (कर्म, उपासना, ज्ञान) पर विचार करने वाले ऋषि।

काँडी स्त्री० १. वह ओखली, जिसमें धान मूसल से कूटा जाता है।

२. हाथी के पैर के तलुबे का गहरा घाव।

काँड़ा पुं० १. पेड़ों का कृमि रोग विशेष।

२. लकड़ी का कीड़ा। ३. दाँत का कीड़ा।

काँड़² सक० १. रौंदना। कुचलना।

२. धान को कूट कर चावल और भूसी को अलग करना।

३. खूब पीटना। मारना।

कांडीर वि० बाणधारी ।

कांत पुं० १. पति । २. श्रीकृष्ण का एक नाम ।
३. चन्द्रमा । ४. विष्णु । ५. शिव ।
६. कार्तिकेय । ७. बसन्त ऋतु । ८. कुंकुम ।
९. औषधि के काम में आने वाला लोहा विशेष ।

—पाषाण पुं० चुंबक पत्थर । अयस्कान्त ।

कांता स्त्री० सुन्दर स्त्री । प्रिया । पत्नी ।

कांतार पुं० १. भयंकर स्थान । २. सघन जंगल ।
उ०—कानन, विपिन, अरन्य, बन गहन, कक्ष कांतार । नं० १७२/८३
३. बांस । ४ छेद ।
५. ईख की जाति विशेष ।

कांतासक्ति (कांता+आसक्ति) स्त्री० ईश्वर को पति रूप में ग्रहण कर उपासना करने की शैली ।

कांति स्त्री० १. दीप्ति । चमक ।
उ०—भूपन सकल दलमलि हलचल भए बिदु लाल भाल फैल्यौ कांति रवि रोकी सी ।
भू० ५४८/२४०
२. सौंदर्य । शोभा ।
३. चन्द्र की षोडश कलाओं में से एक ।
४. चन्द्र की एक स्त्री का नाम ।
५. आर्या छन्द का भेद विशेष ।

—सुर पुं० १. देवताओं की कांति । २. सोना ।

कांथरि स्त्री० दे० 'कंथा' ।

कांद— अक० रोना । चिल्लाना ।

काँदव पुं० दे० 'काँदा[२]' ।
उ०—भादव में दधि काँदव की हरि सोभ मची न सकै कहि बानी । हरि० १२/५४

कांदा[१] पुं० १. प्याज की तरह गांठ वाला गुल्म विशेप ।
२. प्याज ।

कांदा[२]—काँदो—काँदौ पुं० कीचड़ ।
उ०—जियहिं क्यों कमलिनि काँदो हीन ।
सूर० १०/३३६४/३६१

कांध—कांधा—काधा पुं० कंधा ।
उ०—देहु कान्ह कांधे कौ कंबर । कुं० ९३/४३

सक० १. सँभालना । सिर पर लेना । भार लेना ।
२. स्वीकार करना । अंगीकार करना ।
उ०—जाकी बात कहौ तुम हमको, सु धौ कहौ को कांधी । सूर० १०/३५४०/३८०

कांधि क्रि०वि० दृढ़तापूर्वक ।
उ०—कौन करनी घाटि मो सो, सो करौं फिरि कांधि । सूर० वि०/१९९/५४

कांधर पुं० कृष्ण ।

काँप[१] स्त्री० १. बाँस आदि की पतली, लचीली तीली ।
२. पतंग की धनुषाकार तीली ।
३. हाथी का दाँत । ४. कर्णफूल ।
५. कलई । चूना ।

काँप[२]— अक० हिलना । थरथराना ।
उ०—तन भयो सिथल चरन काँपत ।
ना० ५६६/४३९

काँपत व०कृ० । काँप्यौ भू०कृ० ।

कांपिल्य—कांपिल्ल पुं० फर्रुखाबाद जिले के अन्तर्गत कायमगंज तहसील में आधुनिक कंपल नामक कस्बा । प्राचीन काल में यह राजधानी था ।

कांबोज पुं० देश विशेष ।
वि० काँबोज देश का ।

काँब-काँय पुं० १. दे० 'काँ-काँ' ।
२. झगड़ा जिसमें शब्दों से लड़ाई हो ।

कांमणगारौ वि० (स्त्री० कांमणगारी) वशीकरण करने वाला ।
उ०—रूप ठगारौ कांमणगारौ, मोहै मन सगलाँ रो ।
ना० ५२९/४२४

काँवर—काँवरि स्त्री० बहँगी । बाँस के दोनों सिरों पर वस्तु लादने के लिए छीकों से या कंडियों से युक्त साधन ।
उ०—रिझवारिन के मनों, मन भरि काँवरि लीन ।
ना० ३/२६१

—इया पुं० काँवर लेकर चलने वाला व्यक्ति ।

काँवरा वि० व्याकुल । भौचक्का ।

काँवरू[१] पुं० कामरूप देश । आधुनिक गुवाहाटी नाम का असम प्रदेश का एक नगर ।

काँवरू[२] पुं० कमल रोग ।

काँवाँरथी (सं० कामार्थी) पुं० वह जो किसी तीर्थ में कामना से काँवर ले जाय ।

कांस पुं० ऊँची और ढालू भूमि में उत्पन्न होने वाली लम्बी पैनी घास ।

कांसा—कांसौ पुं० ताँबा और जस्ते के मेल से बनी हुई एक धातु । कसकुट ।
उ०—काँसे की दोहनी स्याम पाट की ललित लोइ ।
के०

कांसुला पुं० कांसे का चौकोर टुकड़ा जिस पर रखकर सुनार लोग सोने, चांदी के पत्तरों को गोल बनाते हैं।

कांस्य पुं० दे० 'कांसा'।

—कार पुं० कसेरा। ठठेरा।

—ताल पुं० मंजीरा। झांझ।

—दोहनी स्त्री० कांसे का पात्र जिसमें दूध दुहते हैं।

का[१] प्रत्य० सम्बन्ध कारक का चिन्ह।

का[२] सर्व० १. क्या।

उ०—लागी किधौं बलाय वृथा बाद सो का करत। बो० १८/६३

२. कौन सा।

उ०—करिये वियोग को का उपाय। बो० १०/८२

काइ[१] स्त्री० दे० 'काया'।

काइ[२] सर्व० क्यों।

उ०—जो पैं पतिव्रता व्रत तेरैं, जीवति बिछुरी काइ? सूर० ९/७७/१७५

काइफर पुं० कायफल नामक औषधि विशेष।

काइथ पुं० (स्त्री० काइथी—**कायथनी**) दे० 'कायस्थ'।

उ०—मूल तोल कसिवान बनि काइथ लिखत अपार। के० I, १६/१७८

काई[१] स्त्री० १. सेवार। पानी या सील में होने वाली एक प्रकार की महीन घास।

२. मैल। कालापन। ३. कलंक।

काई[२] क्रि०वि० कुछ भी।

काई[३] पुं० लोहे तांबे आदि धातुओं का मुर्चा।

मु० काई छुड़ाना—(१) कलङ्क दूर करना (२) दुःख-दरिद्र दूर करना।

मु० काई लगना—निष्क्रिय होना।

मु० काई सा फट जाना—तितर-बितर हो जाना। छँट जाना।

काउ—काऊ क्रि०वि० किसी।

उ०—बारि-भव-सुत भावरी अब न करिहौं काउ। सूर० १०/२०८५/६८

सर्व० कोई।

उ०—ज्यों बुधि सों सुघराई रचै काऊ, सारदा कों कबिताई सिखावै। घ० क० ४५/६४

काए क्रि०वि० क्यों। किसलिए।

काक[१] पुं० कौआ। कागा।

उ०—कोटि कतिकाल कलमष सब काक जिनि। क० ६४/११४

—गोलकु स्त्री० कौए की आंख की पुतली।

उ०—फिरतु काकगोलकु भयो दुहूँ देह ज्यों एकु। बि० ४४७/१८३

—पद पुं० १ वह चिह्न जो छूटे हुए शब्द के स्थान को जताने के लिए पंक्ति के नीचे बनाया जाता है और वह शब्द ऊपर लिख दिया जाता है।

२. कौए के पैर का परिमाण।

—बलि स्त्री० श्राद्ध में कौओं को दिए जाने वाले भोजन का भाग। कागौर।

—भीरू पुं० उल्लू।

काककंगु स्त्री० काकुन। चेना। कँगनी।

काककंठ पुं० नीलकंठ।

काकचिंचिका स्त्री० गुंजा।

उ०—काकचिंचिका, कृष्णला, गुंजा करति प्रनाम। नं० २४८/६१

काकजंघा स्त्री० १. मसी। चकसेनी नामक औषधि विशेष।

२. गुंजा। घुँघची।

काकड़ासिंगी स्त्री० औषधि विशेष।

काकणी स्त्री० घुँघुची।

काकतालीय वि० संयोगवश होने वाला।

काकदंत पुं० असम्भव बात।

काकध्वज पुं० बड़वानल।

काकनी स्त्री० कंकण।

उ०—झाँकनी दै कर काकनी की सुने। देव

काक पखा—काक पच्छ—काकपक्ष पुं० बालों के पट्टे, यह कनपटियों के पास दोनों तरफ रहते हैं। जुल्फ।

उ०—काछन कछोटी सिर छोटी छोटी काक पक्ष सातहीं बरस किनि जुद्ध अभिलाख्योई। के० I, ११/१८३

काकपदी स्त्री० एक प्रकार की औषधि।

काकपीलु पुं० कुचला। एक जड़ीबूटी।

काकपुच्छ—काकपुष्ट पुं० कोयल।

काकफल पुं० १. नीम का पेड़। २. निबौरी।

काकवन्ध्या स्त्री० वह स्त्री जिसके एक ही बार सन्तान होकर रह जाय फिर दूसरी बार न हो।

काकभुशुण्डि—कागभुसुंडि पुं० लोमश ऋषि के शाप से कौआ हो जाने वाले एक ब्राह्मण मुनि, जो बड़े राम-भक्त तथा रामायण के वक्ता थे। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में इनकी विस्तृत कथा है।

काकमाची स्त्री० मकोय।

काकरव पुं० डरपोक व्यक्ति। वह व्यक्ति जो जरा सी बात से डर जाय और कौए की तरह काँव-काँव मचाने लगे।

काकरासिंगी स्त्री० दे० 'काँकड़ासिंगी'।

काकरुक पुं० १. स्त्री का क्रीत दास। २. उल्लू।

काकरेजा (फा०) पुं० १. गहरे नीले रंग में रंगा हुआ एक प्रकार का रंगीन कपड़ा।
२. लाल और काले रंग को मिलाकर रँगी साड़ी, कोकची रंग की साड़ी।
उ०—काकरेजा पहिरि करेजा काढ़ि लैं गई। गं० १०३/३३

काकरेंजी पुं० लाल और काला मिश्रित रंग। काकोची।

काकल पुं० कौआ। टेंटुआ।

काकली स्त्री० १. मधुर ध्वनि। कलनाद।
उ०—कानपरी कोकिला की काकलिनु कलित। दे० I, २०७/८१
२. सेंध लगाने की सबरी।
३. साठी धान।
४. गुंजा। घुँघची।
५. कौए की स्त्री।
६. संगीत का वह स्थान विशेष जिसमें सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगाते हैं।
—रव पुं० कोयल।
—निषाद पुं० विकृत 'निषाद' स्वर।

काकलीड्राक्ष पुं० १. छोटा अंगूर। २. किशमिश।

काकशीर्ष पुं० वकपुष्प। अगस्त का पेड़ या पुष्प।

काकसेन पुं० वह पुरुष जो किसी पदाधिकारी के अधीन रहकर, जहाज और मजदूरों की देखभाल करता है। जमादार।

काका[1] पुं० (स्त्री० काकी) पिता का भाई। चाचा।
उ०—माता सब काकी करी विधवा एकहि बार। के० II, २/४१३

काका[2] पुं० कौआ।

काकाकौआ पुं० दे० 'काकातुआ'।

काकातुआ पुं० तोते की जाति का एक पक्षी विशेष।

काकिणी—काकिनी स्त्री० १. प्राचीन भारत में मुद्रा का एक मान जो पण का चौथाई भाग या बीस कौड़ी का होता था।
२. गुंजा। घुँघची।

काकु पुं० १. व्यंग्योक्ति। वक्रोक्ति अलंकार का एक भेद, जिसमें किसी की काकु उक्ति में कही हुई बात का दूसरे व्यक्ति द्वारा अन्य अर्थ लिया जाय। २. अनुतान
उ०—श्लेष, काकु सों अर्थ की। म० ३६९/४२३

काकुत्स्थ पुं० १. काकुत्स्थ वंश में उत्पन्न व्यक्ति।
२. श्रीरामचन्द्र।

काकुद (काकु+द) स्त्री० तालु।

काकुन स्त्री० साँवा की तरह का अन्न विशेष। कँगनी।

काकुल (फा०) पुं० कनपटी पर लटकते हुए बाल जो देखने में सुन्दर लगें। जुल्फ।

काको—काकौं—काकौ सर्व० १. किसका।
उ०—काको मुख ठाहियै। गं० ६८/२२
२. किसको।
उ०—काकौ ध्यान करत उर अंतर। सा० १४८/०३

काकोदर पुं० १. साँप।
उ०—काकोदर कर-कोष। के० I, २६/१५८
२. कालियनाग।
३. कौए का रूप धारण करने वाले इन्द्र-पुत्र जयन्त।
उ०—काकोदर को दरप-हर जय जदुपति रघुबीर। प० १०३/४५

काकोल पुं० १. एक प्रकार का विष।
२. नरक।

काकोली (काकोल+ई) स्त्री० शतवार जैसी अष्टवर्ग की औषधियों में से एक अप्राप्य औषधि जो कि वीर्य-वर्द्धक और क्षीर-वर्द्धक होती है।

काकोलूकिका (काक+उलूकिका) स्त्री० काक और उल्लू जैसी स्थायी शत्रुता।

काख— अक० इच्छा करना। चाहना।
उ०—पट भूषन नहिं काख्यौ। सूर० १०/२९१७/२६४
काख्यौ भू०कृ०।
—ई स्त्री० आकांक्षा। साध।
उ०—बाकी रही न काखी। सूर० १०/११७२/५२३

काग पुं० शीशी की डाट।

कागज (फा०) पुं० लिखने के लिए चिथड़े, घास, बाँस आदि को सड़ाकर बनाए हुए पत्र। कागज़।

—**ई** वि० १. कागज़ का बना हुआ।
२. कागज़ पर लिखकर किया जाने वाला।
३. पतले छिलके वाला, जैसे—कागज़ी नीबू, कागज़ी बादाम।

कागद पुं० दे० 'कागज'।
उ०—भए कागद-नाव उपाव सबै।
घ० क० ५२/६६

कागर[1] पुं० १. दे० 'कागज़'।
उ०—जो न चढ़ी नृप काहू के कागर।
गं० ३४८/१०७
२. पंख।
उ०—कीर के कागर ज्यों नृपचीर। कवि० १/७

—**ई** वि० १. कागज की तरह का।
२. तुच्छ। हीन।

कागरु पुं० दे० 'कागा'।
—**आ** पुं० दे० 'कागा'।

कागली स्त्री० कौए की मादा।

कागा—काग—कागु पुं० दे० 'कागा'।
उ०—बोलै कागा कर्कस बानी। बो० ४१/५४

—**वासी** स्त्री० पौ फटने पर जब कौए बोलना आरम्भ करते हैं, उस समय पी जाने वाली भाँग।
पुं० एक प्रकार का काला मोती।

—**रोल** पुं० कौओं की तरह मचाया जाने वाला शोरगुल। हल्ला-गुल्ला।

—**सुर** पुं० एक असुर का नाम, जो कौए का रूप रखकर आया था और श्रीकृष्ण जी ने उसे मारा था।

कागौर पुं० पितरों के श्राद्ध में कौए के लिए निकाला हुआ कव्य-भाग।

काच पुं० १. काँच। शीशा।
उ०—काँचरी सो चीर काच। गं० ७३/२४
२. छींका।
वि० कच्चा। अधपका।

काचरी[1] स्त्री० चावल या साबूदाने के तले हुए टुकड़े।
उ०—कुर बरी काचरी पिठौरी।
सूर० १०/३६६/३१७

काचरी[2]**—काचली** स्त्री० केंचुली।
उ०—देव ब्रज क्वारिका निकारि गयी काचली।
दे० I, ६/३२६

काचमल पुं० काला नमक।

काचलवण पुं० काला नमक।

काचा वि० (स्त्री० काची) डरपोक। भीरु। कायर।
उ०—काची कोरी डार सी। गं० ७०/२३

काचो स्त्री० १. दूध रखने की मटकी।
२. सिंघाड़े आदि का हलुवा।

काचो वि० १. कच्चा।
उ०—जो ह्वो काचो सो तौ आहि पाकौ।
घ० क० ४८६/२६३
२. मिथ्या। असार। अनित्य।

काछ स्त्री० १. पेड़ू या जाँघ के नीचे का स्थान।
२. पीछे खोंसने की धोती की लाँग।
३. घुटनों तक चढ़ी हुई धोती।
उ०—काछ बनी किंकिनि-रट।
सूर० १०/१४५२/६००
४. अभिनय के लिए नटों का वेश।

—**क** पुं० १. काछ। २. काँख। ३. कोख।
४. कमरबंद। पटुका।
वि० काछने वाला।

—**नी** स्त्री० मूर्तियों को पहनाया जाने वाला एक प्रकार का घाँघरा। लहँगा।
उ०—कटि 'केसव' काछनी सेत। के० I, ३६/३०

—**सक०** १. लाँग कसना।
उ०—मोर को मुकुट माथे कटि कछिनी सु काछे।
गं० ११०/३५
२. शोभित होना। शोभा देना।
उ०—सूर स्याम जितन रंग काछत।
सूर० १०/१५८०/६३२
काछत व०कृ०। काछौ—काछ्यौ भू०कृ०।

काछनि—काछनी पुं० कछार। तट।
उ०—गंगा-काछनि चरति ही। के० III, ३/६७७

काछी (कच्छ+ई) पुं० (स्त्री० काछिन) सब्जी बेचने वाली एक जाति-विशेष।
उ०—पक्व खजूर जंबू बदरी फल लेहों काछिनी टेरी द्वार। गो० ५३०/१६६

काछू पुं० कछुआ।

काछें क्रि०वि० पास। निकट।
उ०—जनु घन तें बिजुरी बिछुरी माननि-तनु काछें।
नं० ३३/१३

काज पुं० १. कार्य। काम। प्रयोजन।
उ०—ते धनि जे ब्रजराज लखैं गृहकाज करैं।
म० १७४/३२६

२. कारण ।

उ०—बिन काज होत काल बदनाम भूमितल है।

भू० ८१/१४३

३. करतूत ।

उ०—भजि जायँ यों करि काज । बो० ८/६८

अव्य० लिए ।

उ०—सिच्छन-काज उजीरन को कहे ।

भू० १६१/१५६

—आ पुं० कार्य ।

उ०—उनतें कछू भयौ नहिं काजा ।

सूर० १०/५२१/३५३

—ई वि० कार्य करने वाला ।

उ०—ये हैं अपने काजी । सूर० १०/२२५७/१०२

—उ—ऊ पुं० कार्य ।

उ०—काजु कहा कुलकानि सों। म० ४०५/२६१

काजर—काजरु—काजल पुं० अंजन ।

उ०—भूली काजरु एक । म० २६१/२६८

—बिन्दुक—बिन्दुका पुं० काजल का दिठौना ।

उ०—निकट ह्रीं काजर-बिंदुका लाग्यो री ।

सूर० १०/१३६/२५०

काजरि—काजरी स्त्री० एक प्रकार की गाय जिसकी आँखों के चारों ओर का भाग काला होता है । कजरी गाय ।

उ०—धौरी धूमरि, कारी काजरि ।

सा० ५५१/४५

काजी[1] (अ०) पुं० मुस्लिम धर्म के अनुसार धर्म-अधर्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय करने वाला व्यक्ति ।

उ०—तहाँ काजी कहा करिहै । गं० १५२/४६

काजी[2] वि० स्वार्थी ।

उ०—ये हैं अपने काजी । सूर० १०/२२५७/१०२

काजू पुं० एक प्रकार की सूखी मेवा ।

उ०—सब तें दूना काट करै । प० १६६/२८

काट[1] स्त्री० १. काटने की क्रिया । २. बात काटना ।

३. काटने का ढंग ।

४. किसी जीव के काटने से होने वाला घाव । किसी वस्तु के लगने से होने वाला घाव ।

५. विश्वासघात । ६. कपट ।

७. तेल और घी की तलछट ।

८. सीये जाने वाले कपड़े को काटने का विशिष्ट ढंग । कटाव । ८. कतरब्योंत ।

—उ—ऊ वि० १. कटखना । काटने वाला ।

२. कटाऊ । ३. भयंकर ।

—कूट स्त्री० १. काटछाँट । २. मारकाट ।

—छाँट स्त्री० १. कतरन । २. बनावट ।

३. कतरब्यौंत । ४. कमीबेशी ।

५. बढ़ाव-घटाव । ६. मारकाट ।

—न स्त्री० १. कतरन ।

२. छोटे-छोटे टुकड़े जो छीलने या काटने से निकलते हैं । छीलन ।

काट[2]— सक० १. छुरी, कुल्हाड़ी आदि से किसी चीज के टुकड़े करना । काटना ।

उ०—काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ।

उ० ७७/७७

२. कतरना । चीरना । ३. व्यतीत करना ।

उ०—टोड़िक ह्वँ घन आनँद डाँटत काटत क्यों नहीं दीनता सों दिन । घ० क० ४०४/२३६

४. शस्त्रादि से खंडित करना ।

५. अंश अलग करना ।

६. दूर करना । हटाना ।

७. कम करना । ८. वध करना ।

६. रास्ता तै करना ।

१०. किसी की लिखावट को लेखनी से काट देना । ११. गलत कर देना ।

१२. खण्डन करना । १३. डसना ।

काटत व०कृ० । काटी, काट्यौ भू०कृ० ।

काटन क्रि०सं० ।

काटकी स्त्री० लकड़ी अथवा छड़ी जिससे मदारी बन्दर नचाते हैं ।

काटेरी स्त्री० दे० 'कटेरी' ।

काठ पुं० १. लकड़ी । काष्ठ ।

उ०—को लौं कोऊ काठ के तुरी कैं तौरै ताजनो ।

गं० १६४/५८

२. ईंधन ।

३. मध्यकाल में अपराधी को दंडित किए जाने के लिए काठ का बना एक उपकरण विशेष । कलंदरा ।

४. शहतीर की बेड़ी । ५. कठपुतली ।

—कवाड़ पुं० काठ की टूटी-फूटी वस्तु ।

—ड़ा पुं० (स्त्री० काठड़ी) कठौता । कठौती ।

मु० काठ की हाँडी—धोखा देने वाली दिखावटी वस्तु ।

मु० काठ में पाँव—स्वयम् को जान-बूझ कर संकट में डालना ।

काठिन्य पुं० कठिनाई । कठोरता ।

उ०—हँसिकै दीन्हो काठ में पाँव आपने हाथ।
बो० ६/५१

काठी स्त्री० १. ऊँटों, घोड़ों आदि की पीठ पर कसने की जीन।
२. शरीर का गठन। ३. म्यान।
४. ईंधन।

काड़ा पुं० जवान भैंसा।

काढ़[1] स्त्री० काढ़ने अथवा निकालने की क्रिया।

काढ़[2]— सक० १. बाहर करना। निकालना।
उ०—मुख ते कूर कहा अब काढ़ै। भ्र० ६७/८२
२. वस्त्र पर सुई-धागे से बेलबूटे काढ़ना।
३. घोड़े को चाल सिखाना। ४. छिपाना।
उ०—दुरावति है मुख काढ़ति सी।
के० I, ११/४७
काढ़त, काढ़तु व०कृ०।
काढ़ा, काढ़्यो, काढ़्यौ भू०कृ०।

काढ़ा पुं० वनस्पतियों अथवा औषधियों को पानी में उबालकर निकाला हुआ जोशाँदा।

काण वि० काना।
पुं० कौआ।

कात— सक० चरखे अथवा तकली की सहायता से अथवा हाथ से ऊन, रुई, रेशम आदि के रेशों को बटकर धागा अथवा सूत बनाना।

कातनहारि स्त्री० सूत कातने वाली स्त्री।
उ०—चलती चतुर कातन-हारि। वि० ६४७/२६६

कातर[1] वि० १. भयभीत। २. डरपोक। कायर।
उ०—तूं अति कृपन कुबुद्धि कूर कातर कुचील तन।
के० II, २२/४७८
३. व्याकुल। अधीर।
उ०—डरपि कातर होहु जनि कहुँ।
सूर० १०/३६६१/४२८

कातर[2] स्त्री० कोल्हू का तख्ता।

कातर[3] स्त्री० वाद्य-विशेष।
—ता स्त्री० १. भीरुता। २. शीघ्रता।
३. अधीरता। व्याकुलता।
उ०—प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत।
उ० ११/११

काता[1] पुं० काता हुआ सूत। डोरा।

काता[2] पुं० बाँस काटने की छुरी।

कातिक पुं० दे० 'कार्त्तिक'।
उ०—कातिक वदि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी। कुं० ४८/२७
—ई वि० कार्त्तिक मास की पूर्णिमा।

काती स्त्री० १. कतरने वाली सुनार की कैंची जो सोना चाँदी के पत्र काटने के काम में आती है।
२. कटारी। छुरी।
उ०—काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
घ० क० ४२/६२
वि० काटने वाली।
उ०—पाती जबै दुख काती सी आई।
र० ८४/३३२

कातीय—कात्य वि० कात्यायन ऋषि संबंधी।

कातुर वि० दे० 'कातर'।
—ई स्त्री० दे० 'कातरता'।

कात्यायन पुं० १. कत ऋषि के गोत्र में जन्म लेने वाले एक प्राचीन ऋषि।
२. पाणिनि सूत्र पर वार्तिक लिखने वाले व्याकरण के एक प्रसिद्ध आचार्य।
—ई स्त्री० १. दुर्गा देवी।
२. कत गोत्र में जन्म लेने वाली स्त्री।
३. कषाय वस्त्र पहनने वाली विधवा।

काथ पुं० १. कत्था। खैर। २. कंथा। गुदड़ी।
—ओ पुं० कत्था।
—ड़िया वि० काथरी ओढ़ने वाला।
—रि—री स्त्री० गुदड़ी।
उ०—खोयौ गयो नेह नग उनपै, प्रीति काथरी भई पुरानी। सूर० १०/३७१४/४३३

कादम्ब—कादंब पुं० १. कदम्ब वृक्ष। कदम। २. ईख।
३. बाण। तीर।
४. हंस का एक प्रकार। कलहंस।
५. एक प्राचीन राजवंश।
वि० कदम्ब सम्बन्धी।
—र पुं० १. गुड़। २. कदम्ब पुष्पों की शराब।
३. हाथी का मद। ४. दही की मलाई।

कादम्बरी स्त्री० १. कोकिल। २. सरस्वती।
३. मदिरा।
उ०—आसव, मय, कादम्बरी, मधुबारा मैरेय।
नं० १९२/८५

कादम्बिनी—कादंबिनी स्त्री० १. मेघमाला।
उ०—सघन स्याम कादंबिसी राख्यो रोकि अकास।
म० ३७४/३६६
२. मेघ राग की एक रागिनी।

कादर[1] वि० १. कायर। डरपोक।

उ०—जहाँ इस्क तहाँ आप है, कादर नादर रूप ।
ना० १/५०८

२. कातर । व्याकुल ।

उ०—भगत बिरह को अतिहीं कादर, असुर-गर्व-बल नासत । सूर० वि०/३१/१०

—ई स्त्री० दे० 'कातरता' ।

—ता स्त्री० कायरता । डरपोकपन ।

उ०—कर कँपत एकन के थकत पद जीन कादरता ठए । प० ६०/१३

कादर[२] (अ०) वि० कादिर । शक्तिशाली ।

ऊ०—कादर नादर-हुस्न का, कृष्ण कहा या सोय ।
ना० ७४८/४६८

कादा[१]—**कादो**—**कादौं** पुं० दे० 'काँदा' ।

उ०—दूध दधि घृत मची कादौं मनौं भादौं बरसही ।
ना० १/३२

कादा[२] पुं० लकड़ियों की पटरी जो जहाजों के शहतीरों की जड़ में लगाई जाती है ।

कान पुं० १. श्रवणेन्द्रिय । कर्ण ।

उ०—मोर-मुकुट काननि कुंडल लखि ।
छी० ११०/४८

२. किसी वस्तु का निकला हुआ कोना ।

३. नाव का पतवार ।

उ०—मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है, मेटि बेद की कान । सा० ७८५/६३

—स्त्री० दे० 'कानि' ।

उ०—बिन हित धन चाहति न हों, लाल सुनों दै कान । कु० २६५/५६

—आ—कानो वि० एक नेत्र से हीन ।

उ०—ज्यों अँधरनि मैं कानो राजा, त्यों कुबिजा पटरानी । सूर० परि० १७४/६२६

—ड़ा वि० दे० 'काना' ।

—चारी वि० कानों तक विचरने वाले अर्थात् दीर्घ ।

उ०—कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ।
बि० ४५/२४

—बाती—कानाबाती स्त्री० कानाफूसी । कान में धीरे से कही हुई बात ।

—बीरी स्त्री० कान का एक गहना ।

उ०—सीस सेलीकेस, मुद्रा, कानबीरी बीर ।
सूर० १०/३६६४/४२६

मु० कान जगाना—१. दिवाली के दिन संध्या समय कान जगाई होती है । बछड़ों को पकड़कर गायों को दौड़ाते हैं । उन्हें गुड़ तथा लड्डू खिलाकर धीरे से कान में कहते हैं और दूसरे दिन आने का निमंत्रण देते हैं ।

२. चेतावनी देना । जागरूक करना ।

—**मु० कान देना**—ध्यान देना ।

कान[२] पुं० कान्ह । श्रीकृष्ण ।

उ०—रथ कूँ देखि बहुत भ्रम कीन्हौ, धौं आगे फिर कान । सा० ५६१/४५

कानखजूरा पुं० दे० 'कनखजूरा' ।

उ०—गोंच जोंक अहि केंचुआ कानखजूरे भेख ।
बो० ७८/२०६

कानन पुं० वन । जंगल ।

उ०—सीस-पुहुप गुंथिन छबि ताही । मनहुँ मदन मृग कानन आही । नं० ११६/१०७

—चारी वि० जंगल में विचरने वाला ।

कानफूल पुं० दे० 'कनफूल' ।

कानाकानी स्त्री० कानाफूसी । गुपचुप बात ।

कानाफूसी स्त्री० दे० 'कानाबाती' ।

कानि—**काँनि** स्त्री० १. मर्यादा का ध्यान ।

उ०—तब माधवा उनमानि । रति करी तजिकै कानि । बो० २८/१२२

२. संकोच । लज्जा ।

उ०—बलि छलि बाँधि पताल पठाए, नैकु न कीन्हीं कानि । सूर० १०/३८५८/४६२

—आरी वि० संकोच करने वाली । लज्जालु ।

कानिद पुं० रत्नों को खराद कर दबाने की बाँस की कमची ।

कानीन—**कानीना** पुं० क्वारी कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ व्यक्ति ।

कान्यकुब्ज—**कानकुब्ज** पुं० १. कन्नौज नगर के समीपवर्ती प्रान्त में प्राचीन समय में रहने वाले ब्राह्मणों के वंशज ।

२. कान्यकुब्ज जाति के ब्राह्मण ।

कान्या स्त्री० दिशा ।

उ०—कान्या, काष्ठा, ककुभ, गो, आसा, दिसि बहि ओर । नं० १८७/८५

कान्ह—**कान्हर**—**कान्हरो** पुं० श्रीकृष्ण ।

उ०—ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के, बरनि कहत नहिं आवै । सा० ५७५/४६

कान्हड़ा पुं० एक राग विशेष ।
कान्हर—कान्हरि पुं० कोल्हू के कातर पर लगी हुई बेंड़ी और टेढ़ी लकड़ी जो दोनों ओर लगी हुई होती है और कोल्हू की कमर से लग कर चारों ओर घूमती है ।
कापर—कापरा पुं० कपड़ा । वस्त्र ।
उ०—काढ़ी कोरे कापरा (अरु), काढ़ी घी के मौन ।
सूर० १०/४०/२२४
कापाल पुं० १. प्राचीनकालीन अस्त्र विशेष ।
२. एक प्रकार का समझौता जिसमें उभय-पक्ष एक-दूसरे के समान स्वत्व को मानते हैं ।
कापालिक पुं० दे० 'कपालिक' ।
उ०—कै श्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को । के० II, १०/२४८
कापालिका स्त्री० प्राचीनकाल के एक बाजे का नाम जो मुंह से बजाया जाता था ।
कापाली पुं० १. शिव । २. एक वर्ण-संकर जाति ।
वि० कपाल धारण करने वाला ।
कापिल पुं० १. कपिल संबंधी ।
२. कपिल मुनि कृत सांख्य-दर्शन ।
३. भूरा रंग । खाकी रंग ।
कापिश पुं० मदिरा विशेष, जो माधवी पुष्पों से बनाती है ।
—ई स्त्री० एक प्राचीन देश जहाँ कापिश नाम की मदिरा अच्छी बनती थी ।
कापुरुष पुं० १. तुच्छ या हीन व्यक्ति ।
२. कायर या भीरु पुरुष ।
कापेय (कपि+एय) वि० कपि या बन्दर सम्बन्धी ।
पुं० शौनक ऋषि का एक नाम ।
काप्य पुं० १. कपि नामक ऋषि का प्रवर्त्तित गोत्र ।
२. आंगिरस ऋषि ।
काफल पुं० कायफल ।
काफिर (अ०) वि० मुसलमानी धर्म को न मानने वाला ।
काफी पुं० संगीत में सम्पूर्ण जाति का एक राग ।
उ०—काफी राग मुख गावै, मुरली बजाइ री ।
सूर० १०/२८८७/२४४
काबर—काबीर वि० कई रंगों वाला । चितकबरा ।
स्त्री० दोमट । भूमि विशेष जिसकी मिट्टी में रेत मिली रहती है ।
काबिस स्त्री० काला-पीला मिश्रित रंग जिससे रंगकर मिट्टी के बर्तन पकाए जाते हैं ।
काबुक (फा०) पुं० दरबा जहाँ कबूतरों को रखा जाता है ।
काबुल—काबिल—काबल पुं० काबुल देश जो काबुल नदी के तट पर बसा हुआ है ।
उ०—काबिल के दले दल, कासमीर किंगरनि ।
गं० ३४६/१०६
—ई वि० १. काबुल का ।
२. काबुल देश में रहने वाला ।
काबू (तु०) पुं० १. वश । अधिकार । २. जोर । बल ।
३. दाँब ।
काब्य पुं० दे० 'काव्य' ।
उ०—काव्य की रीति सिख्यो सुकबीन सों ।
भि० II, १२/५
काब्यलिंग पुं० दे० 'काव्यलिंग' ।
उ०—काव्यलिंग तासों कहत जिनके सुमतिप्रकास ।
प० २००/५७
काब्यार्थापत्ति स्त्री० साहित्य में एक अर्थालंकार ।
उ०—वह जु कियो तो यह कहा यों काव्यार्थापत्ति ।
प० १९९/५७
काम[1] पुं० १. इच्छा । कामना । चाह ।
२. कामदेव । मदन ।
३. संभोग की इच्छा ।
४. चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक ।
—अंध (कामांध) वि० जो काम से अंधा हो गया हो । कामातुर ।
उ०—काम अंध कछु रहि न सँभारि ।
सूर० ६/७/१३४
—अनुज पुं० क्रोध । तामसीभाव ।
—अभिसारिका स्त्री० काम के वेग से व्याकुल होकर प्रियतम के पास गमन करने वाली नायिका विशेष ।
—अरि पुं० शिव ।
—आर्त वि० काम के वेग से विकल ।
—आयुध आम ।
—इ—ई[1] वि० १. कामना रखने वाला । इच्छुक
२. काम वासना में लिप्त । कामी । लंपट ।
उ०—प्रथम कामिजन मनन कौं रँगत सुरभि रितु-राग । म० २८६/२६७
—कला स्त्री० १. मैथुन । रति ।
२. कामदेव की पत्नी, रति ।
३. एक तंत्रोक्त विद्या ।
४. रति सुख-वर्द्धन करने वाली कला ।

उ०—तरुन सुघर सुंदर सकल कामकलानि प्रबीन ।
म० २३७/२५५

—कलेस पुं० काम ज्वर ।

—कांता स्त्री० रति ।

—कार वि० कामी । कामासक्त ।

—कुँवरि स्त्री० राधा ।

उ०—आजु कहूँ कारों उहिं, खाई है काम-कँवरि ।
सूर० १०/७५२/४१५

—कैला पुं० कामदेव का भस्मावशेष कोयला ।

उ०—जरें कामकैला मनो मधुरितु बात-बिलास ।
के० II, ३८७

—केलि स्त्री० रति-क्रिया । काम-क्रीड़ा ।

उ०—कुमति कुसंगति कामकेलि ये बौरावत प्रान ।
प० १६५/५६

—कौतुकहार वि० रतिक्रीड़ा में प्रवीण । कामशास्त्र में निपुण ।

उ०—सूर-प्रभु सुख दियौ निसि रमि, काम-कौतुक-हार । सूर० १०/११३४/५१४

—क्रीड़ा पुं० रति ।

—गैया—गौ स्त्री० दे० 'कामधेनु' ।

उ०—पोषक पियूष ऐसो जैसो काम गैया को ।
प० २६/२४४

—चर पुं० मनमाना घूमने वाला । स्वेच्छाचारी ।

—चारी वि० १. जहाँ चाहे वहाँ विचरने वाला । स्वेच्छाचारी । २. कामुक । लंपट ।

—ज वि० वासनाजनित ।

पुं० व्यसन । मनुसंहिता के अनुसार इनकी संख्या दस है—मृगया, जुआ, दिन को सोना, पराई निंदा, स्त्री संभोग, मद्यपान, नृत्य, गीत, वाद्य और व्यर्थ इधर-उधर घूमना ।

—जित वि० कामदेव को जीतने वाला ।

पुं० १. शिव । २. कार्तिकेय । ३. जिन देव ।

—जुर—ज्वर पुं० १. काम ज्वर, अभिलाषा की तीव्रता ।

२. कामाग्नि ।

उ०—झारें कर क्षुरी, उर कामजुर क्षुरी ।
दे० I, ७४२/१७२

—तरू पुं० सभी प्रकार की कामना पूरी करने वाला देवलोक का वृक्ष । कल्पवृक्ष ।

उ०—कबिन को 'मतिराम' कामतरू ऐसो कर ।
म० ४७/३०६

—दंद पुं० काम-पीड़ा ।

—द वि० इच्छा पूरी करने वाला । मनचाही वस्तु देने वाला ।

उ०—खान खानखानान के—कामद बदन प्रयाग ।
गं० २६७/६०

पुं० कामतानाथ पर्वत (चित्रकूट) ।

उ०—पायो गत असिवन मास जहीं । आयो द्विज कामद सैल तहीं । बो० २८/८६

—दहन पुं० कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी ।

—दहीली वि० काम से दग्ध । काम से पीड़ित ।

उ०—नैंकु नहीं पिय तें कहूँ बिछुरति, तातें नाहिन काम दहीली । सूर० १०/१७७२/५

—दा स्त्री० १. कामधेनु । २. देवी का नाम ।
३. चैत्र शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम ।
४. दस वर्णों का एक वृत्त ।

वि० कामनादायिनी ।

उ०—कामिनी कामदा प्यारी तिया अये लीलावती है कि तू मृगनैनी । बो० ११/६२

—दुघा—दुघान स्त्री० दे० 'कामधेनु' ।

उ०—त्यों पदमाकर प्यारो पियूष तें कामद काम-दुघान के ऐसो । प० ८/२३८

—दुहा स्त्री० दे० 'कामधेनु' ।

—देव पुं० काम के देवता मदन ।

—द्रुम पुं० कल्पवृक्ष ।

उ०—सुभग मानौ काम-द्रुम कौ, नयौ अंकुर राज ।
सूर० १०/११६१/५२०

—द्वन्द—दंद पुं० काम-पीड़ा ।

उ०—'सूरदास' प्रभु कौं अंकम भरि, कामद्वंद तनु त्यागी । सूर० १०/१६६७/५२

—धुक स्त्री० दे० 'कामधेनु' ।

—धुज स्त्री० मछली जो कामदेव के ध्वज पर अंकित है ।

उ०—कीनौ कछवाह कामधुज को बचाव है ।
म० ३७३/३६०

—धुजा—धुज स्त्री० कामदेव की पताका ।

उ०—अंचल फरहरात उर पर बांधी काम-धुजा ।
कुं० ३०५/१०३

—धेनु—धैनु स्त्री० १. इच्छित फल देने वाली देवताओं की गाय जो सागर से निकले चौदह रत्नों में से एक कही जाती है ।

२. वशिष्ठ मुनि की शबला या नंदिनी नाम की गाय जिसके लिए विश्वामित्र से युद्ध हुआ था और जिसने महाराज दिलीप को पुत्र दिया था।

—नायक पुं० कामदेव का मुखिया अर्थात् बसन्त।

—नारि स्त्री० रति।

—निकंदन पुं० शिव।

—नृपति पुं० १. कामदेव।

उ०—जाकैं बल है काम नृपति को ठगत फिरत जुवतिनि कौं जौन। सूर० १०/१५६३/६३४

२. कामसेन राजा।

उ०—काम नृपति की त्रास तजि कामकंदला नाम। वा० ३/१३२

—नैनी वि० कामदेव के समान रसीली आँखों वाली।

—पच्छ पुं० विषय-वासना का पक्ष।

—पाल पुं० १. शिव। २. कृष्ण। ३. बलराम।

—फल पुं० आम।

—बाण पुं० कामदेव जी के पाँच बाण यथा (१) मोहन। (२) उन्मादन। (३) सन्तापन। (४) शोषण। (५) निश्चेष्टीकरण। पाँच पुष्प बाण—(१) लाल कमल (२) अशोक (३) आम के बौर (४) चमेली (५) नील-कमल।

—वाम स्त्री० कामदेव की स्त्री, रति।

—भक्ष पुं० शिव।

—रिपु पुं० शिव।

उ०—शर्व, संभु, शिव, भीम, भव, भर्ग, काम-रिपु नाम। नं० १३६/८०

—ल पुं० बसन्तकाल।

वि० कामी।

—लता स्त्री० मनोकामना पूर्ण करने वाली बेल।

उ०—बरष कुसुमावलि एक घनी। सुभ सोभन कामलता सी बनी। के० II, १३/२७२

—वती वि० सहवास की इच्छा रखने वाली स्त्री

स्त्री० दारु हल्दी।

—वल्लभ वि० काम बढ़ाने वाला।

पुं० आम।

—वल्लभा स्त्री० चाँदनी। चन्द्रिका।

—विषै पुं० रतिशास्त्र।

उ०—काम विषै पै वचन कहे सब रस के पागे। नं० ४८/३४

—शर—सर पुं० दे० 'कामबाण'।

उ०—लखि तुव लोचन जन उर माहीं। कबहुँ कामसर लागत नाहीं। प० ३३१/७४

—सखा पुं० बसन्त ऋतु।

—अंग (कामांग) पुं० १. आम।

उ०—पिक वल्लभ, कामांग पुनि मदरासख सह-कारि। नं० २२१/८६

पुं० २. चकवा। ३. कबूतर। ४. चिड़ा। ५. सारस। ६. चन्द्रमा। ७. काकड़ा सिंगी। ८. विष्णु का एक नाम।

—अगि (कामागि) कामाग्नि।

उ०—कामागि भसम होतो ही ततो। दे० I, २५४/६०

काम[2] पुं० कार्य।

उ०—मूँदि देहु आख सब लाख कौन काम के। गं० ३/२

—गार (फा०) पुं० १. कारिन्दा। २. मजदूर।

वि० बेलबूटेदार।

—चलाऊ वि० काम निकाल देने वाला।

—चोर वि० काम से जी चुराने वाला। आलसी।

—दार[1] (फा०) पुं० राजपूताने की रियासतों में एक कर्मचारी जो प्रबन्ध का काम करता था और मुख्य प्रतिनिधि समझा जाता था। कारिंदा। अमला।

—दार[2] (फा०) वि० कारचोबी जिस पर जर-दोजी या तार के कसीदे का काम हो, जिस पर कलाबत्तू आदि के बेलबूटे बने हों।

—धाम कामकाज। कामधंधा।

कामकंदला स्त्री० प्राकृत अप्रभंश काल की बहु प्रचलित एक कल्पित कथा की नायिका।

उ०—मालती, सकुंतला सी, को है कामकंदला सी। गं० ३२४/६६

कामदानी (फा०) स्त्री० १. कपड़े पर बना हुए बेलबूटा। २. वस्त्र-विशेष।

कामग वि० स्वेच्छाचारी। लोक लोकान्तरों में भ्रमण करने वाला।

कामड़िया पुं० रामदेव के मतानुयायी चमार जाति का साधु।

कामता पुं० चित्रकूट का एक प्रसिद्ध गाँव।

कामतिथि स्त्री० त्रयोदशी।

कामद-गाई स्त्री० दे० 'कामधेनु'।

कामदूतिका स्त्री॰ नागदंती । हाथी की सूंड नामक घास विशेष ।

कामदूति—कामदूती स्त्री॰ परवल की बेल ।

कामना स्त्री॰ इच्छा । मनोरथ ।

उ॰—कहत मन-कामना आज पूरन करें ।
सूर॰ १०/६६४/४८०

—**कन्द** वि॰ कामना पूर्ण करने वाला ।

—**धेनु** स्त्री॰ दे॰ 'कामधेनु' ।

कामनी—कामिनी स्त्री॰ १. प्रमदा स्त्री । कामवती स्त्री । २. स्त्री । भार्या ।

उ॰—मैन-कामनी के मैनका हू के न रूप रीझे ।
म॰ १०२/२२३

३. दारु हल्दी । ४. मदिरा ।

कामिनीमोहन पुं॰ स्रग्विणी छंद का एक नाम ।

कामबन—कामवन पुं॰ महावन । काम्यवन । ब्रजमण्डल के अन्तर्गत प्राचीन वृन्दावन ।

उ॰—नंदग्राम, संकेत, खिदिरबन और कामबन धाम ।
सा॰ १०८६/८६

कामयाब (फा॰) वि॰ सफल ।

उ॰—तेरी निगाह देखैं सब कामयाब होगा ।
ना॰ ७६२/५०५

कामर—कामरि—कामरी—कामरु पुं॰ १. कम्बल ।

उ॰—काधें कारी कामर निरखि लजात बसंतनि ।
छी॰ ८४/३७

२. काँवर ।

३. एक रमणीक स्थान जहाँ कई सरोवर तथा उपवन आदि हों ।

कामरिया स्त्री॰ दे॰ 'कामर' ।

कामरू—कामरूप पुं॰ १. कामरूप देश । आसाम का गोहाटी जिला जहाँ कामाख्या देवी का मंदिर है ।

उ॰—मारु मरदान कामरु के करवान आनि ।
गं॰ ३०६/६३

२. एक अस्त्र का नाम ।

३. बरगद की एक जाति । ४. छन्द-विशेष ।

वि॰ इच्छानुसार रूप धारण कर सकने वाला ।

उ॰—बजै डामरू, कामरू मंत्र गावै । नचावै फनी, सिद्ध जोगी कहावै ।
दे॰ I, ५७/२३३

कामरुचि स्त्री॰ एक अस्त्र जिसे रामचन्द्र जी ने विश्वामित्र से पाया था इससे वे अन्य सब अस्त्रों को काट देते थे ।

कामल पुं॰ रोग विशेष जिसमें शरीर तथा नेत्र पीले पड़ जाते हैं ।

कामलड़ी स्त्री॰ कम्बल ।

कामली स्त्री॰ दे॰ 'कामर' ।

कामा स्त्री॰ १. कामिनी । स्त्री ।

उ॰—दान मंत्र अभिमान काम कामा सँग लिय पगि ।
बो॰ ६१/४६

२. एक वृत्ति जिसमें दो गुरु होते हैं ।

कामाख्या—कामाक्ष्या स्त्री॰ असम में गुवाहाटी नगर में पहाड़ के ऊपर देवी विशेष ।

कामावशायिता—कामावसायिता स्त्री॰ योगियों की अष्ट सिद्धियों में से एक जिसे सत्य-संकल्पता कहते हैं ।

कामाक्षी स्त्री॰ दे॰ 'कामाख्या' ।

कामिनियाँ पुं॰ जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में होने वाला छोटा वृक्ष विशेष जिसकी राल से एक तरह का लोहबान बनता है ।

कामिल (अ॰) वि॰ १. पूरा । पूर्ण । २. योग्य ।

कामेश्वरी स्त्री॰ तन्त्र के अनुसार एक भैरवी । कामाख्या की पंच मूर्तियों में से एक ।

कामोद पुं॰ एक राग जो मालकोस का पुत्र और पूर्ण-जाति का माना जाता है । रात की पहली अधपहरी में गाया जाता है ।

—**ई** स्त्री॰ रागिनी विशेष जो मालकोस के पुत्र कामोद की स्त्री है । यह रात्रि के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है ।

काम्य वि॰ जिसकी इच्छा हो । इच्छित ।

उ॰—बिसरि गयो सब काम्य कर्म अज्ञान महादुख ।
नं॰ १०८/३८

—**कर्म** पुं॰ किसी कामना सिद्धि के लिए किया गया यज्ञ कार्य ।

—**दान** पुं॰ रत्न आदि मूल्यवान वस्तुओं का दान । पुत्रादि प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया दान ।

—**मरण** पुं॰ इच्छानुसार मृत्यु । मुक्ति ।

काम्येष्टि स्त्री॰ कामना पूर्ति के उद्देश्य से किया गया यज्ञ ।

काय—काया स्त्री॰ देह । शरीर ।

उ॰—काया-ग्राम मसाहत करिकै ।
सूर॰ १/१४२/३६

—**इक** वि॰ देह-सम्बन्धी । देहकृत ।

—**ई** वि॰ कायावाला ।

—उत्सर्ग जैन शिल्प में वीतराग अर्हत की खड़ी मूर्ति ।

—क वि० दे० 'कायिक' ।

उ०—कायक इक सो जानिये मानसु दूजो होइ ।
रस० ६६६/१३४

—कल्प पुं० औषधि सेवन से वृद्ध शरीर में तारुण्य संचार की क्रिया । अशक्त शरीर को तरुण बनाने वाली चिकित्सा-प्रणाली ।

—पलट पुं० भारी हेर-फेर । बड़ा परिवर्तन ।

—व्यूह पुं० १. देह में वात, पित्त, कफ तथा त्वचा रुधिर, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र के स्थान और विभागदि क्रम ।
२. स्वकर्म भोगार्थ योगियों द्वारा चित्त में एक-एक इन्द्रिय और अंग की कल्पना करने की क्रिया ।

कायथ पुं० दे० 'कायस्थ' ।

कायफर पुं० एक प्रकार का वृक्ष ।

उ०—कूट, कायफर, सोंठि, चिरहता, करजीरा कहुँ देखत ।   सूर० १०/१५२८/६२१

कायर वि० डरपोक । भीरू ।

उ०—नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्राने ।   घ० क० ८/४३

कायल स्त्री० जो किसी की बात को यथार्थता से स्वीकार करले ।

कायस्थ वि० शरीर में रहने वाला ।
पुं० १. जीवात्मा । २. परमात्मा ।
३. हिन्दुओं की एक जाति विशेष ।

कायस्था स्त्री० १. हड़ । २. आंवला । ३. तुलसी ।
४. काकोली ।

कायोढज पुं० वह पुत्र जो प्रजापत्य विवाह से उत्पन्न हुआ हो ।

कार[1] प्रत्य० करने वाला । बनाने वाला । व्यवसाय करने वाला । जैसे—कुंभकार, ग्रंथकार स्वर्णकार

कार[2] (फा०) पुं० कार्य । काम ।

कारक[1] वि० (स्त्री० कारिका) करने वाला । जैसे—हानि-कारक । सुखकारक ।

उ०—विश्व-प्रभव-प्रतिपाल-प्रलय कारक आरसु बस ।   नं० ५/३१

कारक[2] पुं० व्याकरण में संज्ञा या सर्वनाम शब्द की वह अवस्था जिसके द्वारा किसी वाक्य में उसका क्रिया के साथ संबंध प्रकट होता है । ये छः होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, ।

कारकदीपक पुं० अर्थालंकार विशेष, जिसमें कई क्रियाओं का एक ही कर्ता वर्णन किया जाय ।

उ०—सो कारक दीपक कह्यो, कबिन ग्रंथ मत जोय ।
म० २८१/३४७

कारकून (फा०) पुं० १. कारिंदा । कर्मचारी ।
२. प्रबंधकर्ता ।

कारखाना (फा०) पुं० वह स्थान जहाँ व्यापार के लिए कोई वस्तु बनाई जाती है । जैसे—छापा-खाना । करघा ।

उ०—जीव अति ऊबा या अजूबा कारखाना है ।
ठा० २०८/५४

कारखी वि० दे० 'कारिख' ।

उ०—जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी ।
कवि० १५/४

कारचोबी (फा०) पुं० कसीदाकारी ।

कारज पुं० कार्य । काम ।

उ०—बिन कारन कारज प्रगट विभावना विस्तार ।
भि० II, २५/२१

कारण पुं० हेतु । वजह । निमित्त ।

—माला स्त्री० काव्य में अर्थालंकार विशेष ।

—शरीर पुं० सुषुप्तावस्था में वह शरीर जिसमें इन्द्रियों के विषय-व्यापार का अन्त हो जाता है किन्तु अहंकार आदि संस्कार शेष रह जाते हैं ।

कारणोपाधि पुं० ईश्वर ।

कारण्डव पुं० हंस अथवा बतख जाति का पक्षी ।

कारन पुं० १. दे० 'कारण' ।

उ०—थाई कारन को सुकबि कहत विभाव विशेषि ।
रस० ४६/१३

२. (कारुण्य) करुणाजनक स्थिति ।

उ०—निसिदिन माधवा की टेक । कारन करत रहत अनेक ।   बो० १८/५८

३. कार्यकलाप ।

उ०—रति में रतिपति सो करत कानन बेपरवान ।
बो० २०/६३

४. विशेष प्रयोजन ।

उ०—है कारन या दोहा माहीं । पै हित जान परत है नाहीं ।   बो० ५१/१४४

५. बचने का उपाय ।

उ०—ज्यों ज्यों करत कारन बाम । त्यों त्यों बढ़त द्विजहिय काम ।   बो० २८/११७

कारनिस (अं०) स्त्री० दीवार की कँगनी । कगर ।

कारनी वि० प्रेरणा देने वाला । कराने वाला ।

कारबार—कारोबार (फा०) पुं० कामकाज। व्यवसाय। पेशा।

कारबारी पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी कारकुन। कारिन्दा।

काररवाई—कारवाई (फा०) स्त्री० कार्य। कृत्य। कार्रवाई।

कारव पुं० दे० 'काक'।

कारवी वि० मयूर-शिखा। रुद्र जटा।

कारवेल्ल पुं० करेला।

कारा¹ स्त्री० कैद। पीड़ा।

—गार पुं० बन्दीगृह। कैदखाना। जेल।

—गृह पुं० दे० 'कारागार'।

—वास पुं० कैद।

कारा² वि० (स्त्री० कारी) काला। श्याम।

उ०—काधें कारी कामर निरखि तजात बसंतनि। छीत० ८४/३७

मु०—कारे कोसनि—बहुत दूर।

उ०—मथुरा हू तैं गए सखीरी, अब हृटि कारे कोसनि। सूर० १०/४२५८/२

कारा-पथ पुं० रामायण में वर्णित एक जनपद।

कारिका¹ स्त्री० किसी सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या।

उ०—कोमल कोक की कारिका भाखी। प० ३४३/१५४

कारिका² स्त्री० संकीर्ण राग का भेद-विशेष।

कारिख—कालिख—कालख स्त्री० १. कालिमा।

उ०—मुख में कलंक मिसि कारिख लगायकै। म० ९९/३१६

२. धब्बा। कलंक। ३. काजल। ४. स्याही।

कारित वि० कराया हुआ।

कारिता स्त्री० वह ब्याज जो चलन से अधिक हो और जिसे ऋणी ने स्वेच्छा से देना स्वीकार किया हो।

कारिन्दा (फा०) पुं० जमींदार की ओर से काम करने वाला कर्मचारी।

कारी¹ (फा०) पुं० करने वाला। बनाने वाला।

—गर (फा०) पं० दस्तकार। शिल्पी।

—गरी (फा०) स्त्री० निर्माणकला। दस्तकारी।

उ०—मारै चिरी कूं चिरी कहा वीर। पै मीर सिकार की कारीगरी है। ठा० ४५१३

कारी² (फा०) वि० घातक। मर्मभेदी।

कारीजीरी स्त्री० वनजीरा। औषधि विशेष।

कारुँ (अ०) पुं० हजरत मूसा का चचेरा भाई जो बड़ा धनी हुए कजूस था।

वि० कृपण। कंजूस।

कारु² पुं० शिल्पी। कारीगर।

कारुणिक वि० दयाशील। कृपालु।

कारुण्य पुं० दया। करुणा।

कारुपथ पुं० दे० 'कारापथ'।

कारुष—कारूष वि० करूष देश सम्बन्धी। करूष देश का।

पुं० बिहार प्रान्त के अन्तर्गत सादाबाद जिले का पूर्वी भाग।

कारूनी स्त्री० घोड़ों की एक जाति।

कारे चोर पुं० दे० 'काला चोर'।

कारोंछ स्त्री० दे० 'कालौंछ'।

कारो¹—कारौ वि० काला।

उ०—बोधा इतै सुख पै न रमै उतकारो को सांवरो रूप सिहातो। बो० १०/१३२

कारो² पुं० भगवान श्रीकृष्ण। काला नाग।

कारोबार—कारवार पुं० काम। धन्धा। व्यवसाय।

कार्तबीज पुं० दे० 'कार्तवीर्य'।

उ०—रावन के कार्तबीज के परसुराम दिल्लीपति हिग्गज के सिंह सिवराज हौ। भू० १०/२०६

कार्तवीर्य पुं० कृतवीर्य का पुत्र। सहस्रार्जुन। इसकी राजधानी महिषमती नगरी थी। इसके एक सहस्र हाथ थे और इसे परशुराम ने मारा था।

कार्तस्वर—कार्त्तसुर पुं० सोना। धतूरा।

उ०—कंचन, अर्जन कार्त्तसुर, चामीकर तपनीय। नं० ११/६७

कार्तान्त्रिक वि० दैवज्ञ। ज्योतिषी।

कार्तिक पुं० १. आश्विन के बाद का महीना।

२. बार्हस्पत्य वर्ष। वह संवत्सर जिसमें कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्र में हो।

कार्तिकेय पुं० कृतिका नक्षत्र में उत्पन्न होने वाले स्कंद। शिवजी के पुत्र का नाम।

उ०—कार्तिकेय, सखन-जनम, स्कंद विसाप कुमार। नं० ३७/२७

कार्दम वि० १. कीचड़ से भरा हुआ।

२. कर्दम नामक प्रजापति से सम्बन्ध रखने वाला ।

कार्पण्य पुं० कृपणता । कंजूसी ।

उ०—प्रेम पाँच विधि कहत अरु, कार्पण्य वैकल्प । दे० I, १०/३०५

कार्पास[१] वि० कपास का बना ।

कार्पास[२] पुं० कपास का बना वस्त्रादि ।

कार्मण[१] वि० काम में होशियार । कर्मकुशल ।

कार्मण्य[२] पुं० मन्त्र तन्त्र आदि के प्रयोग द्वारा मारण, मोहन वशीकरण आदि ।

—उन्माद पुं० जादू, टोना आदि प्रयोग से होने वाला उन्माद ।

कार्मना स्त्री० दे० 'कार्मण[२]' ।

कार्मिक[१] पुं० वह वस्त्र जिसमें चक्र स्वास्तिक आदि चिह्न बुनकर बनाए गए हों ।

कार्मिक[२] वि० (स्त्री० कार्मिकी) कर्म करने वाला । कर्मशील ।

कार्मुक[१] पुं० १. धनुष । २. इन्द्र धनुष । ३. बाँस । ४. रुई धुनने की धुनकी ।

कार्मुक[२] वि० दे० 'कार्मिक' ।

कार्य पुं० काम । कर्तव्य । धंधा । व्यवसाय । नाटक का अंतिम फल ।

—कर्त्ता पुं० काम करने वाला । कर्मचारी ।

—कारक वि० कार्य में दक्ष । चतुर ।

—कलाप पुं० कार्य समूह । अनेक कार्य ।

—कारण भाव पुं० कार्य और कारण का संबंध ।

—दर्शन पुं० काम की निगरानी ।

—पंचक पुं० ईश्वर के पाँच विशेष कार्य । यथा—अनुग्रह, तिरोभाव, आह्वान, स्थिति, अद्दभव ।

कार्यत क्रि०वि० कार्य रूप से । यथार्थ रूप से ।

कार्य प्रद्वेष पुं० कार्य से अरुचि । आलस्य ।

कार्यहन्ता वि० कार्य का नाश करने वाला । बाधक । विघ्नकर्ता ।

कार्याधिकारी पुं० वह जिसके सुपुर्द किसी कार्य का उत्तरदायित्व डाला गया हो । अफसर ।

कार्याध्यक्ष पुं० अफसर । मुख्य कार्यकर्त्ता ।

कार्यार्थी वि० कार्य की पूर्ति चाहने वाला । काम चाहने वाला व्यक्ति ।

कार्श्य पुं० कृशता । दुबलापन । साल का पेड़ ।

कार्षक—कार्षाक पुं० कृषक । किसान ।

कार्षापण पुं० एक प्राचीन सिक्का ।

कार्ष्ण वि० (स्त्री० कार्ष्णी) १. कृष्ण संबंधी ।
२. कृष्ण द्वैपायन संबंधी ।
३. कृष्ण-मृग संबंधी ।

कार्ष्णायन पुं० १. व्यासवंशीय ब्राह्मण ।
२. वशिष्ठ गोत्र का ब्राह्मण ।

कार्ष्णि पुं० १. कृष्ण के पुत्र । प्रद्युम्न । २. प्रद्युम्न ।
३. कामदेव । कृष्णा द्वैपायन, व्यास के पुत्र । शुकदेव ।

कार्ष्ण्य पुं० कृष्णता । कालापन ।

काल[१] पुं० १. समय । वक्त ।

उ०—'छीतस्वामी' गिरिधरन रसिकवर मुसकि चले तिहि काल । छी० १२५/५४

२. मृत्यु । ३. यम ।

उ०—नर यह न कहत कोऊ जु कालही काल काल को ठाया है । प० १३/२६७

—अकाल दुर्भिक्ष का समय । वह समय जब अन्न दुष्प्राप्य हो ।

—अग्नि स्त्री० १. प्रलयकालीन अग्नि । प्रलयानल ।
पुं० २. रुद्र । प्रलय के अधिष्ठातृ देवता ।
३. पंचमुखी रुद्राक्ष ।

—अतीत (कालातीत) वि० बीता हुआ समय ।

—अवधि स्त्री० मृत्यु ।

उ०—इनमैं कछु नाहिं टरौ, काल अवधि आई । सूर० १/३३०/९१

—कन्या स्त्री० जरा । बुढ़ापा ।

उ०—जरा काल-कन्यापुर आई । सूर० ४/४०६/१२२

—कृत्या स्त्री० तन्त्र विधान से मारणकर्म के लिए पैदा की गई एक भयंकर स्त्री ।

—कोठरी स्त्री० तंग कोठरी जिसमें भयानक अपराध करने वाले कैदी रखे जाते हैं ।

—क्रम पुं० समय की गति ।

—क्षेप पुं० दिन काटने की क्रिया ।

—गंडैत पुं० १. समय का परिवर्तन ।
२. बुरे दिन । ३. एक अस्त्र ।

—गति स्त्री० समय का फेर ।

उ०—सहि न सकै जो कालगति उतसुकता तिहि जान । रस० ८५७/१६१

—ज्ञ पुं० समय के स्वरूप को जानने वाला । ज्योतिषी ।

—ज्ञान पुं० समय की पहचान। मृत्यु समय का ज्ञान।
—दण्ड पुं० यमराज का दंड।
—धर्म पुं० युग-धर्म। समयानुकूल धर्म।
—नाथ पुं० शिव।
—निशि स्त्री० मृत्यु की रात। प्रलय की रात।
—पाश पुं० यमपाश। यमराज का बंधन।
—पुरुष पुं० १. काल। यमराज। २. भगवान का विराट रूप। ३. ज्योतिष शास्त्र।
—बेला स्त्री० ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दिन या रात्रि का वह भाग जिसमें कोई काम करना निषिद्ध माना जाता है।
—रात—रात्रि स्त्री० १. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रात्रि का वह भाग जिसमें कोई काम करना निषिद्ध माना जाता है। २. दे० 'कालनिशि'।
—विधान पुं० १. समय का विधान। समयानुसार नीति। २. प्रारब्ध।
—सूर्य पुं० प्रलयकाल का सूर्य।

काल[२] वि० काला।
—गंगा स्त्री० वह गंगा जिसका रंग काला हो। लंका द्वीप की एक नदी।
—निशि स्त्री० दिवाली की रात। अंधेरी भयानक रात।

कालकंध पुं० तमाल वृक्ष।
उ०—कालकंध, तापिच्छ पुनि हिंडुक सहज तमाल। नं० २२६/८६

कालक[१] पुं० १. केतु विशेष। २. पानी का साँप। ३. आँख की पुतली। ४. बीजगणित में दूसरी अव्यक्त राशि। ५. यकृत। ६. एक देश विशेष। ७. एक राक्षस का नाम।

कालक[२] वि० काला।

कालकवि पुं० अग्नि।

कालका स्त्री० दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप को ब्याही थी।

कालकील पुं० कोलाहल। गड़बड़ी।

कालकूट[१] पुं० १. हलाहल विष। जहर।
उ०—गरल, हलाहल, गर-अमृत, कालकूट रस, मार। नं० १७३/८३
२. सींगिया जाति का एक चित्तीदार पौधा।

कालकेतु पुं० एक राक्षस का नाम।

कालकेय पुं० वृत्रासुर का मित्र, एक राक्षस।

कालखण्ड पुं० परमेश्वर।

कालगरु—कालगुरु पुं० काल अगरु।

कालनिर्यास पुं० गुग्गुल।

कालनेमि पुं० रावण का मामा जो उसका सहायक था, उसे हनुमानजी ने मारा था।
उ०—कालनेमि अरु उग्रसेन-कुल, उपज्यौ कंस भुवाला। सूर० १०/४/२१०

कालबूत पुं० १. जूता बनाने का लकड़ी का साँचा। २. मिट्टी अथवा ईंट इत्यादि का वह ढाँचा, जो छत अथवा द्वार का कड़ा जोड़ने के समय सहारे के निमित्त उसके नीचे दिया जाता है।
उ०—कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाइ। बि० ३६६/१६३

कालभैरव पुं० शिवजी के अंश से उत्पन्न उनके एक गण का नाम।

कालमूल पुं० लाल चीते की जड़। औषधि विशेष।

कालमेषिका—कालमेषी—कालमेखला पुं० वाचकी। मँजीठ।
उ०—माठी मँडुका, मधुरसा, कालमेखका होइ। नं० २४०/६१

कालयवन पुं० यवनों का एक राजा जिसे भगवान श्री कृष्ण ने मुचकुन्द द्वारा भस्म करवाया था।

कालयापन पुं० समय बिताने या समय काटने की क्रिया।

कालर पुं० ऊसर।

कालशाक पुं० १. पटुआ शाक। २. करेमू।

कालसर्प पुं० वह विषैला साँप जिसका काटा हुआ व्यक्ति जीता नहीं है।

कालसार पुं० तेंदू वृक्ष।

कालसूत्र पुं० एक नरक का नाम।

कालस्कंध पुं० दे० 'कालकंध'।

काला वि० काजल जैसे रंग का। श्याम रंग का।
—कलूटा वि० बहुत काला। अत्यधिक काला।
—जीरा पुं० १. स्याह जीरा। २. अगहन में होने वाला धान विशेष।

कालाकंद पुं० सैकड़ों वर्षों तक रह सकने वाला और अगहन में होने वाला धान विशेष।

कालागोड़ा—कालागोंड़ा पुं० बहुत मोटी और रंग में काली ईख।

कालाचोर पुं० १. अत्यन्त बुरा मनुष्य । २. नामी चोर । ३. अनजान पुरुष ।

कालादाना पुं० एक लता के बीज जो काले रंग के और रेचक होते हैं ।

कालापहाड़[1] पुं० १. असहनीय वस्तु ।
२. बहलोल लोदी का एक भांजा जो सिकन्दर लोदी से लड़ा था ।
३. मुरशिदाबाद के नवाब दाऊद का एक सेनापति जो बड़ा क्रूर और कट्टर था ।

कालापहाड़[2] पुं० महोवे के पास का एक पहाड़ी स्थान ।

कालापानी पुं० देशान्तरवास की सजा । देश निकाले का दण्ड ।

कालामोहरा पुं० एक विषैला पौधा ।

कालायस पुं० इस्पात । लोहा ।

कालाशुद्धि स्त्री० ज्योतिष में शुभ कार्यों के लिये निषिद्ध समय ।

कालाशौच पुं० माता-पिता आदि गुरुजनों के मरने के उपरान्त एक वर्ष तक का अशौच ।

कालास्त्र पुं० एक प्रकार का अमोघ बाण ।

कालाक्षरी पुं० बहुत बड़ा विद्वान ।

कालिंग पुं० तरबूज ।

कालिंजर पुं० बाँदा जिले के पास का एक प्रदेश और उससे संलग्न एक पर्वत-श्रेणी ।
उ०—काहिल कोलापुर लयो, कालिंजर पलु एक ।
के० III, ५/६६५

कालिंदी स्त्री० यमुना नदी ।
उ०—काल्हि कालिंदी के निकट निरखि रहे है जाई ।
प० ३६४/१५८

—पति पुं० श्रीकृष्ण भगवान ।

कालि[1] क्रि०वि० दे० 'काल्हि' ।
उ०—आज कालि दिन द्वैक तें । प० ३७/८६

—कला क्रि०वि० कभी । कदाचित ।

कालि[2] स्त्री० १. कालिका ।
उ०—जय कालि कपर्दनि । भू० २/१२८
२. कालिख । कालिमा । ३. स्याही ।
४. मेघमाला । ५. काली मिट्टी ।
६. जटामासी । ७. आंख की पुतली ।
८. चार वर्ष की कन्या । ९. दक्ष की कन्या ।
१०. मादा बिच्छू । ११. बिच्छुआ घास ।
१२. कौए की मादा ।
१३. कान की एक नस ।

कालिका (कालिका+आ) स्त्री० १. काली । चण्डिका ।
उ०—कालिका विहंगम के बाज हो ।
भू० ४१०/२०६
२. अंधकार ।
उ०—मिटि जो गई निशि कालिका ।
सूर० १०/८०६/४३२

—क्ष पुं० राक्षस विशेष, जो काली आँख वाला था ।

—पुराण पुं० वह उप-पुराण जिसमें कालिका देवी का माहात्म्य वर्णित है ।

—वन पुं० एक पहाड़ ।

कालिकेय पुं० दैत्यों की एक जाति विशेष जो दक्ष की कालिका नाम्नी कन्या से उत्पन्न हुई थी ।

कालिख स्त्री० १. धुएँ आदि से जमने वाला काला मैल । कालिमा । २. कलंक ।

कालिनाग पुं० दे० 'कालिय' ।
उ०—कालिनाग के फन पर निरतत ।
सूर० १०/५७५/३६५

कालिमा (काल+इमा) स्त्री० १. कालिख । कालापन ।
उ०—कालिमा कमलमुख सब जग जानी है ।
के० I, २६/११५
२. अंधेरा । ३. कलंक । पाप ।
उ०—कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन ।
सूर० १०/५८/१७

कालियंक पुं० मलय चन्दन ।

कालिय—कालिया पुं० १. यमुना नदी में रहने वाला एक सर्प, जिसे श्रीकृष्णजी ने मारा था ।
२. सर्प ।
उ०—ज्यान डसैं काली कालिया सी ।
ना० ७६३/५०६

—दह पुं० यमुना का वह कुंड जो वृन्दावन के किनारे था और जिसमें काली नामक नाग रहता था ।
उ०—काहु लै मोहिं डारि दीन्हौ, कालिया-दह-नीर ।
सूर० १०/५८०/३६६

काली (काल+ई) स्त्री० १. कालिका ।
उ०—किलकति काली हेरि हँसत कपाली है ।
प० ७२१/२३१
२. दस महाविद्याओं में से पहली महाविद्या ।
३. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।
४. हिमालय से निकलने वाली एक नदी ।

—चक्र पुं० भैरवी चक्र । तन्त्र-शास्त्र की एक क्रिया विशेष ।

—पाल वि० काली को भोजन देने वाला ।

काली[२] पुं० कालियनाग ।
उ०—ग्वाली के रसिक कान्ह, काली के दवन जू ।
गं० १२/४
—दह पुं० वृन्दावन में यमुना का एक कुंड, जिसमें कालियनाग रहा करता था ।
उ०—कालीदह कालिंदी, कदंब-कुंज बृंदाबन ।
गं० २८५/८६
—नाग पुं० दे० 'कालिनाग' ।
उ०—मानो यह बिप कालीनाग को ।
नू० ५५४,२४१
—नाथ पुं० कृष्ण ।
उ०—जे हरि रहे त्रिलोक मों कालीनाथ कहाइ ।
र० ५/२५२

काली अंछी स्त्री० लम्बी पत्तियों वाली कँटीली झाड़ी ।

कालीच स्त्री० कालिख ।

कालीचा (अ०) पुं० दे० 'गलीचा' ।

कालीन[१] वि० समयसम्बन्धी । सामयिक ।

कालीन[२] (तु०) पुं० गलीचा ।

कालीबेल स्त्री० बैशाख-जेठ में फलने वाली एक लता जिसमें छोटे-छोटे हरे फूल लगते हैं । यह उत्तर तथा मध्य-भारत और आसाम आदि देशों में पाई जाती है ।

कालीलर स्त्री० सिक्किम, आसाम, बर्मा आदि देशों में होने वाली लता विशेष ।

कालू पुं० सीप के भीतर का कीड़ा ।

कालौंछ स्त्री० १. कलौंस । कालिख । २. काला जाला ।

कालक पुं० १. गन्ध द्रव्य विशेष । २. बहेड़ा । ३. चूर्ण । ४. पीठी । ५. दवाओं की चटनी ६. पाखण्ड । ७. दम्भ । ८. शठता । ९. कान का मैल । १०. कीट । ११. विष्टा । १२. पाप ।

काल्पनिक वि० १. कल्पना-प्रसूत । कल्पना से निकला हुआ । २. कल्पना करने वाला ।

काल्हि क्रि०वि० १. बीता हुआ कल ।
२. आने वाला कल ।
उ०—काल्हि की सी करी भोरें भोर की कहत हैं ।
क० १४/५८

कावक पुं० १. दे० 'कावुक' । २. चक्रवाक ।
उ०—जनु छवि कावक परगट पावक ।
प० ११२/२९०

कावरी पुं० रस्सी का फंदा ।

कावा पुं० घोड़े का एक वृत्त के आकार में चक्कर देने का कार्य ।

काव्य—काब्य पुं० १. कविता । पद्यरचना ।
उ०—काव्य पद्धतिहि सोभा गहैं ।
के० III, ७४/५७१
२. काव्य ग्रन्थ ।
३. रोला छन्द का एक भेद ।

काव्यलिंग पुं० साहित्य में एक अर्थालंकार ।

काश—कास पुं० १. काँस नामक नुकीली पत्तियों वाला घास ।
उ०—आस-पास कास खेत खत चहूँ देस हैं ।
क० ३६/६४
२. चूहे की एक जाति ।
३. एक मुनि का नाम ।

काशमीर—कासमीर पुं० दे० 'कश्मीर' ।
उ०—काशमीर, कुंकुम, रुधिर, देववल्लभा नाउँ ।
नं० २४२/६१
—ई वि० काश्मीर का ।
उ०—सीतकाल सीतरच्छा कासमीरी साल सी ।
गं० ६४/२०

काशिक वि० (स्त्री० काशिका) १. प्रकाश करने वाला ।
२. प्रकाशित । प्रकाशमान् ।

काशिका स्त्री० १. काशी ।
२. पाणिनीय व्याकरण की एक प्रसिद्ध टीका या वृत्ति ।

काशिप पुं० शिव ।
उ०—पुंड्रक काशिप काल बिहारे । नं० १०१/२०

काशी—कासी स्त्री० उत्तर-भारत का एक प्रसिद्ध नगर, जिसके अन्य नाम वाराणसी और बनारस भी हैं ।
उ०—कहा करौं जाइ कासी । छी० ४३/१६
—ईश पुं० शंकर । महादेव ।
—करवट पुं० काशी में एक तीर्थ-स्थान जहाँ प्राचीन काल में लोग आरे के नीचे कटकर प्राण देना बहुत पुण्य समझते थे ।
—नाथ पुं० १. महादेव । शंकर ।
२. 'शीघ्रबोध' नामक ज्योतिष ग्रंथ के रचयिता ।
उ०—तिनकें कासीनाथ सुत सोभें ।
के० I, १४/१००

—पुरी स्त्री० नगर विशेष जहाँ का राजा 'विवेक' कहलाता है।

उ०—जो निसिबासर कासीपुरी महँ।
के० III, २०/६६४

काशीफल पुं० कद्दू।

काशू स्त्री० बर्छी। भाला।

काष पुं० १. सान का पत्थर। २. एक ऋषि।

काषाय वि० गेरुए रंग का।
पुं० गेरुआ वस्त्र।

काषि स्त्री० १. चाह। २. कसर।

उ०—अहिरनि कैं मन यहै कापि है।
सूर० १०/६२४/४६०

काष्ठा स्त्री० दिशा।

उ०—कान्या, काष्ठा, ककुभ, गो, आसा, दिसि बहि ओर। नं० १८७/८५

कास पुं० सहिजन का पेड़। एक घास।

उ०—बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी, करका कास।
के० I, ६/११२

कासकद पुं० कसेरु। एक प्रकार की स्वादिष्ट मोथे की जड़।

कासनी स्त्री० १. एक पौधा विशेष।
२. उक्त पौधे का बीज।
वि० कासनी के फूल के रंग का। नीला।
पुं० १. नीला रंग। २. नीले रंग का कबूतर।

कासबी पुं० जुलाहा। कपड़ा बुनने वाली एक जाति।

कासर पुं० (स्त्री० कासरी) भैंसा। महिष।
स्त्री० एक काली भेड़, जिसके पेट के रोए काले रंग के होते हैं।

कासा[1] पुं० १. प्याला। २. कटोरा। ३. भिक्षा-पात्र।

कासा[2] पुं० कांस नामक घास।

उ०—इतै आय फासा कि सज्जा सँवारी।
बो० ३५/२०३

कासार[1] (क+आसार) पुं० १. ताल। पोखरा।

उ०—ह्रद, पुष्कर, कासार, सर, सरसी, ताल, तड़ाग। नं० २५५/६२

२. दण्डक वृत्त विशेष।

कासार[2] पुं० दे० 'कसार'।

कासु सर्व० १. किसका। २. किसको। किसे।

कासों सर्व० किससे।

उ०—सरजा सवाई कासों करि कविताई।
भू० २००/१६६

कास्यपी स्त्री० पृथ्वी। धरती।

उ०—विश्वंभरा, वसुंधरा, थिरा, कास्यपी आहि।
नं० १५३/८२

काह सर्व० क्या।

उ०—रही जकि सी थकि सी कहि काह।
बो० ५/५१

काहल (कु+हल) पुं० (स्त्री० काहली) १. मुर्गा।
२. बिल्ला। नर बिल्ली। ३. अव्यक्त शब्द।
४. बड़ा ढोल। ५. कर्कष। परुष। कठोर।

उ०—दृढ़ काहल पुनि फलगु जो होति तिर्य तजि सील। नं० ४३/६८

काहली (काहलि+ई) स्त्री० युवती।

उ०—कुबजै कलही काहली, कुटिल कृतघ्न कुरूप।
के० III, १५/७३१

(अ०) वि० आलसी।

उ०—कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही।
के० II, १०/३२५

काहिं क्रि०वि० १. कैसे।

उ०—तब तें अनोखे नैन काहिं न चितौत हैं।
घ० क० ४७६/२६०

२. किसी को भी।

उ०—तारे मांगो स्वर्ग के तौ मैं पाऊँ काहिं।
बो० ७१/१५८

काहि—काहीं सर्व० १. किसे। किसको। २. किसलिए।

उ०—भई सौतिया मौतिया काहि सोई।
बो० ६४/१३०

काहिल (अ०) वि० आलसी। सुस्त। अकर्मण्य।
—ई स्त्री० आलस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता।

काही पुं० एक प्रकार की घास या काई जो तालाबों में होती है।
वि० घास के रंग का। कालापन मिश्रित हरा।

काहु—काहूँ—कोहू सर्व० किसी। कोई।

उ०—चक्र काहु चोरायौ, कैधों, भुजनि बल भयौ थोर। सूर० १/२५३/६८

काहू पुं० गोभी की तरह का एक पौधा जिसके बीज औषधि के काम में आते हैं।

काहे क्रि॰वि॰ क्यों। किसलिए।
उ॰—काहे कों सिंगार कै बिगारति है मेरी आली।
के॰ I, १२/१४६

काहें क्रि॰वि॰ किससे। क्यों।
उ॰—अहो बूझति हैं कहो रीझत काहें।
घ॰ क॰ ४६२/२५४

किं—किम् अव्य॰ १ क्यों। २. क्या।

किंकर पुं॰ (स्त्री॰ किंकरी) १. दास। सेवक।
उ॰—विधिकर, किंकर, दास पुनि। नं॰ ३४/६६
२. राक्षस विशेष।
उ॰—किंकर कर पकरि बान तीनि खंड कीन्यो।
सूर॰ ६/६६/१८२
३. दूत।
उ॰—थके किंकर-जूथ जम के।
सूर॰ वि॰/१०६/२६

किंकि अव्य॰ संयोजक शब्द।
पुं॰ १. नीलकण्ठ पक्षी। २. नारियल।

किंकिर पुं॰ १. कोयल। २. भ्रमर। ३. घोड़ा।
४. कामदेव। ५. लाल रंग।
६. हाथी का मस्तक।

किंकिरात (किंकिर+आत) पुं॰ १. अशोक का पेड़।
२. कटसरैया। ३. कामदेव। ४. तोता।

किंगरई पुं॰ लाजवन्ती की जाति का एक कँटीला पौधा।

किंगर पुं॰ कश्मीर के उत्तर के निवासी। काँगड़ा निवासी। किन्नर।
उ॰—काबिल के दले दल, कासमीर किंगरनि।
गं॰ ३४६/१०६

किंगरी स्त्री॰ भिक्षुक जोगियों की छोटी सारंगी।
उ॰—किंगरी स्वर कैसैं सचु मानत।
सूर॰ १०/३८२६/४५६

किंगूरा पुं॰ दे॰ 'कंगूरा'।
उ॰—कोट के किंगूरनि में गूलंदाज तीरंदाज राखे।
भू॰ २३६/१७३

किंगोरा पुं॰ दारु हल्दी की जाति की कँटीली झाड़ी।

किंकिणी—किंकनी—किंकिनी—किंकिनि—किंकिन—किंकिनी स्त्री॰ १. करधनी।
उ॰—कटि किंकिनी बिराजति है। क॰ ५६/७०
२. क्षुद्रघंटिका।
उ॰—किंकिन कतार कामदुंदव सी दै रही।
प॰ ४८/३१६
३. एक प्रकार का खट्टा दाख।

किंच (किम्+च) क्रि॰वि॰ कुछ-कुछ।
उ॰—किंच बंकक हेम मंडित मकस नवल प्रवाल।
सूर॰ परि॰/४०/६४१

किंचन पुं॰ १. पलाश।
२. थोड़ी वस्तु।

किंचित (किम्+चित्) क्रि॰वि॰ कुछ। थोड़ा सा।
उ॰—स्रम जल किंचित निरखि बदन पर।
सूर॰ १०/३४३/३०१

किंचिलक पुं॰ केंचुआ नाम का कीड़ा।

किंजलक—किंजलक (किम्+जल+क) पुं॰ १. कमल के फूल का पराग अथवा केसर।
उ॰—चंदकर किंजलक चाँदनी परान।
भू॰ ३२६/१८६
२. नागकेसर।

किंतु—किन्तु अव्य॰ लेकिन। पर।

किंदुबिल्व पुं॰ गीतगोविन्दकार जयदेव की जन्मस्थली।

किंदूर पुं॰ कुँदरु।
उ॰—पक्व किंदूर बंधूक सत-कोटि।
कुं॰ १५६/६३

किंनर पुं॰ दे॰ 'किन्नर'।
उ॰—लखि जच्छ किंनर सुर। भू॰ १६/१३१

किंपुरुष—किंपुरुख (किम्+पुरुष) पुं॰ १. प्राचीन-कालीन एक मानव जाति विशेष। किन्नर।
२. देवता की एक जाति।
उ॰—कुपुरुष किंपुरुष कलही काहली।
के॰ III, ४/५६२
३. हिन्दू धर्मानुसार जम्बू द्वीप के नौ खण्डों में से एक।
वि॰ १. वर्णसंकर। २. नीच। ३. पुरुषार्थहीन।
उ॰—कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही।
के॰ II, १०/३२५

किंवदन्ती (किम्+वदन्ती) स्त्री॰ जनश्रुति। प्रवाद।

किंवा (किम्+वा) अव्य॰ अथवा। या।

किंवार पुं॰ किवाड़। दरवाजा।

किंसुक पुं॰ पलाश। टेसू।
उ॰—फूले किंसुक-जाल। म॰ ६६/३७६

कि अव्य॰ १. सन्देह या भ्रमवाचक एक अव्यय।
उ॰—सुनहु 'सूर' यह साँच कि संभ्रम।
सूर॰ १०/१८०४/१२
२. या। अथवा।

उ०—ओढ़ियत है कि बिछैयत है।
सूर० १०/३९९६/४८५

किंकिधा पुं० किष्किंधा पर्वत।
उ०—मानहु किंकिधा बिधि सिंधु छोर छया है।
गं० १३/४

किकिया— अक० कीं कीं का शब्द करना। चिल्लाना। रोना।

किचकिच स्त्री० व्यर्थ की बकवाद। झगड़ा।

किचकिचा— अक० दाँत पीसना।
—हट पुं० किचकिचाने का भाव।

किचपिच पुं० १. गड़बड़ी की अवस्था। २. कीचड़। ३. दुविधा। ४. व्यर्थ का वाद-विवाद। धमाचौकड़ी।
उ०—जगत किचपिच-कीच बीच।
ना० १४८/११४

किचुली स्त्री० केंचुल।

किछु वि० कुछ।

किजाकी स्त्री० चतुरता। दक्षता। कज़ाकी।

किटकिटा— अक० क्रोध से दाँत पीसना।

किटकिना—किटकिन्ना पुं० १. वह दस्तावेज जिसके आधार पर ठेकेदार अपनी ओर से अन्य असामियों को ठेका देता है। २. सुनार का ठप्पा।

किटकिनादार (किटकिना+दार) पुं० वह व्यक्ति जो ठेकेदार से ठेका ले।

किटि पुं० सुअर।
उ०—सूर विदुष भट सिंह किटि बंध अग्नि रवि सूल।
नं० १६/५६

किटिभ पुं० केशकीट। जूँ।

किटिमकुष्ट पुं० कोढ़ विशेष जिसमें चमड़ा सूखे फोड़े के समान काला और कड़ा हो जाता है।

किट्ट पुं० १. धातु का मैल। २. मैल। गाद। ३. किसी द्रव्य पदार्थ के ऊपर जमने वाला मैल।

कित—कित्त—कितू क्रि०वि० कहाँ। किधर।
उ०—सुन जानियै धौं कित छाय रहे।
घ० क० १७/४७

कित्तक—कितक—कितिक (कितना+एक) क्रि०वि० कितना।

कितव—कितब पुं० १. जुआरी। २. कपटी। धूर्त।
उ०—रे रे मधुप, कितव के बंधु। सा० ५६६/४६
३. खल। मूर्ख। ४. धतूरा। ५. गोरोचन।
वि० कपटपूर्ण। छल से युक्त।
उ०—कितव विवाद तजहु पिय हम सों।
गो० २४५/११४

किताब (अ०) पुं० १. पुस्तक। २. कुरान।
उ०—बेद किताब यहू मत बूझै। बो० ५८/५६
—ई वि० पुस्तकीय।

कितो—कितिक—कितीक वि० कितना।
उ०—कितीक दूरि गोकुल। कुं० ३४०/११०

कित्ति स्त्री० कीर्ति। यश।
उ०—जग जित्ति कित्ति अनूप की। प० २/५

कितेव वि० धूर्त। छली।

कितौ वि० कितना।

कित्थां क्रि०वि० किधर। कहाँ।
उ०—अणी मैं जोगन होय कित्थां जावां।
ना० २१८/३०६

किदारा—किदारो पुं० ग्रीष्म ऋतु में आधी रात को गया जाने वाला एक राग।

किधर क्रि०वि० किस ओर। कहाँ।

किधीच क्रि०वि० किधर।
उ०—ढूढ़ो रहो किधीच। दे० I, ४५/२५२

किधौं—किधौ अव्य० अथवा। वा। या।
उ०—ऊधो तुम जानति हौं किधो नाहीं।
भ्र० १०१/९१

किनका—किनुका—किनूका पुं० अन्न का टूटा हुआ दाना।

किनहा पुं० वह फल जिसमें कीड़ पड़ गए हों।

किन— सक० खरीदना। मोल लेना।

किनाना वि० खरीदा हुआ। क्रीतदास। वशीभूत।
उ०—कूबरी दूबरी जाति न ऊबरी, डूबरी बात सुगांघी किनानें। देव०

किनानी स्त्री० एक चिड़िया विशेष।

किनार—किनारा (फा०) पुं० १. किसी ओर का अन्तिम सिरा। २. तीर। तट। ३. छोर। प्रान्त। हाशिया।
—इका स्त्री० तट। तीर।
—दार वि० गोटे से युक्त।

उ०—गोरे मुख सेत सारी कंचन किनारीदार ।
दे० I, ३२७/१०४

किनारी (फा०) स्त्री० किनारे पर लगाया जाने वाला सुनहरा गोटा ।

उ०—सोहत किनारी वारी केसरि के रंग की ।
म० २८०/३४६

किन्नर[1] (किम्+नर) पुं० (स्त्री० किन्नरी) पुराणानुसार देवलोक के एक प्रकार के गायक उपदेवता जिनका मुख घोड़े के समान कहा गया है ।

उ०—कुंडली किन्नरी झांझ बहु भाँति आवत उपगे । गो० १०८/५२

--ईस पुं० किन्नरों का स्वामी ।

उ०—डफ, आवज, बीना किन्नरेस । च० ७१, ३६

किन्नर[2]—**किन्नरि** पुं० तंबूरा अथवा सारंगी ।

उ०—बाजत ताल, मृदंग और किन्नरि की जोरी ।
सूर० १०/२८७०/२३८

किन्नरी स्त्री० १. एक प्रकार का छोटा तंबूरा ।
२. छोटी सारंगी ।

किबलनुमा (किवल+नुमा) (अ०) पुं० दिग्दर्शक यंत्र । कुतुबनुमा ।

किबला (अ०) पुं० १. पश्चिम दिशा ।
२. मुसलमानों का पवित्र तीर्थ । मक्का ।
३. पूजनीय व्यक्ति ।

वि० सम्माननीय । पूजनीय ।

उ०—किबले के ठौर बाप बादशाह ।
भू० ५४१/२३८

किमखाब पुं० साढ़े चार गज का एक बहुमूल्य वस्त्र ।

किमाम (अ०) पुं० शहद के तुल्य गाढ़ी बनायी गयी तमाखू ।

किमि क्रि०वि० कैसे । किस तरह ।

उ०—खंगधार किमि काटहु मोही । बो० १५/५२

किमियाँवान् (अ०) पुं० रसायन बनाने वाला ।

किम्मत[1] स्त्री० १. चतुराई । २. वीरता । बहादुरी ।

—ई स्त्री० बहादुरी ।

उ०—हिम्मति कहाँ लौं कहौं किम्मति इहाँ लगि है । भू० ४१५/२०८

—ई वि० गुणवान ।

उ०—हम करतूती बड़े किम्मती कहाए जो ।
प० ४६/२४८

किम्मत[2] (अ०) स्त्री० कीमत ।

कियत—**कियतो** वि० कितना ।

उ०—जाकी है मोहूँ को गारो, अजगुत कियतो ।
सूर० १०/३७३/३०८

कियारी स्त्री० १. दो मेड़ों के बीच का वह छोटा अन्तराल जिसमें बीज बोते हैं । क्यारी ।

उ०—उर में यह प्रेम कियारी बई । बो० ५८/१०

२. खेत का एक विभाग ।
३. एक बड़ा कड़ाह जिसमें समुद्र का खारा पानी नीचे नमक बैठने के लिए भरते हैं ।
४. सुनारों की बोली में चारपाई के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द ।

किर— अक० किटकिटा कर जोर लगाना ।

उ०—जंजीरें जोर करत जि किरि हैं ।
भू० ३१७/१८७

सक० फैलना । बिखरना ।

किरका पुं० पत्थर आदि का छोटा टुकड़ा । कण ।

किरकिट्टी स्त्री० १. दे० 'करका' । २. अपमान ।
३. हेठी ।

किरकिरा वि० कँकरीला ।

—पन पुं० कँकरीलापन ।

—हट पुं० कँकरीलापन ।

किरकिरा[2]— अक० आँख में कोई कण गिर जाने से पीड़ा होना ।

किरकिरी स्त्री० दे० 'किरकिट्टी ।

उ०—नीठि दीठि परें बरकत सो किरकिरी लौं ।
घ० क० ११४/१०२

किरकिल[1] पुं० गिरगिट ।

किरकिल[2] स्त्री० शरीर के भीतर की वह वायु जिससे छींक आती है ।

किरकिला पुं० आकाश से मछलियों पर टूट पड़ने वाला एक पक्षी ।

उ०—मन मनभावन को मानो किरकिला ।
दे० I, ४३४/१२१

किरकी स्त्री० एक गहना विशेष ।

किरखीकारा पुं० किसान ।

किरच—**किरिच**—**किरिचक**—**किर्च** स्त्री० १. काँच आदि का नुकीला टुकड़ा ।

उ०—काँच की किरच गही। सूर० १/३२४/८८

२. पतले फल की तलवार। बरछी।

उ०—खाँड़े तोड़े किरचैं उड़ाए सब तारे से।

भू० ४१४/२०८

३. चरपराहट।

उ०—लगति स्वादु के सिंधु मैं मिरचि किरच लौं चाउ। म० ३६६/४०१

४. किरण।

उ०—सोने के जूरन में चमकैं किरचैं सी उठैं छबि पुंज छवा के। गं० ५१/१७

—क पुं० छोटा खण्ड।

उ०—किरचक चंदन दै बिरमाए, हम तन करी निनारी। सूर० १०/३६४०/४१७

—किरच—किरचि किरचि क्रि०वि० खण्ड-खण्ड। टुकड़े-टुकड़े।

किरचिया पुं० बगले की तरह का एक पक्षी।

किरचो—किरचैं पुं० १. बंगाल में होने वाला कोमल रेशम।

किरण—किरणि—किरन—किरनि स्त्री० प्रकाश की रेखा। रश्मि।

उ०—हरि चंदन चातिक किरणि शुक्र सत्य सिव कील। नं० ५३/६०

—आवलि पुं० किरणों की पंक्ति।

उ०—जो नहि सोमु किरनावलि तनै।

दे० I, १६/२१५

—गन पुं० किरणों का समूह।

उ०—परम रुचिर मनि-कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी। सूर० वि०/६६/२०

—माल पुं० किरणों का समूह।

—माली पुं० सूर्य।

किरतन—कितंन पुं० दे० 'कीर्त्तन'।

उ०—गुन किरतन उदवेग अति, चिंताभरन उसाँस।

कृ० ३७१/८०

—इया वि० दे० 'कीर्त्तनिया'।

किरतम स्त्री० सृष्टि।

किरपन पुं० कृपण। कंजूस।

किरपा स्त्री० कृपा।

उ०—तो पर सिवा किरपा करी जान्यौ सकल जहान। भू० १४३/१५५

—ल वि० कृपालु। दयालु।

किरपान—किरपानि—किरबान पुं० १. कृपाण।

२. दण्डक छन्द का एक भेद।

किरम पुं० १. कृमि। कीट। कीड़ा।

२. किरमिज नामक कीड़ा।

किरमई स्त्री० एक प्रकार की लाख।

किरमिजी वि० किरमिज के रंग का। मटमैला लाल।

किररा— अक० १. क्रोध में दाँत पीसना।

२. किर्र किर्र शब्द करना।

किरवान—किरवाना—किरबार स्त्री० दे० 'किरपान'।

उ०—सहल बहिबो सिहसिर बोधा कवि किरवान।

बो० ३४/२५

किरवार पुं० अमलतास।

उ०—केसरि किंसु कुसुम कुरौ किरवार कनैरनि रंग रची है। दे०

किरषि स्त्री० कृषि। खेती।

उ०—धर बिधंसि नल करत किरषि, हल, बारि, बीज बियरै। सूर० वि०/११७/३२

किरात[1] पुं० (स्त्री० किरातिनी—किराती) वन के वासी।

उ०—बूझत किरात कहौ काहे रहे तचि हौ।

भू० ३०३/१८५

—आशी पुं० गरुड़।

—क पुं० जंगली जाति विशेष।

—पति पुं० शिव।

किरात[2] वि० दुष्ट। अपवित्र।

उ०—'केसव' परम चोर परम किरात हैं।

के० I, २३/७३

किरान[1] क्रि०वि० पास। निकट।

उ०—चढ़े तें कुमति चक्कता किरान सानी मैं।

भू० १२८/१५२

किरान[2] स्त्री० कृपाण। तलवार।

उ०—चमक किरान मुलतान थहराना जू।

गं० ३०६/६३

किराना पुं० पंसारी की दुकान पर मिलने वाली चीजे मिर्च, मसाला आदि।

किराया पुं० भाड़ा।

किरायेदार पुं० जो किराया देकर कोई वस्तु ले या उसे काम में लाये।

किरार पुं० एक छोटी जाति।

उ०—कौअरी, कुरंग नैनी कुंवरि किरार की।

दे० I, २८६/६६

किरावल पुं० १. युद्ध क्षेत्र साफ करने के लिये आगे जाने वाली सेना।

२. बन्दूक द्वारा शिकार करने वाला व्यक्ति।

किरिका—किरिकौ पुं० कंकड़।

उ०—परवत माहिं आहि सो किरि कौ।
सूर० १०/६२५/४६०

किरिकिरी स्त्री० दे० 'किरकिट्टि'।
उ०—उनकों किरिकिरी तें सूझत न नियरो।
भि० II, ३६/१३०

किरिन—किरिनि स्त्री० दे० 'किरण'।
उ०—तीछन तरनि की किरिनि तें दुगुन जोति।
म० ३४४/३५६

किरिया स्त्री० १. शपथ।
उ०—किरिया सी करि कै भई ठाढ़ी, तुरत अधर-तट लागी। सूर० १०/१३४७/५७६
२. कर्त्तव्य। ३. मृतक कर्म।

किरीट पुं० एक शिरोभूषण मुकुट।
उ०—कुंडल लसत किरीट महाधुनि, बपु बसुदेव निहार्यौ। सा० ३६५/३०
—ई पुं० १. इन्द्र। २. अर्जुन।

किरीत वि० खरीदा हुआ। क्रय किया हुआ।

किरीरा स्त्री० दे० 'क्रीडा'।

किरोर पुं० करोड़। दे० 'करोर'।
वि० दे० 'करोर'।

किरौना पुं० कीड़ा।

किर्री स्त्री० छेनी विशेष जिससे धातु पर नक्काशी करते हैं।

किल[1] अव्य० निश्चय ही। यथार्थ में।
उ०—म्लेच्छन कों मारे किल करिकै घमंड कौ।
भू० ११४/१४६

किल[2]— अक० १. कीला जाना।
२. वश में किया जाना।

किलक[1] स्त्री० आनन्द-सूचक शब्द। हर्ष-ध्वनि। किलकार।
उ०—गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनी पावक झार। सूर० ६/१२४/१६१
अक० हर्ष से किलकारी मारना।
उ०—कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल कों।
भू० ५२२/२३२
किलकत व०कृ०। किलकी भू०कृ०।
किलकन क्रि०सं०।
—कंत~कन्त वि० प्रफुल्लित। प्रसन्न।

किलक[2]**—किलिक** (फा०) स्त्री० कलम के लिये नरकट विशेष।

किलकान पुं० हैरानी। दिक्कत।
उ०—बिन अवलंब किलकान आसमान में।
भू० २६५/१७८

किलकार स्त्री० हर्षध्वनि। प्रसन्न होने का भाव।
उ०—यो नवला रति में करति भाँति भाँति किलकार। र० ११४/२६
अक० हर्षध्वनि करना।
उ०—गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखति नँदरानी। सूर० १०/२५३/२७६
किलकारत व०कृ०। किलकार्यौ भू०कृ०।

किलकिंचित पुं० नायिका के संयोग शृंगार संबंधी ग्यारह हावों में से एक जिसमें अनेक भाव एक साथ प्रकट होते हैं।
उ०—विभ्रम किलकिंचित ललित मोटाइत पुनि जानि। प० ४२७/१७२

किलकिल स्त्री० लड़ाई। झगड़ा। वादविवाद।

किलकिला[1] पुं० एक छोटा पक्षी जो जलाशयों में से मछलियाँ पकड़कर खाता है।
उ०—जैसे मीन किलकिला दरसत, ऐसें रहो प्रभु डाटत। सूर० वि०/१०७/२६

किलकिला[2] स्त्री० किलकार।
अक० हर्षध्वनि करना।
उ०—गहगहात किलकिलात, अँधकार आयौ।
सूर० ६/१३६/१६६
किलकिलात व०कृ०।
—आहट स्त्री० किलकिलाने का भाव।

किलकी[1] स्त्री० एक औजार विशेष जिससे बढ़ई नाप के अनुसार काठ पर निशान लगाते हैं।

किलकी[2] स्त्री० बेचैनी। विकलता।
उ०—धुनि सुनि कोकिल की बिरहिनि को किलकी।
क० २५/६१

किलनी स्त्री० पशुओं की देह में चिपटने वाला एक छोटा कीड़ा। किल्ली।

किलमोरा पुं० १. दारुहल्दी का एक प्रकार।
२. फावड़ा। ३. कुदाल।

किलबांक पुं० काबुल देश के घोड़ों की एक जाति।

किला[1]**—किलो** (अ०) पुं० दुर्ग। गढ़।
उ०—कुल को किला वो तोड़ि कै भजि जायँ यों करि काज। बो० ८/६८

किला[2]— सक० किलवाना।

किलाएँ—किलाये फा० (कलावा) पुं० हाथी के गर्दन की वह रस्सी जिसमें पैर फँसाकर महावत बैठता है।

उ०—बैठो जु किलाएँ मुच्छनि ताएँ रन-छवि छाएँ फूलत हैं। प० २०५/२६

किलाट पुं० छेना। फाड़ा हुआ दूध।

किलारी स्त्री० दे० 'किनारी'।

किलोल—किलोलि स्त्री० दे० 'कल्लोल'।

उ०—रूप में मिलत त्यों किलोलें किलकारे की। ठा० ८/४

किलंगी स्त्री० कलँगी। शिरोभूषण।

किल्ला पुं० १. बड़ी कील। २. खूँटा। ३. दे० 'किला'।

किल्ली स्त्री० १. कील। २. खूँटी। ३. सिटकनी। अर्गल।

किल्विष पुं० १. पाप।

उ०—किल्विष, कल्मष, कलुष, कलि, कश्मल, समल, कलंक। न० १२८/७६

२. रोग। ३. दोष।

किवार—किवाड़—किवार पुं० कपाट। द्वार। पट।

उ०—एक कर कंज एक कर है किवार पर। प० १२४/१०६

किशमिश—किसमिस (फा०) स्त्री० सूखा छोटा बीज रहित अंगूर।

उ०—खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम। सूर० १०/२१२/२६६

—ई वि० किशमिश संबंधी। किशमिश के रंग का।

किशलय—किसलय—किसलै—किसलै पुं० नया कोमल पत्ता। कल्ला। कोंपल।

उ०—कोपनि तैं किसलय जबै ह्वाँहि कलिन तैं कौल। म० १६३/३३२

किशोर—किसोर पुं० (स्त्री० किशोरी—किसोरी) ११ से १५ वर्षों तक का बालक।

उ०—मुरलीधर वर किशोर 'चतुर्भुज' मन हरत चोर। च० २८६/१४३

किस क्रि०वि० किस प्रकार।

किसनई स्त्री० खेती। कृषक वृत्ति।

किसब पुं० कसब। व्यवसाय। उद्यम। धंधा।

किसबत (अ०) स्त्री० नाई का उस्तरा, नहली, कैंची आदि रखने की विशेष आकार की पेटी।

किसलिन वि० खिले हुये। विकसित।

किसा (अ०) पुं० किस्सा। कथा।

उ०—किसा एक हम सुनी अनैसी। बो० ६४/१४६

किसान[१] पुं० खेती करने वाला व्यक्ति। कृषक।

उ०—काम किसान की डोरी चली चपला फिरै मेघन मापति सी है। ठा० ११६/३१

—ई वि० खेती-संबंधी। किसान-संबंधी।

किसान[२] स्त्री० कृशानु। आग।

उ०—मदन किसान की लपट धूम लपिटी कि सान धरे नैन बाण बेधनि किसान की। दे०

किसाला पुं० कष्ट।

उ०—सिसिर के पाला के न ब्यापत किसाला तिन्हैं। प० ३६१/१६५

किसु—किसू सर्व० १. किस। किसका।

उ०—ह्याँ न किसूको कोऊ रच्छक भच्छक सबै दिखाय। प० २६/२६८

२. कोई।

किसुन पुं० कृष्ण।

किसोरिका स्त्री० किशोरी। तरुणी।

उ०—जे ब्रज हुती किसोरिका, रँग होरी। सूर० १०/२८६६/२३६

किहकल पुं० एक चिड़िया विशेष।

किहि सर्व० किसी।

उ०—किहि काम, न स्याम भजे मन मैं पछिताए। हरि० १०/५४

किहिधौं क्रि०वि० किस प्रकार। किस तरह।

किहुँ—किहु सर्व० किसी।

उ०—ज्यौं ठग निधि हरत, रंग गुर दै किहुँ भाँति। सूर० १०/३००३/२८३

किहुनी स्त्री० दे० 'कोहनी'।

की[३] अव्य० क्या।

उ०—बंसी वाले नैं की सिखलाया नी। ना० ४६५/४१२

कीक पुं० चीत्कार। चीख। चिल्लाहट।

उ०—सारधार बर्षा भई गगन कीक दइ घोर। बो० ५/१६०

अक० चिल्लाना।

उ०—कीको ब्रजमंडलु बकी को रूप देखिकै। दे० I, ८/४

कीका भू०कृ०।

